भाग ८६

संख्या १

अक्टूबर १९५७, तुला २०१४ वि० आश्विन १८७९ श०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये]

[इस अङ्क का मूल्य ३७ नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का – यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायँगे।

// विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८६ | तुला २०१४; विक्र०; आश्विन १८७६ शाकाब्द; अक्टूबर १६५७ ई० | संख्या १

सम्पादकीय

मानवता द्विविधा में

गत कई महीनों से निरस्त्रीकरण और पारमाणविक अस्त्रों पर रोक थाम की बातचीत चल रही है। संसार के अग्रणी राष्ट्र इस विचार के समर्थन का आडम्बर करते हैं और अधिक से अधिक विनाशकारी अस्त्रों के निर्माण और उनके उपयोग की विधियों पर अनुसंधान करते जा रहे हैं। सोवियत संघ ने सर्वप्रथम अन्तर्महाद्वीपीय यन्त्र चालित अस्त्र (Intercontinental Ballastic Missile) की प्राप्ति की। इस अस्त्र को हम चरम अस्त्र की संज्ञा दे सकते हैं। सोवियत संघ ने वचन दिया है कि इस अस्त्र का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय-भूभौतिकीय वर्ष के अनुसंधानों में सहायता देने के लिये होगा। देखना है कि इस अस्त्र का उपयोग वास्तव में शान्तिपूर्ण खोजों के द्वारा जनकल्याण के लिये होता है या राजनीतिज्ञों की स्वार्थान्धता की पूर्ति के हेतु जनसंहार के लिये।

सांघातिक अस्त्रों के प्रयोग पर रोक लगाने की बात हमें तो केवल दुराशा मात्र प्रतीत होती है। युद्ध काल में किसी भी समझौते को मान्यता नहीं दी जावेगी। इन सारे अस्त्रों का डटकर प्रयोग होगा। इस समय मानव के सम्मुख दो स्पष्ट मार्ग हैं। (१) युद्ध का सर्वथा परित्याग (२) सम्पूर्ण विनाश। यदि हम युद्ध के सर्वथा परित्याग के लिये तत्पर नहीं होते तो सम्पूर्ण मानवता का विनाश निश्चित है। कुछ थोड़े से व्यक्ति ही ऐसे सौभाग्यशाली होगें जो तत्काल मृत्यु को प्राप्त होंगे। शेष सारे व्यक्तियों को अनेक प्रकार के घृणित रोगों से पीड़ित होकर तिल तिल करके मरना पड़ेगा। आज जब हम मानवता के विनाश की बातें करते है तो भूल जाते हैं कि हम भी इसी मानवता के एक अंग मात्र हैं और मानवता के विनाश के साथ हमारा और हमारी संतानों का भी विनाश हो जावेगा। इसी कारण से अनेक निष्पक्ष राष्ट्र इस दिशा में प्रयत्न करने के प्रति उदासीन हैं।

अब सीमा आ पहुँची है। दो मार्गों में से एक को चुनना ही पड़ेगा। देखना है जिस मानव ने असीम नक्षत्र लोक और और परमाणु की छोटी दुनियाँ के अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया और कलात्मक, साहित्यिक एवम् धार्मिक क्षेत्रों में भी आशातीत उन्नति की है क्या गुटबंदियों में पड़कर निस्वार्थ प्रेम को लात मारकर इस लोक के प्राणिमात्र के सर्वथा विनाश को तत्पर होगा और मनुष्यों के साथ उन निरीह पशुपक्षियों और कीड़ों-मकोड़ों को भी नष्ट कर देगा जो न तो

कम्यूनिस्ट है और न पूँजीवादी। क्या मानव इस सामूहिक हत्या के लिये तत्पर होगा या अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनकर मानव कल्याण के लिये सोचेगा।

इस समय मनुष्य मात्र के सम्मुख प्रश्न है—क्या हम चुपचाप बैठकर भयंकर और प्रगाढ़ विपत्ति को सर पर आने दें या एक स्वर से इस पालगपन की दौड़ को रोकने के लिये आवाज उठायें। हम यह न भूलें कि मनुष्यमात्र की यह आवाज एक करुण रुदन नहीं अपितु नैतिक शक्ति का वह कराल स्वर है जिसकी अवहेलना करने का किसी को भी साहस नहीं। इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं—अंग्रेजों और फ्रान्सीसी सरकार के अत्याचारों से मिश्र और सोवियत संघ के अत्याचारों से हंग्री की मुक्ति। क्या एक बार पुनः मनुष्यता की यह आवाज इस संकट काल में शीघ्र ही नहीं उठेगी?

महान् दर्शन शास्त्री न्यूटन के प्रयास हमेशा मनुष्य की शक्ति के परे होते थे। जिन प्रश्नों का उत्तर न्यूटन नहीं दे पाया उनका उसके समय में उत्तर संभव ही नहीं था।

— ऐरैगो

जब कभी नैपोलियन के पास कुछ खाली समय होता तो वह अक्सर उन्हें (Logarithny) की पुस्तक पढ़ने में बिताता था जिससे उसे हमेशा मनोरंजन प्राप्त होता था।

—जे० एस० सी० ऐबर

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी-वैज्ञानिक-साहित्य

डा० गोरख प्रसाद

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी साहित्य की विशेष उन्नति हुई है। अन्य प्रकार के साहित्य के साथ-साथ वैज्ञानिक साहित्य की भी अच्छी उन्नति हुई है तो भी, अभी बहुत काम बाकी है। जिस गति से इस समय हिन्दी संसार इस बात में आगे बढ़ रहा है उस गति से काम चलाऊ साहित्य की पूर्ति में भी बीसों वर्ष लगेंगे। परन्तु निराश होने की कोई बात नहीं है। गति सम्बन्धी एक प्रसिद्ध नियम है कि एक समान बल बराबर लगाये रखने पर आरंभ में थोड़ा ही वेग उत्पन्न होता है, परन्तु वह समय पाकर प्रबल वेग में बदल जाता है।

वैज्ञानिक साहित्य को पृथक्-पृथक् खंडों में बांट कर ही उसका निरीक्षण करना उचित होगा। पहले पारिभाषिक शब्दावली पर हम विचार करेंगे। ज्योंही कोई लेखक पुस्तक लिखने बैठता है त्योंही उसके सम्मुख यह समस्या खड़ी हो जाती है कि पारिभाषिक शब्दों के लिए क्या किया जाय। इतना तो अब निश्चित है कि अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों नहीं लिया जा सकता। भारत सरकार ने विशेषज्ञों की कई समितियाँ बना दी हैं जो अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के लिए हिन्दी शब्द चुनने या गढ़ने के काम में लगी हैं। गणित व भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति शास्त्र, आदि के लिए अलग-अलग समितियाँ हैं। इन समितियों में से गणित और रसायन समितियों ने सबसे अधिक कार्य किया है तो भी यद्यपि कार्यारंभ से ५ वर्ष बीत चुके हैं अभी इंटरमीडियेट कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले सब विषयों के शब्दों की सूची प्रकाशित नहीं हो पायी है। गणित में केवल हाई स्कूल परीक्षा की सब शाखाओं के शब्दों के रूपांतर प्रकाशित हुए हैं और कुछ काम इंटरमीडियेट के लिए भी हुआ है। अन्य समितियों ने इससे कुछ कम ही उन्नति की है। इन समितियों की देखरेख के लिए एक बोर्ड आफ सायंटिफ़िक टर्मिनालोजी है। २६ अप्रैल १६५७ की बैठक में इस बोर्ड ने यह प्रस्ताव पास किया कि पारिभाषिक शब्दों का काम संतोषजनक रीति से हो रहा है। परन्तु मुझे तो तब संतोष होता जब आज समितियाँ एम० ए० की परीक्षा तक के लिए प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दावली बना कर जनता के सामने रख देतीं। मेरी राय में इतना काम कर सकना असंभव नहीं था। पारिभाषिक शब्दों के प्रकाशन में देर होने के कारण वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति बहुत कुछ रुकी हुई है। जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि जितना भी काम हुआ है उससे बहुत लाभ हुआ है। उत्तर प्रदेश के इंटरमीडियेट बोर्ड ने यह घोषणा कर दी है कि पाठ्यक्रम के लिए वे ही पुस्तकें चुनी जा सकेंगी जिनमें पारिभाषिक शब्द भारत सरकार द्वारा प्रकाशित कोशों के अनुसार होंगे। इससे बहुत कुछ एकता आ गयी है। अब लेखक, शिक्षक, परीक्षक सभी एक ही शब्दावली का प्रयोग करते हैं। जिससे विद्यार्थियों को वास्तविक सुविधा हो गयी है, और लेखकों का मार्ग सुगम हो गया है। भारत सरकार से कोई बीस विषयों की छोटी-छोटी शब्दावलियाँ प्रकाशित हुई हैं।

इन शब्दावलियों के अतिरिक्त लेखकों के लिए डाक्टर रघुवीर की बनायी पारिभाषिक डिक्शनरी भी कुछ वर्षों से प्राप्य है। इसमें प्रायः सभी वैज्ञानिक विषयों के शब्द हैं और शब्दों की संख्या कई हजार है।

परन्तु कठिनाई यही है कि भारत सरकार की शब्दावलियों की तरह इसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। लेखक को बराबर डर लगा रहता है कि निकट भविष्य में भारत सरकार से प्रकाशित होने वाली शब्दावली में कहीं दूसरा शब्द न हो। काशी विश्वविद्यालय के डाक्टर ब्रजमोहन की बनायी गणितीय कोश नामक पुस्तक में जिसके प्रकाशित हुए तीन वर्ष हो चुके, गणित की विविध शाखाओं के एम० एस-सी० के स्तर तक के प्रायः सभी शब्द हैं।

पारिभाषिक कोशों को छोड़ अब पाठ्य पुस्तकों पर विचार करें। हाई स्कूल और इंटरमीडियेट तक के सभी साधारण वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें बाजार में बिकती हैं। इनका प्रकाशन इसी से संभव हो सका है कि उत्तर प्रदेश के इन्टरमीडियेट बोर्ड ने अपनी परीक्षाओं और शिक्षण का माध्यम हिन्दी घोषित कर दिया है। यह अवश्य सत्य है कि इन्टरमीडियेट के प्रश्न पत्र अब भी अंग्रेजी और हिन्दी दोनों पाठांतरों में आते हैं और परीक्षार्थियों को छूट है कि वे चाहें तो अंग्रेजी में उत्तर दे सकते हैं। इन कारणों से अनुचित लाभ उठा कर कुछ पुराने अध्यापक आज भी अपनी कक्षाओं में अंग्रेजी पुस्तकों का प्रयोग करते हैं, परन्तु धीरे-धीरे माध्यम हिन्दी ही होता जा रहा है और भविष्य में इन्टरमीडियेट के स्तर की और भी पुस्तकें प्रकाशित होंगी। केवल टेकनिकल विषयों पर, जैसे कपड़े की बुनाई, चमड़े का काम इत्यादि पर पुस्तकों का अभाव है। इसका कारण यह है कि इन विषयों के विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है और इसलिए इन पर पुस्तकें लिखाने और प्रकाशित करने में लाभ के बदले घाटा ही होने की सम्भावना है। जब तक इस क्षेत्र में सरकार स्वयं नहीं उतरेगी तब तक निकट भविष्य में ऐसी पुस्तकों के तैयार हो सकने की कोई संभावना नहीं जान पड़ती।

बी० एस-सी० के स्तर की पुस्तकों में इनी-गिनी पुस्तकें हो पायी हैं। बी० एस-सी० के गणित में ६ विषय पढ़ाये जाते हैं और प्रत्येक पर एक पृथक पुस्तक की आवश्यकता पड़ती है। अंग्रेजी में प्रत्येक विषय के लिये दर्जनों पुस्तकें मिल सकती हैं, परन्तु हिन्दी में इन ६ विषयों में से केवल तीन पर एक-एक पुस्तकें प्राप्य हैं। डा० हरिश्चन्द्र गुप्त की पुस्तक, इनटेग्रल कैल्क्युलस पर, डाक्टर बद्रीनाथ प्रसाद की पुस्तक, हाइड्रोस्टैटिक्स पर और, डाक्टर गोरख प्रसाद की पुस्तक, डिफ़रेनशियल इक्वेशन्स पर। केमिस्ट्री में तीन शाखाएं हैं। इनआर्गेनिक, आरगैनिक और फिजिकल। इनमें से दो पर हिन्दी में पुस्तकें हैं। डा० सत्यप्रकाश की इनआर्गैनिक कैमिस्ट्री पर और डाक्टर रामचरन मेहरोत्रा की फिजिकल केमिस्ट्री पर। आर्गैनिक केमिस्ट्री पर, जहाँ तक मैं पता लगा सका हूँ, अभी कोई पुस्तक बी० एस-सी० के लिए हिन्दी में नहीं प्रकाशित हुई है। भौतिक विज्ञान अर्थात् फिजिक्स में कम से कम पाँच पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है, जिनके विषय होते हैं ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत तथा चुम्बकत्व और द्रव्य के साधारण गुण। इन पाँच में से केवल एक पर एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। वह है डाक्टर निहाल करण सेठी की पुस्तक प्रकाश विज्ञान। वनस्पति शास्त्र और प्राणि शास्त्र अर्थात् बाटैनी और जूआलोजी पर बी० एस-सी० के लिए पुस्तकें अभी नहीं प्रकाशित हुई हैं। सैनिक शास्त्र, इनजिनियरिंग, मेडिसिन और टेकनिकल विषयों पर कालेजों में पढ़ाने योग्य पुस्तकें संभवतः अभी हिन्दी में लिखी भी नहीं गयी हैं। ऐसी पुस्तकों के न प्रकाशित होने का मुख्य कारण यह हैं कि उनके लिए कोई माँग नहीं है। कालेजों में पढ़ाई हिन्दी में नहीं होती, जिसका एक कारण यह भी है कि हिन्दी में उपयुक्त पुस्तकें नहीं हैं और प्रकाशक इसलिए ऐसी पुस्तकें तैयार नहीं कराते कि कालेजों में पढ़ाई हिन्दी में नहीं होती। इस चक्कर को तोड़ने के लिए सरकार की सहायता की आवश्यकता प्रतीत होती है और यह भी आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्दावली का काम अधिक तेजी से चले।

एम० एस-सी० के लिए पुस्तकों की चर्चा ही बेकार है। जब बी० एस-सी० का काम लगभग पूरा ही अभी करना बाकी है तो उसके आगे की पुस्तकों का क्या कहना।

पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त लोक प्रिय वैज्ञानिक साहित्य की भी आवश्यकता रहती है। इस क्षेत्र में कई एक अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कई संस्थाएँ और प्रकाशक ऐसी पुस्तकों के उत्पादन में लगे हुये हैं। विज्ञान परिषद्, प्रयाग, ने हाल में ही रेलवे इंजन नामक पुस्तक प्रकाशित की है जिसके लेखक हैं श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक काफी ब्योरेवार है, और इंजन ड्राइवरों तथा मिस्त्रियों के बड़े काम की है। एक अन्य पुस्तक, जिसका शीर्षक 'साँपों की दुनिया' है १९५१ में छपी थी। इसके लेखक गुरुकुल हरद्वार के श्री रामेश वेदी हैं। इसमें केवल साँपों का वर्णन और उनकी पहचान ही नहीं है, सर्प विष की विदेशी और भारतीय औषधियां भी हैं। हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद, से डाक्टर सत्यप्रकाश की लिखी कुछ आधुनिक आविष्कार नामक पुस्तक निकली है, विकासवाद पर श्री दयानन्द पन्त की पुस्तक भी वहीं से प्रकाशित हुई है।

पब्लिकेशन ब्यूरो लखनऊ से जो उत्तर प्रदेशीय सरकार की संस्था है, हिन्दू गणित के इतिहास पर डा० विभूति भूषण दत्त और स्वर्गीय डाक्टर अवधेश नारायण सिंह की लिखी पुस्तक का डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल द्वारा किया गया अनुवाद, और डाक्टर गोरख प्रसाद कृत भारतीय ज्योतिष का इतिहास ये दो पुस्तकें हाल में ही प्रकाशित हुई हैं। ये पुस्तकें बहुत अच्छे कागज पर और बहुत सुन्दर छपी है। जिल्द भी बड़ी अच्छी है। भारतीय ज्योतिष के इतिहास में अनेक चित्र भी हैं। कोई भी व्यवसायी प्रकाशक इतने कम मूल्य पर पुस्तकें प्रकाशित नहीं कर सकता, क्योंकि लागत से कम मूल्य पर ये पुस्तकें बिक रही हैं। आशा है जनता इन्हें सुगमता से खरीद सकेगी और इस प्रकार लोकप्रिय विज्ञान का प्रचार जनता में बढ़ेगा। इसी प्रकार जामिया मिलिया, देहली से, केन्द्रीय सरकार की सहायता से, ज्ञान सरोवर नाम की पुस्तक छपी है जिसमें वैज्ञानिक विषयों पर अत्यन्त सरल विवेचन है। यह पुस्तक प्रौढ़ नवशिक्षितों के लिये है। बड़े आकार की, मोटे कागज पर बहुत सुन्दर छपी हुई, सचित्र और सजिल्द, ३०४ पृष्ठों की यह पुस्तक कुल दो रुपये में बिकती है। अभी केवल प्रथम खंड ही प्रकाशित हुआ है। अन्य खंडों के छापने की तैयारी हो रही है। अवश्य ही जनता में ऐसी पुस्तकों से ज्ञान का प्रचार अच्छा होगा।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित डाक्टर दयास्वरूप की लिखी धातु विज्ञान नामक पुस्तक भी उल्लेखनीय है। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् ने जो प्रायः सरकारी ही संस्था है, कई पुस्तकें विज्ञान पर प्रकाशित की है, यहाँ की पुस्तकों का भी मूल्य अपेक्षाकृत कम है। डाक्टर सत्यप्रकाश की लिखी वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा की पुस्तक 'रबर' और डाक्टर गोरख प्रसाद की पुस्तक 'नीहारिकायें' यहीं से छपी है।

व्यवसायी प्रकाशकों के लिये वैज्ञानिक पुस्तकों का छापना कठिन होता है। ऐसी पुस्तकों की बिक्री कम होती है और चित्र आदि के कारण खर्च अधिक बैठता है। इसलिये पुस्तक का मूल्य अधिक रखना पड़ता है, जिससे बिक्री और भी कम हो जाती है। तो भी ऐसे प्रकाशकों ने गत दस वर्ष में कई एक अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सब पुस्तकों का नाम गिनाना कठिन है और रोचक भी नहीं होगा। कुछ जो मेरे देखने में आयी है, नीचे गिनायी जा रही हैं।

लखनऊ से एक बड़ी सी पुस्तक 'हिन्दी में विश्व भारती खंड खंड करके प्रकाशित हो रही थी। प्रकाशक इसे ५० खंडों में पूरा करने वाला था। काम आधा भी नहीं हो पाया था जब आर्थिक कठिनाई के कारण इसका प्रकाशन बन्द हो गया। सुनते हैं सरकार ने इसके प्रकाशक को कुछ सहायता दी है और इसका प्रकाशन फिर से शीघ्र ही आरम्भ होने वाला है। इस पुस्तक में वैज्ञानिक विषयों का सरल और बहुत से चित्रों के साथ लोकप्रिय विवेचन है।

सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, बच्चों के लिये पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर रहा है जिनमें से तीन निकल चुकी हैं, प्रकाश पर, ध्वनि पर, और ज्योतिष पर। इन में भी चित्र बहुत से हैं। देश सेवा मंडल, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित मोतीलाल सेठ की पुस्तक कृषि हानिकारक कीट पतंग, अशोक जी प्रकाशन, लखनऊ द्वारा,

प्रकाशित हरि भगवान की पुस्तक दैनिक जीवन में रसायन शास्त्रों और शील रेडियो एंड एलेक्ट्रिक एम्पोरियम, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित काला चाँद शील की पुस्तक 'बेतार विज्ञान' भी उल्लेखनीय है।

इन सब से प्रत्यक्ष है कि वैज्ञानिक साहित्य के क्षेत्र में उन्नति नगण्य नहीं है। केन्द्रीय सरकार ने नागरी प्रचारिणी सभा को साढ़े ६ लाख रुपया एक विश्वकोश के लिये दिया है, जो वास्तव में एक बहुत उपयोगी ग्रन्थ होगा। इसी महीने दिल्ली में एक नेशनल बुक ट्रस्ट खुला है जो एक सरकारी संस्था है। इसका उद्देश्य होगा अच्छी और सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन। अवश्य ही यहाँ से वैज्ञानिक पुस्तकें भी छपेंगी। इसलिये हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

—आकाश वाणी इलाहाबाद के सौजन्य से

डैनियल बर्नूली दो घटनाओं के बारे में बताया करता था जिन्होंने उसे अपने जीवन में मिले और सब सम्मान से कहीं अधिक आनन्द दिया था। वह एक बार एक अनजान किन्तु विद्वान व्यक्ति के साथ यात्रा कर रहा था और उसकी बातचीत से प्रभावित होकर अनजान ने उससे उसका नाम पूछा।

"मेरा नाम डैनियल बर्नूली है" उसने अत्यधिक नम्रता से कहा।

"और मेरा नाम आइज़ैक न्यूटन है।"

एक और समय वह प्रसिद्ध गणितज्ञ क्योनिश के साथ भोजन कर रहा था। क्यूनिश गर्व पूर्वक उसे बता रहा था कि किस प्रकार एक कठिन समस्या का कितनी कठिनाई के बाद उसे हल मिला था। और, जब खाने के बाद काफी आई तो उस समस्या का हल, जो बर्नूली ने भोजन करते समय ही निकाला था, क्योनिश को दिया जो स्वयं क्योनिश के हल से कहीं असाधारण था।

चार्ल्स हटन यानोस बोल्याई, जब वह एक घुड़सवार दस्ते का सदस्य था किसी बात पर तेरह अन्य सदस्यों से क्रोधित हो गया और उसने उन सबकी चुनौती इस शर्त पर स्वीकार कर ली कि प्रत्येक से लड़ने के बाद उसे अपनी वाँयलिन बजाने का समय दिया जायगा। बोल्याई उन तेरहों से लड़ा और विजयी रहा—उसके सारे प्रतिद्वन्दी वहीं खेत रहे।

- जी० बी० हाल्स्टेड

चौथा आयाम

डा० ब्रज मोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

(१)

ज्यामिति के विद्यार्थी जानते हैं कि बिन्दु में कोई आयाम नहीं होता। बिन्दु केवल स्थिति का निर्देशक है। बिन्दु के चलने से रेखा बनती है। रेखा में एक आयाम होता है—लम्बाई। रेखा बिन्दुओं से बनी होती है और रेखा का कोई परिच्छेद एक बिन्दु होता है।

मान लीजिये कि एक सरल रेखा अपनी दिशा की किसी लम्बवत् दिशा में चलती है और सदैव अपने समानान्तर रहती है। तो वह एक समतल सर्जन करेगी समतल रेखाओं से बनते हैं और समतल का कोई परिच्छेद एक रेखा होता है। समतल का समतल परिच्छेद एक ऋजु रेखा होती है।

जब कोई समतल अपनी लम्बवत् दिशा में चलता है और सदैव अपने समान्तर रहता है तो एक ठोस का सर्जन करता है। किसी ठोस का अनुप्रस्थ परिच्छेद एक समतल होता है और ठोस समतलों से ही बनता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्यामितीय आकृतियाँ तीन प्रकार की होती है : १—रेखायें २—समतल आकृतियाँ और ३—ठोस आकृतियाँ। रेखा में अनन्त बिन्दु होते हैं, समतल में अनन्त रेखायें होती है और ठोस में अनन्त समतल होते हैं। इस प्रसंग में हम ऋजु रेखाओं और ऋजुरेखाकृतियों पर ही विचार करेंगे।

मान लीजिये कि हम एक परिमित ऋजु रेखा लेते हैं जिसकी लम्बाई क है। अब इस रेखा को अपने समान्तर अपनी किसी लम्बवत् दिशा में चलने दीजिये। जब यह रेखा अपनी लम्बाई के बराबर चल चुकेगी तो एक वर्ग का सर्जन करेगी। इस वर्ग का क्षेत्रफल क^{२} होगा।

मान लीजिये की यह वर्ग इस कागज के समलत में स्थित है और अपने समान्तर कागज के समतल की लम्बवत दिशा में चलता है। जब यह वर्ग अपनी भुजा की लम्बाई के बराबर चल चुकेगा तो एक घन का सर्जन करेगा। इस घन का आयतन होगा क^{3}।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह घन भी अपनी लम्बवत दिशा में चल सकता है। यदि चल सके तो जब यह अपनी प्रत्येक भुजा की लम्बाई उत्तरित कर चुकेगा तो एक पराघन (Hyper cube) का सर्जन करेगा। उक्त पराठोस (Hyper-solid) का पराआयतन (Hyper Volume) क^{४} होगा।

किसी ऋजु रेखा के, अपने लम्बवत चलने में कोई कठिनाई नहीं है। किसी भी ऋजु रेखा के किसी भी बिन्दु पर हम अनन्त लम्ब खींच सकते हैं। यदि उनमें से किसी भी लम्ब की दिशा में रेखा चले तो एक वर्ग का सर्जन कर देगी।

किसी वर्ग के अपने लम्बवत् चलने में भी कोई कठिनाई नहीं है। वर्ग दो परस्पर लम्ब ऋजु रेखाओं से निर्मित होता है और हम एक तीसरी ऋजु रेखा खींच सकते हैं जो उन दोनों रेखाओं पर लम्ब हो। इस प्रकार घन की सृष्टि में हमें तीन परस्पर ऋजु रेखायें मिल जाती हैं।

अब यदि घन अपनी लम्बवत् दिशा में चले तो उक्त दिशा का क्या अर्थ होगा। क्या हम अवकाश (Space) में कोई ऐसी ऋजु रेखा खींच सकते हैं जो तीन परस्पर लम्ब रेखाओं पर लम्ब हो ? या यों कहिये कि क्या हम अवकाश में चार परस्पर ऋजु रेखायें खींच सकते हैं ?

रूस में एक वैज्ञानिक हुआ है मारोंसाफ। उसने चौथे आयाम और सम्बद्ध विषयों पर कई पुस्तकें लिखी

है। वह २३ वर्ष कारागार में रहा। एक बार जब वह लूसेलबर्ग के किले में कैद था तब उसने अपने साथियों को एक पत्र लिखा था जो बहुत प्रसिद्ध हो गया है।* हम उसके कुछ विचार यहाँ उद्धृत करते हैं।

मान लीजिये कि एक झील है जिसके तल पर द्वयायाम प्राणी (Two dimensional Creatures) निवास करते हैं। ऐसे प्राणियों के लिये संसार झील के तल तक ही सीमित होगा। उनके संसार में लम्बाई और चौड़ाई होगी। मोटाई अथवा गहराई नहीं होगी। उन्हें आगे पीछे और दाहिने बायें का ज्ञान होगा। किन्तु ऊँचाई और नीचाई का भान नहीं होगा। मान लीजिये कि हम झील के किनारे चल रहे हैं। हमारे एक ओर झील है और दूसरी ओर सूर्य, तो झील के तल पर हमारी जो छायायें पड़ेंगी वह ऐसे प्राणियों को निरूपित करेंगी। अब मान लीजिये कि हमारे जैसा कोई त्रयायाम (Three Dimensional Creature) झील में स्नान करने जाता है और कमर बराबर पानी में खड़ा हो जाता है। ऐसा प्राणी झील के निवासियों को अपने पूरे आकार में दिखाई नहीं पड़ेगा। उसके बदले केवल एक दीर्घ वृत्त दिखाई पड़ेगा। यदि उक्त प्राणी चलकर उथले जल में पहुँच जाता हैं जहाँ उसकी केवल टांगें भींगती है तो झील के निवासियों को केवल दो वृत्त दिखाई पड़ेंगे। वे लोग किसी भी दशा में उस प्राणी का समूचा शरीर नहीं देख सकते। किसी भी क्षण उसके शरीर का कोई समतल परिच्छेद ही उन्हें दिखाई पड़ेगा। जब वह देखेंगे कि एक दीर्घ वृत्त कभी घटता है, कभी बढ़ता है और कभी दो वृत्तों में परिणत हो जाता है तब वह उसे ईश्वरीय चमत्कार समझेंगे। किन्तु हम जानते हैं कि उक्त परिवृत्ति (Phenomenon) में कोई चमत्कार नहीं है। वास्तविक प्राणी त्रयायाम है जिसमें भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में परिच्छेद दिखाई पड़ते हैं जो चमत्कार का आभास देते हैं।

किन्तु क्या इसी प्रकार की परिवृत्तियाँ हम अपने संसार में नहीं देखते। हम देखते हैं कि बच्चा छोटे आकार का होता है और बढ़ते बढ़ते २५ वर्ष का युवक बन जाता है। एक बीज में से पौधा प्रस्फुटित होता है और कुछ वर्षों में एक बृहदाकार वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। कोहड़े का फल एक छोटी गोली से दस पन्द्रह सेर का बृहत काशीफल बन जाता है। जब हम ऐसी घटनाओं पर मनन करते हैं तो यह विचार आता है कि हम लोग भी तो कहीं चतुरायाम प्राणियों (Four-Dimensional Creatures) में परिच्छेद मात्र ही नहीं है। यदि वास्तव में ऐसा है तो जितने प्राणी और पदार्थ हम संसार में देखते है, सब के सब वास्तविक पदार्थों की छाया मात्र हैं।

कागज के समतल पर एक वृत्त बनाइये और उसके अन्दर एक द्वायाम प्राणी को छोड़ दीजिये। इस प्राणी को इस वृत के अन्दर का थोड़ा सा ही क्षेत्र दिखाई देगा और बाहर के क्षेत्र का कोई बिन्दु दिखाई नहीं देगा। अन्दर का कितना क्षेत्र दिखाई देगा यह उसकी दृगशक्ति पर निर्भर है। किन्तु हमारे जैसा त्रयायाम प्राणी वृत्त के समस्त बिन्दुओं को देख सकता है। यदि कोई द्वायायाम प्राणी वृत्त के बाहर स्थित हो तो वृत्त के अन्दर की कोई वस्तु नहीं देख सकता। किन्तु एक त्रयायाम प्राणी वृत्त के अन्दर अथवा बाहर कहीं पर भी खड़ा होकर, वृत के अन्दर और बाहर के, दोनों क्षेत्रों को देख सकता है। इसी प्रकार यदि हमारे जैसे त्रयायाम प्राणी किसी गोले में बन्द हों तो गोले के बाहर का कोई बिन्दु हमें दिखाई नहीं देगा। और यदि हम गोले के बाहर स्थित हों तो हम गोले के अन्दर का कोई भाग नहीं देख सकते। किन्तु एक चतुरायाम प्राणी गोले के अन्दर के समस्त बिन्दुओं को गोले के बाहर से भी देख सकता है। एक त्रयायाम प्राणी बिना वृत्त की परिधि को तोड़े वृत्त के बाहर से अन्दर जा सकता है और अन्दर से बाहर जा सकता है। इसी प्रकार एक चतुरायाम प्राणी बिना गोले के बाहरी तल को तोड़े गोले के बाहर से अन्दर जा सकता है और अन्दर से बाहर आ सकता है।

---

*देखिये—P. D. Ouspensky : A new model of the Universe; Ch. II - The Fourth Dimension. P. 73.

वृत्त के स्थान पर हम एक आयत ले सकते हैं और गोले के बदले एक आयताकार ठोस। जैसे कि हमारा कमरा। एक चतुरायाम प्राणी बिना हमारे कमरे की दीवारें तोड़ें कमरे के बाहर से अन्दर आ सकता है और अन्दर से बाहर जा सकता है। या यों कहिये कि कमरे के सब द्वार, झरोखे और खिड़कियां बन्द हों फिर भी चतुरायाम प्राणी के आवागमन में कोई बाधा नहीं पड़ती। किसी चतुरायाम प्राणी के लिये कमरे की दीवारों का होना न होना सब बराबर है।

प्रथम दृश्य में तो यह बात असम्भव जान पड़ती है किन्तु इस बात पर तनिक गहरी दृष्टि से विचार कीजिये। क्या संसार में ऐसे पदार्थ अथवा शक्तियाँ नहीं है जो ठोस वस्तुओं को पार कर जायें। क्या सूर्य की रश्मियाँ ठोस शीशे को पार नहीं कर जाती? कागज के एक ओर एक चुम्बक पत्थर रखिये और दूसरी ओर लोहे की एक कील। चुम्बक लोहे को खींच लेगा। जिसका अर्थ यह हुआ कि चुम्बक शक्ति कागज को भेदकर निकल जाती है। रंजित रश्मियाँ शरीर के बाहरी कवच की उपेक्षा करके शरीर के आन्तरिक भागों का चित्र खींच लेती है। इसके अतिरिक्त आजकल पश्चिमी देशों में एक नये प्रकार की फोटोग्राफी चल निकली है जिसे आत्मिकीय (Psychic) फोटोग्राफी कहते हैं। इसके कैमरे बहुत सूक्ष्मग्राही होते हैं जिन्हें आत्मिकीय कैमरे कहते हैं। कुछ कैमरे तो ऐसे होते हैं जिनसे किसी कमरे के बाहर से कमरे के अन्दर की वस्तुओं का चित्र खींच लिया जाता है। कुछ कैमरे दूसरे प्रकार केहोते हैं जिनसे सूक्ष्म प्राणियों का फोटो लिया जाता है। बहुत सी ऐसी घटनायें हुई हैं कि दो व्यक्तियों का फोटो लिया गया है और फोटो में एक तीसरे व्यक्ति की छाया भी दिखाई पड़ती है जो फोटो लेते समय न तो फोटोग्राफर को दिखाई पड़ता था न उन दोनों व्यक्तियों को। ऐसी घटनायें यदि लाख दो लाख में एक दो हों तो उन्हें दृष्टिभ्रम कहा जा सकता है। किन्तु जब इस प्रकार की परिवृत्तियाँ आये दिनों मिलती रहती हों तो उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

एक बार एक घटना इस प्रकार की पढ़ी थी कि एक व्यक्ति सड़क पर जा रहा था। उसे एक फोटोग्राफर ने देखा तो आकर कहा कि "तुरन्त अमुक फोटोग्राफर के पास चले जाओ और मेरे कहने से अपना एक फोटो खिंचवा लो। जल्दी करो, उक्त व्यक्ति दौड़ा हुआ उल्लिखित फोटोग्राफर के पास गया और कहा कि अमुक व्यक्ति ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। "फोटोग्राफर बोला" मैं समझ गया तनिक बैठो, मैं तुम्हारा फोटो खींचता हूँ। जब फोटो तैयार हुआ तो उसमें क्या दिखाई दिया कि एक व्यक्ति जिसका फोटो खींचा गया था और एक महिला उसके पीछे खड़ी हुई है जो उसके गले में हार डाल रही है। उक्त महिला को वह व्यक्ति नहीं देख सकता था। पहिला फोटोग्राफर उसे देख सकता था किन्तु उसके पास आत्मिकीय कैमरा नहीं था।

आत्मिकीय घटनाओं के वृत्तान्तों में एक कथा इस प्रकार की पढ़ी थी कि एक मकान बहुत दिनों से खाली पड़ा हुआ था। उसमें बसते हुये लोग डरते थे। एक विद्वान ने निश्चय किया कि वह उस मकान में रहेगा और यदि उसमें कोई भेद है तो उसका पता चलायेगा। पहली रात वह मकान के सबसे ऊपर के कमरे में जाकर बैठ गया। दरवाजा बन्द कर लिया और दरवाजे के सामने एक कुर्सी डाल ली। मध्य रात्रि के पश्चात् उसी बन्द दरवाजे में से एक स्त्री की छाया प्रकट हुई और उक्त विद्वान को अपनी ओर बुलाने लगी। उन विद्वान ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई तो वह छाया लौट गई।

अगली रात विद्वान ने उक्त दरवाजा खुला छोड़ दिया और उस पर एक बहुत ही पतले प्रकार की झिलमिली टांग दी। वह जानना चाहता था कि उक्त स्त्री का शरीर झिलमिली को तोड़कर अन्दर आयेगा या झिलमिली पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। स्त्री आई और पहली रात्रि की भाँति ही लौट गई। झिलमिली के तार ज्यों के त्यों बने रहे। इसका अर्थ यह निकला कि उक्त महिला के शरीर के तन्तु झिलमिली के तार से भी सूक्ष्म थे।

तीसरी रात विद्वान ने दरवाजे के ठीक सामने एक कैमरा लगा दिया। स्त्री आई लेकिन कैमरे में भी उसका फोटो नहीं उतरा। कदाचित इसका कारण यह रहा

होगा कि उस समय तक आत्मिकीय कैमरों का आविष्कार नहीं हुआ था।

घटना का अन्त इस प्रकार हुआ कि अन्तिम दिन विद्वान उस छाया के पीछे पीछे हो लिया। छाया उसे कमरों में घुमाती हुई मकान के एक तहखाने में ले गई जिसमें एक स्त्री के शव का ढाँचा पड़ा हुआ था। छाया ने संकेत से यह बताया कि वह चाहती थी कि उसका शव कब्रिस्तान में गाड़ दिया जाय। अगले दिन खोज करने पर पता चला कि कुछ समय पूर्व उस मकान में एक स्त्री की हत्या हुई थी। विद्वान ने शव को निकलवा कर कब्रिस्तान में गड़वा दिया। तत्पश्चात् उस ढंग की कोई घटना नहीं हुई।

हमको अपने जीवन में भी चतुर्थायाम का कभी कभी आभास मिलता है। कालेज की कक्षा में किसी विद्यार्थी से पूछिये कि तुम्हारे छात्रालय के कमरे में ज्यामिति की पुस्तक किधर रखी हुई है। वह कहेगा मेरे कमरे के अन्दर दाहिनी ओर एक मेज है। मेज पर लकड़ी की एक छोटी सी अल्मारी है जिसके ऊपर के खाने में पुस्तक रखी हुई है। विद्यार्थी अपने कमरे से मील दो मील की दूरी पर बैठा हुआ है किन्तु उसे कमरे के अन्दर की वस्तुयें इस प्रकार दिखाई दे रही हैं मानो उसकी आँखों के सामने हों।

सन्देश वाहक कबूतर मीलों दूर संदेश पहुँचा देते हैं। उन्हें मीलों दूर से मन्तव्य स्थान का आभास रहता है। चिड़ियाँ अपने घोंसले से मीलों दूर उड़ जाती है। यदि उनसे पूछा जाय कि उनका घोंसला किस ओर है तो वे इस प्रश्न का कोई तर्क युक्त उत्तर नहीं दे सकेगी। किन्तु उनकी सहज बुद्धि उन्हें बता देती है कि किस ओर उड़ने से घोंसले पर पहुँच जायेंगी।

जब रामचन्द्र जी बानरों सहित दक्षिण में समुद्र तट पर पहुँचे थे जब उन्होंने जटायु के भाई सम्पाती से सीता जी का पता पूछा था। सम्पाती ने थोड़ी देर ध्यान मग्न होकर कहा मैं देख रहा हूँ सामने रावण की लंका है। लंका में अशोक वाटिका के अन्दर सीता जी विराज मान है। इस समय भी वे वृक्ष के नीचे चिन्तामग्न बैठी दिखाई दे रही हैं।

स्वप्न में भी हमें कभी कभी चतुर्थायाम का आभास मिलता है। कभी हम देखते हैं कि हमें किसी कमरे के अन्दर और बाहर की सभी वस्तुयें स्पष्ट दिखाई दे रही है। कभी हम देखते हैं कि हम एक मकान के अन्दर भी हैं और उससे बहुत दूर किसी नदी के किनारे पर भी हैं। कभी हमदेखते हैं कि हमारी मृत्यु हो गई है किन्तु तिस पर भी हम हँसते हैं, बोलते हैं, भोजन करते हैं।

कुम्हार जब बर्तन बनाने बैठता है तब चाक चलाने से पहले बर्तन का चित्र अपनी आँखों में खींच लेता है। इंजीनियर कोई भवन अथवा पुल बनाने के पहले उसकी आकृति अपने मस्तिष्क में बना लेता है। एक दार्शनिक को अंडे में बच्चा, नवजात शिशु की आकृति में सम्पूर्ण मनुष्य और बीज में पूरा वृक्ष दिखाई देता है। इसीप्रकार योगियों को द्रव्य के प्रत्येक कण में सारा संसार, गागर में सागर और आत्मा में परमात्मा दिखाई पड़ता है। यदि हम सब उसी दृष्टि से देखने लगे तो हमें छोर में अछोर, सीमा में असीम, और शान्त में अनन्त दिखाई पड़ेगा।

क्रमशः

———

भारतीय जड़ी बूटियाँ

डा० आर० एन० चौधरी

भारत में विशेषतः, हिमालय की विस्तृत पर्वत श्रेणियों में बहुत-सी जड़ी-बूटियाँ पायी जाती हैं। इस देश के लोग बहुत प्राचीन काल से इन जड़ी-बूटियों का दवा के रूप में उपयोग करते आये हैं। पुराने जमाने में लोग दमे के रोग में धतूरे को चिलम में रखकर पीते थे और पक्षाघात या अजीर्ण में कुचले का तथा विरेचन के लिए करोटन के तेल का इस्तेमाल करते थे। लेकिन विदेशियों के प्रभाव से इन जड़ी-बूटियों का महत्व धीरे-धीरे घटता गया। अब तो बहुत-सी गुणकारी जड़ी-बूटियों का महत्व लोग बिल्कुल भूल चुके हैं।

वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से ही भारतीय जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करने और उनको उपयोग में लाने के प्रयत्न होते रहे हैं। इस काम में कर्नल रामनाथ चोपड़ा अग्रणी रहे हैं। कलकत्ते के ट्रापिकल स्कूल आफ मेडिसिन की स्थापना के समय से ही वे वहाँ अनुसंधान करते रहे हैं। भारतीय चिकित्सा गवेषणा परिषद का नाम पहले भारतीय गवेषणा कोष संघ था। इस संस्था ने १६२४ में भारतीय जड़ी-बूटियों का अध्ययन आरम्भ किया और इस काम के लिए अनुदान दिया। यह काम वहाँ अभी तक जारी है। हैफकिन इंस्टिट्यूट, बम्बई, सेंट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टिट्यूट लखनऊ, ड्रग रिसर्च लैबोरेटरी, कश्मीर तथा अन्य गवेषणा संस्थाओं ने भी इस दिशा में काफी काम किया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद ने भी जड़ी-बूटियों की गवेषणा का काम आरम्भ किया है। विदेशों में भी कुछ प्रयोगशालाओं में यह काम हो रहा है।

भारतीय चिकित्सा गवेषणा परिषद ने हाल में भारतीय जड़ी-बूटियों पर एक पुस्तक प्रकाशित की है। इसके अनुसार इस देश में लगभग ११,००० प्रकार की जड़ी-बूटियाँ हैं, जिनमें से लगभग २,००० में औषधि-गुण हैं। ब्रिटिश निघण्टु (फरमाकोपिया) में जिन जड़ी-बूटियों के नाम गिनाये गये हैं, उनमें से ७५ प्रतिशत भारत में पायी जाती हैं। इनमें कुछ ऐसी प्रयोग-सिद्ध जड़ी-बूटियाँ हैं, जिनका उपयोग पीढ़ियों से होता आया है। कुछ ऐसी हैं जो दूसरे द्रव्यों के साथ काम में लाई जाती हैं। कभी-कभी इन द्रव्यों के कारण इन जड़ी-बूटियों का प्रभाव बढ़ जाता है। कुछ ऐसी भी जड़ी-बूटियाँ हैं, जिनमें वे गुण नहीं पाये गये, जो उनमें बताये जाते हैं, बल्कि और ही गुण पाये गये हैं, जो अन्यथा उपयोगी हैं। अधिकतर जड़ी-बूटियाँ ऐसी हैं जिन्हें उपयोगी पाया गया है और वे भारतीय निघण्टु में शामिल कर ली गयी हैं। यह ग्रंथ पहले-पहल भारत सरकार ने १६५५ में प्रकाशित किया था। खांसी के लिए वासक, कब्ज के लिए ईसबगोल और पका बेल, बच्चों के जिगर के रोगों के लिए कालमेघ आदि दवाएं बहुत प्रचलित हैं।

इस देश की तथा विदेशों की जड़ी-बूटियाँ उगाने पर भी ध्यान दिया गया है। इस दिशा में पश्चिम बंगाल सरकार की जड़ी-बूटी समिति ने सराहनीय कार्य किया है। इस समिति के अध्यक्ष पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री, डा० बी० सी० राय हैं। जड़ी-बूटियाँ दार्जिलिंग में रोंगों नामक स्थान में उगाई जाती है। रसायन-प्रक्रिया सम्बन्धी कार्य स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन के रसायन-विभाग में किये जाते हैं। यहाँ काफी प्रयत्न के बाद कुछ विदेशी जड़ी-बूटियाँ उगाने में सफलता मिली है। इनमें इपेकाक मुख्य है। एक अफ्रीकी जड़ी को, जिसको

कपूर की मात्रा अधिक रहने से कपूर-तुलसी भी कहा जा सकता है, उगाने में भी सफलता मिली है।

गवेषकों का काम जड़ी-बूटियों के औषधीय गुण पता लगाने और उनके उगाने तक ही सीमित नहीं है। वे यह भी पता लगाते हैं कि देश में उगने वाले अन्य प्रकार के किस पौधे का किस रोग की दवा के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

जो जड़ी-बूटियाँ उपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं, उनका प्रचार भी अत्यावश्यक है। कलकत्ता के कुछ पुराने चिकित्सकों ने मस्तिष्क के रोगों में सर्पगंधा को बहुत उपयोगी पाया है। रोगियों पर प्रयोग करने से पता चला है कि यह दोनों प्रकार के रक्तचाप को कम करती है। कुछ वर्षों से विदेशी चिकित्सकों का भी ध्यान इस ओर गया है।

सिन्कोना दक्षिण अमेरिका से भारत आया। पश्चिम बंगाल के मंगपू और मद्रास के नद्रवत्तम में इसकी खेती होती है। इससे बनने वाला कुनैन मलेरिया की अद्वितीय औषधि है।

पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री की धारणा है कि जहाँ जो रोग होता है, वहाँ खोज करने से उसकी दवा भी मिल सकती है। यह बहुत खुशी की बात है कि सरकार जड़ी-बूटी सम्बन्धी गवेषणा में सहयोग दे रही है। भारत जैसे बड़े देश में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है और यहाँ बहुत प्रकार की जड़ी-बूटियाँ उगाई जा सकती हैं। इस काम में सभी लोगों के सहयोग की आशा की जा सकती है।

अब तक देश के रसायन तथा औषधि उद्योग में बहुत-सी जड़ी-बूटियों की खोज होती रही है, लेकिन इस खोज को जारी रखने की जरूरत है। १९५६ में विदेशी विशेषज्ञों का एक दल भारत आया था। इन विशेषज्ञों ने कहा था कि हमें जड़ी-बूटियों की संख्या तब तक बढ़ाते जाना चाहिए जब तक देश की अधिकांश आवश्यकताएँ इनसे पूरी न हो जाएँ। इससे लोगों को सिर्फ रोजगार ही नहीं मिलेगा, बल्कि विदेशी-मुद्रा की भी बचत होगी।

—आकाशवाणी के सौजन्य से

वोल्फगांग बोल्याई बहुत ही नम्र व्यक्ति था। उसने कहा था कि उसकी कब्र पर कोई स्मारक न बनवाया जाय—केवल एक सेब का पेड़ लगवाया जाय, उन तीन सेबों की याद में : दो (Eue) और (Paris) के जिनके कारण पृथ्वी से नर्क बना और तीसरा न्यूटन का जिसने फिर से पृथ्वी को सितारों की ऊँचाई तक पहुँचा दिया।

—एफ० कैज़ोरी

सूर्य और तारागणों में शक्ति स्रोत परमाणु शक्ति

कुमारी सरोज वैश्य, बी० एस-सी०, उदयपुर

तारागण क्षीण आभा के साथ टिमटिमाते हैं लेकिन सूर्य की प्रचन्ड अग्नि लीला प्रत्यक्ष रोज ही देखते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि सूर्य प्रचन्ड ताप कहाँ से पाता रहा है? वैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न तरह से इस क्रिया को व्यक्त करने की कोशिश की है।

कार्बन आक्सीजन उत्पत्ति

जब विज्ञान की नई खोज से यह साबित हुआ कि अग्नि क्रिया में कार्बन परमाणु का आक्सीजन से रासायनिक संयोग होता है तो वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया कि सूर्य की अग्नि क्रिया इस क्रिया का ही रूप हो सकता है। इस कल्पना ने वैज्ञानिक उपपत्ति का रूप धारण किया लेकिन कोयले के आधार पर बनी हुई आग युगों तक कैसे स्थिर रह सकती थी। वैज्ञानिकों ने गणना द्वारा मालूम किया कि सूर्य के प्रबल ताप का कारण यदि कार्बन का जलना ही है तो सूर्य की आयु कुछ सहस्त्र वर्षों की ही होना चाहिए। इतनी थोड़ी आयु तो सभ्य मानव के इतिहास के काल में ही समाप्त हो जाती इस अवधि में सूर्य को इस ताप के उत्पन्न करने के फलस्वरूप जल कर भस्म हो जाना चाहिए था।

संकुचन उपपत्ति

जर्मन वैज्ञानिक हेल्स होल्टज और ब्रिटिश वैज्ञानिक लार्ड केल्विन ने संकुचन सिद्धान्त (कान्ट्रक्शन थ्योरी) के सहारे सूर्य की अग्नि क्रिया को व्यक्त किया। उन्होंने अनुमान लगाया कि सूर्य पहले बहुत बड़े आकार का रहा होगा फिर उसमें शनैः शनैः संकुचन होता गया। इसलिए उसमें ताप का संचार सदा ही प्रज्वलित होता रहा। गणितज्ञों ने फिर गणना की कि इस आधार पर सूर्य की आयु दो करोड़ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती भूगर्भ विज्ञान तथा प्रस्तर कंकाल अवशेष विज्ञान तो पृथ्वी पर जीवों का उदय आज से अरबों वर्ष पूर्व प्रमाणित करते हैं फिर सूर्य की आयु इतनी कम कैसे हो सकती थी।

रेडियो ऐक्टिव उपपत्ति

जब ये दोनों अनुमान गलत साबित हुए तो वैज्ञानिकों ने आगे खोज करनी शुरू की। इसी बीच (१८९६) एच बैकेरल ने रेडियो ऐक्टिव क्रिया की खोज की। उस समय यूरेनियम धातु के क्षुद्र कण (परमाणु) के अंतकरण से ताप और प्रकाश स्फुटित हो रहा था। वैज्ञानिकों के द्वारा यह साबित हो चुका था कि परमाणु एक क्षुद्र आकार का ठोस कण है। पृथ्वी पर तो परमाणु के नाभिक (Nucleus) को अतिरिक्त शक्ति को देखने का मौका मिला लेकिन उस समय यह कोई नहीं कह सकता था कि इस परमाणु शक्ति का ही रूप तारामंडल और सूर्य लोक में ही है। वैज्ञानिकों ने सूर्य लोक और तारागणों की ताप शक्ति का स्रोत इस परमाणु-शक्ति के होने की सम्भावना अपने हृदय में बिठाई। इसके ठीक ३० वर्ष पश्चात् ही वैज्ञानिकों ने इस सम्भावित कल्पना को सिद्धान्त का रूप दिया। विज्ञान जगत ने अपने वैज्ञानिक उपकरणों और गणनाओं से सिद्ध किया कि

परमाणुवीय शक्ति की लीला ही तारागणों की ज्योति तथा सूर्य के प्रकाश व उष्मा का कारण है।

नई खोज

लार्ड रदरफार्ड ने तत्वों को एक दूसरे में बदलने में सफलता प्राप्त की। इस खोज की सहायता से ब्रिटेन के ज्योतिर्विद (एसट्रोनोमर) सर आर्थर एडिंग्टन, भौतिक विज्ञानविद आर. एटकिंसन और जर्मनी के भौतिक विज्ञान वेत्ता एफ० होटमर्न्स ने सूर्य या तारागण के अन्तकरण की स्थित का शोध कार्य आरम्भ किया। एटकिंसन और होटमर्न्स के कार्य से सन् १९२९ में यह ज्ञात हुआ कि तारागणों में उच्च ताप और भारी दबाव के कारण उनके हल्के तत्वों के केन्द्रकों में बड़े वेग से क्रिया होती है, जिसके कारण ताप और प्रकाश उत्पन्न होता है।

सूर्य के वाह्य तल पर ६००० सेन्टीग्रेड तापमान होने का प्रमाण पाया जाता है। स्थिति, दबाव, गर्मी आदि के अध्ययन से कहा जा सकता है कि ताप के क्रमशः बढ़ते रहने के कारण सूर्य के मध्य केन्द्र पर हमें दो करोड़ अंश सेन्टीग्रेड तापमान होना ज्ञात होता है और सर्य के बृहदाकार होने के कारण दबाव भी हमारे एक अरब साठ लाख वायुमंडल के दबाव के बराबर होगा। सूर्य में सहस्र गुना अधिक चमक वाले के केन्द्रीय भाग का तापमान ३ करोड़ से० ग्रे० होने का अनुमान है और धुँधले दिखाई पड़ने वाले तारे के केन्द्र भाग में भी १½ करोड़ से० तापमान होने का अनुमान है। इससे ज्ञात होता हैं कि सब आकाशीय पिंडों के केन्द्र भाग लगभग एक समान प्रचन्ड तापमान पर हो सकते हैं। इतनी भारी गर्मी से क्या परिणाम होते होंगे, इसकी खोज भी की गई है।

रहस्य

सूर्य और तारागणों के प्रचन्ड ताप का रहस्य परमाणुवीय शक्ति है। आधुनिक खोजों से यह ज्ञात हो सका है कि सम्पूर्ण सूर्य पिंड का ९८½ प्रतिशत हाइड्रोजन तत्व ही है और शेष अंग में ही अन्य तत्व हैं। हाइड्रोजन का नाभिक एक धनाणु वाला सृष्टि का सबसे सरल रूप का तत्व है और उसी नाभिक के भिन्न भिन्न संयोग से अन्य तत्वों की रचना हुई है। अधिक मात्रा में हाइड्रोजन होने का फल हम सूर्य की अग्नि लीला में हाईड्रोजन का भाग लेने में देख सकते हैं।

गणना से मालूम किया गया है कि यदि चार हाईड्रोजन परमाणु मिलकर एक हीलियम नाभिक (२ प्रोटोन और २ न्यूट्रान) बनाते हैं तो एक औंस हाईड्रोजन से १९००० अश्व शक्ति उत्पन्न हो सकेगी जो ३०० दिनों तक निकलती रहेगी। इस क्रिया में एक प्रतिशत मात्रा लोप हो जाती है और यही मात्रा शक्ति में बदल जाती है। इस प्रकार प्रति सेकिन्ड ४० लाख टन मात्रा सूर्य में लोप होती रहती है और विकराल शक्ति में बदलती रहती है।

सूर्य में हीलियम के बनने की क्रिया को निम्न रूप से समझा जा सकता है:—

इस वाद (Theory) को १९३९ में बीथे तथा वीत्सैकर ने दिया था। कार्बन परमाणु के नाभिक पर हाईड्रोजन के नाभिक प्रोटान वेग पूर्ण प्रहार करते हैं। इस क्रिया में कार्बन नाभिक से एक हाईड्रोजन नाभिक का संयोग होता है और १३ केन्द्रकाणु (७ प्रोटान और ६ न्यूट्रान) का अस्थाई (Unstable) परमाणु बन जाता है जो पोजीट्रान निकलकर स्थायी ६ प्रोटान और ७ न्यूट्रान का परमाणु बनाता है जो कार्बन का समस्थानीय (आइसोटोप) होता है। उधर फिर एक प्रोटान आ धमकता है। अब यह नया परमाणु १४ कण का हो जाता है। जिसमें ७ प्रोटान और ७ न्यूट्रान होते हैं और नाईट्रोजन नाम का स्थाई परमाणु बन जाता है। इस नाईट्रोजन परमाणु का फिर एक प्रोटान से संयोग हो जाता है। अब यह अस्थाई रूप का १५ कण ८ प्रोटान और ७ न्यूट्रान का अस्थायी रूप का आक्सीजन परमाणु होता है जो एक पाजीट्रान के निकलने से १५ कण (७ प्रोटान और ८ न्यूट्रान) वाला स्थायी नाईट्रोजन परमाणु बनाता है। इसमें एक प्रोटान के प्रहार करने पर खंडन होकर दो टुकड़े हो जाते हैं, एक

१२ मात्रा का कार्बन और दूसरा ४ मात्रा संख्या हीलियम नाभिक। सूर्य इस प्रकार अपनी पाकशाला में हाईड्रोजन नाभिक रूप बेसन की पकौड़ी बनाता है। जिसको हम हीलियम नाभिक रूप में उत्पन्न पाते हैं। कार्बन परमाणु नाभिक बेचारा तो बेगार में ही पकड़ा जाता है। वह घोबी के गधे का गधा ही बना रह जाता है। सूर्य की यह कढ़ाई क्या खूब है। कैसी कढ़ी पकती है। आज के परमाणु युग में यह सारी क्रिया कल्पना मात्र नहीं है। आज का वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में कार्बन नाभिक पर प्रोटान की बलवती वर्षा कर १३ मात्रा संख्या का परमाणु बनाकर दिखा देता है। यही परमाणु एक पोजीट्रोन को पृथक कर १३ मात्रा का समस्थानीय कार्बन बनाता है। इस क्रिया में १६ मिनट का समय लगता है। १५ मात्रा का अस्थायी अभिष्ट परमाणु एक पोजीट्रोन निकल कर स्थिर रूप का नाईट्रोजन परमाणु बनाने में दो मिनिट लगाता है। इन सब क्रियाओं को जब आज हमारी प्रयोग शाला में कर दिखाना संभव हो चुका है तो सृष्टि की भारी प्रयोगशालाओं में इनका घटित होता रहता है कौन से आश्चर्य की बात हो सकती है ? यह घटना कार्बन-चक्रीय कही जाती है जो सूर्य में होती रहती है।

तारागणों की प्रयोगशाला की भी यही हालत है।

यह है सूर्य व तारागणों की गर्मी व प्रकाश का रहस्य।

ड्यूम्बायर की मृत्यु का ढंग मनोवैज्ञानिकों के लिये आकर्षण की वस्तु है। अपनी मृत्यु से कुछ पहले उसने कहा कि उसके लिये आवश्यक था कि वह प्रतिदिन पहले दिन से दस या पन्द्रह मिनट ज्यादा सोये। होते होते एक दिन आया जब वह तेइस घंटों से कुछ ज्यादा सोया। अगले दिन वह पूरे चौबीस घंटे सोया और इसके बाद नींद में ही उसकी मृत्यु हो गई।

—डब्लू० डब्लू० आर० बॉल

परमाणु शक्ति उद्योग की समस्याएँ और सम्भावनाएँ

जी० एन० कुज्हिलिन, सोवियत विज्ञान अकादमी के कारस्पाण्डिङ्ग सदस्य ।

विश्व का प्रथम परमाणु शक्ति कारखाना जून, १६५४ में सोवियत संघ में खड़ा किया गया था। इसकी क्षमता ५००० किलोवाट है।

गत २॥ वर्ष के अबाधित संचालन के दौरान में केन्द्र में एक बार भी काम नहीं रुका है। अब यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि कार्य की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में परमाणुशक्ति कारखाने से उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जो एक सामान्य बिजली केन्द्र से होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामान्य बिजली-केन्द्र ने छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान में सोवियत संघ में पारमाणविक केन्द्रों के निर्माण का परिमाण निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण भाग लिया है।

१६६१ तक सोवियत संघ में २० से २५ लाख की कुल क्षमता वाले परमाणु शक्ति कारखाने बनाये जायेंगे। ये केन्द्र विभिन्न प्रकार के होंगे उनके कार्य से सर्वाधिक विश्वसनीय और कम खर्च मूल उपकरण, विशेषतया पारमाणविक रिएक्टर के प्रकारों का चुनाव सम्भव होगा, जिससे परमाणुशक्ति उद्योग का अधिक विश्वास के साथ और बड़े पैमाने पर विकास हो सकेगा। यह स्पष्ट है कि परमाणु शक्ति का युग आ चुका है।

शक्ति उद्योग में जो चाहे प्रगति हो, निकट भविष्य पारमाणविक ईंधन का है। ऐसी सम्भावना है कि अब से १५-२० वर्षों में परमाणु केन्द्रों का अधिक संख्या में निर्माण होगा। ऐन्द्रियिक ईंधन, कोयला, पीट, तेल और प्राकृतिक गैस का भविष्य में मुख्यतया उद्योग में प्राविधिक प्रयोजनों के लिए तथा छोटे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के लिए प्रयोग होगा।

धीमे रिएक्टरों या तापीय न्यूट्रोनों, जिनका प्रवेग लगभग ३००० मीटर प्रति सैकण्ड होता है, का प्रयोग अगले कई वर्षों में शक्ति उद्योग में होगा।

तापीय रिएक्टरों के सम्बन्ध में बहुत उन्नति की जा चुकी है। वैज्ञानिकों ने उनके विशिष्ट गुणों का अध्ययन किया है, और उनकी क्षमता को नियन्त्रित करने, डिजाइन तैयार करने, निर्माण करने और उनका संचालन करने की विधियाँ ज्ञात की हैं। यहाँ उसके सिद्धान्तों की समस्या का समाधान कर लिया गया है। प्लुटोनियम के उत्पादन तथा परीक्षणात्मक प्रयोजनों के लिए ऐसे दर्जनों रिएक्टर विश्व में बन चुके हैं, और वे सफलतापूर्वक काम कर रहे हैं।

तेज न्यूट्रोन रिएक्टरों का बनाया जाना भी सम्भव है। इस प्रकार के अनेक परीक्षणात्मक रिएक्टर पहले ही कार्य कर रहे हैं। दूसरे रिएक्टरों से इनमें इतना फर्क है, कि इनमें ग्रेफाइट या पानी का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि ये दोनों चीजें न्यूट्रोनों को धीमा करती हैं। इस प्रकार के रिएक्टरों में यूरेनियम खंडों को पिघले हुए सोडियम से ठण्डा किया जाता है। किन्तु सब मिलाकर तापीय रिएक्टर अधिक सादा होते हैं, खास कर उनका संचालन अर्थात् क्षमता का नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है। इस गुण के कारण आजकल वैज्ञानिक और इंजीनियर तेज रिएक्टरों की अपेक्षा तापीय रिएक्टरों का ज्ञान अधिक पूर्णतया प्राप्त करते हैं।

परमाणु शक्ति के लिए विभिन्न देशों द्वारा बहुत से रिएक्टर बनाये गये हैं। प्राविधिक दृष्टि से उनमें बहुत समानता होती है। इसीलिए उनमें से एक ही उनके इंजीनियरिंग पहलू को स्पष्ट कर सकता है। इस प्रयोजन के लिए हम सोवियत संघ में भौतिकी और प्राविधिक अनुसंधान के लिए काम में आने वाला रिएक्टर लेंगे। उसकी तापीय क्षमता १० हजार किलोवाट और इसमें विखंडनीय आइसोटोप २३५ की १० प्रतिशत मात्रा से समृद्ध यूरेनियम का प्रयोग होता है।

चारों ओर से पूर्णतया बन्द इस्पाती रिएक्टर के वर्तन का व्यास २७०० मिलीमीटर और ऊँचाई ४००० मिलीमीटर होती है, और इसके अन्दर ग्रेफाइट खंडों की लाइनिंग होती है। ईंधन-प्रणालिकाएँ, जिनमें यूरेनियम खंड रहते हैं, ऊपर से ग्रेफाइट लाइनिंग में डाली जाती है। ये चीजें ग्रेफाइट लाइनिंग के निचले भाग में विकिरण क्षेत्र में, जिसका व्यास १००० मिलीमीटर और ऊँचाई भी १००० मिलीमीटर होती है, रखी जाती है। इस प्रणालिका में यूरेनियम खंड पाइप के टुकड़े जैसा रहता है। रिएक्टर के चालू होने पर यूरेनियम खंड में ताप उत्पन्न होता है। खंड से पानी की धारा इसे बहा ले जाती है, जो परिपथरन्ध्र (सर्किट स्लिट) के साथ-साथ ऊपर से नीचे आता है, और खंड के केन्द्रीय हिस्से के साथ-साथ ऊपर चढ़ता है।

विखंडन से उत्पन्न टुकड़े, जो रिएक्टर के चालू होने के समय यूरेनियम खंड में इकट्ठे हो जाते हैं, अत्यधिक मात्रा में गामा किरणें छोड़ते है। गामा किरणों का शरीरों पर हानिकारक प्रभाव होता हैं, जिनमें मनुष्य का शरीर भी शामिल है। गामा किरणों को सोखने के लिए रिएक्टर में रक्षात्मक ढाल लगी रहती है। सही तौर पर भौतिकी-प्राविधिक रिएक्टर में यह ढाल ३५०० मिलीमीटर मोटी कंकरीट की दीवार की बनी होती है। ऊपर के हिस्से में ढाल सीसे और ढलवे लोहे की चादरों की होती है।

इस प्रकार की शक्तिशाली जैविक ढाल सब हालतों में जरूरी है। ढाल की मोटाई व्यावहारिक तौर पर रिएक्टरों की क्षमता पर निर्भर नहीं करती। रक्षा के लिए बहुत से पदार्थों का प्रयोग हो सकता है, महत्वपूर्ण चीज वजन है, पदार्थ नहीं। सब हालतों में यह आवश्यक है कि किरण की दिशा में ढाल का भार ९३० ग्राम प्रति एक वर्ग सेंटीमीटर से कम न हो। इस सिलसिले में नीचे की बात को ध्यान में रखना दिलचस्प होगा। यदि हम कल्पना करें कि किसी रिएक्टर का विकिरण क्षेत्र बहुत छोटा है, और ढाल सीसे की है, जो कि प्राविधिक रूप से सबसे भारी पदार्थ है, तब भी गामा के विकिरण से रक्षण करने वाली ढाल का भार २०-३० टन से कम न होगा। इसलिए यह परिणाम निकल सकता है कि आटोमोबाइल के लिए पारमाणविक इंजन का प्रयोग असम्भव है। किन्तु हाँ, इस सम्बन्ध में किश्तियों में और विमानों में भी, क्योंकि विमान की ढुलाई शक्ति १०० टन के करीब हो सकती है, पारमाणविक इंजन लगाने में कोई बाधाएँ नहीं हैं। सोवियत संघ में पारमाणविक इञ्जन से युक्त बर्फ-तोड़क तैयार किया जा रहा है। गाड़ियों व अन्य मशीनों के लिए पारमाणविक इञ्जन का डिजाइन तैयार करना सम्भव है तो भी यह सम्भावना बहुत है कि ऐसे परिवहन यंत्र बहुत नहीं होंगे। ध्यान देने योग्य चीज यह है कि पारमाणविक रिएक्टरों का कार्य कुछ अंश में रेडियो सक्रिय अवशेषों पर निर्भर है, और इसलिए उसे विशेष कठोर परिस्थितियों में चलना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि अनेक रिएक्टरों के लिए ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना, खासकर परिवहन सेवाओं में, बहुत कठिन होगा, और यही बात इन परिस्थितियों के नियन्त्रण पर सही उतरेगी। इसीलिए रेलों के मामले में निःसन्दिग्ध रूप से उनका पारमाणविक ईंधन में परिवर्तन वैद्युतिक परिवहन को अपनाने तथा परिवहन की ट्रांस्मीशन लाइनों के लिए बड़े-बड़े स्थायी परमाणु शक्ति कारखानों का निर्माण करने द्वारा, न कि वाष्प इञ्जनों का स्थान पारमाणविक इञ्जनों को देने द्वारा, होना चाहिए।

भौतिकी-प्राविधिक अनुसंधान रिएक्टर की तरफ पुनः मुड़ते हुए यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गामा किरणों के सोखे जाने से कंकरीट गरम हो जाता

है। उसे ठंडा करने के लिए पार्श्वों पर सर्पिल नलिकाएँ होती हैं, जिनमें से ठंडा पानी गुज़रता है। रीइन्फोर्स्ड कंकरीट प्लेट में भी रिएक्टर के बर्तन के नीचे और कुछ नीचे सपाट धात्वीय आधार पर भी ठंडा करने की सर्पिल नलिकाएँ रहती हैं। विकिरण क्षेत्र के निकटवर्ती ढाँचे के सभी हिस्से, रिएक्टर का बर्तन, ठंडा करने की सर्पिल नलिकाएँ, कंकरीट की तह, ऊपर की रक्षात्मक प्लेटें आदि, रिएक्टर के कार्य के दौरान में बहुत बड़ी मात्रा में विकिरण से छूटे हुए न्यूट्रोनों को सोख लेते हैं, जिसकी वजह से वे खुद रेडियो सक्रिय बन जाते हैं, और स्वयं भी बड़ी मात्रा में गामा किरणें छोड़ते हैं। इसलिए रिएक्टर का काम चालू हो जाने पर यंत्र के ये भाग मरम्मत की पहुँच से बाहर हो जाते हैं। इसके दृष्टिगत रिएक्टर के निर्माण में मुख्य कार्य यह है कि रिएक्टर के उस क्षेत्र में, जहाँ मरम्मत न हो सकती हो, पूर्णतया भरोसे लायक तत्व बनाये जाएं।

ताप-उत्पादक तत्वों अर्थात् यूरेनियम खंडों की माँगें विशेषकर सख्त हैं। भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टर में यूरेनियम खंड बाहर और अन्दर से अलुमीनियम के गिलाफों से ढँके रहते हैं। इन गिलाफों के सिरे वेल्डिंग द्वारा पूर्णतया बन्द होते हैं। खडों के गिलाफों का पूर्णतया बन्द होना इसलिए जरूरी है, कि यूरेनियम विखंडन तथा खास यूरेनियम के उच्च रेडियो सक्रिय टुकड़े ठंडा रखने के पानी में न आ जाय। किन्तु प्रश्न उठता है वेल्डिंग ठीक हुआ है या नहीं इसकी पहचान क्या है, उन खंडों का पता कैसे किया जाए, जो अच्छी तरह बन्द नहीं हैं। यह एक महत्वपूर्ण समस्या है, जो विशिष्ट हालतों में बड़ी कठिनता से हल की जाती है।

पूर्णतया बन्द होने के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि यूरेनयम और गिलाफ के बीच ठोस तापीय सम्पर्क हो, और यह सम्पर्क खंड के कार्य के दौरान में अपेक्षाकृत लम्बी अवधि तक भंग न हो। ताप की धारा यूरेनियम से गिलाफ में और गिलाफ से शीतकारक माध्यम में गुजरती है। भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टर की हालत में यह एक वर्गमीटर पृष्ठ से २० लाख किलो-कैलोरी प्रति घंटा तक पहुँच जाती है। यह एक बड़ी संख्या है, जो एक स्टीम बायलर के अग्निकक्ष के गरम होने वाले पृष्ठ के लिए अपेक्षित तापीय धारा से ५ गुना अधिक है। इस प्रकार की तापीय धाराओं की हालत में गिलाफ और खंड के बीच सम्पर्क का अभाव खंड को क्षति पहुँचाता है, और विखंडन से उत्पन्न टुकड़े शीतकारक माध्यम में आ जाते हैं। अन्य रिएक्टरों में भी यूरेनियम खंडों के बारे में यही हालत है। यूरेनियम के हृदयस्थल और गिलाफ के मध्य सम्पर्क सदा अपेक्षित है। समस्या यह है कि अच्छा सम्पर्क कैसे सुनिश्चित बनाया जाए और किस विधि से प्रत्येक विशिष्ट मामले में सम्पर्क की विश्वसनीयता की जाँच की जाए। इस समस्या का भी बड़ी मुश्किल से हल निकाल लिया गया है।

१००० किलोवाट के भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टर में सब मिलकर ३५ यूरेनियम खण्ड होते हैं। पांच लाख किलोवाट या उससे अधिक की क्षमता वाले शक्ति-उत्पादक रिएक्टरों के लिये हजारों लाखों यूरेनियम खण्ड अपेक्षित होंगे। किसी एक भी गिलाफ को क्षति पहुँचने का फल सर्किट में ऊँचे दरजे की रेडियो सक्रियता होगी, और परिणामत: कार्य की परिस्थितियाँ आधार रूप से खराब हो जाएँगी। साथ में ही क्षतिग्रस्त खंड का पता लगाने की कठिन समस्या उत्पन्न होगी, ताकि उसे रिएक्टर से हटाया जा सके। इससे फिर इस तथ्य को बल मिलता है कि ताप-उत्पादक खंड रिएक्टरों में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है।

अगली महत्वपूर्ण समस्या है यूरेनियम खंड को विश्वस्त रूप से ठन्डा करना। ठन्डक में ०·१ सेकिन्ड की खराबी भी खन्डों को हानि पहुँचा सकती है। भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टर निम्न दिशाओं में स्वयंमेव खड़ा हो जाता है—यदि किसी भी पम्प की बिजली की सप्लाई बन्द हो जाये, यदि किसी भी प्रणालिका में पानी की खपत चार प्रतिशत तक कम हो जाये, यदि रिएक्टर के सामने पानी का दबाव १० प्रतिशत तक गिर जाए, इत्यादि। किन्तु कार्य बन्द होने के बाद भी एक दिन तक विखंडन से उत्पन्न पदार्थों के

रेडियो सक्रिय विकिरण के कारण अवशिष्ट ताप उत्पादन के नाम से ज्ञात क्रिया जारी रहती है। इस ताप-उत्पादन का औसत रुकने से पूर्व रिएक्टर की क्षमता का एक प्रतिशत होती है। इसके सिवा असली रुकने की क्रिया भी एक दम नहीं हो जाती, उसमें समय लगता है। इसलिये कार्य बन्द होने की जितनी भी अवस्थायें हो सकती है उनमें खंडों की विश्वसनीय ठंडक को सुनिश्चित बनाने के लिये कदम उठाये जाते हैं। रेडियो सक्रिय पदार्थ पारमाणविक रिएक्टरों के कार्य में खास बात है। भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टरों की हालत में रेडियो सक्रिय पदार्थ पानी गैस और ठोस पदार्थ हैं।

पानी तब अत्यधिक रेडियो सक्रिय बन जाता है, जब यूरेनियम के विखंडन से उत्पन्न टुकड़े क्षतिग्रस्त खंड से इसमें आ जाते हैं। ऐसी अवस्थाओं में सबसे पहले यह जरूरी है कि क्षतिग्रस्त खंड का पता किया जाय, और उसे रिएक्टर से हटा दिया जाए। उसके पश्चात् रेडियो सक्रिय पानी को सर्किट से एक पृथक बिल्डिंग में स्थित निषदन (सेटलिंग) टैंकों में बहा दिया जाता है। इसके बाद सर्किट में दो या तीन बार आसुत जल भरा जाता है, और उसे धोया जाता है, यह पानी फिर निषदन टैंक में बहा दिया जाता है। दूषित पानी को एक मास अथवा अधिक समय के लिये निषदन टैंक में रखा जाता है जिससे उसकी रेडियो सक्रियता ८९.९ प्रतिशत तक कम हो जाती है। तब उसे एक आयन—विनियम फिल्टर में से गुजारा जाता है, जिससे उसकी रेडियो सक्रियता ९९.९९ प्रतिशत और कम हो जाती है। इसके बाद इस दूषित पानी को एक पाइप में थोड़ी थोड़ी मात्रा में, प्रतिघन्टा दो घनमीटर तक के हिसाब से, शुद्ध जल की धारा में मिलाया जाता है, और एक जलागार में छोड़ दिया जाता है। पानी के इस बहाव पर लगातार नियन्त्रण रखा जाता है, ताकि पानी की रेडियो-सक्रियता अनुमत सीमा के अन्दर सुनिश्चित बनी रहे।

गैसों की रेडियो सक्रियता मुख्यतया रेडियो सक्रिय आर्गन के कारण होती है। रेडियो-सक्रिय आर्गन के प्राप्ति का कारण यह है कि रिएक्टर के सीधे निकटवर्ती वायवीय क्षेत्र में वायु की आर्गन न्यूट्रानों को सोख लेती है। वायवीय गैसें, जिनमें कुछ मात्रा रेडियो-सक्रिय आर्गन की तथा कभी कभी जेनोन और क्रिप्टोन की भी होती है, भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टर में से ६० मीटर ऊँची चिमनी में से बाहर निकाल दी जाती है। अत्यन्त समीपवर्ती मकानों और जमीन के स्तर पर इन गैसों का संभावित जमाव अनुमत सीमा से बहुत नीचे होता है।

ठोस रेडियो-सक्रिय पदार्थ बहुत से हैं। सर्वाधिक रेडियो-सक्रिय यूरेनियम खंड हैं, जो काम कर रहे रिएक्टर में रहते हैं। कभी कभी तो एक खंड की रेडियो सक्रियता रेडियम के दर्जनों किलोग्राम के विकिरण के समान होती है। इन खंडों को भौतिकी-प्राविधिक अनुसन्धान रिएक्टर से दूर पर नियन्त्रित गैन्टरी क्रेन द्वारा हटाया जाता है। तब उन्हें रिएक्टर के साथ रखे हुए जलगर्भ भन्डार में रख देते हैं। लगभग एक वर्ष में, जब कि खन्डों की सक्रियता बहुत कम हो जाती है, उन्हें भंडार से निकाल लेते हैं और टुकों से काट कर सीसे के बर्तनों में डाल देते हैं, और रासायनिक उपचार के लिये विशेष प्लान्ट में भेज देते हैं।

अणुशक्ति केन्द्रों की एक बड़ी समस्या रिएक्टरों में शीतकारक माध्यम का अधिक से अधिक तापमान प्राप्त करना है। इस समस्या का सम्बन्ध शीतकारक माध्यम के चुनाव तथा रिएक्टर के विकिरण क्षेत्र के निर्माण में काम में आए पदार्थों से है। अपने भौतिक गुणों के कारण अलुमीनियम और उसके मिश्रित धातु विकिरण क्षेत्र के लिये सबसे उपयुक्त पदार्थ हैं। अलुमीनियम न्यूट्रानों को बहुत कम सोखता है, और इस गुण के कारण एक मिलीमीटर या उससे भी अधिक मोटी दीवारों वाले अलुमीनियम के हिस्से विकिरण क्षेत्र में प्रयुक्त हो सकते हैं। किन्तु जब अलुमीनियम प्रणालिकाओं और खंड-गिलाफों को जल से ठंडे किये गये रिएक्टरों में प्रयुक्त किया जाता है, तो रिएक्टर को छोड़ने पर पानी का तापमान २०० डिग्री शतांश से ऊपर नहीं हो सकता। पहले परमाणु शक्ति कारखाने का रिएक्टर सर्किट की दृष्टि से वैसा ही है जैसा कि भौतिकी-प्राविधिक अनु-

सन्धान का रिएक्टर। किन्तु परमाणु शक्ति कारखाने में ईंधन की प्रणालिकायें और यूरेनियम खंडों के गिलाफ स्टेनलेस स्टील के बने होते हैं। इसी वजह से सर्किट में १०० वायुमन्डल का दबाव रखना सम्भव है, और पानी का तापमान २७० डिग्री शतांश तक ले जाते हैं। किन्तु स्टील अलुमीनियम की अपेक्षा लगभग २० गुना न्यूट्रान सोखता है। इसलिये स्टील प्रणालिकाओं और खंड-गिलाफों की दीवारों की मोटाई एक मिलीमीटर से कम रखनी पड़ती है, जिससे वस्तुतः ही निर्माण सम्बन्धी और प्राविधिक बहुत सी कठिनाइयाँ पेश आती हैं। किन्तु आज ये कठिनाइयाँ अतीत की वस्तु बन चुकी हैं।

जिरकोनियम नामक पदार्थ बहुत बड़ी सम्भावनाओं से युक्त है। यांत्रिक शक्ति तथा गरम पानी में जंग निरोधकता के कारण यह स्टील के निकट है। साथ में ही अलुमीनियम के तुल्य यह न्यूट्रानों को बहुत कम सोखता है। दुर्भाग्यवश यह पदार्थ अब तक बहुत मंहगा है।

यूरेनियम की अपेक्षित मात्रा रिएक्टर के डिजाइन उसकी समाई तथा आइसोटोप २३५ से यूरेनियम की समृद्ध पर निर्भर करती है। भौतिकी-प्राविधिक अनुसंधान के कार्बन युक्त और पानी से ठंडे किये गये रिएक्टर में आमतौर पर ८० किलोग्राम के करीब यूरेनियम डाला जाता है जिसमें लगभग ८ किलोग्राम यूरेनियम—२३५ होता है।

प्राकृतिक यूरेनियम में लगभग ०.७१ प्रतिशत आइसोटोप-२३५ होता है। जो न्यूट्रानों की क्रिया के अधीन विखंडन योग्य बन जाता है। इस कारण तापीय रिएक्टर में यूरेनियम की खपत लगभग एक सी होनी सम्भव है। सिद्धान्त रूप से तेज न्यूट्रान रिएक्टरों में समूचे यूरेनियम का स्तेमाल सम्भव है। तेज न्यूट्रानों को यूरेनियम—२३८ बहुत अधिक मात्रा में सोखता है, और खुद प्लुटोनियम में बदल जाता है, जो एक विखंडन योग्य तत्व है और जिसका प्रयोग शक्ति के उत्पादन में सम्भव है। खासकर प्रभावशाली तेज न्यूट्रान रिएक्टर है, जिसमें विकिरण क्षेत्र के केन्द्र में प्लुटोनियम और परिधि में प्राकृतिक यूरेनियम रहता है। यह निश्चित रूप से स्थापित हो चुका है कि काम में आये प्लुटोनियम के प्रत्येक किलोग्राम से प्राप्त यूरेनियम—२३८ से लगभग १.५ किलोग्राम प्लुटोनियम प्राप्त होता है। इसी वजह से इस ढंग के रिएक्टरों में यूरेनियम—२३८ का प्लुटोनियम—२३९ में परिवर्तन तब तक जारी रह सकता है, जब तक कि सारा यूरेनियम खर्च नहीं होजाता। यही स्थिति थोरियम २३२ के योरेनियम—२३३ के विखंडनीय आइसोटोप में परिवर्तित करने के बारे में है। तापीय रिएक्टर भी उत्पादक (ब्रीडर) रिएक्टर बन सकते हैं, यदि वे ईंधन के रूप में यूरेनियम—२३३ का प्रयोग करें। क्योंकि तापीय रिएक्टर तेज रिएक्टरों की अपेक्षा सादा होते हैं, इसलिये निकट भविष्य में उनकी उत्तम प्रक्रिया तेज उत्पादक (ब्रीडर) रिएक्टर की प्रक्रिया की अपेक्षा सम्भवतः अधिक महत्वपूर्ण होगी।

आशा है कि यूरेनियम—२३८ में परिवर्तन की प्रक्रिया शक्ति के उत्पादन के लिये काम में लाये जाने वाले तापीय रियक्टरों में भी प्रयुक्त होगी। यह इसीलिए है कि उदाहरण के लिये, जल से ठंडा किये गये उक्त रिएक्टर में अत्यन्त समृद्ध और प्राकृतिक यूरेनियम का मिश्रण डाला जाता है। गणना से पता चलता है कि उस हालत में बना प्लुटोनियम प्राकृतिक यूरेनियम की खपत बढ़ाने में महत्वपूर्ण भाग ग्रहण कर सकता है। यह सम्भव समझा जाता है कि प्राकृतिक यूरेनियम के प्रति टन पर खपत १० और २० किलोग्राम तक बढ़ाई जा सकती है। यह खपत की मात्रा बहुत ज्यादा है, क्योंकि प्रारम्भिक स्थिति में न्यूक्लियर (न्यष्टि) ईंधन के रूप में प्रयुक्त की जा सकने वाली यूरेनियम की मात्रा ७.१ किलोग्राम प्रतिटन है।

तापीय रिएक्टरों में प्राकृतिक यूरेनियम के प्रयोग की इन सम्भावनाओं को देखते हुए कुछ विशेषज्ञों की राय है कि तेज न्यूट्रान रिएक्टरों का कार्य लाभदायक नहीं हो सकता। यदि इस राय की पुष्टि हो गई, तो तापीय रिएक्टरों में प्रयुक्त होने के बाद यूरेनियम को सम्भवतः जमीन में गाड़ दिया जायगा। इसके पुनः

[शेष पृष्ठ २२ पर]

पारमाणविक शक्ति का शांतिपूर्ण उपयोग

सोकोलोव, वस्तुओं की जांच पड़ताल की भौतिक प्रणालियों में अनुसंधान के लिए स्थापित
केन्द्रीय प्रयोगशाला के मुख्य इंजीनियर

अन्वेषी परमाणु के विकिरण से हम द्रव्य की भीतरी बनावट को देख पाते हैं। ऐसे नये उपकरणों और यंत्रों के निर्माण में, जिनसे मानव श्रम का बोझ हल्का होता है, यह सिद्धान्त अन्तर्निहित है।

मिट्टी के बांधों पर मिट्टी डालने तथा जलाशयों और नदी की पेटी की सफाई करने के लिए जल-प्राविधिक व्यवस्था के निर्माण में सक्शन ड्रेज का व्यापक उपयोग किया जाता है। एक दिन में, एक सक्शन ड्रेज १,००० घनमीटर से अधिक मिट्टी निकाल कर बाहर कर देता है और इस प्रकार उतना काम कर डालता है, जितने के लिए सैकड़ों मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है।

बहुत दिनों तक सक्शन ड्रेज के नियंत्रण के साथ अनेक कठिनाइयाँ जुड़ी हुई थीं, जब तक कि गामा किरणों की सहायता नहीं ली जाने लगीं।

गामा किरणें किसी भी पदार्थ की मोटी दीवार को भेद सकती हैं, किन्तु इससे उनकी तीव्रता शिथिल हो जाती है। यदि गामा किरणों को किसी ऐसे ट्यूब द्वारा निकाला जाये जिसमें होकर लुग्दी गुजर रही हो, तो संहति (मास) के घनत्व के ही अनुपात में वे कमजोर पड़ जाएँगी। ट्यूब के दूसरे सिरे पर जहाँ यंत्रों की मदद से विकिरण विद्युत-आवेगों में परिवर्तित होता रहता है, उन्हें प्रवर्धित करके एक साधारण से यंत्र की सहायता से यह पता लगाया जा सकता है कि लुग्दी में कितनी प्रतिशत मिट्टी है।

विद्युत-मीटर जैसे एक अन्य यंत्र को प्रवर्धक के साथ जोड़ कर यह देखा जा सकता है कि कितने घन-मीटर मिट्टी निकाली गयी है। सक्शन ड्रेज का चालक अब किसी भी समय यंत्र का नियंत्रण और नियमन कर सकता है।

विकिरण-यंत्र द्वारा मीटर सक्शन ड्रेज की क्षमता में २५ प्रतिशत की वृद्धि कर देता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि वह एक दिन में लाखों घनमीटर अतिरिक्त मिट्टी निकाल सकता है। सोवियत उद्योग ने उन सक्शन ड्रेजों को, जो जलविद्युत-केन्द्रों के निर्माण में लगे हुए हैं, सुसज्जित करने के लिए इन यंत्रों का निर्माण कर लिया है।

अनेक सोवियत वैज्ञानिक संस्थानों में विकिरणशील समस्थानिक बड़े पैमाने पर अन्वेषण कार्यों में प्रयोग किये जा रहे हैं। स्टीम-बायलर के लिए पानी की सफाई की प्रक्रिया की शीघ्रतापूर्वक जाँच करने के लिए एक विधि तैयार की गयी है। जिन हानिकर वस्तुओं से पपड़ी बनी है उनके विकिरणशील तत्वों को थोड़ी मात्रा में लेकर अशुद्ध जल में डाल दीजिए। पानी स्वच्छ करने की क्रिया की विभिन्न स्थितियों में पानी की बानगी को बाहर निकाले बिना ही, अन्वेषी परमाणुओं के विकिरण की तीव्रता को नाप करके स्वच्छता की मात्रा का पता लगाया जा सकता है।

एल० वी० माइसोव्स्की और टी० एस० इस्माइ-लोवा पहले सोवियत वैज्ञानिक थे जिन्होंने सबसे पहले धातुओं की प्रतिदीप्ति का पता लगाने के लिए विकिरण-शील तत्वों की गामा किरणों को प्रयोग करने का प्रस्ताव रखा। अब बिजली के कारखानों में स्टीम-बायलर के रंध्रों की धातु से जो जुड़ाई की जाती है, उसकी भीतरी त्रुटियों का पता लगाने में तथा गलतियों का पता लगाने के वास्ते बहुत से इंजीनियरिंग के कारखानों में इस प्रणाली का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है।

फ्ल्यूरोस्कोपिंग की सहायता से समय रहते ही ऐसी त्रुटियों को ठीक किया जा सकता है, जिन्हें हम आँखों

से नहीं देख सकते। धातुओं और स्टीम बायलरों की जुड़ाई की हुई संधियों, गैस और तेल की नलियों, अनेक प्रकार के कंटेनर और टंकियों आदि की फ्ल्यूरोस्कोपिंग के लिए गामा किरणों का उपयोग किया जाता है।

फ्ल्यूरोस्कोपिंग की प्रक्रिया में, धातु की भीतरी स्थिति एक्स-रे की एक फिल्म पर अंकित होती रहती है। यह एक बड़ी लम्बी क्रिया है। त्रुटियों का पता लगाने के लिए अब शीघ्रतर आयनीकरण की विधियाँ तैयार कर ली गयी हैं। अब यह सम्भव हो गया है कि उनकी मदद से फ्ल्यूरोस्कोपिंग के परिणामों को तत्काल ही डायल वाले यंत्रों अथवा आसिलोग्राफ के परदों पर अंकित कर लिया जाए।

गामा किरणों से बहुत से पदार्थ अवदीप्त हो उठते हैं। इन किरणों के प्रभाव से कतिपय मणियों की अवदीप्त के सिद्धान्त पर आधारित एक विशेष प्रकार का यंत्र बनाया गया है। उनसे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने अथवा उपयोग में ले आने की क्रिया में नलियों की दीवारों के आकार का निश्चय करना सम्भव हो जाता है। इस यंत्र की सहायता से ६-७ मीटर लम्बे ट्यूब की एक मिनट में परीक्षा को जा सकती है।

इस यंत्र को किसी भी धातु की मोटाई नापने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। उसमें एक मामूली सा उपकरण जोड़ कर, धातु की चादरें बनाते समय उनकी मोटाई नियमन करने में उसे इस्तेमाल किया जा सकता है। गन्दे पानी की नलियों में एकत्रित हो गये बुहारन के ढेर और जमाव में यदि कोई धातु का खोल या ढक्कन रुक गया हो, तो उसका पता लगाया जा सकता है। लोहा और कंक्रीट के सामान बनाने वाले कारखाने में उत्पादन की किस्म का नियंत्रण करने में अत्यन्त मूल्यवान साबित होता है कि कंक्रीट तथा लोहा-कंक्रीट की मिली-जुली वस्तुओं में संधियाँ कहाँ हैं, जोड़ों का वितरण सही है या नहीं, अन्य किन-किन स्थानों पर त्रुटियाँ हैं।

लम्बे अरसे तक औद्योगिक परिस्थितियों में विकिरणशील समस्थानिकों की जो जाँच पड़ताल की गयी है उनसे यह प्रकट होता है कि गामा किरणें, विशेष रूप से अल्फा और बीटा, बुनाई और कताई में सूती और रेशमी धागों पर जो विद्युत्स्थैतिक प्रभरण जमा होते रहते हैं उन्हें दूर कर देती हैं। इन प्रभरणों से कपड़ों को नुकसान होता है और वे बेकार हो जाते हैं। आसपास की वायु का आयनीकरण रोक, विकिरण उसे बिजली का चालक बना देता है। धागे पर विद्युत्स्थैतिक प्रभरण का जमा होना रोक दिया जाता है। इससे धागा न तो खिंचता है और न टूटता है और इस लिए धागा टूटने से होने वाली हानि बन्द हो जाती है।

बन्द बर्तनों में रखे हुए द्रव पदार्थों को नापने में भी गामा किरणों का प्रयोग किया जाता है। नापने की यह क्रिया यंत्रों को, उस वस्तु से जिसे नापा जा रहा है, बहुत दूर रख कर पूरी की जा सकती है।

"सोवियत संघ के विचार और समाचार के सौजन्य से"

[पृष्ट २० का शेष]

प्रयोग की आवश्यकता तभी पड़ेगी, जब प्राकृतिक यूरेनियम के साधन-स्रोत खत्म हो जाएँगे। किन्तु बहुत सम्भव है कि वह समय आने से पहले ही विज्ञान उदजन के आइसोटोपो को हीलियम से उद्भूत पदार्थों से मिलाने में समर्थ हो जाएगा, जिससे मानव-जाति को परमाणु शक्ति के वास्तव में ही नये अपरिमित स्रोत प्राप्त हो जायेंगे।

बटन के आकार की नई आणविक बैटरी

अमेरिकी वैज्ञानिकों तथा उद्योगपतियों का यह विश्वास है कि हाल ही में अमेरिका में जो नई अति सूक्ष्म आणविक बैटरी तैयार हुई है, वह बहुत से कामों में उपयोगी सिद्ध होगी।

एग्लिन नेशनल वाच कम्पनी तथा वाल्टर किड्डी न्यूक्लियर लैबोरेटरीज ने मिल कर यह नई बैटरी तैयार की है।

इस आणविक बैटरी को शुरू में अन्य-यन्त्रों, हल्के-फुल्के रेडियो में इस्तेमाल किया जाएगा। बाद में आणविक घड़ियों में भी यह स्तेमाल की जाएगी।

आधारभूत सामग्री प्रोमिथियम—१४७

इस नई आणविक बैटरी में प्रोमिथियम—१४७ को आधारभूत सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया गया है। प्रोमिथियम—१४७ अणुशक्ति से लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिये उत्पादित एक पदार्थ है। रेडियोसक्रिय प्रोमिथियम—१४७ आणविक भट्ठी में उत्पन्न होने वाला एक अतिरिक्त पदार्थ है। इस रेडियो सक्रिय पदार्थ से विद्युदणु कण निकलते हैं।

अन्य प्रकार की आणविक बैटरियों में विद्युदणु कणों को प्रत्यक्ष रूप में बिजली के रूप में परिणत करने का प्रयास किया गया था, लेकिन इस कार्य में पूर्ण रूप से सफलता नहीं मिल सकी है। कारण यह है कि इन कणों से बैटरी में बिजली तैयार करने वाले पुर्जे नष्ट हो जाते हैं।

किड्डी—एल्गिन बैटरी में प्रोमिथियम—१४७ को फास्फोरस में मिलाकर प्लास्टिक की एक पारदर्शी परत में बन्द कर दिया जाता है। इससे उक्त परेशानी दूर हो गई है। प्रोमिथियम --१४७ से बाहर निकलने वाले विद्युदणु के कणों के कारण फासफोरस चमक उठता है और प्लास्टिक की परत के दोनों ओर लगे बालू (सिलिकोन) पर जब यह प्रकाश पड़ता है तो यह बिजली में बदल जाता है। चूँकि प्लास्टिक से कोई भी विद्युदणु कण बच कर नहीं निकल सकता, इसलिये बालू (सिलिकोन) को कोई नुकसान नहीं होता।

बैटरी का आकार और उत्पादन-शक्ति

नई बैटरी धातु के खोल सहित केवल सामान्य बटन के आकार की है। इस नई बैटरी द्वारा २० माइक्रोवाट बिजली पैदा हो सकती है। एल्गिन कम्पनी जो नई आणविक घड़ी तैयार कर रही है, उसे इस नई बैटरी द्वारा आसानी से चलाया जा सकता है। इस बैटरी की सहायता से छोटे ट्रान्सिस्टर रेडियो को भी आसानी से चलाया जा सकता है।

इस नई बैटरी के निर्माताओं का यह कथन है कि इस बैटरी में अनन्त काल तक बिजली पैदा करने की क्षमता है। विकिरण के प्रभाव से बचने के लिये इस पर हल्की धातु का खोल चढ़ा देना पर्याप्त है।

नई बैटरी के निर्माताओं का यह कथन है कि नई बैटरी घर की चाबी की तरह सुरक्षित रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकती है। कलाई पर बाँधने वाली सामान्य घड़ियों की रेडियम डायल से जितना विकिरण होता है, उक्त नई घड़ी द्वारा उससे भी कम विकिरण होता है।

बड़ी मात्रा में उत्पादन अभी सम्भव नहीं

क्योंकि इस नई बैटरी को तैयार करने के लिये इस समय एक तो सुविधायें कम हैं और दूसरे इसमें ईंधन के रूप में इस्तेमाल होने वाले प्रोमिथियम—१४७ का दाम बहुत ऊँचा है, इसलिये इसे अभी अधिक मात्रा में तैयार नहीं किया जा सकता है। इसका व्यापारिक रूप में प्रयोग सीमित ही रहेगा।

आज एक क्यूरी प्रोमिथियम—१४७ का दाम लगभग ५०० डालर है। क्यूरी रेडियो सक्रियता को नापने की इकाई है। तथापि यह समझा जाता है कि १९५७ में ओकरिज स्थित अमेरिकी अणुशक्ति-कमीशन की नई उत्पादन सुविधाओं के पूर्ण हो जाने पर एक क्यूरी प्रोमिथियम का दाम केवल ५० सेंट ही रह जाएगा।

घटे हुये दाम पर २ डालर मूल्य के प्रोमिथियम से इतनी शक्ति पैदा हो सकेगी, जिससे कि कलाई पर बांधी जाने वाली घड़ी पाँच वर्ष तक आसानी से चल सके।

आणविक विकिरण से पौधों की नई नस्लें तैयार

नई-नई किस्म के पौधे उत्पन्न करने तथा पौधों को तैयार करने के सम्बन्ध में लोगों के ज्ञान में अभिवृद्धि की दृष्टि से आणविक विकिरण का आज अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। आणविक विकिरण वह प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत अणुशक्ति का लोक-कल्याणकारी कार्यों में प्रयोग किया जाता है।

प्राकृतिक परिवर्तन की रफतार में अभिवृद्धि

अमेरिकी पत्रिका जरनल औव् एग्रीकल्चरल एण्ड फूड कैमिस्ट्री के कथनानुसार यह बात पता चली है कि आणविक विकिरण से १०० पौधों में से १० के हिसाब से परिवर्तन में अभिवृद्धि की जा सकती है। प्राकृतिक रूप से यह परिवर्तन १० हजार पौधों में से एक पौधे से लेकर १ लाख पौधों में से एक पौधे तक होता है। इस वृद्धि से पौधों के उत्पत्ति सम्बन्धी अध्ययन में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। यह बात उल्लेखनीय है कि विकिरण के प्रभाव से पौधों की नई एवं अज्ञात किस्में उत्पन्न की जा सकती हैं।

पौधों की नई किस्में उत्पन्न करने के लिए ६ प्रकार की विकिरण शक्ति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। यह विकिरण शक्ति एक्स-किरणों, गामा किरणों, वीटा किरणों, तेज गति वाले न्यूट्रोनों, मन्द गति वाले न्यूट्रोनों तथा अल्ट्रा वायलेट किरणों से प्राप्त होती है। ये सभी पौधों में एक प्रकार का परिवर्तन करती हैं।

अमेरिका, स्वीडन तथा जर्मनी में प्राप्त की गई सफलताएं

अमेरिका में मिशिगन स्टेट विश्वविद्यालय ने विकिरण का प्रयोग करके फलीदार पौधों की एक नई किस्म उत्पन्न की है। यह किस्म अन्य फलीदार पौधो की तुलना में अधिक अच्छी है। यह अपेक्षाकृत जल्दी पकती है तथा इस में अधिक फलियां भी लगती हैं। इसके अतिरिक्त मशीनों द्वारा फसल की कटाई करने की दशा में इस किस्म में अधिक सुविधा रहती है।

विकिरण की सहायता से स्वीडन में जो दो नई फसलें तैयार की गई हैं, आशा है वे शीघ्र ही स्वीडन के बाजारों में बिकने लगेंगी। इन फसलों में एक ऐसी किस्म है जिसका डण्ठल अधिक दृढ़ होता है। दूसरी मटर की ऐसी किस्म है, जिसकी पैदावार बहुत अधिक है।

जर्मनी में लुपाइन नामी एक जहरीले पौधे को विकिरण की सहायता से मीठा और विषहीन बना लिया गया है। पहले इस पौधे को खाने से पशुओं को जहरीले पदार्थों के कारण नशा हो जाता था। अब मीठा और विष-विहीन हो जाने से यह पौधा घरेलू पशुओं को चारे के रूप में खिलाया जा सकता है।

इन देशों तथा यूरोप के अन्य देशों ने विकिरण द्वारा पौधो की नई-नई किस्में उत्पन्न कर के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया है। उनके इन कार्यों से प्रकट होता है कि अब संसार में अणुशक्ति को कल्याणकारी कार्यों में प्रयुक्त करने के सम्बन्ध में खूब अनुसन्धान किए जा रहे हैं।

पौधों में रोगों की रोकथाम

अमेरिका में विकिरण द्वारा अन्नों की नई-नई किस्में उत्पन्न करने के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान किए जा रहे हैं, उनका मुख्य उद्देश्य पौधों की ऐसी किस्में तैयार करना है, जिन पर रोगों का प्रभाव न हो। विकिरण से पौधों की प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती है। इससे गेहूँ, जई

तथा जौ में रतुआ का मुकाबला करने, गेहूँ में पत्तों के रतुआ रोग का मुकाबला करने, जौ में "मिल ड्यू" रोग का मुकाबला करने और जई में विक्टोरिया ब्लाइट नामक रोग का मुकाबला करने की क्षमता बढ़ जाती है।

कनैटिकट कृषि परीक्षणशाला की रिपोर्ट में कहा गया है कि अणु तथा उसके विकिरण से फुसेरियम विल्ट नामक रोग की सफलतापूर्वक रोकथाम की जा रही है। इस रोग से कई प्रकार के पौधो को भारी क्षति पहुँचती है। अमेरिका के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित उक्त परीक्षणशाला द्वारा इस विधि का विकास किया गया है।

अणुशक्ति के प्रयोग से पौधों के रोगों की रोकथाम करने के लिए जो तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं, उनसे यह विधि भिन्न है। दूसरे तरीको के अन्तर्गत पौधों की किस्मों में परिवर्तन करके रोगों पर नियन्त्रण करने में सफलता प्राप्त की गई है। इन विधियों द्वारा हजारों पौधों की किस्मों में परिवर्तन करके रोगों पर नियन्त्रण करने में सफलता प्राप्त की गई है। इन विधियों द्वारा हजारों पौधों में से केवल कुछ हों पौधों में खास-खास रोगों का मुकाबला करने की क्षमता उत्पन्न होती है। फ्यूसेरियम विल्ट के उपचार के लिए प्रयोग में लाई गई उक्त विधि से सभी पौधों में प्रतिरोध-क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

छोटे और मजबूत डण्ठल के पौधे तैयार करने के प्रयत्न

विकिरण से खाद्यान्नों की ऐसी किस्से उत्पन्न करने के भी प्रयत्न किये जा रहे हैं, जिनके पौधे अपेक्षाकृत छोटे हों और डन्ठल मजबूत हों। ऐसे पौधे आंधी तथा भारी वर्षा से अधिक हानि न होने की दृष्टि से तैयार किए जा जा रहे हैं।

यह सम्भव है कि अन्ततोगत्वा अणुशक्ति को लोक-कल्याणकारी कार्यों में प्रयुक्त करके संसार के सभी भागों में कृषि उत्पादन को बढ़ाने में सफलता प्राप्त की जा सकेगी।

चिकित्सा शास्त्र ने ५० वर्षों में अद्भुत उन्नति की

आज से ५० वर्ष पूर्व जिन १७ पुराने रोगों के सफल उपचार नहीं थे, अब उनकी रोकथाम की जा सकती है। इन रोगों में मधुमेह, रक्ताल्पता तथा मलेरिया आदि दुःसाध्य रोग शामिल हैं।

इस सम्बन्ध में न्यूयार्क में चिकित्सा-विशेषज्ञों की एक बैठक हुई, जिसमें रोगों की रोकथाम के उपायों के विषय में विचार-विमर्श किया गया। गोष्ठी का विषय "मानव जाति की आशा—स्वास्थ्य एवं शान्ति" था। गोष्ठी में मनुष्य के स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले अन्य भी महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार किया गया।

रिपोर्ट में बताया गया है कि क्षय रोग, हृदय रोग तथा वात-सन्धि-ज्वर आदि ३० अन्य पुराने रोगों पर भी करीब-करीब नियन्त्रण कर लिया गया है और शीघ्र ही इन रोगों पर विजय प्राप्त हो जाएगी।

पुराने दुःसाध्य रोगों में धमनियों की सूजन, कैन्सर तथा मानसिक रोग ही ऐसे हैं, जिनके अभी तक सफल उपचार मालूम नहीं हुए हैं।

कीटाणुनाशक औषधियों तथा विशेष रासायनिक द्रव्यों के विकास के परिणामस्वरूप गत ५० वर्षों में विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले संक्रामक रोगों की रोकथाम करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है। इन नई औषधियों की सहायता से निमोनिया, क्षयरोग, गर्दनतोड़ बुखार तथा अन्य कई ऐसे रोगों की रोकथाम अथवा उनका उपचार करना सम्भव हो गया है, जो पहले घातक समझे जाते थे।

कैन्सर के सम्बन्ध में अनुसन्धान

कैन्सर का रोग अभी तक एक गम्भीर समस्या का रूप धारण किये हुए है। इसकी समूचे संसार में वृद्धि हो रही है। कैन्सर कई प्रकार का होता है। अब आपरेशन द्वारा भी कैन्सर का उपचार किया जाने लगा है। ऐसे नये रासायनिक द्रव्य तैयार किये गये हैं जिनसे कैन्सर-कोषों को नष्ट कर दिया जाता है। हार्मोन्स की सहायता से कैन्सर के रोग के प्रकोप को कुछ समय के लिए नियन्त्रित किया जा सकता है। अब मनुष्यों को होने वाले कैन्सर के सूक्ष्म कोषों को शरीर से बाहर भी उत्पन्न किया जा सकता है और अमेरिकी प्रयोगशालाओं से संसार के सभी भागों को कैन्सर के ये नमूने भेजे जा रहे हैं। तैयार किये गये इन नमूनों से अनेक देशों के वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं।

कैन्सर के नमूनों के सम्बन्ध में विश्लेषण करने के लिए हिसाब करने की एक नई विद्युत्-चालित मशीन तैयार की जा रही है। इसकी सहायता से १० हजार सूक्ष्म कोषों की सिर्फ १॥ सैकिंड में परीक्षा की जा सकेगी। यदि बीज की घनता अथवा सूक्ष्म कोष की रचना बदल गई है तो यह उस यंत्र द्वारा बता दिया जावेगा और निदानशास्त्री उससे रोग का ठीक-ठीक निदान कर सकेंगे।

इस प्रकार, यह यंत्र १॥ सैकिंड में उतना कार्य कर सकता है जितना कार्य करने के लिए अब तक प्रशिक्षित चिकित्सकों को घंटों तक कठोर परिश्रम करके परीक्षा करनी पड़ती थी। ऐसे चिकित्सकों की संख्या अभी बहुत कम है, जो कैन्सर का पता लगाने के विस्तृत कार्यक्रम को क्रियान्वित कर सकें, पर इस नये यन्त्र के आविष्कार से अब यह कार्य सम्भव हो जायेगा।

संक्रामक रोगों की रोकथाम

विषाणुओं से फैलने वाले रोगों की रोकथाम करने

की दिशा में अच्छी प्रगति की जा चुकी है, किन्तु अभी इस संबंध में बहुत कुछ किया जाना शेष है। जब हमें यह ध्यान आता है कि १९१८ में इन्फ्लुएञ्जा (श्लेष्म ज्वर) से समस्त संसार में २ करोड़ व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी, तब हमें ऐसे रोगों की भयंकरता का स्पष्ट आभास हो जाता हो जाता है।

संक्रामक विषाणु-रोगों से हर वर्ष अनेक लोगों को भयङ्कर एवं मामूली बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। बहुत से लोग अपने जीवन का १० प्रतिशत भाग ५० किस्म के संक्रामक रोगों में से किसी एक रोग से पीड़ित होकर बिताते हैं। अब इन रोगों में से ५ रोगों—चेचक, पीत ज्वर, पागल कुत्ते के काटने से उत्पन्न होने वाले रोग तथा शिशु पक्षाघात पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

विषाणु-रोगों के लिए कोई निश्चित उपचार नहीं हैं। रोगाणुनाशक औषधियां प्रभावकारी नहीं है। फिर भी चिकित्सा सम्बन्धी नए एवं आशाप्रद साधन तैयार किये गये हैं जिनका अब परीक्षण के तौर पर प्रयोग किया जा रहा है।

पशुओं के सम्बन्ध में किये गये अनुसंधानों से पता चलता है कि कुछ विशेष मिश्रण, जिनमें रिबोन्यूक्लीक एसिड शामिल है, सूक्ष्म कोष के भीतर विषाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं और इसके परिणामस्वरूप रोग समाप्त हो जाता है। अतः अब सावधान चिकित्सा-विशेषज्ञ यह भविष्यवाणी कर रहे हैं कि विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोगों की रोकथाम की जा सकती है और निकट भविष्य में उनका उपचार भी होने लगेगा।

भारत का फल-संरक्षण उपयोग

मुरब्बे और चटनी के रूप में फलों को देर तक रखने की प्रथा भारत में बहुत पुराने समय से चली आ रही है। वास्तव में मुरब्बे बनाने का प्रचलन देश में यूनानी चिकित्सा प्रणाली ने शुरू किया। मुगल शासकों के जमाने में अचार, मुरब्बे, चटनियां बनाने के काम को बहुत प्रोत्साहन मिला।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान में विदेशों से डिब्बा बन्द फलों और मुरब्बों का आना बिल्कुल बन्द हो गया था। इस कारण उन दिनों इस उद्योग को तेजी से बढ़ने का मौका मिला। आज इस उद्योग ने जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है; उसका कारण यही है कि उस समय इसका काफी विस्तार हुआ और मजबूती से जम गया। अब भारत में कई तरह के शर्बत, मुरब्बे, चटनियाँ, डिब्बा-बन्द फल आदि तैयार किये जाते हैं, जिनकी देश में तो भारी परिमाण में खपत होती ही है, निर्यात भी काफी होता है। प्रायः सभी तरह के फलों और तरकारियों को आधुनिक ढंग से डिब्बों में बन्द करके रखा जाता है। इस प्रकार वे फल और तरकारियाँ लोगों को उस मौसम में भी मिल पाती है, जब वास्तव में उनकी पैदावार नहीं होती। इनमें खास-खास ये हैं। नारंगी, नीबू, आम, अनन्नास, अमरूद, सेव, नाशपाती, आंवला, टमाटर और मटर।

दिल्ली में शर्बत, मुरब्बा, चटनी आदि बनाने वाले एक कारखाने को देखकर यह ज्ञात हुआ कि वहाँ कर्मचारी बड़ी फुर्ती और चतुराई से यह काम करते हैं। इनमें पुरुष भी हैं और स्त्रियाँ भी। उन्होंने बताया कि काम सीखना अधिक कठिन नहीं है। बहुत थोड़े समय के अनुभव से ही वे कुशलता पूर्वक इस काम को करने लगे हैं। इस कारखाने में करीब ५०-६० कर्मचारी काम करते हैं। फलों और तरकारियों को धोने, छिलके उतारने और काटने का काम औरतें करती हैं। उबालने, रस निकालने, डिब्बे और बोतलें बन्द करने तथा मशीनें चलाने का काम पुरुष-कर्मचारियों द्वारा किया जाता है।

बाग लगाकर फल और तरकारियां उपजाने के कार्य से फल संरक्षण उद्योग का सीधा सम्बन्ध है। एक उदाहरण लीजिये—उत्तर प्रदेश में जगह जगह जो बढ़िया मटर पैदा होते हैं, वे बड़े पैमाने पर मथुरा, लखनऊ, इलाहाबाद और दिल्ली में डिब्बों में बन्द किए जाते हैं और इस प्रकार सारे साल लोगों को खाने को मिलते हैं। इसके अलावा, नारंगी, अनन्नास, आड़ू, आम आदि फलों का रस सुन्दर पेय के रूप में बरता जाता है।

भारत सरकार ने १९५५ के आवश्यक सामग्री अधिनियम के अन्तर्गत फलों की वस्तुओं पर नियंत्रण रखने का एक आदेश निकाला है, जिसका उद्देश्य यह है कि फलों को डिब्बा बन्द करने या शर्बत बनाने आदि का कार्य सफाई से और अच्छी तरह किया जाय। यह स्पष्ट है कि अगर इस प्रकार के डिब्बा-बन्द फल और तरकारियाँ हर मौसम में अच्छी हालत में उपलब्ध हो सकेंगी तो उनकी लोकप्रियता बढ़ेगी और इस उद्योग के विकास में भी उससे सहायता मिलेगी।

इस आदेश में इस बात पर जोर दिया गया है कि बढ़िया फल और तरकारियाँ ही डिब्बों में बन्द की जाएँ और इनकी पैकिंग आदि सफाई से हो। इसके लिये निश्चित प्रतिमान निर्धारित किये गये हैं। अब सरकार से लाइसेंस लिये बिना कोई भी कारखाना फलों को डिब्बा बन्द करने का काम शुरू नहीं कर सकता। सरकार के निरीक्षक नियमित रूप से कारखानों का निरीक्षण करते रहते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि अच्छे फल और तरकारियाँ ठीक ढंग से रखे जायें। कारखानों और परचूनियों के यहाँ से इनके नमूने लेकर मैसूर की

केन्द्रीय खाद्य प्राद्योगिकी गवेषणशाला में विश्लेषण के लिये भेजे जाते हैं।

इसका लाभ यह हुआ है कि अब देश में बढ़िया किस्मों के डिब्बा बन्द फल मिलने लगे हैं और उनकी माँग भी बढ़ी है।

१६५५-५६ में लगभग ७५० लाइसेंस प्राप्त कारखानों ने कुल २ करोड़ रु० के मूल्य के करीब २० हजार टन डिब्बा बन्द फल मुरब्बे, चटनियाँ आदि तैयार कीं। इनमें से अधिकाँश कारखाने छोटे हैं और स्थानीय आवश्यकताओं की ही पूर्ति करते हैं। ये कारखाने मुख्यतः बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, अमृतसर, मथुरा, नागपुर, बंगलौर और त्रिचूर में हैं।

निर्यात

भारत से फलों की वस्तुएँ जिन देशों को भेजी जाती हैं, उनके नाम ये हैं। ब्रिटेन अमेरिका, पश्चिमी एशियाई देश, यूरोप और दक्षिण पूर्वी एशिया। सन् १६५६ में कुल मिला कर लगभग २२ लाख ५० हजार रु० के मूल्य की फलों की वस्तुयें बाहर भेजी गईं। मुख्यतः चटनियाँ, अचार, डिब्बा-बन्द फल और तरकारियाँ भारत से दूसरे देशों को भेजी जाती है। चटनियों और अचारों का निर्यात तो पिछले सौ साल से भी अधिक समय से किया जाता है, किन्तु डिब्बा बन्द फलों और तरकारियों का निर्यात इधर हाल के वर्षों में ही शुरू हुआ है। भारत का आम दुनिया भर में मशहूर है। इसलिये, आम की चटनी की विदेशों में काफी माँग रहती है।

देश में फलों और तरकारियों की उपज बढ़ाने के लिये नये बाग लगाने तथा बागों को बढ़ाने के लिये कुल १,०५,००,००० रु० की योजनाएँ बनायी गयी हैं। फल संरक्षण के पाँच बड़े और २०० छोटे कारखाने खोलने के लिए ऋण देने की व्यवस्था रखी गई है। डिब्बे बनाने के काम आने वाले टीन के लिये भी आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त पाँच क्षेत्रीय गवेषणा केन्द्र भी खोले जायेंगे। आशा की जाती है कि १६६०-६१ तक देश में फलों की वस्तुओं का उत्पादन ४० हजार टन तक बढ़ जायगा।

विज्ञान समाचार

शान्तिपूर्ण परमाणु

कपड़ा उद्योग में रेडियो सक्रिय आइसोटोप

सब कपड़ों में धागों का ताना-वाना रहता है। ये धागे मोटाई में सब जगह एक से होने चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राविधिक प्रक्रिया पर उत्पादन के सभी स्तरों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है; और कन्वस, रिबन और रोब अर्थात् वह माल, जो अन्तिम अवस्था तक नहीं पहुँचा है, और जिसे यार्न में बदला जाता है, उच्च गुण का होना चाहिये।

सूती माल उद्योग के केन्द्रीय अनुसन्धान केन्द्र की आइसोटोप प्रयोगशाला में रेडियो सक्रिय विकिरण के प्रयोग पर आधारित क्रिया के सिद्धान्त और रचना के सम्बन्ध में माप के बहुत से दिलचस्प तरीके ईजाद किये गये हैं।

उनमें से एक रेडियो-सक्रिय विधि द्वारा असमानता का निश्चय कराने वाला रोन नामक यन्त्र है, जिसका विश्व में सर्वत्र प्रचलन है। यह एक स्वतः अंकन करने वाला यंत्र है, लगातार कागज के रिबन पर इस प्रकार का चित्र अंकित करता जाता है, जिससे नियंत्रणान्तर्गत पदार्थ की समानता कितनी है, इसका पता चलता है। साथ में ही यह उपकरण एक विशेष प्रकार के यंत्र की सहायता से अपूर्ण पदार्थ की क्वालिटी कोएफीशियेंट के निर्धारण के लिए आवश्यक गणनाएँ भी करता है। नियंत्रण प्रक्रियाओं में १० से २० गुना तेजी आ जाती है। इससे हैकलिंग मशीनों, ड्राइंग फ्रेमों तथा अन्य यंत्रों के कार्य की प्राविधिक प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के दोषों को दूर करना सम्भव हो जाता है।

आइसोटोप प्रयोगशाला ने रुई को एक्चर में डालने के लिए स्वचालित रेगुलेटर भी तैयार किये हैं, जिससे अधिक समान कन्वस का उत्पादन सुनिश्चित बन जाता है।

सबसे नयी चीज कन्वस को लगातार काम करने ब्लीचिंग एग्रीगेट में पहुँचाने की क्रिया से स्वतः नियंत्रण के लिए एक रेडियो-सक्रिय उपकरण है। इस ऐग्रीगेट का प्रथम परीक्षणात्मक नमूना इवानोवो के कास्नाया ताल्का कारखाने में स्थापित किया जायगा।

पारमाणविक भौतिकी की विधियाँ—आज विज्ञान के पास लगभग एक हजार रेडियो-सक्रिय आइसोटोप है। किन्तु रेडियो-सक्रियता रहित, स्थायी आइसोटोप भी विद्यमान है। उन्हें पता लगाना बड़ा कठिन है, क्योंकि वे किरणें नहीं छोड़ते। उनका पता बिल्कुल सही और सूक्ष्म उपकरणों की सहायता से ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार का अत्यधिक सही काम करने का यंत्र मास-स्पेक्टोमिटर पारमाणविक भौतिकी में प्रयुक्त किया जाता है। हाल के सालों में वैज्ञानिको ने औषधि और जीव-विज्ञान में इसका प्रयोग शुरू किया है।

शरीर में किसी दत्त पदार्थ के मार्ग का अनुकरण करने के लिये सम्बन्धित रेडियो-सक्रिय आइसोटोप को लेबल के रूप में अन्दर डाला जाता है। आयोनाइजित विकिरण को अंकित करने वाला काउण्टर इस लेवल की गति को दर्शायेगा। किन्तु वहाँ क्या होगा जहाँ ऐसे शरीर में, जो पहले ही विकिरण से प्रभावित है, जीव-रासानिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना अभीष्ट है? विकिरणजन्य बीमारी के लोगों में अथवा ऐसे लोगों में जो रेडियो-सक्रिय पदार्थों के साथ काम करते हैं, इस काउण्टर की सहायता से अध्ययन असंभव है। ऐसी हालतों में मास-स्पेक्टोमीटर अमूल्य सेवा करसकता है।

विज्ञान

भाग ८५ (१९५७ ई०, २०१४ वि०, १८७९ श०)

विषय-सूची

संख्या १

संख्या २

संख्या ३

संख्या ४-५

संख्या ६

विज्ञान
अक्टूबर १९५७

रजिस्टर्ड सं० ए ३७२

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

इस अंक में—

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद तथा मुद्रक ओंकार प्रेस, प्रयाग—१

भाग ८६ संख्या २

नवम्बर १९५७, वृश्चिक २०१४ वि०, कार्तिक १८७९ श०

हमारा नवीन प्रकाशन

रेल इञ्जिन
परिचय और संचालन

लेखक

श्री० ओंकार नाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०, भूतपूर्व, लोकोफोरमैन, बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे, चीफ मिकेनिकल इंस्ट्रक्टर, पूर्वोत्तर रेलवे।

पृष्ठ-संख्या (रायल साइज) ३४२, चित्र ८३, दो रंगीन प्लेट। मूल्य सजिल्द ६॥) अजिल्द ६)

इस पुस्तक के लेखक रेलवे के यान्त्रिक विभाग में कार्य-संचालन के अनुभवी विद्वान् हैं। भारतीय भाषाओं में इस विषय की पुस्तकों का अभी तक अभाव है। विद्वान् लेखक ने बहुत अधिक समय तक लगे रह कर प्रश्नोत्तरी के रूप में यह पुस्तक लिखी है। इसमें कुल ५८२ प्रश्न हैं जिनके उत्तर चित्रों के साथ समझाए गए हैं।

यह पुस्तक इंजन चलाने वालों और उनकी मरम्मत आदि करने वालों के उपयोग की है। होनहार ड्राइवरों के मार्ग-प्रदर्शन के लिए रेल-इंजिन परिचय के प्रथम अध्याय में परीक्षोपयोगी विशेष पाठ्य-क्रम भी दिया गया है। कार्यकर्ताओं की रुचि को समझते हुए, जटिल विषयों को सरल बनाने के उद्देश्य से कई सांकेतिक चित्रों को तरह तरह के शेडों से सज्जित किया गया है और यान्त्रिक चित्रों को भी यथा साध्य सरल बनाया गया है जिससे पाठकों को बहुत लाभ हो सकता है। ऐसे साहित्य से रेलवे कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ेगी और दुर्घटनायें कम होंगी जिससे देश को भी लाभ होगा।

विषय-सूची—प्रथम खण्ड—(१) ड्राइवर का जीवन और शिक्षाक्रम (२) विषय प्रवेश (३) वाष्प इंजिन के सिद्धांत (४) वाल्व और सिलिंडर का घटना चक्र (५) स्टिफेंस का वाल्व गति यंत्र (६) वाल्शर्ट और जॉय के वाल्व गति यंत्र (७) कैपरॉटी वाल्व गतियंत्र (८) पॉपेट वल्व गति यंत्र (९) इंजिन का यंत्र और फ्रेम (१०) वायलर (साधारण विवेचन) (११) बॉयलर (विशेष वर्णन) (१२) वाष्प का अति तप्ती-करण (१३) फीड पम्प, इंजेक्टर, फीड वाटर-हीटर और इकोनोमाइजर (१४) बायलर के सहायक यंत्र और उपकरण (१५) लुबरीकेटर और चिकनाई (१६) ग्रीज, तेल, कोयला, पानी और धातुओं के गुण आदि का विवेचन (१७) पदार्थ ताप, वाष्प और दबाव आदि की परिभाषायें और निवारण (१८) प्रज्वलन विज्ञान (१९) रेल का लाइन और गेज आदि (२०) सिगनल और इंटरलाकिंग। द्वितीय खण्ड—(२१) यात्रा की तैयारी—शेड में—(२२) रनिंग शेड से चलकर गाड़ी में लगना (२३) इञ्जन चलाना (२४) फायरमैन का काम कोयला झोंकने की वैज्ञानिक विधि—(२५) बीच के स्टेशनों पर ठहरना (२६) यात्रा के अंत में शेड में (२७) रेल संचालन नियम।

प्रदेश सरकार के अभिनव प्रकाशन

हिन्दी पुस्तक प्रकाशन योजना के ग्रन्थ

१—भारतीय ज्योतिष का इतिहास	डा० गोरख प्रसाद	४ रु०
२—तत्वज्ञान	डा० दीवान चन्द	४ रु०
३—हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास (अनुवाद)	डा० विभूति भूषण दत्त तथा डा० अवधेश नारायण सिंह	३ रु०
४—अरिस्तू की राजनीति (अनुवाद)	श्री भोलानाथ शर्मा	८ रु०
५—उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास	डा० नालिनाक्ष दत्त तथा श्री कृष्णदत्त बाजपेयी	६ रु०
६—डेवलपमेन्ट आफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश	उक्त पुस्तक का अंगरेजी संस्करण	८ रु०
७—सामाजिक पाषण (अनुवाद)	डा० बूलचन्द	३ रु०
८—संस्कृत का दार्शनिक विवेचन	डा० देवराज	६ रु०
९—संस्कृत आलोचना	श्री० बलदेव उपाध्याय	४ रु०
१०—पश्चिमी दर्शन	डा० दीवानचन्द	४ रु०
११—स्वतंत्र दिल्ली	डा० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी	४ रु०
१२—भारतीय ज्योतिष (अनुवाद)	श्री० शिवनाथ झारखन्डी	८ रु०
१३—भारतीय दर्शन	डा० उमेश मिश्र	८ रु०

सूचना विभाग के कुछ ग्रन्थ

	रु०	न० पे०
१—बुद्ध चित्रावली	६	
२—चाचा नेहरू	१	
३—उत्तर प्रदेश में लोक नृत्य	१	
४—राष्ट्रीय कविताएँ		५०
५—नग़मए आजादी		२५
६—नग़मए आजादी उर्दू		२५
७—आजादी के तराने		१२
८—भारतीय बुद्धि जीवी		७५
९—समाजवाद		६५
१०—ग्लोरीज आफ उत्तर प्रदेश	८	
११—स्पार्क्स फ्राम ए गवर्नर्स ऐन्विल (प्र० भा०)	५	
१२—स्पार्क्स फ्राम ए गवर्नर्स एन्विल (द्वि० भा०)	८	
१३—दी ट्रायल आफ अवर डिमोक्रेसी		७५
१४—इन्डियन इन्टेलेक्टुअल्स		७५
१५—एन एक्सपेरिमेन्ट इन साइलेन्स कल्टिवेशन		२५

कृपया व्यवसायिक नियमों और सीधे खरीददारी के लिए लिखें।

१—प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ;

२—सूचना साहित्य, करीदी बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ।

// विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८६ | वृश्चिक २०१४ विक्र० कार्तिक १८७६ शाकाब्द; नवम्बर १९५७ ई० | संख्या २

सम्पादकीय

४ अक्टूबर १९५७ को विज्ञान के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ—मानव पृथ्वी के लिये एक कृत्रिम उपग्रह बनाने में सफल हुआ। विज्ञान की उन्नति की दृष्टि से यह शताब्दी अपना विशेष महत्व रखती है। विज्ञान के मूलतत्त्वों से लेकर उन तत्त्वों के उपयोगों तक सब दिशाओं में उन्नति हुई है। ऊर्जा और पदार्थ के स्वभाव, उनका एक ही मूल के दो रूप होना, एक तत्त्व का दूसरे में परिवर्तन आदि के साथ साथ परमाणु और हाइड्रोजन बमों ने भी पदार्पण किया। इञ्जिनियरी में उन्नति होते होते अब ऐसे अस्त्र बन गये हैं जो चलाये जाने के स्थान से ही रेडियो कण्ट्रोल द्वारा परिचालित होकर सहस्त्रों मील की दूरी पर अपने निशाने पर चोट कर सकें। इन अस्त्रों की चालन क्रिया पर आधारित रीति से ही अब मानव ने नये उपग्रहों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया है (कृत्रिम उपग्रहों सम्बन्धी आयोजन के लिये देखिये विज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकीय विशेषाङ्क—भाग ८५, अङ्क ४–५)

इन कृत्रिम उपग्रहों का प्रयोजन मानव के भू और अन्तरिक्ष सम्बन्धी ज्ञान का विकास है और साथ ही चन्द्रमा तथा ग्रहों (मङ्गल आदि) की यात्रा की तैयारी के लिए इसे पहला चरण कह सकते हैं। जिस प्रकार गत शताब्दी में व्योम यात्रा की कल्पना भी उपहास प्रद थी, उसी प्रकार हो सकता है कि हमको अभी ग्रहों के साथ सम्पर्क स्थापित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य लगे, परन्तु विज्ञान की प्रगति को देखते हुए यह कहना कि हम नहीं तो आने वाली पीढ़ियाँ ग्रहों की यात्रा कर सकेंगी काफी आशा पूर्ण प्रतीत होता है। मनुष्य नहीं तो कम से कम अन्य जीव (श्वान) कृत्रिम उपग्रह में ३ नवम्बर से पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहा है।

ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक उन्नति हो रही है, ज्यों त्यों मनुष्य ज्ञान की सीमायें दूर होती जा रही हैं, त्यों त्यों वह अधिक भयभीत और सहमा हुआ प्रतीत होता है। उसे डर है कि कहीं ज्ञान के इन कपाटों को खोलते खोलते वह उस व्यक्ति की तरह अहंकारी न हो जाय जिसने अपनी

तपस्या के पुरस्कार रूप यह शक्ति मांगी कि जिसे वह छू ले वह सोना हो जाय......। किसी हद तक उसका भय सच्चा है—हम अपने ज्ञान की उन्नति के साथ साथ मोह, अहङ्कार और स्वार्थ पर विजय नहीं पा रहे। एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से, एक देश को दूसरे देश से, एक वाद के अनुयायी को दूसरे वाद के अनुयायी से भय है, और शायद घृणा भी। संक्षेप में मानव को मानव से घृणा है, उसके हाथ में अस्त्र हैं, उसके पास शक्ति है, और उसके पास है स्वार्थ और अहङ्कार की निर्बलता भी। स्वर्ग पाने की आशा में वह पृथ्वी से दूर खोज में जा रहा है परन्तु कहीं वह विध्वंस की ज्वाला में पड़कर नर्क में न पहुँच जाय। स्वर्ग ही संसार में सब कुछ नहीं, कोरी भौतिकता मानव को अमर नहीं बना सकती, अमरत्व के लिये चाहिए विज्ञान की आत्मा—सत्य।

———
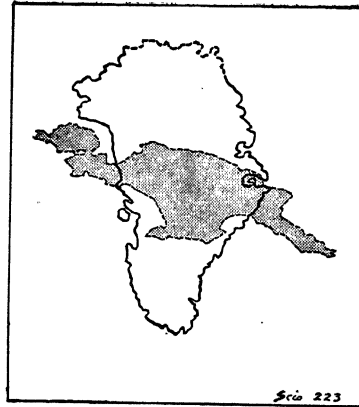
ग्रीनलैण्ड संसार का सबसे बड़ा द्वीप माना जाता रहा है (आस्ट्रेलिया जो इससे बड़ा है महाद्वीपों की श्रेणी में आ जाता है)। इसका क्षेत्रफल ८२७३०० वर्ग मील है। परन्तु इसकी बर्फ की तहों को नवीन खोजों से पता चलता है कि शायद यह तीन द्वीपों का समूह हो। यदि ऐसा है तो न्यूगिनी, जिसका क्षेत्रफल ३१६८६१ वर्ग मील है, संसार का सबसे बड़ा द्वीप होगा।

ऊर्जा का संभावी स्रोत–सूर्य

[श्री दुलह सिंह कोठारी]

समूची सभ्यता के मूल आधार ऊर्जा के परम्परागत रासायनिक साधनों के संचय अति सीमित हैं। ऊर्जा का अभाव समस्त प्रगतिशील राष्ट्रों के लिये चिंता का महान कारण है। अनुमान है कि पृथ्वी के गर्भ में कोयले तथा पेट्रोल के जो संचय हैं, वे हजार वर्ष में ही समाप्त हो जावेंगे। हमारी सभ्यता का तब क्या होगा? आधुनिक युग का कदाचित् यही सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जो विज्ञान को सम्पूर्ण प्रगति को चुनौती दे रहा है।

विभिन्न राष्ट्र जहां एक ओर पवन तथा जल शक्ति के उपयोग में यथा संभव वृद्धि करने में प्रयत्नशील हैं वहां दूसरी ओर शक्ति के महान् क्रान्तिकारी एवं संभावी साधन "परमाणु" तथा "सूर्य" के विकास में भी बड़ी ही स्फूर्ति, संलग्नता तथा कर्तव्यपरायणता से काम किया जा रहा है। परमाणु शक्ति का जहां तक प्रश्न है—गत महायुद्ध के समय में आशा से अधिक प्रगति हुई। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि "परमाणु" शक्ति का महान साधन है और संसार अब परमाणु युग में प्रवेश करना ही चाहता है। "परमाणु" पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के साथ ही साथ सूर्य की ओर भी हमारा ध्यान उचित मात्रा में जाना ही चाहिए। सर्व साधन-सम्पन्न एवं समृद्ध शाली राष्ट्रों की बात तो कुछ भिन्न है, परन्तु छोटे तथा पिछड़े हुए देशों का जहां तक सम्बन्ध है, अपने समूचे वैज्ञानिक एवं आर्थिक साधनों को परमाणु-शक्ति के विकास में लगाने के स्थान पर सूर्य-शक्ति को साधने में लगाना विशेष लाभप्रद जान पड़ता है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश जहां पर वर्ष भर में ६ महीनों से अधिक समय तक सूर्य भयंकर प्रखरता के साथ आलोकित होता है सूर्य शक्ति का भविष्य निसंदेह महान उज्ज्वल है।

सूर्य विशालकाय सोज्ज्वल पिंड है। इसका व्यास ८६४००० मील है। अर्थात् पृथ्वी के व्यास का १०८ गुना हमारी इस पृथ्वी के आकार के लगभग १३००००० पिंड सूर्य में समा सकते हैं। इसका भार २×१०^{२७} टन तथा घनत्व १·४ है। अत्यन्त संपिडन के परिणाम स्वरूप इसके केन्द्रीय भागों का घनत्त्व औसतन घनत्व का ५० गुना है। सूर्य में लगभग वह रासायनिक तत्व हैं जो हमारी पृथ्वी में विद्यमान हैं। इसके धरातल का औसत ताप ५७००° सेन्टीग्रेड है---उबलते हुए पानी के ताप का ५७ गुना। परन्तु इसके भीतरी भागों में ताप शनैः शनैः बढ़ता जाता है, यहां तक कि केन्द्र पर पहुँचते पहुँचते तो ताप २०० लाख डिगरी के लगभग हो जाता हैं।

सूर्य ऊर्जा का महान स्रोत है। इसके धरातल के प्रत्येक वर्ग इन्च से ६२ हार्स पावर याने (अश्व-शक्ति ऊर्जा का विकिरण हो रहा है। सूर्य से बहुत दूर (६२० लाख मील) होने के कारण पृथ्वी पर तो इस शक्ति का अति सूक्ष्म अंश ही पहुँच पाता है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि समस्त प्राणी वर्ग एवं बनस्पति जगत का मूल आधार यही सूर्य है। शक्ति के जितने भी रासायनिक एवं अन्य साधन जो हमें उपलब्ध हैं वे सब के सब सूर्य शक्ति के ही परिणाम हैं। यहां तक कि परमाणु-शक्ति जो यूरेनियम तत्व के परमाणु के विखंडन से तथा उद्जन गैस के परमाणुओं के संगलन से प्राप्त होती है उसका मूल उद्गम भी तो सूर्य ही है। विद्युत् शक्ति को भी एक प्रकार से सूर्य ही की देन समझना चाहिये। इतना होते हुए भी विचित्र बात तो यह है कि सूर्य शक्ति का ६८ प्रतिशत भाग व्यर्थ हो जाता है। एक ओर तो शक्ति का इतना अकाल दूसरी ओर शक्ति का इतना व्यर्थ में व्यय यह कैसी उलझन है। क्य हम सूर्य शक्ति का अधिक अंश में उपयोग नहीं कर सकते। वर्तमान समय की यह भी एक बड़ी समस्या है जिसको सुलझाने में विविध देश संलग्न हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि

हमारी (भौतिक विज्ञान की) राष्ट्रीय प्रयोगशाला में भी इस क्षेत्र में विशेष प्रगति के साथ अनुसंधान किए जा रहे हैं।

अनन्त समय से सूर्य आकाश में ऊर्जा का प्रसरण करता आया है। इस अतुल्य शक्ति का उद्गम क्या है? आधुनिक मतानुसार इसका मूल कारण हाइड्रोजन गैस के परमाणुओं के नाभिकों का हिलियम गैस के परमाणुओं के नाभिकों में परिवर्तन होना है। हल्के नाभिकों के संयोग से भारी नाभिक के बनने की इस क्रिया को संगलन कहते हैं। संगलन क्रिया के लिये दस लाख अंश से भी अधिक ताप एवं हमारी वायु के दबाव से लाखों गुना अधिक दबाव आवश्यक है। सूर्य के भीतरी भागों में अनुकूल भौतिक अवस्थाएं विद्यमान होने के कारण संगलन क्रिया निरन्तर गति से हो रही है। हाइड्रोजन के इस संगलन में द्रव्य का क्षय होता है। जगत विख्यात एवं आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ट वैज्ञानिक स्वर्गीय डा० आइन्स टाइन के महान क्रान्तिकारी सिद्धान्त के अनुसार जब कभी द्रव्य का क्षय होता है तो (तुल्यांक मात्रा में) शक्ति मुक्त होती है, क्योंकि शक्ति एवं द्रव्य भिन्न तत्व न होकर एक ही तत्व के विभिन्न रूप हैं जिनका परस्पर में रूपान्तर अनुकूल भौतिक अवस्थाओं में संभव है। अतः संगलन में जो शक्ति मुक्त होती है उसका कारण द्रव्य का क्षय है। हाइड्रोजन बम का भी यही सिद्धान्त है। सूर्य तथा बम में अन्तर केवल इतना ही है कि सूर्य की अपेक्षा बम में संगलन के कारण हाइड्रोजन की मात्रा में निरन्तर कमी होते हुए भी वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सूर्य में इतना हाइड्रोजन है कि वह ३००००० लाख वर्ष तक बिना किसी संकट के शक्ति का बेतरह प्रसरण करता रहेगा। शक्ति का कैसा विशाल तथा भयंकर स्रोत है।

यद्यपि उसे अभी तक इस क्षेत्र में विशेष सफलता नहीं मिली, फिर भी सूर्य शक्ति के उपयोग के सम्बन्ध में तो मानव सदा से ही जिज्ञासु रहा है। सूर्य-शक्ति को ऊष्मा में परिवर्तन करने की विधि बहुत प्राचीन है। यह विधि यूनानियों को भी ज्ञात थी। विशालकाय दर्पण तथा ताल द्वारा सूर्य की रश्मियों को एक स्थान पर संद्रण (केन्द्रित) करने से जो ऊष्मा प्रकट होती है उससे पानी को वाष्प में परिवर्तित किया जाता है और फिर उस वाष्प की शक्ति को साधारण ढंग से यान्त्रिक शक्ति में बदल दिया जाता है। पानी के स्थान पर तेल भी काम में लाया जा सकता है। सौर-एंजिनों का यही सिद्धान्त है। आज तक कई प्रकार के सौर-एंजिनों का निर्माण किया जा चुका है। परन्तु अभी तक इस क्षेत्र में सन्तोषप्रद सफलता नहीं मिल पाई। इसके कई कारण है। प्रथम तो इन एंजिनों का उपयोग दिन के समय सूर्य की साक्षी में ही हो सकता है। द्वितीय आर्थिक दृष्टि से भी यह विशेष लाभदायक सिद्ध नहीं हो सके हैं। तृतीय इनके लिए बहुत पैमाने में खुली जगह चाहिए। इस प्रकार और भी कारण हैं। परन्तु परिश्रमशील वैज्ञानिकों के सतत प्रयासों पर पूर्ण विश्वास करते हुए यह आशा की जा सकती है कि सूर्य शक्ति से संचलित एंजिनों का उपयोग हमारे छोटे मोटे कारखानों में आटा पीसने की चक्कियों को चलाने में कुओं तथा तालाबों से जल खींचने में, समुद्रीय जल को विशुद्ध करने में बर्फ बनाने इत्यादि कार्यों में सफलता पूर्वक किया जा सकेगा। विशेष कर राजस्थान के मरुस्थलों में तो सौर-एंजिन अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं अतः हम राजस्थान सरकार का ध्यान इस ओर विशेषरूप से आकर्षित करना चाहते हैं। जहाँ तक यातायात के साधनों का प्रश्न है वे निकट भविष्य में सूर्य शक्ति से संचालित किए जा सकें इसमें कुछ संदेह है।

सूर्य शक्ति से प्रज्ज्वलित भट्टियों का भी निर्माण किया गया है। इन भट्टियों में सामान्यतः १००० से ३५०० डिग्री तक ताप उत्पन्न किया जा सकता है। अमेरिका में ऐसी भट्टियों का अनुसंधान किया जा रहा है, जिनका ताप संभवतः ४००० डि० से० से ८००० डि० से० तक हो सकेगा। भोजन बनाने के चूल्हे भी बनाये गये हैं, जिनमें सूर्य शक्ति का प्रयोग किया गया है। हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशाला दिल्ली में भी इस प्रकार के चूल्हे तैयार किये गए हैं। भारतवर्ष में इंधन का अभाव होने से प्रत्येक वर्ष लोग लाखों मन गोबर काम में लेते हैं। हमारे कृषि-प्रधान देश के लिए इससे अधिक हानिकारक

और क्या चीज हो सकती है? इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे यहाँ इस प्रकार के चूल्हों का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। भारत सरकार के अनुमान के अनुसार हमको दस करोड़ चूल्हों की आवश्यकता होगी। परन्तु इन चूल्हों को व्यावहारिक दृष्टि से सफल बनाने के लिए अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है। जब तक चूल्हों से रात्रि के समय में भी काम नहीं लिया जा सकता तब तक वे उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते।

कुछ ऐसी बेटरियों पर अनुसंधान किया जा रहा है जिनके द्वारा सूर्य शक्ति को सीधे ही विद्युतशक्ति में परिवर्तित कर सकें। इस सम्बन्ध में वैसे तो संसार की अनेक प्रयोगशालाओं में काम किया जा रहा है परन्तु अमेरिका की प्रसिद्ध बेल की प्रयोगशालाओं में जो कार्य हो रहा है वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन बेटरियों में सिलीकन के पतरे काम में लाये जाते हैं। जब सूर्य का प्रकाश इन पर पड़ता है तो मुक्त ऋणाणु विद्युतधारा के रूप में प्रवाहित होने लगते हैं। इस तरह की बेटरियों से भले ही बहुत विशाल परिमाण में विद्युत शक्ति उत्पन्न नहीं की जा सके फिर भी छोटे मोटे उद्योगों में इनका उपयोग अवश्य ही क्रान्तिकारी सिद्ध होगा। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि शक्ति के इस महान स्रोत की उपयोगिता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि कित प्रकार से दिन के समय सूर्यशक्ति को संचित कर रात्रि के समय उसका उपयोग किया जा सके। आज वैज्ञानिक लोग इस समस्या को समझने में संलग्न हैं।

कितनी विचित्र बात है कि जो कार्य मनुष्य आज तक करने से असफल रहा, वही कार्य बनस्पति बड़ी ही सुगमता से एवं दक्षता से करने का अतुल्य सामर्थ्य की रखती है। सूर्य की रोशनी में पेड़-पौधे वायु से कार्बन-डाई-आक्साइड गैस एवं पानी तथा भूमि से कतिपय लवण एवं तत्त्व ग्रहण कर, विशेष प्रकार की क्रिया द्वारा जिसे पारिभाषिक भाषा में "भासलेषण" कहते हैं— उनको भोजन के सारभूत तत्व जैसे कुकिलाप, शक्कर, प्रभुजिन इत्यादि में परिवर्तन करते रहते हैं। पेड़-पौधे निसंदेह अपने लिए ही भोजन तैयार नहीं करते, परन्तु समस्त प्राणी जगत के लिए भोजन पदार्थों को बनाते हैं। वनस्पतियों तथा प्राणियों में यही बड़ा अन्तर है।

भासलेषण क्रिया एक विचित्र किया है जिसके गूढ़ रहस्य को समझने में आज का विज्ञान पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सका है वैज्ञानिक गण बड़ी साधना तथा संयम से अपने नवीन साधनों के द्वारा इस क्रिया के अध्ययन में व्यस्त हैं। भासलेषण द्वारा जो भी सूर्यशक्ति हमको प्राप्त होती है उसका २-३ प्रतिशत अंश काम में आता है। जल में एक प्रकार की बनस्पति होती है जो ५-१० प्रतिशत सूर्य शक्ति जो काम लाने की दक्षता रखती है। अमेरिका तथा रूस में उपज में भारी वृद्धि करने हेतु ऐसे पेड़-पौधों के नमूने पैदा किये जा रहे हैं जो सूर्यशक्ति को अधिक मात्रा में ग्रहण कर सकें। जिस दिन मनुष्य भासलेषण क्रिया के रहस्य को भली प्रकार से समझ लेगा वह प्रयोग शाला में कृत्रिम विधि से द्रव्य तथा शक्ति से हमारे भोजन के सभी पदार्थों को उत्पन्न कर सकेगा वह दिन कितना महत्त्वपूर्ण होगा तथा क्रातिन्कारी होगा उसकी कोरी कल्पना भी करना इस समय हमारे लिए संभव नहीं।

सूर्य शक्ति के उपयोग से संसार में शान्ति का नवीन युग स्थापित हो आधुनिक विज्ञान इसी ओर प्रयत्नशील है।

———

कृषि-विज्ञान को डा० धर की देन

डा० शिवगोपाल मिश्र, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है, जिसके अधिकांश निवासियों का मुख्य उद्यम कृषि है। किन्तु सबसे बड़ी समस्या जो इस समय प्रत्येक सहृदय नागरिक के समक्ष है, वह है अधिक खाद्यान्नों की उत्पत्ति के द्वारा बढ़ती हुई जनसंख्या के उदर-भरण की।

यदि हम भारतीय कृषि के क्रमिक विकास पर दृष्टि-पात करें तो ज्ञात होगा कि वैदिक काल से लेकर कृषि की अविच्छिन्न परम्परा मुगलकाल तक रही। धीरे धीरे पैदावार में इतनी न्यूनता आई और जनसंख्या में इतनी द्रुत-अभिवृद्धि हुई कि सर्वसाधारण की आँखें खुलने लगीं और अन्न की कमी सबों को अखरने लगी। जल-वायु ने भी समय समय पर धोखे दिये। सम्राट अकबर के काल से अब तक के भारतीय कृषि-विकास का इतिहास अकालों से भराभूरा मिलेगा।

वैज्ञानिक प्रवृत्तियों ने कृषि-क्षेत्र में कब जोर पकड़ा, कहना दुष्कर है किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि अकबर के अनुभवी मंत्री टोडरमल ने भूमि की पैमाइश करके मिट्टियों की उर्बरता के अनुसार उन पर जो लगान बैठाये, वे आज भी हमारे कृषि वैज्ञानिकों के लिए मार्ग दर्शक का काम कर रहे हैं। इस काल में घाघ और भड्डुरी जैसे अनुभवी कृषि-पंडितों के जन्म हुये, जिन्होंने कृषि के व्यावहारिक ज्ञान को कृषकों के लिये सुलभ बनाया। परन्तु कालक्रम में, राज्यों के परिवर्तन होने के कारण, उनकी वाणियाँ केवल कहावतों के रूप में रह गईं। यद्यपि आज भी कुछ कृषक उनसे लाभान्वित होते हैं किन्तु बढ़ती हुई दुनियाँ के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलने के लिए ऐसी आदर्शवादी वस्तुयें कारगर सिद्ध न होंगी। हमें तो आगे बढ़कर वैज्ञानिक रीतियों का अनुसरण करते हुये राष्ट्र कल्याण सम्पादित करना है।

वर्तमान युग में कृषि विज्ञान को महत्व देने वाले महापुरुषों में डाक्टर नील रतन धर का नाम अग्रणी है। उन्होंने अपने साठ वर्ष के जीवन में आधे से अधिक समय कृषि की समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन में लगाया है। प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में अध्यक्षता करते हुये, रसायन के विभिन्न अंगों में अनु-संधान करते-कराते, उन्होंने एकाएक अपनी दिशा में मोड़ ला दिया। सन् १६३५ के पश्चात् से जितना भी शोध-कार्य उन्होंने करवाया वह कृषि-विज्ञान से सम्बन्धित है।

कृषि-वैज्ञानिक बनने की उनकी एक अलग कहानी है। चीनी की मिलों में बचे हुये शीरे का कोई प्रयोग

न होता था। देहात के कुछ लोग तम्बाकू के साथ उसे मिलाकर उपयोग में लाते। किन्तु डा० धर ने सर्व प्रथम इस प्रकार के शीरे को उत्तर-प्रदेश की क्षारीय मिट्टियों को उर्वरा बनाने के लिये प्रयुक्त किया। ऐसा करने पर पांच छह माह में मिट्टी ही उर्वरा न बनी वरन् उसकी नाइट्रोजनीय-स्थिति में सुधार हुआ। इस कारण की जाँच करने पर पता चला कि वायुमंडल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण हुआ है जो शीरे के आक्सीकरण होने पर निस्सृत ऊर्जा के द्वारा ही सम्भव था। फिर क्या था डा० धर ने अनेक प्रयोग किये जिनमें शीरे के स्थान पर चीनी, गुड़, अन्य कार्बनिक यौगिक तथा अन्त में तिन, भूसा, पेड़ों को पत्तियाँ, बुरादा तथा सभी प्रकार की फसलों के अवशेषों को मिट्टी के साथ मिलाया और विभिन्न अवधियों के पश्चात् नाइट्रोजनीय-स्थिति का पता लगाते रहे। ऐसे प्रयोगों से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि सूर्य के प्रकाश में कार्बनिक पदार्थों का आक्सीकरण शीघ्रगामी होता है जब कि अंधकार में मन्दतर। यही नहीं, इस आक्सीकरण में उत्पन्न ऊर्जा के द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता रहता है। मिट्टी में पहले अमोनिया तत्पश्चात् नाइट्रेट की अभिवृद्धि निश्चित रूप से ऐसी प्रक्रिया की पुष्टि करती है।

डा० धर ने यह भी देखा है कि शीरे के अतिरिक्त अन्य कार्बनिक पदार्थों को ऊसरों के उर्वरीकरण और खेती के योग्य बनाने में, प्रयोग में लाया जा सकता है। आक्सीकरण से जो कार्बन डाइआक्साइड बनती है वह ऊसरों की क्षारता को नष्ट कर देती है। यही नहीं अन्य कार्बनिक अम्ल भी पैदा होते हैं, जो क्षारों के उदासीनीकरण में सहायक होते हैं। डा० धर ने पत्थर के कोयले के चूर्ण का भी प्रयोग ऊसरों को सुधारने के लिये किया है। आसाम के कोयले में गंधक होती है जो कालान्तर में गन्धकाम्ल में परिवर्तित होकर क्षारों को नष्ट करती है।

डा० धर ने फासफेटों के एक महत्वपूर्ण गुण की खोज की है। उनका मत है कि किसी भी कार्बनिक पदार्थों के साथ फासफेटीय पदार्थ डाल देने से मिट्टी में स्थिर-नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है। यही नहीं नाइट्रोजन क्षति को भी रोकने में फासफेट सहायक होते हैं।

कम्पोष्ट बनाने के लिये डा० धर के तरीके भी बड़े लाभप्रद हैं। उनका कथन है कि यदि कार्बनिक पदार्थों (गोबर, पत्ती, सेवार, सुंदरी, खर-पतवार, भूसा, तिन बुरादा) को उनके दशमांश मिट्टी के साथ कई महीनों तक के लिये प्रकाश में छोड़ दिया जाय तो अधिकांश कार्बन आक्सीकरित हो जायगा और जो कम्पोष्ट बनेगी वह नाइट्रोजन में धनी होगी। यदि साथ में फासफेट का प्रयोग किया गया तो अधिकाधिक नाइट्रोजन प्राप्त होगी क्योंकि फासफेट के कारण नाइट्रोजन क्षति ही नहीं रुकेगी वरन् कुछ वायुमंडलीय नाइट्रोजन भी स्थिर होगी। जिन फासफेटीय पदार्थों का प्रयोग धर साहब कराना चाहते हैं वे चट्टानीय फासफेट, हड्डी अथवा बेसिक-स्लैग हैं। बेसिक स्लैग इस्पात के कारखानों से प्राप्त होने वाली उपेक्षित सामग्री है जिसमें ५से १०% फासफेट वर्तमान होता है।

डा० धर फासफेटों की घुलनशीलता एवं उनकी प्राप्ति पर भी प्रचुर शोध करा चुके हैं। उन्होंने देखा है कि जब अघुलनशील फासफेटों—चट्टानीय फासफेट या बेसिग स्लैग...को कार्बनिक पदार्थों के साथ कम्पोष्ट किया जाता है या मिट्टी में मिलाया जाता है, वे घुलनशील बनकर फासफेटीय-प्राप्ति में अभिवृद्धि कर देते हैं। विभिन्न खनिज फासफेटों के जलांशयन से उन्हें यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश तथाकथित अघुलनशील फासफेट पानी में घुलनशील हैं।

डा० धर की सबसे महत्वपूर्ण देन है कार्बनिक पदार्थों के साथ अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग। उनका कथन है कि ऐसा करने से नाइट्रोजनीय यौगिकों में से नाइट्रोजन-क्षति की मात्रा में ह्रास होता है और भूमि की ह्यूमस स्थिर रहती है भूमि के उर्वरीकरण में कार्बनिक पदार्थों के महत्व पर वे इतना जोर देते हैं कि किसी भी प्रकार के खर पतवार तक के विनष्टीकरण को वे राष्ट्रीय-क्षति में गणना करते हैं।

उनकी खोजों से अभी तक भारतीय कृषक उस कोटि तक लाभान्वित नहीं हुये जितना चाहिये था। इसका मुख्य कारण यह है कि राष्ट्रीय सरकार का उन्हें प्रश्रय नहीं मिला। अपने ही बल पर जितना प्रचार वे कर पाये हैं वह पर्याप्त होते हुये भी, इस वर्तमान युग के लिए सन्तोष-जनक नहीं। हमें विश्वास है कि जब भारतवर्ष खाद्यान्न संकट से घिरा है, डा० धर की खोजों से लाभ उठाकर अधिकाधिक अन्नोत्पादन कर सकेगा।

प्रथम कृत्रिम चन्द्र
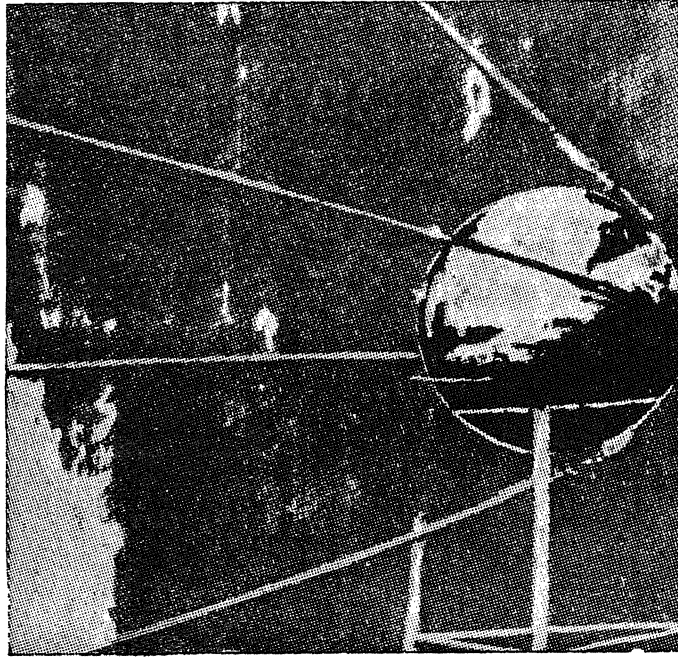
सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने ४ अक्टूबर १९५७ को कृत्रिम चन्द्रमा की स्थापना करके इतिहास में एक नवीन चरण प्रारम्भ कर दिया है। एक मास में इसने पृथ्वी की ४४१ बार प्रदक्षिणा कर ली है। इस चन्द्र के भार आदि इस प्रकार हैं—

भार—१८३ पाउण्ड (प्रायः ९० सेर)

आकार—गोल (गेंद के समान)

व्यास—२३ इञ्च

पृथ्वी से दूरी—प्रायः ५६० मील

वेग—१८,००० मील प्रति घण्टा

कक्षा में एक चक्कर लगाने की अवधि—९५ मिनट।

कक्षा का विषुवत् रेखा से झुकाव—६५ अंश।

इससे आने वाले रेडियो सिगनल ब्लीप, ब्लीप... (७.५ और १५ मीटर पर) उसकी बैटरियाँ खराब हो जाने के कारण बन्द हो गये हैं।

द्वितीय कृत्रिम उपग्रह

वायुमंडल की ऊपरी सतहों और साथ ही ब्रह्मांडीय (कास्मिक) अवकाश में जीवन की अवस्थाओं तथा भौतिकीय प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के अन्तर्राष्ट्रीय भू भौतिकी वर्ष के कार्यक्रम के अनुरूप सोवियत संघ में ३ नवम्बर को दूसरा कृत्रिम उपग्रह छोड़ा गया है।

द्वितीय कृत्रिम उपग्रह कैरियर राकेट का जिसमें वैज्ञानिक यन्त्रों के बक्स रखे हुए हैं, अन्तिम भाग है।

द्वितीय कृत्रिम उपग्रह में ये वस्तुएँ रखी गयी हैं:— वर्णपट (स्पेक्ट्रम) के किरण क्षेत्र में और लघु तरंग लोहितोतर (शार्ट अल्ट्रा वायलेट) में सौर विकीरण (सोलर रेडियेशन) का अध्ययन करने वाले यंत्र, ब्रह्मांडीय किरणों का अध्ययन करने वाले यन्त्र, तापमान तथा दबाव का अध्ययन करने वाले यंत्र, वायु-निरोधक बक्स जिसमें परीक्षण के लिए पशु (कुत्ता) रखा गया है, तापानुकूलित (एयरकंडिशनिंग) व्यवस्था, ब्रह्मांडीय अवकाश में परिस्थितियों की जीवन्त प्रक्रियाओं के अध्ययनार्थ यन्त्र तथा भोजन, पृथ्वी की वैज्ञानिक माप के परिणाम प्रेषित करने के लिए मापयन्त्र, ४०.००२ और २०,००५ मेगासाइकिल पर (क्रमशः लगभग ७.५ और १५ मीटर वेवलेंग्थ के) काम करने वाले दो रेडियो ट्रान्समीटर, आवश्यक शक्ति साधन।

उपरलिखित यंत्रों, प्रयोग के लिये रखे गये कुत्ते और शक्ति का इन्तजाम करने वाले साज-सामान का कुल वजन ५०८.३ किलोग्राम (आधा टन) है।

पर्यवेक्षण के अनुसार उपग्रह को लगभग आठ हजार मीटर प्रति सेकंड का कक्षीय वेग दिया गया है।

अनुमानों के अनुसार, जिनकी इस समय प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा छानबीन की जा रही है, भूमि की सतह से उपग्रह की अधिकतम दूरी १५०० किलोमीटर (६३० मील से अधिक है, एक पूर्ण परिक्रमा में उसे एक घन्टा बयालीस मिनट लगते हैं, कक्ष का भूमध्य रेखा के तल से लगभग ६५ डिग्री का कोण है।

उपग्रह से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार वैज्ञानिक यंत्र और पशु की दैहिक गत्यात्मकता का नियंत्रण सामान्य स्थिति में चल रहा है।*

उपग्रह के रेडियो ट्रांसमीटरों के संकेत २०,००५ मेगासाइकिल पर टेलिग्राफ की ध्वनियों से मिलते हैं, जो ०.३ सेकंड तक जारी रहते हैं और इतने ही समय तक बन्द रहते हैं। ४०.००२ मेगासाइकिल पर काम करने वाला ट्रांसमीटर निरन्तर संकेत प्रेषित करता रहता है।

विविध प्रकार के वैज्ञानिक यंत्रों और प्रयोग के लिए रखे गये जानवर से युक्त इस उपग्रह के सफलतापूर्वक छोड़े जाने पर वैज्ञानिक वाह्य ब्रह्मांडीय अवकाश तथा वायु मंडल के ऊपरी सतहों का अध्ययन करने के कार्यक्रम को बढ़ा रहे हैं। अन्तरिक्ष में होने वाली अथाह प्राकृतिक प्रक्रियाओं वो अब मनुष्य और अच्छी तरह समझ सकेगा।

---

*ऑक्सीजन की कमी के कारण एक सप्ताह में ही श्वान का देहावसान हो गया।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के काम की एक झलक

ले० प्रो० एम० एस० थैकर निर्देशक, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा, भारत सरकार

सन् १६४२ में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद् की स्थापना हुई। इसका एक काम था भारतीय उद्योगों के उपयोग के आविष्कारों और अनुसंधानों का लाभ उठाने और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयोगशालाओं, काम घरों और शालाओं एवं संगठनों की स्थापना और प्रबन्ध करना।

परिषद् ने जल्दी ही देश में कई प्रयोगशालायें स्थापित करने का विचार रखा और १६४४ में भारत सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया। पर इस बारे में ठोस काम स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ। राज्य सरकारों और उद्योग-मालिकों की सहायता और दान से १६५० में ६ प्रयोगशालायें स्थापित हो गयीं और इस समय देश में १६ प्रयोगशालाएं सुचारु रूप से काम कर रही हैं।

प्रयोगशालाओं की स्थापना में इस बात पर बहुत ध्यान दिया गया कि ये ऐसे स्थानों पर हों, जहाँ से सम्बद्ध उद्योग इनका पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। इसके साज-सामान और यंत्रादि के बारे में वैज्ञानिकों और उद्योगों से सम्बद्ध व्यक्तियों में प्रायः विचार-विमर्श होता रहा।

औद्योगिक प्रगति

नयी दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला और पूना की राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला ऐसे विषयों पर अनुसंधान करती हैं जो सब उद्योगों की प्रगति का मूल हैं। अन्य प्रयोगशालाओं में किसी एक विषय जैसे, धातु-विद्या, खनन, खाद्य-पदार्थ, सड़क निर्माण, इमारतें बनाने, दवाएं तैयार करने, चमड़े के काम, कांच और चीनी मिट्टी के काम, विद्युत् रासायनिक पदार्थों और वैद्युदणिवकों (इलैक्ट्रोनिक्स) के बारे में काम होता है। प्रादेशिक प्रयोगशालाओं में प्रदेश विशेष की समस्याओं पर अनुसंधान कार्य होता है।

विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली गवेषणा की प्रगति पर बराबर आंख रखी जाती है और उपेक्षित विषयों की ओर भी ध्यान दिया जाता है।

इस छोटे से लेख में परिषद् के सारे काम का सिंहावलोकन करना कठिन है। इसलिए मैं कुछ ऐसे कामों का ही जिक्र करता हूं जिनसे उद्योगों को सीधा फायदा पहुँचा है।

कच्चा माल

कच्चे माल के बारे में आर्थिक तथा वैश्लैषिक सामग्री इक्ट्ठा करना देश के सब उद्योगों के लिए बहुत महत्त्व रखता है। अधिकांश राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं इसी प्रकार का काम कर रही हैं। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय ईंधन गवेषणाशाला ने देश के कोयले की भौतिक और रासायनिक पड़ताल का काम उठाया है और इसके लिए विभिन्न कोयला खानों पर केन्द्र खोले हैं। इसी प्रकार कलकत्ता की केन्द्रीय कांच तथा चीनी मिट्टी गवेषणाशाला ने कांच और चीनी मिट्टी के उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल के बारे में खोज की है। मद्रास की गवेषणाशाला में चमड़ा कमाने के काम आने वाली ऐसी चीजों की उपयोगिता के बारे में जांच पड़ताल की गयी है।

घटिया कच्चे माल का इस्तेमाल

घटिया किस्म के कच्चे माल का भी उद्योगों में इस्तेमाल हो सके, यह भी उद्योगों के लिए बहुत महत्व की बात है। केन्द्रीय इंधन गवेषणाशाला ने घटिया कोयले को धोकर इसकी किस्म सुधारने का प्रयत्न किया

है और इसी के परिणाम स्वरूप जमदोबा में कोयला धोने का कारखाना बनाया जा सका है। धातु-शोध के काम आने वाला कोक तैयार करने के बारे में भी इस गवेषणा शाला ने काम किया है।

जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातुशोध प्रयोग शाला ने घटिया मेंगनीज के इस्तेमाल का प्रयत्न किया है और यहाँ जो खोज हुई है, उसके कारण अब घटिया खनिज पदार्थ की किस्म सुधारने का यंत्र लगाना सम्भव हो गया है। और भी कई खनिज पदार्थों की किस्म सुधार की विधियाँ यहाँ निकाली गयी हैं।

जिन खनिज पदार्थों की देश में कमी है और जो दूसरे देशों से मंगाने पड़ते हैं, उनकी जगह काम आ सकने वाले पदार्थों की खोज में हमारी प्रयोगशालाओं को सफलता मिली है। चमड़ा कमाने के काम आनेवाली विदेशी छालों के बदले में अब कई कारखानों में देशी चीजें इस्तेमाल होने लगी हैं। इनकी खोज का सारा श्रेय मद्रास की चर्म-गवेषणाशाला को है। कांच और चूड़ियों आदि पर चढ़ाई जाने वाली विदेशी कलई और रंगों की जगह काम आनेवाले कई पदार्थ बनाये गये हैं।

बेकार चीजों का उपयोग

प्रयोगशालाओं ने कई तरह की उन चीजों की ओर भी ध्यान दिया जो पहले बेकार जाती थीं। रेल के इंजनों, बिजलीघरों और कारखानों की बचने वाली राख का क्या किया जाय, यह एक बड़ी समस्या है। केन्द्रीय वास्तु गवेषणाशाला ने सुझाया कि राख से ईंटें बन सकती हैं। इसी प्रकार लोहे की भट्ठियों की कीच से सीमेंट बनाने की विधि निकाली गयी है।

बेकार जाने वाले अबरक से भट्ठियों में लगने वाली ईंटें बनायी जाने लगी हैं। राजस्थान में एक कारखाना बनाया जा रहा है, जहाँ अबरक की ईंटें बनायी जायेंगी।

नयी-नयी विधियाँ और उत्पादन

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, रेडियो के पुर्जे बनाने का यत्न कर रही है। बिजली के उपकरणों में काम आने वाले कारबन ब्रुश और स्विच गीयर आदि कई चीजें यहाँ आजमाइशी तौर पर बनायी जा चुकी हैं।

यहाँ की खोज के आधार पर पटियाला में कारबन की ईंटें और छड़ें बनाने का कारखाना स्थापित किया जा रहा है। राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला में तेलों, रबड़, चर्बी, रंगों और रोगनों आदि की समस्याओं पर खोज हो रही है। हड्डियों और खालों से खाने योग्य और खून में पहुँचाये जाने वाला सरेस, रीठे से 'सेपोनिन' और तम्बाकू के चूरे से निकोटीन बनाने की विधि निकाली जा चुकी है। तम्बाकू और कमला के बीजों और रेंडी तथा और तेलहनों से कई तरह के रोगन आदि बनाये गये हैं।

पानी के भारीपन को दूर करने के लिए 'कारबियौन' एक नयी प्रकार का सैकता शिलषक (सिलिका जैल) 'कारबोजैल', नकाबों आदि में कारबन डाइआक्साइड को सोखने वाला पदार्थ 'लिसाबें' आदि कई नये पदार्थ भी रासायनिक प्रयोगशाला में तैयार किये गये हैं। केन्द्रीय कांच तथा चीनी मिट्टी गवेषणाशाला में 'फेन कांच' बनाया गया है, जिस पर आग का असर नहीं होता। 'फेन कांच' मकानोंको ठंडा या गरम करने के काम आ सकता है।

भंडारों की समस्या

केन्द्रीय खाद्य प्राविधिक गवेषणाशाला ने अनाज, फलों और तरकारियों को भरकर रखने की कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न किया है। इसी शाला ने ऐसे बोरे तैयार किये हैं, जिनको कीड़े नहीं काट सकते। इसके अलावा ऐसे पदार्थ भी बनाये गये हैं, जिनका धुआं देने से गोदामों के कीड़े मकोड़े मर जाते हैं और बाद में हानिकारक राख नहीं बचती। कहवे के भरने और मिलावट आदि की समस्या हल करने के लिए कहवा मंडल की सलाह से काम किया जा रहा है।

अदरक, काजू और सेव के रस से कुछ हल्के पेय पदार्थ तैयार किये गये हैं और मैसूर में इनका बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हो गया है। कोयमुत्तर में मूँगफली से दूध बनाया जा रहा है। इसके अलावा खाद्य प्राविधिकी गवेषणाशाला ने बच्चों और बड़ों के लिए कई प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थ बनाये हैं।

केन्द्रीय चर्म गवेषणाशाला ने कई प्रकार का बढ़िया चमड़ा तैयार किया है।

सस्ते घर

केन्द्रीय वास्तु गवेषणाशाला ने लोहे-कंकरीट के सस्ते गोल मकान तैयार किये हैं, जो गरम और सूखी जलवायु के लिए अच्छे रहते हैं। इनके बनाने की ऐसी विधि निकाली गयी है, जिससे ३० से ५० प्र० श० तक लोहे या इस्पात की बचत हो सकती है।

केन्द्रीय सड़क गवेषणाशाला ने एक नयी विधि की खोज की है, जिसके द्वारा स्थानीय मिट्टी के सम्मिश्रण को कड़ा करके सड़क पर बिछाया जा सकता है। इस विधि के कारण सड़कों के निर्माण का खर्च काफी कम हो जायगा और आजकल जो सड़क बनाने का सामान दूर-दूर से ढोकर पहुंचाना पड़ता है, वह कठिनाई भी काफी दूर हो जायगी। भिन्न-भिन्न राज्यों में सड़क बनाने की इस विधि को भी लोकप्रिय बनाने का यत्न किया जा रहा है।

नयी दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की एक अलग शाखा में मुहर लगाने की स्याही, अखबारी छपाई और 'साइक्लोस्टाइल' के काम आने वाली रोशनाई आदि कई तरह की रोशनाइयों के उत्पादन के बारे में जोर-शोर से खोज हो रही है।

गवेषणा का सत्परिणाम

इन पंक्तियों में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के काम की एक झलक देने का प्रयत्न किया गया है। इन प्रयोगशालाओं के प्रयत्न से अब तक ३०० से अधिक नयी विधियाँ पेटेंट हो चुकी हैं और इनमें से काफी का उद्योगों में फायदा उठाया जा रहा है। हमारी पंचवर्षीय आयोजनाओं से प्रयोगशालाओं के काम को खूब प्रोत्साहन मिला है। हमारे नवयुवकों के लिये अनुसंधान और आविष्कारों का व्यापक क्षेत्र खुल गया है और विज्ञान के प्रकाश में देश अज्ञान और अंध-विश्वास के गर्त से बाहर निकल रहा है।

वायुमंडल के रहस्यों की खोज

वायुमंडल के बारे में प्रायः हर व्यक्ति ने यह सामान्य राय बना रखी है कि यह वायु का एक अपार भंडार है जो पृथ्वी को घेरे हुए है। किन्तु हाल ही में गुब्बारों तथा रौकेटों की सहायता से जो अनुसन्धान-कार्य किया गया है उससे पता चला है कि वायुमंडल अत्यधिक विस्तृत, अधिक पेचीदा तथा अधिक रहस्यमय है। इउ से पहले कभी वैज्ञानिकों ने ऐसी कल्पनाएं तक नहीं की थीं।

लगभग एक शताब्दी पहले वैज्ञानिक वायुमंडल की रचना को बहुत सामान्य समझते थे। हम यही मानते थे कि जब हम ऊपर जाते हैं तो हवा की घनता कम होती जाती है और अन्त में अन्तरिक्ष के शून्य में विलीन हो जाती है। इस से पहले वैज्ञानिकों को वायुमंडल की जटिल स्थिति तथा एक के ऊपर दूसरी परत होने और उसके कुछ हिस्सों में अद्भुत दशाएं होने के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष के कार्य-क्रम के अन्तर्गत यन्त्रवाहक रौकेटों तथा कृत्रिम उपग्रहों की सहायता से ऊपरी वायुमंडल के बारे में खोज की जायेगी। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वायुमंडल के बारे में नई एवं विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है। भूतल पर किये जाने वाले परीक्षणों से अब तक वायुमंडल के बारे में इस प्रकार की विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती।

वायुमंडल की चार परतें

वैज्ञानिकों को यह पता लग चुका है कि पृथ्वी के चारों ओर का वायुमंडल चार परतों में विभक्त है।

वायुमंडल की सब से नीचे की परत को ट्रौपोस्फियर कहते हैं। 'ट्रौपोस्फियर' घनी हवा की वह परत है जिसमें हम रहते हैं। भूमध्य रेखा के निकट इस परत की गहराई १० मील है और ध्रुव क्षेत्रों के निकट इस की गहराई ५ मील है। इससे ऊपर की परत को 'स्ट्रैटोस्फियर' कहते हैं। यह परत 'ट्रौपोस्फियर' की ऊपरी सीमा से लगभग ५० मील ऊंचाई तक फैली हुई है। 'स्ट्रैटोस्फियर' के ऊपर तीसरी परत है जिसे 'आयनोस्फियर' कहते हैं। आयनोस्फियर वायुमंडल की उस परत को कहते हैं जो भूमि से सामान्यतः ५० से २५० मील की ऊंचाई के बीच होती है। विश्वास किया जाता है कि यह परत इससे भी ऊपर तक फैली हुई है 'आयनोस्फियर' से ऊपर वायुमंडल की चौथी परत है, जिसे 'एक्सोस्फियर' कहते हैं। 'एक्सोस्फियर' वायुमंडल की उस परत को कहते हैं जो नक्षत्रों के मध्यवर्ती शून्याकाश से जा कर मिल जाती है। 'एक्सोस्फियर' भूमि के पृष्ठ से १८००० मील की ऊंचाई तक फैला हुआ हो सकता है।

आशा है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष' में ट्रौपोस्फियर के बारे में की जाने वाली खोज के फलस्वरूप 'जैटस्ट्रीम' प्रणाली के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकेगी और यह व्यापारिक हवाई उड़ानों की दृष्टि से बड़ी उपयोगी सिद्ध होंगी।

वायुमण्डल की तेज धाराओं का लाभ

पृथ्वी के इर्द-गिर्द तेज चक्कर काटने वाली हवा को 'जैटस्ट्रीम' कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में १५,००० से ४०,००० फुट की ऊंचाई पर सारे साल पश्चिम से पूर्व ओर यह हवा ५० से ३०० मील प्रति घंटा की गति से चलती रहती है। इस हवा के प्रवाह-क्षेत्र में आ जाने से पश्चिम से पूर्व की ओर उड़ान करने वाले दूरगामी वायुयानों की गति बढ़ सकती है और उसके पेट्रोल के के खर्चे में काफी बचत हो सकेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष में स्ट्रेटोस्फिय को परिस्थितियों को आंककर रेकार्ड रखा जायेगा। वायुमण्डल की इस परत का एक महत्वपूर्ण भाग "ओजोन लेयर", है। यह परत २० से ४० मील तक की ऊंचाई पर होती है।

ओजोन आक्सीजन (ओषजन) की तरह की ही एक गैस है, अन्तर केवल इतना है कि जहां हमारे श्वास लेने की औक्सीजन के व्यूहाणु (मौलिक्यूल) में दो अणु औक्सीजन के होते हैं वहाँ ओजोन के व्यूहाणु में ३ अणु औक्सीजन के होते हैं। ओजोन की परत सूर्य से निकलने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों के बहुत से भाग को अपने में समा लेती है। पृथ्वी पर रहने वाले लोगों तथा पशुओं के जीवन के लिए वायुमण्डल में ओजोन की इस परत का होना जरूरी है क्योंकि सूर्य से आने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों के पूर्ण विकिरण के सामने जीव-जन्तु व मनुष्य जीवित नहीं रह सकते थे।

वायुमण्डल की स्ट्रेटोस्फियर परत के ऊपर एक और महत्त्वपूर्ण परत है जिसे आयनोस्फियर कहते हैं। इसके बारे में वैज्ञानिकों को बहुत कम जानकारी है। कृत्रिम उपग्रह स्थापित करने के लिए अमेरिका ने वायुमण्डल की इसी परत को चुना है। वायुमण्डल के इस रहस्यमय क्षेत्र के बारे में ठीक ठीक जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत से अनुसन्धानात्मक राकेट आकाश में छोड़े जायेंगे।

रेडियो-संचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण

आयनोस्फियर वायुमण्डल के ऊपरी हिस्से की एक विद्युत्-प्रभावित परत है। यह दूर तक रेडियो-सन्देशों को भेजने की दृष्टि से वायुमण्डल का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। पृथ्वी से भेजी जाने वाली रेडियो-तरंगें आयनोस्फियर द्वारा फिर वापस पृथ्वी पर लौट आती हैं। इसी तरह पृथ्वी से फिर टकरा कर वे आयनोस्फियर को फिर वापस लौट जाती हैं। यह क्रम इसी तरह जारी रहता है और अन्त में ये किरणें दूर के लक्ष्य-स्थान पर पहुँच जाती हैं। 'आयनोस्फियर से प्रतिक्षिप्त होनेवाली रेडियो-तरंगों के कारण ही रेडियो -तरंगें भूमण्डल की गोल परिधि के के दूरवर्ती स्थानों तक पहुँच जाती हैं।

वैज्ञानिक 'आयनोस्फियर' के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक हैं, ताकि रेडियो-तरंगों को अधिक दूर तक भेजने में नये सुधार किये जा सकें।

'एक्सोस्फियर' के बारे में भौतिक शास्त्रियों का कथन है कि वह वायुमंडल का वह भाग है जिस में निश्चल हवा रहती है और जहां की हवा इतनी सूक्ष्म होती है और उसके व्यूहाणु इतने विरल होते हैं कि एक दूसरे के बिना ये अनन्त दूरी तक पहुँच सकते हैं।

लेकिन 'एक्सोस्फियर' के बारे में अधिकाँश जानकारी केवल काल्पनिक ही है। 'आयनोस्फियर' या उसके ऊपरी हिस्से के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है और न यही पता है कि रेडियो ब्रौडकास्टिंग या मौसम आदि की, पृथ्वी पर होने वाली, घटनाओं पर इसका क्या असर पड़ सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष में जो परीक्षण किये जायेंगे उससे यह आशा की जाती है कि वायुमंडल के उक्त चार क्षेत्रों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

समुद्रों में आणविक ईंधन का असीम भण्डार

उद्‌जन बम की शक्ति को कल्याणकारी कार्यों में नियोजित करने की चेष्टा में संलग्न वैज्ञानिकों का कथन है कि यदि एक व्यावहारिक उद्‌जन-शक्ति यन्त्र का विकास संभव हो गया, तो संसार को समुद्रों से प्रायः असीम ईंधन स्रोत प्राप्त हो जाएगा।

संसार के समुद्रों में बहुत बड़ी मात्रा में इस प्रकार का उद्‌जन भंडार मौजूद है, जो द्रावण प्रतिक्रिया में इस्तेमाल किया जाता है तथा जिसमें अपार शक्ति उत्पन्न करने की क्षमता है। जिन देशों में ईंधन का अभाव है, वे त समुद्रों से प्रचुर मात्रा में ईंधन प्राप्त कर सकेंगे।

मुख्य समस्या

मुख्य समस्या यह जानकारी प्राप्त करने की है कि लाखों डिग्री के तापमान में उत्पन्न अपार शक्ति पर किस प्रकार काबू पाया जाय। यह शक्ति अणुकेन्द्रों के न्यष्टि के द्रावण से उत्पन्न होती है। तब साथ ही भीषण ताप भी उत्पन्न होता है।

इस सम्बन्ध में 'मैसाचसेट्स इंस्टिट्यूट औव् टैक्नोलोजी' के डा० विलियम फेल्प्स एलिस का कथन है नियन्त्रित द्रावण के सम्बन्ध में चालू अनुसन्धान-कार्य लगभग उसी स्थिति में आज पहुँच गया है, जिस स्थिति में १९वीं शताब्दी के अन्त में हवाई जहाजों के निर्माण का कार्य था।

डा० एलिस ने इस बात का उल्लेख किया है कि प्रारम्भ में जो वायुयान बनाये गये थे, उनमें उड़ान सम्बन्धी अस्थिरता का दोष था। फलस्वरूप इन वायुयानों को चलाने के लिए भाप-चालित इंजनों की अपेक्षा किसी अन्य किस्म के उत्तम इंजनों की आवश्यकता थी।

आपने कहा कि वायुयानों के लिए भाप से चलने वाले इंजनों के स्थान पर पैट्रोल से चलने वाले इंजन बनाये गये। यह एक नई महान् कल्पना थी।

नये इंजनों के विकास की आवश्यकता

फलस्वरूप आपने इस बात पर बल दिया है कि द्रावण शक्ति को नियन्त्रित कर उसे लोक-कल्याणकारी कार्यों में लगाने के लिये भी नये प्रकार के ऐसे इंजन बनाने की आवश्यकता है, जिनसे द्रावण-क्रिया से उत्पन्न होने वाली महती शक्ति का उपयोग किया जा सके।

आपने कहा कि मैं तथा अन्य वैज्ञानिक ऐसी किसी विधि के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे हैं, जिससे द्रावण के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली अत्यधिक ताप युक्त गैसों को अस्थिरता सम्बन्धी समस्या का हल खोजा जा सके।

आपने यह बात भी बताई कि अनुसन्धान में संलग्न वैज्ञानिकों ने इस बात का संकेत किया है कि द्रावण शक्ति के इस्तेमाल के सम्बन्ध में नई महती कल्पना क्या है; तथापि ये वैज्ञानिक यह बात स्वीकार करते हैं कि यह अब भी एक अनुत्तरित समस्या ही है।

चुम्बकीय क्षेत्र के इस्तेमाल की कल्पना

कोई भी सामग्री द्रावण-क्रिया से उत्पन्न होने वाले भीषण ताप को सहन करने में समर्थ नहीं, इस लिए भौतिक शास्त्रियों ने द्रावण क्रिया में उत्पन्न होने वाली गैसों तथा अन्य सामग्री को यन्त्र की चार दीवारी से दूर रखने के लिए दृढ़ चुम्बकीय क्षेत्र के इस्तेमाल की बात सोची थी।

समझा यह गया था कि गरम गैसों में बिजली की

[शेष पृष्ठ ४७ पर]

जीवन का उद्भव

अकादमीशियन अलेक्सान्देर ओपारिन

[ओपारिन सोवियत संघ के असाधारण जीव-रसायन विद् हैं। वे तीस साल से अधिक समय से जीवन के उद्भव की समस्या का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने हमारे ग्रह में जीवन के उद्भव के सम्बन्ध में एक मौलिक सिद्धान्त निकाला है।]

जीवन के सार और धरती पर उसके उद्भव की समस्या ने सदा मानव विचारधारा को आकृष्ट किया है। फिर भी लम्बे अर्से तक बीसवीं सदी तक यह समस्या पर्याप्त पुष्ट वैज्ञानिक आधार पर आधारित न थी।

लुई पास्चर की कृतियों ने जिन्होंने अपने प्रयोगों के द्वारा जीव सृष्टि के "स्वयंभूत" होने के सिद्धान्त की भ्रान्ति सिद्ध कर दी, वैज्ञानिकों को उलझन में डाल दिया, क्योंकि तब तक उनका विश्वास था कि स्वयंभूत होना इस समस्या का एक मात्र सम्भव समाधान है। ऐसा लगा कि इस परेशानी में डालने वाले प्रश्न का सन्तोषप्रद् उत्तर मानव-बुद्धि नहीं खोज सकती। कुछ वैज्ञानिक तो यहाँ तक सोचने लगे कि इस समस्या का अध्ययन करना समय गँवाना है तथा यह समस्या गम्भीर खोज के उपयुक्त नहीं।

परन्तु अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि कठिनाई समस्या के सार तत्व में निहित नहीं है, बल्कि इसके समाधान के लिए अपनायी जाने वाली गलत पद्धति में निहित है। आज ऐसे प्रकृति विद् बहुत कम हैं, जो पुराने अतिभौतिक रवैये को मानते हों। संसार के वैज्ञानिकों का प्रबल बहुमत अब इस समस्या पर क्रम विकास संबन्धी दृष्टिकोण से विचार करता है।

आज इस पर किसी को सन्देह नहीं है कि जीवन और जड़ जगत् के बीच कोई अलंघ्य खाई नहीं है। तत्व के विकास-क्रम में जड़ पदार्थ से जीव का विकास एक नये गुण के रूप में हुआ। इस विकास के इतिहास का अध्ययन ही जीवन के उद्भव की समस्या के समाधान का एक मात्र वैज्ञानिक उपाय है। प्रकृति की आज की घटनाओं के अनेक पर्यवेक्षण तथा प्रयोग जो प्रकृति के विकास के अलग-अलग सम्भावित स्तर उपस्थित करते हैं, हमें इसका पूरा विश्वास दिलाते हैं कि क्रम-विकास की प्रक्रिया में जड़ जगत् से जीवन के उद्भव का विचार आनुमानिक स्थापना नहीं है, बल्कि ऐसी यथार्थता है जो तथ्यों पर आधारित है।

इसमें संदेह नहीं कि इस समस्या के सभी पहलुओं पर बहुत ही अधिक प्रकाश डालने के चरम लक्ष्य से हम अब भी बहुत दूर हैं, परन्तु आधुनिक प्रकृति विज्ञान की सफलताएँ और वह व्यापक तथ्यात्मक मसाला जो ज्योति विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र और जीव विज्ञान के पास है, यह संभव कर देता है कि हम अपने ग्रह पर होने वाली प्रक्रियाओं का जिनकी परिणति जीवन के उद्भव में हुई, चित्र और अधिक निश्चय के साथ बनायें।

यह विश्वास करने का सम्यक् कारण है कि तत्व सर्वप्रथम जिस दौर से होकर गुजरा, वह था उस समय की, अब भी जीवनहीन धरती पर सरलतम आंगारिक पदार्थों, श्वेतसार तथा उनके बनने वाले निकटतम पदार्थों का आविर्भाव।

हमारे ग्रह के प्रस्तर मंडल, जल मंडल और आक्सिजनहीन वायुमंडल में भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र के सामान्य नियमों के अनुसार इन पदार्थों के इसके बाद के संकुलन को जीवन के उद्भव के मार्ग की दूसरी मंजिल माना जा सकता है। कई वर्ष पहले अमरीकी रसायनज्ञ स्टैनली मिलर ने पृथ्वी के वायुमंडल के प्रारम्भिक गठन के सम्बन्ध में मेरे विचारों को आधार मान कर प्रयोग किये जिनमें उन्होंने कृत्रिम रूप में इन अवस्थाओं

की सृष्टि की और आमिनोएसिडें तैयार कीं। ये एसिडें प्रोटीन अणु तैयार करने वाली मुख्य "ईंटें" हैं।

प्रोटीनों, बीजाणु अम्लों तथा अन्य मिश्रण जैसे जटिल आंगारिक पदार्थों का जो आधुनिक जीव तत्त्व की विशेषताएँ हैं, पैदा होना तत्त्व के विकास के दूसरे स्तर का परिणाम था।

यह माना जा सकता है कि बाद में और अधिक जटिलता वाली बहु आणविक प्रणालियों का आविर्भाव हुआ जो पुंज पदार्थ कण (कोअसर्वेट्स) जैसे थे। इन पदार्थ कणों में बाहरी वातावरण से प्रतिक्रिया होती है। और इनमें कतिपय प्रकार का चयन भी होता है। इन प्रारम्भिक प्रणालियों का क्रम-विकास तीसरा स्तर माना जा सकता है जिसके अन्तिम अध्याय में सरलतम जीवसृष्टि का आविर्भाव होता है।

विकास के स्तरों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में मतभेद है।

मेरे मतानुसार उनके विचारों में निम्नलिखित मुख्य मतभेद है।

प्रथम, पृथ्वी के वायुमण्डल की प्रकृति आक्सीजन से संयुक्त करने वाली थी या उसे घटाने वाली?

द्वितीय, जीवनहीन पृथ्वी के धरातल पर जटिल आंगारिक पदार्थों, श्वेतसार, आमिनोएसिडों और प्रोटीन जैसे पदार्थों का गठन कैसे हुआ?

तृतीय, एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जीवन का आविर्भाव पृथक् अणुओं के रूप में हुआ, या जटिल बहु आणविक गठनों के रूप में जिन्होंने प्रारम्भिक जीव सृष्टि के उद्भव के लिए प्रारम्भिक प्रणाली का काम किया।

१९ अगस्त से २७ अगस्त तक मास्को में पृथ्वी पर जीवन के उद्भव की समस्या के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोजियम हुआ जिसमें इन समस्त मतभेदों पर सम्यक् रूप में विचार विमर्श किया गया।

अनेक देशों के वैज्ञानिकों ने इस सिम्पोजियम में हिस्सा लिया। सोवियत वैज्ञानिकों ने अपने साथियों को अपनी उन सफलताओं के बारे में बतलाया जो उन्हें प्रयोगशाला के भीतर जीवन की कृत्रिम पुनः सृष्टि में मिलीं। हम इस समस्या के एक समाधान की दिशा में बढ़ रहे हैं यद्यपि शरीर में होने वाली रासायनिक क्रियाओं की प्रक्रिया की कृत्रिम पुनः सृष्टि में पूरी सफलता नहीं मिलीं, फिर भी हमने प्रयोगशाला के भीतर ऐसी जैव प्रणालियों की सृष्टि करना सीख लिया है जो अपने उपादानों के कारण विद्यमान् जीवन की भाँति लगती है।

[पृष्ठ ४५ का शेष]

लहर दौड़ा कर यह कार्य सम्पन्न किया जा सकेगा। यह बात सब जानते ही हैं कि उच्च तापमान पर गैसें बिजली की अच्छी संवाहिका होती हैं। समझा यह गया था कि चुम्बकीय क्षेत्र के इस्तेमाल से इन गैसों को एकत्रित कर यन्त्र की चारदीवारी से दूर रखा जा सकेगा।

किन्तु व्यावहारिक अमल में यह कल्पना असफल सिद्ध हुई। गरम गैसें यन्त्र की चार दीवारी तक पहुँच गईं तथा उन्होंने अपने अत्यधिक ताप से इस चारदीवारी को वाष्प में परिवर्तित कर दिया।

ऐसी स्थिति में डा० एलिस के कथनानुसार गैसों को स्थिरता प्रदान करने तथा उन्हें काफी या अनिश्चित काल तक यन्त्र की चारदीवारी से दूर रखने की समस्या आज भी पहले के समान बनी हुई है।

फिर भी, आपका यह विश्वास है कि दीर्घकाल तक अनुसन्धान करके तथा उपकरणों पर अतिरिक्त धन व्यय करके इस लक्ष्य की पूर्ति संभव है। यह प्रयत्न चालू रहना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेन्सी तथा आणविक सहयोग

श्री जौन कैरिगन

बड़ी बड़ी आशाओं के बीच जब चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेन्सी औपचारिक रूप में स्थापित हो चुकी है, इसलिए इसके सम्बन्ध में कोई वास्तविक अनुमान लगाना आज अप्रासंगिक नहीं होगा।

यह कहना कोई अत्युक्ति की बात नहीं कि इस एजेन्सी की अन्तिम सफलता अथवा असफलता पर ही मानव सभ्यता का भविष्य निर्भर करता है।

अभूतपूर्व क्षमता

अक्टूबर में वियेना (आस्ट्रिया) में उक्त एजेन्सी अपने कार्य का प्रारम्भ करेगी। यहीं इस एजेन्सी का मुख्य कार्यालय भी भविष्य में निर्मित किया जाएगा। तथापि इस एजेन्सी के सम्बन्ध में कही गई अनेक बातों में से एक बात में सब सहमत हैं। जिस बात में इस संस्था के आलोचक तथा इस से बड़ी आशाएँ रखने वाले दोनों सहमत हैं, वह यह है कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की इस से पूर्व इतनी अधिक क्षमता नहीं समझी गई, जितनी कि उक्त एजेन्सी की।

वैज्ञानिक रूप में, एजेन्सी की यह क्षमता उतनी ही महान् है, जितने वे क्षेत्र जो अणु की शक्ति को लोक-कल्याणकारी कार्यों में प्रयुक्त करने से सम्मुख उपस्थित होंगे। वह बात निःसन्देह कही जा सकती है कि अणु-शक्ति के सैनिक प्रयोग का खतरा जितना भीषण और बेचैन बना देने वाला है, उतने ही अणु के लोक-कल्याणकारी उपयोग आशा दिलाने वाले हैं। इन उपयोगों का विश्व भर में अधिक तेजी से प्रसार उक्त एजेन्सी करेगी।

व्यावहारिक दृष्टि से यदि हम सोचें, तो निश्चय ही उक्त एजेन्सी की क्षमता असीम नहीं मानी जा सकती। यद्यपि वैज्ञानिक ज्ञान तथा औद्योगिक विधियों की अमूल्य सम्पत्ति की व्यवस्था उक्त एजेन्सी करेगी तथा मनुष्य को ज्ञात सब से अधिक विस्फोटक पदार्थ से इस एजेन्सी का सम्बन्ध होगा, तथापि इस संस्था पर राष्ट्रीय सुरक्षा एवं आर्थिक तथा अन्य प्रकार की प्रतिस्पर्धा का प्रभाव न पड़े इस बात की सम्भावना नहीं की जाती। ये सब बातें तो अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का एक अंग ही हैं।

ऐसी अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेन्सी से जो आशाएँ की जाती हैं, उनका अनुमान केवल आण-विक संभावनाओं के आधार पर ही नहीं किया जाना चाहिए, अपितु एक संयुक्त आणविक भविष्य की खोज के सम्बन्ध में इस के सदस्यों द्वारा किए गए उनके प्रयत्नों और संकल्प के आधार पर भी किया जाना चाहिये।

कुछ आशापूर्ण निष्कर्ष

इस आधार पर उक्त संस्था के निर्माण-क्रम को ध्यान में रखते हुए कुछ आशापूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय आशावाद की किसी एक लहर के फलस्वरूप अस्तित्व में नहीं आई है। ८ दिसम्बर १९५३ को जब प्रेसीडेन्ट आइजनहोवर ने इस संस्था के निर्माण का प्रस्ताव उपस्थित किया था, उस दिन से ले कर ३ वर्षों की कठिन वार्ताओं, अनेक सम्मेलनों तथा संयुक्तराष्ट्र-संघ के कई अधिवेशनों के बाद उस संस्था की नियमावली तैयार हुई है।

शुरू से ही लक्ष्य स्पष्ट और आकषक था। जैसा कि प्रेसीडेन्ट आइजनहोवर ने अपने भाषण में कहा था,

यह लक्ष्य था, "अणु की भीषण और उलझन भरी समस्या का हल खोजना, ऐसे उपाय खोजना, जिनसे मनुष्य की अचरज भरी आविष्कार-शक्ति उसके विनाश का कारण न बन कर उसके लिए जीवन का वरदान बन सके।"

संयुक्तराष्ट्र-संघ के रिकार्डों में अमेरिका का वह वचन भी दर्ज है, जिसमें विखंडनीय सामग्री की व्यवस्था करने तथा कृषि, चिकित्सा तथा अन्य लोक-कल्याणकारी कार्यों में अणुशक्ति को प्रयुक्त करने की दृष्टि से उसने सहायता करने का आश्वासन दिया था।

ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेन्सी में सम्मिलत हो कर बहुत कम राष्ट्रों को हानि की सम्भावना है। इसके विपरीत अधिकांश राष्ट्र इस संस्था से लाभ उठा सकते हैं। फिर भी, यह एक उल्लेखनीय बात है कि ८० राष्ट्रों ने इस एजेन्सी की नियमावली पर हस्ताक्षर किए हैं।

नियमावली की महत्त्वपूर्ण बातें

स्वयं इस नियमावली में भी कई महत्त्वपूर्ण बातें हैं। "बड़ी आणविक शक्तियाँ" इस संस्था पर अपना प्रभुत्व न जमा लें, इस सम्बन्ध में इस नियमावली में सावधानी पूर्वक सुरक्षा-व्यवस्था की गई है। संस्था के संचालक-मंडल में पाँचों प्रमुख आणविक शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, किन्तु इसके साथ ही संसार के प्रमुख क्षेत्रों के प्रतिनिधि भी इस मंडल में हैं। इनकी संख्या आठ है। ये प्रतिनिधि उन क्षेत्रों से लिए गए हैं, जिनका प्रतिनिधित्व ऊपर बताई गई पाँचों आणविक शक्तियाँ नहीं करतीं। इसके अतिरिक्त छोटे देशों के दो प्रतिनिधि, आणविक सामग्री मुहैय्या करने वाले देशों का एक प्रतिनिधि तथा १० अन्य विशेष रूप से चुने गए प्रतिनिधि भी इस मंडल में रखे गये हैं। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र को पूर्ण समानता प्रदान करने की चेष्टा की गई है।

संयुक्तराष्ट्र-संघ से इस संस्था का क्या सम्बन्ध रहे, इस सम्बन्ध में उक्त संस्था ने अपवाद स्वरूप स्वतन्त्रता प्रदर्शित की है।

इस प्रकार इस संस्था में जहाँ छोटे राष्ट्रों के लिए अपनी आवाज उपस्थित कर सकने की सम्भावना अत्यधिक है, वहां बड़ी आणविक शक्तियों को मतदान के आधार पर सर्वथा अक्षम बना देने की सम्भावना उन्हें पूरे तौर पर प्राप्त नहीं।

नियमावली में निरीक्षण और नियन्त्रण की जो व्यवस्था की गई है, वह भी इस संस्था की सदस्यता में कोई बड़ी बाधा सिद्ध नहीं हो सकी है।

आणविक सहकार की प्रसारक

अमेरिका निःसंदेह इस संस्था को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान करता है। उसने संस्था को ५ हजार किलोग्राम आणविक सामग्री देने का भी वचन दिया है। अमेरिका इस संस्था को वैज्ञानिक और व्यावहारिक आणविक सहकार का प्रसारक तथा विखंडनीय सामग्री को सैनिक कार्यों से दूर ले जाने वाली एक चुम्बकीय आकर्षण शक्ति समझता है।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग करने की इच्छा अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेन्सी के रूप में अभिव्यक्त की गई है। देखना यह है कि इस इच्छा को व्यावहारिक रूप देने की कितनी शक्ति इस संस्था में है।

पौधों के रोगों से बचाव के सिद्धान्त

रघुबीर सहाय माथुर

मनुष्यों की तरह पौधों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग के फफूंदी, कीटाणु, वाइरस (विष) व खनिज पदार्थों की कमी द्वारा होते हैं। मानस चिकित्सा के विकास के साथ-साथ पौधों के रोगों की चिकित्सा का भी विकास हुआ। दोनों के सिद्धान्त भी बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। लेखक की धारणानुसार किसान को पौदों के रोगों से बचाने के लिये विनिधान ही बताना पर्याप्त नहीं है क्योंकि स्थानीय स्थितियों के अनुसार इन विनिधानों का बदलना अनिवार्य है। यदि चिकित्सा के सिद्धान्त भली भाँति समझ में आ जावें तब विनिधान का निर्माण करना अथवा पूर्ण उपयोगिता के लिए स्थानीय समस्याओं के हिसाब से उनका बदलना सरल है। ऐसे सिद्धान्तों का विवरण नीचे दिया गया है :—

निरोध

व्यापार व अन्य काम धन्धों के कारण मनुष्यों का एक देश से दूसरे देश में आवागमन होता रहता है और बीज, बल्ब, नई जातियों की पौधों की कलमों इत्यादि का लेन देन भी खूब जारी रहता है। यह तो सब को भलीभाँति मालूम ही है कि मनुष्यों को एक देश से दूसरे में जाने के लिए पासपोर्ट की जरूरत रहती है और जहाज़ या वायुयान में बैठने से पहले डाक्टर इस बात की पूरी-पूरी जाँच कर लेते हैं कि यात्री को कोई ऐसा रोग न लगा हो जो जाने वाले देश में न पाया जाता हो जिसके कारण इस नये रोग से विदेश बासियों के पीड़ित होने की सम्भावना हो। यदि यात्री जहाज में ही किसी ऐसी बीमारी से पीड़ित हो जाता है तो उसको जहाज ही में रोक लिया जाता है और उस समय तक विदेश में नहीं जाने दिया जाता है जब तक पूर्ण रूप से स्वस्थ न हो जावे।

इस प्रकार विदेशी यात्रियों के लिए निरोध कानूनों का पालन किया जाता है। ऐसे ही निरोध कानून प्रत्येक देश में पौधों के लेन देन के विषय में भी लागू हैं।

जापानी नारंगी के पौधों के साथ १६०८ में अमरीका के नींबू के खररा रोग का आगमन हुआ। १६१४ में गल्फ के पास के प्रान्तों में यह रोग देखा गया जिसके कारण नारंगी व माल्टा के हजारों बगीचे नष्ट होने लगे। १६१५ में ३५००० डालर इस रोग के नष्ट करने के लिए दिये गये परन्तु रोग बढ़ता ही गया। अतः उस साल एक निरोध कानून जारी किया गया कि विदेश से अमरीका में नींबू, नारंगी व माल्टे की कलमें न आने पावें। यह कानून अभी तक जारी है। इसी प्रकार भारत में कुछ देशों से आलू आना मना है क्योंकि विदेशों से आलू का भयंकर फफोला रोग (वार्ट) आकर इस देश में स्थापित हो सकता है।

विदेशी रोगों से अपनी फसलें बचाने के लिए जनता को ऐसे कानूनों का अध्ययन करना चाहिए और भारत सरकार के प्लान्ट प्रोटेक्शन एडवाइज़र, नई दिल्ली अथवा प्रान्तीय सरकारों के प्लान्ट पैथालोजिस्ट तथा एन्टोमोलोजिस्ट से देश विदेश के पौधों के लेन देन के विषय में सलाह लेनी चाहिए।

२. वाध्य उन्मूलन

विदेशों से नये भयंकर रोगों के आगमन को रोकने के लिए निरोध कानूनों के अतिरिक्त बहुत से देशों में कुछ ऐसे भी कानून बनाये गये हैं जिनके द्वारा हाल ही के सीमित भूमि में स्थापित विदेशी रोगों व अन्य ऐसे रोगों का पूर्णतया विनाश किया जाता है जिनके फैलने से बहुत हानि होती है जैसे अमेरिका में काला रतुआ जंगली बारबरी की झाड़ियों द्वारा फैलता है, अथवा चीड़ का फफोलेदार रतुआ जंगली करेन्ट व गूज़बेरी नामक झाड़ियों द्वारा फैलता है। इन दोनों की रोक-

थाम के लिए उक्त जंगली झाड़ियों का नाश किसानों को कानूनवश खुद करना पड़ता है।

३. रोगों से बचाव

इस सिद्धान्त के अनुसार रोगों की रोक थाम चार प्रकार से की जा सकती है:

(अ) सफाई
(ब) खेती करने के उपायों में हेर फेर
(स) पौधों व बीजों की चिकित्सा
(द) रोग अवरोधक जातियों का प्रयोग

(अ) सफाई :—

फसल में रोग लगने पर पौधे की पत्तियों जड़ों, डंठल व खूटियों इत्यादि में फफूँदी, कीटाणु व वाइरस का भयंकर प्रकोप होता है और फसल कटने के बाद यह कूड़ा करकट पर जीवित रहती है। बहुत से वाइरस के रोग कीड़ों द्वारा फैलते रहते हैं। यदि यह रोग ग्रसित कूड़ा करकट व वाइरस वाले कीड़े खेत में वैसे ही पड़े रहने दिये जांय तो वह जीवित रह कर अगली फसलों को दूषित करके हानि पहुंचाते हैं। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि ऐसी सूखी, सड़ी गली पत्तियों, डंठलों, जड़ों खूँटियों इत्यादि, जिनमें पहले रोग लग चुका हो, उनको फसल कटने पर जला या दबा देना चाहिए। इस भाँति खेत को साफ सुथरा रखना चाहिए।

(ब) खेती करने के उपायों में हेर फेर

१—छँटनी (रोगइंग) : बीमार पौधों को खेत में छोड़ने से बीमारी फैलने का सदैव भय रहता है और कुछ बीमारियों में जो 'वाइरस' की बीमारियाँ हैं, बीमार पौधों से ही यह उग्ररूप धारण कर लेती है। अतएव बीमार पौधों की छँटनी आवश्यक है और उनको खेत से निकाल कर जला अथवा नष्ट कर देना चाहिए। आलू के कोढ़ की बीमारी लगातार तीन साल की छँटनी से सदैव के लिए खेत में से जा सकती है। ईख के कण्डुवे में भी छँटनी बहुत लाभदायक होती है। इनकी छँटनी किसी थैली में रोग ग्रसित पेड़ों को बन्द करके की जाती है। ऐसा न करने से फफूँदी के बीजाणु हवा में फैल सकते हैं।

२—मिली जुली फसलें : ज्वार के साथ अरहर मिलाकर बोने से उकठा रोग कम हो जाता है। ज्वार के साथ मिलाकर बोने से ग्वार के उकठे का प्रकोप कम हो जाता है। मिलवाँ बुवाई से अरहर में पाले से हानि का भी भय कम रहता है। कपास के खेत में मोठ बोने से कपास की जड़ सड़न बीमारी की रोक थाम की जा सकती है।

३. फसलों का हेर फेर :

यदि एक खेत में एक रोग लग जाता है और एक ही फसल बार बार उसी खेत में बोई जाती है तब बीमारी उग्र रूप धारण कर लेती है और फसल को बहुत हानि होती है। यह बात पौधों की गलन तथा उकठा कीं जड़ों की सड़न इत्यादि रोगों के लिये सत्य है। अतएव इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि फसलों का हेर फेर अवश्य किया जाय।

४. बोने के समय में हेर फेर :

बोने के समय में हेर फेर करने से फसलों की बहुत सी बीमारियों से बचाव हो जाता है उदाहरणतया गेहूँ और जौ को शीघ्र बोने से उन्हें गिरवी से बचाया जा सकता है अतएव गेहूँ और जौ को शीघ्र बोना चाहिये। अरवी के पत्तों को झुलसे से बचाने के लिए जून में वो देना अत्यन्त लाभकारी होता है।

५. घना न बोना :

अनुसंधान द्वारा ज्ञात हो चुका है कि घना बोने से पौधे कमजोर उगते हैं और जल्दी ही रोग ग्रसित हो सकते हैं। विशेष कर जब पौधे क्यारियों में बोये जाते हैं तब गलने वाली बीमारी बहुतायत से लगती है और कभी कभी पूरी क्यारी ही मर जाती है। पौधों को पूरी मात्रा में धूप तथा हवा भी नहीं मिल सकेगी और पानी भी जमा हो जायेगा। पौधे क्षीण हो जायेंगे। अतः कभी घनी बुवाई न करनी चाहिए।

६. पानी का निकास :

बहुधा देखा गया है कि जहाँ नमी रहती है अथवा पानी भरा रहता है वहां पर बीमारी बहुत वेग से बढ़ती है। पपीते की 'फुटराट' बीमारी पानी भरने से ही बढ़ती

है। अतः पौधों को उनके चारों ओर थावले बना कर या ऊँची जगह में बोने से (ताकि पानी इकट्ठा न हो पावे) बीमारियों से बचाव हो जाता है।

७. सिंचाई :—

यह देखा गया है कि जब बीमारी के लक्षण पर्याप्त रूप में उभर आते हैं तब सिंचाई करने पर बीमारी का प्रकोप बढ़ जाता है व फसल की बहुत हानि होती है। उदाहरण के लिये गेहूँ की गिरवी में लक्षण दिखाई देते ही सिचाई करने से रोग भयंकर रूप धारण कर लेता है क्योंकि फफूंदियाँ नमी में खूब बढ़ती हैं। अतः बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर सिंचाई नहीं करनी चाहिये।

(स) पौधों व बीजों की चिकित्सा

रोग संचरित पौधों व बीजों का उपचार भौतिक उपायों द्वारा अथवा रासायनिक पदार्थों से किया जा सकता है। इससे पौधे तन्दुरुस्त और अच्छी उपज वाले होते हैं।

१—भौतिक उपायों द्वारा बीजों का उपचार:— गेहूं और जौ के कण्डुये की रोक-थाम के लिये बीजों का उपचार धूप की गरमी से मई-जून में किया जाता है। इस समय दोपहर का तापक्रम प्रायः १२० फारेनहाइट रहता है। जिस खेत में कण्डुवा लगा हो उसके सब बीजों को सुबह ५-६ बजे ३-४ घन्टे के लिए पानी में भिगो देना चाहिए। ३-४ घन्टे के बाद बीज ६-१० बजे निकाल कर सीमेन्ट के फर्श अथवा कोयला मिले गोबर के फर्श पर सुखा देना चाहिए। शाम तक जब बीज अच्छी तरह सूख जाय तब बोरों में भर कर उपचार का लेबिल लगा कर गोदाम में सितम्बर-अक्टूबर तक रख देना चाहिए। ऐसे उपचार किए हुए बीजों से फसल लेनी चाहिए।

रासायनिक पदार्थों से उपचार:—

(१) नमक—(सोडियम क्लोराइड) के पानी से बीजों का उपचार—गेहूँ की सेहूँ बीमारी की रोक-थाम के लिए २० प्रतिशत वाले नमक के घोल में बीज डालने से गेहूँ के दाने ऊपर तैरने लगते हैं जिनको सरलता से अलग कर देना चाहिए। गेहूँ के दाने बर्तन की तली में बैठ जाते है। इस बीज को साफ पानी से ६-७ बार धो कर अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए।

(२) बीजों का रासायनिक उपचार—प्रायः बीजों का उपचार पारा मिश्रित बने बनाये रासायनिक पदार्थों से किया जाता है क्योंकि फफूँदियों के बीजाणु अनाज के दानों के बाहर चिपटे रहते हैं। बीजाणु बीजों के ऊपर चढ़े हुए भूसे के बीच में रह सकते हैं। एग्रोसन जी० एन० या सीरासान भूसे में घुस कर भी बीजाणुओं का नाश कर सकते हैं। यह रासायनिक पदार्थ प्रायः जौ और जई के आवृत तथा ज्वार के कराडुवे के उपचार के काम आते हैं। इन दवाइयों को बीज के साथ कम से कम १५ मिनट तक मिट्टी या धातु के बर्तन में बन्द करके, बोने से पहले अच्छी तरह मिलाकर हिलाना चाहिये। ४ सेर बीज के लिए एक तोला दवाई पर्याप्त है।

(३) डस्टिंग—खेत में बीमारी के कम करने अथवा मिटाने के लिए प्रायः गन्धक का चूर्ण प्रयोग किया जाता है। यह प्रायः गेहूँ की गिरवी तथा मटर की 'पाउडरी मिल डिउ, में इस्तेमाल किया जाता है। कानपुर में किये गये प्रयोगों से पता लगता है कि गिरवी देखते ही १५ सेर गन्धक प्रति एकड़ के हिसाब से १० रोज के के अन्तर पर ३ या ४ बार छिड़कने पर गेहूँ की पैदावार बढ़ जाती है।

(४) छिड़काव—प्रायः छिड़काव के लिए ताँबे वाले रासायनिक पदार्थ जैसे बोर्डो मिश्रण या पैरोनोक्स इस्तेमाल किया जाता है। यह आलू के अगेते तथा पछेते झुलसे में अरबी के झुलसे और रेंड़ी के झुलसे इत्यादि में प्रयोग किये जाते हैं। आलू के झुलसे के लिए रोग के लक्षण दिखाई देते ही फरवरी मास के अन्त तक १५ दिवस के अन्तर पर बोर्डो मिश्रण × (५ : ५ : ५०) या पैरोनाक्स ⊙ (०·३ प्रतिशत) के छिड़काव से रोग की रोकथाम की जा सकती है।

चिकने पत्ते वाली फसलों जैसे अरबी के लिए बोर्डो मिश्रण तथा पैरोनाक्स में चिपकने वाले पदार्थ जैसे राल इत्यादि मिला लेते हैं ताकि घोल पत्तियों पर चिपक सके वरना वह छिड़कने के बाद बह जाता है।

प्रायः १ प्रतिशत वाले बोर्डो मिश्रण में १ सेर राल मिला लेते हैं।

×यह दवाई खेत में छिड़कने के एक दो घंटे पहले तैयार की जाती है। इसको बनाकर नहीं रखा जाता है क्योंकि यह खराब हो जाती है। मिट्टी या लकड़ी के दो बर्तनों में २॥ सेर तूतिया (कापर सल्फेट) तथा २॥ सेर बिना बुझा हुआ चूना साथ-साथ कनस्तर भर पानी (एक कनस्तर में १८ सेर पानी) में घोल लिए जाते हैं। फिर दोनों घोलों को एक साथ बर्तन में डालते हुए बराबर लकड़ी या डंडी से चलाते जाना चाहिए। इसके बाद यन्त्रों से इसे खेत में छिड़क दिया जाता है।

⊙ इसमें १॥ सेर (तीन पौंड) पैरानाक्स २८ कनस्तर पानी में घोल कर छिड़क दिया जाता है।

(द) रोग अवरोधक जातियों का प्रयोग—रासायनिक पदार्थों तथा भौतिक उपायों से रोगों की रोकथाम हो जाती है परन्तु ये उपाय सरल न होने के साथ-साथ खर्चीले भी हैं। इसके अतिरिक्त यह जरूरी भी नहीं है कि रोकथाम पूर्ण रूप से ही हो। अतःऐसे बीजों का बोना जो रोगों के अवरोधक हों, अत्यन्त आवश्यक है। इससे खर्चा और मेहनत तो बचती ही है साथ में रोग की पूर्ण रूप से रोकथाम भी हो जाती है।

समस्त विश्व में ऐसे बीज पैदा किये जा रहे हैं जो रोग अवरोधक हैं। भारत व उत्तर प्रदेश भी इस दौड़ में पीछे नहीं हैं। गेहूँ की काली, पीली व नारंगी गिरवी के लिए एन० पी० ८०६ नामक जाति सर्व श्रेष्ठ है। गेहूं के अनावृत कण्डुवे के लिए एन० पी० ११४, १२० तथा १६५ सर्वश्रेष्ट हैं। गेहूँ की एन० पी० ७१० जाति दोनों ही रोगों (गिरवी व कण्डुवा) का सामना कर सकती है। गन्ने के कण्डुवे की रोकथाम के लिये जातियों को ३००, ३०१, ३१२, ३१३, ५१३ इस प्रदेश के लिए सर्व श्रेष्ठ हैं। गन्ने के काने रोग की रोकथाम जातियों को नं० ४५३, ३१३, ३६३, ५१३, ३५६, ३६५ कोस० नम्बर ७६, १०६, १८६ पोज २८७८ बोकर की जा सकती है।

क्या आप जानते हैं ?

भारत में इस्पात का उत्पादन

१—यद्यपि दुनियाँ में बढ़िया खनिज लोहे के भंडार की दृष्टि से भारत का स्थान दूसरा है, फिर भी दुनियाँ के कुल उत्पादन के मुकाबले यहाँ का उत्पादन सिर्फ २ प्र० श० है; अमेरिका का उत्पादन ४३ प्र० श० और रूस का १८ प्रतिशत है।

२—भारत में इस्पात का सालाना उत्पादन १५ लाख टन से कुछ कम है, जब कि ब्रिटेन में १ करोड़ ७० लाख टन और अमेरिका में १० करोड़ टन से भी अधिक इस्पात तैयार किया जाता है।

३—भारत में प्रति व्यक्ति सिर्फ ११ पौंड इस्पात की खपत होती है, जबकि अमेरिका में १,२३७ पौंड, ब्रिटेन में ६२८ पौंड, आस्ट्रेलिया में ५४० पौंड और इटली में १३७ पौंड इस्पात की खपत है।

४—पहली पंचवर्षीय आयोजना में इस्पात उद्योग के विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी गयी थी और १९५७-५८ तक १६ लाख ५० हजार टन इस्पात का उत्पादन करने का लक्ष्य रखा गया था; १९५०-५१ में १० लाख १० हजार टन इस्पात तैयार हुआ था।

५—पहली आयोजना के अन्त तक, भारत सरकार ने सरकारी क्षेत्र में इस्पात की तीन कारखाने खोलने का निश्चय किया। इन कारखानों में १०-१० लाख टन इस्पात तैयार करने की सामर्थ्य होगी और ये रूरकेला (उड़ीसा) भिलाई (मध्यप्रदेश) और दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल में खोले जा रहे हैं।

६—इन कारखानों के साथ बनने वाली बस्तियों के खर्च को छोड़कर, इन पर कुल ३५३ करोड़ रु० खर्च होने का अनुमान है।

७—१९६० में ६० लाख टन इस्पात के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। सरकारी क्षेत्र में खोले जाने वाले नये कारखानों और वर्तमान कारखानों को बढ़ाकर कुल जो उत्पादन होगा, उसी के आधार पर यह लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
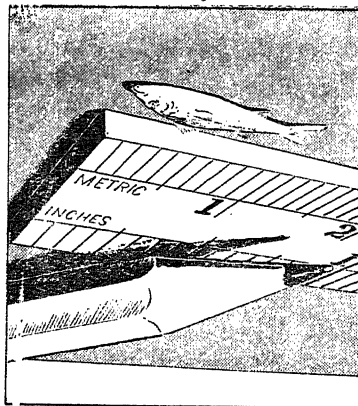
पृथ्वी पर सब से छोटा रीढ़ की हड्डी वाला जन्तु पैण्डाका पिगमी (Pandaka Pygmea) मछली है जो फिलीपाइन में पाई जाती है। इसकी औसत लम्बाई प्रायः ३ सूत (०.९५ से० मी०) है।

विज्ञान वार्ता

अणु द्वारा शरीर के मूल रस की खोज

अमेरिका स्थित शिकागो विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने यह घोषणा की है कि उन्होंने अणु की सहायता से शरीर के एक नये मूल रस की खोज की है। जिस तरह मानव शरीर के लिए लाल-कोषों का होना जरूरी है, उसी तरह इन लाल रक्त-कोषों के लिए इस मूल रस का होना भी जरूरी है। अणु शक्ति के कल्याणकारी पदार्थों अर्थात् रेडियो-सक्रिय आइसीटोपों की सहायता से ही उक्त अनुसन्धान कार्य में सफलता मिली है।

रक्त में लाल कोषों का अभाव हो जाने के कारण शरीर में ल्यकीमिया तथा अनीमिया की तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। इनके उपचार में उक्त खोज संभवतः बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धानकर्ताओं को शरीर में इस मूल रस की मौजूदगी के बारे में कुछ समय पहले से ही अनुमान था, लेकिन यह पहला अवसर है जब कि इस मूल रस के पाए जाने के ठीक स्थान तथा कार्यों के बारे में सही तौर पर पता चल सका है। हड्डी के बीच पाई जाने वाली मज्जा को बढ़ाना ही इस नए मूल रस का काम है। इस मज्जा से लाल-रक्त कोषों का निर्माण होता है। इन लाल रक्त-कोषों द्वारा ही शरीर के कोष समूहों को जीवनप्रदायक औषजन (औक्सिजन पहुँचाई जाती है।

अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम ढंग से पैनिसिलिन

अमेरिका के मेसाचसेटस इन्स्टिट्यूट आफ टैक्नालाजी के दो वैज्ञानिकों ने ६ वर्ष के अनुसन्धान के बाद आज रासायनिक विधि से पैनिसिलिन तैयार कर ली है। इस तरह उन्होंने रसायनशास्त्र की एक बहुत ही कठिन समस्या हल कर ली है।

पैनिसिलिन को सामान्यतः खमीर विधि से तैयार किया जाता है। पैनिसिलिन एक प्रभावकारी रोगाणु-नाशक औषधि है। इस दवा को १९४१ में पहली बार इस्तेमाल किया गया था। तब से इसके इस्तेमाल से लाखों व्यक्तियों की जानें बची हैं। रासायनिक विधि द्वारा १० नई किस्म को पैनिसिलिनों को तैयार किया गया है और अब इनकी चिकित्सा की दृष्टि से परीक्षा हो रही है।

यद्यपि कृत्रिम ढंग से तैयार पैनिसिलिन महंगी पड़ेगी, लेकिन यह आशा है कि प्राकृतिक पैनिसिलिन की अपेक्षा यह अधिक प्रभावकारी सिद्ध होगी। इस बात की भी सम्भावना है कि इस पैनिसिलिन के इस्तेमाल से अधिक प्रकार के रोगाणुओं का विनाश हो सकेगा। यह भी आशा की जाती है कि उसकी शरीर पर बुरी प्रतिक्रिया प्राकृतिक पैनिसिलिन से कम होगी।

सूर्य के ताप से दुगुना ताप पैदा करने वाली मशीन

चिकागो विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक नया यन्त्र तैयार किया है, जो सूर्य के ताप की अपेक्षा दुगुना ताप पैदा कर सकता है। इस ताप को हवाई जहाजों के निर्माण में काम आने वाली धातुओं की जांच के लिए तथा आणविक भट्टियों में बिजली के उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया जायेगा।

इस यन्त्र को वाटर-स्टेबिलाइज्ड इलेक्ट्रिक आर्क कहते हैं। यह यन्त्र द्वारा २५,६०० डिग्री फारेनहाइट तक तापमान पैदा किया जा सकता है, जबकि सूर्य का तापमान केवल ११,२५० डिग्री फारेनहाइट ही होता है।

डा० टी० आर० हौगनेस ने इस यन्त्र की उपयोगिता के बारे में यह बताया है कि इस यन्त्र की सहायता से बहुत से ऐसे लाभकारी वैज्ञानिक परीक्षण किए जा रहे हैं

जिनसे ऐसे आंकड़े सुलभ हो सकेंगे जो पहले प्राप्त होने संभव नहीं थे।

"रसायनशास्त्र तथा भौतिक शास्त्र के बहुत से मूल अनुसन्धान अब किए जा सकेंगे।

शतरंज खेलने वाली मशीन

अमेरिका में शतरंज खेलने वाली एक नई मशीन तैयार हुई है, जो खिलाड़ियों को हरा सकती है। लौस एलामोस (न्यू मैक्सिको) स्थित कैलिफोर्निया विश्व-विद्यालय की प्रयोगशाला के भौतिक शास्त्रियों ने इस मशीन को इस्तेमाल किया है। यह मशीन हिसाब-किताब जोड़ने वाली वह मशीन है, जिसे विद्युदणु मस्तिष्क भी कहते हैं।

जब शतरंज का खिलाड़ी अपनी पहली चाल चलता है, तब मशीन को चलाने वाला इस चाल को छेददार फीते पर रिकार्ड करके मशीन में डाल देता है। तब विद्युदणु स्मृति-कोषों को उक्त चाल सम्बन्धी सब सूचना मिल जाती है। मशीन उस चाल के जवाब में अपनी चाल का संकेत टैलिटाइप मशीन द्वारा देती है।

इस मशीन से वैज्ञानिकों को अपने कुछ खास प्रश्नों को हल करने में काफी मदद मिलेगी। इससे इस बात की भी परीक्षा हो जाएगी कि तर्क-वितर्क से युक्त प्रश्नों को इस प्रकार की मशीनें किसी सीमा तक हल कर सकेंगी।

अचूक गुणकारी औषधि

अमेरिका की प्रमुख औषधि निर्माता संस्था—"दि अपजौन कम्पनी" ने अत्यधिक शक्तिशाली "हार्मोन" (पौष्टिक तत्त्व) तैयार करने की घोषणा की है। हार्मोनों का उपयोग प्रायः गठिया तथा सूजन सम्बन्धी रोगों तथा दमा और हे नामक ज्वर के उपचार के लिए व्यापक रूप में किया जाता है।

इस नए शक्तिशाली "हार्मोन" को हार्मोन के अनुसन्धान में महान् प्रगति बताया गया है। यह हार्मोन जहां शक्तिशाली है, वहां इसमें पुराने हार्मोनों के बहुत से अवांछनीय बुरे प्रभावों का भी अभाव है।

नए हार्मोन की शक्ति बहुत अधिक बताई गई है। प्रयोगशाला में जब यह नया हार्मोन सुई द्वारा पशुओं के शरीर में पहुँचाया गया, तब यह पता चला कि हाइड्रो-कोर्टिजोन से यह १२० गुना अधिक शक्तिशाली है। लेकिन जब इस हार्मोन को मुख द्वारा खिलाया गया, तब यह हाइड्रोकोर्टिजोन से १६० गुना अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ।

डी० डी० टी० और कीड़े-मकोड़े

विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुख्यालय में ३० सदस्य-देशों से सूचनाएँ आयी हैं कि कुछ कीड़े-मकोड़ों पर डी० डी० टी० तथा अन्य कीट नाशक औषधियों का असर नहीं पड़ रहा है। इससे अब एक नयी समस्या पैदा हो गयी है कि कीड़ों को कैसे मारा जाय।

सौभाग्य से भारत में ऐसा नहीं हुआ। जिन स्थानों में पिछले दस वर्षों से डी० डी० टी० का प्रयोग हो रहा है, वहाँ से भी कोई ऐसी सूचना नहीं मिली कि मलेरिया मच्छरों पर डी० डी० टी० का असर नहीं हो रहा। केवल दिल्ली राज्य के एक गाँव में ऐसा अवश्य देखा गया कि एक विशेष प्रकार के मच्छर डी० डी० टी० छिड़कने पर नहीं मरते। इसलिए, राज्यों में तथा भारत की मलेरिया संस्था में वैज्ञानिक और कर्मचारी सतर्कता से इस बात की निगरानी कर रहे हैं कि मलेरिया के मच्छरों में प्रतिरोध-शक्ति तो उत्पन्न नहीं हो रही।

दूसरे देशों में कीड़ों पर डी० डी० टी० का बिल्कुल ही असर न पड़ रहा हो, यह बात नहीं है। किसी देश में कम असर पड़ रहा है और किसी में अधिक। इसलिए मलेरिया संस्था के अधिकारी इन सूचनाओं से घबराये नहीं हैं।

टिकाऊ घी

गर्म देशों में घी काफी समय तक खराब नहीं होता। फिर भी गर्मी, हवा, रोशनी तथा अन्य परिस्थितियों के कारण यह खराब होने लगता है और इसके पोषक-तत्त्व कम हो जाते हैं।

कोयमुत्तूर की कृषि गवेषणाशाला ने क्रीम से घी तैयार करने का ऐसा तरीका निकाला है, जिससे वह अधिक समय तक टिक सकता है।

घी को डिब्बों में बन्द करते समय डिब्बे से समूची हवा निकाल देने से भी घी अधिक टिकाऊ रहता है।

दारा मछली से विटामिन "ए"

बम्बई की मछली-पालन प्रौद्योगिक प्रयोगशाला में यह खोज की गई है कि दारा जाति को मछली के जिगर और अंतड़ियों बगैरह में विटामिन 'ए' बहुतायत से होता है और वह आसानी से निकाला जा सकता है।

बम्बई के आसपास के समुद्र में दारा मछली बहुतायत से मिलती है। मछुए इन मछलियों को साफ करते समय अंतड़ियाँ वगैरह निकाल कर वहीं समुद्र में फेंक देते हैं और आज तक कभी किसी को यह ख्याल न था कि यह भी कोई काम की चीज हो सकती है। उपरोक्त प्रयोगशाला में जो खोज की गई है, उससे मछुओं को बड़ा भारी लाभ होगा। दारा मछली की अंतड़ियों वगैरह के तेल से विटामिन 'ए' निकालने की विधि भी प्रयोगशाला में तैयार की जा चुकी है। इस प्रकार इस मछली से जो विटामिन मिलता है, वह गुणों में शार्क मछली के जिगर के तेल से मिलने वाले विटामिन जैसा ही होता है। यह विटामिन दवाइयाँ बनाने में बहुत काम आता है।

समुद्री पानी की माप

समुद्र को अपार पारावार की उपाधि दी जाती है। परन्तु ब्रिटेन की समुद्र-विज्ञान-संस्था ने अपार को भी माप कर दिखा दिया है।

समुद्र को मापने का विचार युद्ध के दिनों में लहरों का अध्ययन करते समय पैदा हुआ था। युद्ध के बाद व्हेल के शिकार के सिलसिले में यह विचार और स्थिर हुआ।

समुद्री लहरों की बनावट और गति का अध्ययन करते समय समुद्र के पानी को मापने के कुछ सरल उपायों का पता चला।

इन तरीकों को अभी और पक्का करने की आवश्यकता है। मगर इनका सिद्धान्त यह है कि समुद्र की सतह पर हवा के दबाव में होने वाले परिवर्तनों का हिसाब लगाकर समुद्र का पानी मापा जा सकता है। इन परिवर्तनों का लहरों की गति से घनिष्ट सम्बन्ध है और ये परिवर्तन हवा की धीमी रफ्तार के समय आसानी से जाने जा सकते हैं, परन्तु तेज रफ्तार के समय इनको जानना कठिन हो जाता है।

इन परिवर्तनों को अंकित करने के लिए जहाजों में लगाने के लिए लहरें नापने का मीटर बनाया गया और उसे प्रयोग के तौर पर कुछ गवेषक जहाजों पर लगाया गया है। समुद्र के जल के नीचे की धाराओं को मापने के लिए भी विशेष ढंग के बेड़े बनाये गये हैं।

जड़ी-बूटियों की खेती

पश्चिम बंगाल सरकार की जड़ी-बूटी समिति जड़ी-बूटी उगाने में सराहनीय काम कर रही है। जड़ी-बूटियाँ दार्जिलिंग के रोगों नामक स्थान पर उगाई जाती हैं और उनका रासायनिक विश्लेषण आदि स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन के रसायन विभाग में किया जाता है।

देश तथा विदेश की अनेक जड़ी-बूटियां की सफलतापूर्वक खेती की जा रही है।

भारत में अनेक प्रकार की जलवायु पाई जाती है, अतः यहाँ तरह-तरह को जड़ी-बूटियाँ उगाई जा सकती हैं।

लगभग ३० साल पहले देश में जड़ी-बूटियां उगाने के बारे में वैज्ञानिक अध्ययन शुरू किया गया था। जड़ी-बूटियों के गुण तथा उपयोग जानने के लिए पड़ताल की गयी। इसके लिए भारतीय कृषि गवेषणा परिषद् और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद् आर्थिक सहायता देती थीं। पड़ताल में काफी साल लगे और अब उसके फलस्वरूप भारतीत जड़ी-बूटियों पर एक बहुत लाभदायक पुस्तिका प्रकाशित हो गयी है।

अलुमीनियम पर मुलम्मा चढ़ाने का नया तरीका

अलुमीनियम शक्तिशाली विद्युतधनीय (इलेक्ट्रो पाजिटिव) होता है और इसकी सतह पर हमेशा मोर्चे (आक्साइड) की परत जमी रहती है। इसलिए अलुमीनियम पर मुलम्मा चढ़ाने में बहुत कठिनाई होती है। जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातु विज्ञानशाला ने इस पर मुलम्मा चढ़ाने का नया तरीका निकाल कर ये कठिनाइयां दूर कर दी हैं।

नये तरीके के अनुसार अलुमीनियम पर किसी धातु का मुलम्मा चढ़ाते समय उस पर लोहे की हलकी परत फेर दी जाती है।

मुलम्मा चढ़े पीतल या इस्पात की वस्तुओं की अपेक्षा अलुमीनियम की वस्तुएँ अधिक उपयोगी हैं। ये हल्की होती हैं और नष्ट भी जल्दी नहीं होती। देश में अलुमीनियम काफी मात्रा में मिलता है जबकि तांबा उतना नहीं मिलता। अतः अनेक कामों में तांबे, पीतल या इस्पात की जगह मुलम्मा या कलईदार अलुमीनियम काम में लाया जा सकता है।

सस्ते नरम पत्थर सड़क के लिए उपयोगी

नयी दिल्ली की केन्द्रीय सड़क गवेषणाशाला ने बीकानेर, जोधपुर, जेसलोर, जयपुर और राजस्थान के अन्य स्थानों पर पाये जाने वाले नरम पत्थर की जांच की है। यह पत्थर सड़क बनाने में उपयोगी पाया गया।

ये कंकड़-पत्थर राजस्थान ही नहीं बल्कि अन्य स्थानों में भी पाये जाते हैं। अब तक ये सड़कों के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते थे, इसलिये इनका उपयोग भी नहीं हो सका।

देश में सख्त पत्थर से ही सड़कें बनती रही हैं। जहाँ ये पत्थर नजदीक नहीं मिलते वहाँ सड़क बनाने में काफी खर्च हो जाता है। गवेषणाशाला की इस खोज से सड़क निर्माण में खर्च की काफी बचत होगी।

चावल पकाने का अच्छा चूल्हा

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य शिल्प विज्ञान गवेषणाशाला ने चावल पकाने का एक अच्छा चूल्हा (कुकर) तैयार किया है। इसमें चावल अच्छा बनता है और पोषकतत्त्व (विटामिन बी-१) भी नष्ट नहीं होता।

इसमें दो पौंड चावल पक सकता है और इसका मूल्य केवल ११ रु० है।

रेह की खानें

हाल ही में हैदराबाद और राजस्थान के कुछ भागों में रेह की खानों का पता चला है। यह मिट्टी (रेह) तेल-शोधक-कारखानों, चीनी और रसायन उद्योगों और तेल के कुएँ खोदने में काम आती है।

भारतीय भूगर्भ सर्वे ने हाल ही में हैदराबाद के गुलबर्गा जिले में रेह की खानों का विस्तृत सर्वे किया है। राजस्थान के बाड़मेर और बीकानेर जिलों में भी रेह की खानें पायी गयी हैं।

जाँच से पता चला है कि इन खानों की रेह काफी अच्छी किस्म की है। यह, विदेश तथा देश के अन्य भागों से प्राप्त होने वाली रेह का मुकाबला कर सकती है। रेह तैयार करने का कारखाना खोलने के बारे में कार्रवाई शुरू है।

चीनी की मात्रा बढ़ाने का नया तरीका

कानपुर की राष्ट्रीय चीनी गवेषणाशाला ने गन्ने का रस साफ करने का नया तरीका निकाला है। इससे अधिक और अच्छी चीनी बनेगी।

राष्ट्रीय गवेषणा विकास निगम के अन्तर्गत, एक साल से अधिक इस विषय में खोज होती रही, जिससे पता चला कि इस नये तरीके से पुराने तरीके के मुकाबिले ५ से १० प्रतिशत तक अधिक चीनी तैयार हो सकती है।

प्रचलित तरीके से गन्ने के रस से जो चीनी बनती है वह गन्ने की तोल का दसवाँ भाग होती है। इस तरीके से कुछ चीनी खांड बन जाती है। इसलिए ऐसा तरीका निकालने का प्रयत्न किया गया जिससे खाँड न बनकर अधिक से अधिक चीनी ही तैयार हो सके।

कुछ ऐसे कृत्रिम गोंद (रेजिन) बनाये गये हैं, जो गन्ने का रस साफ करने और उसमें से शर्करा तत्व को अलग करने में बहुत उपयोगी है। इस गोंद को तैयार करने के लिए प्रायोगिक कारखाने का डिजाइन तैयार किया जा चुका है। यह कारखाना परीक्षा के तौर पर गवेषणाशाला में खोला जायगा। इसके बाद देश में चीनी के कारखानों के लिए यथेष्ठ मात्रा में उक्त गोंद को तैयार करने का काम उठाया जाएगा।

देश में २० लाख टन चीनी और ७ लाख टन खाँड बनती है। यदि यह नया तरीका सफल हुआ तो उतने ही गन्ने से १ लाख ४० हजार टन और चीनी तैयार होने लगेगी।

रेडियो-सक्रिय औषधि घावों की परीक्षा के लिए उपयोगी

मिशिगन विश्वविद्यालय के डाक्टरी शिक्षालय के डा० रीड ओ० डिंगमैन ने हाल ही में 'अमेरिकन एसोसियेशन औब प्लास्टिक सर्जन्स' नामक संस्था में भाषण देते हुये यह बतलाया कि त्वचा के गम्भीर घावों की गहराई का जल्दी से जल्दी पता लगाने के लिए अणुशक्ति के कल्याणकारी पदार्थ रेडियो-सक्रिय फास्फोरस का इस्तेमाल किया जा सकता है।

डा० डिंगमैन ने बताया कि त्वचा जलने से होने वाले घाव के उपचार के लिये घाव की गहराई का पता होना बहुत जरूरी होता है। उदाहरणार्थ, जब तीसरी कोटि के घाव के कारण पूरी चमड़ी नष्ट हो जाती है तब चमड़ी को उखाड़ कर उसके स्थान पर नई चमड़ी लगानी आवश्यक हो जाती है।

जब रेडियो-सक्रिय फास्फोरस को सुई द्वारा शरीर में प्रविष्ट किया जाता है तब यह फौरन ही शरीर में रस जाता है और घाव के आस पास के हिस्से में विकिरण के परीक्षा यन्त्रों की सहायता से इसे नापा जाता है। डा० डिंगमैन ने बताया कि प्रथम तथा द्वितीय कोटि के घाव में विकिरण की मात्रा बहुत भिन्न प्रकार की होती है।

१००० फुट लम्बे चित्र उतारने वाला कैमरा

एक अमेरिकी इंजीनियर ने एक ऐसा कैमरा तैयार किया है, जो १००० फुट लम्बी, १८ इंच चौड़ी तस्वीर को ६ फुट प्रति मिनट की रफ़्तार से उतार सकता है।

तेल-कम्पनियों ने इस कैमरे को खास तौर पर इस लिए पसन्द किया है, क्योंकि इसकी सहायता से उन्हें भूमि के नीचे की स्थित के बारे में ठीक-ठीक पता चल जाता है। इससे पहिले खास किस्म के कागज के पुलिन्दे पर सब तस्वीरें लेकर उन्हें जोड़ कर इकट्ठा किया जाता था। कुछ भी हो, इस तरीके से उन्हें पूरी तरह और सही तौर पर पढ़ा नहीं जा सकता था।

इससे पहले अलग अलग तस्वीरों को इकट्ठी फिल्म उतारने में कुछ अस्पष्टता हो जाती थी। इस नये कैमरे के निर्माता अमेरिकी इंजीनियर श्री सी० एच० टौपिंग का दावा है कि उसने स्फटिक को इस ढंग से इस्तेमाल किया है कि उक्त दोष दूर हो गया है। इस नये कैमरे को तैयार करने के लिए उसने "रिप्रोडक्शन इक्विपमेंट कम्पनी" की स्थापना की है।

कान के रोगों की जाँच के लिए मछलियों पर अनुसन्धान

एन-आर्बर स्थित मिशिगन विश्वविद्यालय के डाक्टरी शिक्षालय में, कान के भीतरी रोगों को ठीक तरह समझने के लिए शीघ्र ही समुद्र की 'लैम्प्री' नामी मछलियों को अनुसन्धान के लिए प्रयुक्त किया जायेगा।

'लैम्प्री' नामी मछली दूसरी मछलियों को खा जाती हैं। इस मछली के कान का भीतरी हिस्सा अविकसित सा होता है और मनुष्यों से भिन्न किस्म का होता है। लेकिन कान के भीतरी कोष मिलते-जुलते होते हैं। इस मछली को अनुसंधान-कार्य के लिए इस लिए चुना गया है क्योंकि इसके कान का भीतरी हिस्सा सामने ही रहता है। मनुष्यों तथा अन्य पशु-पक्षियों के कान का भीतरी भाग हड्डी के ढांचे से ढका रहता है, इसलिए उसका अध्ययन करना इतना सहज नहीं होता।

उजबकिस्तान में तेल की बड़ी खान का पता लगा

हेलीकोप्टर के सहारे फर्घना घाटी में तेल की एक नयी वृहत् खान का पता लगाया गया है।

अलोह धातु खनिज-धातु, कोयला तथा अन्य खानिज धातुओं के सर्वेक्षण में विमानों और हेलीकोप्टरों का व्यापक रूप में प्रयोग किया जाता है।

हीरे की खान का पता लगा

याकूतिया में हीरे की अत्यन्त समृद्ध खान का पता लगाया गया है। हीरों को खान से निकालने के लिए लेनिनग्राद के 'गियोगोगोराजवेद्का' नामक कारखाने ने हाल में तीन मौलिक-रौंतगेन-प्रकाशमय-स्वयंचालित यंत्र भेजे हैं। इन यंत्रों के सहारे चट्टान से हीरे के छोटे से छोटे टुकड़े चुने जाते हैं। इस यांत्रिक प्रसाधन के आविष्कार से पूर्व हीरे निम्नलिखित ढंग से खान से निकाले जाते थे। क्रेब्रियन चट्टान को चूर-चूर कर दिया जाता था। इसके बाद श्रमिक अन्धेरे कमरे में उन चूर किये हुये टुकड़ों का एक्स-रे करते थे। 'एक्स-रे' में हीरे चमकने लगते और श्रमिक चिमटी से उन्हें चुन लेते थे।

रोयेंतगेन-प्रकाशमय स्वयंचालित यंत्र किसी आदमी की सहायता के बिना ही चट्टान से हीरों को चुन लेता है। चट्टान को तोड़कर एक्स-रे प्रकाश द्वारा आलोकित स्वयंचालित यंत्र के हापर में रख देते हैं। इसकी किरणों में हीरे चमकने लगते हैं और यह प्रकाश फोटो सेल-द्वारा प्रतिबिम्बित होता है जिससे विशेष प्रकार के चाकू घूमने लगते हैं। ये चाकू हीरों को निकाल कर कंट्रोल एक्स-रे लैम्प के नीचे रख देते हैं, और इसके बाद हीरों को रिसीवर में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

ऐसे कपड़े जिनमें आग नहीं लग सकती

गलाई हुई धातु जिससे बहुत सारी चिनगारियाँ निकल रही हैं कलछी से साँचे में उड़ेली जा रही है। एक चिनगारी इस्पात-निर्माता की जाकिट पर गिरती है। अरे, लेकिन यह क्या? यह चिनगारी उसे जलाने के बदले निर्दोष भाव से नीचे लुढ़क जाती है। जाकिट विशेष प्रकार की वस्तु की बनी है। इसके ऊपर इस्पात की पतली परत चढ़ी हुई है जिससे इसमें आग नहीं लगती। यह असाधारण कपड़ा मास्को टेक्सटाइल इंस्टीच्यूट में तैयार किया गया है।

न केवल इस्पात निर्माताओं, जुड़ाई करने वालों, और ढलाई करने वालों के लिए वरन् उच्च-वोल्टेज-युक्त लाइनों पर काम करने वाले बिजली-मिस्त्रियों के लिए भी कपड़े के प्रायोगिक नमूने तैयार किए गये हैं। ताँबे की पतली परत चढ़े हुए कपड़े पहने बिजली-मिस्त्री को बिजली की करेंट की चिनगारी कुछ नहीं कर सकती।

जीवाणुनाशक कागज

किसी श्रमिक के हाथ में कुछ चोट लग जाती है। वह सोचने लगता है 'मैं इस छोटी सी चीज के लिए प्राथमिक उपचार केन्द्र में क्यों जाऊँ?' इस बात की परवाह किये बिना उसका जख्म विषाक्त हो सकता है, वह काम करता जाता है। यदि वह डाक्टर के पास जाता और जीवाणुनाशक कागज का टुकड़ा अपने जख्म पर लगा लेता तो उसका जख्म फौरन आराम हो जाता।

खरोंच लग जाने, कट जाने, मामूली और गहरा जख्म हो जाने, जल जाने, पैरों में पीप भरे घाव हो जाने पर सोवियत वैज्ञानिक आई० कालबिन द्वारा आविष्कृत कीटाणुनाशक कागज का प्रयोग किया जाता है। ठंड-निरोधक औषधि के रूप में भी सफलतापूर्वक इसका प्रयोग किया जा सकता है। नाक के छिद्रों में इसके छोटे-छोटे टुकड़े रखने से जीवाणुओं का नाश हो जाता है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिग्राम भार्गव	३७ नये पैसे
२—विज्ञान प्रवेशिका भाग २ (अप्राप्य) श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिग्राम भार्गव	
३—चुम्बक—प्रो० सालिग्राम भार्गव (अप्राप्य)	
४—मनोरंजक रसायन—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव (अप्राप्य)	
५—सूर्य सिद्धान्त छः भाग—श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (अप्राप्य)	
६—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
७—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रुपया ५० नये पैसे
८—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
९—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
१०—निर्णायक (डिटर्मिनेन्टस)—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे (अप्राप्य)	
११—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—डा० सत्य प्रकाश डी० एस-सी०	१ रु० २५ नये पैसे
१२—मिफताह उल फनून—प्रो० सय्यद मुहम्मद अली नामी (अप्राप्य)	
१३—ताप—श्री प्रेमवल्लभ जोशी (अप्राप्य)	
१४—हरारत—प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी (अप्राप्य)	
१५—पशुपक्षियों का शृङ्गार रहस्य—श्री सालिग्राम वर्मा एम० ए० (अप्राप्य)	
१६—केला—श्री गंगा शंकर पचोली (अप्राप्य)	
१७—गुरुदेव के साथ यात्रा—अनु० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (अप्राप्य)	
१८—क्षय रोग—डा० बी० के० मित्र (अप्राप्य)	
१९—दियासलाई और फासफोरस—श्री रामदास गौड़ (अप्राप्य)	
२०—शिक्षितों का स्वास्थ्य व्यतिक्रम—श्री गोपाल नारायण सेन सिंह (अप्राप्य)	
२१—पैमाइश—श्री मुरलीधर नन्दलाल (अप्राप्य)	
२२—कपास—श्री तेजशंकर कोचक (अप्राप्य)	
२३—कृत्रिम काष्ट—श्री गंगाशंकर पचोली (अप्राप्य)	
२४—आलू—श्री गंगाशंकर पचोली (अप्राप्य)	
२५—हमारे शरीर की रचना—डा० बी० के० मित्र (अप्राप्य)	
२६—ज्वर निदान और सुश्रूषा—डा० बी० के० मित्र (अप्राप्य)	
२७—मनुष्य का आहार—श्री गोपीनाथ गुप्त वैद्य (अप्राप्य)	
२८—सुन्दरी मनोरमा की करुण कथा—श्री नवनिद्धि राय (अप्राप्य)	
२९—उद्भिज का आहार—श्री एम० के० चटर्जी (अप्राप्य)	
३०—क्षार निर्माण विज्ञान—स्वामी हरिशरणानन्द (अप्राप्य)	
३१—प्रकाश रसायन—श्री वा० वि० भागवत (अप्राप्य)	
३२—डा० गणेश प्रसाद अंक (अप्राप्य)	
३३—रामदास गौड़ अंक (अप्राप्य)	
३४—उद्योग व्यवसाय अंक (अप्राप्य)	
३५—सालिग्राम भार्गव अंक (अप्राप्य)	
३६—अंजीर—श्री रामेशवेदी (अप्राप्य)	

३७—त्रिफला—श्री रामेशवेदी ३ रु० २५ नये पैसे
३८—साधारण रसायन—डा० सत्यप्रकाश (अप्राप्य)
३९—कार्बनिक रसायन—डा० सत्य प्रकाश (अप्राप्य)
४०—सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—श्री युधिष्ठिर भार्गव (अप्राप्य)
४१—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द—डा० सत्यप्रकाश (अप्राप्य)
४२—रसायन का इतिहास—श्री आत्माराम (अप्राप्य)
४३—मिट्टी के बर्तन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा (अप्राप्य)
४४—लकड़ी पर पालिश—डा० गोरख प्रसाद, श्री रामरतन भटनागर (अप्राप्य)
४५—सरल विज्ञान सागर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद (अप्राप्य)
४६—कृषि में हारमोन्स का उपयोग—कुमारी रवीन्द्र कौर एम० एस०-सी०, डी० फिल० (अप्राप्य)
४७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी ३७ नये पैसे
४८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी २ रुपया
४९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर— २ रुपया
५०—कलम पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी २ रुपया
५१—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए० २ रुपया
५२—तैरना—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० १ रु०
५३—वायु मंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन ७५ नये पैसे
५४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती ७५ नये पैसे
५५—फोटोग्राफी—डा० गोरखप्रसाद ४ रुपये
५६—फलसंरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह २ रु० ५० नये पैसे
५७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई ४ रुपये
५८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान ३ रुपये
५९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद ४ रुपये
६०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश ३ रुपये ५० नये पैसे
६१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी ३ रु० ५० नये पैसे
६२—सांपों की दुनियाँ—श्री रामेशवेदी ४ रुपये
६३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस ७५ नये पैसे
६४—राष्ट्रीय-अनुसंधान-शालायें २ रुपये
६५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र २ रु० ५० नये पैसे
६६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा ६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान-परिषद्-भवन
म्योर कालेज कम्पाउंड
थार्न हिल रोड

इ ला हा बा द

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद तथा मुद्रक ओंकार प्रेस, प्रयाग—३

भाग ८६

संख्या ३

दिसम्बर १९५७, धनुः २०१४ वि०, मार्गशीर्ष १८७९ श०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये]

[इस अङ्क का मूल्य ३७ नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायँगे।

// विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८६	धनुः २०१४ विक्र० मार्गशीर्ष १८७६ शाकाब्द; दिसम्बर १६५७ ई०	संख्या ३

सम्पादकीय

विज्ञान और सभ्यता

विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ सभ्यता और संस्कृति में भी एक नये ढङ्ग का परिवर्तन आ रहा है। फलतः कुछ भौतिकबाद बढ़ रहा है और अध्यात्मिकता का ह्रास होने का भय है। इस परिवर्तन का कारण है मानव का केवल उन वैज्ञानिक तत्वों की ओर आकृष्ट होना जो उसे भौतिक स्थल पर अधिक रोचक प्रतीत होते हैं। परन्तु विज्ञान सत्य की खोज है जिसके फलस्वरूप हमारी क्षितिज की सीमा दूर होती जा रही है तथा हमारा दृष्टिकोण अधिक विस्तृत हो रहा है। विज्ञान अवलम्बित है प्रयोगों—सच्चाई के साथ किये गये प्रयोगों पर। यदि मानव के प्रत्येक व्यवहार में सच्चाई और प्रत्येक बात को बारीकी से जाँचने की भावना आ जायगी तो यह संसार यथार्थतः एक नई उन्नत और परिष्कृत संस्कृति और सभ्यता का निर्माण करने में सफल होगा।

क्षय रोग और उसकी रोक थाम

पचास वर्ष पूर्व विदेशों में प्रतिवर्ष प्रति १ लाख व्यक्तियों पर १०० से २०० तक व्यक्ति क्षय रोग से मृत्यु को प्राप्त होते थे। उन्नत चिकित्सा प्रणाली और रोक थाम से सुप्रबन्ध से आज इन देशों में प्रतिवर्ष ४ से २० ही लोग मरते हैं। इस प्रगति की दौड़ में भारत अभी बहुत पीछे है। आज भी हम प्रायः उसी अवस्था में है जिसमें उन्नित शील देश लगभग ५० वर्ष पूर्व थे। हमारे देश में आज भी प्रति १५० क्षय रोगियों में एक मृत्यु को प्राप्त होता है। राष्ट्रकी जनक्षति का अनुमान हम

इस तथ्य से लगा सकते हैं कि आज भी भारत में प्रति मिनट क्षय रोग से एक रोगी की मृत्यु हो जाती है।

क्षय रोग से बचने के लिये अधिकांश देशों में बी० सी० जी० के टीकों का उपयोग होता है। इन टीकों की परीक्षा अमेरिका कनाडा जर्मनी स्कैन्डेनेविया आदि देशों में टीके के करने पर पता लगा कि ८० प्रतिशत लोगों लगभग ५ वर्ष के लिये क्षय रोग के प्रकोप से मुक्त रहे। इसके अतिरिक्त टीके का उन पर कोई कुप्रभाव भी नहीं हुआ। अमेरिका, एशिया रूस और जापान में बी० सी० जी० के टीके लगाने का बड़ा प्रचलन है। ब्रेजिल, चेकोस्लोवाकिया, फ्राँस नार्वे और यूगोस्लाविया में बी० सी० जी० का टीका लगवाना कानूनन अनिवार्य कर दिया गया है। भारत में भी सन् १९४८ से बी० सी० जी० के टीका लगाने का कार्य प्रारम्भ किया गया। सरकार ने गिण्डी में बी० सी० जी का टीका तैयार करने का एक विशाल कारखाना खोला है। यह अपनी कोटि का संसार का सबसे बड़ा कारखाना है। इसके लिये भारत सरकार से तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल-आपात कोष से भी पर्याप्त आर्थिक सहायता मिली है केन्द्रीय सरकार के प्रयत्न स्वरूप अब तक लगभग १० करोड़ लोगों को डाक्टरी परीक्षा की गई है और लगभग ३॥ करोड़ लोगों को बी० सी० जी० का टीका लगाया जा चुका है पुस्तिकाओं, इस्तिहारों, फिल्मों आदि के द्वारा भी जनता को क्षय रोग से बचने के उपायों से अवगत कराया गया है। वास्तव में सरकार का इस दिशा में किया गया कार्य स्तुत्य है।

यह तो कहना कठिन है कि क्षय रोग की रोक थाम के लिये अपनाई गई इन प्रणालियों से निकट भविष्य में यह रोग समूल नष्ट हो जावेगा किन्तु फिर भी रोगियों की सख्या में आशातीत कमी हो जाना तो निश्चित ही है। आशा है सरकार और जनता के सहयोग से देश एक बड़ी जन और धन की हानि से बच जावेगा और भावी सन्तति इस रोग की आशंका से मुक्त हो जावेगी।

जानवरों का समय ज्ञान

डा. सत्य नारायण प्रसाद

किसी से पूछिये 'महाशय क्या समय है।' शीघ्र ही उत्तर मिलेगा "आठ बजकर दस मिनट" निःसंदेह समय का इस प्रकार यथार्थ पूर्ण निश्चित करना मानव ही की बुद्धि का चमत्कार है। परन्तु समय केवल मानव की अमानत नहीं, अन्य ऐसे जन्तु हैं, जिन्हें समय का पूर्ण ज्ञान होता है और वह इस ज्ञान का प्रयोग करते हैं। यह सत्य है कि वे समय बतला नहीं सकते परन्तु उनके बहुत से आचरण समयानुकूल होते हैं। ऐसे समयानुकूल आचरण का समय के ज्ञान बिना होना संभव नहीं प्रतीत होता।

मुर्गे के समय ज्ञान से सभी परिचित हैं, हर रोज वह प्रभात की घोषणा करता है। कवियों तथा लेखकों ने इसका पूरा सदुपयोग किया है। तुलसीदास जी कहते हैं। 'उठे लखन निशि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान'।

देहात के जीवन में अब भी मुर्गे की बांग का बड़ा महत्व है। वैसे तो और भी दूसरे जानवर घड़ी का काम करते हैं। प्रायः पौ फटते फटते भेड़ों का मिमियाना गड़रिये को जगाता है, तो गधा धोबी को, इसी प्रकार गाय बैल किसानों को सुबह के आने की सूचना करते हैं तो चिड़ियों का चहचहाना अन्य लोगों को।

हमारे घर एक घोड़ा था जिसकी मालिश नित्य प्रायः प्रातः काल ४ बजे प्रारम्भ हो जाती थी ताकि पांच बजे वह सवारी के लिये तैयार हो जाय। इससे घोड़े की ऐसी आदत पड़ गई थी कि वह नित्य चार बजे सुबह एक या दो बार इतनी जोर से हिनहिनाता था कि सईस अपने आप ठीक समय पर जाग जाता था। अभी थोड़े ही दिन पहले की बात है कि मेरी माता जी पूजा समाप्त करने के बाद सुबह एक गाय को रोटी खिलाया करती थीं। अनुमानतः उनकी पूजा नौ या सवा नौ बजे तक समाप्त होती थी, पहले कुछ दिनों तो उन्हें गाय के आने की बाट जोहनी पड़ती थी, पर कुछ दिनों के बाद एक गाय नित्य समय पर आने लगी, और अक्सर उन्हें दरवाजे पर खड़ी मिलती थी, यदि समय का ज्ञान गाय को न होता तो वह क्योंकर नित्य एक ही समय पर रोटी के लिये आती।

प्रोफेसर जे० आर्थर टॉमसन ने पेरिस के लक्ज़ेम्बर्ग बाग की चिड़ियों की ऐसी ही आदत का एक स्थान पर उल्लेख किया है। एक दयालु पुरुष वहाँ चिड़ियों को खिलाने के लिये नित्य दिन को दोपहर के पहले पधारते थे। ठीक उसी समय कुछ गौरैया तथा अन्य चिड़ियां वहाँ एकत्र हो जाती थीं। उनको ठीक समय का ज्ञान था, क्यों कि न तो वह उन सज्जन के आने की प्रतीक्षा करती थी और न ही घड़ी की, वह सज्जन के आने के कुछ समय पूर्व ही आ जाती थीं, ताकि उनके आते ही सुन्दर भोजन हो। यदि वह उन सज्जन के आने के बाद पहुंचती तो उनका आना संबन्ध ज्ञान के कारण माना जाता। परन्तु रहस्य की बात यह है कि वह उन सज्जन के आने के पूर्व ही आ जाती थी, इसलिये निश्चय ही इनके आने की व्यवस्था केवल समय ज्ञान के आधार पर ही की जा सकती है।

इस पहेली के सुलझाव के लिये कुछ लोगों ने कहा है कि चिड़ियाँ सुबह को उस समय नित्य भूख महसूस करने लगती होंगी, और यह साधारण ज्ञान की बात है कि नित्य एक समय पर एक कार्य करने के कारण कुछ शारीरिक लय सी बन जाती है और इसी के अन्तर्गत ठीक उसी समय उस कार्य की इच्छा होने लगती है, इसी को आदत कहते हैं और आदत अर्जित मानसिक गुण है जो अभ्यास से उत्पन्न होती है, जैसी आदत बन जाती है, प्राणी की मानसिक चेष्टायें उसी के अनुकूल दिशा में होती हैं, ठीक समय पर खानेवाले व्यक्तियों को भूख नित्य उसी समय लगने लगती है, घड़ी वह देखें

अथवा न देखें पर उनकी शारीरिक लय उन्हें खाने के समय के आने की सूचना दे देती है।

रोस्कोफ के समुद्र के किनारे बालू पर लहरों के वापस जाते ही हरे रङ्ग के "कन्वो ल्यूटा" कीड़े बाहर निकल आते हैं, और ज्यों ही लहर वापस आई कि वह बिलों में प्रवेश कर जाते हैं, यदि उन्हें वहाँ से प्रयोगशाला के किसी उपयुक्त स्थान में रख दिया जाय तो चाहें लहरें आवें या न आवे, वे कुछ दिनों तक ठीक उतनी ही देर के पश्चात बिलों से निकलते रहेंगे जितनी देर में वे समुद्र में निकलते थे। यह भी आदत की प्रेरणा वश होता है।

शारीरिक लय के अतिरिक्त सम्बन्ध ज्ञान भी इन प्राणियों को समय का अन्दाज लगाने में सहायता देता है। उदाहरणार्थ पेरिस की वही गौरैया वाली घटना लीजिये। वह चिड़ियाँ गर्मियों के आने पर भी ठीक उसी समय बगीचे में एकत्र होती रहीं गो कि यह जाड़ों के उस समय से एक घन्टा पहले था। इसकी व्याख्या लोगों ने यों की। बाग के तमाम काम गर्मियों में एक घन्टे पहले ही प्रारम्भ हो जाते थे। सफाई व बैठने की जगह को ठीक रखना आदि सबसे आवश्यक समय के आने की सूचना उन पक्षियों को मिलती थीं। चूँकि यह काम अब एक घन्टे पहले शुरू होते थे, वे एक घन्टे पहले आने लगे। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शारीरिक लय और सम्बन्ध ज्ञान दोनों के ही सहयोग से यह समय का अनुमान कर सकते हैं।

कुछ आधुनिक खोज से पता चला है कि मधुमक्खियों का समय का ज्ञान बहुत होता है। बहुत से प्रयोग खाने की सहायता से किये गये और यह पाया गया कि मधुमक्खियां यथाक्रम समय के पश्चात खाने के लिये आती हैं। हर तीन तीन घन्टों पर उन्हें खाना दिया गया तो वे ठीक हर तीसरे घन्टे ही उस स्थान पर वापस आईं। यह एक मानी हुई बात है कि कुछ पौधों के फूल दिन के किसी निश्चित समय में खिलते हैं और उनसे मधु उसी समय मिल सकता है। मधुमक्खियाँ भी यह समझ लेती हैं और मधु के लिये ठीक समय पुष्प के पास पहुँच जाती हैं। प्रयोग वाली मक्खियों के परों को रंग कर लोगों ने इस बात का अध्ययन किया और देखा कि यह नित्य पुष्पों के पास ठीक उनके खुलने के समय आ पहुंचती थीं। एक लेखक का तो विचार है कि, हो सकता है यदि हमने दिन भर से घड़ी न देखी हो और अचानक कोई समय पूछे तो हम अनुमानतः दो मिनट के हेर फेर से भी ठीक समय न बतला सकेंगे। पर यदि मधुमक्खियों में बतलाने की शक्ति होती तो वे बिलकुल ठीक समय बतलाने में सफल होतीं।

कुत्ते जैसे अधिक-बुद्धिमान जन्तुओं के साथ लोगों ने बड़े ध्यान से अध्ययन किये हैं। और फिर पूर्ण आलोचना व बहस के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि ये अपनी आदत तो बना ही लेते हैं, पर इनमें निश्चित समय के पश्चात अपनी दिनचर्या बदलने की भी शक्ति होती है। एक कुत्ता था जो रोज स्टेशन जाता था। और वहाँ से गाड़ी से फेंका गया अखबार उठा लाता था। रविवार को अखबार नहीं आता था। इसलिये कुत्ता उसे लाने रविवार को नहीं जाता था। रविवार को उसके स्वामी ने उसे स्टेशन भेजने का प्रयत्न किया पर वह असफल रहा। निःसंदेह कुत्ता किसी न किसी तरह यह जान जाता था कि बीच के ६ दिन बीतने के बाद आज फिर वही दिन है जिसको अखबार नहीं आता।

सिनसिनाटी विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध देह-व्यापार-विद्या के पंडित डा० गस्टाव ऐक्स्टीन को जन्तुओं को उनके प्राकृतिक वातावरण में अध्ययन करने की तीव्र उत्कंठा सी है। एक दिन उन्होंने एक विली नामक बिल्ली की कहानी सुनी जो हर सोमवार को सायंकाल के पौने आठ बजे विस्मय विमुग्धकारी कार्य करती थी। पहले तो डाक्टर साहब ने उस कथा पर विश्वास नहीं किया। फिर कई सोमवार वह उसके पीछे लगे रहे और उसके बाद उन्होंने लिखा : विली सप्ताह के अन्य दिनों साधारण बिल्ली की भाँति रहती थी। हर रात वह खाना खाने के पश्चात ऊंघती रहती थी। परन्तु सोमवार की रात को ठीक पौने आठ बजे अपने आराम के स्थान से उठ कर चल देती थी। चौराहों पर यदि लाल बत्ती देखती तो रुक जाती थी और हरी बत्ती को देखते ही चल पड़ती थी। कई मकान छोड़ कर वह एक अस्पताल जाती थी और वहां वह चढ़कर एक खिड़की

के पास एक स्थान पर पहुंचती थी जहाँ से वह वहाँ की नर्सों के खाने के कमरे को देख सकती थी। वहाँ वह खिड़की पर बैठ जाती और दो घन्टे तक बड़े ध्यान से नीचे नर्सों का खेल देखा करती थी।

यह स्त्रियां हर सोमवार की शाम को "बन्गो" नामक खेल खेला करतीं थीं। और किसी दिन खेल नहीं होता था। बिली खाना खाने के विचार से वहाँ नहीं जाती थी, क्योंकि वहाँ उसे खाना नहीं मिलता था। दूसरे वह दूसरी बिल्लियों का साथ करने के विचार से भी नहीं जाती थी क्योंकि वहाँ उसके अतिरिक्त और कोई बिल्ली नहीं पाई जाती थी। साधारण तौर से यही कहा जा सकता है कि बिल्ली को इन स्त्रियों की उछल कूद और बिंगो को देखने में ही आनन्द आता था। खेल समाप्त होने के पश्चात बिल्ली सीधी घर वापस जाती थी। भला इस बिल्ली को क्यों कर पता चलता था कि पौने आठ बज गया है? डाक्टर एक्स्टीन ने इसका उत्तर नहीं दिया। परन्तु अनुमानतः यही कहा जा सकता है कि उसे समय ज्ञान था। उसके विषय में यह भी उल्लेख किया गया है कि वह नित्य सुबह आठ बजकर दस मिनट पर नाश्ते के लिये आ उपस्थित होती थी।

चिड़ियों का देशान्तर-गमन भी समयानुकूल होता है। वे सदा नियमानुसार एक निश्चित समय पर एक निश्चित दिशा में चल पड़ती हैं। आकाश में उड़ती हुई सारस अपना निश्चित समय जानती है और दूसरी चिड़ियाँ तथा कछुये व गौरैया इत्यादि भी उनके आने का समय जानतीं हैं। इनके देशान्तर-गमन तथा आगमन का समय इतना निश्चित होता है कि पुरातन भारत-वर्ष में आने वाली चिड़ियों के नाम के आधार पर महीनों के नाम रक्खे गये थे।

बहुत से प्राणियों में बहुत सी प्रमुख शारीरिक क्रियायें भी पूर्णतया सामयिक होती हैं। प्रसिद्ध अंग्रेज जीव विज्ञानविद् मुनरो फाक्स ने अध्ययन किया है कि स्वेज नहर में पाये जाने वाला एक जाति का 'सी अर्चिन' सदा पूर्णमासी के दिन अंडे देता है। वह भी यह समझ नहीं सके कि इस सामयिकता के पीछे कौन सी शक्ति है। ये उदाहरण सिद्ध करते हैं कि जानवरों को समय ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे प्राणी हैं हैं जिनमें समय ज्ञान नहीं होता फिर भी वह किसी न किसी प्रकार सामयिकता का प्रदर्शन करते हैं।

आदि मानव के समय ज्ञान की भी यही हालत थी जो बहुत से जानवरों की है। वह भी समय का ज्ञान सूर्योदय तथा सूर्यास्त के आधार पर करते थे। रात को तारों के विशेष समूहों की अवस्था तथा स्थिति समय सूचक थी। चाँद का घटना बढ़ना उनके लिये समय का संकेत था। पूर्णिमा के इतने सूर्योदय पश्चात अमुक कार्य होगा इस प्रकार समय निश्चित किया जाता था। यह तो रही बहुत पुरानी बात, कोलम्बस ने अपनी समुद्र यात्रा में अपनी नाड़ी की गिनती से समय निश्चित करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने अनुमान लगाया कि वह नाड़ी की इतनी गिनती करने के पश्चात अमुक स्थान पार कर गये। जब अपने प्राथमिक तथा अविकसित रूप में मानव के समय ज्ञान की यह अवस्था थी तो हम आसानी से कह सकते हैं कि जन्तु समय ज्ञान में मानव से अधिक पीछे नहीं हैं।

———

एवरिस्ते गैलोआ—एक अध्ययन

श्रीराम सिन्हा, अध्यापक, गणितविभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी

कभी कभी किसी उदीयमान गणितज्ञ की अद्भुत प्रतिभा का उसके समकालीन मनुष्यों द्वारा इतना निरादर हुआ है कि यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि लोगों की अज्ञानता पर खेद प्रकट किया जाय अथवा उस गणितज्ञ के दुर्भाग्य पर। एवरिस्ते गैलोआ का केवल २० वर्ष का अत्यल्प जीवन 'प्रकांड प्रतिभा पर मूर्खता और अज्ञान की विजय' का ज्वलन्त उदाहरण है। जैसा कि शिलर ने कहा है "मूर्खता के सम्मुख देवतागण भी पराजित हो जाते हैं", गैलोआ भी उस पर विजय न पा सके।

गैलोआ का जन्म २५ अक्टूबर, १८११ को फ्रांस की राजधानी पेरिस के निकटवर्ती एक ग्राम में हुआ था। अपने जीवन के पहले ग्यारह वर्ष उन्होंने वहीं पर सुख पूर्वक बिताये। उनके पिता, जो उस स्थान के मेयर भी थे, स्वतन्त्रता के अनन्य उपासक थे। १२ वर्ष की अवस्था तक गैलोआ का पालन पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा उनकी माता द्वारा ही हुआ, और उनके चरित्र की बहुत सी बातें गैलोआ में भी आ गईं। उनकी गणित सम्बन्धी प्रतिभा का तो सम्भवतः उनके भीतर ही प्रादुर्भाव हुआ था क्योंकि ऐसी प्रतिभा न तो उनके मातृकुल में थी न ही उनके पितृकुल में।

१२ वर्ष की आयु में, सन् १८२३ में गैलोआ का नाम विद्यालय में लिखा गया। उस समय के अन्य विद्यालयों की भाँति ही यह विद्यालय भी विद्यार्थियों के लिये कैदखाने से अच्छा नहीं था। उसी वर्ष विद्यालय के प्रबन्धकों के विरुद्ध अपने विरोध-प्रदर्शन के लिये विद्यालय के कुछ छात्रों ने हड़ताल किया, जिनमें से कुछ विद्यालय से निकाल भी दिये गये। इन निकाले जाने वालों में गैलोआ का नाम नहीं था यद्यपि अच्छा ही हुआ होता यदि उन्हें भी यही दण्ड मिला होता।

अगले वर्ष से गणित में उनकी रुचि बढ़ने लगी। उन्होंने लेजाँद्र का गम्भीरता से अध्ययन किया और केवल एक आवृत्ति में ही प्रारम्भिक रेखागणित की पूरी रूपरेखा अच्छी तरह समझ ली, जबकि अच्छे विद्यार्थियों को भी इसे समझने के लिये पूरे दो वर्ष लगते थे। बीजगणित के प्रति उन्हें रुचि नहीं थी क्योंकि उनकी समझ में उसमें ऐसी रचनात्मक बातों का अभाव था जिन्हें कोई रचनाशील गणितज्ञ ही पूरा कर सकता था। उन्होंने लैग्राँज और आबेल का भी अध्ययन किया और १४ वर्ष की ही अल्प वय में बीजगणितीय विश्लेषण सिद्धान्तों के ग्रन्थ विशेषों को आत्मसात् कर लिया। फलस्वरूप यह महान् प्रतिभाशाली गणितज्ञ अपनी कक्षा में गणित में ही बहुत पिछड़ा रहा। कक्षा की गणित उन्हें बड़ी महत्वहीन प्रतीत हुई।

गैलोआ की एक विचित्रता यह थी कि वह कठिनतम गणितीय अन्वेषणों को भी अधिकतर अपने मस्तिष्क में में ही कर लिया करते थे। उन्हें विस्तार पूर्वक लिख लेने की आवश्यकता उन्हें नहीं प्रतीत होती थी और इससे उन्हें सदा हानि हुई। जब उन्हें ऐसी छोटी छोटी बातों की ओर ध्यान देना ही पड़ता था तो प्रायः वह क्रुद्ध हो उठते थे। फिर भी उस वर्ष परीक्षा में उन्हें सभी पुरस्कार प्राप्त हुये। तब उन्हें अपनी महती शक्ति का अनुभव हुआ और उनके चरित्र में एक विशेष परिवर्तन आ गया। उनकी इच्छा हुई कि जिन ग्रन्थकारों की कृतियों का उन्होंने अध्ययन किया है, आगे बढ़कर उनकी रचना-शक्ति के साथ अपनी शक्तियों का सन्तुलन करें।

उनके अध्यापक गण यद्यपि अच्छे तथा धीर स्वभाव के थे फिर भी अल्पज्ञ थे और गैलोआ के लिये तो अल्पज्ञता एक अक्षम्य अपराध से कम नहीं थी। उन्होने अपने शिक्षकों और मित्रों के हृदय में अपने प्रति एक विचित्र

सा भय उत्पन्न कर दिया था। पहले तो उन लोगों ने स्वीकार किया कि गैलोश्रा' सद्गुणों से युक्त एक अच्छे लड़के' थे। परन्तु धीरे-धीरे उन्हें गैलोश्रा में विचित्रतायें दिखाई पड़ने लगीं और अन्त में उन्होने स्वीकार किया कि वह 'मौलिक, विचित्र और तर्कशील' थे। उनका मातिष्क अस्वाभाविक था। उन्होने गणित की खोज कर ली थी और यह बात उनके शिक्षकों ने भी स्वीकार किया। उनके एक शिक्षक ने एक बार कहा कि "इस लड़के पर गणित का नशा छाया हुआ है मेरे विचार में अच्छा होता यदि उसके माता-पिता ने उसे केवल गणित का ही अध्ययन करने दिया होता। वह यहाँ अपना समय नष्ट कर रहा है, अपने अध्यापकों को परेशान करता है और स्वयं परेशान होता है।" यदि यह सलाह मान ली गई होती तो शायद गैलोश्रा हमारे बीच अधिक समय तक रहे होते।

१६ वर्ष की अवस्था में यह सोचकर कि उन्होंने पंचम घात समीकरण का हल प्राप्त कर लिया है, आबेल द्वारा की गई ग़लती को दुहरा दिया। नियमबद्ध होकर काम करने की सलाह की, जो उनके एक शिक्षक ने दी थी, अवहेलना करके वह दो बार इकोल पॉलिटेक्नीक की प्रवेशिका परीक्षा में सम्मिलित हुये। उन्हें विश्वास था कि वहाँ पर उनको गणितीय प्रतिमा को आदरऔर प्रोत्साहन मिलेगा किन्तु दोनों हो बार वह अनुत्तीर्ण रहे। कारण भी, जैसा टक्वेंम ने कहा है, यह था कि, अधिक बुद्धि वाला परीक्षार्थी, अल्प बुद्धि वाले परीक्षक के पास जाकर खो सा जाता है,,।

अपने अध्यापकों से प्रोत्साहन पाकर १७ वर्ष की अवस्थामें उन्होने समीकरणों के सिद्धान्त पर अत्यन्त महत्वपूर्ण गवेषणायें कीं। मार्च १८२६ में गैलोश्रा ने अपना पहला गवेषणापत्र प्रकाशीत किया। तत्काल्लीन प्रधान गणितज्ञोंमें प्रमुख थे कोशी, जिनकी लापरवाही से गणित शास्त्रके इतिहास में दो बहुत बड़े अनर्थ हुयें। वही गैलोश्रा के दुर्भाग्य के लिये भी उत्तरदायी थे। उन्होने गैलोश्रा को आश्वासन दिया था वह उनकी मौलिक खोजों को एकेडेमी ऑफ 'साइन्सेज़' के सम्मुख उपस्थित करेंगे। कोशी न केवल ऐसा करना ही भूल गये अपितु गैलोश्रा द्वारा भेजा गया मूल लेख भी खो दिया इसके कारण 'एकेडेमी' तथा उसके सभ्यों के प्रति गैलोश्रा की घृणा तीव्रतर हो उठी। विद्यालय के अधिकारियों ने भी उन्हें शान्ति पूर्वक अपनी गवेषणायें आगे नहीं बढ़ाने दिया। उन्हें गैलोश्रा में दिखाई पड़े केवल अभिमान और 'गणितज्ञ बनने की उत्कट इच्छा'। किन्तु उन बेचारों को क्या पता था कि गैलोश्रा को गणितज्ञ बनने की आवश्यकता न थी वे तो जन्म जात ही गणितज्ञ थे।

१६ वर्ष की आयु में, सन् १८३० में उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश मिला। इस वर्ष उन्होने बीजगणितीय समीकरणों के सिद्धान्त पर तीन गवेषणा पत्र लिखे और उन्हें गणित की ग्रैन्ड प्राइज़ (सर्वोच्च पुरस्कार) के लिये एकैडेमी के सम्मुख उपस्थित किया—जैसा करने का साहस केवल प्रमुख गणितज्ञ ही कर सकते थे। विशेषज्ञों का मत है कि "उनका लेख इस पुरस्कार से कुछ अधिक ही पाने के योग्य था। वह उच्चतम मौलिक कार्य था"। गैलोश्रा ने स्वयं कहा कि, "मैंने ऐसी गवेषणायें की हैं जिससे बड़े-बड़े दिग्गज भी चकित हो उठेंगे" और यह सत्य था। किन्तु दुर्भाग्य पर किसी का क्या वश ! संस्था का मंत्री उस लेख को देख तक नहीं पाया था कि उसकी मृत्यु हो गई और यह लेख भी खो गया।

संसार के प्रति गैलोश्रा की घृणा और बढ़ गई और उन्होने अपने को राजनीति के क्षेत्र में डाल दिया। १८३० कि क्रान्ति के सम्बन्ध में उन्हें अपने विद्यालय से निर्वासित कर दिया गया। तब उन्होने उच्च बीजगणित की शिक्षा देने के लिये एक स्वतंत्र कार्यक्रय बनाया जिसमें काल्पनिक संख्याओं के नये, सिद्धान्त, करणी की सहायता से समीकरणों को हल करने की विधि, संख्या शास्त्र, तथाबीजगणित द्वारा समझाये गये दीर्घ वृत्तीय फलनों' आदि की शिक्षा दी जाने वाली थी। परन्तु उन्हें कोई विद्यार्थी न मिला। पायसाँ से प्रोत्साहन पाकर उन्होंने एक बार फिर अपना एक लेख एकेडेमी के सम्मुख प्रस्तुत किया किन्तु पायसाँ ने उस पर अपनी सम्मति उसे 'दुर्बोध' कहकर प्रकट किया। इसके परिणामस्वरूप गैलोश्रा क्रान्तिकारी बन उठे। उन्होने कहा कि यदि जनता को उत्तेजित करने के लिये किसी के शव की आवश्यकता हो तो मैं अपना

शरीर देता हूँ'। १८३१ में उन्हें दो बार बन्दी किया गया किन्तु अन्त में उन्हें पेरोल पर छोड़ दिया गया।

इसी समय के लगभग गैलोआ का प्रथम तथा अन्तिम प्रेम व्यापार चला किन्तु सदैव की भाँति प्रेम पा सकने में भी उन्हें असफलता मिली। अतः इस समय तक वह जिस समाज में रहने को बाध्य हुये थे उसके प्रति उनकी घृणा तीव्रतम हो उठी।

विरोधीदल के दो सदस्यों से द्वन्द्व की चुनौतीपाकर उनसे न रहा गया। उन्होने स्वीकार किया और उसी में लगे घावों के परिणाम-स्वरूप ३१ मई १८३२ को उनका देहावसान हुआ। द्वन्द्व के पहिले वाली रात्रि उन्होंने' अपनी वैज्ञानिक कृति तथा वसीयत के पन्नों को लिखते हुये 'बिताई थी। बीच-बीच मे उन्होने हाशिये पर लिखा कि' मेरे पास समय नहीं हैं,। "उन अन्तिम कुछ घड़ियों में उन्होने जो कुछ लिपिबद्ध किया वह आगामी सैकड़ों वर्षों तक गणितज्ञों को व्यस्त रखने के लिये पर्याप्त रहेगा।" अपने प्राप्त कियेहुये फलों के बारे में उन्हें इतना विश्वास था कि अपनी वसीयत में— जो उन्होने अपने एक मित्र के नाम किया था—उन्होने लिखा कि "मैंनें विश्लेषण सिद्धान्तों के क्षेत्र में कुछ नई खोजों की हैं। खुले—आम जैकोबी या गाउस से कहना कि वह अपना मत प्रकट करें—इनकी सत्यता के नहीं अपितु इनके उपयोग के सम्बन्ध में। मुझे विश्वास है कि भविष्य में कुछ लोग जन्म लेंगें जिन्हें इस सबको पढ़ने में रुचि होगी।"

१८४६ में लिओविल मे लिखा, मेरा परिश्रम सफल हुआ जब मैंने थोड़े से रिक्त स्थान की पूर्ति करने पर उस उपपत्ति की पूर्ण सत्यता का अनुभव किया जिसके द्वारा गैलोआ ने अभाज्य घात के, लघुकरण के अयोग्य, समीकरणों के सम्बन्ध में अपना फल सिद्ध किया था। गैलोआ की भविष्य वाणी सत्य हुई। यदि इस गणितीय प्रतिभा को पहले ही मान्यता दी गई होती तो शायद गणित का संसार आज कुछ और समृद्ध होता।

पुच्छल तारे

डा० यतेन्द्रपाल वार्ष्णी

डीन स्विफ्ट (Dean Swift) ने लिखा था, "पुराने मनुष्य और पुच्छल तारों की मान्यता एक ही कारण से की गई है, उनकी लम्बी दाढ़ियाँ और भविष्य की घटनाओं को बताने का दावा"। एनक्सागोरस (Anaxagores) और डेमोक्रीट्स (Democritus) ने पुच्छल तारों का कारण बताया है, "नक्षत्र समूह के मिश्रित तेज़ को"। ज्योतिष विद्या की पुरानी मनगढ़न्त कहानियों के जन्मदाता अरस्तू (Aristotle) का भी कहना है :—ऊपरी वायुमण्डल में पृथ्वी की उच्छ्वास को पुच्छल तारा कहते हैं। पुराने काल में इस कल्पना को लोगों ने इतने विस्तृत रूप से अपनाया है कि पौलमे (Ptolemy) ने अपनी पुस्तक एल मेगेस्ट (Almagest) में पुच्छल तारों को आकाशीय पिण्डों में नहीं रक्खा है।

पुच्छल तारों के भौतिक स्वभाव, तथा गति के कारण के वर्णन में भले ही कितना ही अंतर हो अभी तक ये विश्व-भर में एक पूर्व सूचना के रूप में समझे जाते थे जैसे लोग कभी तो इन्हें अच्छे शकुन और प्रायः मृत्यु और बरबादी का कारण बताते थे। पुच्छल तारों का एकाएक और रहस्यमय प्रत्यक्ष होना, आकाश के आरपार जलती हुई उड़ान, तेज़ी से इसके पूँछ की दिशा का बदलना, बिना किसी चिन्ह के गायब हो जाना, यह सब एक डर और अन्धविश्वास का कारण बना। अन्धविश्वास अब धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं परन्तु यह घटना स्वयं इतनी ही प्रभाव शाली और भ्रमकारी है जितनी पहले थी।

जिसको जेरोम कार्डन (Jerome Cardan) ने पहले ही अनुमानित किया था, टाइको ब्राहे (Tycho Brahe) पहला था जिसने सब से पहले प्रमाणित किया कि पुच्छ लतारे सच ही एक आकाशीय वस्तु हैं जो चन्द्रमा से भी अधिक दूर हैं। टाइको ने यह सुझाव दिया था कि १५७७ में जो पुच्छल तारा दिखाई पड़ा था उसका रास्ता एक वृत था। कैपलर (Kepler) जिसने यह न सोचा कि पुच्छल तारे लौट भी सकते हैं, और इस लिए नक्षत्रों के गति के नियम के आश्रित हैं जिसको कि उसने स्वयं खोजा था, अनुमान लगाया कि उनकी निधि एक सरल रेखा है। जर्मन ज्योतिर्षी जान हैवीलियस (Johannes Hevelius) ने उनकी निधि को परवलीय अनुमानित किया था। यह एडमंड हैले (Edmund Halley) था जिसने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की सहायता से पुच्छल तारों की ग्रहपथ की समस्या को अंत में हल किया। राबर्ट हुक (Robert Hooke) ने सम्मति दी थी कि पुच्छल तारों की पूँछ सूर्य रश्मियों के दबाव के कारण बनती है। परिकल्पना अत्यन्त ही उपयुक्त थी। यही मत साधारण तौर पर ज्योतिषियों ने मान लिया है।

पुच्छल तारे अत्यन्त ही गहन त्रिमापीय वक्र रेखाओं में चलते हैं। गणना के वास्ते जब इनको द्विमापीय आस्कूलेटिन्ग (Osculating) ग्रहपथ के रूप में सरल किया जाता है, पता चलता है कि उनके ग्रह पथ एक शंकु-के खण्ड है :—जैसे परवलय, अति परवलय दीर्घवृत। अगर पुच्छल तारा केवल सूर्य के साधारण व्युत्क्रमीय खिंचाव के प्रभाव में हो, उसका रास्ता एक आस्कूलेटिन्ग (Osculating) ग्रह पथ होगा। यद्यपि सूर्य का ही मुख्य प्रभाव होता और यह शंकु-वक्र के नाभि पर रहता है वृहस्पति जैसे नक्षत्र का गुरुत्वाकर्षण पुच्छल तारा के ऊपर पड़ता है और इस प्रकार गति में व्यग्रता आ जाती है। कुछ हालतों में प्रभाव अत्यन्त ही गहरा होता है और उसके फलस्वरूप ग्रहपथ में एक तीव्र परिवर्तन हो जाता है। बहुत से आस्कूलेटरी (Osculatory) ग्रहपथ परवलय होते हैं, परन्तु पुच्छल तारा की गति में थोड़ी भी

वृद्धि या ह्रास ग्रहपथ को क्रमशः दीर्घवृत, या अति परवलय में बदल देता है।

सौर्य जगत में पुच्छल तारों का केवल एक छोटा सा अंश ही देखा गया है। यहाँ तक कि कम अवधि के पुच्छल तारे (जो कि १००वर्ष से कम में अपना वृत पूरा करते हैं) बहुत से निरीक्षणों के पश्चात् भी हमें निराश कर सकते हैं और लौटने में असफल रहते हैं। ब्रारसेन (Brorsen) का १८४६ का पुच्छल तारा (अवधि ५.५ वर्ष) पुनः १८७९ के बाद नहीं देखा गया और होम्स (Holmes) का १८९२ का पुच्छल तारा (अवधि ७ वर्ष) १९१९ या १९२८ में नहीं पाया गया। अन्य पुच्छल तारे जैसे १९४४ में एनके (Encke) का पुच्छल तारा प्रतिकूल परिस्थितियों में खो जाते हैं परन्तु दुबारा लौटने पर फिर मिल जाते हैं। हेले (Halley) का पुच्छल तारा (अवधि करीब ७७ वर्ष) ६ शताब्दियों तक बराबर सामयिक रहा है और १९८६ की वसंत ऋतु में फिर देखा जा सकता है। मध्यम अवधि के पुच्छल तारे —जिनमें से करीब ४० विदित है— १०० से १००० वर्ष मे सूर्य की प्रदीक्षणा करते हैं। परन्तु अधिक संख्या में, पुच्छल तारों के प्रसिद्ध अंग्रेज विशेषज्ञ ए. सी. डी. क्रामलिन (A. C. D. Crommelin) के मतानुसार, लम्बे समय (लगभग ४०,००० वर्ष) का ग्रहपथ होता है। इस बात का अनुमान लगाया गया है कि कम से कम ३०० लम्बे समय के पुच्छल तारे प्रत्येक शताब्दी में पेरी हिलियन (Perihelion) के पास आते हैं। इसलिए अगर ४०००० वर्ष औसत माना जाय, हम एक आश्चर्य जनक निर्णय पर पहुँचते हैं कि कम से कम सौर्य जगत में १००००० ऐसे पुच्छल तारें होगें जिनकी कि पेरीहिलियन दूरी इतनी होगी कि वे कभी न कभी देखे जा सकें। इसके उपरांत बहुत से ऐसे भी हैं जिन कि पेरीहिलियन दूरी अत्यन्त अधिक है।

६, ७ पुच्छल तारे प्रतिवर्ष खोजे जाते हैं। इनको पता लगाने के लिए उद्योग, उत्साह और सावधानी की आवश्यकता है। अच्छा साधन और भाग्य भी सहायता करता है। १८९६ में संयुक्त राज्य अमेरिका के ज्योतिषी चार्ल्स पेरिन (Charles Perrine) लिक वेधशाला (Lick Observatory) में एक स्वयं खोजे हुए पुच्छल तारे के विषय में निरीक्षण कर रहे थे, जब कि उन्होंने कील (Kiel) से एक तार पाया जिसमें कि उस समय पुच्छल तारा के स्थान के विषय में निर्देश था। तार भेजने में गड़बड़ी हो जाने के कारण एक दम अशुद्ध स्थान की खबर मिली, सही स्थान से २° अधिक। पेरिन ने गलती से अनभिज्ञ होने के कारण अपना दूरवीक्षण यंत्र (Telescope) निर्देशित दिशा में किया—और उसको एक नया पुच्छल तारा मिल गया। जोजेफ लालादें (Joseph Lalande), और उसके सहयोगियों के अप्रणामभूत परिश्रम से जिन्होने १७५९ में हेले के पुच्छल तारे की लौटने की तिथि की गणना की है, से ज्योतिषियों की निष्ठा और सहनशीलता का पता लगता है। लेपो (Lepaute) ने जो, लालाँदे के सहायकों में से एक थे, लिखा है—

"छः महीने तक हम लोगों ने सुबह से रात तक गणना की, कभी-कभी खाने के समय भी, जिसका परिमाण यह हुआ कि मैं एक रोग से ग्रसित हो गया और शेष जीवन भर सहना पड़ा। श्रीमती लेपो से एक ऐसी सहायता मिली जिसके बिना हम लोग अत्यधिक मात्रा में कार्य करने का साहस न करते जो कि प्रत्येक डिग्री के लिए पृथक-पृथक १५० दिनों तक दो नक्षत्र बृहस्पति और शनि की पुच्छल तारे से दूरी गणना करने के लिए आवश्यक थी।

गणना थी कि पुच्छल तारा शनि और बृहस्पति के प्रभाव से क्रमशः १०० और ५१८ दिन विलम्बित होकर— पेरीहिलयन के समीप १३ अप्रेल १७५९ को पहुँचेगा। सही तिथि केवल ३२ दिन पहले थी जो कि गणना करने वालों की कुशलता की द्योतक है।

पुच्छल तारा क्या है? एच. डब्लू रसेल (H. W. Russell) प्रसिद्ध वैज्ञानिक इसका वर्णन करते हैं "अलग-अलग कणों का समूह" धूल और गैस के साथ। एक निरीक्षक इसको सिर्फ एक वस्तु के रूप में देखता है जिसका सिर है पर

सिर जैसा नहीं, क्योंकि वह कभी-कभी अदृश्य हो जाता है, और पूँछ जो कि पूँछ के गुणों से भिन्न है और कभी-कभी अदृश्य भी हो जाती है। सिर अगर उपस्थित होता है तो हल्का चमकता हुआ बादल होता है जिसको कोमा (Coma) कहते हैं जो कि, एक चमकदार वस्तु जिसे न्यूकिलियस (Nucleus) कहते है, को घेरे रहता है। कोमा (Coma) पारदर्शक होता है और उसमें एक परिवर्तन होता है जैसे ही वह सूर्य के पास से गुजरता है। न्यूकिलियस परिवर्तनशील छोटे कणों का बना हुआ सान्द्र पदार्थ होता है। पुच्छल तारा की सब से दर्शनीय वस्तु उसकी पूँछ होती है। यह पूंछ कभी-कभी २०००००००० मील से भी अधिक लम्बी होती है और आकाश में १८०° तक फैली होती है। पुच्छल तारे सूर्य के समीप पहुँचने पर अपनी पूँछ सूर्य से दूर कर देते हैं। साधारणतः जिनको पेरीहिलियन की दूरी पास होगी, पूंछ उतनी ही अच्छी और साफ होगी। जैसे ही तारा सूर्य के समीप पहुँचता है पूँछ उतने ही पीछे की ओर होती है परन्तु पेरीहिलयन के बाद यह आगे हो जाती है। यह विचित्र बर्ताव इस सिद्धान्त पर समझाया जाता है कि सूर्य के विकरण का पुच्छल तारे की पूँछ के कणों पर उसी तरह तरह का प्रभाव पड़ता है जिस तरह कि हवा का एक धुँवे के झोंके पर। एक पुच्छल तारे की एक से अधिक पूंछ हो सकती है — बोरली (Borelli) के १९०३ के पुच्छल तारे की ९ पूंछ थी।

पुच्छल तारे आंशिक चमकदार होते हैं क्योंकि छोटे छोटे ठोस कण, जिससे कि वे बने होते हैं सूर्य के प्रकाश को परावर्तित, डिफरेक्ट (Diffract) और प्रकीर्णन (Scatter) करते हैं। परन्तु इसके वर्णपट में ज्ञात फ्रानहाफरस् रेखाओं (Fraunhofer lines) के अतिरिक्त और भी चमकदार पट दिखलाई पड़ते हैं।

पुच्छल तारों की आकृति, स्वरूप, और मात्रा में अत्यधिक परिवर्तन होता है। कुछ पुच्छलीय दैत्य स्वयं सूर्य से भी बड़े होते है। अधिकतर आकार २०००० से २००००० मील तक होता है। एकपुच्छल तारा की संहति दूसरे आकाशीय पिण्डों के सामने नगण्य है। लिटनटन (Lyttleton) ने राय दी है कि एक औसत पुच्छल तारे की संहति पृथ्वी का अरबाँ अंश है। इसका भार लगभग १०००००००००००० टन होता है। इस कारण अन्य आकाशीय पिण्डों के पथ पर इसका बहुत कम प्रभाव पड़ता है। इन छोटे-छोटे मात्रा की चट्टानों को जिनका कि आयतन सूर्य के बराबर है अगर फैलाया जाय तो दो पत्थरों के बीच में पर्याप्त जगह रह जायेगी जिससे कि अगर पुच्छल तारा पारदर्शक है तो कोई आश्चर्य नहीं। लिटनटन के द्वारा पूंछ धूल और गैस से बना मिश्रण है। उल्का पुच्छल तारों से सम्बन्धित होते हैं। एक मानी हुई सम्भावित परिकल्पना यह है कि उल्के पुच्छल तारों के टूटे हुए अवशेष हैं।

बच्चों का भोजन कैसा हो

छोटी उम्र में बच्चों का शरीर जल्दी जल्दी बढ़ता है। पैदा होने के पाँच-महीने बाद बच्चे का वजन आम तौर पर दुगना और एक वर्ष बाद तिगुना हो जाता है। इसी लिए छोटे बच्चों को बड़ों की अपेक्षा अधिक पौष्टिक भोजन की ज़रूरत होती है। बड़ों को इतने ही भोजन की ज़रूरत होती है, जिससे उनमें काम करने की ताकत बनी रहे और जो ताकत खर्च होती है उसकी निरन्तर पूर्ति होती रहे बच्चों को इसके अलावा कुछ ऐसी खुराक भी चाहिये जिससे उनके शारीरिक अवयव पुष्ट हो सकें

बच्चों को अपने भोजन में जब पयप्ति मात्रा में में प्रोटीन, चर्बी आदि नहीं मिलती तो उनकी बाढ़ रुक जाती है और अंग कमजोर पड़ जाते हैं। छः दहीने तक तो हमारे देश में आम तौर पर माँ के दूध से काम चल जाता है। इसके बाद बच्चों को अतिरिक्त प्रोटीनयुक्त पदार्थों की जरूरत पड़ती है। बच्चों की खुराक में प्रोटीन-युक्त पदार्थ जैसे-दूध, अंडे की जरदी, मांस शोरवा, दालें आदि-होने से उन्हें जिगर-रोगों तथा चर्म रोगों के हो जाने का खतरा नहीं रहता। प्रोटीन न मिलने सेब च्चों को नेत्र रोग हो जाते हैं। बाद में ध्यान न देने से दृष्टिहीन हो जाने का भय रहता है। हरी भरी तरकारियाँ, गाजर मक्खन मछली आदि चीजें अनिवार्य रूप से बच्चों की खुराक में होनी चाहिये।

बच्चों के लिये लिए विटामिन

प्रोटीन की तरह ही बच्चों के भोजन में विटामिनों का होना भी जरूरी है। विटामिन सी की कमी से बच्चे उसाहहीन, मंदबुद्धि तथा कमजोर हो जाते हैं और अकसर उनके फोड़ा फुंसी निकलते रहते हैं। ताजे फलों, दूध, शाकों, अनाजों आदि सभी में कोई न कोई विटामिन होता है, लेकिन इन चीजों को बच्चों के लिये पकाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि इनका विटामिन नष्ट तो नहीं होता।

विटामिन सी की कमी से बच्चों को सूखा रोग लग जाता है, छूत से बीमारी लगने का अधिक भय रहता है और घाव हो जाने परदेर से भरता है।

विटामिन 'डी' हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाता है। भोजन में जो कैल्शियम और फास्फोरस होता है, उससे शरीर कोअधिक लाभ तभी पहुँच सकता है, जब बच्चों को विटामिन 'डी' वाली चीजें भी खिलाई जायें। कैल्शियम से स्नायु ठीक काम करते हैं और बच्चों के हृदय की धड़कन सामान्य रहती है। शरीर में विटामिन 'डी' पर्याप्त मात्रा में न पहुँचने से हड्डियाँ कमजोर रहती हैं। और शरीर का भार नहीं संभाल पातीं। बच्चे अनेक अस्थि रोगों के शिकार हो जाते हैं। सूरज की रोशनी से भी शरीर को विटामिन 'डी' मिलता है। गन्दे और अंधेरे मकानों में रहने वाले गरीब बच्चे प्रकृति से मिलने वाले इस विटामिन से भी वंचित रह जाते हैं।

इसके अलावा बच्चों को आयोडीन तथा लोहे की भी ज़रूरत रहती है। लोहे से रक्ताणु बनते हैं, इसलिए बच्चों को इसकी ज़रूरत बड़ों से ज्यादा होती है। इसके न मिलने से बच्चे पीले पड़ जाते हैं। हरे शाकों, अनाजों तथा मास में लोहा होता है। सब तरह से उपयुक्त होते हुये भी दूध में लोहे की बहुत कमी होती है।

बच्चों के भोजन में आयोडीन न होने से उनका शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है। इस प्रकार बच्चों के भोजन में मुख्य रूप से चर्बी, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज काफी मात्रा में होना चाहिये।

बहुधा बच्चे मिठाई, चाकलेट आदि इधर उधर की चीजें खाते रहते हैं और मुख्य भोजन के समय तक उनकी भूख मर जाती है। बच्चों को समय पर खाने की आदत डालनी चाहिये। सुबह नशते के साथ बच्चों को जो चीज दी जाए उनमें प्रोटीन काफी होना चाहिये। खाने के समय उन्हें दाल, रोटी, शाक आदि चीजें देनी चाहिए। उस समय तरल पदार्थ बिल्कुल न खिलाए जाएं। स्कूल से लौटने पर बच्चा भूखा होता है। उस समय उसे हल्के जलपान के साथ दूध देना लाभकारी होगा। बच्चों को गाजर, टमाटर, मूली आदि कच्ची सब्जियाँ खाने की आदत डालनी चाहिए। सोते समय भी बच्चे को एक गिलास दूध देना ज़रूरी है।

शुरू-शुरू में बच्चा कोई भी नई चीज इच्छा से नहीं खाना चाहता। माँ बाप को धीरे धीरे खिलाकर उसकी आदत डालनी चाहिये। जबरदस्ती करने के बजाय जरूरी यह है कि आप जो चीज बच्चों को खिलाना चाहें उसे स्वयं रुचि से खाएं।

आकाश पुरुष

वी० वी दोब्रोनरवोव डी० एस० सी० (भौतिक-गणित)

चन्द्रमुखी उड़ानों की बात आज हम एक ऐसी चीज की तरह कर सकते हैं कि जो अनतिदूर भविष्य में सम्भव हो जाएगी। कोई ८किलोमीटर (लगभग ५ मील) प्रति सेकण्ड का कक्ष-वेग (आरबिटल वेलोसिटी) तो वाहक राकेट ने दुनिया के पहले मनुष्य- निर्मित उपग्रह को ही दे दिया था। चन्द्र की ओर अकाश-यान को भेजने के लिये हमें ११ किलोमीटर प्रति सेकण्ड से अधिक' अर्थात् केवल ३ किलोमीटर प्रति सेकण्ड अधिक की चाल की जरूरत है। इसके बाद अकाश-यान एक लम्बे-दीर्घवृत पर उड़ेगा और चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण की परिधि में घुसने पर कुछ चक्कर लगाने के बाद वहो उतर जाएगा।

न्यूनतम ईंधन खर्च में सारी यात्रा में ५ दिन से अधिक नहीं लगेंगे। यह भी हिसाब लगाया जा चुका है कि हम वहाँ इससे भी जल्दी पहुँच सकते हैं क्योंकि यदि अकाश-यान ११ किलोमीटर प्रति सेकण्ड से अधिक चाल से चले तो वह चन्द्रमा तक २४ घन्टों केभीतर ही पहुँच सकता है। हमारी ऐसी योजनाएं भी हैं।

रूस तथा विदेशों में भी वैज्ञानिक मंगल तक जाने की योजना बना रहे हैं। यह इस प्रकार संगठित होगी। यह सोचा गया है कि १७०० टन के दस अकाश-यान उड़ाने के लिए एक हवाई अड्डे पर पंक्तित बद्ध कर दिये जायेंगे। पृथवी के चारों ओर एक वृत्तीय कक्ष से निकल कर एक संक्रमणीय कक्ष (ट्रांजीशन आरबिट) में हो कर वे एक दीर्घवृत में आ जाएंगे और सौर गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र के भीतर ही बिना कोई ईंधन जलाये मंगल की ओर चल पड़ेगे। मंगल पहुंचने में २५६ दिन लगेंगे। वापिस आने के लिये अकाश यात्रियों को मंगल पर या कृत्रिम उपग्रहों पर उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी कि जब तक मंगल तथा पृथवी वापसी उड़ान के लिए अनुकूल संयोग में आ जाएं। कुल मिला कर उन्हें ४४० धरा-दिवस की प्रतीक्षा करनी होगी। इस प्रकार आने-जाने की कुल यात्रा में ६५२ दिन, अर्थात् लगभग ३ वर्ष, लगेंगे। वैज्ञानिकों को धारणा है कि इस २०वीं सदी के अन्त तक यह अकाश-यात्रा एक वास्तविकता बन चुकी होगी। मंगल तक तीव्रतर उड़ानों की भी योजना है।

आरम्भ में अकाश-यान बिना चालकों के जाएगा और रेडियो द्वारा नियंत्रित होगा। उसके बाद ही अग्रणी व्योमचारण यात्रियों का दिन आएगा।

अकाश में मानवजीवन कायम रखने के लिए विशेष अकाश सूट होंगे। अकाश में मानविक अंगों के सामान्य क्रियाकलाप को बनाये रखने के लिए इन अकाश सूटों में विशेष व्यवस्थाएं होगी।

अपनी उड़ान के दौरान में अकाश यात्री एक भारहीन दशा में होंगे। अभी तक हम इस बारे में बहुत कम जानते हैं कि वे क्या अनुभव करेंगे, पाचन और रक्त परिभ्रमण प्रक्रियाएं कैसे होंगी और मस्तिष्क कैसे काम करेगा। आजकल इस पर सोवियत संघ तथा विदेशों, दोनों जगहों पर गहरा अध्ययन किया जा रहा है। अधिकांश वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस भारहीन दशा में मानविक अंग सामान्य जीवन के अनुकूल किये जा सकते हैं। कम से-कम जिन लोगों पर प्रयोग किये गए, उनमें से अधिकांश के बारे में यही ठीक था। स्पष्ट है कि कुछ समय बाद इस समस्या का हल निकल आयेगा।

अकाश यान की उड़ान के सक्रिय खंडों में मानव अंगों पर अवस्थितित्व (इनरशिया) के विकृताधिक्य (ओवर स्ट्रेन) की समस्याओं, उदारहण के लिये, जब यान अपनी गत तेजी से त्वरित करेगा, परभी यही बात लागू होती है। हम जानते हैं मानव अंग अवस्थितत्व के बहुत ही सीमित विकृताधिकय को सह सकता है। इसलिये अकाश यानों में उड़ान का आरम्भ मानविक अंगों द्वारा सहे जा सकने योग्य त्वरण से करने के लिए ईंजन होंगे।

कृत्रिम उपग्रह तथा उल्कायें

मनुष्य-निर्मित उपग्रह की गति को मानव जाति जिस दिलचस्पी से देख रही है वह आज भी पहले जितनी ही है। तीन सप्ताह से भी अधिक से उपग्रह बाह्य अकाश में सब से बड़े खतरों में से एक—किसी बड़ी उल्का की टक्कर से बचते हुये धरती के चक्कर काट रहा है।

पृथ्वी तथा ग्रहों के अतिरिक्त अनेकों सूक्ष्मतम लौह तथा पाषाण उल्का कण सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। वे सूर्य के चारों ओर एक विस्तृत धूलिका मेघ बना देते हैं जिसमें हमारा ग्रह चलता है। दिन भर में पृथवी ऐसे करोड़ों उल्का कणों से भिड़ती है जो वायुमंडल के उच्चतर स्तरों की विरल गैसों से टकरा कर वाष्पित हो जाते हैं। हम उल्काओं की अवदीप्ति को आसमान को चीरकर गिरते तारों के रूप में देखते हैं। उल्काओं के उड़ान के बाद अवशिष्ट आयनित-आवेशित) प्रकाश रडार द्वारा आसानी से देखा जा सकता है। कोरी आँख से केवल सबसे तेज उल्का कण ही, जो तेज रोशनी देते हैं, देखे जा सकते हैं।

जब पृथ्वी उल्का संहिताओं—तथाकथित उल्का बौछारों—से होकर गुजरती है, तब एक घंटे के भीतर भीतर ही सैकड़ों उल्काएं देखी जा सकती हैं। रडार२००० उल्का प्रति घंटे तक दर्ज करा देता है। सूक्ष्मतम कण को,जिन्हें सूक्ष्म उल्काश्म (माइक्रो मीटियोराइट) कहते हैं और जो सूक्ष्म कण मात्र होते हैं, संख्या भ अधिक है। वे वायुमंडल के उच्चतर स्तरों से लगातार टकराते रहते हैं। वाह्य अवका-यानों को उनमें ही होक गुजरना होगा।

मनुष्य निमित उपग्रह, जो एक अग्रिम जानकारी लेने वाले आदमी की तरह भावी यानों के आगे बढ़ा जा रहा है, इस समय सूक्ष्म उल्काश्मों की टक्करें झेल रहा है। टक्कर में वे निस्सन्देह उपग्रह तथा वाहक राकेट की सतह पर छोटे-छोटे खरोंच छोड़ जाते हैं, भविष्य में चोटो को विशेष माइक्रोफोनों द्वारा दर्ज कर लेने का आयोजन है। लेकिन मनुष्य निर्मित उपग्रह द्वारा उल्कात्म ध्वनि ग्रहण का परिमाण आज भी खासी दिलचस्पी का विषय है।

हमारे बालचन्द्र के छोड़े जाने से लेकर अब तक जो इतने दिन बीते हैं किसी भी उल्काश्म पिंड ने उसे कोई उल्लेखनीय हानि नहीं पहुँचाई है। इसका यह अर्थ है कि उपग्रह की अपने गति पथ पर अभी किसी बड़े उल्काश्म पिंड से टक्कर नहीं हुई है। इसके आधार पर आकाश में विनाशक बड़े उल्काश्म पिंडों के प्राथिक अन्तर की गणना कर लेना और कृत्रिम उपग्रहों तथा राकेटों की बाह्य अवकाश में उड़ान से संबन्धित परिस्थितियों की अब की अपेक्षा अधिक यथार्थता से पूर्वकल्पना कर लेना सम्भव हो जायेगा।

इस दृष्टि से अक्तूबर २० से २३ अक्तूबर तक के दिन विशेष दिलचस्पी के थे, जबपृथ्वी हेली के प्रसिद्ध पुच्छल तारे के आशिंक विघटन से बनी ओरीनिड उल्काश्म बौछार से गुजरी थी।

जैसे-जैसे उपग्रह उच्चतर वायुमंडल के विरलतर स्तरों में धीमा होता जाएगा, वह पृथवी की सतह की ओर चक्करदार कक्षा में आने लगेगा। उसकी अवदीप्ति,कई बातों में उल्का-जैसी ही होगी, जिसका अध्ययन वैज्ञानिकों को वायुमंडल के उच्च स्तरोंके बारे में जानकारी देता है।

उल्काओं के मुकाबले में कृत्रिम उपग्रह का एक अच्छा मे यह है कि उसकी अवदीप्ति खास अरसे तक देखी जा सकती है।

उपग्रह की यह अवदीप्ति उसके अस्तित्व कीअन्तिम अवस्था की परिचायक होगी, लेकिन तब भी उसके प्रेक्षण से विज्ञान बहुत लाभान्वित होगा। वैज्ञानिकों के पास एक दीर्घजीवी मानव निर्मित उल्का होगी और वे उसका विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

बाह्य व्योम में अन्तरिक्ष संस्थान

निकट भविष्य में वैज्ञानिक चन्द्रमा के अनेक रहस्यों का अनावरण कर सकेंगे। विशेष कक्षाकार कृत्रिम उपग्रहों की सहायता से चन्द्र प्लेटो सर्कस (प्लेटो चान्द्र चक्र) के तल में छोटे और नये ज्वालामुखियों के कारणों का पता लगाया जा सकेगा जो हाल में प्रकट हुये।

इसी प्रकार यह चन्द्रमा के कुछ भागों में रहस्यमय सफेद बादलों की पहली और २५ मील चौड़े एलहेजन ज्वालामुखी के लुप्त हो जाने के रहस्य को हल करने और कतिपय चन्द्र-ज्वालामुखियों के तलमें समय समय पर प्रकट होने वाले विविध हरे धब्बों की रूपरेखा निश्चित करने का सुयोग प्रदान करेगा।

उस दूर भविष्य के बारे में कल्पना की उड़ान कीजिये जब दस हजार या उससे अधिक विवर्द्धन-शक्ति के दूरविक्षण यंत्र (टेलिस्कोप) अन्तःग्रह व्योम से लटके हों।

भावी स्पुत्निकों की मदद से खोज की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते हुये ज़िगेल लिखते हैं कि अन्तःग्रह व्योम में भारशून्यता से लाभ उठाते हुये सैकड़ों राकेटों को धरती से १८७ से ३१२५ मील तक की विशाल ऊँचाई तक पहुँचाना और उनके ढाँचों को मिलाकर भीमकाय उपग्रह बनाना सम्भव हो जाएगा और इन भीमकाय उपग्रहों में अन्तरिक्ष संस्थान रखे जा सकेंगे। ये उपग्रह केवल खगोल कार्योंका अध्ययन करने के लिये ही नहीं अपितु नभ-विचरण के लिए ईंधन भरने के स्टेशनों के रूप में भी प्रयुक्त किये जा सकेंगे।

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल अध्यापक, कृषि-रसायन, प्रयाग विश्वविद्यालय]

विकास क्रम कि दृष्टि से आदि मानवकाल से आज तक के वैज्ञानिक युग को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) पूर्व प्रस्तर युग (२) प्रस्तर युग और (३) ताम्र एवं लौह युग। प्रथम युग के सम्बन्ध में इतिहास को अधिक जानकारी नहीं किन्तु द्वितीय युग के विषय में इतना कहा जा सकता है कि आदि मानव वे भूमि पर कृषि प्रारम्भ की। ताम्र युग में कृषि विकसित हुई और वर्तमान युग ने, जिसे लौह युग कहा जा सकता है, कृषि के वैज्ञानिक-रूप को जन्म दिया।

सभ्यता के जन्म दिन से आज तक के मानवीय विकास-क्रम की कहानी बड़ी ही मनोरंजक है। पेड़ों में विचरण करने वाला मनुष्य धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतरा। अन्य जीवों के साथ संघर्ष करते हुये जीवन-यापन की समस्या उसके सामने आई। उसने लकड़ी के औजार बनाये और पेड़ों से प्राप्त फल-फूल अथवा मूलों पर जीवन यापन किया। यही पूर्व प्रस्तर युग था। इसके पश्चात् पत्थरों के औजार बने और आदि मनुष्य अपनी रक्षा के के साथ ही हिंस्र-पशुओं का शिकार भी करने लगा। उसने पत्थर के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न की और कच्चे माँस को पका कर खाने की विधि निकाली। यह मनुष्य जीवन की अहेरअवस्था थी। धीरे-धीरे पशुओं को पालतू बनाकर उनके दुग्धादि से भोजन की समस्या हल होनी प्रारम्भ हुई। पशुओं की रक्षा एवं उनका पालन-चारण प्रारम्भ हुआ कि मनुष्य चरवाहा बन गया और धीरे-धीरे तृण की खोज में वह घुमन्तू बनकर बाहर निकल पड़ा। यदा-कदा जंगलों में लगी आग से क्षार हुये भूखण्डों में वर्षा की फुहारों के पड़ने पर अच्छी-अच्छी घासें एवं कुछ अनाज उगते दिखाई पड़े, जिनसे उसने प्रारम्भिक कृषि का मंत्र लिया। यहीं से प्राचीन मानव कृषि की ओर अग्रसर हुआ और उसकी बढ़ती आवश्यकतायें 'आविष्कार की जननी' बनीं। अब तक उसे लौहादि धातुओं का पता लग चुका था फलतः खुरपी-कुदाल जैसे प्रारम्भिक यन्त्रों के निर्माण हुये जो कृषि कार्यों में प्रयुक्त होते रहे। बहुत दिनों तक पशु-पालन एवं कृषि की संयुक्त-परम्परा चालू रही, जिसमें सामूहिक भावना हितकारी सिद्ध होती रही।

धातु-युग के सूत्रपात के साथ ही जनपदों में सभ्यता का विकास हुआ जिसके अवशेष आज भी हडप्पा और मोहन-जोदड़ों में वर्तमान हैं। सन् १९२४ ई० में होने वाली इन नगरों की खुदाइयों से यह भली भाँति पता चलता है कि यह भारतीय सभ्यता ३२५०–२७५० ई० पू० फली-फूली। मिश्र और मेसोपोटामियाँ की प्राचीन सभ्यतायें इनकी समकालीन थीं, किन्तु किसी प्रकाश के लिखित प्रमाणों के अभाव में किसी निश्चित काल का पता नहीं चल पाता; केवल प्राप्त सामग्रियों से निकलने वाले संकेतों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। सर जान मार्शल ने अपनी कृति 'मोहनजोदड़ों और सिंधु सभ्यता' में लिखा है कि इन खुदाइयों से इतना स्पष्ट है कि आज से ५००० वर्ष से भी पूर्व इस स्थान पर ऐसा नगर स्थित था जिसके निवासी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक उन्मुक्त ही न थे वरन् सर्वोत्कृष्ट सफाई के साधनों से युक्त एवं दैनिक जीवन की सुविधाओं से पूर्णयता सज्जित थे। यहाँ के निवासी अन्य राष्ट्रों से व्यापार करते थे, अतः स्पष्ट है कि तत्सबन्धी कृषि प्रणालियों का भी विकास निश्चित रूप से हो चुका था। यद्यपि सिंधु घाटी के इन पुरुषों की कृषि के विषय में बहुत कम ज्ञात है किन्तु मोहनजोदड़ों के ध्वंसो से प्राप्त गेहूँ एवं जौ के दानों से यह विदित होता है कि इन दोनों अनाजों की खेती की जाती थी। गेहूँ की जिन दो किस्मों को पहचाना गया है, वे आज भी पंजाब में उगाई जाती हैं। यही नहीं मिश्र की प्राचीन कब्रों से प्राप्त गेहूँ भी इसी किस्म का है। उस समय किस प्रकार का हल खेती के काम में आता था, अभी विवादास्पद है किन्तु बैलों, भैसों, हाथी तथा ऊँटों के प्राप्त अस्थिपिंजर उस काल की पशु-

पालन प्रणाली की ओर निश्चित संकेत करते हैं। मेड़, सुअर तथा मछली के अवशेष भी उनकी तत्कालीन उपयोगिता की ओर लक्ष्य करते हैं।

गेहूँ, जौ तथा कपास के अतिरिक्त तरबूजों एवं खजूरों की खेती की जाती थी। उस काल की सिंचाई-व्यवस्था के विषय में मैके अपनी कृति "सिंधु सभ्यता (१९३५) पृ० १७४-१७५" में लिखता है—"यह देश वार्षिक बाढ़ों पर ही सिंचाई के लिये निर्भर था क्योंकि ऐसे जल-स्त्रोत नहीं मिलते जिनसे होकर पानी प्रवाहित होता रहा हो। मुद्राओं में जंगली पशुओं के अंकन इस ओर लक्ष्य करते हैं कि उस काल में सिंधु तथा पंजाब में अधिक वर्षा होती रही होगी।"

इसके पश्चात् वैदिक काल आता है। सिंधु घाटी से आर्य आगे बढ़े और उत्तरी भारत में नदियों के किनारे-किनारे बस गये। आर्यों ने अपने अन्तस्तल के भावों को 'वेदों' के रूप में साकार किया। यही 'वेद' जो आर्य सभ्यता की की प्राचीनतम निधि एवं धार्मिक सम्पत्ति हैं, आर्यों की उस काल की अवस्था-व्यवस्था बताने में सहायक हैं। आर्य कौन थे और कहाँ से आये—जैसे प्रश्न कभी न सुलझने वाले हैं। किन्तु आर्य शब्द से ही कृषि की महत्ता स्वीकार्य है। रमेशचन्द्रदत्त ने "प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास" नामक ग्रंथ में (पृ०३५) लिखा है कि आर्य का सीधासादा अर्थ किसान है। इसकी गवाही वेदों में भी है। राजा पृथु की कथा, सीता-जन्म··· आदि से पुराण भरे पड़े हैं। कृष्ण, हलधर किसानों के ही नाम हैं। जो काम वैश्यों का बताया गया है वह किसानों का है। वेदों में 'विश्' आर्य-प्रजा के लिये आया है और इसी से वैश्य बना है।

(क) वैदिक साहित्य (२५०००-१४०० ई० पू०) का सबसे महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ **ऋग्वेद संहिता** है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद दोनों में ही समानरूप से वृष्टि की उपादेयता, कृषि, पशु तथा कुँओं के महत्व का वर्णन है। **ऋग्वेद** में आये प्रमाणों के आधार पर कृषि के देवता, 'क्षेत्र पति' का वर्णन अत्यन्त विशद है :—

"खेतों के मालिक, अपने मित्र, के साथ हम विजयी होते हैं। हमें पशुओं, अश्वों तथा भोज्य पदार्थों का दान दे क्योंकि ऐसे दानों से हम सुखी हों।"

"खेतों के अधिपति, हमें दूध देने वाली गाय की ही भाँति मीठा एवं प्रचुर जल का दान दो...,,

'बैल सुखपूर्वक जोतें, मनुष्य सुख से कार्य करें, हल ठीक से धरती में धँसे..."

"हमारी प्रार्थनाओं से 'सून' और 'सीरा' प्रसन्न हों और आकाश में उत्पन्न जल को पृथ्वी पर छिड़कें।"

"सीता को इंद्र धारण करे, पूसान उसे मार्ग दिखावे और वह पानी से पूरित हो वर्ष-वर्ष दुग्ध की भाँति वितरित करती रहे।

ऋग्वेद में 'सीरा' शब्द हल के लिये प्रयुक्त हुआ है। यह बहुत बड़ा और भारी होता, जिसमें ६,८ तथा १२ या कभी-कभी २४ बैल तक जोते जाते। बैलों को एक रज्जु से जुँये में नाँधा जाता और हलवाहा अपने अस्त्र (कोड़े) के द्वारा उन्हें हाँकता। ऋग्वेद संहिता के निम्न अंश उपरोक्त भावों के समझने में सहायक होंगे...

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा चश्रुष्टिः सभरा असन्नोने दीय इत् सृण्यः पक्कमेयात् सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक धीरा देवेषु सुम्नया।

"जुयें से लगे हलों को जोतो क्योंकि पृथ्वी की कुक्षि तैयार है। उसमें बीज बोओ और हमारे यशः गानों के फलस्वरूप उसमें अधिक अन्न होगा। हँसिये की नोक से पक्व अन्न कटे।"

"चतुर लोग हलों को नाँधते, जुओं को सुख की चाहकरते हुये पृथक रखते हैं।"

ऋग्वेद संहिता में ऐसे प्रसंग आये हैं जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि आर्यों ने अपने पशुओं की देखभाल के साथ-साथ दुग्ध-दही एवं अन्य दुग्ध सम्बन्धी पदार्थों की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया था। उन दिनों चरागाहों, की अच्छी व्यवस्था थी।

"इंद्र, वापस आओ और हमारे पशुओं को जल लाओ हमें फिर से हमारी गायें दो जिससे जीवित रहकर उनके मध्य सुख से रहें।"

"हे देवताओं, सर्वत्रस्थित रहने वालो, मैं तुम्हारी

दुग्ध,मक्खन एवं दही से पूजा करता हूँ; सभी वन्दित देवता हमें सम्पति प्रदत्त करें।

"गायो, तुमअपने अनेक बछेड़ों के साथ चरागाहों में चरो और प्राच्य तालाबों से शुद्ध जल पियो; कोई चोर तुम्हारा मालिक न हो, कोई हिंसक आक्रमण न करे और रुद्रके तीक्ष्ण। अस्त्र तुम्हारी रक्षा करें।

प्राप्त श्लोकों के आधार परयव (जौ) की खेती का हल के द्वारा उत्पन्न किया जाना भी सिद्ध होता है :—

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुष्याय दस्त्र।

अभिदस्युं बकुरेम धमन्तोरु, ज्योतिश्चकथुरार्याय।

(अश्विनो, हल के द्वारा धरती में यव बोकर, मनु के हेतु बादलों का दोहन करके, बज्र द्वारा दस्यु का नाश करते हुये, तुम ने आर्यों को ज्योति का दान दिया है।

अश्त्रर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा

तमूर्दरं पृणता यवेनेंद्र सोमेभिस्तदपो वो अस्तु।

आर्य सिंचाई के भी साधनों से भिज्ञ थे, जिसका पता आये हुये श्लोकों से स्पष्ट है। जौ को माँड़कर भूसें से अलग किया जाता था। खेती के लिये हानिकर पशु पक्षियों का भी उल्लेख ऋग्वेद में आया है। षड़ ऋतुओं का वर्ष पर्यन्त होना एवं उनकी महत्ता के भी संकेत आये हैं।

(ख) **अथर्ववेद संहिता** के माध्यम से हमें ज्ञात होता है कि उस समय चावल, जौ, सेम और तिल की खेती होती थी।

व्राहीमत्तं यवमत्तमथो माषमथो विलम्

एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्ट पितरं मातरं च।

(तुम दोनों चावल खाओ, और तुम जौ खाओ; तब सेम और तिल; यही तुम्हारा निहित अंश है; अपने माता एवं पिता को हानि न पहुँचावो।)

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन गोष्ठं करीषिणीः।

बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन।

इस श्लोक के द्वारा खाद (करिषा) के प्रयोग की ओर पहला एवं सबसे प्राचीन संकेत है। अन्य स्थलों पर भी खाद का उल्लेख आया है।

(ग) ऋग्वेद के बाद की रचना **तैत्तिरीय संहिता** का क्रम आता है जिसमें छः ऋतुओं के होने एवं साल में दो फसलों के हेरफेर के वर्णन हैं। "उसने बसन्त ऋतु को रस, ग्रीष्म को यव, पावस को वृक्ष, शरदको चावल, शीत ऋतु को सेम और तिल प्रदान किया।"

(घ) **बाजसनेई संहिता** में व्रीहि (धान), यव (जौ), माष (मूंग), तिल, कलय, प्रियंगु, गोधूम (गेहूँ), मसूर आदि फसलों का उल्लेख आया है।

वैदिक काल परवर्ती के साहित्य (१४०० ई० पू० से ५०० ई० पू०) में **ब्राह्मण ग्रंथों** का नम्बर आता है। ये प्रथम गद्य-ग्रंथ हैं जिनमें पौराणिक कथाओं का विस्तृत विवेचन है। **शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ** में उस काल की जोतने बोने, काटने एवं माड़ने तथा खेतों को उपजाऊ बनाने की विविध प्रणालियों का परिचय प्राप्त होता है। वृहदारण्यक में उदुम्बर वृक्ष की लकडी से बनाये गये हल के चार भागों का वर्णन एवं कृषि योग्य दस प्रकार के बीजों का बर्णन हैं। जोती जाने वाली भूमि को उर्वर या क्षेत्र कहा जाता। सींची भूमि को खनित्र, खाद से को करिषा या सकन कहा जाता। हल को ६,८ या १२ से भीअधिक बैलों द्वारा खींचा जाता। अनाज को हँसिये काट कर, बोझ बनाये जाते और खलिहानों में कूट कर उनसे अन्न निकाला जाता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस ५०० ई० पू० तक कृषि सम्बधी प्रचुर ज्ञान प्राप्त हो चुका था। उसके पश्चात् **पाणिनि का काल आता है**। पाणिनि के काल का निर्णय संस्कृत साहित्य के इतिहास का महत्वपूर्ण प्रश्न है। अनेक विद्वानों ने उसे सातवीं शती ई० पू० से लेकर ४०० ई० पू० तक माना है। विभिन्न साहित्यक उल्लेखों, राजनितिक सामाग्रियों तथा अन्तः एवं वाह्य साक्ष्यों के आधार पर **अष्टाध्यायी** नामक रचना पाँचवी शती ईसा पूर्व की है। पाणिनि के पश्चात्**पतंजलि** ने भास्य रचा।

पाणिनि भारतवर्ष का एक बहुत बड़ा वैयाकरण था जिसने **अष्टाध्यायी नामक** ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में कृषी से सम्बन्धित इतनी सामाग्रीका समावेश है कि उस पर विस्तृत दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। वासुदेवशरण कृत पाणिनि-कालीन भारतवर्ष पृ० १६७-२२२)

खेती केलिए सूत्रों में कृषि शब्द है। मूल में कृषि शब्द का अर्थ केवल हल चलाना था, जैसा कि महाभारत में भी बाद में प्रयुक्त हुआ है। कात्यायन और पतंजलि ने कृषि के व्यापक अर्थ पर विचार किया है—कृषि का अर्थ केवल भूमि विलेखन या हल चलाना नहीं, बल्कि बीज, बैल, कर्मकर आदि के लिए भोजन प्रबन्ध करना भी कृषि धातु के अन्तर्गत है। **अष्टाध्यायी** के सूत्रों में कृषि जीवन के सम्बन्ध में कई प्रकार के शब्द हैं जैसे कृषिवल (किसान ५।२।११२) हल (३।२।१८३, ४।४।८१) हलयति (हल चलाना, ३ १ २१) हलि (एक प्रकार का बड़ा हल ३।११।१७) कर्ष (जुताई ४।४।९७) वाप (बुवाई ५।१ ४५) मूलावर्हण (निराई ४।४।८८) लवन (कटाई ६।१।१४०) खल (खलिहान ४।२।५०-५१) और निष्पाव (बरसाई ३।३।२८)। खेती करने वाले किसान के लिए कृषिवल शब्द के प्रचलन के कारण वैदिक कृष्टि शब्द का ह्रास हो चला था। (ब्राह्मणग्रंथों में कृषिवल शब्द नहीं मिलता)

गांव की भूमि कई प्रकार की होती थी, जैसे हल्य या सीत्य जो हल की जोत में हो (४।४।९७); ऊषर (रेहड याऊसर ५।२।१०७) गोचर या चरागाह (३।३।११९) व्रज (३।३।११९) गोष्ट (५।२।१८) भी उसके अंग थे।

कृषियोग्य भूमि अलग अलग क्षेत्रों में बंटी रहती थी। ये खेत तरह तरह के धान्य या फसलें बोने के काम में आते थे। बंटवारे से सूचित होता है कि धरती की नाप जोख का प्रबन्ध था जैसा कि सूत्र ४।१।२३ में कहा है। क्षेत्र व्यापक शब्द था, उसी के अन्तर्गत केदार उस खेत को कहते थे जहाँ हरी फसल बोई हो और जिसमें पानी की सिंचाई होती हो। **अर्थशास्त्र** में केदार शब्द आर्द्र खेतों के लिए प्रयुक्त हुआ है। जिस खेत में हरी फसल खड़ी हो उसे केदार कहा जाता था (बाल्मीकि ने लिखा है, सुग्रीव की वानरी सेना ऐसी सुशोभित थी जैसे पके शाल के केदारों से पृथ्वी सुहावनी लगती है—यथा कलमकेदारैः पक्कैरेव वसुन्धरा—)। हरी फसल से लहलहाते खेतों का समूह केदार्य या कैदारक कहा जाता था। खलिहानों के समूहों को खल्या (४।२।५०) या खलिनी (४।२।५१) कहते। खेती योग्य भूमि साधारणतः कर्ष कही जाती (४।४।९७) किन्तु जितनी वस्तुतः हल की जोत में आ गई हो उसे हल्य (४ ४ ९७) और सीत्य (४ ४ ९१) कहते थे। हल की माप से दुगुनी, तिगुनी भूमि को द्विहल्य या त्रिहल्य कहा गया है। वस्तुतः एक परिवार के भरण पोषण के लिए पर्याप्त भूमि की इकाई को द्विहल्या कहते थे एक हल धरती की माप पच्चीस सहस्र वर्ग हाथ (१$\frac{1}{3}$ एकड़) मानी जाती थी। पतंजलि ने बाद में हल्या भूमि के अतिरिक्त परमहल्या का भी उल्लेख किया है जो अवश्य ही उससे बड़ा क्षेत्रफल होना चाहिये सीत्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद तथा उत्तरकालीन संहिताओं में कृषि के देवता या हल की फाल के लिए प्रयुक्त हुआ किन्तु **अर्थशास्त्र** में सीता का विशेष अर्थ राजा की भूमि की उपज है (अर्थशास्त्र २।१५)। अष्टाध्यायी में सीत्य उस खेत को कहते थे जो हल की जोत में आ गया हो। सास्यदेवता प्रकरण में (४।२।२४-३३) शुन और सीर नामक दो देवताओं का उल्लेख आया है। कुछ इन्हें वायु आदित्य और कुछ इन्हें लकड़ी का हल और कुशी मानते (वैदिक इडेक्स २।३८९)।

किसानों के खेत नाप जोख के आधार पर बंटे होते। कांड क्षेत्रफल की इकाई थी जो सोलह हाथ लम्बी होती या २४ फुट अतः द्विकांड क्षेत्रफल ४८×२४ वर्गफुट= १२८ वर्ग गज और त्रिकांड= ७२×२४ वर्गफुट =१९२ वर्गगज हुआ। क्षेत्रकर शब्द उस अधिकारी केलिये प्रयुक्त होता जो खेतों की नाप जोख करता था। **मेगस्थनीज** ने ऐसे राजपुरुषों का उल्लेख किया है जो खेतों की नाप जोख करते थे। **जातकों** में रज्जुग्राहक शब्द इन्हीं के लिये प्रयुक्त हुआ है। यह अपनी रज्जु के एक छोर पर खूंटा पिरोकर उसे खेत के सिरे पर गाड़ता था और खेत का मालिक दूसरा सिरा पकड़ कर खेत की नाप करवाता था।

खेतों के नाम बोयी जाने वाली फसलों के अनुसार (धन्यनां भवने क्षेत्रेखञ् ५।२।१-४) या बोने के लिये आवश्यक बीज की तोल से (तस्य वापः ५। १। ४५-४६) पड़ता था। धान्योंके अनुसार खेतों के नाम थे—ब्रैहेय(व्रीहि या धान का खेत), शालेय (शालि या जड़हन का खेत

५। २।२) यव्य (जौ का खेत), यवक्य (यवक नामक चावल का खेत), षष्टिक्य (साठी का खेत ५। २।३), तिल्य-तैलीन (तिल का खेत), माष्य-माषीण (उरद का खेत), उम्यऔमी न (अलसी का खेत) भंग्य-भांगीन (भाँग का खेत), अणव्य—आणवीन (चीन का खेत ५। २। ४)

बीज के आधार पर खेत के नाम के उदाहरण हैं प्रास्थिक (२॥ पाव), द्रौणिक (१० सेर), खारीक (४ मन)। पात्रिक खेत का पाणिनि ने विशेष उल्लेख किया है। चरक ने पात्र को आढक का पयार्य माना है जो २$\frac{1}{8}$ सेर क होता है। आज भी किस धान्य का कितना बीज एक बीघे में पड़ेगा, इसका हिसाब किसान रखते हैं जैसे बाजरा एक पाव, मक्का तीन पाव प्रति बीघे आदि ।

खेती के उपकरणों में हल का विशिष्ट वर्णन मिलता है। हल के तीन भाग होते—ईषा या हलस (हरिस), बीच का भाग पोत्र (३। २। १८३) और लोहे की बनी कुशी जो पोत्र में गड़ी रहती (४। १। ४२)। बेद में उसे फाल कहते। आज भी दिहातों में कुशी या फाल शब्द का प्रयोग होता है। हल चलाने वाले बैल हालिक या सैरिक कहे जाते (४। ४। ८०)। उन्हें योत्र (जोत) से जुयें में कसा जाता (३। २। १८२)। नद्ध्री या नद्धी (नाड़ी) जो चमड़े की रस्सी थी, के द्वारा जुयें को हलस (रिहस) से जोड़ते (३। २। १८२)। हल के लिये वैकि शब्द 'लाँगन' था किन्तु बाद में सीर तथा पाणिनि के द्वारा बड़े हल को हलि ३।१। ११७)' अथवा जित्य (३। १। ११७) कहा गया है। अवधी भाषा में हरी और जीत शब्द अब भी सुरक्षित हैं! ईख बोने के लिये चौड़ी फाल वाले बड़े हल को उन्नाव में सीर और शाहजहाँ पुर में हरी कहते हैं। यही पाणिनि का हलि है। हलों की संख्या के अनुसार पाणिनि ने तीन तरह के किसान बताये हैं—(१) अहलि —जिनके पास हल न हो, इन्हें अपहल, अपसीर, या अपलाँगल भी कहते (६। २। १८७); (२) सुहल (सुहलि)—बढ़िया हल रखने वाले (३) दुईल (दुईलि) —जिनका हल पुराना पड़ गया हो।

हल के अतिरिक्त अन्य यन्त्रों में फडवा को खनित्र, खेत निराने की कुदाली को स्तंबघ्न, हँसिया, को दात्र या लवित्र कहा जाता। दात्र वैदिक शब्द था।

शतपथ के अनुसार खेती का पूरा स्वरूप था—जोतना, बोना, काटना, मांड़ना (कृषंतः वपंतः लुनंतः मृणंतः श० १। १६ १। ३)। पाणिनि के सूत्रों की सामग्री निम्न प्रकार है।

(१) जोतना या कर्ष—जोतने के लिये कृषति धातु थी किन्तु बाद में हलयति शब्द चल गया था। भाष्य में लिखा है कि किस प्रकार खेत का स्वामी एक ओर बैठा रहता है और उसके मजदूर पाँच-पांच हलों से उसके लिये खेती जोतते थे। **मेगस्नीज** ने भारतीयों की जुताई सावधानी का उल्लेख किया है। पाणिनि में इसका संकेत है कि खेत को जुताई करने या कमाने में किसान कितना श्रम करते थे। दो बार की जोत के लिये द्वितीयाकरोति और तीन बार के लिये तृतीया कोरोति (५। ४। ८८) शब्द चलते थे। आज कल उन्हें दुहराना, तिहराना कहते हैं।

(२) बोना (वाप) —जुताई के पश्चात् खेत बोने लायक (वाप्य) हो जाता है (३।१।१२६), पहले खेत को दो तीन बार जोत कर छोड़ दिया जाता, फिर बोते समय जोत कर बीज डालते। ऐसा ही खेत 'वाप्य' कहलाता। भाष्य में एक स्थान पर दो धान्यों को मिलाकर बोने का भी उल्लेख है। अब भी किसान मिलवाँ फसल बोते हैं। कृषि कर्म का सम्बन्ध माता भूमि से है अतः शुभ मुहूर्त देखकर बुवाई की जाती है। पाणिनि ने आश्वयुजी पौर्णमासी का बुवाई के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख किया है (४। ३। ४५)

(३) लवनी—जो खेत कटाई या लवनी के लिये बिल्कुल तय्यार हो वह लाव्य कहलाता था (३।१।१२५ काशिका)। लवनी दात्र या लवित्र से की जाती थी (३।२।१८२,१८४)। कटाई करने वाले लावक या लवक (३।१।१४९)कहलाते थे जिन्हें आज काल लावा कहते हैं। कटाई शुरू होने का बाड़ लगाना कहा जाता है। कहीं-कहीं कटाई एक ओर से न होकर छुट पुट की जाती, जिसे 'उपस्किरति' कहते थे। मूंग-माष के पौदों को जड़ से उखाड़ कर लवनी की जाती अतः ऐसी फसल को लाव्य न कहकर 'मूल्य' कहते थे (४।४।८८)

(४) मणनी (निष्पाव, ३।३।२८)—फसल काट कर

खलिहान में ले जाते थे। खलिहान के लिये चुना हुआ खेत खल्य (५।१।७) कहलाता था। वह पड़ती रखा जाता था इसी लिये खलीकृत का अर्थ पड़ती किया हुआ हो गया। मडनी के बाद अनाज की बरसाई की जाती थी

पाणिनि ने जौ की खेती से सम्बंधित शब्दावली का विशिष्ट वर्णन किया है। अनुमान होता है कि मद्र देश की भाषा में ही यह शब्दावली बनी होगी क्योंकि भाष्य में मद्र और उशीनर देशों में जौ कि खेती और मगध में चावल की खेती का उल्लेख आया है। जौ कि फसल का महत्व इससे भी ज्ञात होता है कि पाणिनि ने ऐसे ऋण का उल्लेख किया है जो जौ के भूसे से भुगतान होता। इस ऋण को यवबुसव (४।३।४८) कहते। पतंजलि ने लिखा है कि अकेली जौ या धान की उपज तगड़ी हो जाय तो किसान की जय है। प्राच्य देश में धान और उदीच्य में जौ, ये ही उस समय की फसलें थीं। जौ की रखवाली के लिये यवपाल नाम विशेष अधिकारी रखे जाते थे। भाष्य में हिरनों के द्वारा जौ की खेती को डर होना लिखा है।

बरसात को प्रावृर्षाषव औरों कहा गया है। वृष्टि की नाप **"वर्ष-प्रमाण"** कही जाती (३।४।३२)। वह दो तरह की थी। एक तो वह जिसमें खेत में लबालब पानी भर जाय—सीतापूरं वृष्टो देवः। दूसरे, जिससे खेत में पड़े हुये खुर के निशान मात्र पानी से भरें—गोष्पद पूरं वृष्टोदेवः। वृष्टि का न होना या प्रतिवर्ष सूखा पड़ने को अवग्रह कहाजाता था (३।३।५१)। मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में दो बार वृष्टि और दो फसलें होती हैं। पाणिनि ने भी बासंतक, ग्रैष्मक (खरीफ) और आश्वयुजक (असौज) में बोई जाने वाली, और बसंत में पकने वाली फसलों का उल्लेख किया है (४।४।४५-४६) पाणिनि ने कई छोटी बड़ी नदियों के नाम दिये हैं, जिनसे सिंचाई होती रही होगी। भाष्य में नहर से धान के खेत सींचने का उल्लेख किया है। मद्र देश की देविका नदी के तट पर बरसात में छोड़ी हुई रौसली मिट्टी की तह शालि के लिये बहुत अच्छी समझी जाती थी (७।३।१)। कुँओं से भी सिंचाई होती थी। चरस या मोट के लिये उदंचन शब्द आया है (३।३।१२३)।

सस्य या फसलें दो प्रकार की होती थीं। कृष्ट-पच्य (३।१।११४), जो खेती से उत्पन्न हों; अकृष्टपंच्य जो जंगली फसलें हों। बोने के हिसाब से तीन फसलें होती थीं (१) आश्वयुज या आविश्वन में बोई गई असौजी (२) ग्रीष्म में बोई गई ग्रैष्म या ग्रैष्मक और (३) बसंत में बोई गई वासंत या वासंतक। असौजी में जौ-गेहूँ प्रधान है। बसंत की बोई फसल बरसात में पकती है ग्रीष्म में बोई हुई शरद या अगहन में। **कौटिल्यने अर्थशास्त्र** में कई फसलों के होने के उल्लेख किया है। हरी खेती को सस्य और पकी फसल को मुष्टि कहा गया है। हैमनमुष्टि मार्गशीर्ष में, हैमनशस्य के बाद **वासंतिक मुष्टि** चैत्र में वासन्तिक सस्य के बाद **वार्षिक मुष्टि** ज्येष्ठ में तैयार होती थीं। **कौटिल्य** के शब्दों में सस्य और मुष्टि वही हैं जिन्हें पाणिनि ने वाप और पच्यमान कहा है। ग्रैष्मक सस्य में किसानों को बहुत श्रम करना पड़ता है अतः **अर्थशास्त्र** में कहा गया है कि राजा के लिये जब अन्य आय के साधन कम हों तभी उसके समाहर्त्ता लोग किसानों को ग्रीष्म की खेती के लिये प्रेरित करें।

धान्यों में निम्नलिखित का उल्लेख है—ब्रीहि और शशि के खेत पृथक-पृथक होते। ब्रीहि बरसात में बोया जाने वाला धान था जो कार्तिक में तय्यार होता था। जिसके यहाँ अधिक धान होता ब्रींहिमान, ब्रीहिक या ब्रीही कहलाता था और उससे धनी व्यक्ति का बोध होता था। **तैत्तिरीय संहिता** (७।२।१०।२) के अनुसार ब्रीहि शरद में पककर तय्यार होता था। शालि को **अर्थशास्त्र** में भी ब्रीहि से अलग माना गया है। शालि उखाड़कर फिर से रोपा जाने वाला जड़हन था। शालि की फसल शीत ऋतु में पककर तैयार होती थी। **पंतजलि** ने लोहित शालि का उल्लेख किया है। आज भी भदई धानों में कई लाल रंग के होते हैं। महाब्रीहि पाणिनि के समय में प्रसिद्ध धान्य था, जिसका उल्लेख **तैत्तिरीय संहिता** (३ १न्५२) में भी आया है। **कात्यायन** के अनुसार साठी विशेष चावल का ही नाम था। अन्य धान्यों में जौ, मूंग, माष, तिल, अणु कुलत्थ का उल्लेख है। यवानी (४.१।४९) को **कात्यायन** ने निकृष्ट-जौ कहा है। जौ के खेत को यव्य (५।१।७) कहते, जैसा कि कहा जा चुका है, मुद्ग और माष का उल्लेख **बजसनेई संहिता** में आता है (१८।१३)। माष

के खेत माष या माषीरा कहलाते, आज भी देहातों में उसकी फसल मासीना कही जाती है। पाणिनि में काले या सफेद तिलों का अलग-अलग उल्लेख नहीं किया किन्तु भाष्य में कृष्ण तिल का नाम आता है।

पाणिनि ने उमा अथवा अलसी और भंगा अर्थात् भांग के खेतों का उल्लेख किया है। कौटिल्य में उनकी जगह अतसी और शरा का नाम है। पाणिनि ने उमा और भंगा को धान्य माना है यद्यपि बाद में इस पर आपत्ति की गई किन्तु उस समय १७ धान्यों की सूची बनी थी जिसमें उमा और भंगा सम्मिलित थे। एक ओर ईख की खेती होती और दूसरी ओर जंगली जाति भी होती जिस के बनों को ईक्षुवरा कहा गया है (८।४।५)। जंगली जातियों में काण्टेक्षु और वंशक (बांसपाती) और बोई जाने वाली ईखों में इक्षुशाजक और इक्षुशाकिन प्रमुख थीं (भाष्य ५।२।२।२६)

पाणिनि ने नील के पौधे को नीलीऔर उससे रंगी साड़ी को नीला कहा हैं (४।२।४२)। संस्कृत साहित्य में उसका सर्वप्राचीन उल्लेख है। युनानी लेखकों के अनुसार नील की खेती सबसे पहले बहुत प्रचीनकाल में भारतवर्ष में ही की गई थी (पैरिप्लस पृ० १७)

बनस्पतियों का भी उल्लेख पाणिन ने किया है। बन दो प्रकार के होते थे। एक तो ओषधिवन और दूसरे वनस्पति वन जैसे शिरीष वन, देवदारु वन आदि। तृणों एवं धान्यों को ओषधि के अन्तर्गत गिना गया है। तृणों में काश, कुश, मूंज, नड, शाद, वेतस आदि का वर्णन है। बुष्पों और फलों के नामों का उल्लेख भी है। पाणिनि-फल को वृक्षों से सम्बन्धित मानते हैं।

पशु-पक्षियों का भी उल्लेख पाणिनि ने किया है। पशुओं की आयु उनके दाँत, सींग और कूबड़ की वृद्धि से सूचित होती थी जैसे छोटी आयु वाले बछड़े को द्विदन तथा अंगुल श्रंग कहा जाता। चरागाह या गोचर (३-३।११६) में पशु स्वच्छन्द चरते थे। उनके लिये चारे की उपलब्धि के अनुसार नई नई जगह गोष्ठ बना लेते थे। छोड़ी हुई पहली धरती को गौष्ठीन कहा जाता। जिस जंगल में पशु चराने के बाद दूसरी जगह हटा लिये गये हों आशितङ्गवीन कहा जाता था। इससे सूचित होता है कि गावों के चारों ओर के जंगलो और बनों में क्रमिक व्यवस्था के अनुसार पशुओं के चराने का प्रबन्ध किया जाता था। पशुओं को खाने के लिये भुस और कडंकर या कुट्टी दी जाती। उसे खाने वाले पशु कडंकरीय (डंगर) कहलाते। जल पीने की जगही निपान या आहाव कही जाती थी। कौटिल्य ने लिखा है कि नियमित चारे के साथ पशुओं को नमक भी देना चाहिये। गाय और बैल दोनों का होना सम्पन्न जीवन का द्योतक था। आशीर्वाद देने के लिये उपयुक्त वाक्य था, "स्वस्ति भवते सगवे सवत्साय,, गायों के समूह के लिए गोत्रा शब्द था। ग्वालों के लिये गोपाल शब्द चल पड़ा था। तन्तिपाल (६।२ ।७८) उन अधिकारियों को कहते थे जो राज्य की गायों के बड़े बड़े झुण्डों की देखभाल करते थे। बैलों में से सांड छोड़ने की प्रथा थी। उसे दूध अधिक दिया जाता और बधिया नहीं किया जाता था। जनपद भरमें सांड को आदर की दृष्टि से देखा जाता। बैल मोल लेते समय या बेंचते समय दाँत देख कर उसको आयु का अनुमान किया जाता था अलग अलग गायों के हिसाब से बैलों का वर्गीकरण होता और उनके दाने पानी का प्रबन्ध होता था।

रथ में जोतने वाले बैल का अधिक मान होता। पतञ्जलि ने लिखा है कि वह अच्छा बैल है जो छकड़ा खींचता है, पर जो छकड़े और हल दोनों में चलता है वह और भी बढ़िया है। पाणिनि ने बैलों की नसलों में राजस्थान के बीकानेर से अलवर तक फैले भूभाग, साल्व जनपद की नस्ल के बैलों को साल्वक कहा है। पशुओं के शरीर या कानों पर ऐसे चिन्ह देखे या लक्षण अंकित किये जाते जिससे उनके स्वामी का बोध होता था। गायों पर स्वामित्व का चिन्ह अंकित करने की प्रथा वैदिक युग से चली आती थी। अर्थशास्त्र में गवाध्यक्ष को आदेश है कि ब्रज से सम्बन्धित जिन कर्म में गायों पर लगाये हुये अंकों का पूरा ब्यौरा रखे। पतंजलिने चिन्ह लगाने के स्थान कान या पुट्ठे बताये हैं। पाणिनि ने नौ लक्षणों के नाम गिनाये हैं। पाणिनि में जो अष्टकर्णी चिन्ह है उसका ऋग्वेद में भी उल्लेख आया है। ध्रुव, स्वस्तिक, अंकुश, कुण्डल, प्लीहा, वाण, मिथुन आदि प्रमुख चिन्ह होते।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि पाणिनि के अष्टाध्यायी लेखन काल एवं उस पर भाष्य लिखे जाने के समय तक कृषि के विभिन्न अंगों का विकास हो चुका था और कृषि का क्षेत्र अत्यन्त विशाल एवं विविध था। खेती करने के साथ-साथ पशु-पालन पर जोर दिया जा रहा था। सिंचाई के साधन जुटाये जा चुके थे और फसलो से अनाजों की संख्या बढ रही थी।

विज्ञान वार्ता

पुरातत्त्वी उपलब्धि

दक्षिणी किर्घिजिया में पार्मीर पर्वतमाला के पाद-प्रदेश में १०० से ऊपर प्राचीन समाधि-स्तूप हैं। पुरातत्वविदों के एक दल ने उस दिन काराबुलाक के समाधि स्तूप में एक अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक एवं बहुमूल्य वस्तु प्राप्त की है। वह वस्तु महिला का बिलकुल अच्छी तरह सुरक्षित शव है जो पेड़ के तने को खोखला करके बनाई गई शव-पेटिका में दफनाया हुआ था। शव मालाओं, कांसे की चूड़ियों और अंगूठियों से भूषित और अलंकृत था। उपलब्ध वस्तुओं में ये चीजें थीं : एक रेशमी रूमाल जिसपर ड्रेगन पकड़े हुए एक स्त्री का चित्र बना था, कई चीनी दर्पण; कांसे के चाकू और घड़ा। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ये शव-स्तूप तीसरी शती के खाना बदोश कबीलों के हैं। किर्घिजिया के प्रदेश में उपलब्ध अपने ढंग की यह पहली चीज है। प्राचीन संस्कृति के अध्ययन के लिये यह अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध होगी।

विकिरण और वंशानु क्रमण

विकिरण जीवों के लिए सिर्फ घातक ही नहीं होता, कुछ मामलों में उससे महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हो सकता है। यह सच है कि ऐसे परिवर्तन उन जीवों में प्रकट नहीं होते जो विकिरण से प्रत्यक्षतः प्रभावित होते हैं, प्रत्युत उनके वंश में प्रकट होते हैं और इन तमाम मामलों में में हम वंशानुक्रनिक परिवर्तन की चर्चा कर रहे हैं।

किसी जीव पर प्रविकिरण का प्रभाव डाल कर उसमें नियन्त्रित परिवर्तन की सम्भावना से उस जीव के विकास को नियन्त्रित करने की नयी सम्भावनाएं उन्मुक्त हो जाती हैं। हम अब प्रविकिरण द्वारा चयन की बात कह सकते हैं।

पौधों की बीमारियां कृषि की एक बड़ी आफत हैं। उदाहरण के तौर पर संयुक्त राज्य अमरीका में पौधों की बीमारियों से तीन अरब डालर की हानि होती है। चयन की सामान्य विधि से इस समस्या का हल बड़ा कठिन है।

फिर भी प्रविकिरण द्वारा चयन के प्रयोगों के समय यह पता लगाया गया कि यदि किसी पारमाणविक पुंज के तापीय स्तम्भ में बीजों पर प्रविकिरण का प्रभाव डाला जाता है तो इससे कई परिवर्तन होते हैं और पौधे में रोग निरोध की क्षमता बढ़ जाती है। उदाहरण स्वरूप, गेहूँ, जौ और पटुवे के बीजों में प्रविकिरण से यह परिवर्तन आ गया कि उनमें गेरुआ जो बड़ा खतरनाक रोग है, नहीं लगता। मक्के में एक परिवर्तन यह हुआ कि उसकी हेल्मिन्थोसफोरियम नामक प्रमि निरोधकता और मूंगफली में ऐसा परिवर्तन आया कि उसकी रोग-निरोधकता बढ़ गई। ऐसा जान पड़ता है कि इस कार्य से पैदावार बढ़ने और फसल को नाश से बचाने में बड़ी मदद मिलेगी।

जौ, मटर, टमाटर तथा अन्य फसलों में कई प्रविकिरणों से यह परिवर्तन आया कि पौधों में कीड़ों द्वारा घर बनाना बन्द हो गया। अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों के फलस्वरूप जैसे पटुवे में, बीज बड़े आने लगे और अधिक रेशे निकलने लगे, सरसों में यह परिवर्तन हुआ कि उसमें तेल की मात्रा बढ़ गई और जौ में यह परिवर्तन हुआ कि उसमें प्रोटीन की मात्रा बढ़ गई। गेहूं में प्रविकिरण से यह परिवर्तन आया कि उससे अधिक अच्छी रोटी तैयार हो सकती है। रेशम के कीड़ों में प्रविकिरण-जनित परिवर्तनों से रेशम के उत्पादन में तीन प्रतिशत की वृद्धि सम्भव हुई।

लेकिन, किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि नये तरीकों का प्रयोग आसान है। इसके प्रतिकूल पदार्थ वैज्ञानिकों, चयन-कर्त्ताओं और जीव वैज्ञानिकों को विस्तृतरूप से और अधिक काम करने की आवश्यकता है। जीवों की वंशानुकमिक बातों को बदलने में अणु शक्ति के उपयोग से चयन के लिए नया और बहुत ही आशाप्रद क्षेत्र खुल गया है। इससे मनुष्य को प्रकृति की कायापलटने का शक्तिशाली साधन मिल गया है।

सूती वस्त्रों में सलवटों की रोकथाम

किन तरीकों से सूती वस्त्रों में सलवट पड़ने को रोका जा सकता है, इस रहस्य का पता लगाने के लिए अमेरिकी कृषि-विभाग तथा इन्स्टिट्यूट ग्राव् ड्राई क्लोनिंग के मध्य एक समझौता सम्पन्न हुआ है। इस समझौते के अन्तर्गत अमेरिकी कृषि-विभाग सूती वस्त्रों को राल लगाने का एक नया तरीका खोजने की आशा करता है। इस नए तरीके के अन्तर्गत सूती वस्त्र को पहले राल तथा अन्य रसायनों के घोल में भिगो लिया जाता है और बाद में इसे आंशिक रूप में सुखाया जाता है। बाद में इस वस्त्र पर गरम लोहा किया जाता जाता है। इससे वस्त्र की तह स्थायी रूप से बनी रहती है। इसके बाद यदि वस्त्र को धोया जाए तो इससे न तो पुरानी तह खराब होती है और न नई सलबटें ही पड़ती हैं। यह तरीका अभी प्रयोगावस्था में है।

कृत्रिम तूफानों से परीक्षण

शिकागो विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक प्रयोगशाला में "कृत्रिम तूफानों" को पैदा कर के उनकी विशेषताओं को ठीक से समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे कि उष्ण कटिबन्ध प्रदेशों में आने वाले प्राकृतिक तूफानों के बारे में उन्हें ठीक जानकारी प्राप्त हो सके। प्रयोगशाला में तूफान के बारे में पता लगाने के लिए जो नमूने तैयार किए जाते हैं, उनके पानी में छोटे-छोटे भंवर पैदा किए जाते हैं और इन भंवरों की गति से प्राकृतिक तूफान की हवा की गति का अनुकरण किया जाता है। ये भँवर उन्हीं परिस्थितियों में पैदा किए जाते हैं, जिनमें प्राकृतिक प्रचण्ड तूफान पैदा होते हैं, जैसे बीच में गरम, बाहर से ठण्डे और धीमी रफतार से चक्कर काटने वाले। वैज्ञानिक गणित की सहायता से भँवरों द्वारा पैदा हुई शक्ति से प्राकृतिक तूफानों की शक्ति के बारे में पता लगा लेते हैं।

वैज्ञानिक प्रगति सम्बन्धी प्रदर्शन

आगामी वर्ष ब्रसल्ज में होने वाले विश्व मेले में अमेरिका के प्रदर्शन-कक्ष में अमेरिका की विज्ञान सम्बन्धी प्रमुख खोजों को प्रदर्शित किया जाएगा। मेले सम्बन्धी अमेरिकी कमिश्नर-जनरल ने हाल ही में न्यूयार्क में उक्त समाचार के बारे में घोषणा की है। जिन वस्तुओं को प्रदर्शित किया जायगा उनमें क्लाउड चैम्बर (बादल-भवन) भी होगा, जिसमें यह दिखाया जाएगा कि ब्रह्माण्ड-किरणों द्वारा पृथ्वी पर किस तरह वास्तविक रूप में बमबारी की जाती है मानव अस्थि-पिंजरों तथा उपकरणों आदि के ठीक समय का पता लगाने के लिए पुरातत्त्वशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली "कार्बन-डेटिंग प्रणाली" भी प्रदर्शित की जाएगी। विद्युदणुओं के प्रवाह पर नियन्त्रण रखने के लिये "इलेक्ट्रोनिक बल्ब" जैसे सूक्ष्म यन्त्र जिन्हें "ट्राँजिस्टर" कहते हैं, अमेरिकी कक्ष में प्रदर्शित किए जायेंगे। ये यन्त्र रेडियों तथा विद्युदणु सम्बन्धी अन्य यन्त्रों में वेक्यूम ट्यूबों (शून्यक नालियों) के स्थान पर प्रयुक्त किए जायेंगे। साथ ही इस प्रदर्शनी में अणु-सक्रिय पदार्थों की सहायता से यह भी दिखाया जाएगा कि पत्तियाँ किस तरह से खनिज पदार्थ, जल और गैसों के मिश्रण से अपने आहार की पूर्ति करती हैं। पौधों की इस आहार प्रणाली को फोटो सिन्थेसिस कहते हैं।

औद्योगिक टेलिविजन

पेन्सिल्वेनिया की बैल टैलिफोन कम्पनी ने टेलिविजन की एक नई मशीन तैयार की है, जिसे "नैरो बैंड" औद्योगिक टेलिविजन कहते हैं। इस नई मशीन की सहायता से टैलिफोन के सामान्य तारों द्वारा चित्रों को भेजा जा सकेगा। गत मास फिलाडेल्फिया के फ्रेंकलिन इन्स्टिट्यूट में इस नई मशीन को प्रदर्शित किया गया था। उक्त कम्पनी के अधिकारियों का यह कथन है कि टेलिविजन की इस नई मशीन में प्रचलित ४० लाख साइकिल्स के बैंड के स्थान पर २॥ लाख साइकिल्स का बैण्ड इस्तेमाल किया जाएगा। इस नई मशीन द्वारा चित्रों को १५ मील की दूरी तक आसानी से भेजा जा सकेगा और मुख्य रूप से इसे उद्योगों में इस्तेमाल किया जाएगा।

४० वर्षों में मनुष्य-निर्मित सूर्य भू-उष्णता के प्रयोग की सम्भावना

जनानी सिला (ज्ञान ही शक्ति है) पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रोफेसर जियोर्जी बाब्रात ने लिखा कि आगामी पन्द्रह वर्षों में प्रकाशकरण (फोटोन) राकेट तैयार कर परीक्षण के लिये छोड़ा जा सकता है। इस अंक में सम्पादक से पूछे गये प्रश्नों के अनेक वैज्ञानिकों और इंजीनियरों द्वारा दिये गये उत्तर प्रकाशित किये गये हैं। ये प्रश्न इस प्रकार के थे, चालीस सालों में विज्ञान तथा इंजीनियरिंग कितनी उन्नति करेगी ? १९९७ तक क्या क्या खोजें हो चुकेंगी ?

प्रो० बाब्रात ने बताया है कि प्रकाशकरण (फोटोन) राकेट को परीक्षण के रूप में छोड़े जाने से क्वाँटम (राशि पुंज) राकेट के निर्माण के लिये जरूरी तथ्य प्राप्त हो जाएंगे। यह राकेट कुछ ही क्षणों में चन्द्र कक्ष से आगे बढ़ जाएगा क्यों कि वह १८६४२० मील प्रति सेकंड यानी प्रकाश की गति से ब्रह्मांड अवकाश में गतिमान हो सकेगा।

पृथ्वी की उष्णता से

अकादिमिशियन द्रिमित्री श्वेबा कोवने यह विश्वास प्रकट किया किया कि इस शताब्दी के अन्त तक धरती के भीतरी भाग की तापशक्ति से बिजली तैयार करने के लिये पृथ्वी के अन्दर विद्युत् यंत्र कायम करना सम्भव हो जायेगा। शक्ति के इस स्रोत की कोई सीमा नहीं है। ३० मार्च १९५६ में जब कमचक्का प्रायद्वीप का बेजीम्याइन्नी ज्वालामुखी फटा तो उसने चट्टानों के टुकड़े २८ मील की ऊँचाई तक फेंके, उस समय उसने इतनी तापशक्ति प्रसारित की जितनी संसार का सबसे बड़ा बिजलीघर कुइबिशेव जल-विद्युत केन्द्र जो २१००,००० किलोवाट बिजली पैदा करता है, ३५०० वर्षा में पैदा करेगा। कुछ स्थानों पर गर्म चश्मे और सोते तो शक्ति-उत्पादन के लिये प्रयुक्त भी किये जा रहे हैं। कम चक्का प्रायद्वीप में एक कुआ खोदा जा रहा है जिसमें से टर्बाइनों को चलाने के लिये ज्वालामुखी के सोतों से अति-उत्तप्त भाप निकाली जायेगी।

अकादमिशियन श्वेर्बाकोव ने बताया कि जब ऐसा यंत्र जो भूमितल ताप को प्राप्त कर बिजली पैदा करे और उसे ऊपर धरती को भेजे, मीलों नीचे भेजना सम्भव हो जायेगा तो इंजीनियरिंग का इतिहास एक नयी मंजिल में प्रवेश कर लेगा।

इंजीनियर ज्वेल्तेन्कोव का विश्वास है कि इस शताब्दी के अन्त तक वायु की आणविक शक्ति से चालीस राकेट तैयार हो जाएँगे। उसके इंजिन में अत्यधिक संचालित सामान्य वायु को अणुओं में विखण्डित कर दिया जायेगा जो विशाल मात्रा में बिजली प्रसारित करेगी। पारमाणविक आक्सीजन को सामान्य आणविक आक्सीजन में परिणत करने के लिये अनुघटकों की खोज की जा चुकी है।

इंजीनियर ग्रिगोरेव ने ध्रुव प्रदेश के वीरान बर्फीले इलाकों के ऊपर कृत्रिम उपग्रह की कल्पना की है। यह सूर्य प्लास्मा (आयनीकृत गैस जिसमें इलेक्ट्रोनिक आवरण से मुक्त परमाणु होते हैं) से बनेगा और चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा अटका रहेगा। उसका तापमान करोड़ों डिग्री सेंटिग्रेड होगा। प्लास्मा के ताप पृथग्नयास (थर्मल इंसुलेशन) के लिये चुम्बकीय क्षेत्र की सम्भावना १९५० में दो सोवियत अकादिमिशियनों अन्द्रेई सारादोव और ताम ने प्रकट की थी। अकादिमिशियन इगोर कुर्जातोव ने प्रचंड तापमोनयुक्त प्लास्मा को अप्रैल १९५६ में एक चुम्कीय क्षेत्र में अटकने की पहली कोशिशों की लन्दन में एक वार्ता के दौरा वर्णित किया था। ध्रुव के ऊपर मनुष्य-निर्मित सूर्य का आकार असली सूर्य के आकार जैसा ही लगेगा। लेकिन वह दुगुना ताप प्रदान करेगा।

सोवियत अणु-जलयान का इंजिन तैयार

पारमाणविक ईंधन से चलने वाका जहाज इंजिन यहाँ लेनिनगाद के जहाज में घाट में तैयार हो रहे आणविक अणुभेदी जहाज लेनिन के लिये तैयार किया जा चुका है।

तमाम भाप-चलित टर्बाइनोंने जो जहाज के मुख्य विद्युत प्लांट हैं, परीक्षणों के समय अत्यधिक उपयोगी कार्यक्षमता प्रकट की है

नयी टर्बाइने भाप पर काम करेंगी, यह भाप आणविक रिएक्टर में पैदा की जाती है। ये (टर्बाइनें) जहाज के (स्क्रू को आगे बढ़ाने वाले कल का पुर्जा) घुमाने वाली बिजली मोटरों को विद्युत देती हुई जैनेरेटरों को गतिशील बनायेंगी।

प्रथम सोवियत निर्मित आणविक जहाज संसार का सबसे बड़ा हिमभेदी जलयान होगा। उसके पावर प्लांट की कुल क्षमता ४४०,००० अश्वशक्ति होगी। नवीनतम अमरीकी निर्मित हिमभेदी जलयान के पास २२००० अश्व शक्ति का इंजिन है और वह इस समय सबसे बड़ा हिमभेदी है।

हिमभेदी लेनिन १६००० टन जलच्युति करेगा और प्रति टन जल च्युति में पौने तीन अश्वशक्ति लगेगी इस तरह इसकी जलच्युति शक्ति का अनुपात आधुनिक हिम-भेदियों में सबसे अधिक होगा।

आणविक जहाजों का उद्भव यातायात के इतिहास में नया अध्याय आरम्भ कर देता है। आणविक हिमभेदी एक साल तक खुले सागरों या हिमभरे ध्रुव क्षेत्रों में बिना दुबारा ईंधन लिये हुए रह सकता है।

विद्युदणु चालित यातायात नियामक यन्त्र

दमकलों तथा डाक्टरी सहायता गाड़ियों को यातायात दुर्घटनाओं से बचाने के लिये एक नया विद्युदणु चालित यातायात नियामक यन्त्र तैयार किया गया है, जो रेडियो की सहायता से यातायात बत्तियों के नियन्त्रण की व्यवस्था करता है यातायात नियामक यन्त्र इन गाड़ियों के सामने के हिस्से में नीचे लगा रहता है और मोटर-चालक यहीं से सन्देश वाहक यन्त्र की सहायता से यातायात नियामक बत्तियों को संकेत भेज देते हैं। यातायात सम्बन्धी इस विद्युदणु चालित नियामक यन्त्र की सहायता से सड़क के हर चौराहे पर यातायात को नियन्त्रित किया जा सकता है। यह यन्त्र वाशिंगटन में प्रदर्शित किया जा चुका है।

एक्सरे की नई मशीन

अमेरिका के अवकाश प्राप्त सैनिकों से सम्बन्धित प्रशासन ने एक नई उत्तम एक्सरे मशीन तैयार की है, जो आपरेशन की मेज पर ही रोगी का सुरक्षा के साथ सही चित्र उतार सकती है। उक्त प्रशासन के अधिकारियों का यह कथन है कि इस नई एक्सरे मशीन की सहायता से २ या ३ मिनट में ही रोगी का चित्र उतारा जा सकता है। इससे शल्य-चिकित्सक को संकटग्रस्त रोगियों की परीक्षा तत्काल कर लेनी अब संभव हो गई है।

रक्त परीक्षा मशीन

अमेरिका में रक्त की परीक्षा के लिये एक नया यन्त्र तैयार हुआ है, जो एक घण्टे में ६० नमूनों की परीक्षा कर सकता है। किसी भी विशेषज्ञ को इतने नमूनों की परीक्षा के लिये पूरा दिन काम करना पड़ता है। रक्त की परीक्षा करने वाली इस मशीन को "आटोएनेलाइजर" कहते हैं। शौन्सी (न्यूयार्क) स्थित टैक्निकल कम्पनी ने उक्त मशीन तैयार की है।

कर्णातीत (सुपरसानिक) इंजीनियरिंग

मास्को के पालीटेकनिकल संग्रहालय में कर्णातीत इंजीनियरिंग का एक नया विभाग खोला गया है। अत्यधिक आवृत्ति की ध्वनि तरंगों का अब इंजिनियरिंग में अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा है। नये विभाग में ऐसे व्यावसायिक तथा अग्रसूचक कर्णातीत यंत्रों को प्रदर्शित किया है जिनसे धातु और कंक्रीट की क्षमता का पता लगाया जा सकता है तथा प्राविधिक क्रियाओं की रफ़्तार में वृद्धि की जा सकती है। प्रदर्शित यंत्रों में एक कर्णातीत बरमा है। उससे किसी भी निश्चित शक्ल का छेद किया जा सकता है। वह अत्यंत कठोर मिश्रित धातुओं, शीशा और सिरामिक को भी काटने में समर्थ है। और यह सारा काम वह कुछ मिन्टों में ही कर डालता है। जुड़ाई करने वाली कर्णातीत मशीन से आलमोनियम की भी जुड़ाई की जा सकती है, जो कि साधारण मशीन से बिल्कुल असंभव है। वहाँ त्रुटियों का पता लगाने वाली एक मशीक का भी प्रदर्शन किया गया है। उसके टेलीविजन जैसे परदे पर सामग्रियों के टिकाऊपन और बनावट की जाँच की जा सकती है।

धुलाई की मशीन में लोग आम तौर से दिलचस्पी लेते हैं। कुछ ही किलोग्राम वजन की उस मशीन को आप अपने साधारण झोले में रखकर कहीं भी ले जा सकते हैं। ध्वनितरंगों द्वारा साबुन और सोडा कपड़े के सूतों के बीच पहुँचा दिया जाता है और बात की बात में कपड़ा स्वच्छ हो जाता है। यह यंत्र पहनने के बारीक कपड़ों, ऊनी कपड़ों और परदा को धोने में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

संग्रहालय के इस विभाग में शीघ्र ही कुछ और नये यंत्र प्रदर्शन के लिये रखे जाएँगे।

धूप से चलने वाला नया घण्टा

अमेरिका की "जनरल टाइम कार्पोरेशन" ने धूप से चलने वाला एक नया घण्टा तैयार किया है। इस कम्पनी

के अधिकारियों का यह कथन है कि इस घण्टे को कभी भी चाबी देने की जरूरत नहीं होगी।

इस घण्टे में बिजली पैदा करने वाले कई सिलिकोन के सूक्ष्म-कक्ष (सैल्स) होते हैं। सिलिकोन के सूक्ष्म-कक्षों पर जब धूप पड़ती है, तब इनसे बिजली पैदा होकर संचय कक्ष में जमा हो जाती है। इसी संचित शक्ति से घण्टे की मशीन चलती हैं। इस घण्टे को यदि एक दिन धूप में रखा जाये, तो यह एक महीने तक चल सकता है।

उक्त कम्पनी के अधिकारियों का यह कथन है कि यह संचय-यंत्र (बैट्री) जब तक घण्टा काम करेगा, तब तक खराब नहीं होगा। अन्धेरे में घण्टा रहने पर भी यह संचय यन्त्र इस घण्टे को एक वर्ष तक चालू रख सकता है। यदि अँधेरे में रखने से यह घण्टा कभी रुक जाये, तो प्रकाश में लाने से यह फिर चल पड़ेगा।

नेत्ररोग की चिकित्सा

अभी हाल तक पिगमेंटरी रेटिनिटिस (आँख की पुतली में जलन होनी) नामक बढ़ते हुए नेत्ररोग को रोकने में औषधियाँ असमर्थ सिद्ध हो चुकी थी। इस नेत्ररोग की चिकित्सा नहीं होने से आदमी अपनी नेत्र-ज्योति खो बैठता है। लेकिन अब ऐसे उपाय का पता लगाया गया है जिससे इस रोग का सफलतापूर्वक इलाज किया जा सकता है। इस दवा का नाम इंटरमीडियन है, जो पशुओं की श्लेष्मीय ग्रन्थि से तैयार की गयी एक प्रकार की बुकनी है।

इंटरमीडिन के सहारे आँख की पुतली को इस प्रकार फिर से लगाने में आसानी होती है जिससे कि प्रकाश के प्रति वह ग्रहणशील रहती है और अन्धेपन से रोगी की रक्षा होती है। इंटरमीडिन की चिकित्सा कई महीनों तक चलती है और उससे अत्यन्त अनुकूल नतीजे निकलते हैं। यह कार्य चिकित्सक की देख-रेख में होता है।

हाई फ्रिक्वेन्सी करेंट द्वारा नलियों को जोड़ने की नई पद्धति

लेनिनग्राद के वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की एक टोली ने हाई फ्रिक्वेन्सी करेंट द्वारा नलियाँ को जोड़ने की एक नयी पद्धति निकाली है। एक विशेष प्रकार की स्वयं-क्रिय हाई-फ्रिक्वेन्सी मिल का निर्माण किया गया है। इससे ७५ प्रतिशत कम बिजली की खपत हुई है। इस प्रकार की एक मिल का निर्माण हो जाने से प्रतिवर्ष ६० लाख रूबल से कम की बचत नहीं होगी।

मौलिक ढंग के एक और टिटेनियम, जिरोनियम हाई फ्रिक्वेन्सी भट्ठे का, तथा अन्य विरल धातु की वैकुअम गलाई के लिये तथा प्लास्टिगों को जोड़ने के एक कारखाने का निर्माण हो गया है।

धूप से ताड़ का रस पकाने का यंत्र

भारत और विदेशों में धूप या सूर्य की शक्ति का उपयोग करने के पिछले दस वर्षों में अनेक प्रयत्न हुए हैं। हाल ही में नयी दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में धूप की गर्मी से ताड़ के रस को पकाने का एक यंत्र बनाया गया है।

यह यंत्र कई ऐसे परावर्तकों (रिफ्लेक्टर) को मिला कर बनाया गया है, जो जोड़े और हटाये जा सकते हैं। परावर्तक चौखूटे या आयताकार हैं और इनमें ३६-३६ शीशे और जिनके चारों ओर लकड़ी का चौखटा है। ये शीशे इस ढंग से लगाये गये हैं कि सबकी चमक या गर्मी एक ही विंदु पर पड़ती है। धानू की ताड़ गुड़ शिल्पशाला में इस यंत्र से जो आरंभिक परीक्षण किये गये हैं, उनका परिणाम उत्साह जनक है। परीक्षणों में ताड़ के रस को पकाने के लिए आम कढ़ावों का ही इस्तेमाल किया गया, फिर भी इससे आम ईंधन की अपेक्षा ३६ प्रतिशत अधिक काम हुआ। इस विधि से लकडी, कोयले आदि से कम गर्मी प्राप्त नहीं होती। वैसे, भारत के उन क्षेत्रों में जहाँ ताड़ अधिक पैदा होता है, लकड़ी या कोयला अधिक नहीं मिलत और ताड़-रस को पका कर राब बनाने के लिए सूखे पत्ते और टहनियाँ जलाई जाती हैं। सुधरी किस्म की भट्ठियों में लकड़ी का कोयला जलाया जाता है। सौभाग्य से ताड़ वृक्षों के सारे क्षेत्र में धूप खूब रहती है, इस लिए यहाँ इस यंत्र का काफी उपयोग हो सकता है।

कमला के तेल से रंग-रोगन

पूना की राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला में कमला के तेल से रंग, रोगन, वार्निश आदि बनाने की विधि निकाली गई है। देश में कमला बहुत पैदा होता है, लेकिन इसके तेल में एक खराबी यह है कि अन्य सूखने वाले तेलों की अपेक्षा सूखने पर यह अधिक कड़ा हो जाता है

और इस प्रकार वार्निश या रोगन के लिये यह अच्छा नहीं रहता।

पूना की गवेषण शाला के वैज्ञानिकों ने कमला के तेल की इस कमी को दूर करने का प्रयत्न किया और वे इसमें सफल हो गये हैं। बेंजीन और मद्यसार (अलकोहल) के प्रयोग से कमला के तेल का यह अवगुण दूर हो जाता है और यह बखूबी वार्निश या रोगन बनाने के काम आ सकता है।

काली मिट्टी पर बने मकानों के गिरने का खतरा दूर

काली मिट्टी नमी और खुश्की के साथ ऊपर नीचे या इधर उधर होती रहती है, इस लिए इस मिट्टी वाली जमीन पर बने मकान प्रायः तड़क जाते हैं। इधर कुछ वर्षों से मध्यप्रदेश तथा अन्य क्षेत्रों से इस तरह की बहुत सी शिकायतें आयी और इंजीनियरों तथा वैज्ञानिकों को इस समस्या ने काफी परेशान कर दिया था। रुड़की की वास्तु-गवेषणाशाला में इस समस्या को सुलझाने और मकानों के गिरने का खतरा दूर करने के प्रयत्न किये गये और ऐसी विधि निकाली गई, जिससे मकानों की नीव हर मौसम में स्थिर और अविचल रहे। विधि इस प्रकार है; मकान की समूची कुर्सी कंकरीट के कोठों पर बनायी जाती है। कंकरीट के कोठे बनाकर १०-१२ फुट की गहराई पर पहुँचाये जाते हैं और फिर एक विशेष यंत्र द्वारा इनको नीचे से चारों ओर फैला दिया जाता है। यह यंत्र रुड़की की वास्तु गवेषणाशाला में तैयार किया गया है। इस तरह की नींव पर नीचे की मिट्टी की हरकत का कोई असर नहीं पड़ता।

मध्य प्रदेश में इटारसी में एक-एक कमरे के तीन मकान इसी विधि के अनुसार बनाकर देखे गये हैं। दो साल से ये मकान ठीक खड़े हैं। अब मध्य प्रदेश सरकार इसी ढंग से कई स्थानों पर और कई मकान बनाने का विचार कर रही है।

फाउन्टेन पेन की रोशनाई बनाने की नयी योजना

भारत सरकार के वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय के लघु उद्योग संगठन ने फाउन्टेन पेन की रोशनाई बनाने की एक नयी योजना तैयार की है। यह योजना एक पुस्तिका में समझायी गयी है, जिसमें रोशनाई बनाने की विधि, मशीनें और सम्भावित त्रुटियों का उल्लेख भी है। पुस्तिका में बढ़िया रोशनाई की परीक्षा की विधि और इसकी कमियों को दूर करने के उपाय भी दिये गये हैं।

देश में अब काफी मात्रा में फाउन्टेन पेन की रोशनाई बनने लगी है, फिर भी अभी काफी बाहर से मँगायी जाती है। १९५५ में २ औंस की ७,४३,००० दर्जन शीशी रोशनाई बनायी गयी, जबकि १९५३ में इस तरह की ५,३३,६०० दर्जन शीशी रोशनाई ही देश में बनी थी। आशा है इस नयी योजना से घरेलू उद्योग के रूप में फाउन्टेन पेन की रोशनाई का उत्पादन और बढ़ेगा।

घरेलू इस्तेमाल के लिये धुआँ रहित बढ़िया कोयला

अब गृहणियों को कोयले के धुएँ के कारण आँसू नहीं बहाने पड़ेंगे। जीलगोड़ा की केन्द्रीय ईंधन गवेषणाशाला ने घटिया कोयले और कोयले के चूरे की ईंटों से ऐसा कोयला तैयार किया है, जो धुआँ नहीं देता। इतना ही नहीं, इस कोयले को कारबनयुक्त करने में जो गैसें निकलेंगी, वे भी भाप बनाने, चूना या ईंटें पकाने और सीमेंट के भट्टे सुलगाने के काम आयेंगी।

जीलगोड़ा में परीक्षण के तौर पर सस्ता सा एक यंत्र लगाया गया है, जिससे प्रतिदिन १० टन धुआँ रहित कोयला बनाया जाता है। इसी यंत्र से इस तरह का और भी अधिक कोयला बनाया जा सकता है। यह कोयला सूरत-शक्ल में लकड़ी के कोयले की तरह होता है और साफ्ट कोक से अधिक आग देता है।

सोवियत उद्योग में रेडियो सक्रिय (इमनेशन) निस्सृति का प्रयोग

सोवियत उद्योग-धंधों की विभिन्न शाखाओं में रेडियो सक्रिय निस्सृति का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। उदाहरण के लिये मास्को के कोयला अन्वेषण संस्थान ने ऐसे कई यंत्र तैयार किये हैं जो पारमाणविक विकिरण का प्रयोग करते हैं। बिना किसी मनुष्य की उपस्थिति के वे दूर तक उत्पादन की क्रियाओं का नियंत्रण कर सकते हैं। उदाहरण के लिये रेडियो सक्रिय समस्थानिक (आइसो-

टोप) पृथ्वी के भीतर छोटी-छोटी ठेला-गाड़ियों में कोयला लादने की क्रिया का नियंत्रण कर लेते हैं जैसे ही गाड़ी का छोटा डिब्बा भर जाता है, एक रेडियो सक्रिय किरण एक दूसरे यंत्र को सूचना पहुँचा देती है, जो स्वत: भरे हुए डिब्बे को आगे खिसका देता है और उसके स्थान पर एक दूसरा खाली डिब्बा रख देता है। इसी प्रकार के यंत्रों द्वारा जमीन के ऊपर रेल के डिब्बों में कोयला लादने की क्रिया का भी नियंत्रण किया जाता है।

संस्थान एक ऐसा कोल-कम्बाईन तैयार करने में लगा हुआ है जो रेडियो-सक्रिय निस्सृति का प्रयोग करेगा। उसे रेडियो सक्रिय समस्थानिकों की मदद से चलाया जाएगा, जो धूल और मिट्टी को छोड़ता हुआ, केवले कोयले को काटकर एकत्रित करेगा।

भाप से लोहा गलाया जाता है

सोवियत संघ के एक बिजलीघर में एक नये प्रकार का स्टीम बायलर लगाया जा रहा है जो वायुमंडल के २७५ चाप के साथ भाप को ५७५० सेंटीग्रेड के तापक्रम पर पहुँचा देता है। यदि इस भाप की धारा एक खाली कार्बन इस्पात पर केन्द्रित की जाये तो वह तत्काल गर्म होकर चमकने लगेगा।

इस यंत्र को सुपरक्रिटिकल पैरामीटर का बायलर कहा जाता है। उसे मास्को क्षेत्र के पोडोल्सक नामक मशीन बनाने वाले कारखाने में तैयार किया गया है। वह प्रति घंटा ३०० टन भाप तैयार करने की क्षमता रखता है।

यंत्रीकृत कपास की खेती के अच्छे परिणाम

कृषि-मंत्रालय के यंत्रीकरण एवं विद्युतीकरण प्रशासन के प्रधान ग्रिगोरी वाल्कोव ने यहाँ राष्ट्रीय-कपास-सम्मेलन में कहा कि सोवियत संघ में कपास की खेती सम्बन्धी कार्यों के ९९ प्रतिशत का यंत्रीकरण किया जा चुका है।

सोवियत यंत्र-निर्माण उद्योग के विकास के फलस्वरूप अल्पकाल में ही कृषि-सम्बन्धी अनेक प्रक्रियाओं का यंत्रीकरण हो गया है। यह बात कपास की खेती पर भी लागू होती है। कपास की खेती में अग्रणी जनतंत्र जज़बेकिस्तान में ५५,००० ट्रैक्टर, (१५ होर्स पावर इकाइयों के) चुनने की लगभग कपास २०,००० मशीनें, १२०,००० अन्य यंत्र-औजार हैं। उजबेकिस्तान जिसने लगभग दस विशेष प्रकार के कामों के बीड़े लिये हैं, सोवियत संघ के कपास-कृषकों को नये यंत्र देने का प्रमुख पूर्तिकर्त्ता बन गया है।

कृषि की प्रक्रियाओं का यंत्रीकरण तथा वर्गाकार खंडों में कपास लगाना आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। पिछले वर्ष उजबेकिस्तान की फसल लगभग २००,००० टन अधिक हुई और ४० प्रतिशत से ५० प्रतिशत तक कम श्रम की खपत हुई।

मशीन ट्रैक्टर स्टेशन तथा सिंचित कृषि के यंत्रीकरण और विद्युतीकरण का मध्य एशियाई संस्थान ताशकंत के के निकट अत्यन्त उच्च कोटि के ज्ञानवर्द्धक परीक्षण कर रहे हैं। यंत्रीकरण के द्वारा एक आदमी २५ से ३० हेक्टर (६३ से ७५ एकड़) में जोताई कर सकता है और प्रति हेक्टर ३० सेंटनर से अधिक कपास चुन सकता है।

समुद्री नावों का नौ कृमियों से बचाव

देश के तट-समुद्र में चलने वाली लकड़ी की नावों में एक प्रकार का समुद्री कीड़ा लग जाता है।

लकड़ी को इन कीड़ों से बचाने के लिये गवेषणा की गयी है। यह गवेषणा देहरादून की वन-गवेषणाशाला, कलकत्ते के शालीमार टार प्राडक्ट्स, और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक परिषद ने मिलकर बम्बई, कोचीन, तिरुअनंत पुरम्, और विशाखापत्तनम् में की।

इन कीड़ों की बाँकिया, तेरे दो मातैशिया जातियों की प्रकृति, प्रजनद, आदि का विस्तृत अध्ययन किया गया।

विभिन्न प्रकार की लकड़ी पर इन कीड़ों का क्या प्रभाव पड़ता है, यह देखने के लिये प्रयोग किये गयें।

इस अध्ययन से इमारती लकड़ी को इन कीड़ों से बचाने के कुछ कारगर उपाय निकाले गये हैं। कापर सलफेट और मर्करिक क्लोराइड जैसे कुछ रसायन इस कार्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

कैन्सर के उपचार में रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट अधिक लाभदायक

फिलाडेल्फिया के कैन्सर-विशेषज्ञ डा० रैमन का यह विश्वास है कि कैन्सर के उपचार में रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट की किरणें सामान्य एक्सरे किरणों से अधिक लाभदायक हैं।

"इन्स्टिट्यूट फौर कैन्सर रिसर्च" तथा "लेंकीनाऊ होस्पिटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट" के डा० स्टैनली पी० रैमन और उनके साथी अमेरिका के उन पहले डाक्टरों में से थे, जिन्होंने रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट की उपयोगिता के बारे में पता लगाया था। कैन्सर के उपचार में २॥ लाख बोल्ट की प्रचलित एक्सरे मशीन से भी १२ गुणा अधिक विकिरण रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट की एक चमचा मात्रा से प्राप्त होता है।

डा० रैमन ने बताया कि इस कोबाल्ट से उतनी शक्ति पैदा होगी, जितनी ३ करोड़ डालर मूल्य के रेडियम के टुकड़े से प्राप्त की जा सकती है, लेकिन उन्होंने यह बताया कि जब से रेडियम की खोज हुई है, अर्थात् १८९८ से लेकर अब तक इतना रेडियम तैयार नहीं हुआ है।

फिलाडेल्फिया इन्स्टिट्यूट में कैन्सर रोगियों का रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट से ८ से १० मिनट तक के बीच उपचार किया जाता है। इस बीच कोबाल्ट की किरणों को रसौली पर डाला जाता है।

डा० रैमन ने संकेत किया कि कोबाल्ट उपचार-विधि केवल उन रोगियों के लिए ही प्रयुक्त की जाती है, जिनका कैन्सर बहुत बढ़ गया होता है। ऐसी स्थिति में कैन्सर के उपचार की सफलता का अनुमान लगाना कठिन है। ५ सालों के बाद ही ठीक से इस बात का पता लग सकता है। इधर कोबाल्ट को इस्तेमाल करते हुए अभी केवल २॥ वर्ष ही हुए हैं।

उत्तर प्रदेश में

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन का आशाप्रद प्रारम्भ

प्रथम वर्ष में ही

लगभग पांच लाख २१ हजार टन अतिरिक्त खाद्योत्पादन सम्भव हुआ जब कि लक्ष्य केवल ३ लाख १४ हजार टन ही था।

९ करोड़ ७० लाख ५१ हजार रु० सिंचन सुविधाओं के प्रसार पर व्यय किए गए।

विद्युत शक्ति उत्पादन की क्षमता ६६४० किलोवाट बढ़ गई।

वन-रोपण की आठ योजनाओं पर कार्य प्रारम्भ हुआ, जबकि आयोजन की पूरी अवधि में ११ योजनाएं कार्यान्वित होनी है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की ५५ योजनाओं में से ४७ पर काम शुरू हो चुका है।

कुल २१७८ मील लम्बी सड़कों के निर्माण के लक्ष्य की तुलना में ४४० मील लम्बी सड़कें बनीं।

और

४० एलोपैथिक एवं देशी औषधालयों की स्थापना हुई।

संतोषजनक प्रारम्भ

भविष्य की पूर्ण सफल आहुति का संकेत है।

हमारा नवीन प्रकाशन

रेल इञ्जिन

परिचय और संचालन

लेखक

श्री० ओंकार नाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०, भूतपूर्व, लोकोफोरमैन, बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे, चीफ मिकेनिकल इंस्ट्रक्टर, पूर्वोत्तर रेलवे।

पृष्ठ-संख्या (रायल साइज) ३४२, चित्र ८३, दो रंगीन प्लेट। मूल्य सजिल्द ६॥) अजिल्द ६)

इस पुस्तक के लेखक रेलवे के यान्त्रिक विभाग में कार्य-संचालन के अनुभवी विद्वान् हैं। भारतीय भाषाओं में इस विषय की पुस्तकों का अभी तक अभाव है। विद्वान् लेखक ने बहुत अधिक समय तक लगे रह कर प्रश्नोत्तरी के रूप में यह पुस्तक लिखी है। इसमें कुल ४८२ प्रश्न हैं जिनके उत्तर चित्रों के साथ समझाए गए हैं।

यह पुस्तक इंजन चलाने वालों और उनकी मरम्मत आदि करने वालों के उपयोग की है। होनहार ड्राइवरों के मार्ग-प्रदर्शन के लिए रेल-इंजिन परिचय के प्रथम अध्याय में परीक्षोपयोगी विशेष पाठ्य-क्रम भी दिया गया है। कार्यकर्ताओं की रुचि को समझते हुए, जटिल विषयों को सरल बनाने के उद्देश्य से कई सांकेतिक चित्रों को तरह तरह के शेडों से सज्जित किया गया है और यान्त्रिक चित्रों को भी यथा साध्य सरल बनाया गया है जिससे पाठकों को बहुत लाभ हो सकता है। ऐसे साहित्य से रेलवे कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ेगी और दुर्घटनायें कम होंगी जिससे देश को भी लाभ होगा।

विषय-सूची—**प्रथम खण्ड**—(१) ड्राइवर का जीवन और शिक्षाक्रम (२) विषय प्रवेश (३) वाष्प इंजन के सिद्धांत (४) वाल्व और सिलिंडर का घटना चक्र (५) स्टिफेंस का वाल्व गति यंत्र (६) वाल्शर्ट और जाँय के वाल्व गति यंत्र (७) कैपरॉटी वाल्व गतियंत्र (८) पॉपेट वल्व गति यंत्र (९) इंजिन का यंत्र और फ्रेम (१०) वायलर (साधारण विवेचन) (११) बॉयलर (विशेष वर्णन) (१२) वाष्प का अति तप्ती-करण (१३) फीड पम्प, इंजेक्टर, फीड वाटर-हीटर और इकोनोमाइजर (१४) बायलर के सहायक यंत्र और उपकरण (१५) लुबरीकेटर और चिकनाई (१६) ग्रीज, तेल, कोयला, पानी और धातुओं के गुण आदि का विवेचन (१७) पदार्थ ताप, वाष्प और दबाव आदि की परिभाषायें और निवारण (१८) प्रज्वलन विज्ञान (१९) रेल क. लाइन और गेज आदि (२०) सिगनल और इंटरलाकिंग।

द्वितीय खण्ड—(२१) यात्रा की तैयारी—शेड में—(२२) रनिंग शेड से चलकर गाड़ी में लगना (२३) इञ्जन चलाना (२४) फायरमैन का काम कोयला झोंकने की वैज्ञानिक विधि—(२५) बीच के स्टेशनों पर ठहरना (२६) यात्रा के अंत में शेड में (२७) रेल संचालन नियम।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज़ के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित **गवेषणापूर्ण** लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद

विज्ञान दिसम्बर १९५७

रजिस्टर्ड सं[illegible] १७२

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद तथा मुद्रक ओंकार प्रेस, प्रयाग—१

भाग ८६ संख्या ४

जनवरी १९५८, मकर २०१४ वि०, पौष १८७९ श०

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का, यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्त्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायँगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ८६ | मकर २०१४ विक्र० माघ १८७६ शाकाब्द; जनवरी १९५७ ई० | संख्या ४

सम्पादकीय

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भारत ने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में तो संसार में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है किन्तु शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में वह विश्व के अग्रणी राष्ट्रों से बहुत पिछड़ा हुआ है। राष्ट्रीय-अनुसंधान शालाओं और अन्य गवेषणागारों की स्थापना से देश की स्वस्थ प्रगति अवश्य हुई है किन्तु फिर भी अभी बहुत काम शेष है। प्राविधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की देश में बड़ी कमी है। परिणामस्वरूप देश की जिस रूप रेखा का निर्माण हम करना चाहते हैं उसमें अधिक समय लग रहा है।

इस युग में वैज्ञानिक ज्ञान का इतना दुरुपयोग हुआ है कि संसार में एक आतंक छा गया है। परिणामस्वरूप कुछ लोग वैज्ञानिक प्रगति को शंकित और भयभीत होकर देखते हैं। इसमें दोष विज्ञान का नहीं अपितु उन राष्ट्रों और शक्तियों का है जो अपनी सत्ता और प्रभाव के लिये होड़ लगा कर विनाश के नवीनतम और महत्तम शक्ति सम्पन्न साधन उपस्थित कर रहे हैं। फिर भी इस होड़ से विश्व को एक बड़ा लाभ हुआ है। आणविक विकिरण और आणविक शक्ति के सृजन द्वारा संसार की बड़ी बड़ी समस्याओं का समाधान होने का मार्ग भी खुल गया है। आज जब संसार के अधिकांश शक्ति-स्रोत समाप्त प्रायः हो रहे हैं और जो बचे भी हैं वे भी संसार की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की अधिक समय तक पूर्ति नहीं कर सकते। आणविक शक्ति ही विकसित होकर इस अभाव की पूर्ति में योगदान दे सकती है। और यदि हम विचार करें तो हम इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि अधिकतम शक्तिशाली अस्त्रों के निर्माण की होड़ ने ही संसार को इतने शीघ्र आणविक शक्ति के विकास और

उनके शान्तिपूर्ण उपयोगों के अनुसंधान की ओर प्रेरित किया है। जहाँ अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों का विकास हुआ है और स्पुटनिकों के निर्माण द्वारा अन्तरग्रहीय युद्ध की संभावना साकार हो उठी है वहाँ उन्हीं साधनों के द्वारा ब्रह्माण्ड के नये भेदों से परिचय प्राप्त करने की और उन्हें उपयोग में लाने की सुविधा भी प्राप्त होने की आशा बंध गई है।

यह वैज्ञानिक प्रगति का युग है। जिस राष्ट्र की प्रगति रुकती है उसका अन्त अवश्यम्भावी है। इसलिये गलत दिशा में विज्ञान की उन्नति को कोसने से काम नहीं चलेगा। विज्ञान का विकास अपार शक्ति का स्रोत है। उसका उपयोग हम निर्माण के हेतु करें या विनाश के साधन प्रस्तुत करने में यह हमारी मनोवृत्ति पर है। तात्विक या शुद्ध विज्ञान की प्रगति से ही काम चलना सम्भव नहीं। उसके उपयोग के लिये कार्य करना अनिवार्य है। मानव जीवन के मूल्यों और जीवन दर्शन के सिद्धान्तों के विपरीत केवल स्वार्थ साधन के लिये विज्ञान का उपयोग विकृति का द्योतक है अतःआज मानव हृदय की कोमल भावनाओं और वैज्ञानिक वृत्ति में संतुलन लाना पड़ेगा। वैज्ञानिकों में त्याग और प्रेम की भावनाओं का विकास ही संसार की उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकेगा और राजनीति से दूर रह कर ही वैज्ञानिक विश्व की सच्ची सेवा कर सकेंगे। हमें विश्वास है कि भारत फिर एक बार आज के आतंकित तथा हताश संसार को सच्चा वैज्ञानिक मार्ग दिखा कर विनाश के मार्ग में जाने से रोकने में समर्थ होगा।

रिहन्ड योजना

रिहन्ड नदी में बाढ़ आने के परिणाम स्वरूप मिर्जापुर और बघेलखंड जिलों की बड़ी दुर्दशा है। आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व इस दैवी आपत्ति से मुक्ति दिलाकर इस अभिशाप को वरदान में बदलने के हेतु पिपरी के पास एक बांध बनाने की रूप रेखा बनाई गई थी। किन्तु वह कागज तक ही सीमित रही। आज केन्द्रीय एवम प्रदेशीय सरकारें इस योजना के कार्य रूप में परिणत करने में कटिबद्ध हैं।

इस योजना में बाँध पर ३१ करोड़ ७३ लाख और बिजली के तार आदि पर १३ करोड़ ५३ लाख रुपया अर्थात कुल मिलाकर ४५ करोड़ २६ लाख रुपया व्यय होगा। बांध में ६ करोड़ १७ लाख घन फुट सीमेन्ट कंकरीट लगेगा जो काश्मीर से कन्या कुमारी तक सड़क बनाने को पर्याप्त होता। जितना मसाला इस योजना में उपयुक्त होगा उतना मिस्रदेश की सातों पिरामिडों में भी नहीं लगा होगा। जल एकत्र करने वाली झील १८० वर्ग मील में फैली होगी और उसमें ८६ लाख एकड़ फुट जल एकत्र किया जा सकेगा। इन आंकड़ो से योजना के रूप का अनुमान किया जा सकता है।

बाँध और बिजली घर के १९६१ तक तैयार होने की आशा की जाती है इस योजना से १४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी, पचास-पचास हजार किलोवाट घंटा बिजली उत्पन्न करने वाले ६ यन्त्रों से ३ लाख किलोवाट घंटा बिजली पैदा की जा सकेगी तथा सोन नदी की बाढ़ की भयंकरता से मुक्ति दिलाकर उसे नावों के यातायात के योग्य बनाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत की अन्य बिजली योजनाओं का भार कम हो जावेगा और सारे उत्तर भारत का औद्योगिक विकास सम्भव हो सकेगा।

× × ×

उत्तर प्रदेशीय सरकार ने विज्ञान-परिषद्-भवन के निर्माण हेतु हमें दस हजार रुपये का अनावर्तक अनुदान दिया है। इसके लिये हम उत्तर प्रदेशीय सरकार के आभारी हैं। हमें विश्वास है प्रदेशीय तथा केन्द्रीय सरकारें परिषद् के भवन की पूर्ति के हेतु तथा परिषद् के कार्यों की सहायतार्थ हमारी सहायता करती रहेंगी।

गतांक से आगे—(२)

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र एम० एस-सी०, डी० फिल०, अध्यापक, कृषि रसायन, प्रयाग विश्वविद्यालय]

बौद्ध कालीन भारत ने कृषि की दिशा में कुछ और डग भरे। अब तक आर्य सम्पूर्ण उत्तरी भारत में फैल चुके थे। मगध राज्य के उत्थान के ही साथ महात्मा बुद्ध का आविर्भाव हुआ। फिर गुप्त काल का जैसा स्वर्णिम-युग भारत ने देखा। ईसा की ३२० ई० पूर्व से ५०० ई० तक के भारतीय-कृषि का इतिहास हमें बौद्ध कृतियों, विशेषतया **फटकों** (४००-२०० ई० पू०), **मेगस्थनीज के वृत्तान्तों** (३१५ ई० पू०), **कौटिल्य के अर्थशास्त्र** (३०० ई०पू०) तथा **अशोक के शिलालेखों**, **महाभारत** (४०० ई० पू० ४०० ई०) एवं **मनुस्मृति** (२०० ई० पू०- २०० ई०) से विदित होता है।

फटक में आयी एक कथा के आधार पर यह विदित होता है कि जंगलों को काट कर ब्राह्मण तक खेती करते, अनाज की निराई एवं रखवाली करते किन्तु उसी तारतम्य में यह भी प्रसंग आया है कि जंगलों के नाश से बाढ़ें आतीं जिससे खेती नष्ट हो जाती, किसान हाथ मल कर रह जाते। कपिलवस्तु में बहने वाली नदी रोहिणी में बाँध बाँधकर नदी के जल से खेतों के सींचने का भी उल्लेख है। एक अन्य कथा से स्पष्ट होता है कि किसान खेतों को जोतने, बोने, सींचने, बाड़ा बनाने, निराने, गोड़ने, काटने, माँडने में इतना व्यस्त रहते कि किसी आर्त्त एवं दीन के लिये कुटी बना देने तक का अवकाश न पाते।

अन्य स्रोतों से यह पता चलता है कि बौद्ध कालीन भारत में पशुओं का प्राधान्य होता किन्तु उनके लिये अलग से चरागाह न होते। फसल कटने के बाद जानवर खेतों में चरते। किन्तु फसल बो जाने पर गाँव के रक्षक के जिम्मे सभी पशु कर दिये जाते और गाँव के बाहर उन्हें चराया जाता। पशु झुण्डों के साथ रहने वाला अत्यन्त चतुर व्यक्ति हुआ करता। वह पशुओं को पहचानने के लिये भाँति-भाँति के चिन्ह बनाता, मक्खियाँ हाँकता, घावों की रखवाली करता, रात्रि में दंशकों को भगाने के लिये धुआँ किया करता था। पशुओं को अच्छी जगहों में चराने, पानी पिलाने तथा दुग्धादि की व्यवस्था का भी भार उस पर होता।

सभी खेत एक साथ बोये जाते क्योंकि एक समान सिंचाई होती। प्रत्येक व्यक्ति को अपने खेत के चारों ओर बाड़ा न बनाना पड़ता क्योंकि सबका एक संयुक्त बाड़ा होता। गाँव के घरों के मालिकों की संख्या के अनुसार खेतों के खंड होते और प्रत्येक परिवार अपने खंड की पैदावार का भागी होता था। एक जातक में लिखा है कि राजा विदेह ने जब संसार छोड़ कर सन्यास लिया तो ७ योजनो की अपनी राजधानी मिथिला छोड़ी और १६ हजार गाँव का राज। गाँव का मुखिया 'भोजक' कहलाता जिसे कुछ कर मिल जाया करता। जातकों से यह भी पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हजारों करीसों (बीघों) जमीन होती। एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज के यहाँ ५०० हलों की खेती थी जो मजदूरों से जुतवाता था। हल जोतने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य इन्द्र और भग के नाम से हवन होते। बोने-काटने के समय भी यज्ञ होते थे। राजा खेत की उपज में से प्रतिवर्ष १/१० भाग तक लेता था। वह इतने के लिये ही भूपति समझा जाता था। 'भोजक' या तो फसल की अटकल लगा देता था राशि नाप ली जाती थी। कभी-कभी सरकार उपज में से १/६ से १/२ अंश तक लेती थी। मगध में भूमि बेची नहीं जाती थी, भले ही उसे दान में दे दिया जाय; जब कि कोशल में भूमि बेची जा सकती थी। साधारणतया खेती-व्यापार वैश्यों के जिम्मे थे किन्तु खेती कोई नीच कार्य न समझा जाता था अतः ब्राह्मण भी खेती करते। यही नहीं गायें चराना, बकरी पालना, व्यापार करना, शिकार करना,

जुलाहे का काम करना तथा रथ हाँकना और सँपेरे के कार्य तक करना ब्राह्मणों के लिये निषिद्ध न थे। बड़े-बड़े खेतिहर मजदूर रखकर कार्य कराते। दास और दासियों को कार्य करते रहने पर, किसी प्रकार का असन्तोष न होता था। जातकों से यह भी पता चलता है कि वस्तुयें अत्यन्त सस्ती थीं। एक धेले के तेल या घी से मनुष्य का काम चल जाता था। आठ कहपान में (एक कहपान का मूल्य ८ आने के बराबर माना जाता है) उस समय एक गधा खरीदा जा सकता था और २४ मुद्राओं में एक जोड़ी बैल। मूगपक्ख जातक में कारीगरी और कलाओं की १८ संगठित पंचायतों की चर्चा है जिसमें बढ़ई, लुहार चित्रकार और खाल सिझाने वाले मुख्य थे।

तात्पर्य यह कि बौद्ध काल में पशु एवं खेती दोनों पर समान रूप से ध्यान दिया गया। उसके पश्चात् **सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य्य** का काल आता है जिसका पता हमें मेगस्थनीज के उल्लेखों एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र से चलता है।

सेल्यूकस के दरबार का यूनानी राजदूत **मेगस्थनीज** चन्द्रगुप्त मौर्य के राजदरबार में आया और उसने भारत एवं उसके निवासियों के सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन किये। यद्यपि मेगस्थनीज की कृतियाँ पूर्ण नहीं, फिर भी प्राप्त अंशों से भारतीय कृषि—मिट्टियों, फसलों एवं उर्वरताके विषय में प्रचुर सूचना मिलती है! मेगस्थनीज के अनुसार भारतीय समाज उस समय सात जातियों में बँटा हुआ था। दार्शनिक, कृषक, गोप व शिकारी, मजदूर, सैनिक, निरीक्षक और मंत्री तथा सभासद। दार्शनिकों की संख्या कम किन्तु प्रभावशाली थी। यदि कोई दार्शनिक उपयोगी पुस्तक लिखता था अथवा कृषि या पशुओं अथवा व्यवसाय के उपयोगी शास्त्र की रचना करता था तो उसका सार्वजनिक रूप से सम्मान किया जाता था। ये मौसमी फल और वृक्षों की छाल खाकर रहा करते थे।

मेगस्थनीज ने लिखा है कि दूसरी जाति के लोग किसान हैं। इनकी संख्या सबसे अधिक है। ये युद्ध करने तथा अन्य राजकीय सेवाओं से मुक्त रहते हैं। इस कारण वे अपना सारा समय खेती में लगाते हैं। वे राजा को भूमिकर देते हैं। किसान अपनी स्त्रियों एवं बच्चों के साथ देहात में रहते और शहरों में जाने से बचते हैं। भूमि का अधिक भाग सींचा जाता है अतएव उसमें वर्ष के भीतर ही दो फसलें होती हैं।

मेगस्थनीज के अनुसार भारत की भूमि बहुत उपजाऊ थी। वह लिखता है कि भूमि पशुओं के निर्वाह योग्य तथा अन्य खाद्य भी प्रदान करती है। इस कारण भारतवर्ष में अकाल कभी नहीं पड़ता और खाने की वस्तुयें भी कभी मँहगी नहीं हो पातीं। चूंकि यहाँ वर्ष में दो दो बार वर्षा होती है, एक जाड़े में जब गेहूँ बोया जाता है और दूसरी गर्मी में जब तिल और ज्वार बोई जाती है, अतः भारतवर्ष के निवासी दो फसलें काटते हैं और इनमें से यदि एक बिगड़ भी जाती है तो उन्हें दूसरी फसल का विश्वास रहता है। इस कृषक समाज को युद्ध के समय भी कष्ट नहीं दिया जाता।

मेगस्थनीज लिखता है कि भूमि पर काम करते हुये किसी किसान के पास आकर शत्रु सेनायें उसकी हानि नहीं करती; क्योंकि इस वर्ग के लोग सर्व साधारण के लिये हितकारी माने जाने के कारण सब हानियों से बचाये जाते हैं। भारतवर्ष में बहुत सी ऐसी रीतियाँ हैं जो उनके बीच अकाल की संभावना को रोकने में सहायता देती हैं। दूसरी जातियों में युद्ध के समय भूमि को नष्ट करने और इस प्रकार उसको परती-ऊसर कर देने की रीति है। पर इसके विरुद्ध भारतवासियों में, जो कृषक समाज को पवित्र और अवध्य मानते हैं; भूमि जोतने वाले यद्यपि उसके पड़ोस में युद्ध हो रहा हो, तो भी किसी भय की आशंका से विचलित नहीं होते। दोनों पक्षों के लड़ने वाले युद्ध के समय एक दूसरे का संहार करते हैं, परन्तु जो खेती में लगे हैं, उनको पूरी तरह निर्विघ्न रहने देते हैं। इसके अतिरिक्त न तो वे शत्रु के देश का अग्नि से सत्यानाश करते हैं और न उसके पेड़ काटते हैं।

मेगस्थनीज ने तीसरी जाति में अहीर गड़रिये और सब प्रकार के चरवाहों को गिना है। ये लोग न तो नगरों में बसते थे, न ग्रामों में, बल्कि डेरों में रहते थे। पशुओं को बेचना और उधार देना इनका काम था। ये

हानिकर पशु-पक्षियों को जाल में फँसाकर नष्ट करते और बोये हुये बीजों को खा जाने वाली पक्षियों का इस प्रकार से नाश किया जाता।

मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त की प्रान्तीय शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है। प्रान्तीय शासन के अधिकारियों को वह अग्रोनोमोई कहता है। इन अधिकारियों के जिम्मे नदियों की देख रेख; भूमि मापन तथा नहरों में से उनकी शाखाओं द्वारा सिंचाई को नियन्त्रित करने का काम था। वह उन अधिकारियों का भी उल्लेख करता है जो खेती, जंगल, इमारती लकड़ी, धातु भट्टियाँ, खदानों तथा सड़कों की देख रेख करते थे।

उपरोक्त अंशों से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त के काल तक भारतीय कृषि ने बड़ी उन्नति कर ली थी। इस काल का वर्णन अन्य यूनानी लेखकों ने भी किया है किन्तु उनकी दृष्टि मेगस्थनीज की भाँति पैनी न थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के अर्थमन्त्री चाणक्य (कौटिल्य अथवा विष्णुगुप्त) के द्वारा विरचित **'अर्थशास्त्र'** के माध्यम से हमें २२०० वर्ष पूर्व भारत की आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का विस्तृत परिचय मिलता है। कौटिल्य के काल के विषय में मतभेद हो सकते हैं किन्तु उसके द्वारा वर्णित वस्तुओं की विशदता पर सभी मुग्ध हैं। प्रसंगों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ईसा के भी पूर्व भारत में वनस्पति-भोज्य के सिद्धान्त स्थापित हो चुके थे। प्रमुख फसलों में गन्ना, चावल, तिल, मुद्ग, मास, मसूर, जौ, गेहूँ, कलय, अलसी और सरसों पैदा की जातीं।

(सीताध्यक्ष) कृषि निरीक्षक के लिये आवश्यक था कि वह कृषि-विज्ञान से भली-भाँति परिचित हो क्योंकि उसे ही लताओं एवं वृक्षों का रोपन करना पड़ता अथवा जो इस विज्ञान में सिद्ध हस्त होते, उनके द्वारा सहायता पहुँचाया जाता। कृषि निरीक्षक को सभी प्रकार के अन्नों, पुष्पों, फलों, तरकारियों, रेशेवाली फसलों तथा कपास के बीजों का संग्रह करना होता था। वह वर्षा की कम या अधिक मात्रा के अनुसार ही न्यून या प्रचुर जल वाली फसलों के बीज बोता।

शालि, ब्रीहि, कोद्रव, प्रियंगु, दारक, वरक, के बीज वर्षागम के पूर्व ही बोये जाते। मुद्ग, मास और सैन्या को मध्य ऋतु में बोते। कुसुम्भ, मसूर, कुलुथा, यव, गोधूम, कलय तथा अलसी एवं सरसप को अन्त में बोया जाता।

उगते हुये बीजों के कल्लों में छोटी छोटी मछलियों के छिलकों की खाद देने का उल्लेख है।

रामायण एवं महाभारत ये दो धार्मिक ग्रंथ हैं, जिनकी कथायें ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों से भी प्राचीन होते हुये भी, बहुत बाद में पुस्तकाकार की गईं। प्रबंध काव्य होने के साथ ही महाभारत में आर्यों के जीवन की प्रामाणिक एवं सत्य झाँकी देखने को मिलती है। महाभारत काल ४०० ई० पू० से ४०० ई० तक माना जाता है। निश्चित रूप से महाभारत काल में शारीरिक-सुविधायें अधिक प्राप्त थीं, जनता का स्वास्थ्य अच्छा था और शक्ति का बोलबाला था। आये दिन युद्ध होते। महाभारत में गायों के झुण्डों के पीछे अनेक युद्ध हुये, जो यह संकेत करते हैं कि दुग्ध की महत्ता ज्ञात हो चुकी थी और उसे अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिये छीना झपटी होने लगी थी। कृषि को आदर की दृष्टि से देखे जाने के भी सबूत हैं। त्रेता युग में राजा जनक का हल-धारण और द्वापर में बलराम द्वारा हल चलाना। यही नहीं, गोधन के भी महत्व का परिचय कराने के लिये कृष्ण भगवान द्वारा गायों का चराना स्मरणीय घटना है।

रामायण से पता चलता है कि कृषि एक समुन्नत कला मानी जाती थी। सारी अयोध्या नगरी किसानों से भरी-पूरी थी। वेदों के अध्ययन के साथ ही कृषि तथा व्यापार जैसे विषय पढ़ाये जाते थे। गाँव का मुखिया कर वसूल कर राजा को देता, जिसके बदले राजा प्रजा की डट कर रक्षा करता था। आकस्मिक घटनाओं—दुर्भिक्ष, चूहे, चिड़ियों द्वारा कृषि नाश पर राजा प्रजा का भरण करता।

भगवान कृष्ण का जीवन जैसे गोवंश के संवर्धन के ही लिये था। उस काल में बड़े बड़े जंगल एवं चरागाहें थीं जहाँ पशु छक कर चरते थे। अच्छी अच्छी गोशालायें थीं। ग्वालों के गाँव के गाँव होते जो घोष

कहलाते। गायें तीन तीन बार दिन में चरने जातीं। नंद गाँव, गोकुल और बरसाना—वृन्दावन तथा मथुरा का पार्श्ववर्ती भूभाग—इस युग का सर्वोत्कृष्ट पशु-केन्द्र था। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने महाभारत मीमांसा में लिखा है :—

"महाभारत में आजकल की तरह लोगों का मुख्य धंधा खेती ही था और आजकल इस धंधे का जितना उत्कर्ष हो चुका है कम से कम उतना तो महाभारत में भी हो चुकाथा। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं, वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बड़े बड़े तालाब बनाकर लोगों को पानी देना सरकार का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि, "तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलम्बित नहीं है न ? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानों पर तालाब बनाये हैं न ?" यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुये खेतों की फसल विशेष महत्व की होती थी। उस जमाने में ऊख, नील और अन्य वनस्पतियों के रंगों की पैदावार भी सींचे हुये खेतों में की जाती थी। उस समय बड़े बड़े वृक्षों के बगीचों, खास कर आम्र बगीचों के लगाने की विशेष प्रवृत्ति थी। पाँच वर्ष में ही आम लग जाने की कला ज्ञात थी क्योंकि एक स्थान पर द्रोण-पर्व में आया है—"फल लगे हुये ५ वर्ष के आम के बगीचों को जैसे भग्न करें।" यह स्वाभाविक है कि महाभारत में खेती के सम्बन्ध में थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। किसानों को सरकार की ओर से बीज मिलता था और चार महीने की जीविका के लिये अनाज मिलता था, जिसे उसकी आवश्यकता होती। किसानों को जो ऋण सरकार अथवा साहूकार से मिलता, उसका ब्याज १% से ज्यादा न होता। खेती के बाद महत्व का दूसरा धंधा गोरक्षा का था।"

मनु के द्वारा रचित **'मनुस्मृति'** प्राचीन भारत के नियमों का आदर्श-ग्रंथ है। इसमें विभिन्न जातियों के कर्मों एवं किसानों के कर्त्तव्यों का उल्लेख है। 'मनुस्मृति' का रचनाकाल २०० ई० पू० से २०० ई० के बीच माना जाता है। उसमें आये निम्न प्रसंग भारतीय कृषि से परिचित कराने के लिये पर्याप्त होंगे—

"इस संसार में एक ही ऋतु में, एक ही भूखंड में किसानों द्वारा बोये गये बीज अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल विभिन्न रूपों में उगते हैं।"

"ब्रीहि, मुद्ग, माष, यव तथा गन्ना बीजों के ही अनुरूप पैदा किये जाते हैं।"

"कृषि के यन्त्रों की चोरी, औषधियन्त्रों अथवा शस्त्रों की चोरी करने पर काल एवं उपयोगिता का विचार करते हुये राजा दण्ड का निर्णय करेगा।"

"जनता कृषि कर्म को अच्छा समझती हैं; किन्तु अधिकारी लोग इसे घृणा कि दृष्टि से देखते हैं; लोहे का फाल धरती एवं धरती के प्राणियों को हानि पहुँचाता है"

"किसान को मिट्टी की अच्छाई-बुराई के साथ बीजों के बोने का ढंग ज्ञात होना चाहिये, उसे सभी प्रकार के बाँटों एवं भारों से परिचित होना चाहिये।"

अमरू कृत **अमर कोष** (१०० ई० पू०) के भूमिवर्ग, वनौषधिवर्ग तथा वैश्यवर्ग अध्यायों के पर्यवेक्षण से भी मिट्टियों के वर्गीकरण, कृषि यन्त्रों आदि के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती हैं। किन्तु याद रहे पाणिनिकृत अष्टाध्यायी की ही परम्परा में बाद की रचना होने के कारण उसके आधार पर हम कोई मौलिक तथ्य नहीं निकाल पाते। ब्रीहि के योग्य खेत को ब्रीहीव, शालि योग्य खेत को शालेय, यव योग्य खेत को यव्यम यवक्यम आदि तथा दो बार जोती गई भूमि को द्विगुणीकृतम्, बीज बोने के बाद जोती गई भूमि को बीजकृतम्...आदि अथवा फावडा के लिये खनित्र आदि के प्रयोग कोई नवीन प्रयोग नहीं, पिष्ट-पेषण मात्र हैं। हाँ, हम यह कह सकते हैं कि अरम कोष निर्माण के काल तक इन शब्दों से उन्हीं भावों का वहन होता था।

भारतीय प्राचीन साहित्य में **पुराणों** का विस्तार बहुत बड़ा है। पुरानी कथाओं के इन संग्रहों की संख्या बहुत बड़ी है। इनके रचना काल के विषय में मतभेद हैं। कुछ हिन्दू इन्हें अत्यन्त प्राचीन मानते हैं जब कि पाश्चात्य विद्वान इन्हें संस्कृत साहित्य की अन्तिम कड़ी

मानते हैं। महाभारत की रचना के पूर्व भी पुराणों की स्थिति थी। कहा जाता है कि **विष्णु पुराण** मौर्यवंश (३२६-१८५ ई० पू०) का प्रामाणिक प्रतीक है और **मत्स्य पुराण** आंध्रवंश (२२५ ई०) का, जब कि **वायु पुराण** में गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त प्रथम (३२०-३३० ई०) का वर्णन है। किन्तु सभी साक्ष्यों के आधार पर पुराणों का काल ७०० ई० तक है जब कि इनकी सम्भावित उत्पत्ति ३०० ई० पू० के लगभग हो सकती है।

मत्स्य पुराण में एक जगह मकान बनाने एवं खेती करने योग्य भूमियों अथवा मिट्टियों की परीक्षा का उल्लेख निम्न प्रकार है :

"यदि भूमि में खोदे गये गड्ढे की मिट्टी गड्ढे के भरने से अधिक हो जाती है तो वैसी पर भूमि बनाये गये प्रसादों में धन एवं वैभव प्राप्त होगा, यदि न्यून पड़े तो हानि और यदि समान हो तो सामान्य परिणाम निकलेगा। दूसरी परीक्षा है मिट्टी को जोतकर किसी बीज के बोकर देखने का। यदि बीज उगकर तीन, पाँच अथवा सात दिन में बड़ा हो जाय तो उस भूमि को श्रेष्ट मानना चाहिये; यदि अंकुये छोटे रहें तो भूमि को उपेक्षा करनी चाहिये और यदि अंकुये कुछ ऊँचे हों तो भूमि को सामान्य समझना चाहिये।"

मार्कण्डेय पुराण में एक प्रसंग में कहा गया है, "मेरी माता ने आज्ञा दी है कि तुम पशुओं का पालन करो, फिर भी मुझे पृथ्वी की रक्षा करनी है, जब वह मनुष्यों द्वारा सन्तुलित है।"

विष्णु पुराण में लिखा है कि तब मनुष्यों ने शारीरिक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन प्रारम्भ किया और १७ प्रकार के उपयोगी अन्न उगाये, जो घरेलू कामों के लिये थे। किन्तु १४ प्रकार के अन्न हैं जिन्हें बलि प्रदान करते समय प्रयोग में लाया जाता था।

गुप्तकाल की (३२० ई०-६५० ई०) साहित्यिक उन्नति का पता पतंजलि, वररुचि, वैतालभट्ट, क्षपणक, अमरसिंह, कालिदास आदि के ग्रंथो के माध्यम से चलता है किन्तु कोई ऐसा ग्रंथ इस काल का नहीं जो कृषि के विषय में विशद जानकारी प्रस्तुत कर सके। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के ही समकालीन कालिदास ने अपनी कृतियों में ऐसे उल्लेख किये हैं जिनके माध्यम से ज्ञात होता है कि अन्न से भरे खेतों में कृषक बालायें आनन्द विभोर गातीं (रघुवंश) और लोगों के पास करोड़ों गायें होतीं (रघुवंश)।

गुप्तकाल का अन्तिम राजा हर्षवर्धन हुआ। उसके पश्चात् भारत में यवनो के आक्रमण पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेश से प्रारम्भ हो गये। कृषि और व्यापार ने निश्चित रूप से गुप्तकाल में वैभव के दिन देखे थे तभी तो इस युग को "स्वर्णिम युग" कहा गया है और भारत को "सोने की चिड़िया" की संज्ञा प्रदान की गई है। इस काल में भारत के लोग बाहर गये और वहाँ खेती की नींव डाली। सिंचाई के लिये कुओं, नहरों तालाबों एवं गड्ढों के प्रयोग हुये। जल संचय के लिये बड़े-बड़े तालाब "निपान" हुआ करते और जब ऐसे कार्यों से लागत का दूना लाभ न होने लगता तो राजा कोई कर न लेता था। **शुक्रनीति सार** में लिखा है, "राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावें। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड़ की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी बरते। राजा उस कोयले वाले की तरह न बरते जो कोयला लेने के लिये पेड़ को जला डालता है।"

गुप्त साम्राज्य के अन्तिम राजा हर्ष के काल में (६०६-६४७ ई०) चीनी यात्री **ह्युयेनसाँग** (६२० ई०) लिखता है कि मथुरा से १०० मील पश्चिम पार्यात्र नामक स्थान में साठ दिन में पकने वाला चावल होता है। लोगों का साधारण भोजन घी-दूध, मक्खन, मलाई, खाँड, मिश्री, रोटियाँ, तेल आदि था।

फिर गजवनी का आक्रमण हुआ। एक के पश्चात् एक—आक्रमणों का ताँता लग गया। राजनैतिक परिस्थितियों के बदलने के कारण मुगलों के आक्रमण के पूर्व तक के काल में कृषि-व्यवस्था को गहरा धक्का लगा। हजारों वर्ष से चली आने वाली कृषि परम्परा का विनाश हो गया।

लौकिक परम्परा के **अनुसार समय-समय** पर कृषि पंडितों ने जन्म लिये। उन्होंने जो कुछ उपदेश दिये, वे सूक्तियों, मुहावरों एवं कहावतों के रूप में आज भी

प्रचलित हैं। उनकी प्रामाणिकता पर पहली दृष्टि में भले ही संदेह हो किन्तु उनमें निहित तथ्यों एवं जानकारियों से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। ऐसे ही प्रसंग में हम **खना देवी** तथा **पराशर मुनि** के नाम ले सकते हैं। उन्हीं की कोटि में आगे चलकर कृषिपंडित **घाघ और भड्डरी** के नाम आदर के साथ उच्चरित होते हैं।

क्या आप जानते हैं?

◆ भिलाई के निर्माण स्थल की सारी खुदी हुई मिट्टी हटाने के लिए २२ टन माल ढोने लायक ३,४०,००० रेलवे वैगनों की ज़रूरत पड़ेगी। अगर इन डिब्बों को एक गाड़ी में जोड़ा जाय, तो ट्रेन की लम्बाई बम्बई से कलकत्ते तक की होगी।

◆ भिलाई के लोहे और इस्पात के कारखाने में बिजली के विभिन्न प्रकार के ५००० मोटर लगाये जायँगे।

◆ भिलाई के कारखाने को प्रतिदिन ५१०० टन कोयला, ५३०० टन खनिज लोहा, २४०० टन चूना और विद्रव पदार्थ तथा ५५० टन अन्य माल-मसाला मिलेगा।

◆ भिलाई का लोहे और इस्पात का कारखाना प्रतिवर्ष ७,७७,००० टन पिण्ड धातु तैयार करेगा। इससे इतना निर्माण हो सकता है :

१,१०,००० इंजन या

५१,३०००बीस टन वाले रेलवे डिब्बे, या

७७,००० ट्रैक्टर।

◆ भिलाई का लोहे और इस्पात का कारखाना साल में जितनी पटरियाँ बनायेगा, वे ६२५ मीलमें रेल लाइन बनाने के लिए काफी होंगी।

◆ इस समय भिलाई के कारखाने के निर्माण में २६००० लोग लगे हुए हैं। जब कारखाना चालू हो जायगा, तब ७३०० लोगों को रोज़गार मिलेगा। इनमें ६२५ इंजिनियर और प्रविधिज्ञ, ५,६३५ दक्ष मज़दूर, ३१६ आफिस कर्मचारी और १२४ छोटे प्रबन्ध-विभागी कर्मचारी होंगे।

◆ भिलाई के कारखाने के लिए सोवियत संघ जो साज-सामान देगा, वह १,००,००० टन होगा। उसमें ये चीज़ें रहेंगी: ब्लूमिंग मिल, कांण्टिनुअस बिलेट मिल, रेल एण्ड स्ट्रक्चुरल स्टील मिल, प्रोफाइल्ड आइरन मिल, शक्तिशाली टावर और ब्रिजक्रेन जिनकी उठाने की शक्ति क्रमशः १२५, ७५, ५० और ३० टन होगी और स्टीमब्बायलर तथा रिक्युपरेटिव ब्वायलर।

इन चीज़ों के अलावा निर्माणस्थल को १,२०,००० टन ऐसा मसाला मिलेगा जो आसानी से आग में नहीं गलता, इस्पात और कच्चे लोहे के १८,००० टन नल तथा धातु के ७३,००० टन ढाँचे भी मिलेंगे। इस साज-सामान का काफी भाग कारखाने के निर्माण स्थल में पहुँच चुका है।

पचास वर्षों में किये चिकित्सा सम्बन्धी कुछ उल्लेखनीय अनुसन्धान

(हौवर्ड ए० रस्क, एम० डी०)

अमेरिका के उच्च कोटि के २० चिकित्सा-वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों ने मार्च के १९५७ के प्रारम्भ में, न्यूयार्क यूनिवर्सिटी-बेलव्यू मैडिकल सेन्टर के यूनिवर्सिटी-अस्तपाल की हीरक-जयन्ती के अवसर पर पिछले ५० वर्षों के चिकित्सा-अनुसन्धानों की एक सूची तैयार की थी। उस सम्मेलन का विषय मानव जाति की आशा— स्वास्थ्य एवं शान्ति था।

चार भागों में से प्रथम भाग में प्रौढ़ व्यक्तियों में पाये जाने वाले पुराने रोगों के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया था और बतलाया गया था हमने क्या जानकारी प्राप्त की है, क्या नयी जानकारी है और निकट भविष्य में हम कितनी जानकारी हासिल करने की आशा करते हैं? यद्यपि इस समय अमेरिका में चिकित्सा के क्षेत्र में पुराने रोगों की समस्या सब से बड़ी है तथापि इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सफलताएं हासिल की जा चुकी हैं।

अनेक पुराने रोगों की चिकित्सा संभव

अब १७ पुराने रोगों की रोक थाम की जा सकती है। इनमें प्राचीन काल की चिकित्सा सम्बन्धी प्रमुख समस्याएं भी हैं जैसे मधुमेह, घातक रक्ताल्पता, उपदंश और मलेरिया। अन्य ३० पुराने रोगों जैसे क्षय, जन्मजात हृदय रोग, सन्धिवात ज्वर आदि की आंशिक रूप में रोक थाम की जा सकती है। आशा है कि इन घातक एवं अपंग कर देने वाले रोगों की शीघ्र रोक थाम की जा सकेगी।

दूसरे भाग में मनुष्य के घातक शत्रुओं—कैन्सर के विषाणुओं तथा जीवाणु के सम्बन्ध में विचार किया गया है। कुछ प्रश्नों के आशाप्रद उत्तर दिये गये हैं और कुछ प्रश्न अभी तक अनसुलझे ही हैं।

१९१८ में समस्त संसार में २ करोड़ व्यक्ति इन्फ्लुएन्जा से मरे थे। प्रत्येक व्यक्ति वर्ष में ४ से ६ बार विषाणुओं के कारण बीमार पड़ता है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयु का १० प्रतिशत भाग विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले उन रोगों से पीड़ित होकर बिताता है जो मनुष्यों को अक्सर हो जाते हैं। किन्तु चेचक, पीतज्वर, पागल कुत्ते का काटना, इन्फ्लुएन्जा और शिशु-पक्षाघात इन ५ रोगों की रोकथाम की जा सकती है। विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले किसी भी रोग का कोई निश्चित उपचार नहीं है। कीटाणुनाशक औषधियों का प्रभाव स्थायी और सुनिश्चित नहीं होता।

फिर भी नये एवं आशाप्रद औपचारिक साधन मालूम किये गये हैं और अब वे परीक्षण के तौर पर प्रयोग में लाये जा रहे हैं। पशुओं के सम्बन्ध में किये अनुसन्धानों से पता चलता है कि कुछ विशेष मिश्रण, जिनमें राइबो न्यूक्लाइक एसिड शामिल है, जीव कोष के भीतर विषाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं और इस प्रकार रोक का खात्मा कर देते हैं। इसलिए सावधान वैज्ञानिक अब भविष्यवाणी कर रहे हैं कि विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोगों की रोकथाम की जा सकती है और निकट भविष्य में उनकी चिकित्सा और उपचार होने लगेगा।

इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चिकित्सा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण प्रगतियाँ वे की गई हैं जो रोगाणुनाशक औषधियों तथा रासायनिक द्रव्यों की सहायता से उन रोगों पर विजय के रूप में प्राप्त की गई हैं जो रोगाणुओं के कारण उत्पन्न होते हैं। निमोनिया, उपदंश, क्षय, मस्तिष्क की नाड़ियों की सूजन तथा विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले अन्य बहुत से अब तक असाध्य समझे जाने वाले रोग वैज्ञानिक उपचारों से ठीक हो जाते हैं।

कैन्सर के विषाणुओं का विश्लेषण

कैन्सर के विषाणुओं का विश्लेषण करने के लिए एक नये यन्त्र का विकास किया जा रहा है। इसका प्रयोग करके १॥ सैकिंड में १० हजार जीव-कोषों की जाँच की जा सकती है। यदि जीव-कोष की घनता अथवा

आकार में परिवर्तन हो जाता है तो यन्त्र द्वारा इसका पता चल जाता है और तब निदान-शास्त्री अन्तिम निदानों का निश्चय कर सकते हैं।

इस प्रकार १॥ सैकिण्ड में एक यन्त्र अब वह कार्य कर सकता है जिसे करने के लिए प्रशिक्षित वैज्ञानिकों को कई घंटों तक कठोर परिश्रम करके जाँच-पड़ताल करनी पड़ती थी, इस नई मशीन के कारण अब विस्तृत पैमाने पर कैन्सर का पता लगाने के कार्यक्रम को कार्यान्वित करना सम्भव हो गया है।

आइसोटोपों, विषाणुओं तथा रासायनिक द्रव्यों के सम्बन्ध में जो अनुसंधान जारी हैं उनके फलस्वरूप अन्धकार के परदे के भेद कर ज्ञान के प्रकाश की प्रखर किरणें निकल रही हैं। प्रयोगशालाओं से जीव-कोषों के विकास आदि के लिए नये-नये साधन उपलब्ध हुए हैं। हम जानते हैं कि २८ रासायनिक तत्त्व (जिनमें १३ ऐमिनो तेजाब तथा ८ विटामिन हैं) जीव-कोषों की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि यह कार्य सूक्ष्म कोषों तथा जीव-कोषों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसे जीवित कोषों के सभी भागों के सम्बन्ध में किया जा सकता है। ऐसा ज्ञान कैन्सर के विरुद्ध किये जा रहे संघर्ष के लिए मूल-रूप से उपयोगी है।

आशा है कि निकट भविष्य में रक्तचाप और वृक्ककोप (गुरदे की सूजन) की बीमारियों का इलाज भी निकल आयेगा। यह भविष्यवाणी "चिकित्सा-अनुसन्धान का भविष्य" विषयक विभाग के चिकित्सा-वैज्ञानिकों ने की है।

चिकित्सा-क्षेत्र में क्या-क्या सफलताएं प्राप्त की गई हैं, नये ज्ञान के सम्बन्ध में कौन-कौन सी बाधाएं उपस्थित हैं और कौन सी बाधाएं भविष्य में उपस्थित हो सकती हैं, इस सम्बन्ध में उक्त वैज्ञानिकों ने अपने पर्यवेक्षण में यह भविष्यवाणी की है कि निकट में हृदय, रक्तवाहिनी धमनियाँ तथा रक्त-प्रवाह सम्बन्धी घातक रोगों के उपचार के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण उन्नति की जायेगी।

पशुओं में नई प्रक्रियाओं का प्रयोग

पशुओं के सम्बन्ध में नई-नई प्रक्रियाओं का विकास किया गया है। किसी भ्रूण में पशु के जीवकोषों का पैबन्द लगाया जा सकता है। इसी तरह किसी पशु पर दूसरे पशु की त्वचा जोड़ी जा सकती है। उदाहरण के तौर पर, काली चुहिया की सफेद चमड़ी की जा सकती है अथवा सफेद चूहों के काले पंख किये जा सकते हैं।

अब केवल एक व्यक्ति की अपनी ही त्वचा लेकर अथवा उसके भाई-बहन की त्वचा लेकर त्वचा में पैबन्द लगाया जा सकता है। दूसरे व्यक्ति से काटी हुई त्वचा पैबन्द लग जाने के बाद एक सप्ताह अथवा १० दिन तक जीवित रहती है। अनुसन्धान विषयक इस नई जानकारी से, हम यह पता लगा सकेंगे कि ऐसा क्यों होता है और आशा है कि इस समस्या का हल भी मालूम किया जा सकेगा। ऐसा करके, हम किसी जीवित व्यक्ति की त्वचा काट कर दूसरे रोगी की त्वचा में पैबन्द लगाने में सफल हो सकेंगे।

चिकित्सा-क्षेत्र में किये गये अनुसन्धानों से जो सफलताएं प्राप्त की गई हैं उन्हें तेजी के साथ चिकित्सा-कार्य एवं रोगियों की देखभाल के कार्य में प्रयुक्त करने में भी बड़ी प्रगति हो रही है। अमेरिका के लगभग ७ हजार अस्पतालों में रोगियों के लिए १५ लाख से अधिक रोगी-शय्याओं की व्यवस्था है और वर्ष में २ करोड़ १० लाख से अधिक रोगियों को अस्पतालों में भरती किया जाता है। यहाँ प्रयोगशालाओं में प्राप्त की गई सफलताओं को कार्य रूप में परिणत करके रोगियों के कष्टों को दूर किया जाता है।

अमेरिका में जन स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों ने इस कुटिल चक्र को किसी सीमा तक समाप्त कर दिया है कि निर्धनता से रोगों की उत्पत्ति होती है और उसके बदले में रोग निर्धनता को जन्म देते हैं। आज अमेरिका के लोग स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं के लिए टैक्निकल सहायता देकर इस दुःखदायी चक्र को समाप्त करने में संसार के नये विकासोन्मुख देशों को सहायता प्रदान करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

परमात्मा और विज्ञान दोनों की आवश्यकता

चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धान तथा स्वास्थ्य-सेवाओं की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करते समय इन वैज्ञानिकों ने यह अनुभव किया कि विज्ञान ने बड़ी प्रगति कर ली है और इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। वे अपने एक साथी "क्लीवलैण्ड क्लिनिक फाउण्डेशन" के डा० इरविन एच० पेज से पूर्णतया सहमत हैं कि यदि हमें अपनी लक्ष्य-सिद्धि करनी है तो विज्ञान को परमात्मा तथा मनुष्यों, दोनों की आवश्यकता है। इसी प्रकार, संसार के लोगों को शान्ति की स्थापना के लिए परमात्मा तथा विज्ञान, दोनों, की ही आवश्यकता है।

रुड़की में सिंचाई सम्बन्धी मूल अनुसंधान

रुड़की में उत्तर प्रदेश की सिंचाई गवेषणाशाला में आजकल दूसरी पंचवर्षीय आयोजनाओं से सम्बन्धित लगभग ३० समस्याओं पर खोज चल रही है। कुछ समस्याएं हैं: पानी की नालियाँ और रजबहे आदि बनाने, मिट्टी की विशेषताओं का पता लगाने, जलाशयों में मिट्टी जमने की और जमीन के नीचे सोतों के बहाव तथा पानी रोकने के पुश्तों में पत्थर की जगह अन्य किसी चीज का प्रयोग ढूंढने की। दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में इस तरह की गवेषणा की व्यवस्था है।

सन् १९५५ में उत्तर प्रदेश सरकार ने इस अनुसंधानशाला का पुनर्गठन किया। अब इसमें जल-विज्ञान, जल-प्रवाह विज्ञान, मिट्टी की जाँच, जमीन के सोतों की जानकारी, डिजाइन और प्रशासन के अलग-अलग विभाग हैं।

जल-प्रवाह सम्बन्धी गवेषणा

बहादराबाद (उत्तर प्रदेश) की जल-प्रवाह अनुसंधानशाला का क्षेत्र ३० एकड़ और बढ़ाया जा रहा है, क्योंकि यहाँ जल-प्रवाह की नित नयी समस्यायें अन्वेषण के लिए आती रहती है। नया क्षेत्र पथरी के बिजली घर वाली नयी नहर और पुरानी नाव-नहर के बीच में हैं। यहाँ के नदियों और नहरों आदि के माडलों में पानी पहुँचाने के लिए प्रति सेकिंड २०० घनफुट प्रवाह की एक नहर निकाली जाएगी। आजकल इस क्षेत्र को समतल किया जा रहा है।

पहली आयोजना के दिनों में भी अनुसंधानशाला ने सिंचाई की बहुत सी समस्याओं के बारे में सलाह दी। सलाह लेने वाले थे, सरकार, रेल विभाग और निजी संगठन।

इस समय यह अनुसंधानशाला गंगा की धारा को कानपुर के बिलजी घर के पास ले जाने, यमुना की धारा को वृन्दावन के घाटों तट पहुँचाने और मिर्जापुर शहर को और अनूपशहर के घाटों को गंगा से बचाने की समस्याओं को हल करने में संलग्न है।

करीब ४० साल से यमुना-वृंदावन के घाटों से दूर चली गयी है और वहीं बह रही है। करीब दो महीने हुए प्रयोगशाला ने धारा को वापस लाने के लिए घाटों का नमूना तैयार किया है।

तीन दिशाओं में पानी के दबाव की समस्या

प्रयोगशाला के भूगर्भ पानी विभाग में बाँध और पुश्तों आदि की बनावट के बारे में गहन अध्ययन हो रहा है, क्योंकि इनकी नींव के नीचे के सोते किस तरह बहते हैं, इस पर इनकी बनावट बहुत कुछ निर्भर है। बाँधों पर लम्बाई, ऊंचाई और और मोटाई, तीनों दिशाओं में पानी का दबाव पड़ता है। यहाँ नहर प्रणाली और बाँधों आदि पर पानी का दबाव कम करने के लिए पानी निकलने के रास्तों का उचित डिजाइन तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है।

रासायनिक गवेषणा

यहाँ रासायनिक प्रयोगशाला में १९४० से, जब से यह बनी है, मिट्टी के गुण-दोषों, मिट्टी के विद्युत-रासायनिक प्रयोग, मिट्टी में अलमुनियम के संचार, नहर की तलैटी पर रासायनिक पदार्थों के प्रयोग, सोडियम के गुणों, चूने और उद्जनयुक्त मिट्टी आदि के बारे में मौलिक खोज होती रही है। इसके अलावा यहाँ ऊसर जमीन की मिट्टी, कंकरीट और चूने सुर्खी के मसालों, देश के भिन्न-भि भागों की मिट्टी, भिन्न-भिन्न नदियों और सोतों के पानी आदि की रासायनिक परीक्षा की जाती है। इसी प्रकार और भी कई तरह की समस्याओं का यहाँ अध्ययन होता है और उनका हल खोजने की कोशिश की जाती है।

प्रमुख भौतिक-शास्त्रियों द्वारा नए पाठ्यक्रम का विकास

[मैरी हैण्डी]

अमेरिकी हाई स्कूलों में प्रमुख भौतिकशास्त्रियों के सहयोग से भौतिक विज्ञान के अध्यापक इस विषय की शिक्षा सम्बन्ध में जो प्रगति कर रहे हैं, उस की रिपोर्ट यहाँ दी जा रही है। राष्ट्रीय विज्ञान-प्रतिष्ठान से अनुदान प्राप्त कर नवम्बर, १९५६ में उन्होंने इस सम्बन्ध में पुनर्विचार प्रारम्भ किया था कि भौतिक विज्ञानों की हाई स्कूल में किस प्रकार शिक्षा दी जाए। भौतिक विज्ञान की शिक्षा की दृष्टि से अनेक पीढ़ियों में, यहाँ तक कि इस समस्त शताब्दी में, ऐसी प्रगति कभी नहीं हुई।

इस कार्य के लिए जो अध्ययन-समिति बनाई गई है, उस के अध्यक्ष मैसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट औव् टैक्नोलौजी के भौतिकशास्त्र के अध्यापक डा० जैरल्ड जकारियाज हैं। कार्यकारिणी समिति में दो नोबेल पुरस्कार विजेताओं डा० आई० आई० रबी और डा० एडवर्ड परसल के अतिरिक्त अनेक प्रमुख वैज्ञानिक तथा भौतिक-विज्ञान के अध्यापक शामिल हैं।

प्रमुख वैज्ञानिकों का निर्णय

इन प्रमुख वैज्ञानिकों ने मिल कर यह निर्णय किया है कि हाई स्कूलों में भौतिक-विज्ञान की आदर्श शिक्षा देने के लिए आज सर्वप्रथम एक ऐसी नई पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता है, जिसमें आधुनिक भौतिक-विज्ञान के मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डाल गया हो। इस के बाद, वर्ष भर में दिखलाने के लिए ऐसी ७० फिल्में होनी चाहिएं, जिनमें सूर्य के ग्रहणों से लेकर आणविक क्रिया तक की सभी बातें दिखाई गई हों।

साथ ही उन्होंने यह निर्णय किया कि शिक्षकों के लिए ऐसी निर्देश पुस्तक की आवश्यकता है जिसमें कक्षा में प्रदर्शन करने के लिए नई किस्म के यन्त्र बनाने की विधियाँ मौजूद हों। ये सभी प्रदर्शन ऐसे होने चाहिएं, जिन्हें शीशे के मर्तबानों, धागों तथा बैटरियों की सहायता से करना सम्भव हो। यदि सम्भव हो तो इन वस्तुओं का मूल्य एक डालर से अधिक न हो। इस के अलावा ऐसे थैले भी होने चाहिएं, जिनमें परीक्षाणों सम्बन्धी सामग्री हो, जिससे छोटे विद्यार्थी घर पर कार्य कर सकें। ऐसी प्रकाशन-सामग्री तथा पत्र-पत्रिकाओं का एक छोटा सा संग्रह भी होना चाहिए, जिसमें रेडियो-सक्रियता से ले कर आइन्स्टाइन की जीवनी तक की सभी बातें मौजूद हों और जिसे विद्यार्थी खरीद सकें या उधार घर ले जा सकें तथा इस पर ७५ सेन्ट से अधिक खर्च न आए।

लक्ष्यों की दिशा में प्रगति

इन लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में कुछ प्रगति भी की जा चुकी है। मैसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट औव् टैक्नोलौजी के एक कक्षा में लगभग १०० भौतिक-विज्ञानशास्त्री, हाई स्कूलों के शिक्षक, कालेजों के विद्यार्थी तथा कुशल फिल्म-निर्माता परीक्षणों एवं विचारों में इस समय तल्लीन हैं।

१९५७ की पतझड़ ऋतु से कुछ हाई स्कूलों में बिल्कुल ही नए ढंग से भौतिक विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है। अगली ग्रीष्म ऋतु में समस्त अमेरिका में कम से कम ४ ग्रीष्मकालिक संस्थानों में हाई स्कूलों में भौतिक विज्ञान की शिक्षा देने वाले अध्यापकों को यह बतलाया जाएगा कि वे अपने पाठ्यक्रमों को उन्नत बनाने के लिए किस प्रकार इन सब वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं।

लोगों का विश्वास है कि यह ऐसा पहला अवसर है जब भौतिक-विज्ञानशास्त्री एवं भौतिक-विज्ञान के शिक्षक आपसी विचार-विनिमय से कोई ठोस कार्य करने तथा हाई स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले भौतिक-विज्ञान के पाठ्यक्रम में जीवन डालने तथा उसे आधुनिक रूप प्रदान करने के लिए, इतनी भारी संख्या में एकत्र हुए हैं। डा० जकारियाज का कथन है कि भौतिक-विज्ञान के कथनानुसार प्रत्येक वस्तु कणों से बनी हुई है। वे वस्तुएं सूर्य तथा नक्षत्रों के समान बड़ी भी हो सकती हैं; तुम्हारे

अथवा मेरे अथवा बेसबाल खेलने की गेंदों के समान मध्यम आकार की भी हो सकती हैं; अथवा वे अणुओं, इलैक्ट्रोनों के समान बहुत छोटी और अदृश्य भी हो सकती हैं। ये कण दूसरे कणों को अपनी ओर खींच भी सकते हैं अथवा दूसरे कणों द्वारा खींचे भी जा सकते हैं। हम यह कह कर खिंचने अथवा खींचने की बात का स्पष्टीकरण करते हैं कि कणों के मध्य आकर्षण के नियम मौजूद हैं।

तीन प्रकार की शक्तियां तथा तरंगशक्ति

हमारे ज्ञान के अनुसार तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। एक गुरुत्वाकर्षण-शक्ति, दूसरी विद्युत्शक्ति और इस में चुम्बकीय शक्ति भी शामिल है। तीसरे, वे आणविक शक्तियाँ जो आणविक कणों के केन्द्र में पाई जाती हैं।

इन शक्तियों के प्रभाव से कणों में हरकत पैदा हो सकती है। वायु तथा रगड़ आदि शक्तियाँ इन्हीं तीनों शक्तियों में सम्मिलित हैं, जो वस्तुएं बहुत अधिक लम्बी अथवा बहुत अधिक छोटी नहीं, बहुत निकट अथवा बहुत दूर नहीं तथा बहुत कम गति वाली अथवा बहुत गति वाली नहीं, उन पर गति का सामान्य सिद्धान्त लागू होता है। यह सिद्धान्त न्यूटन के गति सम्बन्धी सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु यह सिद्धान्त केवल अनुमान मात्र ही है। गति का वास्तविक सिद्धान्त १९२६ में मालूम किया गया था। यह सिद्धान्त यह है कि अन्तरिक्ष, नक्षत्रों, सूर्य, तुम्हारे एवं मेरे शरीर अथवा बेसबाल खेलने की गेंदों तथा अणुओं एवं इलैक्ट्रोनों में प्रत्येक कण तरंग-गति सिद्धान्त के अनुसार हरकत करता है।

तरंग-गति सिद्धान्त की शिक्षा

यही कारण है कि आज कुछ हाई स्कूलों में तरंग-गति सिद्धान्त के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाने लगी है। यह एक ऐसा मूल सिद्धान्त है, जिस पर नया पाठ्यक्रम आधारित होगा।

डा० जकारियाज ने बताया कि फ्राइडमैन और मैंने निश्चय किया है कि हम उस समय तक नए पाठ्यक्रम की शिक्षा नहीं दे सकते, जब तक कक्षा में इस से पूर्व तरंग-गति का प्रदर्शन करने की विधि न खोज ली जाए। खिड़की के चौखटे, कागज के बने दूध के डिब्बों, बैटरियों, कुछ तारों तथा कागज के एक बड़े टुकड़ा से एक तालाब तैयार किया गया। ऐसा तालाब विद्यार्थी किसी भी कक्षा में तैयार कर सकते हैं। ऐसे तालाब की सतह पर रखे गए कागज से वे उठने वाली तरंगों के अनन्त प्रभाव को देख सकते हैं।

प्रदर्शन सम्बन्धी अनेक विधियों के बारे में परीक्षण

यह प्रदर्शन सम्बन्धी उन अनेक विधियों में से एक है, जिन के बारे में भौतिक-शास्त्री एवं विज्ञान के शिक्षक परीक्षण कर रहे हैं। भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले डा० एडवर्ड पर्सल ने एक दूसरी विधि निकाली है, जिस में पानी-पीने की नलकियों, चाबी के गुच्छों, धागों, दो मेखों और एक लम्बी छड़ी से तरंग-गति का प्रदर्शन किया जा सकता है।

डा० फ्राइड मैन तथा डा० जकारियाज को जो विधि सब से अधिक पसन्द आई है, वह शीशे की एक बोतल और कुछ तारों से शक्तिशाली रिक्तता पैदा करने का तरीका है। इन समस्त वस्तुओं पर एक डालर से भी कम लागत आती है। डा० जकारियाज का कथन है कि शिक्षा सम्बन्धी यन्त्रों के बारे में यह एक वास्तविक सफलता है। आपने इस के साथ ही एक स्पष्टीकरण भी किया है, जिसने भौतिक विज्ञान को आकर्षक एवं स्पष्ट कर दिया है। आपके कथनानुसार दो प्रकार का भौतिक-विज्ञान है—अणुओं के विस्तृत संग्रह का भौतिक विज्ञान तथा अलग-अलग अणुओं तथा उनका निर्माण करने वाले तत्त्वों का भौतिक-विज्ञान।

शून्यक नलिका का महत्त्व

१९ वीं सदी के अन्त में हवा निकालने वाले पम्प की खोज से अणुओं को मिलाना तथा पृथक करना तथा छोटे-छोटे पदार्थों के सम्बन्ध में पृथक् रूप में कार्य करना सम्भव हो गया। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि हम विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देने में असमर्थ रहे हैं, जिस के द्वारा वे स्वयं अपने हाथ से कार्य कर इस शून्यक विधि के बारे में अनुभव प्राप्त कर सकें।

अब इस सस्ती शून्यक नली के सहारे विद्यार्थी स्वयं परीक्षण कर के अनुभव प्राप्त कर सकेंगे। यह शून्यक नली किसी भी स्कूल में तैयार की जा सकती है। इस यन्त्र के सहारे कई छात्र एक साथ मिल कर इलैक्ट्रोनों तथा अणुओं के गुणों से स्वयं परिचित हो सकेंगे। परीक्षणों के कार्य में इस्तेमाल करने के लिए इसे और अधिक उन्नत बनाया जा सकता है, जिससे कि आँखों से अणु-संग्रह का स्वरूप देखा जा सके।

१०० स्त्री-पुरुष प्रयत्नशील

ये बातें उन थोड़े से विचारों की प्रतीक हैं, जिनके सम्बन्ध में भौतिक-विज्ञान की शिक्षा में सुधार करने के इच्छुक लगभग १०० पुरुष एवं स्त्रियाँ प्रयत्नशील हैं। कैम्ब्रिज (मैसाचूसेट्स) के ब्राउन एण्ड निकोलस स्कूल के प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी विभाग के अध्यक्ष श्री जौन वाल्टर्स का कथन है: "यह कार्यक्रम जितना अच्छा प्रतीत होता है यदि उस से आधा अच्छा सिद्ध हुआ, तो इससे भौतिक-विज्ञान की शिक्षा को काफी प्रोत्साहन मिल सकेगा।"

लेखिका, एवं प्रसिद्ध वैज्ञानिक एनरिको फेर्मी की पत्नी लौरा फेर्मी पाठ्य-पुस्तक के सम्बन्ध में सामग्री जुटा रही हैं। आप का कथन है कि "इस से पूर्व हाई स्कूलों में भौतिक-विज्ञान की शिक्षा असम्बद्ध तरीके से दी जाती थी। विज्ञान की आत्मा के बजाय परिणामों की तथा विधियों के स्थान पर तथ्यों की शिक्षा दी जाती थी। हमारा उद्देश्य विज्ञान को संस्कृति के एक अंग के रूप में प्रदर्शित करना है।"

कुछ भी सही, ये पुरुष तथा स्त्रियाँ भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में किए गए अनुसन्धानों की उत्तेजना और कुतूहल छात्रों तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह पूछे जाने पर कि यदि आप को भौतिक विज्ञान को छोड़ देने के लिए १ लाख डालर दे दिए जाएं, तो क्या ऐसा कर सकेंगे ? डाक्टर जकारियाज ने उत्तर में कहा—"मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ ? मैं तो यह रकम भौतिक विज्ञान पर ही खर्च करना पसन्द करूंगा"

समिति द्वारा तैयार फिल्में

एक सैकिंड के अरबवें भाग तक को मापने के वर्तमान तरीकों का उल्लेख करने वाली एक फिल्म के शुरू में कहा गया है: "१० वर्ष में अथवा उस से कुछ अधिक समय में हम अपने मापने के तरीकों को और अधिक उन्नत बना लेंगे।" और अन्त में वह फिल्म सीधे अपने युवक दर्शकों से कहती है: "और जब हम "हम" कहते हैं, हमारा अभिप्राय आप लोगों से है।" इस प्रकार की कुछ फिल्में समिति अब तक तैयार कर चुकी है।

प्राचीन भारत में भूमि का वर्गीकरण

[डा० एस० पी० रायचौधरी, डी० एस-सी०, अध्यक्ष, कृषिरसायन एवं मृत्तिका विज्ञान विभाग,
भारतीय-कृषि अनुसन्धान विद्यालय, नयी दिल्ली]
[अनुवादक—डा० शिवगोपाल मिश्र]

आर्थिक महत्व की दृष्टि से, पौदों की उत्पत्ति की अनुकूलता के अनुसार भूमि के समुदायों का निर्माण ही भूमि वर्गीकरण है। आधुनिक मृत्तिका सर्वेक्षण एवं मृत्तिका वर्गीकरण का उपयोगी उद्देश्य है मिट्टी में निहित निधियों एवं उनके उचित प्रयोगों की शाश्वतशीलता का एक मूल्यांकन। प्रायोगिक नियोजन की दृष्टि से किये गए भूमि वर्गीकरण का आधुनिक स्वरूप, उत्पादन की किस्में, प्रयोग एवं सेवा के निर्धारण में बताया जाता है जो उस भूमि में आश्रित मनुष्यों को अधिकतम सामाजिक एवं आर्थिक लाभों के रूप में प्राप्त होंगे। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली वर्तमान असाधारण उन्नतियों को समक्ष देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि प्राचीन काल की सभ्यता की ओर मुड़ कर देखा जाय। प्राचीन भारत में लोगों का मुख्य उद्यम ही कृषि था। अतः स्वाभाविक है कि उनके मृत्तिका एवं भूमि-सम्बन्धी ज्ञान की छानबीन की जाय और यह देखा जाय कि उन्होंने इस ज्ञान का उपयोग अपने हित के लिए, २५०० ई० पू० से ६०० ई० तक के काल में किस प्रकार किया।

प्राचीन भारत के कृषक धनी एवं समादरित वर्ग के पुरुष होते, जिन्हें अपनी भूमि एवं उसके उचित प्रयोग, ऋतुओं एवं कृषि के उचित काल, बीजों का चुनाव एवं उपचार, फसलों की उत्पत्ति के लिये खादो के प्रयोग, हेर फेर; फसलों के रोगों, उनकी रोकथाम एवं उनसे सुरक्षा आदि का पूरा पूरा ज्ञान होता था। यदि कोई **अर्थशास्त्र, वृहत संहिता, कृषि पाराशर** (१३०० ई० पू०), **वेद** (२५००-५००ई० पू०) **तथा पुराणों** (७०० ई०) आदि प्राचीन ग्रंथों में बीजों के चुनाव एवं उपचार और पशुओं के गोबर-मूत्र, मछलियों तथा अस्थियों, मांस तथा मछली के धोवन तथा विविध प्रकार के मिश्रणों के खादों के उपयोगों से सम्बन्धित उद्धरण देखे तो उसे आश्चर्य के अनुभव के साथ ही साथ उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी करनी पड़ेगी।

भूमि एवं उसके उचित उपयोग कृषि के महत्वपूर्ण अंग हैं और प्राचीन भारत के कृषक मिट्टी के स्वभाव एवं उसके किसी विशिष्ट आर्थिक महत्व की फसल उत्पादन करने के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रति यथेष्ट जागरूक थे। अनुभव से अर्जित अथाह ज्ञान ने परम्परा का रूप धारण कर लिया है। वह पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता चला आ रहा है, यद्यपि उसका अधिकांश या तो विस्मृत हो चुका है या भूत की कथा मात्र रह गया है। ये शिक्षायें बड़ी ही योग्यता से चरवाहों के गीतों, उपाख्यानों, कहावतों आदि के सांचों में इस प्रकार ढाल दी गई हैं जिससे किसी न किसी रूप में वे किसानों की मार्ग-दर्शिका के समान हैं। किसी विशिष्ट फसल के लिये उसके उपयुक्त मिट्टी की अभिरुचि जानने के लिये किसानों को भली भाँति प्रशिक्षित किया जाता।

इस लेख में, प्राचीन काल में, फसलों की उपयुक्तता के अनुसार भूमि के विभाजन का वर्णन दिया जाएगा।

उर्वरता के अनुसार मिट्टी को दो वर्गों में विभाजित किया जाता—**उर्वर एवं अनुर्वर**। उर्वर मृत्तिका को फसलों के अनुसार पुनः उपश्रेणियों में विभाजित किया जाता; उदारहणार्थ याव्य (यव उत्पन्न करने वाली) व्रीहि (धान उत्पन्न करने वाली), तैल्य (तिल पैदा करने वाली) आदि। इसी प्रकार अनुर्वर मृत्तिका को भी **ऊषर** (लवणयुत) एवं **मरु** (वालुकायुक्त) में बाँट दिया गया था।

जिन मिट्टियों को नदी से सींचा जाता उन्हें **नदी मातृका** कहते और जिन्हें वर्षा के जल से सींचा जाता उन्हें **दैव मातृका** कहा जाता।

यद्यपि विभिन्न प्रकार की मिट्टियों की यथार्थ रचना ज्ञात न थी किन्तु खनादेवी की कहावतों से, जिन्हें यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, यह स्पष्ट है कि किसानों ने उनके विषय में बड़े बड़े निरीक्षण किये और अनुभवों द्वारा विभिन्न फसलों के लिये मिट्टियों की उपयुक्तता के विषय में प्रचुर ज्ञान संग्रह किया।

"अउस धान की खेती के लिये बलुही मिट्टी एवं जूट के लिये चिकनी मिट्टी उपयुक्त होती है।"

"यदि बलुही, नदी द्वारा लाई गई मिट्टी में पत्तल की खेती की गई तो आशाओं की पूर्ति सम्भव है।"

"यदि नदी के किनारे (आरम) वृक्ष विशेष बोया गया तो तीन हाथ ऊँचा उगेगा।"

अर्थशास्त्र (३०० ई० पू०) में हमें एक स्थल पर विभिन्न भूमियों की विभिन्न फसलों की उपयुक्तता का वर्णन मिलता है।

"वे भूमियाँ जो फेन द्वारा प्रताडित होती रहती हैं—यथा नदियों के तट इत्यादि—कद्दू, कोंहडा आदि उगाने के लिये उपयुक्त हैं; वे भूमियाँ जो बहुत दिनों तक जलमग्न रहती हैं, मिर्च, अंगूर, और गन्ने के लिये उपयुक्त हैं; नीची भूमि (झीलादि) हरित शस्यों के योग्य होती हैं और फसल की किन्हीं दो पंक्तियों के बीच के कुंडों में सुगंधित पौदों, औषधियों, खस-जड़ों तथा अन्य इसी प्रकार की चीजों को लगाया जा सकता है।"

मिट्टी एवं जलवायु के अनुसार **चरक** ने भूमि को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। (१) जंगल (२) अनूप (३) साधारण।

जंगल का शाब्दिक अर्थ है शुष्क स्थान। जहाँ अत्यधिक घने बन हों, कुंज हों और पुष्प वाले वृक्ष एवं नम्र लतिकायें हों वे अनूप क्षेत्र कहे जाते थे। यहाँ की भूमि हिंताल, तमाल और नारियल के घने जंगलों से आच्छादित होती। अनूप का शाब्दिक अर्थ दलदल अथवा पंकिल है। जिस क्षेत्र में लतायें एवं वृक्ष दोनों साथ साथ उगते साधारण कहलाता।

कौटिल्य ने अपने **अर्थशास्त्र** में क्षेत्रों की वर्षा की मात्रा का उल्लेख भी किया है। जंगल में १६ द्रोण एवं अनूप में २४ द्रोण की मात्रा में वर्षा होती। साधारण क्षेत्रों की वर्षा के विषय में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता।

कश्यप मुनि ने विशिष्ट फसलों की अनुकूलता के अनुसार पृथ्वी को पहाड़ी, नद-सिञ्चित, बन एवं गोचर भूमियों में विभाजित किया। कृषि योग्य खेती के निर्वाचन के सम्बन्ध में उनके निम्न उल्लेख विचारणीय हैं:—

"भूमि को स्वच्छ अस्थि एवं प्रस्तर खन्डों, छिलकों एवं जंगली घासों से रहित होनी चाहिये और उसकी मिट्टी को नर्म, वलिष्ट, संशक्ति शील और नर्म, कुछ-कुछ लाल और गहरे रङ्ग की होना चाहिये। इसे समतल, गड्ढों रँध्रों या ढूहों से रहित होनी चाहिये तथा मिट्टी से मनमोहक सुगंध आनी चाहिये।

इसे न तो जल से बोझिल और शतत जलमग्न ही रहनी चाहिये। इसे बीजों के अंकुरित होने के लिये स्वास्थ्यप्रद और जोतने में सुविधाजनक होनी चाहिये। इसे बैलों के अधकुचरे चारे से ढका जा सके और इसमें उपयोगी प्राणियों एवं कीटाणुओं का बाहुल्य हो। इसे ठस, भार में गुरु और वनस्पतियों के विकास के लिये वर्धक और शुष्क गोबर (करिषा) तथा झाड़ियों से मुक्त होना चाहिये।

भूमि पाँच प्रकार की होती है—"ब्राह्मण भूमि, क्षत्रिय भूमि, वैश्य भूमि, शूद्र भूमि और मिश्रगुणों वाली भूमि।"

दुग्ध एवं उसके परीक्षण

लेखक—मदनगोपाल मिश्र, विद्यार्थी, नेशनल दुग्धशाला गवेषणालय, बंगलोर

दूध एक पूर्ण भोजन है, साथ ही पूर्ण रूप से पाचक भी। दूध में वे सभी पदार्थ उपस्थित होते हैं जो कि प्राणिमात्र के शरीर को सुदृढ़ एवं सबल बनाये रखने में सहायक होते हैं, क्योंकि दूध पूर्ण रूप से सन्तुलित भोजन है जिसमें व्यर्थ पदार्थ अनुपस्थित होते हैं और केवल विटामिन, खनिज पदार्थ तथा अन्य शक्तिदायक पदार्थ वर्तमान होते हैं। यदि दुग्ध सरलता से उपलब्ध होता रहे तो वह अन्य सभी भोज्य पदार्थों की अपेक्षा सस्ता रहेगा।

विभिन्न देशों में दुग्ध को कई प्रकार से भोजन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। भारतवर्ष में तो दूध मुख्य भोजन के रूप में पेय की ही भाँति प्रयुक्त होता है, साथ ही खोया के रूप में भी, जो कि दूध को गरम करने से उसका जल वाष्प में बदलने पर प्राप्त होता है। घी विश्वभर में भारत ही में प्राचीनतम विधि से बनाया जाता है और उसका उत्पादन भारत ही में सर्वाधिक है। दूध ही से दही, मक्खन, खीर और छेना की मिठाइयाँ बनाकर प्रयोग में लाया जाता है। अन्य देशों में दूध को पनीर (चीज) के रूप खाते हैं। गाय के शुद्ध दूध में पदार्थों की निम्न मात्रा होती है :—

जल ८६%, बसा (चरबी) ४.८%, प्रोटीन ३.५%, लैक्टोज ४.८%, राख (खनिज पदार्थ) ०.७%, वसा रहित ठोस पदार्थ ६.५४%, कुल ठोस पदार्थ १४.६१%।

भारतवर्ष में दुग्ध तो प्रत्येक स्थान पर होता है, परन्तु इतनी मात्रा में नहीं हो पाता जिससे कि यहाँ की जनता को अन्य देशों की बराबर मात्रा में वह मिल सके। यहाँ की गायें अधिक मात्रा में दूध नहीं देती हैं तथा अधिक गर्मी पड़ने के कारण शीघ्र ही सूख जाती हैं। दूसरी बात यह भी है कि गायों एवं अन्य दूध देने वाले पशुओं की भोजन व्यवस्था बहुत ही खराब है।

जहाँ कहीं कुछ दुग्धशालाएँ खुल गई हैं वहाँ पर देखा जा रहा है कि सिंधी, शाहिवाल, थरपारकर तथा क्रास-ब्रीड़ गायें औसतन १० पौंड दूध देती हैं, जबकि अन्य गायें १ से ४ पौंड तक दूध देती हैं। फिर भी भारत में अभी दुग्ध उत्पादन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा। यहाँ की जनता को अन्य देशों की तुलना में नहीं के बराबर प्रतिदिन दूध मिलता है। भारत के विभिन्न प्रान्तों की दुग्ध उत्पादन मात्रा निम्न प्रकार है :—आंध्र प्रदेश में ८.६% अथवा ४०८६७ मन, आसाम में ०.७% अथवा ३३४१ मन, बिहार में ६.६% अथवा ४४६२ मन, बम्बई में १०.४% अथवा ४६६४५ मन, जम्मू और काश्मीर में ०.७% अथवा ३४८७ मन, केरल में १.०१% अथवा ४६४० मन, मैसूर में ३.८% अथवा १७६४६ मन, उड़ीसा में २.१% अथवा १०००२ मन, पञ्जाब में १२.८% अथवा ६१०४६ मन, राजस्थान में ८.४% अथवा ४००४६ मन, उत्तर प्रदेश में २५% अथवा १५२२१५ मन तथा पश्चिमी बंगाल में ४% अथवा १६३०३ मन।

उपरोक्त आंकड़ो से अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतवर्ष में कुछ प्रान्तों में इतना कम दूध होता है कि वहाँ के कुछ प्राणियों को जीवनपर्यन्त भी दूध नहीं मिल पाता होगा। यदि पूर्ण विश्व के दूध की पैदावार देखी जाय, तो भारतवर्ष कतिपय देशों को छोड़कर अन्य सभी देशों से निचली श्रेणी में आता है। यहाँ के हर मनुष्य को प्रतिदिन औसतन केवल ५.५ औंस दूध मिल पाता है जब कि अन्य देशों में यही औसत मात्रा निम्न प्रकार है :—

स्विटज़रलैंड—२८.२ औंस, स्वीडेन—२७ औंस, न्यूजीलैंड—२२.५ औंस, फ्रांस—१३ औंस, हालैंड—१८.५ औंस, डेनमार्क—१७.५ औंस, जर्मनी—१४ औंस, इंगलैंड—१८ औंस, यूनाइटेड स्टेट्स—२२.३ औंस, कनाडा—२१ औंस, आस्ट्रेलिया—१६ औंस, इटली—८.८ औंस, फिलीपाइन—०.१ औंस, जापान—०.५ औंस, सीलोन (लङ्का)—१.७ औंस, बर्मा—१.०६ औंस, इन्डोनेशिया—०.३ औंस, मिस्र—२.२ औंस, इराक—०.३ औंस।

दूध की मात्रा के साथ उससे उचित शक्ति की प्राप्ति

के लिए आवश्यक है कि वह शुद्ध रूप में मिले और उपयोग में लाया जावे। दूध की इस प्रकार की शुद्धता की जाँच करने के लिए नाना प्रकार की विधियाँ काम में लायी जाती हैं। साधारणतया वह दूध जो दुग्धशालाओं से आम जनता को प्राप्त होता है कुछ बातों में शुद्ध हो सकता है, परन्तु उसमें भी जल, मखनिया दूध एवं पुराने दूध के मिले रहने की संभावना रहती है। वे दुग्धशालायें जिनमें देहातों से लाकर दूध एकत्र किया जाता है, और उसे पैस्चराइज करके बाजार में भेजा जाता है दुग्ध परीक्षण के लिये निम्न प्रयोग काम में लाती हैं :—

१—स्वाद एवं महक : शुद्ध वातावरण में निकाले हुए दूध का स्वाद मीठा होता है और उससे हल्की सी महक आती है, परन्तु कुछ समय बाद महक समाप्त हो जाती है। दूध का स्वाद एवं महक गाय को दिये गये भोजन एवं उसके रहन-सहन के कारण भी बदलते रहते हैं।

२—रंग : गाय का शुद्ध दूध हल्की पीतिमायुक्त श्वेत रंग का होता है, जो वसा और केसिन (मलाई की पपड़ी) की उपस्थिति के कारण होता है। दूध का रंग गायों की नस्ल और भोजन के कारण भी बदलता रहता है। भारत की अधिकतर गायें हल्की पीतिमा लिए हुए श्वेत रंग का ही दूध देती हैं।

३—आपेक्षिक घनत्व : दूध का आपेक्षिक घनत्व (आ० घ०) १.०३२ है अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि एक ही आयतन वाले दूध का भार पानी की अपेक्षा १.०३२ गुना भारी है अथवा १ घ. से. मी. दूध का भार १.०३२ ग्राम है, जबकि इतने ही पानी का भार १ ग्राम होता है। यदि दूध का आ० घ० १.०२ से कम हो तो उस दूध में पानी की मिलावट की सम्भावना होती है। दूध के अवयवों के पृथक-पृथक आपेक्षिक घनत्व निम्न प्रकार होते हैं :—

वसा (चर्बी)—०.७३, एलबुमिन और ग्लाबुलीन—१.३४६, कैसिन १.३१०, लैक्टोज—१.६६६, और खनिज ४.२१०।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि वसा का आपेक्षिक घनत्व १ से कम है अतः वह पानी के आ० घ० से सदैव कम होता है, जब कि अन्य अवयवों का आ० घ० सदैव अधिक होता है। इस प्रकार पानी के मिलाने से दूध के आ० घ० के कम होने की सदैव सम्भावना रहती है। परन्तु केवल दूध के आ० घ० से मिलावट का पूरा-पूरा पता नहीं चल पाता है। आ० घ० ज्ञात करने के लिए प्रायः लैक्टोमीटर नामक यंत्र का प्रयोग किया जाता है जो कि एक विशेष प्रकार के हाइड्रोमीटर की आकृति का होता है तथा जिसके सिरे में १५ से ४० तक निशान बने होते हैं। ये दूध के आ० घ० को बताने में सहायक होते हैं। दूध का आ० घ० ६०° फा० ताप पर १.०१५ से १.०४० तक हो सकता है। इसीलिए लैक्टोमीटर के साथ एक तापमापक यंत्र भी लगा रहता है जो कि उस समय पर लिये गये लैक्टोमीटर-पठ्यांक के साथ ही ताप भी बताता है। चूँकि सभी लैक्टोमीटर ६०° फा० पर ही ठीक किये जाते हैं, इस लिए अलग-अलग तापों पर लिये गये लैक्टोमीटर-पठ्यांकों से शुद्धि-गणक का प्रयोग करते हुये आ० घ० मालूम किया जा सकता है।

४—कथनाङ्क तथा हिमाङ्क: दूध के उबलने का तापक्रम २११° फा० से २१४° फा० और हिमांक ३१° फा० होता है। हिमांक के निश्चयन के द्वारा दूध में मिलाये गये पानी की ठीक-ठीक मात्रा ज्ञात की जा सकती है। पानी के मिलावट से हिमांक बढ़ जाता है।

५—वसा का परीक्षण: यदि उपरोक्त विधियों के द्वारा हमें मिलावट का ठीक-ठीक पता नहीं चल पाता तो अन्त में एक ऐसा परीक्षण किया जाता है जिसे वसा परीक्षण कहते हैं। इसमें वसा की दूध में उपस्थित ज्ञात की जाती है। वसा परीक्षण के लिए डा० गरबर के द्वारा बनाये गये—गरबर सेन्ट्रीफ्यूज का प्रयोग होता है। इस प्रयोग की विशेष प्रकार की शीशियाँ होती है जिनको ब्यूटिरोमापक कहते हैं। इनके गोलाकार भाग में एक मुख होता है जिस पर काग लगी होती है। गोले के ऊपर ग्रीवा होती है जिसमें ०—१० तक निशान बने होते हैं। इस ब्यूटिरो-मापक में पहले १० घ० से० मी० सान्द्र-गन्धकाम्ल लिया जाता है, जिसका आ० घ० १.८२३ हो। इसके पश्चात् ११ घ० से० मी० दूध लिया जाता है, तथा अंत में १ घ० से० मी० एमाइल एल-

कोहल डाल दिया जाता है जिसका आ० घ० ०·८१५ होता है। अन्त में रबड़ की काग लगा दी जाती है तथा ब्यूटिरो-मापक को भलीभाँति हिला कर गरबर सेन्ट्रीफ्यूज में रख दिया जाता है, तथा बिजली की मोटर द्वारा ४ मिनट तक घुमाया जाता है। दूध की वसा के अतिरिक्त सभी अवयवों का दहन हो जाता है तथा वसा ग्रीवा पर आ जाती है जिसकी सतह को पढ़ लिया जाता है। वही वसा की प्रतिशतता को बताता है। शुद्ध दूध में वसा का प्रतिशतत्त्व ४·६ से ७·१ तक होता है। विदेशों के दूध में यह प्रतिशत ३ से ५ तक होता है, जब कि भारत के दुग्ध में यह सब से अधिक—५ प्रतिशत से ऊपर देखा गया है।

६—दुग्ध-अम्लता का परिमापनः दूध की अम्लता लैक्टिकाम्ल के रूप में ज्ञात की जाती है। प्रायः देखा गया है कि यह अम्लता लैक्टिकाम्ल के रूप में औसतन ०·१२ से ०·१६% तक होती है। यह अम्लता दूध को अधिक देर तक रखने मात्र से बढ़ती जाती है यहाँ तक कि २४ घंटे में यह ०·२६% हो जाती है। यदि इस समय दूध को गरम किया जाय तो वह जम जाता है। अतः दूध की अम्लता ज्ञात करके हम यह कह सकते हैं कि वह कितना पुराना है और उपयोग के योग्य है अथवा नहीं।

अम्लता को ज्ञात करने के लिए १० घ० से० मी० दूध को न/६ कास्टिक सोडा विलेय से उदासीन करते हैं और फेनापथेलीन को सूचक के रूप में प्रयोग में लाते हैं। अन्तिम बिन्दु लाल रंग के उत्पन्न होने से सूचित हो जाता है। जितने घ० सें० मी० कास्टिक सोडा विलेय का खर्च होता है उसके शतांश प्रतिशत उस दूध की अम्लता होती है।

७—दूध की जैवाणिक गणनाः दूध में लैक्टिक अम्ल जीवाणुओं की उपस्थिति को ज्ञात करने में मुख्य दो विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं:—

(१) एगर प्लेट गणना।

(२) अणुवीक्षणीय गणना।

एगर प्लेट विधि—दूध की एक घ० से० मी० को १००, १०००, १०००० बार तनु किया जाता है (जिन्हें हम एक दो तथा तीन तनु भी कह सकते हैं)। यह तनुता आसुतजल के द्वारा की जाती है तथा इसमें किसी भी तनुता के एक घ० से० मी० दूध को प्लेट में डालकर उसके ऊपर कमरे के तापक्रम का एगर माध्यम (जिसके कारण लैक्टिकाम्ल जीवाणु जीवित रहते हुए भी पुनः बढ़ नहीं सकते) डाल कर प्लेट को ३०° श० के ताप पर रख दिया जाता है। ४८ घंटे के पश्चात् प्लेट में लैक्टिक-अम्ल जीवाणुओं के समूह की गणना की जाती है। यदि इस संख्या को दूध को तनुता द्वारा गुणा किया जाय तो १ घ० से० मी० दूध के नमूने में उपस्थित लैक्टिकाम्ल जीवाणुओं की संख्या ज्ञात हो जाती है। ये लैक्टिकाम्ल जीवाणु दूध में रह कर उसे अन्य दुग्ध पदार्थों, जैसे दही, मक्खन, चीज़ में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार की अम्लता इन्हीं जीवाणुओं के द्वारा बढ़ती है, जो यह सूचित करती है कि दूध अमुक समय के पश्चात् खट्टा हो जायेगा। इस गणना द्वारा दूध की अम्लता का अनुमान हो जाता है। १ घ० से० मी० शुद्ध दूध में ५००,००० जीवाणु होते हैं।

अणुवीक्षणीय गणना—इस विधि में अनुवीक्षण यंत्र के द्वारा लैक्टिकाम्ल जीवाणुओं की गणना की जाती है। दूध की ०·०१ घ० से० मी० मात्रा को १ वर्ग से० मी० क्षेत्रफल पर एक शीशे की चकती के ऊपर फैला दिया जाता है और जब दूध शुष्क हो जाता है तब वसा को हटा दिया जाता है। तथा इसके पश्चात् उसे रंजित करके अणुवीक्षण यंत्र में परीक्षण किया जाता है। दृश्य-क्षेत्र के अन्तर्गत उपस्थित लैक्टिकाम्ल जीवाणु-समूहों की संख्या को क्षेत्रफल से गुणा करने पर ०·०१ घ० से० मी० में उपस्थिति जीवाणुओं की संख्या ज्ञात हो जाती है जिससे १ घ० से० मी० दूध में उपस्थित जीवाणुओं की संख्या ज्ञात की जा सकती है।

राष्ट्रीय धातुविज्ञान प्रयोगशाला

प्रगति के सात वर्ष

ठीक सात वर्ष पहले आज के दिन प्रधानमंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू ने जमशेदपुर में राष्ट्रीय धातुविज्ञान प्रयोगशाला का उद्घाटन किया।

खनिज सम्पत्ति से समृद्ध देश के पूर्वी क्षेत्र में जो तीन प्रयोगशालायें खोली गई हैं, प्रस्तुत प्रयोगशाला उनमें से एक है। इस पर ५० लाख रुपये खर्च आया। इस क्षेत्र की अन्य दो प्रयोगशालायें, केन्द्रीय ईंधन गवेषणाशाला, जीलगोड़ा, बिहार में और केन्द्रीय काँच एवं चीनी मिट्टी गवेषणाशाला कलकत्ता में है।

देश में खनिज भण्डार भरपूर है, परन्तु उनमें से अधिकतर खनिज घटिया किस्म के होने के कारण बेकार जाते हैं। इनका उचित उपयोग करने तथा इनसे नये-नये मिश्र धातु बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ उद्योगों में आवश्यक अनेक मिश्रधातु आयात किये जाते हैं, जिसमें विदेशी मुद्रा खर्च होती है। खनिज धातुओं की सफाई, उनको जंग लगने से बचाने के उपाय और इस्पात तथा अन्य धातु उद्योगों के लिये बुनियादी तापसह धातुओं का उत्पादन आदि अनेक समस्याएं हमारे सामने हैं। इनका हल निकालने के लिये इस प्रयोगशाला ने गवेषणाकार्य किया है। इसका कार्य व्यावहारिक ढङ्ग का है और देश को धातुओं और मिश्रधातुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने के लिये दूसरी पंचवर्षीय आयोजना के लक्ष्यों से संबन्धित है

कच्चे खनिजों की सफाई

इस प्रयोगशाला ने कच्चे खनिजों की सफाई के संबन्ध में भी गवेषणा की। इसके अलावा, देशभर में मिलने वाला कच्चा मैंगनीज़, कच्चा क्रोमाइट (मैसूर, उड़ीसा बिहार), देश भर में मिलने वाला ग्रेफाइट, कच्चा लोहा, वोलफ्रेम (राजस्थान). कैसेटेराइट (बिहार), पायराइट और गंधक (मैसूर, बम्बई और बिहार) वरमिक्युलाइट (मैसूर और प० बंगाल), क्यानाइट (मैसूर), खड़िया (राजस्थान), और कोलार की खानों में से निकलने वाले सोने के सम्बन्ध में जाँच की।

प्रयोगशाला ने अणुशक्ति विभाग के लिये युरेनियम मिश्रित कच्चे खनिजों पर भी गवेषणा की।

मैंगनीज के उत्पादन में संसार में भारत का स्थान दूसरा है। यहाँ हर साल लगभग २० लाख टन मैंगनीज निकाला जाता है, जिसमें से अधिकांश निर्यात होता है। इसके अलावा बहुत सा घटिया किस्म का मैंगनीज भी निकलता है। सफाई के विभिन्न तरीकों से इसकी किस्म सुधारने के लिये सफल प्रयोग किये गये हैं।

इस्पात के नये कारखाने

इस प्रयोगशाला में इस्पात के सम्बन्ध में बहुत महत्त्व पूर्ण कार्य किया गया है। यूरोप में 'एल०डी० प्रोसेस' नामक तरीके से इस्पात बनाया जाता है। राउरकेला में जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से जो इस्पात कारखाना खोला जा रहा है, उसमें इसी तरीके से इस्पात बनाया जाएगा। इस सम्बन्ध में प्रयोगशाला ने जो गवेषणाकार्य किया है, उससे लाभ उठाया जाएगा। देश में पत्थर के बढ़िया कोयले का भण्डार सीमित है। इसलिए यदि घटिया किस्म के कोयले की सफाई करके उसे इस्पात बनाने के काम में लाया गया तो अधिक लाभ होगा। इस सम्बन्ध में गवेषणा जारी है।

मानव-निर्मित धातु

रेल के कुछ हिस्से और सूक्ष्म यन्त्र बनाने के लिये इस्पात में बिजली से तैयार मैंगनीज धातु मिलाया जाता है। आजकल यह धातु डालर क्षेत्र से आयात होता है। घटिया किस्म के मैंगनीज से धातु यहीं तैयार करने के लिए सफल प्रयोग किए गए हैं।

इसके अलावा बिजली से तैयार मैंगनीज डाइआक्साइड बनाने का तरीका भी प्रयोगशाला ने ढूँढ़ निकाला है। इस समय लगभग ८० लाख रु० मूल्य का ५,५०० टन

बिजली से तैयार मैंगनीज डाईआक्साइड आयात किया जाता है और वह बैटरियाँ बनाने, शीशे का रङ्ग काटने चीनी मिट्टी के रङ्गीन वर्तन तथा अन्य रासायनिक पदार्थ बनाने के काम आता है।

जस्त और निकेल धातु विदेशों से मंगाने पड़ते हैं। प्रयोगशाला ने यहाँ मिलने वाली धातुओं से इनके बजाय काम में आने वाली धातु बनाने का तरीका निकाला है।

मोटर गाड़ियाँ तथा हवाई जहाज बनाने के लिये अलुमिनियम —सिलिकिन धातुओं का मिश्रण आवश्यक है। प्रयोगशाला ने यह मिश्रधातु यहीं बनाने के लिये गवेषणा की है।

तापसह — पदार्थ

इस्पात उद्योग में काम में आने वाले तापसह-पदार्थों के निर्माण के लिये प्रयोगशाला ने सफल अनुसन्धान किए हैं।

धातु और मिश्र धातु पिघलाने के लिये ७०० टन कार्बन और चीनी मिट्टी से पुते ग्रेफाइट के पात्र यू० के० या जर्मनी से मंगाये जाते हैं। अब यहाँ एक ऐसा कारखाना खोला जाएगा, जिसमें प्रयोगशाला के तरीके से ये पात्र बनाये जाएंगे। ढलाई उद्योग के लिए भी प्रयोगशाला ने आवश्यक अनुसन्धान कार्य किया है।

धातु उद्योग की सहायता

विभिन्न धातु उद्योगों को प्रयोगशाला के कार्यों की जानकारी देने के उद्देश्य से धातुविज्ञान तथा सम्बन्धित विषयों पर गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं। अभी तक इस प्रकार की छः गोष्ठियाँ हो चुकी हैं और सातवीं गोष्ठी आगामी फरवरी में होने वाली है। इसके अलावा प्रयोगशाला ने अगस्त, १९५७ तक अपने गवेषणाकार्यों के बारे में १६४ प्रकाशन निकाले हैं।

संसार में सब से अधिक ऊँचाई पर स्थित राजधानी, बोलीविया की राजधानी लापाज (La Paz) है। यह एक सुरक्षित घाटी में ११,८०० फीट की ऊँचाई पर स्थित है।

अवकाश यात्रा का प्रारम्भ

(अकादेमीशियन वी० अबत्सुयनि)

विज्ञान के इतिहास में अनेकों बार वैज्ञानिकों की पूरी की पूरी टोली के अथक परिश्रम और गहन अध्ययन के परिणामों—महती खोजों अथवा अन्वेषणों—ने और ज्यादा वैज्ञानिक प्रगति में क्रांति ला दी है। लेकिन फिर भी हमारे लिये कोई ऐसा पुराना उदाहरण देना मुश्किल हो जाता है कि जब एक ही प्रयोग—ठीक है कि वह वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, टेकनीशियनों तथा औद्योगिक मजदूरों के एक बड़े समूह के सतत उद्योग का फल और जबरदस्त वैज्ञानिक तथा प्राविधिक (टेकनीकल) प्रगति का प्रतिबिम्ब था—न केवल विज्ञान, बल्कि समस्त मानव संस्कृति तथा इंजीनियरी के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात कर दे। लेकिन गत ४ अक्तूबर १९५७ को, जब इतिहास में पहली बार धरती के चारों ओर घूमने वाला एक नया ज्योतिर्पिंड, उसका पहला कृत्रिम उपग्रह अन्तःग्रह यात्रा का आरम्भ करने के लिये छोड़ा गया तो ऐसा ही हुआ।

मनुष्य निर्मित भू-उपग्रह के छोड़े जाने का प्रविधि तथा इंजीनियरी के लिये महत्त्व अपरिमित है। इस प्रगति का अर्थ अंतरिक्ष वेगों तक, जो गुरुत्त्वाकर्षण को जीत सकते हैं, पहुँच जाना है। इस प्रकार ईंधन के बिना वायु विहीन अवकाश में मुक्त उड़ान सम्भव हो जाती है।

कृत्रिम उपग्रह और अधिक वैज्ञानिक प्रगति के लिये खासकर महत्त्वपूर्ण है।

उपग्रह पार्थिव गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र के भीतर चलता है। यह क्षेत्र खुद पृथ्वी के भीतर तथा उसकी बाहरी परत में संहतियों के वितरण द्वारा निर्धारित किया जाता है। उपग्रह की गति का अध्ययन करके हम पार्थिव गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र के बारे में अपने ज्ञान को कहीं अधिक सही बना सकते हैं और इससे पृथ्वी की संरचनिक बनावट के बारे में दिलचस्प निष्कर्ष निकाल सकते हैं। ठीक है कि पृथ्वी की एक प्राकृतिक चन्द्र द्वारा परिक्रमा की जाती है, लेकिन उसकी गतियों के अध्ययन से पार्थिव गुरुत्वाकर्षण के केवल उन्हीं क्षेत्रों के बारे में, जो पृथ्वी से अपेक्षाकृत काफी दूरी पर है, जानकारी मिलती है, क्योंकि पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच कोई ३,८०,००० किलोमीटर (२,३७,-५०० मील) का फासला है। इतने अधिक फासलों पर पार्थिव गुरुत्त्वाकर्षण का क्षेत्र स्वयं पृथ्वी के भीतर संहतियों के वितरण पर बहुत कम निर्भर करता है। अतः चन्द्रमा की गतियों के अध्ययन से इस बारे में एकदम नगण्य सी जानकारी ही मिल सकती है। इसके विपरीत पृथ्वी से कोई १००० किलोमीटर (लगभग ६२५ मील) के अन्तर पर घूमते उपग्रह हमें इस बारे में कहीं अधिक सुविधाएं प्रदान करते हैं।

कई सहस्र किलोमीटरों की ऊँचाई पर वायुमण्डल अत्यधिक विरल है। फिर भी हवा कुछ तो प्रतिरोध और उपग्रह की गतियों को प्रभावित करेगी ही, इसलिये इन गतियों का अध्ययन करके हम अपने वायुमण्डल के सबसे ऊँचे स्तरों के बारे में अपने ज्ञान भन्डार में अभिवृद्धि कर सकेंगे।

उपरोक्त कार्य उपग्रह में उपकरणों के सर्वथा अभाव में भी सिद्ध किये जा सकते हैं, क्योंकि इस मामले में हमें केवल उपग्रह के बदलते स्थानों को यथार्थतापूर्वक निर्द्धारित करने की जरूरत है और यह तो बिना कहे ही स्पष्ट है कि उपग्रह का धरती की ओर रेडियों संकेतों का संचरण उपरकर उपग्रह का स्थान-निर्धारण बहुत सरल कर देता है।

उपग्रह को ऐसे उपयुक्त वैज्ञानिक उपकरणों से जो माप परिणामों को स्वतः ही रेडियो द्वारा संचरित कर देंगे, लैस कर देने से हल हो सकने वाले प्रश्नों की व्याप्ति और भी अधिक है।

अपने चारों ओर के आकाशीय पिंडों तथा उस अन्तरिक्षीय अवकाश के अध्ययन के समय, जिसमें हमारी पृथ्वी परिभ्रमण करती है, हम, ज्योतिर्विदों, को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि हमारी बेधशालाएं तथा वैज्ञानिक केन्द्र पृथ्वी को घेरे उस सैकड़ों मील

गहरे वायु के महासागर की तली पर है। पृथ्वी के वायुमन्डल का यह महासागर सूर्य, तारों तथा अन्य आकाशीय तेज पिंडों द्वारा उत्सर्जित विद्युत चुम्बकीय दोलनों के वर्णक्रम के केवल पृथक तथा संकरे अंशों को ही अपने में से गुजरने देता है। इसलिए सदा से ही हम वायुमंडल के बाहर की एक ऐसी वेधशाला के स्वप्न देखते रहे हैं जहाँ से हम बिना किसी रुकावट के अति बैंगनी (अल्ट्रा-वायोलेट) एक्स-रे-सौर-विकिरण, कई दर्जनों या सैकड़ों मीटर तक की दीर्घ तरंग (लांग वेव) के रेडियो-उत्सर्जनों का, तथा सूर्य द्वारा, खासकर अति सक्रियता के अवसरों पर उत्सर्जित आवेशित कणों का अध्ययन कर सकें। इसके अलावा हमारे चारों ओर के बाह्य अवकाश की सुदूर नीहारिकाओं में उत्पन्न अंतरिक्ष किरणें हमारे वायुमण्डल में प्रविष्ट होने के बाद एक प्रकार के ऐसे पूरे-के-पूरे रूपांतर-क्रम से गुजरती हैं कि हमारे लिए अंतरिक्ष किरणों का उनके मूल रूप में चरित्रांकन करना कठिन हो जाता है। उपग्रह पर के उपकरणों द्वारा मूल अंतरिक्ष किरणों का अनुसन्धान हमारे लिये सम्भव हो जाएगा।

सौर-वर्णक्रम के अति बैंगनी अंश तथा सूर्य द्वारा उत्सर्जित आवेशित कणों का अनुसन्धान खासकर बड़े महत्त्व का है। ये विकिरण पृथ्वी के वायुमंडल के उच्चतर स्तरों की अवस्था पर बड़ा शक्तिशाली प्रभाव डालते हैं जिससे आयनोमंडल (आयनोस्फीअर) बनता है। वे उसके आनयीकरण को नियंत्रित करते हैं जो रेडियो तरंगों के परावर्तन तथा पथ, ध्रुव-प्रकाशों आदि के जुड़े उसके मूलगुणों को निर्धारित करता है। तथापि इन सौर-विकिरणों की तीव्रता में भारी परिवर्तन होते रहते हैं। इस कारण आयनोमंडल की अवस्था और उसके गुण भी हर समय बदलते रहते हैं। इन परिवर्तनों को नियमित करने वाले विकास के प्राकृतिक नियमों को स्पष्ट करने के लिए हमें उपरिलिखित सौर-विकिरणों के बारे में एकदम ठीक और प्रत्यक्ष दत्त (डेटा) की जरूरत पड़ती है, वायुमंडल के बाहर के प्रेक्षण द्वारा यह प्राप्त किया जा सकता है।

इसके विपरीत मनुष्य निर्मित उपग्रहों पर रेडियो प्रेषियों का लगाना हमें आयनोमंडल का प्रत्यक्ष अध्ययन भी करने देगा। ऐसा इसलिए है कि इन प्रेषियों द्वारा भेजे जाने वाले संकेतों का पृथ्वी पर बने अनेकों संग्रहण तथा उनकी तीव्रता का निर्धारण एक तरह से हमें आयनोमंडल के भीतर—उस माध्यम के भीतर जिनमें होकर गुजरते हैं —देखने में समर्थ बना देंगे।

अन्तर्ग्रही अवकाश को भरने वाले माध्यम, उल्काओं तथा अन्तर्ग्रही गैसों के बारे में हम अभी तक केवल "दूर" से ही, अर्थात् पृथ्वी पर बनी वेधशालाओं से ही, जानकारी हासिल कर सकते थे। लेकिन मनुष्य-निर्मित -उपग्रह इस माध्यम से प्रत्यक्ष संबन्ध स्थापित करता है। अतः उपग्रह को उपयुक्त यन्त्रों से सुसज्जित करके हम पहली बार अन्तर्ग्रही माध्यम से संबन्धित दत्त प्रत्यक्ष रूप से हासिल कर सकेंगे।

यह कहने की जरूरत नहीं कि इन कार्यों को पूरी तरह से करने के लिए हमें एक नहीं बल्कि अलग-अलग तथा और भी अच्छे उपकरणों तथा धरती की ओर स्वतः टेलीमीटर करने वाले वैज्ञानिक जानकारी भेजने के और भी अच्छे साधनों से लैस कई उपग्रहों की जरूरत पड़ेगी। इन उपग्रहों की सहायता से प्राप्त यह दत्त स्वयं स्वाभाविकता ही हमारे लिए कई नई समस्याएं पेश करेगा।

लेकिन यह हम आसानी से देख सकते हैं कि मनुष्य निर्मित प्रथम उपग्रह का छोड़ा जाना लाखों लोगों को केवल इसलिए खुश नहीं कर रहा है कि यह ऊपर दिये इन प्रश्नों के हल को निकट ले आया है—अपने इन अति महान और अपरिमित वैज्ञानिक महत्त्व के अलावा प्रथम कृत्रिम उपग्रह का छोड़ा जाना बाह्य अवकाश में पहला कदम होने के नाते, अवकाश यात्रा का श्रीगणेश होने के नाते और विश्व के अनन्त और अपार विस्तार की मानव द्वारा विजय के स्वप्न को पूर्ति की दिशा में पहली मंजिल होने के नाते बड़े महत्त्व का है।

हम अगले कुछ ही वर्षों के भीतर ऐसे उपग्रहों के, जो पृथ्वी के चारों ओर कई हजार किलोमीटरों की दूरी पर चक्कर काटेंगे और जो हर प्रकार के वैज्ञानिक माप के यन्त्रों से लैस होंगे, निर्माण की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

अगला कदम पार्थिव गुरुत्वाकर्षण को पारकर चन्द्रमा के निकट पहुँचने और उसके चारों ओर उड़ने वाले राकेट का निर्माण होना चाहिए। यह राकेट-चन्द्र भूमि की प्रकृतिके बारे में बड़ी जानकारी देगा और हमें चन्द्र गोलार्द्ध के उस भाग को सरंचनिक बनावट के बारे में, जिसे हम कभी नहीं देखते हैं, बतायेगा। अन्तर्ग्रही यातायात के यान इनके बाद जायेंगे।

ठीक है, इस बारे में कि मानव अवकाश यात्रा कब आरम्भ कर सकेगा, हम असहमत हो सकते हैं। लेकिन बात यह है कि आधुनिक स्वचलन तथा इलेक्ट्रोनिक गणना-यंत्रों का विकास उस स्तर तक पहुँच गया है कि जहाँ हम, सिद्धान्तः, एक ऐसे यंत्र का निर्माण कर सकते हैं जो माप लेने के अलावा, मानविक पथ-दर्शन के बिना ठीक-ठीक यह फैसला भी करले कि पूर्व मापों के परिणामों के आधार पर क्या माप लिये जाने चाहिए और किस क्रम में लिए जाने चाहिए। इस के अतिरिक्त रेडियो उपस्कर कई प्रेक्षणों तथा मापों का धरती की ओर स्वतः तथा शीघ्रयोजन (रिले) सम्भव बना देता है। सिद्धान्ततः उड़न यंत्र द्वारा देखे गये का दूरवीक्षण (टेलिविज़न) भी सम्भव है। इससे वायुमंडल के बाहर अवकाश में चक्कर काटती स्वचलित वेधशालाओं के कृत्यों को अत्यधिक बढ़ाने का अवसर उत्पन्न हो जाता है। निस्संदेह प्राविधिक प्रगति हमें बाह्य अवकाश में मानवचालित यान भेजने में समर्थ बना देगी।

संसार में सब से बड़े अण्डे शुतुर्मुर्ग के होते हैं। इनकी लम्बाई ६ से ७ इन्च और व्यास ४ के ६ इन्च तक होता है और उबालने में प्रायः ४० मिनट लगते हैं। पक्षियों में सब से छोटे अण्डे जमाइका की वरवेन चिड़िया देती है। यह लम्बाई में आधे इन्च से भी कम होता है और मोती जैसा लगता है।

सोवियत संघ में भेषज्य-उद्योग का विकास

[ए० ट्रेमोव]

सोवियत काल में भेषज्य उद्योग का प्रायः नये सिरे से निर्माण किया गया है। इस उद्योग में औषधि निर्माण के अतिरिक्त चिकित्सा तथा प्रतिषेध से सम्बन्धित सभी दूसरी सामग्रियों का उत्पादन सम्मिलित है। क्राँति के पूर्व के रूस में भेषज तैयार करने वाले कारखानों और प्रयोगशालाओं में मुख्यतया औद्भिद औषधियाँ (अर्क, टिंक्चर, मलहम, पलस्तर, घोल आदि) तथा स्वास्थ्यात्मक सामग्रियाँ और इत्र तैयार किये जाते थे। रासायनिक वस्तुओं का उत्पादन नगण्य था। घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों से औषधियों का आयात किया जाता था। ६७ प्र० श० अकार्बनीय तथा ८१%कार्बनीय औषधियाँ तथा समस्त क्षारीय एवं ग्लूकोज़-जन्य पदार्थ विदेशों से मंगाये जाते थे।

सोवियत सरकार अपने अस्तित्व के पहले वर्षों से ही अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण औषधियों के सैलेसिलिक पदार्थों, काफीन, मारफीन कोडीन तथा अन्य वस्तुओं—के उत्पादन का विस्तार करने पर पर्याप्त ध्यान देने लगी थी। यदि सन् १९२४ के उत्पादन को आधार माना जाए तो सन् १९२८ में राजकीय भैषज्य-उद्योग ने आठ गुना अधिक वज़न और छ गुना अधिक मूल्य की चिकित्सा-सामग्री तैयार की थी। आस्पिरिन, ऐट्रोपिन, पौटेशियम ब्रोमाइड, सोडियम ब्रोमाइड, हेरोईन, डियोनीन, कोडीन, कोकेन, माराफिन, सेलिसिलिक मैगनीशिया, ओसरसाल, पैन्टोपोन, पैंक्रोटिन, नोवार्सनाल तथा दूसरी औषधियों के उत्पादन की भी व्यवस्था की गयी।

सोवियत संघ में भारी एवं रासायनिक उद्योगों के आधार पर भैषज्य-उद्योग ने विशेष रूप से उन्नति की। जो उद्योग पहले से मौजूद थे उनका पुनरुद्धार किया गया और बहुत से नये-नये उद्योग खड़े किये गये। जो नये कारखाने बनाये गये, उनमें सबसे प्रमुख हैं— एक्रीकिनम तैयार करने का कारखाना, मरहम पट्टी का सामान तैयार करने का मास्को का कारखाना, क्लोरल हाइड्रेट क्लोरोफार्म, मेन्थल तथा अन्य रासायनिक पदार्थ तैयार करने का कीव का "लोमोनोसोव" नामक कारखाना, खारकोव का "क्रास्नाया ज्वेज्दा" कारखाना, जो फोटो-रसायन तथा दूसरे पदार्थ तैयार करता है, ज्यौर्जिया का काफ़ीन तैयार करने का कारखाना, कुर्स्क, वोरोनेज्द, खाबारोव्स्क के औद्भिद औषधियाँ तैयार करने वाले कारखाने, लेनिनग्राद, खारकोव तथा दूसरे नगरों के दंत-चिकित्सा सम्बन्धी सामान एवं औषधियाँ तैयार करने वाले कारखाने, आदि। देश में आयोडिन, ब्रामाइन, पारा, कैलसियम, मैगनीशियम, तथा औषधि के काम आने वाली चाँदी की रासायनिक सामग्रियों के उत्पादन की व्यवस्था की गयी है। केवल पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के काल में ही भैषज्य-उद्योग दो सौ से ऊपर रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करने लगा था। फलस्वरूप औषधियों का आयात बहुत कम हो गया।

दूसरे विश्व युद्ध से भैषज्य-उद्योग को बड़ी क्षति हुई, किन्तु उसका विकास रुका नहीं। देश के पूर्वी भागों में नये-नये भैषजि-उद्योग खोले गये। फलस्वरूप बहुत सी औषधियों का उत्पादन काफी मात्रा में बढ़ गया। पूर्ण निश्चेतन की सामग्री स्थानीय निश्चेनत की सामग्री सल्फामाइड से तैयार किये गये पदार्थ तथा रक्त की पूर्ति के लिए प्रयोग किये जाने वाले द्रव, आदि के उत्पादन का विस्तार किया गया है। गन्धक के नये-नये रसायन, तथा अनेक रोगाणुनाशी पदार्थ तैयार किये जाने लगे हैं।

रासायनिक औषधियों का उत्पादन सन् १९४२ की अपेक्षा सन् १९४५ में ही दुगुना हो गया था। सोवियत संघ के पूर्वी क्षेत्रों में तो पाँच गुना उत्पादन होने लगा था। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक (१९५०) सोवियत संघ में भेषज्य-उद्योगों की संख्या १५० तक पहुँच चुकी थी और वे ४६६ वस्तुएं तैयार करने लगे थे।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के काल में रासायनिक औषधियों के उत्पादन में १८० प्र० श० वृद्धि हुई। चिकित्सा सम्बन्धी उपकरणों और औजारों के निर्माण में १५० प्र० श०, रोगाणुनाशी दवाइयों में दसगुना तथा चिकित्सा सम्बन्धी कच्चे माल के उत्पादन में १६ गुनी वृद्धि होगयी। दवाइयों, उपकरणों और यन्त्रों का उत्पादन बहुत बढ़ गया। सोवियत उद्योग अब ६५ नयी दवाइयों और३१० नये उपकरणों और यन्त्रों का निर्माण करने लगाहै।

छठी पंचवर्षीय योजना के काल में (१९५६-६०) रासायनिक औषधियों का उत्पादन दुगुना हो जाएगा। काफीन, थियोब्रोमाइन, पापविरिन, मारफिन, पिरामिडान, सैलिसिलिक पदार्थों, तथा सल्फैनीमाइड से तैयार की जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ कोर्टिसान, एमिनाज़ाइन, डेक्स्ट्रेन बुटाडियोन, आदि जैसे नये-नये पदार्थों का भी बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगेगा।

सन् १९५५ की अपेक्षा सन् १९६० में रोगाणुनाशी पदार्थों के उत्पादन में २७० प्र० श० की वृद्धि हो जाएगी। चिकित्सा विज्ञान में रोगाणुनाशी चिकित्सा का अत्यत्न महत्त्वपूर्ण स्थान होने के नाते उद्योग की इस शाखा में भैषज्य-उद्योग की अन्य शाखाओं की अपेक्षा काफी तीव्र गति से उन्नति होगी।

इस कार्य को पूरा करने के साथ-साथ कारखानों की वर्त्तमान क्षमता का और अधिक वैज्ञानिक उपयोग होने लगेगा, उद्योग का स्वचालित यन्त्रीकरण किया जाएगा तथा उत्पादन में वृद्धि होगी, रोगाणुनाशी पदार्थों के वर्गीकरण का विस्तार किया जाएगा, देर तक प्रभाव करने वाले पेन्सिलीन केरूप येपो तथा टेरामाइसिन आदि का उत्पादन होने लगेगा। इसके अतिरिक्त उत्पादन के स्तर में आम तौर पर सुधार किया जाएगा।

छठी पंचवर्षीय योजना के काल में कई औधषियों के कई बड़े-बड़े कारखाने खोले जाएंगे। सोवियत संघ के भैषज्य-उद्योग के कुल उत्पादन का एक तिहाई भाग केवल इन्हीं कारखानों से पैदा होने लगेगा।

———

विज्ञान वार्ता

अमेरिका द्वारा बाह्य आकाश मण्डल में उल्का पिण्ड

अमेरिकी वायुसेना के वैज्ञानिकों ने प्रकट किया है कि वे एक घंटे में ४०,००० मील से भी अधिक गति से जाने वाले कृत्रिम उल्का-पिण्डों को बाह्य आकाश-मंडल में छोड़ चुके हैं।

ये कृत्रिम उल्का-पिंड एक प्रकार के अलमोनियम-पिंड थे और इन्हें १६ अक्टूबर को न्यू मैक्सिको के रेगिस्तान के ऊपर एयरोबी रौकेट द्वारा ५४ मील की ऊँचाई पर अन्तरिक्ष में छोड़ा गया था। यह रौकेट ७१ मील की ऊँचाई तक जा कर पृथ्वी पर सुरक्षित रूप में वापस आ गया था।

वायु सेना के कैम्ब्रिज अनुसन्धान-केन्द्र के भूभौतिक विभाग के भौतिक विज्ञान-शास्त्री मौरिस ड्यूबिन ने बताया कि इस बारे में सन्देह की गुञ्जायश नहीं कि कृत्रिम उल्का-पिंड पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति की परिधि से बाहर चले गये हैं और वे अन्तरिक्ष में ही रहेंगे। न्यू मैक्सिको में सैक्रामैंटो की चोटी पर स्थित वेधशाला के कैमरों से इन कृत्रिम उल्का-पिंडों के बहुत बढ़िया चित्र उतारे जा चुके हैं।

राकेट के जिस सिरे वाले भाग में कृत्रिम उल्का-पिंड रहते हैं, वह ३५ मील की ऊँचाई पर जाने के बाद स्वयं अलग हो गया। इस प्रकार की व्यवस्था इसलिए की गई थी कि राकेट को फिर से प्राप्त किया जा सके।

पृथ्वी पर निरीक्षण करने वालों ने कृत्रिम उल्का-पिंडों को छोड़ने की क्रिया ठीक तरह देखी थी और यहाँ तक कि ६०० मील दूर माउन्ट पालोमर बेधशाला में भी इसे देखा गया था।

अमेरिकी वायु-सेना के वैज्ञानिकों ने यह सम्मति प्रकट की कि अन्तरिक्ष-मंडल के ऊपरी भाग के बारे में भौतिक शास्त्र सम्बन्धी परीक्षण करने की दृष्टि से कृत्रिम उल्का-पिंड तैयार करना बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। अब तक वायु-मंडल के ऊपरी हिस्से के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक, प्राकृतिक उल्का-पिंडों का अध्ययन करते थे, लेकिन वैज्ञानिकों के लिए इनकी रचना अभी तक रहस्यमय ही है।

वाह्य आकाश-मंडल में इन उल्का-पिंडों की गति-विधि को ठीक तरह समझने के बाद वैज्ञानिकों को अन्तर्महाद्वीपीय दूर-मारक अस्त्रों की सम्भावित क्रिया-प्रतिक्रियाओं के बारे में जानकारी मिल सकेगी। अन्तर्महाद्वीपीय दूर-मारक अस्त्र को जब आकाश-मंडल में अपार तेजी से छोड़ा जाये तो पृथ्वी के वायु-मंडल में उसके पुनः प्रवृष्ट होने के लिए यह आवश्यक है कि यह प्रबल वायु वेग के संघर्ष से उत्पन्न होने वाले ताप से न जले।

स्पुत्निकों द्वारा अन्तरिक्ष यात्रा
व्योम-यान के ढाँचे पर प्रकाश

सोवेत्स्काया एविआत्सिया (सोवियत उड्डयन) समाचार पत्र में डिजाइनर वी॰ काज्नेटेव्स्की लिखते हैं कि कृत्रिम उपग्रहों से भावी अन्तरिक्ष उड़ानों के आरम्भ होने की सम्भावना है। उपग्रह से कार्यारम्भ के कई लाभ हैं। सर्व प्रथम उपग्रह से छूटने वाले राकेट को भू-गुरुत्वाकर्षण पर काबू पाने के लिए सिर्फ दो मील प्रति सेकंड की गति देने की जरूरत है। दूसरे, राकेट के जैट-प्रवाह से पृथ्वी के समतल की रक्षा को उपग्रह सम्भव बना देंगे, यह पारमाणविक और फोटोन मोटरों के सम्भावित उपयोग को देखते हुए विशेष रूप में महत्त्वपूर्ण है।

अन्तरिक्ष-यान का ढाँचा

काज्नेव्स्की ने अपने लेख में भावी अन्तरिक्ष यान के सम्भावित ढाँचे का वर्णन प्रस्तुत किया है। वह आधुनिक विमानों और राकेटों के वायु-दबाव निरोधक

लम्बे ढाँचों जैसा नहीं होगा। उसमें शायद गोलक और बेलन होंगे और चालकों के लिए आरामदेह जगह की व्यवस्था होगी। उसमें सौर शक्ति के उपयोग के लिए विशेष दर्पण रखे जायेंगे और स्थिति-स्थान सूचक रेडियो साज-सामान और अन्य स्वचालित यंत्र भी रहेंगे ताकि जहाज अपने पथ पर ठीक तरह अग्रसर रहे और नियत गति से चलता रहे। किसी ग्रह के पास पहुँचने पर जहाज अपने ब्रेक से रुक जाएगा और उसका उपग्रह बन जाएगा और व्योम-विहार करने वाले एक छोटी 'राकेट-नाव' में बैठ जायेंगे।

समुद्र जल से यूरेनियम

जैविक उपप्रक्षेपक (घुलित वस्तु को तलछट के रूप में पृथक कर देने वाला पदार्थ) की सहायता से समुद्र जल से युरेनियम निकालने के परीक्षण सफलतापूर्वक सम्पन्न किये गये हैं। यह कार्य सोवियत विज्ञान अकादमी के भू-रसायन और वैश्लेषिक रसायन संस्थान में किया गया। सीधे समुद्र जल में या पानी को सुखाने के बाद शुष्क अवशेषों में युरेनियम कितनी मात्रा में है, अब तक इसका पता लगाना असम्भव था।

परीक्षणों के दौरान में खोज कार्य करने वाले वी० कुज्नेत्सोव और तातिआना आकिमोंवा ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया कि युरेनियम समुद्र जल में विद्यमान अनेक तत्त्वों और खास तौर पर विभिन्न जैविक नमकों के साथ तलछट के रूप में प्रकट होता है। वैज्ञानिक समुद्र जल से युरेनियम निकालने और साथ ही समुद्र जल में घुले हुए नमकों से उसे अलग करने में सफल हो गये। इस विधि की कार्य साधकता की जापानी समुद्र और प्रशान्त सागर के जल में परीक्षा की गयी।

रेडियो-सन्देशों को प्रतिक्षिप्त करने के लिए चाँद का प्रयोग

हाल ही में यह समाचार मिला है कि अमेरिकी नौ-सेना की अनुसन्धानशाला के वैज्ञानिकों ने रेडियो-सन्देशों को पुनः प्रसारित करने के लिए चाँद का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। उन्होंने साथी वैज्ञानिकों को बताया है कि उन्होंने चाँद को जो व्यक्त सन्देश एवं रेडार ध्वनि-संकेत भेजे थे उनकी प्रतिक्षिप्त ध्वनि सुन ली गई है।

शक्तिशाली रेडार-संकेतों द्वारा २००० मैगासाइकल पर सन्देशों को ३०० बार प्रति सैकिन्ड के हिसाब से भेजा गया। लगभग ५ लाख मील की दूरी तय करने के उपरान्त २॥ सैकिन्ड बाद ये सन्देश एक हल्की सी गूँज के रूप में चाँद से लौट आये और उन्हें पकड़ लिया गया।

वनस्पति-रोगों के लिए नई "अद्भुत औषधि"

अमेरिका की 'चास फ़िजर एण्ड कम्पनी' नामक औषधि-निर्माण संस्था ने एक नई 'अद्‌भुत औषधि' तैयार की है, जो कीटाणुओं से पौधों को होने वाले रोगों का बड़ी अच्छी तरह प्रतिरोध कर सकती है।

'स्ट्रैप्टोमाइसिन' के संमिश्रण से इस औषधि को तैयार किया गया है। उक्त कम्पनी को आशा है कि फलों के वृक्षों को कीटाणुओं से जो रोग लगते हैं उनके लिए यह औषधि अत्यन्त गुणकारी सिद्ध होगी। इससे पहले फलों के वृक्षों की काट-छाँट कर के ही इन रोगों को दूर किया जाता था। सेव तथा नासपाती के वृक्षों को कीटाणुओं से अक्सर हानि पहुँचती है।

टमाटर, काली मिर्च, अखरोट, आलू, तम्बाकू, दालों और ककड़ी आदि के पौधों को इन कीटाणुओं से लगने वाले रोगों से बचाने के लिए उक्त कम्पनी ने इस नई दवा को इस्तेमाल करने की सिफारिश की है।

अमेरिका की १७०० फर्मों द्वारा रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग

अमेरिकी अणुशक्ति-कमीशन की ओर से इन दिनों अमेरिका की १७०० औद्योगिक फर्मों को रेडियो-आइसोटोपों के पार्सल भेजे जा रहे हैं। अणुशक्ति के

शान्तिकालीन कार्यों में प्रयुक्त किये जाने वाले रेडियम-धर्मी पदार्थों को रेडियो-आइसोटोप कहते हैं।

इन रेडियो-आइसोटोपों का इस्तेमाल तेल प्रवाह, इस्पात की चादरों की मोटाई को मापने में और एक्स-रे या बढ़िया कैमरे द्वारा धातु के पदार्थों में लगाये गये भीतरी टांके की कमजोरी या मजबूती जानने में, १० वर्षों तक जलने वाले लैम्पों में और सिगरेटों की गोलाई को ठीक तरह मापने में किया जा सकेगा। इन आइसोटोपों को कई तरह के उद्योगों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। ये आइसोटोप सामान्य प्रकार के तत्त्व होते हैं, जिन्हें आणविक भट्टी में रेडियो-सक्रिय बनाया जाता है।

अमेरिकी अणुशक्ति-कमीशन के डा० विलर्ड एफ० लिबी के कथनानुसार, इन रेडियो-आइसोटोपों को इस्तेमाल करने से अमेरिकी उद्योगों तथा कृषि-जगत् को हर वर्ष ४० करोड़ डालर की बचत हो रही है। डा० लिबी ने भविष्यवाणी की है कि १९६० तक इस बचत की रकम ५ अरब डालर वार्षिक तक पहुँच जायेगी।

उपग्रह के ज्योतिषीय अवलोकन

पिछली बसन्त ऋतु में पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रह के दृश्य अवलोकन के लिए सोवियत संघ में केन्द्रों की एक व्यापक व्यवस्था की स्थापना आरम्भ की गयी थी। सितम्बर में इस प्रकार के ६६ केन्द्र सोवियत संघ में काम कर रहे थे।

दृश्य अवलोकन के लिए सोवियत संघ के यंत्रों के डिजायन बनाने वालों ने अत्यन्त उच्च गति वाली ज्योतिषीय नलियाँ तैयार कीं जिनका दृश्य-क्षेत्र बहुत बड़ा, अर्थात् ११ डिग्री तक था, जो साधारण दूरबीनों के दृश्य-क्षेत्र का दुगना है। हर केन्द्र में इस प्रकार की ३० नलियाँ हैं। अवलोकन का कार्य इस ढंग से किया जाता है कि विभिन्न ज्योतिषीय नलियों के दृश्य-क्षेत्र व्योम मंडल में उपग्रह के प्रक्षेप-वक्र के किनारे-किनारे एक अनवरत पट्टी को अपने क्षेत्र में ले लेते हैं। इन परिस्थितियों में यह असम्भव है कि उस केन्द्र के ऊपर से होकर गुजरते समय उपग्रह नजर से चूक जाए।

उपग्रह के डिजाइन के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि उसकी भीतरी समाई का बहुत बड़ा भाग बिजली पैदा करने के रासायनिक साधनों ने घेर रखा है—उसमें रेडियो के दो ट्रांसमीटरों में बिजली पहुँचाने वाली बैटरियाँ लगी हैं। हम कह नहीं सकते कि इस उपग्रह का अस्तित्त्व कितने दिन तक रहेगा। लेकिन इस बात की बहुत सम्भावना है कि बिजली पैदा करने के साधन समाप्त हो जाने के बाद भी बहुत समय तक उसका अस्तित्व रहेगा। और यदि कोई दुर्घटना नहीं हो जाती—जैसे यदि वह किसी बड़े धूम्रकेतु से टकरा नहीं जाता जिससे उपग्रह नष्ट हो जाए—तो वह बहुत समय तक पृथ्वी का चक्कर लगाता रहेगा। परन्तु यह "मौन" उपग्रह किसी भी प्रकार हम ज्योतिषविज्ञों के लिए "मृत" नहीं हो जाएगा। जिस समय से ट्रांसमीटर काम करना बन्द कर देगा उसी समय से दृश्य अवलोकन का महत्त्व बहुत बढ़ जाएगा।

आम तौर पर यह बात कही जा सकती है कि दृश्य अवलोकन और विशेष रूप से सूक्ष्म दृश्य अवलोकन ज्योतिष के लिये, और विशेष रूप से भूभौतिकी के लिए, बहुत महत्त्व रखते हैं। उनके द्वारा यह निश्चित रूप से बताना सम्भव हो सकेगा कि पृथ्वी मंडल की आकृति किस प्रकार की है, विभिन्न महाद्वीपों की दूरी कितनी है, पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षक पदार्थ का वितरण किस प्रकार है और वायुमंडल की ऊपरी तहों में वायु का घनत्त्व कितना है।

२६ जनवरी १९५०

भारतीय कारवां की राह में महत्त्वपूर्ण था

और उससे भी आगे उतना ही बड़ा मोड़

३१ मार्च १९५६ को आया

जब प्रथम पंचवर्षीय आयोजन की पूर्णाहुति

एवं

द्वितीय आयोजन का शुभ आरम्भ हुआ।

उक्त तिथि को समाप्त होने वाली पाँच वर्षों की अवधि में

उत्तर प्रदेश ने

१५३ करोड़ ३६ लाख ४० हजार रुपये

विकास कार्यों पर खर्च किये

जिसके फलस्वरूप

खाद्योत्पादन में १६ लाख ६० हज़ार टन की वृद्धि हुई

३० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की

सुविधाएं सुलभ हुईं और

विद्युत उत्पादन की प्रस्थापित क्षमता

१ लाख ३६ हजार किलोवाट बढ़ गयी

चुर्क स्थित सीमेन्ट उद्योग एवं लखनऊ का

सूक्ष्म यन्त्र कारखाना भी

उसी अवधि में परिलक्षित राज्य की

प्रेरणात्मक क्रियाशीलता के शुभ परिणाम हैं।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिग्राम भार्गव	३७ नये पैसे
२—विज्ञान प्रवेशिका भाग २ (अप्राप्य) श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिग्राम भार्गव	
३—चुम्बक—प्रो० सालिग्राम भार्गव (अप्राप्य)	
४—मनोरंजक रसायन—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव (अप्राप्य)	
५—सूर्य सिद्धान्त छः भाग—श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (अप्राप्य)	
६—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
७—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रुपया ५० नये पैसे
८—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
९—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
१०—निर्णायक (डिटर्मिनेन्टस)—प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे (अप्राप्य)	
११—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—डा० सत्य प्रकाश डी० एस-सी०	१ रु० २५ नये पैसे
१२—मिफताह उल फनून—प्रो० सय्यद मुहम्मद अली नामी (अप्राप्य)	
१३—ताप—श्री प्रेमवल्लभ जोशी (अप्राप्य)	
१४—हरारत—प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी (अप्राप्य)	
१५—पशुपक्षियों का श्रृङ्गार रहस्य—श्री सालिग्राम वर्मा एम० ए० (अप्राप्य)	
१६—केला—श्री गंगा शंकर पचोली (अप्राप्य)	
१७—गुरुदेव के साथ यात्रा—अनु० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (अप्राप्य)	
१८—क्षय रोग—डा० बी० के० मित्र (अप्राप्य)	
१९—दियासलाई और फासफोरस—श्री रामदास गौड़ (अप्राप्य)	
२०—शिक्षितों का स्वास्थ्य व्यतिक्रम—श्री गोपाल नारायण सेन सिंह (अप्राप्य)	
२१—पैमाइश—श्री मुरलीधर नन्दलाल (अप्राप्य)	
२२—कपास—श्री तेजशंकर कोचक (अप्राप्य)	
२३—कृत्रिम काष्ट—श्री गंगाशंकर पचोली (अप्राप्य)	
२४—आलू—श्री गंगाशंकर पचोली (अप्राप्य)	
२५—हमारे शरीर की रचना—डा० बी० के० मित्र (अप्राप्य)	
२६—ज्वर निदान और सुश्रूषा—डा० बी० के० मित्र (अप्राप्य)	
२७—मनुष्य का आहार—श्री गोपीनाथ गुप्त वैद्य (अप्राप्य)	
२८—सुन्दरी मनोरमा की करुण कथा—श्री नवनिद्धि राय (अप्राप्य)	
२९—उद्भिज का आहार—श्री एम० के० चटर्जी (अप्राप्य)	
३०—क्षार निर्माण विज्ञान—स्वामी हरिशरणानन्द (अप्राप्य)	
३१—प्रकाश रसायन—श्री वा० वि० भागवत (अप्राप्य)	
३२—डा० गणेश प्रसाद अंक (अप्राप्य)	
३३—रामदास गौड़ अंक (अप्राप्य)	
३४—उद्योग व्यवसाय अंक (अप्राप्य)	
३५—सालिग्राम भार्गव अंक (अप्राप्य)	
३६—अंजीर—श्री रामेशवेदी (अप्राप्य)	

३७—त्रिफला—श्री रामेशवेदी	३ रु० २५ नये पैसे
३८—साधारण रसायन—डा० सत्यप्रकाश (अप्राप्य)	
३९—कार्बनिक रसायन—डा० सत्य प्रकाश (अप्राप्य)	
४०—सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—श्री युधिष्ठिर भार्गव (अप्राप्य)	
४१—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द—डा० सत्यप्रकाश (अप्राप्य)	
४२—रसायन का इतिहास—श्री आत्माराम (अप्राप्य)	
४३—मिट्टी के बर्तन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा (अप्राप्य)	
४४—लकड़ी पर पालिश—डा० गोरख प्रसाद, श्री रामरतन भटनागर (अप्राप्य)	
४५—सरल विज्ञान सागर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद (अप्राप्य)	
४६—कृषि में हारमोन्स का उपयोग—कुमारी रवीन्द्र कौर एम० एस०-सी०, डी० फिल० (अप्राप्य)	
४७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
४८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
४९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर—	२ रुपया
५०—कलम पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
५१—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
५२—तैरना—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०	१ रु०
५३—वायु मंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
५४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
५५—फोटोग्राफी—डा० गोरखप्रसाद	४ रुपये
५६—फलसंरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
५७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
५८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
५९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
६०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
६१—फसल के शत्रु—श्री शंकरराव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
६२—सांपों की दुनियाँ—श्री रामेशवेदी	४ रुपये
६३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
६४—राष्ट्रीय-अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
६५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
६६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान-परिषद् भवन
म्योर कालेज कम्पाउंड
थार्न हिल रोड
इ ला हा बा द

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज़ के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित **गवेषणापूर्ण** लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान
जनवरी १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए ३७२

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद तथा मुद्रक ओंकार प्रेस, प्रयाग।

भाग ८६ संख्या ५

फरवरी १९५८, कुम्भ २०१४ वि०, फाल्गुण १८७९ श०

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक वार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायँगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८६ } कुम्भ २०१४; विक्र०; फाल्गुन १८७९ शाकाब्द; फरवरी १९५८ ई० { संख्या ५

सम्पादकीय

विज्ञान-कांग्रेस

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी इण्डियन साइन्स कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सफलता पूर्वक मद्रास में सम्पन्न हुआ। जहाँ इन अधिवेशनों में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ एक साथ मिलकर विज्ञान के नये अनुसंधानों की विवेचना करते और परस्पर ज्ञानोपार्जन करते हैं वहाँ अनेक विश्वविख्यात वैज्ञानिकों के सर्वसाधारण के लिये लोकप्रिय व्याख्यान भी होते रहते हैं। इसका परिणाम है कि जन साधारण का विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान बढ़ रहा है। ज्ञान की अभिवृद्धि वाञ्छनीय है, परन्तु इससे अधिक उपयोगी है उस दृष्टि कोण का बनाना जो विज्ञान की आत्मा है—सत्य की खोज, निस्पृह भाव से उन तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करना जिन पर विश्व अवलम्बित है। विज्ञान कांग्रेस इस दिशा में भी मानव को झुका रही है। ज्ञान का उदय, असत्य का दमन करके सत्य मार्ग दिखाता है। आशा है इस सत्य पथ का पथिक मानव शनैः २ उस दीप्ति की ओर अधिक अग्रसर होगा जिसे कहते हैं सर्वव्यापी 'सर्वं ब्रह्ममयम्'।

अक्षय शक्ति स्रोत-हाइड्रोजन के परमाणुओं का सम्मिलन

प्रकृति को नियन्त्रित कर मानव सदैव ही ऊर्जा के नवीन स्रोतों की खोज में रहा है। कुछ वर्ष पूर्व तक हमारे शक्ति स्रोत थे कोयला, पेट्रोल तथा जलविद्युत संसार में कोयले और पेट्रोल के भंडार सीमित है। सभ्यता के विकास के साथ ही शक्ति के इन साधनों के व्यय की गति भी बढ़ती गई। परिणाम स्वरूप प्रमुख उन्नतिशील देशों यथा इंगलैंड में कोयला निकालने के हेतु अब बड़ी गहराई में खुदाई करनी पड़ती है। यहाँ तापक्रम इतना अधिक रहता है कि मनुष्य का वहाँ रुक कर कार्य करना असम्भव हो गया है। पेट्रोल के स्रोत भी धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। नये स्रोतों की खोज करके भूमि से कई मील की दूरी पर जाकर समुद्र से ढकी भूमि में छेद करके विशेष प्रकार के प्रसाधनों से पेट्रोल की प्राप्ति की व्यवस्था करनी पड़ती है। आज जिस गति से अमेरिका शक्ति का उपयोग कर रहा है यदि वही गति संसार के शेष देश भी अपना लें तो कोयले और पेट्रोल के भण्डार लगभग ३५ वर्ष के बाद समाप्त हो जायेंगे।

इस कठिनाई का अनुमान कर प्रमुख देशों ने किसी दूसरी शक्ति के विकास की ओर दृष्टि फेरी। सौभाग्य वश उन्हें परमाणुओं के विखंडन द्वारा सृजित शक्ति को नियंत्रित करने का सूत्र हाथ लगा और इस दिशा में भाग दौड़ प्रारम्भ हो गई। इसने परमाणुओं के शान्ति कालीन उपयोगों की अभिवृद्धि के हेतु एक अन्तरराष्ट्रीय समिति को जन्म दिया। परमाणुओं के विखंडन द्वारा शक्ति का सृजन मूलरूप में यूरेनियम और थोरियम द्वारा किया जाता है। संसार में यूरेनियम और थोरियम के भंडार भी थोड़े ही है। आज की प्रगति और शक्ति के साधनों के व्यय की अवस्था देखते हुये यह शक्ति स्रोत भी लगभग ८०० वर्ष में समाप्त हो जावेंगे। अब प्रश्न उठता है इसके पश्चात् क्या होगा? मानव सभ्यता को जीवित रखने के लिये किसी अधिक टिकाऊ शक्ति साधन के खोज की आवश्यकता का अनुभव सब लोग कर रहे हैं।

नवम्बर १९५४ में दिल्ली में भारतीय परमाणु-वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें हाइड्रोजन के सम्मिलन के द्वारा सृजित शक्ति को नियन्त्रित करने की सम्भावना पर विचार किया गया। लगभग ९ मास पश्चात् जेनेवा में परमाणु शक्ति के शान्ति कालीन उपयोगों पर डा० एच० जे० भाभा के सभापतित्व में विचार विमर्श किया गया जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि हाइड्रोजन के परमाणुओं के सम्मिलन से उत्पन्न शक्ति को नियन्त्रित किया जा सकता है। इस संकेत को पकड़कर अमेरिका, इंगलैंड एवम् रूस ने प्रयोग करना प्रारम्भ किया। अब इंगलैंड एवम् अमेरिका के संयुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप हाइड्रोजन के परमाणुओं के सम्मिलन से प्राप्त अपार शक्ति के नियंत्रण के प्रयोग प्रारम्भिक रूप में सफल हो गये हैं। अब शीघ्र ही उन्हें अधिक मात्रा में औद्योगिक प्रगति के लिये उपयोग करने की विधि भी निकाल ली जावेगी।

आज के युग में अमेरिका और इंगलैण्ड के प्रयत्नों से प्राप्त यह आविष्कार बड़ा महत्व रखता है। अथाह सागरों से हमें अपरिसीम मात्रा में हाइड्रोजन प्राप्त हो सकती है और इस हाइड्रोजन से शक्ति का अक्षय भंडार हमारे अधिकार में आ जाता है। इस प्रकार हमारी यह चिन्ता कि आधुनिक शक्ति स्रोतों की समाप्ति के बाद क्या होगा अब दूर हो जाने का मार्ग खुल गया है।

अमेरिकीय भू-उपग्रह

पहली फरवरी को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका पृथ्वी के एक और नये कृत्रिम उपग्रह का सृजन करने में सफल हुआ है। अमेरिका का यह प्रथम सफल प्रयत्न हुआ है। यह चाँद रूसी उपग्रह से हल्का है (३० पाउण्ड) और पृथ्वी का एक चक्कर प्रायः डेढ़ घण्टे में करता है और इसकी कक्षा अण्डाकार है।

आशा है इन उपग्रहों से प्राप्त ज्ञान से मानव अपने ज्ञान की सीमाओं को और दूर हटाकर अपने आपको अधिक सुखी बनाने में सफल होगा। उसके व्यवहार से संकुचित बातें निकल जायँगी और वह सर्वहित में संलग्न हो जायगा।

———

चौथा आयाम

डा० ब्रज मोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

(२)

हम जानते हैं कि गर्मी से विस्तार होता है और ठंढ से संकोच। विस्तार और संकोच का वैज्ञानिक अर्थ क्या है? जब किसी काय (Body) को गर्म किया जाता है तो काय का आकार बढ़ता है। वैज्ञानिक भाषा में इसका यह अर्थ हुआ कि काय के अणु उसके केन्द्र से दूर हटते जाते हैं। इसी प्रकार जब हम किसी काय को ठंढा करते हैं तो उसके अणु केन्द्र की ओर बढ़ते जाते हैं। इसी क्रिया को हम लोग संकोच या सिकुड़न कहते हैं। हमको अणु दिखाई नहीं देते क्योंकि वे इतने सूक्ष्म हैं कि हमारी आँखें उन्हें ढूँढ़ निकालने में असमर्थ हैं और भिन्न-भिन्न अणुओं की मध्यस्थ-दूरी भी इतनी अल्प होती है कि हमारी आंख उसे देख नहीं सक्ती। हमें तो उक्त क्रिया का परिणाम ही दिखाई पड़ता है। हम केवल इतना देख पाते हैं कि काय बढ़ गया अथवा घट गया। बहुत से कायों में तो वह भी नहीं दिखाई पड़ता।

यह विस्तार और संकोच प्राय सम्मित (Symmetrical) होता है। संसार में बहुधा सम्मिति (Symmetry) देखने को मिलती है। अब तनिक इस सम्मिति पर विचार कीजिए। मान लीजिये कि इस कागज के समतल में एक स्थिर बिन्दु म है और एक गतिशील बिन्दु क। बिन्दु क बिन्दु म के चारों ओर इस प्रकार घूमता है कि म से उसकी दूरी सदैव एक सेंटीमीटर रहती है। तो स्पष्ट है कि क का पथ एक वृत्त होगा जिसका केन्द्र म होगा और त्रिज्या १ से० मी०।

यदि हम बिन्दु क की किसी स्थिति को क से निरूपित करें और क म को जोड़कर बढ़ा दें तो वह वृत्त की परिधि से एक बिन्दु की पर मिलेगी। ऐसे प्रत्येक बिन्दु क के अनुसार परिधि पर एक दूसरा बिन्दु की होगा। ये दोनों बिन्दु क की केन्द्र से समान दूरी पर स्थित होंगे। ज्यामितीय भाषा में हम कहते हैं कि वृत्त की परिधि केन्द्र पर सम्मित है। वृत्त की परिधि ही नहीं, वृत्त का सारा क्षेत्र केन्द्र पर सम्मित है। यदि हम वृत्त के अन्दर कोई बिन्दु ग लें और ग म को मिलाकर उतना
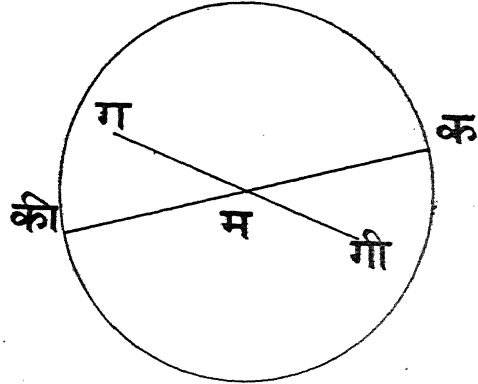
ही और बढ़ा दें तो इस प्रकार एक बिन्दु गी प्राप्त होगा जो वृत्त के अन्दर ही स्थित होगा। इसी बात को हम यों भी व्यक्त कर सकते हैं कि वृत्त के केन्द्र में से होकर जितनी भी रेखायें जाती हैं सब केन्द्र पर अर्द्धिक होती हैं। यदि हम ग म को उठाकर म गी पर रख दें तो दोनों रेखायें एक दूसरे को पूरा-पूरा ढक लेंगी। यही बात हम रेखाओं क म और म की के विषय में भी कह सकते हैं।

आयत, वर्ग, समान्तर चतुर्भुज और समचतुर्भुज ये सब आकृतियां अपने केन्द्र के प्रति सम्मित होती हैं।

यह तो हुई एक बिन्दु के प्रति सम्मिति। अब तनिक इस पर विचार कीजिये कि किसी रेखा के प्रति सम्मिति

किस प्रकार की होगी। एक समद्विबाहु त्रिभुज म प फ लीजिए। मान लीजिए कि उसका उच्चत्व म ल है। यदि हम त्रिभुज के भाग म ल प को रेखा म ल पर मोड़कर भाग म ल फ पर आच्छादित करें तो वह उस भाग को पूरा-पूरा ढक लेगा। ज्यामितीय भाषा में हम
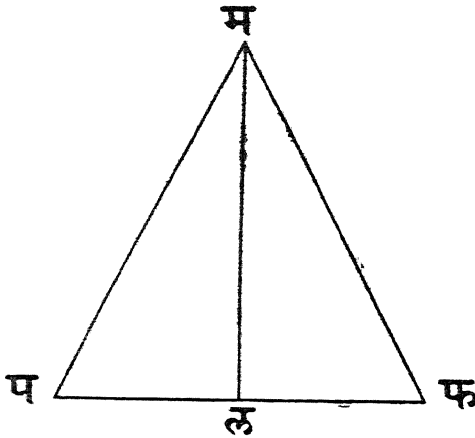
कहेंगे कि त्रिभुज अपने उच्चत्व पर सम्मित है। उच्चत्व म ल त्रिभुज का सम्मित्यक्ष (Axis of Symmetry) कहलाता है। प्रत्येक वर्ग और समचतुर्भुज के विकर्ण उनके सम्मित्यक्ष होते हैं। इसी प्रकार पान में बीच की डंडी प्रायः सम्मित्यक्ष होती है। बहुत से पत्ते और फूलों की पंखुड़ियों में सम्मित्यक्ष होते हैं।

अब एक तीसरे प्रकार की सम्मिति पर विचार कीजिए। मान लीजिए कि एक त्रिभुज एक रेखा के
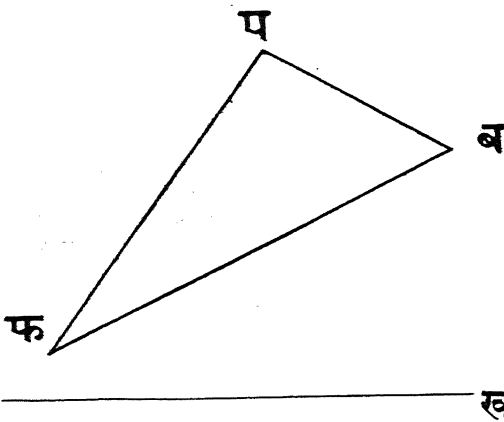
चारों ओर घूमता है तो वह एक ऐसे ठोस का सर्जन करेगा जो रेखा पर सम्मित होगा। इस प्रकार के ठोसों को परिक्रमण ठोस (Solid of Revolution) कहते हैं। प्रत्येक लाम्बिक वर्तुल शंकु (Right circular Cone) और बेलन (Cylinder) अपने उच्चत्व पर सम्मित होते हैं। गोला अपने प्रत्येक व्यास पर सम्मित होता है। इसी प्रकार बहुत से ठोसों में किसी रेखा पर सम्मिति होती है। सम्मिति की परिभाषा प्रत्येक दशा में वही रहती है कि घुमाने से दोनों भाग एक दूसरे को पूरा-पूरा ढक लें।

किन्तु अब एक अन्य प्रकार की सम्मिति पर विचार कीजिए जो प्रकृति की अनेक वस्तुओं में पाई जाती है। मनुष्य के शरीर पर ध्यान दीजिये। शरीर के बीचोबीच में एक खड़ा समतल खींच दीजिये। क्या शरीर के दोनों भाग एक से नहीं होंगे। यह भी एक प्रकार की सम्मिति है किन्तु किस प्रकार की? यदि हम एक भाग को उठाकर दूसरे पर रक्खें तो क्या वह दूसरे भाग को पूरा-पूरा ढक लेगा? कदापि नहीं। एक भाग की आंख सामने होगी तो दूसरे भाग की पीछे। एक हाथ की हथेली आगे होगी तो दूसरे की पीछे। एक पैर आगे की ओर मुड़ा हुआ होगा तो दूसरा पीछे की ओर। हम जानते हैं कि इन दोनों भागों में सम्मिति है किन्तु फिर भी एक भाग को उठाकर दूसरे पर आच्छादित कर देना संभव नहीं है। इसी प्रकार आयताकार मेजों में भी सम्मिति होती है किन्तु फिर भी हम मेज के एक भाग को उठाकर दूसरे पर चस्पा नहीं कर सकते। यदि हम मेज के ऊपरी तल पर ही विचार करें तब तो सम्मिति पूरी-पूरी बैठ जाती है। मेज के तल को उसकी केन्द्र रेखा पर मोड़ने से एक भाग दूसरे पर ठीक ठीक बैठ जायगा किन्तु पूरी मेज के विषय में यह बात नहीं कह सकते। सन्दूकों और कुर्सियों की सम्मिति भी इसी प्रकार की होती है। मनुष्य का एक फेफड़ा भी उठाकर दूसरे पर नहीं रक्खा जा सकता। दाहिने हाथ का दस्ताना भी बायें हाथ के दस्ताने पर ठीक-ठीक नहीं बैठ सकता। बहुत से फूलों में भी इसी प्रकार की सम्मिति दिखाई पड़ती है। देखने में फूल का एक भाग ठीक दूसरे भाग जैसा होता है किन्तु एक दूसरे में बिठाये नहीं जा सकते।

जब हम ऐसे दृष्टान्तों पर ध्यान देते हैं तो उलझन में पड़ जाते हैं। कदाचित हम यह कहेंगे कि सम्मिति तो प्रत्यक्ष ही है किन्तु फिर भी दोनों भाग न जाने कैसे मोड़े गये हैं कि एक दूसरे में बैठ नहीं पाते। हम यह भी नहीं कर सकते कि एक भाग को उठाकर उसके अन्दर की किसी रेखा पर १८०° घुमायें। मनुष्य के शरीर के दृष्टान्त में ऐसा करने से सिर का पैर हो जायगा और पैर का सिर। किसी प्रकार का भी उलट-फेर करने से हम एक भाग को दूसरे में नहीं बिठा सकते। हमारी बुद्धि चकरा जाती है और हम सोचने लगते हैं कि इस सम्मिति में क्या रहस्य है?

हमने इस लेख के आरम्भ में एक दृष्टान्त लिया था जिसमें एक बिन्दु दूसरे बिन्दु के चारों ओर घूमता है। बिन्दु ने घूमकर एक वृत्त का सर्जन किया जो एक समतल आकृति है। बाद के दृष्टान्त में एक त्रिभुज एक रेखा के चारों ओर घूमता है और एक ठोस का सर्जन करता है जो त्रयायाम आकृति है। बिन्दु ने कागज के समतल में घूमकर एक वृत्त का सर्जन किया। मान लीजिये कि बिन्दु के बदले एक रेखा बिन्दु म के चारों ओर घूमती है और सदैव कागज के समतल में ही स्थित रहती है तो वह कागज के समतल के ही एक भाग का सर्जन करेगी। रेखा एकायाम आकृति है। वह एक समतल में चलती है अर्थात् दूसरे आयाम में घूमती है। त्रिभुज वाले दृष्टान्त में मान लीजिए कि त्रिभुज और रेखा क ख कागज के समतल में ही स्थित है। त्रिभुज के प्रत्येक बिन्दु को रेखा के चारों ओर घूमने में कागज का समतल छोड़ कर एक अन्य समतल में चक्कर काटना होगा जो कागज के समतल पर लम्ब होगा। त्रिभुज एक द्वयायाम आकृति है। वह तीसरे आयाम में चलकर एक ठोस का सर्जन करता है।

अब इसी उपमा को थोड़ा और आगे बढ़ाइये। मान लीजिए कि एक त्रयायाम आकृति अर्थात् एक ठोस एक समतल के चारों ओर घूमता है तो वह किस प्रकार की आकृति का सर्जन करेगा। रेखा जो एकायाम आकृति है दूसरे आयाम में घूमती है। त्रिभुज द्वयायाम आकृति है जो तीसरे आयाम में घूमता है। ठोस एक त्रयायाम आकृति है। यदि वह किसी समतल के चारों ओर घूमे तो चौथे आयाम में घूमेगा। हम इस प्रकार भी चौथे आयाम की कल्पना कर सकते हैं। यह केवल कल्पना-मात्र है। बिन्दु और रेखा के चारों ओर के परिक्रमण को तो हम प्रत्यक्ष रूप से ज्यामिति द्वारा दिखा सकते हैं किन्तु समतल के प्रति परिक्रमण को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखा सकते।

अब यह बात विचारणीय दिखाई पड़ती है कि मनुष्य के शरीर के और अन्य दृष्टान्त जो हमने ऊपर दिए हैं क्या ये सब चतुरायाम सम्मिति के उदाहरण तो नहीं हैं। यदि हम मनुष्य के आधे शरीर को चौथे आयाम में घुमा सकें तो सम्भव है कि वह दूसरे भाग से सम्पाती (Coincident) हो जाय। फूलों और सन्दूकों की सम्मिति का भी क्या यही रहस्य तो नहीं है कि इनका एक भाग चौथे आयाम में घूमा हुआ है? या यों कहिए कि यदि दाहिने हाथ का दस्ताना चौथे आयाम में घूम जाय तो बायें हाथ का दस्ताना बन जायगा?

बहुत-से विद्यार्थी मोबियस पट्टी (Mobius Band) से परिचित होंगे।
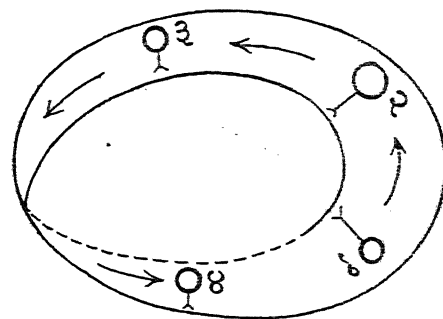
इस पट्टी में केवल एक ही तल होता है जिसे चाहे बाह्य तल कहें चाहे आन्तरिक तल। यदि इसके तल पर मनुष्य को सीधा खड़ा करके चलाया जाय तो वह बिना तल को छोड़े आप से आप उल्टा हो जायगा। अब प्रश्न यह आता है कि हमारे अवकाश (Space) का क्या स्वरूप है। क्या यह संभव नहीं है कि अवकाश चौथे आयाम पर घूमा हुआ हो, अर्थात् उसमें चौथे आयाम की वक्रता हो। यदि ऐसा हो तो यदि हम दाहिने हाथ के दस्ताने को अवकाश की बाहरी परिधि पर फेकें तो वह सारी परिधि का चक्कर काटकर लौट आयेगा और बायें हाथ का दस्ताना बन जायगा।

यह प्रश्न बहुत ही कठिन है। पहली शंका तो इसके सम्बन्ध में वह होती है कि हमारा अवकाश सान्त है या अनन्त ? यदि हम कहें कि अवकाश सान्त है तो अगला प्रश्न यह उठता है कि अवकाश के परे क्या है ? उत्तर होगा "कुछ नहीं।" और कुछ नहीं का अर्थ भी है अवकाश। अत: अवकाश सान्त तो हो नहीं सकता। तब मानना पड़ेगा कि अवकाश अनन्त है। यदि अवकाश अनन्त है तो उसकी आकृति कैसी और उसकी परिधि कैसी। उसकी परिधि तो तब होती जब वह सान्त होता। "अनन्त वस्तु की परिधि" तो एक परस्पर विरोधी बात हुई और यदि उसमें परिधि नहीं है तो उसमें वक्रता कहां से आयेगी। यदि अवकाश अनन्त है तो उसके बाह्य तल अथवा आन्तरिक तल का कोई अर्थ नहीं रह जाता। हम यही कह कर संतोष प्राप्त कर सकते हैं कि अवकाश का स्वरूप अज्ञेय है। "हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता"।

मैक्सिको में ओआक्साका प्रांत में सैण्ट मेरिया डेल टूल (Stanta maria del tule) नामक वृक्ष संसार में सबसे मोटे तने का है। उसकी परिधि १८० फीट है और यदि २७ आदमी फैले हुए हाथ मिला कर खड़े हों तो उसको घेर सकेंगे।

स्पुतनिक और सापेक्षवाद का सिद्धान्त

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के कारेसपौंडिंग सदस्य वितॉली गिंज-वर्ग ने तास के एक सम्वाददाता को बताया कि कृत्रिम भू-उपग्रहों के कारण आइन्सटीन के व्यापक (जनरल) सापेक्षवाद की कुछ प्रस्थापनाओं की पारिमाणिक जांच को आगे बढ़ाने के नये क्षितिज सामने आ रहे हैं।

प्रो० गिंजबर्ग का विश्वास है कि स्पुत्निकों को उदाहरण के लिए व्यापक सापेक्षतावाद के अनेक सिद्धान्तों में से निम्न चार प्रभावों की जांच के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, अन्तरिक्ष समय का पृथ्वी के समय से पीछे रहना, गुरुत्वाकर्षण की कमती बढ़ती के कारण ग्रह उपग्रहों की दीर्घवृत्तीय कक्ष से स्थानच्युति, विशाल ग्रह-उपग्रहों के अपनी धुरियों पर परिभ्रमण से उत्पन्न अतिरिक्त गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र की विद्यमानता और विद्युत चुम्बकीय तरंगों (इलेक्ट्रोमैग्नेटिक वेव) की फ्रीक्वेंसी (बारंबारता) का गुरुत्वाकर्षण परिवर्तन।

काल्पनिक परन्तु सम्भव

प्रो० गिंजबर्ग का विश्वास है कि पृथ्वी की समय-गति और उपग्रह की समय-गति में अन्तर बहुत कम होगा यह अन्तर एक साल में एक सेकण्ड से ज्यादा नहीं होगा। लेकिन अगर समग्र अन्तरिक्ष (कास्मिक) समय-गतियों समेत सृष्टि पर विचार किया जाय तो यह अन्तर कई महीनों ही नहीं बल्कि कई सालों का निकल आयेगा। किसी भावी फोटोन (प्रकाशकण) राकेट द्वारा पृथ्वी से अन्तरिक्ष की ओर कई वर्षों की यात्रा पर रवाना होने वाले यात्री—समय और गति के अपने हिसाब के मुताबिक—कई दर्जन भू-वर्षों में पृथ्वी को लौट पायेंगे। ऐसी यात्रा अब भी मुख्यतः कल्पना लोक की वस्तु है परन्तु सिद्धान्ततः वह पूर्णतः साध्य है। व्यापक (जनरल) सापेक्षवाद के सिद्धान्त ने ग्रहों की गति की दिशा में बुद्ध के दीर्घवृत्तीय कक्ष के स्थानान्तरण के बारे में सही व्याख्या दी है। जहां तक अन्य ग्रहों का प्रश्न है, अभी तक इस प्रभाव का अध्ययन नहीं किया गया है और मनुष्य के बनाये हुए भू-उपग्रहों से इस प्रभाव की पड़-ताल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगी।

गणना से पता चला है कि स्पुत्निक के कक्ष की स्थानच्युति बुद्ध से तीस गुना अधिक होगी और पैमाना कहीं अधिक सूक्ष्म होगा जिसके फलस्वरूप स्पुत्निक का एक वर्ष का पर्यवेक्षण बुद्ध के पर्यवेक्षणों का एक शता-ब्दी के बराबर सिद्ध हो सकता है।

स्पुत्निकों ने आइन्सटीन की इस भविष्यवाणी का कि धुरी के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण उत्पन्न अतिरिक्त भू-गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र विद्यमान है, परीक्षण द्वारा पड़ताल करना पहली बार सम्भव बना दिया है। यह क्षेत्र उसी तरह उपग्रह के कक्ष को स्थानभ्रष्ट कर देता है।

गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव

विद्युत चुम्बकीय तरंगों पर गुरुत्वाकर्षण का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन काफी रोचक होगा। किसी दूरवर्ती स्पुत्निक से प्रेषित विद्युत-चुम्बकीय तरंगे (उदाहरण के लिए विद्युत तरंगें) पृथ्वी पर पहुँचने पर भिन्न, और भी अधिक फ्रीक्वेंसी (वारंबारता) की होंगी। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उन्हें उसी रूप में खींच कर और भी तेज गति प्रदान कर देगा। यह प्रभाव जो फ्रीक्वेंसी की गुरुत्वाकर्षण स्थानच्युति के नाम से जाना जाता है, रेडियो तरंगों पर बहुत अधिक सुगमता से प्रकट होता है। एक विशेष यंत्र, अणु-जैनेरेटर, तैयार भी हो चुका है जो फ्रीक्वेंसी (वारंवारता) की अधिक स्थिरता को सुनिश्चित करता है। वह स्पुत्निक के रेडियो ट्रांसमीटर पर फिट किया जा सकता है। ये संकेत (सिगनल) सुपर सेंसिटिव रिसीवरों (अति सूक्ष्म

तरंगों को ग्रहण करने वाले रेडियो) की मदद से पृथ्वी पर सुने जा सकते हैं।

स्पुत्निक व्यापक सापेक्षवाद के सिद्धान्त में अन्तर्निहित एक और महत्त्वपूर्ण कार्य पूर्ण करेंगे, यह कार्य है : हमारे छायापथ से दूर समग्र तारा मंडलों के प्रकाश को मापना। "एक्सोजेफयर" के दहकने के कारण हमारे लिए यह काम अपनी धरती से पूर्ण करना प्रायः असम्भव है। दूसरी ओर स्पुत्निक इसे सुगमता से कर देगा क्योंकि वह वायुमण्डल से बाहर गतिमान रहता है।
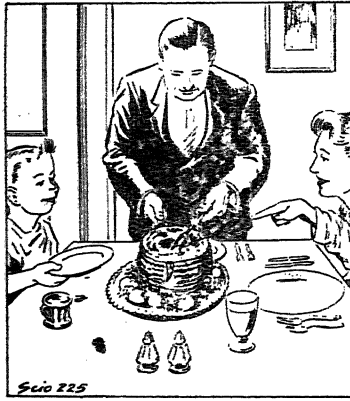
यूरुग्वे के निवासी संसार में सबसे अधिक मांस खाते हैं—२६४ पाउण्ड (३ मन १० सेर) प्रति प्राणी प्रति वर्ष। आइस लैंड में दूध सबसे अधिक उपयुक्त होता है। जो प्रायः ४०० क्वार्ट प्रति प्राणी प्रति वर्ष है। और आयर लैण्ड के निवासी सबसे अधिक शक्ति वर्धक भोजन करते हैं। वे प्रति दिन ३, ५४५ कैलोरी प्रति प्राणी लेते हैं।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य

का

अवतरण

[संकलनकर्ता—डा० शिवगोपाल मिश्र]
प्राध्यापक, रसायन विभाग प्रयाग वि० वि०

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगति का मूल्यांकन करने के दृष्टिकोण से अगस्त सन् १९५५ में हिन्दी पुस्तकों की एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया था। इस अवसर पर राष्ट्रपति ने सुझाव दिया था कि आगे चल कर हिन्दी के वैज्ञानिक और प्राविधिक (टेकनिकल) साहित्य की प्रदर्शिनी का आयोजन शिक्षा मंत्रालय करे। एतदर्थ ५ दिसम्बर सन् १९५७ को नई दिल्ली में "हिन्दी में वैज्ञानिक तथा प्राविधिक साहित्य" की प्रदर्शिनी का आयोजन हुआ जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति ने ही किया। हिन्दी वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्य की यह प्रदर्शिनी इस प्रकार के साहित्य का मूल्यांकन करने का पहला प्रयास है। इसके लिये लगभग एक हजार पुस्तकें चुनी गई हैं जो विविध विषयों की श्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि कृतियां कही जा सकती हैं। इन पुस्तकों में अधिकतर माध्यमिक और उच्च स्तर की पुस्तकों को ही स्थान दिया गया है।

इस प्रदर्शिनी के छः मुख्य विभाग हैं—

(१) भौतिक विज्ञान—इसमें गणित, भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र वनस्पति विज्ञान, आयुर्वेद, आरोग्य शास्त्र आदि सभी मुख्य भौतिक विज्ञानों की पुस्तकें हैं। इंजीनियरी तथा विज्ञान के उत्तम संदर्भग्रंथ भी इसी में सम्मिलित हैं।

(२) सामाजिक विज्ञान—इसमें अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मानवविज्ञान, मनोविज्ञान, कानून आदि की कृतियाँ हैं।

(३) सामान्य तथा सरल विज्ञान—जन साधारण में वैज्ञानिक विषयों की जानकारी फैलाने के लिये हिन्दी में लिखी विभिन्न पुस्तकें।

(४) प्राविधिक विभाग—तत्संबंधी पुस्तकों की संख्या अत्यन्त कम है फिर भी कुछ उच्च स्तर की पुस्तकें हैं।

(५) ललित-कला विभाग—ललितकला सम्बन्धी अधिकांश साहित्य या तो अंग्रेजी में था या संस्कृत में, किन्तु स्वतन्त्रता के बाद भारतीय भाषाओं के विकास के फलस्वरूप हिन्दी में तत्सम्बन्धी अनेक रचनायें हुई हैं।

(६) वैज्ञानिक पत्र-पत्रिका विभाग—विभिन्न विषयों पर निकलने वाली पत्रिकायें एवं पत्र।

आधुनिक पुस्तकों के साथ ही इस प्रदर्शिनी में उन्नीसवीं शती के रचे गये ग्रंथ भी रखे गये। ये हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा और गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी तथा राष्ट्रपति के निजी पुस्तकालय से प्राप्त किये गये। प्रदर्शिनी के आयोजन के सम्बन्ध में खोज करते समय हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों की अनेक पुस्तकों की पाण्डुलिपियों का पता लगा है। ऐसी पुस्तकें सभी प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध हो सकती हैं अतः भारतीय शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधानमंत्रालय भारत की सभी भाषाओं के वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्य की एक प्रदर्शिनी का आयोजन करने जा रहा है। मद्रास, बम्बई और

कलकत्ता जैसे केन्द्र ऐसी प्रदर्शिनियों के लिये उपयुक्त समझे गये हैं।

पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विज्ञान की अद्‌भुत उन्नति के कारण अन्य राष्ट्र बहुत आगे बढ़ गये हैं। परन्तु हमारी राजनीतिक दासता ने हमें विपरीत दिशा में ले जाकर पटका। हमारी शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा—अंग्रेजी को बनाया गया जिसके फलस्वरूप हमारी भाषाओं का स्वाभाविक विकास रुक गया, तेजी से आगे बढ़ते हुये मानव ज्ञान के अनेक नये क्षेत्रों से ये भाषायें अछूती रह गईं। स्वतंत्र लेखकों को किसी प्रकार की प्रेरणा और सहायता मिलना तो दूर रहा, साधारण पाठ्य पुस्तकों को भी इन भाषाओं में लिखना कठिन हो गया। किन्तु आश्चर्य कि इतने व्यवधानों के होते हुये भी विभिन्न भारतीय भाषाओं में विज्ञान विषयक साहित्य का एक स्तुत्य प्रयास होता रहा। इसके परिणाम स्वरूप हमें सन् १८०० से १६०० ई० के बीच लिखी गईं रसायन, भौतिकी, बीजगणित, वनस्पति-शास्त्र, कानून आदि विषयों की बहुत सी पुस्तकें प्राप्त हैं। इन पुस्तकों में भारत की प्राचीन वैज्ञानिक परम्परा को जीवित रखने और तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति के साथ शृंखलाबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जिस भौतिक एवं सांस्कृतिक जागरण का नवोदय हुआ उससे भारतीय भाषाओं में एक नवीन चेतना आई और इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में कई उच्च-कोटि के मौलिक ग्रंथों की रचनायें हुईं। सन् १६१५ ई० तक जो उल्लेखनीय कार्य, हिन्दी के क्षेत्र में हुये उनमें लक्ष्मीधर मिश्र की त्रिकोणमिति, सुधाकर द्विवेदी की गणित और ज्योतिष की पुस्तकें, श्री महेशचरन सिंह और श्री रामशरणदास की भौतिक और रसायन के विभिन्न अंगों की पुस्तकें थीं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक शब्द- कोष अपनी कोटि का प्रथम प्रयास था। विज्ञान परिषद द्वारा 'विज्ञान' पत्रिका का १६१४ ई० में सर्वप्रथम प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

हिन्दी में वैज्ञानिक और प्राविधिक साहित्य का जो द्वितीय उत्थान हुआ उसमें और उच्च स्तर की रचनायें निकलीं। विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वालों और शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्धित अनेक विद्वानों ने भारतीय भाषाओं में साहित्य की रचना करने के महत्त्व को समझा और अंग्रेजी से सम्बन्ध होने के कारण उसके समस्त वैज्ञानिक वाङ्‌मय का उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। भले ही इस उत्थान की वैज्ञानिक रचनायें हमें साधारण जान पड़ें किन्तु हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के विकास के इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान रहेगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का बोलबाला हुआ। हिन्दी राष्ट्र-भाषा घोषित हुई। सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थायें वैज्ञानिकसाहित्य निर्माण की योजनायें बनाने लगीं। साथ ही अनेक विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाने से इस कार्य में सुविधा हुई। शिक्षा पाठ्यक्रमों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक विद्वान और संस्थायें वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में जुट गईं। पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ सामान्य विज्ञान और उच्चस्तरीय वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकें भी लिखी जा रही हैं जिसके फलस्वरूप वैज्ञानिक साहित्य की मौलिक रचनाओं में दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि होती जा रही है। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की रचना को प्रोत्साहित करने के लिये केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा अकादमियों ने पुरस्कार-योजनायें चालू की हैं। इन योजनाओं ने गत दशाब्द में अनेक लेखकों और प्रकाशकों को प्रोत्साहन दिया और अधिक से अधिक साहित्य का निर्माण करने के लिये उन्हें प्रेरित किया। व्यक्तियों और संस्थाओं को विश्वकोष, संदर्भ-पुस्तकें और वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार करने के लिये सरकार की ओर से जो वित्तीय सहायता और अनुदान दिये गये उनका भी परिणाम उत्साहजनक रहा है। मौलिक रचनाओं के साथ साथ अनेक योरोपीय भाषाओं की प्रसिद्ध रचनाओं के अनुवाद भी तीव्र गति से हो रहे हैं।

पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कार्य एक अनूठा कदम है। सन् १६५० में शिक्षा मन्त्रालय ने वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की। इसमें चुने

हुये वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् थे। इसके निर्देशानुसार कुछ वर्षों में ही विज्ञान की अनेक शाखाओं की पारिभाषिक शब्दावली तैयार हुई है जिसके फलस्वरूप हिन्दी में अवतरित वैज्ञानिक साहित्य में प्रचुर वृद्धि हुई है। किन्तु पुस्तकों की शब्दावली, शैली और उनके सामान्य स्तरों में इतना भेद हो गया है कि हिन्दी-वैज्ञानिक साहित्य के क्षेत्र में एक अराजकता सी फैल गई है। अतएव यह बहुत आवश्यक है कि ऐसी शब्दावली विकसित हो जो समान रूप से सबों द्वारा प्रयुक्त हो और जिसमें भावों के वहन करने की अभूतपूर्व शक्ति हो। हर्ष का विषय है कि उत्तर प्रदेश के इंटरमीजिएट बोर्ड ने यह घोषणा कर दी है कि पाठ्यक्रम के लिये वे ही पुस्तकें चुनी जावेंगी जिनके पारिभाषिक शब्द भारत सरकार द्वारा प्रकाशित कोषों के अनुसार होंगे। इससे लेखक, शिक्षक एवं परीक्षक समान रूप से एक ही शब्दावली का प्रयोग करने के लिये वाध्य होंगे जिससे विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ एकता आने की सम्भावना बढ़ गई है।

भारतीय सरकार ने विशेषज्ञों की कई समितियाँ बना दी हैं जो अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के लिये हिन्दी शब्द चुनने या गढ़ने के काम में लगी हैं। गणित व भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति शास्त्र आदि के लिये अलग-अलग समितियाँ हैं। इसमें से गणित और रसायन की समितियों ने सबसे अधिक कार्य किया है, किन्तु ५ वर्षों के प्रयास के पश्चात् भी इंटर की कक्षाओं तक के लिये ही शब्दों की सूची प्रकाशित हो पाई है। इस प्रकार से प्रायः बीस विषयों की छोटी-छोटी शब्दावलियाँ प्रकाशित हुई हैं।

यहाँ डा० रघुबीर द्वारा निर्मित पारिभाषिक शब्द कोष का उल्लेख आवश्यक है। इसमें प्रायः सभी वैज्ञानिक विषयों के शब्द आये हैं और इन शब्दों की संख्या कई हजार है। परन्तु खेद है कि भारत सरकार की शब्दावली की भाँति इसे प्रमाणिक नहीं माना जाता, यद्यपि इसके अनेक शब्द ज्यों के त्यों, उपयुक्त शब्दों के न मिलने पर, चुरा लिये जाते हैं। ऐसी स्थिति में विज्ञान विषयक लेखक को बराबर डर लगा रहता है कि निकट भविष्य में रघुवीर शब्दावली के व्यवहार करने पर उसकी कृति बेकार हो जावेगी।

अब तो केन्द्रीय और प्रादेशिक दोनों सरकारों ने कुछ प्रकाशन कार्य भी अपने हाथों में लिया है। यही नहीं विभिन्न विषयों पर पुस्तकों के लिखाने की भी योजना उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा चालू की गई है, जिससे अनुवाद कार्य के साथ-साथ निकट भविष्य में प्रभूत मौलिक कृतियों के प्रकाश में आने की सम्भावना है। इसके साथ-साथ अनेक प्रकाशक जो अब तक केवल अंग्रेजी साहित्य प्रकाशित करते थे, अब हिन्दी के क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। कई विदेशी प्रकाशक भी अब थोड़े-बहुत हिन्दी के ग्रंथ छापने लगे हैं। विदेशी प्रकाशकों की विदेशियों द्वारा लिखाई गई कई उपयोगी पाठ्य-पुस्तकों के अनुवाद उन्हीं प्रकाशकों द्वारा हिन्दी में प्रकाशित होने लगे हैं।

इधर केन्द्रीय सरकार ने नागरी प्रचारिणी सभा को ६।। लाख रुपये एक विश्वकोष के लिये दिया है, जो निश्चित रूप से तैयार होने पर एक उपयोगी ग्रंथ सिद्ध होगा। साथ ही सरकारी संस्था "नेशनल बुक ट्रस्ट" की स्थापना एक सामयिक घटना है जिसके द्वारा अच्छी एवं सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन होगा। अतः आशा है कि वैज्ञानिक पुस्तकों को अवश्य ही प्राथमिकता मिलेगी।

अब हम यहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के सृजित वैज्ञानिक साहित्य की सूची विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत करेंगे। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यह सूची किसी भी दशा में पूर्ण नहीं मानी जा सकती क्योंकि प्रकाशकों के क्षेत्र इतने विस्तृत हैं कि एक स्थान पर बैठकर सबों से परिचित हो लेने के सपने भी नहीं देखे जा सकते।

१—पाठ्य पुस्तकें

(अ) गणित : हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इंटरमीडिएट कक्षाओं के शिक्षण के लिये गणित की पुस्तकों

की एक योजना बनाई थी जिसके अन्तर्गत डा० डी० पी० शुक्ल का गति विज्ञान, डा० हरिश्चन्द्र गुप्त का चलराशि कलन और डा० ब्रजमोहन की ठोस ज्योमिति प्रकाशित हुई। गयाप्रसाद एण्ड सन्स ने डा० ब्रजवासी लाल की तीन पुस्तकें, प्रारम्भिक गतिविज्ञान, आधुनिक स्थिति विज्ञान और प्रारम्भिक चलन कलन प्रकाशित की और श्री हरस्वरूप शर्मा की घन ज्यामिति, नियामक ज्यामिति और समतल त्रिकोणमिति। हिन्दी प्रकाशन मंडल काशी विद्यालय की ओर से डा० ब्रजमोहन की दो भागों में नियामक ज्यामिति प्रकाशित हुई और इंटरमीडिएट बीजगणित प्रश्नोत्तर भी। इसी प्रकाशक ने श्री कमलमोहन की ठोस रेखागणित भी प्रकाशित की। लाला रामदयाल अग्रवाल ने इलाहाबाद से डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव और श्री रामसिंह का चलन कलन भी प्रकाशित किया। मैकमिलन एण्ड कम्पनी ने लोनी की प्रसिद्ध पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद—नियामक ज्योमिति, वैश्लेषिक त्रिकोणमिति, स्थिति विज्ञान और गति विज्ञान प्रकाशित किये, साथ ही हाल एण्ड नाइट की उच्चतर बीजगणित भी। पोथीशाला लिमिटेड प्रयाग ने डा० गोरखप्रसाद की दो पुस्तकें—प्रारम्भिक अवकल समीकरण और सरल गणित ज्योतिष निकाली जिनका स्तर बी० एस-सी० के बराबर है। बी० एस-सी० के गणित में ६ विषय पढ़ाये जाते हैं और प्रत्येक पर एक-एक पुस्तक की आवश्यकता पड़ती है। अंग्रेजी में प्रत्येक विषय पर दर्जनों पुस्तकें मिलेंगी परन्तु हिन्दी में इन ६ विषयों में से केवल तीन पर एक-एक पुस्तकें प्राप्त हैं। डा० हरिश्चन्द्र गुप्त और डा० गोरखप्रसाद की पुस्तकों का उल्लेख ऊपर आ चुका है जो क्रमशः चलराशि कलन और अवकल समीकरण है। डा० बद्रीनाथप्रसाद की पुस्तक हाइड्रोस्टेटिक्स पर लिखी गई अंग्रेजी की कृति का अनुवाद है।

(ब) भौतिकी : सन् १९४८ में हिन्दी प्रकाशन मंडल काशी विश्वविद्यालय ने डा० निहालकरण सेठी की प्रारम्भिक भौतिकी का द्वितीय संस्करण निकाला। स्टुडेंट्स फ्रेंड्स प्रयाग ने डा० नन्दलाल सिंह की भौतिक विज्ञान प्रवेशिका एवं प्रायोगिक भौतिक विज्ञान पुस्तकें इंटरमीडिएट कक्षाओं के हेतु निकाली। नव निर्माण प्रकाशन ने संख्यात्मक भौतिक विज्ञान पर भी एक पुस्तक निकाली। हाई स्कूल के लिए जो उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें श्री कृष्ण कुमार और आर० सी० भार्गव का भौतिक शास्त्र (भार्गव एण्ड संस चँदौसी), डा० बनारसीलाल कुलश्रेष्ठ का भौतिक शास्त्र (आगरा बुक स्टोर), डा० कृष्णबहादुर का भौतिक विज्ञान (लाला रामनारायण लाल प्रयाग) और डा० सत्यप्रकाश तथा गोपालस्वरूप भार्गव की सरल भौतिकी (लाला रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग) हैं। बी० एस-सी० के लिए भौतिक शास्त्र में पांच विषयों—ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत तथा चुम्बकत्व—की पुस्तकों की आवश्यकता है जिनमें केवल एक ही विषय—प्रकाश पर डा० निहालकरण सेठी की पुस्तक प्रकाश विज्ञान (प्रीमियर पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली) प्राप्य है।

(स) रसायन : हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कक्षाओं के लिए उपयोगी पुस्तकों की सूची बहुत बड़ी है किन्तु अधिकांश पुस्तकों में डा० रघुबीर की शब्दावली प्रयुक्त होने से उनका प्रचार न हो सका। केवल कतिपय लेखकों की रचनायें सर्वप्रिय हो पाई। ऐसे लेखकों की रचनाओं में डा० सत्यप्रकाश की सामान्य रसायन शास्त्र, कार्बनिक रसायन और प्रायोगिक रसायन (स्टुडेंट्स फ्रेंड्स), डा० संतप्रसाद टंडन की कार्बनिक रसायन (इंडियन प्रेस) और डा० रामदास तिवारी की कार्बनिक रसायन (महेश एण्ड कम्पनी आगरा) है। प्रो० श्री प्रकाश (कानपुर) ने भी कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन, दोनों पर हिन्दी में पुस्तकें लिखीं। बी० एस-सी० कक्षाओं में तीन विषयों के लिए पुस्तकें चाहिये—कार्बनिक, अकार्बनिक और भौतिक रसायन पर, किन्तु केवल दो पर पुस्तकें हैं। कार्बनिक रसायन पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। शेष दो पर केवल चार पुस्तकें हैं। डा० सत्यप्रकाश की

सामान्य रसायनशास्त्र (भारती भंडार, प्रयाग), श्री प्रकाश की अकार्बनिक रसायन, डा० रामचरण मेहरोत्रा की भौतिक रसायन की रूपरेखा और डा० कृष्णबहादुर की वैश्लेषिक रसायन (पोथीशाला, प्रयाग)।

(द) वनस्पति और प्राणि शास्त्र: डा० आर० डी० विद्यार्थी कृत वनस्पति शास्त्र (इंडियन प्रेस), डा० धर्मनारायण कृत वनस्पति शास्त्र (किताबमहल), लासन और साहनी कृत अंग्रेजी पुस्तक का अनूदित संस्करण वनस्पति विज्ञान (भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली), ए० सी० दत्त का वनस्पति शास्त्र (अपर इंडिया पब्लिसिंग हाउस, लखनऊ) आदि प्रमुख वनस्पति विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकें हैं। जीवविज्ञान के क्षेत्र में ए० पी० सिंह का जीव विज्ञान, डा० वी० सी० महेन्द्र का माध्यमिक जन्तु विज्ञान, डा० उमाशंकर श्रीवास्तव का आधुनिक प्राणि शास्त्र (विद्या भवन, लखनऊ), डा० आर० डी० विद्यार्थी का माध्यमिक प्राणि शास्त्र (इंडियन प्रेस) और चम्पत स्वरूप गुप्त का जन्तु विज्ञान (किताब महल, प्रयाग) समुचित लोकप्रिय ग्रंथ हैं।

(य) धातु और खनिज:—नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने डा० दयास्वरूप कृत धातु विज्ञान नामक पुस्तक प्रकाशित की है। भूगर्भ शास्त्र विषयक पुस्तकों में वसन्त-मालिका मद्रास से प्रकाशित डा० एम० एस० कृष्णन की भारतीय भूतत्व की भूमिका (अंग्रेजी का अनुवाद) उल्लेखनीय है। भूगोल कार्यालय से एच० एल० शर्मा की भारत की खनिज सम्पत्ति और प्रो० एन० एल० शर्मा की भारतवर्ष की खनिजात्मक सम्पत्ति एवं डा० रघुबीर कृत खनिज अभिज्ञान (नागपुर) उल्लेखनीय हैं।

२—यन्त्रकला और इंजीनियरी

रेल विज्ञान सम्बन्धी पुस्तक रेल इंजन परिचय और संचालक (पं० ओंकारनाथ शर्मा कृत) का प्रकाशन विज्ञान परिषद् प्रयाग ने किया है। श्री कालाचांद शील की "शील रेडियों एण्ड इलेक्ट्रिकल इम्पोरियम कलकत्ता" से प्रकाशित बेतार विज्ञान अद्वितीय कृति है। ए० बी० माथुर कृत रेडियो गाइड, माथुर इंजीनियरिंग वर्क्स दिल्ली से प्रकाशित हुई है। देहाती पुस्तक भण्डार दिल्ली ने अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग बुक, इलेक्ट्रिक गाइड, इलेक्ट्रिक वायरिंग, इलेक्ट्रिक बैटरीज, आयल व गैस इंजन गाइड, आयल इंजन गाइड, क्रूड आयल इंजन गाइड, वायरलेस रेडियो गाइड, रेडियो सर्विसिंग, मोटरकार वायरिंग, प्रैक्टिकल आर्मेचर बाईडिंग, खराद तथा वर्कशाप ज्ञान, इलेक्ट्रिक लाइटिंग, स्टीम वायरलेस, स्टीम इंजीनियर्स, मोटरकार इंस्ट्रक्टर्स, घड़ी साजी आदि ६५ से ऊपर पुस्तकें हैं। किन्तु इन पुस्तकों का स्तर ऊंचा नहीं, अर्ध शिक्षितों को अधकचरा ज्ञान देने एवं पैसा ठगने के बहाने अधिक।

३—औद्योगिक सामग्री

विहार राष्ट्र-भाषा-परिषद् ने प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा की रबर सम्बन्धी पुस्तक; अशोक प्रेस पटना ने उन्हीं की प्लास्टिक नामक कृति और हिन्दी प्रकाशन मण्डल बनारस ने ईख और चीनी नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। देहाती पुस्तक भण्डार दिल्ली ने रंगसाजी, प्लास्टिक गाइड, बूट पालिश, इंक मास्टर, रबर की मोहरें, हेयर आयल, आतिशबाजी, हलवाई मास्टर, फिनायल साजी, लांड्री टीचिंग आदि ४० से अधिक सस्ती पुस्तकें छापी हैं।

४—ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ

त्रिवेणी सिंह कृत ग्रहनक्षत्र एवं डा० गोरखप्रसाद कृत नीहारिकायें के प्रकाशन विहार राष्ट्र-भाषा-परिषद् पटना ने किया है। उत्तर प्रदेश शासन की ओर से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें भारतीय ज्योतिष के इतिहास पर डा० गोरखप्रसाद की पुस्तकें हैं।

५—इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ

हरिशरणानन्द वैद्य कृत भस्म विज्ञान में भारतीय आयुर्वेद के इतिहास का सूक्ष्म परिचय मिलता है।

इसी प्रकार जामनगर से प्रकाशित श्रीगुलाब कुंवर बा की कृति चरकसंहिता में भी आयुर्वेद का इतिहास सन्निविष्ट है। विहार राष्ट्रभाषा पटना से प्रकाशित डा० सत्यप्रकाश की वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा भारत की प्राचीन वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को बतानेवाली अनुपम कृति है। उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा डा० गोरखप्रसाद की पुस्तक "भारतीय ज्योतिष" एवं डा० विभूतिभूषणदत्त और डा० अवधेशनारायण सिंह की भारतीय गणित का इतिहास (डा० कृपाशंकर शुक्ल द्वारा अनूदित) प्रकाशित ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

६—ज्ञानवर्धक साहित्य

विज्ञान परिषद् प्रयाग से प्रकाशित रामेशवेदी कृत साँपों की दुनियाँ, हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित दयानन्द पंत का विकासवाद और डा० सत्यप्रकाश का आधुनिक आविष्कार, अशोक प्रकाशन लखनऊ से दैनिक जीवन में विज्ञान माला, पोथीशाला प्रयाग से डा० गोरखप्रसाद की सरल फ़ोटोग्राफी, ज्ञानमन्डल काशी से भगवती प्रसाद श्रीवास्तव की परमाणु शक्ति आदि महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं जो लोकोपयोगी होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक भी हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं किन्तु अधिकांशतः उनके लेखक उन विषयों के पारंगत नहीं। इधर-उधर की सामग्री को हिन्दी में अनूदित कर पुस्तकाकार करने का श्रेय उन्हें अवश्य है। ऐसी पुस्तकों में किताब महल से प्रकाशित जगपति चतुर्वेदी की कृतियाँ हैं। उनके नाम हैं—वनस्पति की कहानी, बिजली की लीला, भूगर्भ विज्ञान, समुद्री जन्तु, विलुप्त जन्तु और शल्य विज्ञान की कहानी। इसी प्रकार छात्र हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग ने भी उनकी कई नई पुस्तकें प्रकाशित की है जिनमें मवेशियों के साधारण रोग, वैज्ञानिक खाद, हमारे गाय-बैल, देशी खाद, फसल रक्षा की दवाएं, मवेशियों के छुआछूत रोग हैं। जामिया मिलिया देहली से सरकार की सहायता से ज्ञान सरोवर नामक वृहत् ग्रंथ वैज्ञानिक विषयों पर छपा है जो सचित्र है और ३०४ पृष्ठों में होते हुये केवल दो रुपये का है। यद्यपि इसका प्रथम खन्ड ही अभी प्रकाश में आया है किन्तु योजना से ज्ञात होता है कि अवश्य ही जनतोपयोगी साहित्य समक्ष आवेगा। लखनऊ से एक बड़ी सी पुस्तक "विश्वभारती" खन्ड-खन्ड करके प्रकाशित हुई। ऐसे ५० खन्ड छपने थे किन्तु काम आधा भी न हो पाया था कि आर्थिक कठिनाइयों से काम रुक गया। इस पुस्तक में वैज्ञानिक विषयों का सरल सचित्र लोकप्रिय विवेचन है। सस्ता साहित्य मन्डल, नई दिल्ली से सुलभ विज्ञानमाला के अन्तर्गत बच्चों के लिये डा० सत्यप्रकाश के सम्पादकत्व में तीन पुस्तकें निकल चुकी हैं—प्रकाश की बातें, ध्वनि की लहरें और उष्म अथवा गरमी। यहीं से श्री छोटाभाई सुथार की एक पुस्तक धरती और आकाश अनुवाद करके छापी गई है।

७—कृषि एवं पशु सम्बन्धी ज्ञान

कालेजों में कृषि की पढ़ाई होने के कारण अनेक पाठ्यपुस्तकें प्रकाश में आई हैं किन्तु इतना पहले ही बता दिया जाय कि एकाध को छोड़कर शेष निम्न-स्तर की पुस्तकें हैं। श्रीचतुरसेन जैन की पूसा कालेज, नई दिल्ली से प्रकाशित "खेती व पशुपालन गणित" सस्ता साहित्य प्रकाशन, दिल्ली से श्री एन० डी० व्यास कृत कृषि ज्ञान कोष तथा देशसेवा मंडल प्रयाग से मोतीलाल सेठ कृत "कृषि हानिकारक कीट पतंग नामक पुस्तकें कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। देहाती पुस्तक भंडार दिल्ली से रामेश्वर अशान्त के १५ ग्रंथ कृषिसम्बन्धी निकले हैं जिनमें आधुनिक कृषि विज्ञान, तरकारियों की खेती, अच्छी खाद, फूल फुलवारी, धान की खेती, आम की बागवानी आदि प्रमुख हैं। खेती और ट्रैक्टर भी यहीं से प्रकाशित हुआ है। किन्तु ये अत्यन्त सस्ती एवं भ्रामक पुस्तकें हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली तथा कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश की ओर से समय-समय पर पत्रिकाओं के रूप

में विभिन्न विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित होती रही हैं जिनमें अत्यन्त लोकोपयोगी एवं प्रामाणिक सामग्री दी जाती है। इन प्रकाशनों में **धान की खेती, मूंगफली की खेती, प्याज और लहसुन की खेती, कपास की खेती, भारत में आम, खादें और उनका प्रयोग, आलू की खेती** आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त शंकरराव जोशी, जगपति चतुर्वेदी तथा शीतलादीन तिवारी ने भी कृषिविषयक अनेक पुस्तिकायें लिखी हैं। **घाघ और भड्डरी तथा खेती की कहावतों** पर अनेक पुस्तकें बाजारों में आई हैं किन्तु उन सब में एक ही सामग्री घूम फिर कर लिखी गई है।

पशु पालन सम्बन्धी साहित्य में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली से प्रकाशित **गोसंवर्धन, बकरी पालन, मौना पालन,** और **मछली पालन** उल्लेखनीय हैं। श्री बी० एम० रावत कृत **मौन पालन** भी उपयोगी कृति है। खादी प्रतिष्ठान, कलकत्ता से **भारत में गाय** तथा देहाती पुस्तक भंडार से प्रकाशित **पोल्ट्री फार्मिंग** और **पोल्ट्री सर्जन** पुस्तकें भी काम की हैं।

कृषि सम्बन्धी बहुत सा साहित्य निकट भविष्य में हिन्दी में रूपान्तरित हो समक्ष आवेगा क्योंकि अधिक अन्न उपजाने के लिए आवश्यक है कि कृषि सम्बन्धी मौलिक कृतियां लिखी जावें।

८—पारिभाषिक शब्द कोष

पाँच विभिन्न केन्द्रों से पारिभाषिक शब्दों के कोषों का काम हुआ :

(१) भारतीय हिन्दी परिषद की ओर से डा० सत्यप्रकाश के सम्पादकत्व में **अंग्रेजी हिंदी कोष** प्रारम्भ हुआ है जिसके दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। यह सभी वैज्ञानिक विषयों का संकलित कोष है।

(२) हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने **जीव रसायन कोष** (डा० ब्रजकिशोर मालवीय द्वारा संकलित) और **भूतत्व विज्ञान कोष** (एस० पी० सेन गुप्त द्वारा संकलित) प्रकाशित किया।

(३) नागपुर से डा० रघुबीर का कोष। इसने बड़ी ख्याति प्राप्त की और अधिकाँश कोषों को शब्द भण्डार देता है। इसमें संस्कृत के आधार पर शब्दावली चयन की गई है।

(४) शिक्षामंत्रिमंडल के अंतर्गत नई दिल्ली में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर समितियाँ नियुक्त करके शब्दों का निर्माण कराया जा रहा है। यह शब्दावली सरल, सुबोध एवं सर्व-ग्राह्य होगी।

(५) व्यक्तिगत प्रयासों के फल स्वरूप कुछ पारिभाषिक कोष बने हैं। इनमें डा० ब्रजमोहन का **गणितीय कोष** (चौखम्भा संस्कृत सिरीज, बनारस) और डा० माहेश्वरसिंह का जन्तु विज्ञान शब्द-कोष (आगरा बुक स्टोर) विशेष महत्व के हैं।

९—पत्र पत्रिकायें

विज्ञान से सम्बंधित पत्रिकाओं की संख्या अल्प हैं। यों विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं एवं दैनिक पत्रों में विभिन्न स्तम्भों अथवा स्वतंत्र लेखों के रूप में वैज्ञानिक साहित्य प्रकाश में आता रहा है किन्तु प्राचीन कोई ऐसी पत्रिका नहीं जो उच्चस्तरीय वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार जनता में करती होती। केवल विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित **विज्ञान** को, जो १९१४ से लगातार निकल रही है, यह गौरव प्राप्त है किन्तु साधनों की विपन्नता के कारण धीरे २ स्तर में ह्रास ही होता रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान, नयी दिल्ली की ओर से दो मासिक पत्रिकायें **खेती** और **धरती के लाल** प्रकाशित होती हैं, जिनका स्तर सराहनीय एवं सामग्री उपयोगी होती है। कृषि सूचना उत्तर प्रदेश की ओर से प्रकाशित **कृषि और पशुपालन** पत्रिका, **कृषि समाचार,** एवं **पंचायत राज,** भी उल्लेखनीय हैं। भारतीय विज्ञान अनुसंधान परिषद की ओर से प्रकाशित "विज्ञान प्रगति" भी समय समय पर होने वाले आविष्कारों से परिचित कराने वाली पत्रिका है। **कृषि सार** (बिजनौर) और **किसान** (इन्दौर) भी उपयोगी पत्रिकायें हैं।

अभी तक विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी में कोई अनुसंधान पत्रिका नहीं प्रकाशित होती थी। विज्ञान परिषद प्रयाग ने सर्वप्रथम "विज्ञान अनुसंधान पत्रिका" के रूप में ऐसा प्रयास किया है जिसमें भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के अनुसंधान शोधपत्रों को स्थान दिया गया है। कृषि और रसायन के क्षेत्र को ही नहीं गणित, भौतिक एवं ज्योतिषशास्त्र जैसे विषयों को भी स्पर्श करने में यह पत्रिका समर्थ होगी। इंजीनियरी सम्बन्धी एक पत्रिका रुड़की से ब्रजमोहन लाल के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती है।

उपरोक्त प्रगति पर दृष्टिपात करने पर हमें अपनी कमियाँ अपने आप परिलक्षित होने लगती हैं। पाठ्यक्रम के लिये पुस्तकें लिखने से ऐसे भ्रामक साहित्य का प्रादुर्भाव होता है कि नीचे की श्रेणियाँ तो भले ही लाभान्वित हो पावें, उच्चकक्षा के विद्यार्थी उससे लेशमात्र भी लाभ नहीं उठा सकते। उनके लिये मौलिक कृतियों की आवश्यकता होती है। ऐसी कृतियाँ महान एवं प्रतिष्ठित विदेशी वैज्ञानिकों की पुस्तकों के अनुवाद हो सकती हैं किन्तु यदि भारत को आगे बढ़ना है तो अपनी प्रतिभा को प्रकाश में लाना होगा! भारतीय वैज्ञानिकों को भारतीय वातावरण में परिशीलित एवं शोध की गई सामग्री का विस्तृत लेखाजोखा प्रस्तुत करना होगा। अनेक वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करना होगा और समय समय पर विभिन्न विश्वविद्यालयों से डाक्टरेट प्राप्त छात्रों के प्रबंधों को हिन्दी में रूपान्तरित करना होगा। तभी देश में वैज्ञानिक जागरण एवं हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का संतोषजनक अवतरण सम्भव है।

प्याज की खेती

(जगदीश चन्द्र श्रीवास्तव)

प्याज का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है जहां इसका नाम 'पलाण्डु' बताया गया है। इससे ज्ञात होता है कि भारत में इसकी खेती प्राचीन काल से ही हो रही है, परन्तु इसकी जन्मभूमि अफ्रीका मानी गई है। अब प्रत्येक देश में इसकी खेती होती है। हमारे देश में बम्बई और मद्रास के राज्यों में इसकी बहुत अधिक खेती की जाती है और प्रति वर्ष १० लाख मन से अधिक प्याज निर्यात की जाती है।

विदेशों में प्याज की अनेक किस्में उगाई जाती हैं। स्पेन का प्याज बहुत प्रसिद्ध है जो काफी बड़ा होता है। परन्तु बिदेशी बीज एक साल से अधिक नहीं टिकता और दूर से जब तक आता है उसकी अंकुरण शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे यहां ठीक प्रकार से नहीं जमता अतः देशी बीज तैयार कर खेती करनी चाहिए है।

प्याज एक लाल, सफेद रंग की गोल, चपटी गांठ है जिसमें हरी पत्तियाँ होती हैं। गांठ में गूदेदार फूले हुए पर्त होते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार इसमे गंधक की मात्रा अधिक होने से यह खून साफ करने वाली तथा रक्तवर्धक है। यह लू और हैजे के दिनों में अच्छी चीज है। इसमें ८६·८ प्रतिशत पानी, ०·६ प्रतिशत खनिज पदार्थ, १·८ प्रतिशत प्रोटीन, १३·२ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, ०.१८ प्रतिशत कैल्शियम, थोड़ा फास्फोरस और लोहा होता है। इसमें थोड़ी मात्रा में बिटामिन बी, तथा सी भी पाई जाती है।

यह तरकारी के अतिरिक्त मसाले और औषधि के काम में भी आती है। प्याज की कच्ची और पक्की दोनों ही प्रकार की गांठों को तरकारी, सलाद, चटनी आदि के रूप प्रयोग किया जाता है। प्याज में गन्ध होती है जिसको कुछ लोग बुरा समझते हैं। छोटी इलायची खाने से इसकी गंध दब जाती है। प्याज में एक प्रकार की चरपराहट भी पाई जाती है। प्याज की गंध कीड़ों को दूर रखने का भी काम करती है। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि जहां सफेद प्याज रखी जाती है उस मकान में सांप नहीं घुसता। पकी हुई प्याज की गांठ पशुओं तथा मुर्गियों के लिए अच्छा आहार है।

उपयोग—

(१) प्याज भूनकर उसमें हल्दी और घी मिलाकर गरम-गरम बांधने से फोड़ा फूट जाता है।

(२) प्याज को पीसकर बर्रे के डंक मारे हुए स्थान पर लगाने से तुरन्त ज़हर उतर जाता है।

(३) प्याज काटकर सूँघने से सिर दर्द मिट जाता है।

(४) घी और चीनी मिलाकर प्याज का रस खाने से बवासीर में लाभ होता है।

भारत में प्याज प्रायः सभी जलवायु वाले स्थानों में बोई जाती है। इसके लिए आरम्भ में पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है परन्तु फसल के अच्छी तरह पकने, गाँठ को बैठने के लिए गर्मी तथा वातावरण में पर्याप्त खुश्की की आवश्यकता होती है।

प्याज को फसल की बुवाई इस प्रकार करें कि गांठ के बनने की अवस्था से पहले पौधे काफी बढ़कर तैयार हो जाँय।

विशेषतः प्याज की दो जातियाँ उनके रंग के आधार पर की जाती हैं:—

(१) लाल छिलके वाली।

(२) सफेद छिलके वाली।

फिर भी इसके कई स्थानीय नाम हैं जैसे लाल ग्लोब, सफेद ग्लोब, सफेद पटना, लाल पटना, नासिक लाल तथा धूलिया आदि।

विदेशी जातियों में है सफेद पुर्तगाल, सिलबर स्किन, आस्ट्रेलिया ब्राउन, लाल इटालियन, अमेरिकन रेड तथा मीठी स्पेनिश। बिदेशी बीजों में आस्ट्रेलिया व अमेरिका का बीज यहाँ के जलवायु के अधिक अनुकूल सिद्ध हुआ है।

सफेद छिलके वाली प्याज लाल छिलके वाली की अपेक्षा नरम और अधिक स्वादिष्ट होती है परन्तु कुछ विशेष एसिड की उपस्थिति के कारण अधिक समय तक टिक नहीं सकती और व्यापारिक दृष्टि से अनुपयोगी है अतः अधिकतर लाल प्याज ही बोई जाती है।

प्याज की खेती प्रायः सब प्रकार की उपजाऊ मिट्टी में की जा सकती है परन्तु हल्की दोमट भूमि में पैदाबार अच्छी होती है। भारी मिट्टी की अपेक्षा हल्की मिट्टी में फसल जल्दी पक कर तैयार हो जाती है।

भूमि में जल के निकास की व्यवस्था ठीक हो। भूमि समतल हो क्योंकि ऊँची नीची भूमि में ये पौधे सिंचाई के समय आसानी से बह जाते हैं। प्याज खुले खेत या क्यारी में बोई जाय ताकि उसे पर्याप्त मात्रा में प्रकाश मिल सके।

प्याज के पौधे भूमि की ऊपरी सतह से भोजन प्राप्त करते हैं, इसलिए उनकी जड़ें भूमि में २-३ इंच से अधिक गहराई तक प्रवेश नहीं करतीं।

इस फसल की पैदावार अधिकतर इसके फसल चक्र पर निर्भर रहती है। जैसे आलू के बाद प्याज लेना अधिक लाभदायक होता है क्योंकि उसकी खेती में अधिक खाद और अच्छी भूमि में अधिक जुताई करके बोई जाती है। खाद्यान्नों की फसलों के बाद उगाई गई प्याज की फसल अच्छी उगती है।

जहाँ धान की फसल के बाद प्याज बोवें वहाँ पहले खेत का पानी अच्छी तरह निकाल दें फिर अच्छी तरह जुताई करके प्याज बैठावें।

खेत की ५-६ बार देशी हल से जुताई करनी चाहिए ताकि सतह की ६-७ इंच की मिट्टी खूब बारीक हो जाय। गोबर की खाद जुताई के समय ही मिलनी चाहिए। खेत जुत जाने पर मिट्टी को भुरभुरी करके पटेला चलाकर खेत को समतल और चिकना कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् खेत की सिंचाई की सुविधा के लिए छोटी-छोटी क्यारी में विभाजित कर लेना चाहिए। खेत में एक लम्बी रस्सी की सहायता से १६ इंच के अंतर पर कतारों के निशान बना लें और उन निशानों पर नोकदार लकड़ी से ६-६ इंच पर छेद बना दें।

भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए २०० मन प्रति एकड़ गोबर या कम्पोस्ट की खाद राख में मिला कर खेत में एक सी फैला कर जुताई कर दी जाय ताकि यह मिट्टी में भली भांति मिल जाय।

विभिन्न प्रयोगों से यह विदित हुआ है कि प्रति एकड़ निम्नलिखित रासायनिक खादों को देने से प्याज की अच्छी फसल मिलती है:

अमोनियम सल्फेट—३०० पौंड।
सुपर फास्फेट—६०० पौंड।
पोटैशियम सल्फेट या राख—२०० पौंड।

जिन पौधों को नाइट्रोजन की पूरी मात्रा नहीं मिलती वे पीले हरे रंग के दिखाई देते हैं और उनकी गर्दन का भाग मोटा हो जाता है। उपर्युक्त रासायनिक खाद की आधी मात्रा खेत में बुवाई या रोपाई के समय डालें तथा शेष आधा बुवाई या रोपाई के एक माह बाद डालना चाहिए।

बीज सूखा, काला और नोकीला हो। ध्यान रहे कि बीज १ वर्ष से अधिक पुराना न हो। बोने के ढंग के अनुसार प्रति एकड़ प्याज का बीज निम्नलिखित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए:

१-रोपाई द्वारा	—	२-३ सेर बीज।
२-सीधे खेत में	—	६—८ सेर बीज।
३-सूखी गांठ के द्वारा	—	१८-२० मन

(आधे से पौन इंच व्यास की) गांठें।

पौध घर में बीज या खेत में बीज अथवा गांठ १५ अक्टूबर से १५ नवम्बर तक बोना चाहिए। दिसम्बर जनवरी तक पौधे खेत में रोप दिए जाते हैं।

प्याज बोने के तीन तरीके हैं जिनका अलग-अलग वर्णन किया जाएगा। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए आमतौर से पौध की रोपाई ही की जाती है।

१-रोपाई विधि द्वारा।

२-सीधे खेत में बीज द्वारा।

३-सूखी गांठों द्वारा।

बीज को राख में मिला कर अच्छी तरह से तैयार किए हुए ताकतवर पौध-क्षेत्र में छिड़क कर भुरभुरी मिट्टी और गोबर की बारीक की हुई खाद मिलाकर हल्की तह से ढक दें। बुवाई के बाद तुरन्त हजारा से सिंचाई कर मिट्टी को अच्छी तरह से भिगो दें। इसके उपरान्त केले के पत्ती से ढक देते हैं। बीज का छिड़काव ५-६ इंच की दूरी पर बनी कतारों में करना चाहिए। पौध-क्षेत्र की आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई करते रहना चाहिए। लगभग एक दो सप्ताह में बीज जम जाते हैं। इस समय क्यारियों पर से पत्तों को हटा दें। पौधे जब लगभग ६ इंच बड़े हो जायं (१-१॥ माह) तो खेत में रोपने के योग्य हो जाते हैं।

जिन खेतों में पौधों को रोपना हो उनमें सिंचाई की सुविधा के लिए छोटी-छोटी चौकोर क्यारियाँ बना लेते हैं। कतार से कतार की दूरी १० इंच तथा पौधे से पौधे की दूरी ६ इंच रख कर निशान बना दें। पौध-क्षेत्र में सिंचाई करने के बाद पौधों को सावधानी से उखाड़ें ताकि उनकी जड़ें टूटने न पावें। खेत में लगाने से पहले पौधे के ऊपर का लगभग एक तिहाई भाग छांट दें ताकि पौधे सीधे रह सकें। पौधों को एक या डेढ इंच से अधिक गहरे नहीं रोपना चाहिए। रोपाई के बाद तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए।

खेत को तैयार करने के बाद १२ इंच के अन्तर पर बनी हुई कतारों में हाथ से बीज गिराकर बोना चाहिए। बुवाई के पश्चात् खेत में पटेला चलाकर सिंचाई कर दें।

बीज को समान रूप से बोने के लिए उसमें राख मिला देनी चाहिए। बुवाई के एक सप्ताह बाद बीजों से अंकुर निकल आते हैं और जब पौधे ७-८ सप्ताह के हो जांय तो उन्हें सावधानी से उखाड़ कर कतारों में लगा दें या बेच दें।

पिछले वर्ष की फसल से प्राप्त प्याज की छोटी छोटी (आधा-पौन इंच व्यास) गाठों को कतार से कतार एक फुट तथा गाँठ से गाँठों को ६ इंच की दूरी पर रोपा जाता है। गाँठों से कई गाँठें निकलती हैं।

आवश्यकतानुसार प्रति सप्ताह सिचाई करनी चाहिए। फसल पकने तक कुल ८-९ सिचाइयाँ करनी चाहिए। जब फसल पकने के समीप हो उसमें पानी देना कम कर देना चाहिए तथा जब पौधों की चोटी मुड़कर लटकने लगे तो सिचाई बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए।

प्रत्येक सिचाई के बाद निराई करने और पपड़ी तोड़ने से पैदावार काफी बढ़ जाती है। पौधों की जड़ों के आस-पास भूमि को मुलायम कर देना लाभदायक होता है।

रोपाई या बुवाई के बाद लगभग पाँच महीने में फसल तैयार हो जाती है। ज्योंहीं फूल आना आरम्भ हो, पत्तियों के कुचल देने से गाँठ अच्छी पड़ती है।

प्याज की खुदाई उस समय करनी चाहिए जब वह पूरी तरह पक कर तैयार हो जाय। इसका लक्षण यह है कि प्याज की पत्तियाँ हरी होते हुए भी उसकी चोटी नीचे की ओर लटक जाती है। प्याज की पत्तियाँ जब पीली पड़ जायं और उनकी चोटियाँ नीचे की ओर लटक पड़ें तो उन्हें तेज धार के खुरपे से खोद लेना चाहिए।

प्याज की गांठों को खेत से खोदने के बाद तुरन्त ही उसके पत्तों को १-१॥ इञ्च भाग छोड़कर शेष सारे पत्तों को तोड़ देना चाहिए तथा प्याज को कमरे की फर्श पर पतली तह में फैलावें। इस प्रकार उन्हें साये में ८-१० दिन तक सुखावें। सूखी प्याज का लक्षण यह है कि प्याज कड़ी हो जाती है और गांठ के ऊपरी भाग को अंगूठे से आसानी से नहीं दबाया जा सकता।

भंडार में रखी हुई प्याज की समय-समय पर देख-भाल करते रहना चाहिए। उनको पलट कर खराब गांठों को छांटते रहना चाहिए।

रोपी गई प्याज की उपज २००-२५० मन प्रति एकड़ होती है। बीज द्वारा सीधे खेत में बोने से मेहनत और खर्च तो कम पड़ता है परन्तु गांठें छोटी पड़ती हैं और उपज कम होती है। परन्तु जो फसल गांठों को रोपकर उगाई जाती है उसकी उपज सामान्यत: अन्य दोनों बुवाई की रीतियों से अधिक होती है।

प्याज को तब तक भंडार में रखना चाहिए जब तक बाजार भाव ऊंचा न हो जाय। फिर भी अच्छे दामों में बेचने के लिए उनका वर्गीकरण कर दें अर्थात् उसकी मोटाई, भार व रंग के अनुसार अलग-अलग करके विभिन्न भावों (दर) से बेचनेसे अच्छा लाभ होता है।

स्वस्थ और बढ़िया किस्म की गांठों को अक्टूबर-नवम्बर के महीने में अच्छी तरह तैयार किए पौध-क्षेत्र में ३-४ इंच गहरे कूंड़ में बो दें। बुवाई के पहले गांठ ले के ऊपरी सिरे का १।३ भाग काट देना चाहिए ताकि अंकुरों को सुगमता पूर्वक बाहर आने और सीधे बढ़ने में सुविधा रहे। गांठों से कटा हुआ ऊपरी भाग खाने के काम में लाया जा सकता है।

पौध-क्षेत्र में प्याज गाड़ते समय पौधे से पौधे की दूरी १॥ फीट और कतार से कतार की दूरी २ फीट रखी जाती है। इसकी देख-भाल सामान्य प्याज की फसल की भांति ही की जाती है। दो-तीन मास के बाद उनमें डंठल निकल आते हैं जिन पर सफेद रंग के फूल के गुच्छों में बीज उत्पन्न होता है। जब यह पक जाय और काले बीज दिखाई देने लगें तो फल को डंठल से काटकर अलग कर धूप में अच्छी तरह सुखा लें। बीजों को फटककर साफ करने के बाद बोतलों में बन्द कर रख देना चाहिए।

प्याज का बीज २॥-३ मन तक प्रति एकड़ उत्पन्न होता है जो १-२ रुपया प्रति सेर बाजार में बिक सकता है।

फसल को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों में भुनगियों (थ्रिप्स) और पत्तियां खाने वाली गिंडारें प्रमुख हैं।

ये थ्रिप्स जाति के कीड़े प्याज को अधिक हानि पहुँचाते हैं। इनके आक्रमण से पौधे सूख जाते हैं और पत्तियों पर चितकबरे धब्बे पड़ जाते हैं। ये कीड़े बहुत छोटे और सफेद रंग के होते हैं। शुष्क ऋतु में ये कीड़े अधिक हानि पहुँचाते हैं।

समय पर सिंचाई व निराई-गुड़ाई करके हानि कम की जा सकती है।

डी० डी० टी० (०.१ प्रतिशत) या बी० एच० सी० (०.५ प्रतिशत) के पाउडर के छिड़काव से कीड़ों की रोक-थाम की जा सकती है। एक एकड़ फसल पर छिड़कने के लिए १०-१२ सेर दवा की आवश्यकता पड़ती है।

२. गिडारे—ये पत्तियों को काटती है और इस तरह पौधे की बढ़वार रुक जाती है। लिंडेन (०.६५ प्रतिशत) के छिड़काव से इसकी रोक-थाम की जा सकती है।

जब तक कीड़े पूरी तरह से नष्ट न हो जाय तब तक दवा को प्रति सप्ताह छिड़कते रहना चाहिए।

प्याज को लगने वाले रोगों में फफूंदी-जनित रोग और लकवा प्रमुख है।

१. फफूंदी—यह दो प्रकार की होती हैं—साधारण और रोएंदार। यह रोग जहां बहुत अधिक नमी और पानी रुका रहता है अधिक होता है। जल निकास का उचित प्रबन्ध करने से इस रोग की रोक-थाम की जा सकती है। बोर्डो घोल (३:३:५० के अनुपात), फसलों के हेर-फेरकर बोने तथा गन्धक के पाउडर के छिड़कने से लाभ होता है।

२. लकवा—इस रोग से भी पौधों को अधिक हानि पहुँचती है। रोग की आरम्भिक अवस्था में पत्तियों पर काले धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में पत्तियाँ नीचे लटक जाती हैं और पौधे निर्जीव हो जाते हैं।

पेरोनोक्स (२० गैलन पानी में एक पौंड दवा) के घोल का छिड़काव करने से रोग की रोक-थाम की जा सकती है।

"कृषि और पशुपालन के सौजन्य से"

मौसम के ज्ञान हेतु अलास्का के हिमखण्डों का अध्ययन

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के सिलसिले में चार अमेरिकीय वैज्ञानिकों का एक दल उत्तरी अलास्का के पार ऊंचे पर्वतों की शृंखला में अन्वेषण-कार्य कर रहा है। उत्तर अमेरिकी महाद्वीप के सब से अधिक उत्तर में स्थित यह पर्वतों की अन्तिम शृंखला है।

"अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष कार्यक्रम" के अन्तर्गत उक्त दल अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय के बारे में अध्ययन कर रहा है। हिमखण्डों की घटा-बढ़ी का संसार के मौसम पर क्या असर पड़ता है, इस रहस्य की खोज करना ही इस दल का मुख्य कार्य है।

ये वैज्ञानिक मैकोल हिमखण्ड की बर्फ के नीचे धीरे-धीरे एक गहरा छेद कर रहे हैं। हर वर्ष कई सदियों तक बर्फ तथा हिम की परतें एक दूसरे पर पड़ने से यह हिमखण्ड बना है। हिमखण्ड की विभिन्न परतों का अध्ययन करने से वैज्ञानिक इस बात का पता लगाएँगे कि भूतकाल में अलग-अलग समय मौसम कैसा था। इस तरह की जानकारी मिल जाने से यह आशा है कि मौसम के बारे में अधिक प्रामाणिक भविष्यवाणी की जा सकेगी।

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के रिचर्ड सी० हुबली उक्त वैज्ञानिक दल के अध्यक्ष हैं। श्री हुबली तथा उनके तीन सहायक मैकोल हिमखण्ड की चोटी पर, जो ८२०० फुट की ऊंचाई पर स्थित है, एक एकान्त शिविर में १६ महीने तक रहेंगे।

इस शिविर तक पहुँचने के लिए स्की-सज्जित छोटा विमान चाहिये, जो बर्फ से ढकी हुई पहाड़ी की चोटियों के बीच छोटे से मैदान पर उतर सकता हो। केवल कुछ ही विमान इस कठिन स्थान में उतर सकते हैं। इस शिविर के वैज्ञानिकों को खाद्य सामग्री, ईंधन तथा डाक विमान द्वारा ऊपर से गिराए जाएंगे। संसार के किसी भी क्षेत्र से इस शिविर का कोई सम्पर्क नहीं है। खाद्य-सामग्री को मजबूत डिब्बों में बन्द करके भेजा जाएगा जिससे कि शिविर के आसपास रहने वाले भालू इसे नष्ट न कर सकें।

इस शिविर का सबसे बड़ा मनोरंजन स्वाध्याय है। किताबों की अलमारियों में प्लेटो, श्वाइट्ज़र, ह्वाइट हैड, क्रोशे, पो, जीन-जैक, रूसो, टौमस वुल्फ तथा अन्य लेखकों की रचनाएं भरी पड़ी हैं।

ज्ञातव्य महत्वपूर्ण प्रश्न

वैज्ञानिकों को यह आशा है कि उन्हें निम्न कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो सकेंगे :—

जब गरमी पड़ने लगती है, तब क्या मैकोल हिमखण्ड में कुछ घटा-बढ़ी होती है?

इस समय हिमखण्ड की क्या स्थिति है?...क्या उसका रुख बढ़ने अथवा घटने की दिशा में है?

क्या इस समय की स्थिति मौसम के गरम हो जाने की दिशा में संकेत करती है, जिससे कि उत्तरी ध्रुव सागर में जलयान चल सकें?

संसार भर में मनाये जाने वाले 'अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष' कार्यक्रम के सिलसिले में अनुसंधान करने वाले दूसरे वैज्ञानिक भी इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। उत्तरी ग्रीनलैण्ड के पश्चिम में एल्जमीयर द्वीप के हिमखण्डों के बारे में कनाडा के वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त हिमखण्डों के अन्य विशेषज्ञ ग्रीनलैण्ड, आइसलैण्ड, स्पिट्सबर्गेन तथा दक्षिणी ध्रुव के क्षेत्र में इस सम्बन्ध में अध्ययन कर रहे हैं।

मौसम के अनूठे रिकार्ड

वैज्ञानिक संसार के महान् हिमखण्डों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत ही उत्सुक है, क्योंकि भूतकाल के मौसम के अनूठे दीर्घकालिक रिकार्ड इनके गर्भ में छिपे हुए हैं। बर्फ की परतों के नीचे बहुत सी भौतिक घटनाओं के चिन्ह दबे हुए

मिलते हैं, जिनसे मौसम सम्बन्धी उन परिस्थितियों का पता चल सकता है जिनके अन्तर्गत इन हिमखण्डों के आकार में घटा-बढ़ी हुई है।

"अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष" सम्बन्धी अमेरिकीय राष्ट्रीय समिति ने यह संकेत किया है कि इस प्रकार की ठोस जानकारी मिल जाने से उन भौतिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी, जिनके कारण भूतकालीन युगों में पृथ्वी के बहुत बड़े क्षेत्र पर बारम्बार बर्फ की चादरें फैली थीं तथा जिनके कारण आज भी वहां इस प्रकार की चादरें लगी रहती हैं।

श्री हुबली और उनके साथी इस समय मैकोल हिमखण्ड के वर्तमान झुकाव के सम्बन्ध में जो अध्ययन कर रहे हैं, उसमें इस बात का विशेष ध्यान दे रहे हैं कि यह हिमखण्ड कितनी मात्रा में सूर्य का ताप शोषण करता है।

उपयोग में लाए जाने वाले विविध यन्त्र

इस अध्ययन के लिए जो यन्त्र काम में लाए जा रहे हैं, उनमें से एक "सौलेरी-मीटर" है, जो सूर्य से आने वाली "लघुतरंग" विकिरणों के परिवर्तन की माप करता है। इन विकिरणों में उच्च "फ्रीक्वैन्सी" से युक्त इन्फ्रा-रेड विकिरण से लेकर साधारण दिखलाई देने वाला प्रकाश तथा अल्ट्रा-वायलेट विकिरण सम्मिलित है।

इसी तरह के एक और उपकरण से यह पता चल जाता है कि हिमखण्ड से कितनी मात्रा में "लघुतरंग" विकिरण प्रतिविम्बित होता है।

"रेडियो मीटर्स" नामी दो अन्य उपकरणों से आने तथा प्रतिविम्बित होने वाले 'लघुतरंग' तथा 'दीर्घतरंग' विकिरण के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

इन के अतिरिक्त एक और उपकरण होता है, जिसे हिम में दबा दिया जाता है। इस उपकरण की सहायता से हिमखण्ड में शोषित होने वाले तथा उससे निकलने वाले ताप के बारे में पता चलता है।

इन उपकरणों द्वारा कुछ समय तक रिकार्ड की गई जानकारी से मैकोल हिमखण्ड के बढ़ने अथवा घटने के बारे में पता चल सकेगा।

उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव के क्षेत्रों में स्थापित अनुसन्धान-केन्द्रों के हिमखण्ड-विशेषज्ञों से भी इसी तरह की जानकारी प्राप्त होगी। जब सब रिपोर्टें तैयार हो जायेंगी और उनकी पड़ताल हो चुकेगी, तब निश्चित रूप से यह बताना सम्भव हो जायेगा कि उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव के क्षेत्र में बर्फ बढ़ रही है, अथवा कम हो रही है या यथा-पूर्व स्थिति में बनी हुई है। इस जानकारी से संसार के मौसम के बारे में ठीक-ठीक भविष्यवाणी की जा सकेगी।

इस तरह की जानकारी प्राप्त करना अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष का एक मूल उद्देश्य है।

धन जन का विनाशक-तपेदिक

भारत में तपेदिक का दूसरा नाम राजयक्ष्मा है। इसे राजरोग कहते हैं, क्योंकि इस रोग की चिकित्सा में पानी की तरह रुपया बहाया जाता है। पहले तपेदिक होने का अर्थ मृत्यु समझा जाता था। किन्तु वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण अब यह स्थिति नहीं रह गयी है। विभिन्न देशों के वैज्ञानिक इस रोग से लड़ने के लिए निरन्तर गवेषणा कर रहे हैं।

तपेदिक रोग देश की गहरी प्राण हानि तो करता ही है, साथ ही उससे भी अधिक लोगों का स्वास्थ्य नष्ट करके उनको काम करने के अयोग्य बना देता है।

यह प्राय: देखा गया है कि तपेदिक घर के कमाऊ व्यक्ति को ही जवानी में धर दबाता है। जिसे यह रोग एक बार हो जाता है, वह आजीवन अधिक परिश्रम नहीं कर सकता और इससे देश की उत्पादन क्षमता बहुत कम हो जाती है और सारी अर्थ-व्यवस्था को हानि पहुंचती है।

देश का नुकसान

भारत में हर साल २५ लाख आदमियों को तपेदिक होती है और ५ लाख इससे मरते हैं। इससे देश की जो धन और जन हानि होती है, उसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। किन्तु मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि इससे देश को हर साल २ अरब रु० की, तथा ६० से २०० जन दिन की हानि होती है।

बेढंगे गंदे मकान और अपौष्टिक भोजन तपेदिक रोग के मुख्य कारण हैं। गंदे मकानों और बस्तियों को सुधारने तथा लोगों को पौष्टिक भोजन दिलाने की व्यवस्था करना तपेदिक रोकने के लिए बहुत ज़रूरी है। यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत में घरों को सुधारने पर १ खरब रु० तथा पौष्टिक भोजन की व्यवस्था पर हर साल ३ अरब रु० खर्च होगा। पंचवर्षीय आयोजना के द्वारा सरकार लोगों की हालत सुधारने का प्रयत्न कर रही है, किन्तु इसमें अभी समय लगेगा। हम तब तक तपेदिक को देश के जन धन का विनाश करने के लिए मुक्त नहीं छोड़ सकते।

घर और भोजन की व्यवस्था तुरंत या जल्दी से नहीं सुधारी जा सकती। अतः हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि तपेदिक के रोगियों के लिए अस्पताल खोलने में कितना खर्च बैठेगा।

तपेदिक रोकने के खर्चीले पुराने तरीके

तपेदिक रोग की जांच, रोगी की चिकित्सा, उसे अलग रखने तथा बाद की देखभाल करने के लिए संस्थाएं खोलने में बहुत अधिक खर्च बैठता है। इसके लिए ४,००० दवाखाने चाहिए, जिन पर ४० करोड़ रु० की लागत आवेगी, ५ लाख पलँगों की भी आवश्यकता पड़ेगी, जिस पर ४० करोड़ रु० और खर्च होगा। यह व्यवस्था १५ साल तक चालू रखने पर इन सब के ऊपर ३ करोड़ रु० सालाना खर्च होगा। इसके अलावा जब ये सब संस्थायें चालू हो जायंगी तो हर साल इन पर ६ अरब ६० करोड़ रु० खर्च होगा। १५ वर्ष के हिसाब से घरों के सुधार पर हर साल ६० करोड़ रु० और पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करने में २ अरब रु० लगेगा। इस प्रकार यदि हम तपेदिक की रोक थाम उस प्रकार करेंगे, जैसे पश्चिमी राष्ट्र कर रहे हैं तो हमें हर साल ६ अरब रु० की जरूरत पड़ेगी। परन्तु सारे देश भर में इस समय इस पर हर साल २ करोड़ रु० से ज्यादा नहीं खर्च हो रहा है।

निकट भविष्य में इतने अधिक रुपये जुटाने की आशा नहीं है और हमारे पास इतनी बड़ी योजना चलाने के लिए आदमी भी नहीं हैं। इस समय हमारे यहां केवल १,३०० चिकित्सक, ८६८ परिचारिकाएं और १५५ स्वास्थ्य निरीक्षक हैं। जब हम यह देखते हैं कि उपरोक्त योजना चलाने के लिए इनकी संख्या बढ़ा कर क्रमशः १५,०००, ५०,०.० और १२,००० करनी पड़ेगी, तो हमें निराश होकर बैठ जाना पड़ता है।

क्या करना चाहिए

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ अस्पताल आदि की स्थापना से ही देश में तपेदिक को रोकना निकट भविष्य में सम्भव नहीं। हमारे सामने बस एक रास्ता रह गया है कि रोग से बचने के तरीके निकालें जायं, जिससे रोग फैलने न पाये। इनमें सबसे अधिक सहायक बी० सी० जी० के टीके सिद्ध हुए हैं।

बी० सी० जी० के टीके

इस समय तपेदिक रोग से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय बी० सी० जी० के टीके लगवाना ही है।

१९५५-५६ में केन्द्र तथा राज्य की सरकारों ने बी० सी० जी० के टीके लगवाने पर १ करोड़, ३४ लाख ६० हजार रु० खर्च किया। और १९६०-६१ तक इस पर कुल ४ करोड़ रुपया खर्च होगा। बी० सी० जी० टीके पर १२ साल में ४ करोड़ रु० खर्च होगा, जब कि तपेदिक रोकने के पुराने तरीके के लिए हर साल ६ अरब रु० की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए बी० सी० जी० के टीके लगवाना अधिक समझदारी का काम है। इसमें खर्च भी बहुत कम बैठता है तथा मनुष्य इस भयानक रोग से सुरक्षित हो जाता है।

बी० सी० जी० का महत्व

कम खर्च के अलावा बी० सी० जी० टीके से अन्य लाभ भी हैं। इसका टीका लगवाने से शरीर में रोग की प्रतिरोध शक्ति बढ़ जाती है और कमाऊ व्यक्ति की जीविका हानि तथा इसके फलस्वरूप देश की उत्पादन शक्ति की हानि बचती है। यह टीका मुफ्त लगाया जाता है तथा सरकार का इसमें फी टीका २६ नये पैसे खर्च बैठता है। एक बार लगाने से यह पांच साल तक बचाव करता है, जबकि तपेदिक के इलाज में स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि जैविक दवाओं पर २५ रु० प्रति मास खर्च बैठता है।

———

बी० सी० जी० के टीकों की उपयोगिता

भारत में बी० सी० जी० के टीके लगाने का आन्दोलन जितने वेग से चल रहा है, उतने वेग से संसार में आज तक कोई भी सार्वजनिक स्वास्थ्य-आन्दोलन नहीं चलाया गया। तपेदिक से बचने का फिलहाल इससे अच्छा कोई तरीका नहीं निकला है।

बी० सी० जी० के टीकों का जो असर और देशों में पड़ा है, उसे देखकर कहा जा सकता है कि इसके इस्तेमाल से भारत में १५-२० साल के भीतर ही तपेदिक के रोगियों की संख्या आज की संख्या का पांचवां हिस्सा रह जाएगी।

सर्वे से पता चला है कि शहरों में तपेदिक-रोगियों की औसत संख्या, कुल जनसंख्या का १·५ प्रतिशत है। अर्थात् साल में २५ लाख लोगों को यह रोग होता है, जिसमें ५ लाख मर जाते हैं। राष्ट्रीय तपेदिक सर्वे विभाग का कहना है कि आज की स्थिति में रोगियों की संख्या और भी बढ़े तो अचम्भा नहीं।

भारत के तपेदिक संघ की सलाह पर और विश्व स्वास्थ्य संगठन की विशेषज्ञ समिति की सिफारिश पर आयोजना आयोग ने बी० सी० जी० के टीके लगाने की उपयोगिता स्वीकार की है। १९४८ में टीके लगाने शुरू किये गये। अब सभी राज्यों में लाखों लोगों को बी० सी० जी० के टीके लगाये जा चुके हैं। १९४८ से अब तक सरकार इस पर कुल २ करोड़ ८८ लाख २० हजार रुपया खर्च कर चुकी है। अनुमान है कि देश में लगभग १७ करोड़ लोगों को यह रोग हो सकता है। बी० सी० जी० के टीके लगाने का उद्देश्य है कि इनमें से ज्यादा से ज्यादा लोगों को यह रोग होने ही न दिया जाए। १९६०-६१ तक इनमें से कम से कम ८० प्रतिशत लोगों को टीके लगाने की योजना है। अब तक ९ करोड़ ७० लाख लोगों की डाक्टरी की जा चुकी है, जिनमें ३ करोड़ ३० लाख लोगों को बी० सी० जी० के टीके लगाकर तपेदिक की आशंका से मुक्त किया गया है। १९४९-५० में १ लाख ७९ हजार लोगों को बी० सी० जी० के टीके लगाये गये, जिस पर ७ लाख रु० खर्च आया। इस वर्ष ४७ लाख २२ हजार लोगों को टीके लगाये गये और खर्च भी बढ़कर ५१ लाख ९० हजार रु० हो गया। बी० सी० जी० आन्दोलन की सफलता का अनुमान इन्हीं आँकड़ों से लगाया जा सकता है।

विभिन्न राज्यों ने १९५८ में बी० सी० जी० के टीके लगाने के जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं, उनके अनुसार इस साल कुल २ करोड़ ९२ लाख लोगों की डाक्टरी की जाएगी और संदिग्ध लोगों को टीके लगाए जाएँगे।

टीके तैयार करने की व्यवस्था

जब इतने अधिक लोगों को टीके लगाये जाएंगे तो बी० सी० जी० के टीके देश में ही काफी मात्रा में तैयार करना लाज़मी होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ, और बाल-आपात्-कोष की सहायता से और विश्व स्वास्थ्य संगठन की प्राविधिक सलाह से भारत सरकार ने मद्रास में बी० सी० जी० के टीके तैयार करने का कारखाना खोला है। बी० सी० जी० के टीके बनाने वाले दुनिया भर के कारखानों में यह कारखाना सबसे अधिक टीके तैयार करता है।

प्रशंसकों की राय

बी० सी० जी० की प्रशंसा दुनिया भर के चिकित्सा विशेषज्ञों ने की है। लन्दन के सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग ने इसे चिकित्सा विज्ञान की अभूतपूर्व खोज माना है। शिकागो के डा० रोसेन्थल का, जो १९ साल से बी० सी० जी० को काम में ला रहे हैं, कहना है कि इससे हानि कुछ नहीं होती और ८० प्रतिशत लोगों को इस

भयंकर रोग के चंगुल से छुड़ाया जा सकता है। इस साल के शुरू में भारत में अन्तर्राष्ट्रीय तपेदिक सम्मेलन में भाग लेने जितने भी विशेषज्ञ आये, सभी ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। विश्व स्वास्थ्य संगठन की सूचना के अनुसार भारत में बी० सी० जी० का इस्तेमाल सबसे अधिक हो रहा है। यहां ६ लाख से अधिक लोगों की डाक्टरी की जा चुकी है।

पूर्व और पश्चिम के प्रायः सभी देशों ने तपेदिक निरोध के लिए बी० सी० जी० को अपनाना शुरू किया है। बी० सी० जी० आन्दोलन से देश के लोगों को पता चला है कि तपेदिक कैसे फैलता है और इससे कैसे बचा जा सकता है। भारत के हर राज्य में अनुभवी कर्मचारियों का जाल बिछा हुआ है, जो तपेदिक तथा अन्य संक्रामक रोगों से लोगों की रक्षा करते हैं।

क्या आप जानते हैं ?

१. क्षय रोग या तपेदिक २॥ हजार वर्ष से भी अधिक पुरानी है, लेकिन इसके कीटाणु-टुबरकिल बैसिलस की १६ वीं शताब्दी के अन्त में ही खोज हुई।

२. बी. सी. जी. का सबसे पहले, १६२१ में, फ्रांस में एक क्षयग्रस्त माता के बच्चे पर प्रयोग किया गया। १६३६ तक, यूरोप, हिन्दचीन, चिली और चीन में भी बच्चों को क्षय से बचाने के लिये बी. सी. जी. का प्रचार हो गया था।

३. अब दुनिया भर में १८ करोड़ से भी अधिक व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें बी. सी. जी. का टीका लग चुका है।

४. पिछले २० सालों के अमूल्य अनुभव के आधार पर क्षय विशेषज्ञों ने प्रमाणित किया है कि यह टीका बहुत गुणकारी और साथ ही हानि रहित है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की विशेषज्ञ समिति ने भी इस बात की जोरदार शिफारिस की है कि जिन प्रदेशों में क्षय रोग काफी होता है, वहां बी. सी. जी. का व्यापक प्रयोग किया गया।

५. भारत में हर मिनट एक व्यक्ति क्षय रोग से मरता है और हर १५० में से एक इसका शिकार है। इसके कारण देश को प्रतिवर्ष २०० करोड़ रु० और ६० करोड़ से ६ अरब तक जन-दिनों का नुकसान होता है।

६. भारत सरकार ने १६४८ में छोटे पैमाने पर बी. सी. जी. के टीके लगाने का काम शुरू किया, लेकिन १६५१ में इसे देशव्यापी रूप दिया गया।

७. ३० सितम्बर, १६५७ तक देश भर में १५४ बी. सी जी. दल टीके लगाने का काम कर रहे थे और उस समय तक ६ करोड़ ६४ लाख व्यक्तियों की टीका लगाने के लिए परीक्षा की गयी, जिनमें से ३ करोड़ ३८ लाख को यह टीका लगाया गया। आज तक दुनिया के किसी भी देश में रोग से बचाव का इतना बड़ा उद्योग नहीं किया गया था।

पशुओं में तपेदिक की बीमारी

तपेदिक की बीमारी मनुष्य और जानवर दोनों को होती है। जंगल में रहने वाले जानवरों को यह क्वचित होती है परन्तु पालतू जानवरों में एक दूसरे के संसर्ग से इसके फैलाव की संभावना रहती है।

जैसा कि मनुष्यों में होता है, जानवरों में भी यह बीमारी रोगी जानवर के संसर्ग से फैलती है। मनुष्यों के संसर्ग में आने से बन्दरों को भी यह बीमारी हो सकती है।

जानवरों की अपेक्षा मनुष्यों को तपेदिक जल्दी से हो जाता है। फिर भी गाय, भैंस, बकरी जैसे जानवर, जो हमारे काम आते हैं, इस रोग के शिकार हो जाते हैं। यह बीमारी बन्दर, गाय, भैंस, सुअर और हाथी को भी होती है, यह पक्षियों को भी हो सकती है और कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, सांभर, लामा, हिरन, नीलगाय, आदि जानवरों को भी हो सकती है।

बन्दरों में तपेदिक

बन्दरों सम्बन्धी गवेषणा से पता चला है कि उनको, विशेषतः पिंजड़ों में बन्द बन्दरों को तपेदिक होने की बहुत संभावना रहती है। मलेरिया इन्स्टिट्यूट आफ इंडिया के अधिकारी, श्री नायर तथा श्री रे ने जो गवेषणा की, उससे पता लगा कि दिल्ली में तथा आसपास रहने वाले बंदरों को तपेदिक की बीमारी अधिक होती है। उत्तर प्रदेश के जंगलों में रहने वाले बंदरों में इस रोग का प्रतिकार करने की शक्ति अधिक पायी गई। इससे यही नतीजा निकलता है कि जंगलों में, नैसर्गिक वातावरण में रहने वाले बन्दरों की अपेक्षा शहरों के बन्दरों को यह बीमारी अधिक होती है।

मवेशियों में तपेदिक

यह मानी हुई बात है कि हमारे देश में जानवरों को विशेषतः मवेशियों को तपेदिक की बीमारी बहुत होती है। भारतीय पशु-चिकित्सा-गवेषणा-शाला के एक अधिकारी श्री दत्त की गवेषणा से पता चला है कि पंजाब और बम्बई राज्यों के मवेशियों में यह रोग बहुत फैला हुआ है। काटे गये मवेशी और भैंसों की जांच से पता चला है कि मद्रास, मैसूर और बंगाल राज्यों के मवेशियों में इस रोग का फैलाव कम है। जांच से यह भी पता चला कि अन्य मवेशियों की अपेक्षा यह रोग भैंस को अधिक होता है।

बकरे, बकरियों और सुअरों में तपेदिक

यहाँ बहुत से लोगों का खयाल है कि बकरी का दूध तपेदिक का प्रतिकार करने की शक्ति पैदा करता है। परन्तु अभी गवेषणा द्वारा इसकी पुष्टि नहीं हुई है। बकरे, बकरियों में तपेदिक का फैलाव कम होने का कारण यह है कि वे प्रायः खुली हवा में रखे जाते हैं। यदि इनके झुण्ड में किसी एक को यह रोग हो जाय तो अन्य जानवर जल्दी से उसके शिकार हो जाते हैं।

बम्बई के बूचड़खाने में मारे गये सुअरों की जांच से पता चला कि उन में से बहुत से सुअरों को यह रोग हो चुका था।

कुत्तों और बिल्लियों में तपेदिक

कुत्तों में इस बीमारी के लक्षण स्पष्ट नहीं दीखते। इसलिए अक्सर कुत्ते की मृत्यु के बाद ही पता लगता है कि वह तपेदिक का रोगी था। इस दृष्टि से रोगी कुत्ते अत्यंत घातक होते हैं। छोटे बच्चे कुत्तों से खेलते हैं और उनको चूमते भी हैं। इस तरह यह रोग कुत्ते के संसर्ग से मनुष्य को हो सकता है। ब्रिटेन में इस सम्बन्धी जो गवेषणा की गई है, उससे पता चलता है कि कुत्तों में मनुष्यों को तरह तपेदिक के कीटाणुओं से रोग अधिक फैलता है। रोगी मालिक के साथ रहकर कुत्ते को तपेदिक हो जाता है, परन्तु रोगी कुत्ते के संसर्ग से स्वस्थ कुत्ते को यह रोग कम होता है।

कुत्तों की अपेक्षा बिल्लियों में यह रोग अधिक फैलता है। ब्रिटेन में यह प्रमाण कुत्तों की संख्या का २ प्रतिशत है। यह प्रमाण सब जगह एक सा नहीं। भौगोलिक स्थिति और बिल्लियों को पिलाये जाने वाले दूध पर इसका कम या अधिक होना निर्भर है। बिल्लियों को उस प्रकार का तपेदिक अधिक होता है जो मवेशियों को होता है। यदि एक बार बिल्ली इस रोग का शिकार हो जाय तो अच्छी नहीं हो सकती।

देश में पशु पालन का महत्त्व बढ़ रहा है और यह कार्य भी प्रगति कर रहा है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि पालतू जानवरों में तपेदिक फैलने की सम्भावना अधिक है। रोगी जानवर मनुष्य के लिए खतरनाक है ही साथ में कृषि तथा स्वस्थ पशुओं के लिए भी हानिकारक है। इसलिये इस रोग की रोकथाम करने के लिये और इसके समूल नाश के लिये पहले से प्रयत्न करना आवश्यक है।

वैज्ञानिक उन्नति का स्वर्ण-युग

'पैनिसिलिन' नामक औषधि को खोज से हर देश में लाखों लोगों को लाभ हुआ है और असंख्य रोगियों की जानें बची हैं। विद्युदणु-उद्योग में "ट्रांजिस्टर" नामक वस्तु की खोज से क्रांति हो गई है और इससे मानव जाति को अपार लाभ हुआ है। अणु के विखण्डन से मानव को एक नये युग में प्रवेश करने का अवसर मिला है, और इससे उसकी उन्नति की संभावनाएं काफी बढ़ गई हैं। इन तथा इस तरह की अन्य वैज्ञानिक खोजों ने आज के संसार के स्वरूप को ही बदल दिया है।

निम्न वैज्ञानिक खोज इस युग की अद्‌भुत और खोजें हैं। मानव जाति के स्वास्थ्य, समृद्धि एवं उन्नति की दृष्टि से इन आविष्कारों से निश्चित रूप में महान संभावनाएं हैं।

शिशु-पक्षाघात सम्बन्धी टीका

पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के डा० साल्क ने शिशुपक्षाघात सम्बन्धी टीके का आविष्कार करके संसार को इस भयंकर रोग से मुक्त करने का आश्वासन दे दिया है। इस टीके से तीनों प्रकार के शिशुपक्षाघात रोग से बचाव हो जाता है। १९५३ में १६१ व्यक्तियों पर हुए परीक्षण से यह पता चला था कि ८० से लेकर ९० प्रतिशत तक व्यक्तियों को इस टीके से लाभ हुआ। १९५५ में अमेरिका में इस टीके का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। इस प्रकार इस भयंकर रोग पर विजय प्राप्त कर ली गई।

डी डी टी तथा कीटमार

डी डी टी के बारे में सबसे पहले १८७४ में पता चला था, लेकिन बाद में सब कुछ भुला दिया गया। १९३९ में स्विट्जरलैण्ड के एक युवक रसायनशास्त्री ने इस पर फिर ध्यान दिया। तथापि द्वितीय विश्व-युद्ध के काल में इस कीटमार (डी डी टी) को प्रसिद्धि मिली। तब इसे नेपल्स (इटली) में १९४४ में 'टाइफस' (जूंओं से होने वाला एक रोग) नामी भयंकर रोग को रोकने के लिए इस्तेमाल किया गया। द्वितीय विश्व-युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद कृषि-जगत में कीटमार के रूप में इसे प्रयुक्त किया जाने लगा। बाद में और भी ऐसे तथा अनावश्यक घास-फूस को नष्ट कर देने वाले अन्य कीटमार तैयार किये गये।

विशाल दूरवीक्षण यन्त्र

विशाल दूरवीक्षण यन्त्र के निर्माण से नक्षत्रों के बहुत से रहस्यों के बारे में जानकारी प्राप्त की गई है। कैलिफोर्निया स्थित पालोमर माउण्टेन बेधशाला में "बिग आई" नामक इस यन्त्र से नक्षत्र मण्डल के रहस्यों की निरन्तर नई जानकारी मिलती रहेगी।

टेलिविजन

अमेरिका में मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन टैलिविजन है। भविष्य में शिक्षा देने के लिए इसे एक मुख्य साधन के रूप में प्रयुक्त किये जाने की संभावना है। दृश्य-श्रव्य-संचार प्रणाली के इस साधन की सबसे पहले १८८४ में खोज हुई थी तथा १९२० के बाद इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। १९३९ में न्यूयार्क में पहली बार टैलिविजन द्वारा कार्यक्रम प्रसारित किया गया।

जादूभरी दवाएं

चिकित्सा के क्षेत्र में, आज जितनी औषधियां रोगियों को दी जाती हैं, उनमें से ८० प्रतिशत १५ वर्ष पूर्व अज्ञात थीं। चिकित्सा के क्षेत्र में जो क्रान्ति हुई है, उससे २९ लाख व्यक्तियों की जानें बचने का अनुमान है। शुरू की जादूभरी दवाएं सल्फा औषधियां थीं। इनका अमेरिका में प्रारम्भ १९३६ में हुआ था। न्यूमोनिया, खून में विष फैलने, गले की खराबी और प्रसूति ज्वर के लिए ये औषधियां प्रारम्भ में विशेष उपयोगी सिद्ध हुई। बाद में अन्य रोगों के उपचार के लिए सल्फा परिवार की अन्य औषधियां भी खोजी गईं।

सबसे बड़ी रोगाणुनाशक औषधि, जिससे अब तक लाखों व्यक्तियों की जानें बच चुकी हैं, पैनिसिलिन है। इसका आविष्कार एक ब्रिटिश वैज्ञानिक सर अलैग्जेण्डर फ्लैमिंग ने १९२८ में किया था। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद स्ट्रैप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसिन, औरोमाइसिन और टैरामाइसिन जैसी अन्य जीवन-रक्षक रोगाणु-नाशक औषधियां खोजी गईं।

विद्युदणु मस्तिष्क

हमारे युग का महानतम वैज्ञानिक विकास १९४२ में शुरू हुआ। विद्युदणु मस्तिष्क अर्थात् हिसाब-किताब करने वाली मशीन के निर्माण से जहां गणित सम्बन्धी हिसाब-किताब लगाने में मदद मिलेगी वहां अनेक उद्योगों में स्व-चालन क्रिया को प्रारम्भ करना भी सम्भव हो जायेगा।

रेडार

टैलिविजन के समान रेडार भी कोई नई खोज नहीं है। इस वैज्ञानिक आविष्कार के फलस्वरूप धुन्ध होने पर जहाजों तथा तूफान उठने पर हवाई जहाजों का सफर कर सकना सम्भव हो गया है।

प्लास्टिक

"सैल्युलाइड" को पेटेण्ट १९०० ई० के आस-पास किया गया था। इसके कुछ दिन बाद 'बैकेलाइट' की खोज हुई तथा १९११ में 'रेयन' का निर्माण हुआ। आज मानवीय उपयोग के हर क्षेत्र में प्लास्टिक काम में लाया जाने लगा है। फर्श, खिड़कियां इत्यादि तक प्लास्टिक के बनाये जाने लगे हैं। भविष्य में प्लास्टिक का पूरा मकान बनाने तथा प्लास्टिक के बने हवाई जहाज, मोटरें तथा जहाज चलाने की इंजिनियर आशा करते हैं।

अणु शक्ति

निश्चित रूप में गत १५ वर्षों की सबसे बड़ी वैज्ञानिक प्रगति अणु का विखण्डन तथा उसके बाद की अणुशक्ति के विकास की घटना है। १९४५ में अणु-बम का प्रथम विस्फोट होने के बाद से वैज्ञानिक इसे मनुष्य के कल्याणकारी कार्यों में उपयोग में लाने तथा इस पर काबू पाने के कार्य में जुटे हुए हैं। शीघ्र ही अणुशक्ति से बड़े-बड़े जहाज चलने लगेंगे तथा बिजली प्राप्त होगी। रेडियो-आइसोटोपों को आज भी चिकित्सा कृषि तथा अनुसन्धान सम्बंधी कार्यों में प्रयुक्त किया जा रहा है।

विज्ञान-वार्ता

प्रस्तरयुग के भित्ति चित्र

मध्य-एशिया की प्राचीन कला

उजबेकिस्तान तीसार पर्वतमाला की दक्षिण-पश्चिमी तलहटी में पुरातत्ववेत्ताओं ने गुफाओं के अन्दर भित्ति-चित्रों का पता लगाया है। ये गेरुए रंग के हैं। वहां लगभग दो सौ आखेट दृश्य हैं। विशेषज्ञों का मत है कि ये प्रस्तर चित्र मध्य-प्रस्तर युग और नवप्रस्तरयुग के हैं यानी सात हजार वर्ष पुराने हैं।

मध्य एशिया में दो हजार वर्ष पूर्व विद्यमान कथित कुचान राज्य की बस्तियों और गढ़ों में खुदाई के दौरान में प्राचीन गुहा-चित्र मिले हैं। जीवन के दृश्यों, योद्धाओं के चित्रों को चित्रित करने वाले ये चित्र मूल-मध्य एशियाई कला के श्रेष्ठ स्तर का परिचय देते हैं।

कृत्रिम भू-उपग्रह की चन्द्रमा तक पहुँच

द्वितीय उपग्रह के छोड़े जाने के सिलसिले में पोलेटेक्निक म्युजियम के केन्द्रीय लेक्चर-हाल में हुई एक सभा में प्रो० किरिल स्तान्युकोविच ने कहा कि उपग्रहों के कक्ष-पथ के प्रसार के साथ-साथ कुछ ही वर्षों में एक ऐसा दिन आ पहुँचेगा जब एक कृत्रिम भू-उपग्रह चन्द्रमा तक पहुँच जाएगा।

द्वितीय उपग्रह के भविष्य की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि वायुमंडल की निचली सतहों की ओर पहुँचते समय शायद वह पूर्णतः नष्ट न हो। यदि द्वितीय उपग्रह के विखंडित भाग मिल सके तो उनका अध्ययन विज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

सोवियत विज्ञान अकादमी के कारेसपांडिंग सदस्य श्री वी० गिंजबर्ग ने उसी सभा में कहा कि हमारे छायापथ (गैलेक्सी) से दूर तारामंडलों की उज्ज्वलता को मापने जैसी महत्वपूर्ण समस्या को हल करने में अन्य मानव-निर्मित उपग्रहों को आकाश में छोड़े जाने से मदद मिलेगी। भावी व्योम-विहार के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

सोवियत वैज्ञानिक ने कहा कि अगले कुछ सालों में हमारे आकाशीय पिंड को पुराने उपग्रह चन्द्रमा के अलावा अनेक स्पुतनिक प्रयोगशालाएं उपलब्ध हो जाएंगी जो महाकाश में मनुष्य की भावी उड़ानों के लिए मध्यवर्ती केन्द्र बन जाएंगी।

४० वर्षों में मनुष्य-निर्मित सूर्य

भू-उष्णता के प्रयोग की सम्भावना

ज्नोनी सिला (ज्ञान ही शक्ति है) पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रोफेसर जियोर्जी बाबात ने लिखा कि आगामी पन्द्रह वर्षों में प्रकाशकण (फोटोन) राकेट तैयार कर परीक्षण के लिए छोड़ा जा सकता है। इस अंक में सम्पादक से पूछे गये प्रश्नों के अनेक वैज्ञानिकों और इंजीनियरों द्वारा दिये गये उत्तर प्रकाशित किये गये हैं। ये प्रश्न इस प्रकार के थे :—अगले चालीस सालों में विज्ञान तथा इंजिनीयरिंग कितनी उन्नति करेगी ? १६६७ तक, जिस वर्ष-जनता अक्तूबर-क्रान्ति की ८०वीं वर्षगांठ मनायेगी, क्या-क्या खोजें हो चुकेंगी ?"

प्रो० बाबात ने बताया है कि प्रकाशकण (फोटोन) राकेट को परीक्षण के रूप में छोड़े जाने से क्वाण्ट (राशि पुंज) राकेट के निर्माण के लिए जरूरी तथ्य प्राप्त हो जाएंगे। यह राकेट कुछ ही क्षणों में चन्द्र-कक्ष से आगे बढ़ जाएगा क्योंकि वह १८६४२० मील प्रति सेकेन्ड यानी प्रकाश की गति से ब्रह्मांड-अवकाश में गतिमान हो सकेगा।

अकादिमिशियन द्मित्री श्चेर्बाकोव ने यह विश्वास प्रकट किया कि इस शताब्दी के अन्त तक धरती के भीतरी भाग की ताप शक्ति से बिजली तैयार करने के लिए पृथ्वी के अन्दर विद्युत् यंत्र कायम करना सम्भव हो जाएगा। शक्ति के इस स्रोत की कोई सीमा नहीं है। ३० मार्च १९५६ में जब कमचत्का प्रायद्वीप का बेजीम्पाइन्नी ज्वालामुखी फटा तो उसने चट्टानों के टुकड़े २८ मील की ऊंचाई तक फेंके, उस समय उसने इतनी ताप शक्ति प्रसारित की जितनी संसार का सबसे बड़ा बिजली-घर कुइबिशेव जल-विद्युत केन्द्र जो २१००,००० किलोवाट बिजली पैदा करता है, ३५०० वर्षों में पैदा करेगा। कुछ स्थानों पर गर्म चश्मे और सोते तो शक्ति-उत्पादन के लिए प्रयुक्त भी किये जा रहे हैं! कमचत्का प्रायद्वीप में एक कुंआ खोदा जा रहा है जिसमें से टर्बाइनों को चलाने के लिए ज्वालामुखी के सोतों से अति-उत्तप्त भाप निकाला जाएगा।

अकादमिशियन श्चेर्बाकोव ने बताया कि जब ऐसा यंत्र जो भूमि-तल ताप को प्राप्त कर बिजली पैदा करे और उसे ऊपर धरती को भेजे, मीलों नीचे भेजना सम्भव हो जाएगा तो इंजीनियरिंग का इतिहास एक नयी मंजिल में प्रवेश कर लेगा।

इंजिनियर जेकल्तेन्कोव का विश्वास है कि इस शताब्दि के अन्त तक वायु की आणविक शक्ति से चालित राकेट तैयार हो जाएंगे। उसके इंजिन में अत्यधिक संचापित सामान्य वायु को अणुओं में विखंडित कर दिया जाएगा जो विशाल मात्रा में बिजली प्रसारित करेगी। पारमाणविक आक्सीजन को सामान्य आणविक आक्सीजन में परिणत करने के लिए अनुघटकों की खोज की जा चुकी है।

इंजिनीयर ग्रिगोरेव ने ध्रुव प्रदेश के वीरान बर्फीले इलाकों के ऊपर कृत्रिम उपग्रह की कल्पना की है। यह "सूर्य" प्लास्मा (आयनीकृत गैस जिसमें इलेक्ट्रोनिक आवरण से मुक्त परमाणु होते है) से बनेगा और चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा अटका रहेगा। उसका तापमान करोड़ों डिग्री सेंटिग्रेड होगा। प्लास्मा के ताप पृथग्न्यास (थर्मल इंसुलेशन) के लिए चुम्बकीय क्षेत्र की सम्भावना १९५० में दो सोवियत अकादिमिशियनों आन्द्रेई सारादोव और इगोर ताम ने प्रकट की थी।

अप्रैल १९५६ में अकादिमिशियन इगोर कुर्जातोव ने प्रचंड तापमान युक्त प्लास्मा को एक चुम्बकीय क्षेत्र में "अटकाने" की पहली कोशिशों को लन्दन में एक वार्ता के दौरान वर्णित किया था। ध्रुव के ऊपर मनुष्य निर्मित सूर्य का आकार असली सूर्य के आकार जैसा ही लगेगा लेकिन वह दुगुना ताप प्रदान करेगा।

कृषि गवेषणा में तेजोद्गिर समस्थानिकों का प्रयोग

१९५७ ई० के शुरू में कृषिगवेषणा में अणुशक्ति के प्रयोग का श्रीगणेश हुआ था और अब तक इस काम में काफी प्रगति हुई है। नई दिल्ली की भारतीय कृषि गवेषणाशाला में एक ऐसी प्रयोगशाला बनायी गयी है, जहां कृषि गवेषणा के कई कामों में तेजोद्गिर समस्थानिकों का प्रयोग किया जा सकता है। इस काम के लिए यह प्रयोगशाला आवश्यक यंत्रों तथा उपकरणों आदि से सज्जित है। आजकल उर्वरकों या रासायनिक खादों के बारे में यहां बड़े जोरों से अनुसंधान कार्य हो रहा है।

बढ़िया फसलें पैदा करने और कीड़ों से फसलों की रक्षा करने के बारे में भी तेजोद्गिर समस्थानिकों की सहायता से प्रयोग किये जा रहे हैं और कुछ सुपरिणाम भी सामने आये हैं। फिर भी इस गवेषणा के पूरे परिणाम कुछ समय बाद प्रगट होंगे और देश में खेती-बाड़ी की उन्नति के लिए वैज्ञानिकों के हाथ में यह एक अमोघशक्ति के समान सिद्ध होंगे।

मधुमेह की चिकित्सा के लिए देशी औषधियां

लखनऊ की औषधिगवेषणाशाला ने बहुत से प्रयोग करके, जामुन की गुठली को मधुमेह रोग में बहुत प्रभावकारी पाया है। पाश्चात्य चिकित्सक अभी तक मधुमेह को जड़ से मिटाने की कोई दवा नहीं निकाल सके हैं। जामुन की गुठली के आसव से रोगियों की रक्त-शर्करा (ब्लड-शुगर) काफी कम हो

गयी। रांगे, जस्ते और लोहे के साथ अभ्रक भस्म और बहुत थोड़ी मात्रा में तांबा तथा कोबल्ट देने से भी मधुमेह दूर हो जाता है।

बीजा के सत से खरगोशों और मनुष्यों की रक्त-शर्करा में काफी कमी होती देखी गयी।

भारत में मधुमेह रोग में कई प्रकार की जड़ी-बूटियों का काफी समय से प्रयोग होता आया है और आयुर्वेदिक ग्रंथों में इस रोग और इसकी चिकित्सा का सविस्तार उल्लेख है। प्याज के रस से भी कुत्तों और खरगोशों की रक्त-शर्करा काफी कम हो गयी।

रतनजोत का स्वरस देने से मधुमेह में ग्लुकोज में तो खास कमी नहीं पाई गयी, लेकिन इस रोग के अन्य सब लक्षणों में काफी कमी होती देखी गयी।

पटरियों की भार सहनक्षमता की परीक्षा

मनुष्यों और पशु पक्षियों की भांति धातुएं भी अधिक भार पड़ने से "थकान" अनुभव करती हैं। इसलिए यह जानना जरूरी है कि रेल की पटरी अधिक से अधिक कितना भार सहन कर सकती है। रेल का सफर करने वाले मुसाफिरों की सुरक्षा की दृष्टि से लखनऊ का रेलवे-परीक्षा तथा गवेषणा केन्द्र पटरियों की भार सहनक्षमता की परीक्षा कर रहा है।

हो सकता है कि यदि एक ही पहिया नियत भार लेकर नियत गति से पटरी पर दौड़े तो पटरी को कोई नुकसान न पहुँचे; पर यदि उतने ही समय में एक के बजाय अधिक पहिये पटरी पर दौड़े तो यह टूट सकती है।

लखनऊ केन्द्र के अनुसंधान के फलस्वरूप कई मनोरंजक तथ्य सामने आये हैं। उदाहरणार्थ, पटरी की 'थकान' पहिये के व्यास पर निर्भर है, चाहे पहिये पर ढोये जाने वाला बोझ कितना ही हो। अब यह जानने की कोशिश की जा रही है कि कितने व्यास से पटरी को कितने समय में 'थकान' आ जाती है।

प्रतिलिपि तैयार करने की तीव्र विधि

ब्रिटेन की एक फर्म ने कागज-पत्रों की प्रतिलिपि तैयार करने की एक तीव्र विधि निकालने की खबर दी है। इस विधि को फर्म ने 'रिफलैक्स मैथड' नाम दिया है। विधि के बहुत तीव्र होने के अलावा इसमें अंधेरे कमरों, डेवेलप करने की ट्रे आदि चीजों की भी जरूरत नहीं होती। इसके अनुसार पत्रों, स्कैचों, किताबों के पृष्ठों आदि के चित्र एक मिनट से भी कम में उतर आते हैं।

एक ब्रिटिश पत्रिका में इस विधि को विस्तार से समझाया गया है। विधि इस प्रकार है—जिस कागज की प्रतिलिपि तैयार करनी हो उसे और एक 'नेगेटिव पेपर' को फोटो प्रति तैयार करने वाले यंत्र में शीशे पर रख कर उसका ढकना बन्द कर दिया जाता है। 'नेगिटिव पेपर' में से प्रकाश की किरणें निकल कर जब मूल कागज पर पड़ती हैं तो उसके उजले भाग से ये किरणें लौट जाती हैं और काले भागों में शोषित हो जाती हैं। इसी के अन्दर लगी हुई घड़ी से 'एक्सपोजर' संचालित होता है।

कुछ सेकिंडों के 'एक्सपोजर' के बाद दोनों कागज डेवेलपिंग यूनिट में रख दिये जाते हैं। इसके बाद ये एक मशीन में से निकाले जाते हैं, जहाँ इनका पानी सूख जाता है। कुछ सेकिंडों के बाद दोनों कागजों को अलग-अलग किया जा सकता है और इस प्रकार कागज की फोटो-प्रति उतर आती है।

———

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान
फरवरी १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए ३७२

उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, ६ हैमिल्टन रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद।
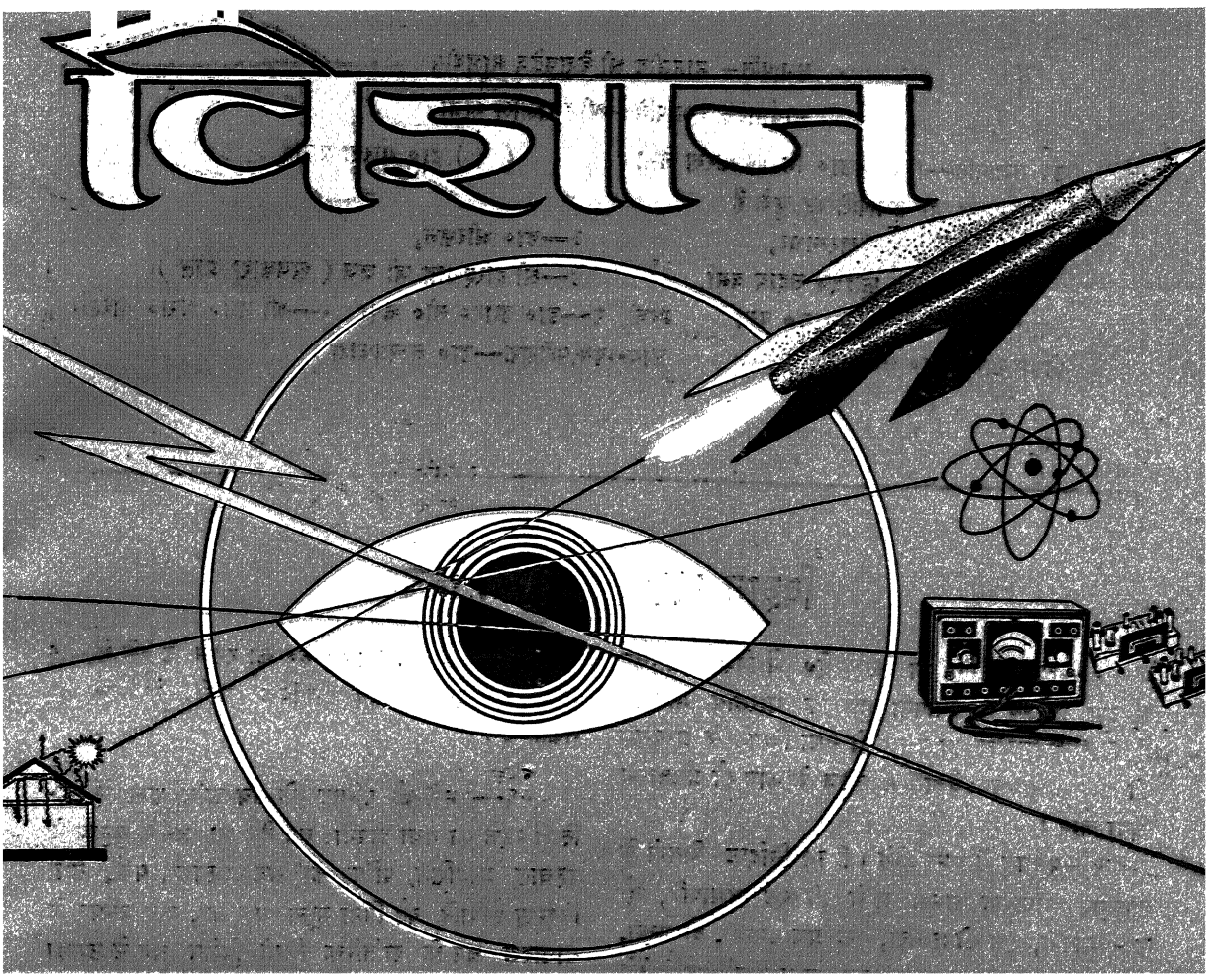
भाग ८६ संख्या ६

मार्च १९५८, मीन २०१४ वि०, फाल्गुन १८७९ श०

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का, यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्त्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायँगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ८६	मीन २०१४ विक्र० फाल्गुन १८७६ शाकाब्द; मार्च १९५८ ई०	संख्या ६

सम्पादकीय

विज्ञान और संस्कृति

कुछ शताब्दियों पूर्व वैज्ञानिक अपने ज्ञान को एक छोटे से वर्ग में ही सीमित रखते थे। जन साधारण में वैज्ञानिक तथ्यों के ज्ञान का प्रायः अभाव ही रहता था। आज के युग में भी अधिकांश व्यक्ति विज्ञान के रहस्यों से अपरिचित हैं किन्तु फिर भी वैज्ञानिक उपकरणों से लाभ उठाने की योग्यता प्राप्त करने के हेतु उन्हें कुछ साधारण बातों को समझ लेना ही पड़ता है। फिर आणविक अस्त्र, दूरमारक अस्त्र, अन्तर-महाद्वीपीय-प्रक्षेपास्त्र, कृत्रिम चन्द्र आदि के आविष्कारों ने मानव को अपरिसीम शक्ति का स्वामी बना दिया है। इस शक्ति के उपयोग के परिणाम के प्रति आँख बन्द कर बैठे रहना अब सम्भव नहीं रहा। इस प्रकार से यदि जनसाधारण इन आविष्कारों के सिद्धान्तों को न भी समझे इनके उपयोग जनित परिणामों को समझने के लिये साधारण वैज्ञानिक ज्ञान की उपलब्धि आवश्यक हो गई है।

आज के समाज में सभ्यता का मापदंड किसी व्यक्ति विशेष के अधिकृत सुख सामग्रियों का भंडार है। अन्य क्षेत्रों में उसके ज्ञान का अभाव उसके सामाजिक स्तर पर विशेष प्रभाव नहीं डालता। इस तथ्य को सम्मुख रख कर यदि हम विचार करें तो स्पष्ट हो जावेगा कि यदि ललित कलाओं और साहित्य की अवहेलना करके भी वैज्ञानिक क्षेत्र की प्रगति चलती रहती तो जो अवस्था मानव समाज की आज है वह उससे भिन्न नहीं होती किन्तु विज्ञान के विकास के अभाव में केवल ललित कलाओं और साहित्य की उन्नति हमें आज अनेकानेक सुविधाजनक उपकरणों से वंचित कर देती और समाज आज इतनी भौतिक उन्नति न कर सका होता जितनी कि वह कर सका है। फिर भी साहित्य एवम् कला की प्रगति के महत्त्व को ठुकराया नहीं जा सकता। इस शक्ति के अभाव में केवल वैज्ञानिक प्रगति ने एक ऐसी दानव परम्परा का निर्माण कर दिया होता जो दूसरों के अहित और विनाश में ही सुख का अनुभव करती और अन्ततोगत्वा मानव जाति के नाश का मार्ग खोल देती।

इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि मानव आज वैज्ञानिक तथ्यों का साधारण ज्ञान प्राप्त करे जिससे वह समझ सके कि नवीनतम आविष्कारों का उपयोग क्या होगा। यदि इस प्रकार की अर्जित शक्ति का दुरुपयोग होने की सम्भावना हो तो वह अपना स्वर उसके विरोध में उठाये जिससे केवल कल्याणकारी कार्यों में ही यह शक्ति प्रयुक्त हो सके। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये हमें मानव हृदय की कोमल भावनाओं का विकास करना पड़ेगा, हमें अपनी प्राचीन संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करना होगा और साहित्य एवम् कला के विकास की ओर मानवजाति की अभिरुचि को मोड़ देना पड़ेगा। विज्ञान और संस्कृति के समन्वय से ही हम ऐसे मार्ग पर

विश्व को चलने को तैयार कर सकेंगे जहाँ अपरिसीम शक्ति का प्रमाद उसे गड्ढे में न गिरा सकेगा।

प्रमुख वैज्ञानिकों को आज सत्ता की ऐसी आज्ञाओं को मानने का विरोध करना होगा जो उनसे केवल विनाश के उपकरण ही बनवाती है। उन्हें अपनी सारी शक्ति सृजनात्मक कार्यों में ही लगानी पड़ेगी। भारतवर्ष के वैज्ञानिकों की मनोवृत्ति आज इसी प्रकार की है। वे केवल मानव समाज के कल्याणकारी कार्य ही कर रहे हैं। डा० एच० जे० भाभा के सभापतित्व में अन्तर्राष्ट्रीय अणु शक्ति कमीशन ऐसा ही कार्य कर रहा है। हमें इस बात का गर्व है कि इस बार का लेनिन शान्ति पुरस्कार भारत के एक प्रमुख वैज्ञानिक सर सी० वी० रमन को प्राप्त हुआ है।

इस दिशा में संयुक्त राष्ट्रीय शैक्षिक वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संघ (यूनस्को) का कार्य भी सराहनीय है। उड़ीसा प्रदेश के श्री बी० पटनायक ने इस ध्येय में अपना सहयोग देने के हेतु सन् १९५२ में यूनेस्को के तत्वावधान में प्रतिवर्ष एक ऐसे व्यक्ति को कलिंग पुरस्कार देने की व्यवस्था की जिसकी सेवायें वैज्ञानिक एवम् सांस्कृतिक क्षेत्र में महान हों। इस वर्ष इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाले इङ्गलैंड के प्रमुख वैज्ञानिक-दार्शनिक बर्ट्रेन्ड रसल हैं। हमें आशा है कि यूनेस्को अपना कार्य अधिक गति से बढ़ायेगी और यदि संसार के प्रमुख देशों का सहयोग मिलता रहा यह संस्था राष्ट्रों के मानसिक विकारों पर अंकुश रख कर उनके स्वस्थ विकास में सहायक हो सकेगी।

बंगलौर स्थित भौतिक विज्ञान संस्थान के निर्देशक सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन जिन्हें हाल ही में अन्तर्राष्ट्रीय लेनिन शान्ति पुरस्कार मिला है। आप गत पचास वर्षों से भौतिक विज्ञान में और विशेष कर प्रकाश विज्ञान में बहुमूल्य कार्य कर रहे हैं। आप कई वैज्ञानिक संस्थाओं के संगठनकर्ता एवम् निर्देशक रहे हैं। इस समय आप भौतिक-शास्त्र में भारत सरकार के परामर्शदाता भी हैं। आपको रमन प्रभाव के अनुसंधान में १९३० में नोबेल पुरस्कार मिला था।

विज्ञान, मार्च १९५८
पृ० १६३—१६८

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल, प्राध्यापक, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

कुछ लोगों का विचार है कि प्राचीन भारत ने केवल परलोक का ही चिंतन किया। उसमें भौतिक विज्ञान का सर्वथा अभाव है, किन्तु जिन लोगों ने प्राचीन भारत की भौतिक-विज्ञान की दिशा में देनों को परखने का कष्ट उठाया है, वे यह अवश्य स्वीकार करेंगे, कि ऐसी धारणा केवल भ्रममात्र है। वैदिक काल में जो कृषि के क्षेत्र में विकास हुआ, उसका परिचय हम प्राप्त कर चुके हैं। इस युग को पार कर हम एक ऐसे धरातल पर पहुंचते हैं, जहाँ कृषि ने इतनी उन्नति प्राप्त की और उसका वर्णन इतना विशद एवं सूचनावर्द्धक है कि थोड़ी देर के लिये हम मंत्रमुग्ध हो जाते हैं, अपनी अतीतकालीन वैज्ञानिकता पर। इस प्रसंग में हम पराशर मुनि का स्मरण करना चाहते हैं जिन्होंने **कृषि पाराशर** नामक ग्रंथ की सृष्टि की। इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता यह है कि यह प्रधानतया कृषि-विषयक शास्त्र है।

कृषि पाराशर के कर्त्ता, रचनाकाल, शैली तथा भाषादि पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करने वाले कई लेख अब तक प्रकाशित हो चुके हैं—डा० एस० पी० राय चौधरी ने सन् १९३६ में ही कृषि-संग्रह के विषय में एक सूचना प्रकाशित कराई थी। सन् १९१५ ई० में ताराकान्त काव्यतीर्थ ने संस्कृत के मूल पाठ का बंगला में संक्षिप्त अनुवाद प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि कृषि संग्रह की प्राचीनतम पाण्डुलिपि लन्दन के इंडिया-आफिस में सुरक्षित है। भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट के प्रमुख पत्र में ३६ वें अंक में (जनवरी-अप्रैल १९५५, नं० १-२) कृषि पाराशर पर सुरेश चन्द्र बनर्जी का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक इतिहासकारों एवं ज्योतिषियों ने भी कृषि-संग्रह एवं पराशर की चर्चा की है। एल्ब्रेख्ट वेवर ने "हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर" में लिखा है कि यद्यपि भारतीय ज्योतिष विशारद यवनों को अपना गुरु मानते हैं किन्तु यह धारणा भारत के प्राचीन ज्योतिषविद् पराशर के संबन्ध में लागू है या नहीं, अभी तक अनिश्चित है। रमेशचन्द्रदत्त ने **"प्राचीन भारतीय सभ्यता का इतिहास"** में पराशर के ज्योतिषग्रंथ **पराशर तंत्र** का उल्लेख किया है। गिरजाप्रसन्न मजूमदार ने अपनी पुस्तक "वनस्पति" (१९२७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, पृ० २०७) में "कृषि पराशर" को एक ऐसा ग्रंथ बताया है जो प्रधानतया कृषि विज्ञान से सम्बन्धित है और जिसके वर्णन कृषि व्यापारों का सूक्ष्मतम अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। बंगाल के प्रमुख निबंधकार श्री रघुनंदन ने अपने **ज्योतिष तत्व** में स्थान-स्थान पर पाराशर मत का उल्लेख किया है।

प्राप्त प्रमाणों के आधार पर पराशर मुनि के नाम तथा काल के सम्बन्ध में प्रचुर मतभेद दीख पड़ता है। यदि यह पराशर वही पराशर मुनि हैं जिनका उल्लेख याज्ञवल्क्य की धर्मशास्त्रकारों की सूची में आया है तो इनका काल याज्ञवल्क्य से भी पूर्व १०० या ६०० ई० के बीच मानना होगा। ग्रंथकार ने अन्य पुरुष में ही पराशर का नामोल्लेख किया है किन्तु संस्कृत साहित्य में ऐसा प्रयोग कोई अनहोनी घटना नहीं। वैसे तो अन्य उद्धरणों के अनुसार पराशर का काल १३०० ई० पू० भी माना जाता है। किन्तु रघुनन्दन ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि कृषि-पाराशर में कुछ ऐसे भी श्लोक हैं जो अन्य शास्त्रकारों के हैं यथा राज मार्तण्ड और बराह के। कुछ साहित्यिक प्रमाणों के आधारों पर पी० वी० काणे अपने धर्मशास्त्र के इतिहास (खंड १ पृ० २७६) में राजमार्तण्ड का कर्त्ता धारा के राजा भोज को मानते हैं और राजा भोज का काल १०००—१०५५ ई० है। यदि मान लें कि कृषि-पाराशर के कर्त्ता ने ही ये श्लोक

लिखे तो वह ११वीं शदी के अन्तिम भाग में रहे होंगे। इन आधारों पर कृषि-पराशर को ९५०-११०० ई० के बीच की रचना माना जा सकता है। इस मत की पुष्टि के लिये रघुनन्दन अपना अभिमत प्रकट करते हैं कि बंगाल में पराशर कृषि के मुख्य आचार्य माने जाते हैं। **कृषि-पराशर** जो **कृषि-संग्रह** तथा **कृषि-पद्धति** के नाम से भी प्रसिद्ध है—कृषि का अनुपम ग्रंथ है। ग्रंथ के नाम तथा उसकी पुष्पिका दोनों ही उसे पराशर के नाम से सम्बद्ध करते हैं। इसकी प्राचीनता के प्रमाण में इस ग्रंथ की पद्यमयी रचना प्रथम तर्क है। ऐसी शैली निबंधकाल (११वीं शती ई०) के पूर्व ही सम्भव थी। कोई भी प्रसिद्ध स्मृति ग्रंथ अथवा निबंध श्लोकों में नहीं लिखा गया है यद्यपि उनमें विभिन्न आचार्यों के असंख्य श्लोक उद्धरणों के रूप में उद्धृत हुये हैं। **कृषि पराशर** के रचयिता ने केवल मनु और गार्ग्य के ही उदाहरण दिये हैं जो निबंधों की शैली के सर्वथा प्रतिकूल है। इससे भी यही पुष्ट होता है कि यह ग्रंथ निबंध काल से पूर्व की रचना है। निबंधकारों की यह प्रणाली रही है कि अपने पूर्ववर्ती या समकालीन ग्रंथकारों के उद्धरण प्रचुरता से देते। यह एक अकेला लक्षण है जिससे सम्भाव्य लगता है कि यह ग्रंथ निबंधकाल के पहले का है और स्वयं न तो निबंध ग्रंथ है और न संकलन ग्रंथ ही। इसकी शैली और अभिव्यक्ति ऐसी हैं जो ८वीं सदी ई० के बाद के भारतीय साहित्य में कदाचित ही मिलती है। अतः यह सुझाव रखा जा सकता है कि मौलिक धर्मशास्त्रों के लेखन काल के पूर्व ८वीं शदी की यह रचना है।

कृषि पराशर संस्कृत का काव्यग्रंथ है जिसका प्रारम्भ ग्रंथकार की प्रशस्ति तथा कृषि स्तुति से हुआ है। इसमें कृषि पर ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव, मेघ और उसकी जातियाँ, आढक (वर्षा माप), उसकी व्याख्या, वर्षा का अनुमान, विभिन्न समयों की वर्षा के प्रभाव, कृषि की देखभाल, बैलों की सुरक्षा, कृषि में बैलों की संख्या, हलों की संख्या, गायों के पर्व, गोबर की खाद, हल के उपकरण, जोताई के आरम्भिक कृत्य, बैलों के चुनाव, कटाई का समय, रोपण, धान्य संग्रह, संवत्सर-राजा निर्णय, वर्ष में मेघ विस्तार, कृषि विषयक ग्रंथादि पर विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। याद रहे इस ग्रंथ में कृषि का ही विस्तृत विवेचन है, सामाजिक या राजनीतिक विषयों का रंचमात्र भी वर्णन उपलब्ध नहीं। श्री तारा कान्त काव्यतीर्थ ने कृषि-संग्रह के नाम से कृषि पराशर का बंगला भाषा में सम्पादन करके बड़ा उपकार किया है। उसमें २२३ श्लोक हैं। इनका अंग्रेजी अनुवाद डा० एस० पी० रायचौधरी ने अपनी कृति "प्राचीन भारत की कृषि प्रणालियां" में दिया है। आवश्यक अंशों का हिन्दी रूपान्तरण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है:—

'कृषि के ही द्वारा मनुष्य भिक्षा वृत्ति से निवृत्त हो सकता है और कृषि के ही बल पर संसार में राजा की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है। वे पुरुष भी जिनके पास प्रभूत स्वर्ण, रूपा, हीरे तथा वस्त्रादि होते हैं, कृषकों से ही अन्न की भिक्षा माँगते हैं क्योंकि अन्न के अभाव में गले, हाथों और कानों में स्वर्ण के आभूषण पहने रहने पर भूखों मरते हैं। भोजन ही जीवन, भोजन ही शक्ति और भोजन ही सभी वस्तुओं का पूरक है। देव, असुर और मनुष्य सभी भोजन पर ही निर्भर हैं।

भोजन शालि से उत्पन्न है और वह बिना कृषि के उपलब्ध नहीं, अतः सब कामों को छोड़ कर सतर्कता से कृषि करनी चाहिये :—

अन्नं तु धान्य संभूतं, धान्यं कृष्या बिना न च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नं च कारयेत ॥

कृषि ही यश है, कृषि पूज्य है एवं कृषि ही सभी प्राणियों का प्राण है। यदि कृषि की देख-रेख की गई तो सोना ही सोना अन्यथा दरिद्रता के द्वार झाँकने पड़ते हैं। ब्राह्मणों को षटकर्म के साथ ही कृषि कार्य भी करना चाहिये। वह जो भलीभाँति कृषि करता है, सच्चा कृषक कहलाता है। कृषि के लिये वर्षा आवश्यक है और जीवन के लिये कृषि, अतः हर एक को सर्व प्रथम वर्षा का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्षा के लिये आवश्यक है कि वर्ष के राजा और मन्त्री तथा बादलों की प्रकृति और वर्षा-जल की मात्रा का समुचित ज्ञान हो। वर्ष के राजा का ज्ञान करने के लिये वर्ष संख्या को तीन से गुणा करके दो जोड़ दिया जाता है और इस

संख्या को सात से भाग देने पर जो अंक प्राप्त होगा वह नक्षत्र बतायेगा, जो उस वर्ष का राजा होगा। राजा के बाद का चौथा नक्षत्र वर्ष के मन्त्री को बताता है।'

यदि वर्ष का राजा सूर्य हुआ तो मध्यम वर्षा होगी, चन्द्रमा के होने पर अति वृष्टि, मंगल के होने पर न्यून वृष्टि और बुध, बृहस्पति तथा शुक्र के होने पर अत्यधिक वृष्टि होती है। शनि के राजा होने पर सूखा पड़ेगा और धरती धूल से भर जावेगी।

'यदि वर्ष का राजा सूर्य हुआ तो फसलों की हानि होगी और प्राणी नाना प्रकार के रोगों से दुखी रहेंगे। चन्द्रमा के होने पर अच्छी फसलें होंगी, मनुष्य स्वस्थ रहेंगे और अच्छी वर्षा होगी तथा प्रचुर भोजन होगा। मंगल के राजा होने पर धरती में उस वर्ष कुछ न होगा और अकाल पड़ेगा। बुध के राजा होने पर पृथ्वी में प्रचुर धान्य होगा, लोग धार्मिक और सहिष्णु बनेंगे तथा अच्छी वृष्टि होगी। बृहस्पति के होने पर पृथ्वी में भोज्य पदार्थों की भरमार होगी और राजाओं का धन-धान्य दिन प्रतिदिन बढ़ता रहेगा। जब पृथ्वी पर शुक्र राजा होता है तो फसलें अच्छी तो होंगी किन्तु नाना प्रकार के व्यवधान—जैसे युद्ध, तूफान अतिवृष्टि अथवा संक्रामक रोग—आते हैं। वर्ष का राजा शनि होने पर कम वर्षा और शतत तूफान आते रहते हैं।'

'बादल चार प्रकार के होते हैं—आवर्त, समावर्त पुष्कर और द्रोण। वर्ष संख्या में ३ जोड़ कर चार भाग देने पर जो शेष बचता है, उस वर्ष के बादल के राजा को बताता है। यदि बादल का राजा आवर्त हुआ तो पृथ्वी अंशतः भीगेगी किन्तु समावर्त के अधिपति होने पर वह पूर्णरूपेण भीगेगी। पुष्कर के होने पर न्यून वर्षा तथा द्रोण के राजा होने पर अत्यधिक वर्षा होवेगी।'

वर्षा-जल की मात्रा का मापन आढ़क इकाई के द्वारा किया जाता है। यदि मापक पात्र की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्रत्येक १२ अंगुल हों तो वह आढ़क कहलाता है। यह चलिता, आम अथवा पुन्नग वृक्षों की लकड़ी से बनाया जा सकता है। यदि यह नीम या पाकड़ का बने तो किसान गरीब हो जाते हैं।

जब चन्द्रमा मिथुन, मेष, वृष अथवा मीन राशियों पर आता है अथवा जब सूर्य कर्कट राशि में प्रवेश करता है तो १०० आढ़क वर्षा होती है। सिंह या धनु राशियों पर सूर्य के प्रवेश होने पर ५० आढ़क और कन्या तथा मकर राशियों में प्रवेश करने पर ८० आढ़क पानी बरसता है। कर्कट, कुम्भ, वृश्चिक तथा तुला राशियों पर ९६ आढ़क वृष्टि होती है। वर्षा जल का १० भाग समुद्रों के ऊपर, ६ भाग पहाड़ों पर और शेष चार भाग पृथ्वी पर गिरता है।

पौष मास में ढाई-ढाई दिनों के अन्तर पर जितना पानी बरसता है उससे वर्ष भर की वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। पौष मास का हर पाँचवा दंड मास के एक दिन का निर्धारण करता है। यदि पाँच दंड के पूर्वार्द्ध में वर्षा हो तो मास की वर्षा दिन में होगी और यदि उत्तरार्द्ध में वर्षा हुई तो उस मास की वर्षा रात्रि में होगी। यदि पौष मास के शुक्ल पक्ष में आकाश बादलों से आच्छादित रहे और पश्चिम में बिजली चमके तो यह समझना चाहिये कि पृथ्वी वर्षा-जल से उमड़ पड़ेगी। यदि पौष का कोई दिन कुहरा से भरा हो या वर्षा हो तो सातवें मास के उसी दिन गहरी वर्षा होगी।

यदि शुक्ल पक्ष की सप्तमी को, माघ मास में, बादल दिखाई पड़ें या वर्षा हो तो उस वर्ष अच्छी फसलें होंगी। यदि माघ मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को स्वाती नक्षत्र में पानी बरसे अथवा तेज हवा चले या दिन के समय पानी भरे बादल गरजें या पूरे आकाश में बिजली तड़पे तो उस काल से कार्तिक मास तक अच्छी वर्षा होगी।

यदि माघ और फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी अथवा चैत्र और बैसाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को तेज हवा चले और बिजली चमक कर वर्षा हो तो उस साल पृथ्वी पर अच्छी वर्षा होगी और प्रचुर अन्न होगा। माघ और फागुन मास में यदि किसी भी दिन पानी बरसे तो तब से सातवें मास में पृथ्वी पर गहरी वर्षा होगी। यदि चैत्र मास के पूर्वार्द्ध में वर्षा हुई तो सारे वर्ष मध्यम वर्षा होगी और यदि बीच मास में अथवा उत्तरार्द्ध में हुई तो उस वर्ष अतिवर्षा होगी। यदि

आसाढ़ मास में पूर्वा हवा बहे तो अच्छी वर्षा होगी। यदि शुक्ल पक्ष की नवमी को पानी बरसे तो भी साल भर तक अच्छी वर्षा होगी। यदि श्रावण मास में, जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में हो, वर्षा हो तो कार्तिक मास की शुक्ला एकादशी तक वर्षा होगी अन्यथा रोहिणी पर चन्द्रमा के न होने पर पृथ्वी भर में आपत्ति आवेगी।

'ऋषियों का कथन है कि गृहस्थी का कार्य पिता और घर का कार्य माता को दे दो। पशुओं की देखरेख के लिये अपने ही समान विश्वसनीय व्यक्ति निर्धारित करो और कृषि के समस्त कार्यकलापों को स्वयं देखो क्योंकि गायें, धनुर्विद्या, पत्नी और राज्य, ये सभी क्षण मात्र की उपेक्षा से नष्ट हो जाते हैं। शक्त पुरुषों को कृषि की ओर ध्यान देना चाहिये क्योंकि इसके द्वारा राष्ट्र का कल्याण होगा। अशक्त पुरुष ही भीख माँगते हैं।

'वह किसान जो अपने पशुओं की रखवाली करता है, स्वयं खेतों तक जाता है, वर्षा और सस्य के समयों से भलीभाँति परिचित होता है, अच्छे बीज रखता है और आलस्य से रहित है, वह सभी प्रकार की फसलें उपजाता है और कभी हतोत्साहित नहीं होता।'

'कृषि में प्रयुक्त पशुओं से अत्यधिक परिश्रम नहीं कराना चाहिये। वे फसलें जो इस प्रकार कष्ट देकर प्राप्त की जाती हैं, शुभ नहीं। इस प्रकार से चार गुना अधिक उत्पादन भी पशुओं की आह के कारण किसानों को दरिद्र बनाने वाला होता है। यदि पशुओं को बीजों की खली का चूर्ण, घास और अन्य पौष्टिक भोजन दिये जाते हैं और प्रतिसायं एवं सुबह चरागाहों में चरने दिया जाता है तो वे कभी थकान का अनुभव नहीं कर पाते।'

जिन किसानों के बाड़े सुदृढ़ एवं गोबर मूत्र से रहित होते हैं, उनके पशु बिना किसी प्रकार के पौष्टिक पदार्थों के ही बढ़ते रहते हैं किन्तु यदि वे गोबर तथा मूत्र से सने हुये दिखें तो सभी प्रकार का भोजन वृथा है। पचपन हाथ लम्बा गोशाला गायों के लिये स्वास्थ्यप्रद होता है। राशि में सूर्य के प्रवेश करते समय यदि गोशाले का निर्माण किया जाता है तो सब गायें मर जाती हैं। यदि गोशाले में कोई चावल का धोवन, मांड, मछली के धोवन, बिनौले या धान की भूसी रखता है तो उसकी गायें नष्ट हो जाती हैं। गृहस्थों को चाहिये कि कभी भी गोबर को गोमूत्र से साफ न करें अन्यथा गायों के ऊपर आपत्ति आने का अंदेशा रहता है। जो अपनी गायों की भलाई चाहते हैं उन्हें चाहिये कि इतवार, मंगल और शनिवार के दिन किसी को गोबर न दें। जो गोशाला रात्रि में दीपित नहीं किया जाता वहाँ से लक्ष्मी रूठ जाती है।'

'हल में आठ बैलों का प्रयोग यशवान कार्य है। जो व्यापारी हैं वे छः बैलों का प्रयोग करते हैं, जो निष्ठुर हैं वे चार का और जो दो बैलों का प्रयोग करते हैं वे पशु-हन्ता कहे जाते हैं। जिन किसानों के पास १० हल हैं वे लक्ष्मीवान हैं। पाँच हलों से सम्पदा और तीन हलों से भोजन की प्राप्ति होती है। दो हल वाले किसान के इतना अधिक अन्न नहीं हो पाता कि वह पूर्वजों, देवों और अतिथियों को प्रदान कर सके। एक हल वाला किसान सदैव ऋणी बना रहता है।'

'कार्तिक मास के लागुर काल में बैलों को केशर से रङ्ग कर चन्दन का लेप करना चाहिये और ग्वाला को अच्छे वस्त्रों से सज्जित हो, हाथ में लाठी लेकर एक बैलों के पीछे नाचते-गाते चलना चाहिये। ऐसा करने से बैलों पर कोई आपत्ति नही आती!'

'माघ के किसी पुनीत दिवस पर गोबर के गड्ढों की पूजा की जानी चाहिये फिर फावड़े से उसे उलटना-पलटना चाहिये। इसके पश्चात् सुखा कर उसे चूर्ण करना चाहिये। फाल्गुन मास में इसे गड्ढों के भीतर भर देना चाहिये और बीज बोते समय ही खेतों में डालना चाहिये। बिना खाद के धान उगता तो है किन्तु उसमें बीज नहीं आते।'

'किसानों को चाहिये कि अपने खेतों को बिना रुके जोतते रहें क्योंकि ऐसा न करने पर कुड टूट-फूट जावेंगे। खेतों को एक, तीन और पाँच बार जोतना चाहिये। एक बार की जुताई सफलता लाती है, तीन बार की जुताई आवश्यक फसलें और पाँच बार की जुताई अत्यधिक अन्न पैदा करती है।'

'जो किसान शुभ अवसरों की अवहेलना करते हुये

मनमानी खेती करते हैं, उसके सम्पूर्ण कृषि-कलाप नष्ट हो जाते हैं। यदि माघ के मास में खेती की गई तो धरती सोना उगलती है, फाल्गुन में चांदी, चैत्र में तांबा। यदि वैसाख में खेती की गई तो धान जैसे मूल्य की उपलब्धि होती है, ज्येष्ठ में धूल-जैसे, आषाढ़ में कीचड़ जैसे और श्रावण में धरती किसी प्रकार की फसल नहीं पैदा करती।'

'सभी प्रकार के बीजों का संचय माघ या फाल्गुन मास में होना चाहिये। दिन में सूर्य के प्रकाश में भली-भाँति सुखा कर रात्रि में ओस में रखना चाहिये। फिर बोरों में बीज भर देना चाहिये। एक प्रकार के बीज पृथक-पृथक बोरों में भरे जाने चाहिये क्योंकि मिश्रित बीज उपज के लिये वृथा हैं। पृथक कोटि का बीज अच्छा उत्पादन लाता है। अतः विभिन्न प्रकार के बीजों का एकत्रीकरण आवश्यक है। बीजों को चिंटौले, गोशाला या सौवर या बांझ के घर से दूर रखना चाहिये। व्यभिचारिणी, गर्भिणी, बाँझ या आसन्नप्रसवा स्त्रियों को बीज न छूने चाहिये। किसान को भूल कर भी बीजों के ऊपर घी, तेल, नमक, दूध या दीपक न रखना चाहिये। गार्ग्य मुनि का कथन है कि वे बीज जो दीपक, अग्नि या सुगन्धित पदार्थों के पास रखे गये हों अथवा वर्षा जल से सड़ गये हों या खत्तियों में रखे गये हों, उन्हें तिरस्कृत कर देना चाहिये। मिट्टी के अन्दर रखे और मिश्रित बीजों को कभी नहीं बोना चाहिये। वे बीज जो भूसे के साथ बोरों में रखे जाते है, उगने में अशक्त होते हैं और किसान, खाद, खेत तथा बैल और हल के श्रम निरर्थक हो जाते हैं। यह नियम तिल, धान और जौ के लिये लागू होता है। अन्नोत्पादन बीजों पर निर्भर है अतः बीजों के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिये।'

'बीजों को बोने का सर्वोत्कृष्ट महीना बैसाख है। फिर ज्येष्ठ आता है। आसाढ़ बुरा महीना है और सावन सब से निकृष्ट। जहाँ बाद में रोपने की आवश्यकता होती है ऐसे बीजों को बोने का सर्वोत्तम महीना असाढ़ है, सावन बुरा है और भादों निकृष्ट। सोम, बुध और शुक्र के दिन न तो बीज बोना चाहिये, न पेड़ लगाना चाहिये। यदि मंगल के दिन रोपाई की गई तो चूहे लगते हैं और यदि शनिवार को हुई तो कीड़े-मकोड़ों का कोई भय नहीं रहता। शुक्ल पक्ष की चौथ, नौमी और चतुर्दशी को बीज न बोने चाहिये। यदि उपरोक्त बातें ध्यान में रखी गईं तो अच्छी फसल होगी।'

'बीज बोने के पश्चात् खेत को तख्तों से ढक देना चाहिये अन्यथा बीज समान रूप से पूरे खेत में नही उग पाते।'

'ईषा (हरीस), जुआ, हलस्थाणु (कुढ़), निर्योल (फाल), पाशिका (दाबी), अड्डचल्ल (पाचर), शइल और पच्चनी ये हल के आठ अंग होते हैं। पाँच हाथ की हरीश, ढाई हाथ का कुढ, डेढ़ हाथ का फार और बैल के कान बराबर जुआ होना चाहिये। फार, दाबी, पाचर—ये तीनों १२-१२ अंगुल के हों और शइल हाथ भर का। साढ़े बारह मूठी या नौ मूठी का आगे लोहा लगा हुआ पुष्ट बाँस का पाचर होना चाहिये। जुवा के बीच में गोलाकार पंद्रह अंगुल का आबंध होता है। चार हाथ का जुवा और पाँच हाथ का नाधा होता है। एक हाथ पाँच अंगुल या १ हाथ का फार होता है और मदार के पत्ते के समान नौ अंगुल की दाबी होती है।'

बिद्धक इक्कीस काँटों से युक्त होता है। नौ हाथ का हेंगा खेती के लिये अच्छा होता है। जिस किसान के पास यह हल की सामग्री रहती है उसका कल्याण होता है। अड़तालीस अंगुल का हल (कुढ़) होता है। इस अड़तालीस में से हरीस के छेद के नीचे सोलह अंगुल और छेद के ऊपर छब्बीस अंगुल रहे और छः अंगुल का छेद हो, जिसमें हरीस रहती है। सात हाथ की हरीस विद्वानों को मान्य है और उसका छेद नौ बोते पर करना चाहिये।

जुवा चार हाथ का होना चाहिये। कंधे के ऊपर अर्द्ध चन्द्राकार बनवाना चाहिये। वह मेड़ों के सींग का, कदम्ब, रसाल या धत्रा की लकड़ी का होना चाहिये। विषम गाँठों का, चार हाथ लम्बा, बाँस का, पैना होना चाहिये और उसके सिरे पर लोहे के समान जवाकार बना दे।

'धान के बीज दो प्रकार के होते हैं। एक तो बोये जाने वाले और दूसरे रोपने के लिये। प्रथम प्रकार का

बीज स्वस्थ होता है जब कि दूसरे प्रकार का रोगों से युक्त। जब बीज से अँकुआ निकल कर पूरा पेड़ हो जाय तो उखाड़ कर उसे रोपना उचित नहीं। केवल नौजवान पेड़ों को ही उखाड़ कर रोपना चाहिये अन्यथा उनमें बीज नहीं आते। यदि श्रावण मास में रोपाई की जाय तो दो पौधों के बीच एक हाथ का फासला होना चाहिये। भादों में रोपाई करते समय यह फासला आधा हाथ और कुँवार में उँगली की चौड़ाई का चौगुनी होना चाहिये। असाढ़ और श्रावण मास में धान के पौदों की छँटाई करनी चाहिये। यदि प्रारम्भ में ही जब पौदे उग रहे हों, यह छँटाई की गई तो वे नहीं बढ़ते। यदि वर्षा न हो तो भादों मास में भी छँटाई करने पर आधी पैदावार होगी। कुँवार में छँटाई करने पर किसी प्रकार की फसल की आशा व्यर्थ है। दलदल में न तो छँटाई की आवश्यकता पड़ती है और न रोपाई की और न ऐसे स्थानों में खाद ही डालनी चाहिये। केवल घास एवं तिनकों की सफाई ही आवश्यक होती है। रोपाई के पश्चात् खर-पतवार की निराई आवश्यक है, नहीं तो धान के पेड़ बढ़ नहीं पाते और न अच्छी उपज ही होती है। यदि सावन और भादों में यह निराई की गई तो उपज दुगुनी हो जाती है, चाहे बाद में घासें भले उग आवें। अतः किसानों को उचित समय पर खेतों की निराई करनी चाहिये।

यदि भाँदों के महीने में धान के खेतों से अधिक पानी काट कर निकाल नहीं दिया जाता तो रोगों के फैलने का डर रहता है। धान का रोग दूर करने के लिये केतकी के पत्रों में बेल के काँटे से मंत्र लिख कर खेत के दक्षिणी पूर्व कोने के धानों की पत्तियों में बांध देना चाहिये। ऐसा करने से रोगों, कीटों एवं धान को हानि पहुँचाने वाले पशुओं का विनाश होता है। अगहन आने पर किसानों को चाहिये कि धान के खेतों के उत्तरी पूर्वी भाग में सुगंधित द्रव्यों, पुष्प, लोहवान से पूजा करके ढाई मूठ धान काट कर, सर पर रख कर चुपके से घर जाना चाहिए। रास्ते में किसी को छूना नहीं चाहिये। धान का एकत्रीकरण कार्तिक और पूस में न करके अगहन में करना सर्वश्रेष्ठ होता है। अगहन के ही महीनों में छील और लीप कर खलिहान बनाना चाहिये। ऐसा करने से अच्छी उपज होती है। जब धान के खेत लहरा रहे हों और दाने पक गये हों तो पूस के महीने में किसी अच्छे दिन किसानों को खेतों में जाकर उत्सव मनाना चाहिये। अच्छा भोजन करना चाहिये तब कटाई प्रारम्भ करके कुटाई करनी चाहिये और अनाज को आढ़कों में नापना चाहिये। धान को खत्तियों में रखने के शुभ दिन सोमवार और शुक्रवार हैं। इन खत्तियों में मन्त्र लिख कर रख देना चाहिये और लक्ष्मी की पूजा भी करनी चाहिये। ऐसा करने से ऐश्वर्य बढ़ता है।"

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि पराशर को कृषि के विभिन्न अंगों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था। पानी की आवश्यकता की पूर्ति के लिये वर्षा-जल पर ही निर्भर रहने वाले भारतीय कृषकों के लिये उन्होंने पानी की माप और बादलों के प्रकारों की गणना कराई है। कृषि में प्रयुक्त विभिन्न यन्त्रों में से हल का विशिष्ट वर्णन पराशर की लेखनी की विशेषता है। पशुपालन के साथ-साथ उनके भोजन तथा उनसे प्राप्त गोबर, गोमूत्र अथवा उनके बाड़ों की स्वच्छता के विषय में प्रचुर ज्ञान प्रस्तुत किया गया है। कई बार की जोत, खेतों में पानी के रोकने, बीजों के सञ्चय एवं धानों की खेती के विषय में विशद सूचना दी गई है। ये सभी बातें इतनी वैज्ञानिक हैं कि उन पर दृष्टिपात करते हुये हम आज भी स्तम्भित रह जाते हैं। उस काल की भारतीय कृषि-पद्धति निश्चित रूप से बहुत आगे बढ़ी थी। पराशर की कृति से प्रेरणा प्राप्त करके किसान आज भी खेती करते और प्रचुर अन्न उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इन्हीं की परम्परा का अनुसरण करते हुये घाघ और भड्डुरी ने मुगलकाल में भारतीय कृषि के विकास में अभूतपूर्व योग दिया। खना देवी का एक अभूत पूर्व स्थान है, भारतीय कृषि के उन्नयन में। अगले अंक में हम उनके सहयोग का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

[क्रमशः]

धन के अक्षय भण्डार—महासागर

लेखक—एल० ए० जेकेविच, सोवियत संघ की विज्ञानअकादमी के कोरस्पांडिंग सदस्य

यह बात भले ही कुछ अजीब मालूम हो, पर महासागरों की गहराइयों का अभी हाल ही में "अन्वेषण" हुआ है। अभी कुछ समय पहले की बात है कि केवल चार या पांच किलोमीटर तक ही महासागर को टटोला गया था। इस समय वैज्ञानिक लोग प्रशान्त महासागर के गर्तों के तल की खोज कर रहे हैं और १० किलोमीटर की गहराई तक पहुँच रहे हैं। आधुनिक प्राविधि के फलस्वरूप अब महासागर के धन का उपयोग करने को, या यदि आप पसन्द करें तो उसके औद्योगिक विकास की बात सोचना सम्भव हो गया है। सूखी जमीन की अपेक्षा समुद्रों में बहुत अधिक पदार्थ पाये जाते हैं, जिनमें पोषक पदार्थ भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए, समुद्र के जल में जितना सोना है यदि वह सब निकाल लिया जाए तो पृथ्वी पर इतना अधिक सोना हो जाएगा कि उसका मूल्य ताम्बे के मूल्य से अधिक नहीं रह जाएगा। और कुछ वैज्ञानिकों ने तो समुद्र के जल से सोना निकालने की प्रौद्योगिकी का विकास करने का प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया है। दुर्भाग्य से, अभी तक यह प्रौद्योगिकी सोने से कहीं अधिक महँगी सिद्ध हुई है।

हमें केवल मछली पकड़ने, व्हेल मछलियाँ मारने, सीप और केकड़े पकड़ने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। समुद्र में जितने भी जीव-जन्तु रहते हैं, उन सब का मनुष्य के हित में उपयोग करना चाहिये। मनुष्य जाति को अति विशाल और संगठित समुद्री अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध करने की कला सीखनी चाहिए।

उदाहरण के लिए व्हेल मछलियों को लीजिए। उनके आकार को देख कर कोई सोचेगा कि हाथियों की तरह उनको भी परिपक्वता तक पहुँचने में वर्षों लग जाते होंगे। लेकिन ये "समुद्री हाथी" तो अपने जीवन के दूसरे या तीसरे वर्ष में ही परिपक्व हो जाते हैं और बच्चे देने लगते हैं। व्हेल मछलियों के इस तीव्र विकास का विज्ञान एक बहुत सरल सा कारण बताया है। वह यह है कि खाद्य-पदार्थों, पोषक पदार्थों, और विटामिनों के मामले में महासागर सूखी जमीन से कहीं अधिक धनी होता है।

पृथ्वी पर पौधों को गरमी और ठण्ड से अपनी रक्षा करनी पड़ती है, मिट्टी से नमी निकालनी पड़ती है, हवा से लड़ना पड़ता है, और सूरज की ओर बाहें फैलानी पड़ती हैं। उनकी सारी शक्ति इसी में खर्च हो जाती है, और जमीन के पौधों में कुल जितनी पोषक और उपयोगी सामग्री होती है, उसका प्रायः केवल पाँच से लेकर छः प्रतिशत तक ही मनुष्य के भोजन के रूप में इस्तेमाल होने के लिए बचता है। समुद्र में कुछ दूसरे नियम काम करते हैं। यहाँ पौधों को मजबूत तनों, बड़ी-बड़ी जड़ों, या संरक्षण के अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती। जमीन के पौधों के बिल्कुल विपरीत, समुद्री घास लगभग पूरी तरह कोमल कार्बनिक पदार्थों की बनी होती है, जिनका भोजन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। महासागर में जिस प्रकार की परिस्थितियाँ पायी जाती हैं, वे पौधों के जीवन के लिए आदर्श परिस्थितियाँ होती हैं। चारों ओर जल ही जल होता है, जिससे उनको पोषण मिलता है और ताप भी अनुकूल बना रहता है। यह बात अकारण नहीं है कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति सब से पहले गरम पानी के महासागरों के उपद्धदों में हुई थी।

जमीन के किसी पौधे में विटामिनों का ऐसा सांद्रण नहीं होता जैसा समुद्री जीवों में होता है। विशेष रूप से समृद्ध और पोषक वे जन्तु और पौधे होते हैं जो प्लैंक्टन या मंदप्लवक कहलाते हैं। ये बहुत ही सूक्ष्म पौधे तथा जन्तु होते हैं जो बड़े-बड़े झुण्ड बनाकर जल

के ऊपरी स्तरों में तैरा करते हैं। प्रसंगवश यहाँ यह भी बता दिया जाए कि अपने पोषक गुणों में वनस्पति प्लैंक्टन सर्वोत्तम प्रकार के भूसे से बहुत अधिक मिलते-जुलते हैं।

यदि आप किसी बनमार्ग के पेड़ों को काट डालें और वहाँ नवजात बिरवे लगा दें, तो उनको परिपक्वता तक पहुँचने में चालीस वर्ष लग जाएँगे। लेकिन महासागर में उन तमाम जीवों की, जिनमें भूगोल की अधिकतर आधारभूत वनस्पतियाँ आ जाती हैं, एक वर्ष में पचास पीढ़ियाँ तैयार हो जाती हैं।

अब यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि व्हेल मछलियां चालीस वर्ष के बजाय एक या दो वर्ष में ही क्यों बढ़ जाती हैं। उनको महासागर से प्रचुर पोषण प्राप्त होता है। और व्हेल मछलियाँ अपवाद नहीं हैं, वे तो यहाँ के जीवन का एक सुस्पष्ट उदाहरण मात्र हैं। ऐसे हजारों उदाहरण बताये जा सकते हैं।

मछलियों में सबसे अधिक पट्ठ शार्क होती है। लेकिन लगता है कि सबसे बड़े आकार की शार्क मछलियाँ अब दूसरी मछलियों को खा कर नहीं जीतीं। व्हेल मछलियों की तरह शार्क मछलियाँ भी अब अपने भीतर जल खींच कर और उसे छानकर मंदप्लवकों या प्लेक्टन नामक जीवों का भोजन करती हैं। शार्क मछलियों के पूर्वज निस्सन्देह दूसरी मछलियों को खाया करते थे। लेकिन उनमें किसी का भी आकार इतना बड़ा नहीं था जितना बड़ा आजकल की १६ मीटर लम्बी दैत्याकार शार्क का होता है, जो समुद्री चरागाहों में शान्तिपूर्वक प्लैंक्टन जीवनों का भोजन किया करती है।

ऐसी है प्रकृति की महिमा। इन साधनों का उपयोग करके मनुष्य भी चमत्कार कर के दिखा सकता है।

दसेक वर्ष, और बीत जाने दीजिए, हम महासागर से प्लैंक्टन जीवों की विशाल राशियाँ बाहर निकालने में सफल हो जाएँगे, उनका पालतू जानवरों के चारे के रूप में, और सम्भवतया मनुष्यों के भोजन के रूप में भी उपयोग किया जाएगा, और वे बहुत से प्राविधिक और डाक्टरी कामों में भी आयेंगी।

आजकल की नयी पीढ़ी, हमारे बच्चे और उनके बच्चे समुद्र की जटिल एवं अत्यधिक उन्नत अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध किया करेंगे। जब उसका वैज्ञानिक आधार पर संचालन किया जाएगा, तो वह लाभप्रद सिद्ध होगी। सबसे पहले तो स्वयं समुद्री जन्तुओं को इस्तेमाल किया जाएगा। इन जन्तुओं को जीवित फैक्टरियाँ समझना चाहिए, जो प्लैंक्टन जीवों को अधिक मूल्यवान पदार्थों में—पोषक प्रोटीनों, अनेक प्रकार की वसा और विटामिनों में—परिणत कर देती हैं।

समुद्री घास भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग का कच्चा माल बन जाएगी। अभी किसी ने टीक-ठीक हिसाब तो नहीं लगाया है, लेकिन अनुमान किया जाता है कि संसार में अरबों टन समुद्री घास मौजूद है। हम उसमें से केवल चन्द हजार टन का, अथवा एक नगण्य मात्रा का प्रयोग करते हैं।

मेरा विश्वास है कि लगभग ४० वर्ष में एक नया विज्ञान अपने जन्म की घोषणा कर देगा। वह होगा समुद्रान्तर-शस्य-विज्ञान। तब १०० मीटर तक की गहराई पर, जहाँ सूर्य का काफी प्रकाश पहुँच जाता है और जल गरम होता है, शस्य वैज्ञानिक और मिस्त्री लोग, डुबकी लगाने वालों के कपड़े पहने हुए और द्रुतगामी पनडुब्बी मशीनों का संचालन करते हुए, उपयोगी पौधों और जन्तुओं का पालन किया करेंगे।

विज्ञान, मार्च १९५८
पृ० १७१—१७५

वेदों में वैज्ञानिक तथ्य

लेखक श्री नन्द लाल जैन एम० एस-सी०

वर्तमान समय में यह एक निर्भ्रान्त तथ्य माना जाने लगा है कि आंग्ल-दासता के युग में प्रचलित आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने हमें पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की चकाचौंध में इस प्रकार अटका दिया है कि हम अपने ज्ञान-विज्ञान को जानकारी रखना तक भूल गये हैं। यही कारण है कि आजतक हम भारतीय वैज्ञानिक साहित्य एवं उसके स्रोतों के अन्वेषण व पठन-पाठन को अपनी शिक्षा प्रणाली में समाविष्ट नहीं कर पाये। प्राचीन भारतीय साहित्य में वेदों का सर्वोपरि स्थान है परन्तु नवीन दृष्टि से देखने के कारण उनके रचनाकाल एवं कर्तृकत्व विवादास्पद बने हुये हैं। विभिन्न ब्राह्मणों एवं स्मृति व भाष्य ग्रन्थों में वेदों की महिमा गाई गई है और उन्हें अगाध ज्ञान का भंडार कहा गया है। भारतीय इतिहास, भूगोल, खगोल, विज्ञान, गणित आदि के लिये वेदों का अध्ययन नितांत, आवश्यक है, और लेखक का तो यह मत हो गया है कि उच्च कक्षाओं में भारतीय विज्ञान के इतिहास एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में नियमित रूप से अनिवार्य अध्यापन करने की आज जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नही अनुभव की गई होगी। उनमें विश्वबंधुत्व एवं आध्यात्मिक उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचने के उपाय ही नहीं बताये गये हैं, वरन् तत्कालीन भौतिक उन्नति के दर्शन भी कराये गये हैं जिनसे भारतीयों के इतिहास एवं ज्ञान-विज्ञान की उन्नति का चित्र खींचते ही बनता है।

सामान्यतः-ॠक, यजुः, साम और अथर्व-चार वेद माने जाते हैं जिनकी शाखायें ११३० बताई गई हैं। प्रत्येक वेद में संहिता, आरण्यक, उपनिषद्, निरुक्त, कल्पसूत्र आदि पृथक-पृथक होते हैं, फलतः ये सभी ११३०-११३० होती हैं। परन्तु कालक्रम, विदेशी आक्रमण एवं विद्वेषादि विभिन्न कारणों से यह सारा साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ है, केवल चारों वेदों की ११ संहितायें ज्ञात हुई हैं। 'लक्षं तु वेदाश्चत्वारो' के अनुसार वेदों में एक लाख मंत्र हैं, जिनमें से आधे भी नहीं प्राप्य हैं। सभी वेदों में ॠग्वेद प्राचीनतम माना जाता है।

वेदोक्त मंत्रों के द्वारा हम जिस प्रकार की वैज्ञानिक तथ्योद्घाटनायें प्राप्त करते हैं, उन्हें हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत वर्णित करेंगे :—

(अ) गणित, (ब) रसायन, (स) चिकित्सा, (द) भौतिक और ज्योतिर्विज्ञान, (य) विविध।

गणित—गणित के अंतर्गत प्रायः सभी शाखाओं का वेदों में संक्षिप्त रूप में उल्लेख है। ॠग्वेद के अष्टम मंडल में साठ हजार और दस हजार घोड़ों के दान का उल्लेख है। यजुर्वेद में तो १ पर १२ शून्य रख कर दस खरब तक की गणना (१७·२) पाई जाती है। श्री हरबव हैकल के अनुसार वेदान्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों में आधुनिक वीजगणित के मूल अवश्य पाये जाते हैं। यज्ञों के विधि-विधान के लिये वेदिकाओं आदि की रचना में रेखा-गणित का उपयोग स्पष्ट ही है। द्रोणाकार, आयताकार एवं वर्गाकार वेदिकाओं की रचना का उल्लेख इस बात को प्रमाणित कर रहा है। कल्पसूत्रों में भुजा से कर्ण का सम्बन्ध, वर्ग के समान वृत्त एवं आयत का विवरण दिया गया है। इनमें वेदिकाओं व चितियों के विषय में भी परिमाणात्मक जानकारी दी गई है। गणित की सहायता से सृष्टि नियम समझाने के लिये ३६० ईंटों का अग्नि चयन किया जाता था क्योंकि वर्ष में ३६० दिन माने जाते थे एवं मानव शरीर में ३६० अस्थियाँ स्वीकृत की जाती थीं। अभी-अभी श्री यू० सी० वर्धन ने अपने एक शोध-पत्र में त्रिकोणमिति के मूल उद्गम की चर्चा करते हुए भारतीय वेदों एवं शुल्व सूत्रों में उसके

अवयवों के पाये जाने का उल्लेख किया है। वेदकालीन मानव-समाज यद्यपि आधुनिक युग के समान प्रयोगवादी एवं परिमाणात्मक नहीं था, फिर भी जीवन के लिये आवश्यक सभी गणितीय शाखाओं का आवश्यक ज्ञान उसने कर लिया था।

रसायन—रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों की देन के विषय में आचार्य राय की हिन्दू केमिस्ट्री, श्री पी० राय की मध्ययुगीन भारतीय रसायन (अंग्रेजी) एवं डा० सत्य प्रकाश की रसायन की भारतीय परम्परा नामक पुस्तकें प्रकाश में आई हैं, परन्तु इनका क्षेत्र ऐतिहासिक काल की सीमा में ही अधिक है। वैदिक काल में सब से महत्वपूर्ण तथ्य जो हमें देखने को मिलता है, वह यह मान्यता है कि जड़ और चेतन में एक ही शक्ति निवास करती है। ये दोनों एक ही मूल अवयव के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कुछ समय पूर्व श्री हाल्डेन ने भी यही बताया था कि हमारे प्रयोग इस बात को पुष्ट कर रहे हैं कि वनस्पति व प्राणियों का मूल एक ही तन्तु है। वैदिक शब्दों में उसे अदृष्ट या ईश्वर-शक्ति कहा जाता है। आधुनिक शब्दों में उसे इलेक्ट्रानिक कणिका या संकुल रचना परन्तु कहा जाता है (Complex unicelluler Ameoba)। यद्यपि इस बात के स्पष्ट प्रमाण तो नहीं हैं कि उस समय कितने तत्व विदित थे, पर कुछ धातु तत्वों का उल्लेख अवश्य मिलता है जैसे सोना, चांदी, ताँबा, लोहा आदि। मुक्ता, मोती, मणि और रत्नों का भी उपयोग उस समय होता था। लोहे और तांबे के तो अस्त्र-शस्त्र ही बनते रहे हैं। ऋग्वेद में बताया गया है कि लोहे और सोने के मकान बनते थे (७·३·७) और लोग धनुष, माला, तलवार एवं कवच का उपयोग करते थे; और सोने का टोप लगाते थे (६·७५)। इससे उस समय में लौह एवं स्वर्ण का आधिक्य प्रतीत होता है, (७·३·७) साथ ही इन्हें प्राप्त करने के लिये धातुकर्म की उत्कृष्ट कला के ज्ञान का भी अनुमान होता है। पंचम और नवम मंडल में औरतों और बच्चों की वेश-भूषा में स्वर्ण के अभाव और आभूषण तथा मणिमालाओं के उपयोग का वर्णन है। यद्यपि जंगम जगत् के मूल अवयवों के रूप में अणु और परमाणुओं का उल्लेख नहीं पाया जाता है, फिर भी अणोरणीयान् महतो महीयान् के रूप में सूक्ष्मता और वृहत्तम का मूल एक ही बताया गया है। अध्यात्म जगत् के विवेचन में भौतिक विवेचन की यह अपूर्णता स्वाभाविक ही है।

आर्यों को पहले ४६ प्रकार के वायवीय पदार्थों का ज्ञान था, (५·५२,१७) पर बाद में वे, ६३ वायवीय पदार्थ मानने लगे (८-४५·८)। तैत्तिरीय आरण्यक में जल के विषय में कहा गया है।

चत्वारि वा अपा रूपाणि, मेघो, विद्युत्स्तन यित्नुवृष्टिः। (जल चार प्रकार का होता है, मेघ (वाष्प), बृष्टि (जल) (१,२४,१-२) विद्युत् और गर्जन-बिजली तड़कने के साथ वृष्टि योग देखे जाने से ही संभवतः इन दो प्रकारों को जल के प्रकारों में गिनाया गया है) इसी प्रकार जल के स्रोत छह बतलाये गये हैं—(१) वर्षा, (२) कुआँ; (३) ताल, (४) नदी. (५) झरना, (६) पात्र-जल, जिससे स्रवित जल का अर्थ होता है, क्योंकि यह पात्रों में ही तैयार किया जाता है। इन स्रोतों में समुद्र जल का उल्लेख सम्भवतः उसके खारेपन के कारण नही किया गया है अथवा उसकी बाहुल्य जन्य अनुपयोगिता भी एक सम्भावना मानी जा सकती है। सूर्य रश्मियों के द्वारा जल कृमिविहीन एवं शुद्ध हो जाता है, यह भी स्पष्ट है।

अथर्ववेद के (५, ५,५) में धवा, खदिर, पीपल, छेवला आदि वृक्षों पर रह कर 'शिलाची' नामक स्त्री-जातीय कीट विशेष के द्वारा लाख के तैयार होने का विवरण है जो आधुनिक विज्ञान से सम्मत है।

ऋगवेद और सामवेद में सोमलता से सोमरस और उसके अन्य उपयोगी पदार्थ बनाने की पूरी विधि दी गई है। आधुनिक कतिपय पाठ्य-पुस्तकों में अलकोहल को सोम-रस माना गया है, पर वेद में सुरा और सोमरस—दो नितांत भिन्न वस्तुयें बताई गई हैं। सुरा को दुर्मद, मादक एवं निन्दनीय बताया गया है।

ऋगवेद में ऊनी वस्त्रों के पहनने का स्पष्ट उल्लेख है, अन्य वेदों में सूती और रेशमी वस्त्रों का भी वर्णन मिलता है। स्त्रियाँ और जुलाहे वस्त्रों को बिनने की कला में बड़े निपुण थे।

चिकित्सा—यद्यपि यह कहा जाता है कि प्राचीन काल में मंत्रों और दैव-स्तुति से रोग शान्ति हो जाती थी, जिसका वर्तमान रूप जादू-टोनों में मिलता है। ये जादू-टोने यदि विशेष महत्व के न भी माने जावें, तो 'मेस्मेरिज्म' के पूर्व-रूप तो माने ही जा सकते हैं, जो मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति का जन्मदाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव के शरीर, रोगों की उत्पत्ति व निरसन की कई विधियाँ वेदों में उल्लिखित हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल के ६७वें सूक्त में चिकित्सा, चिकित्सक और रोग निदान कहा गया है। जड़ी-बूटियाँ उस समय प्रचलित थीं (८.२८)। शरीर में अस्थियों की संख्या ३६० है, इसका उल्लेख किया जा चुका है, शतपथ में (१२.३) दिन भर में श्वासोच्छ्वासों की संख्या २१६०० दी गई है और मानव को साधारण आयु 'शतायुर्वै पुरुषः' से ज्ञात होती है। दो बार मिताहार करने वाले को पूर्णायु प्राप्ति मानी गई है। "यो विभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं, स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः" के द्वारा स्वर्ण धारण करने वाले को दीर्घायु धारी बताया गया है। यह अथर्ववेद का सूक्त ही वर्तमान का में प्रचलित स्वर्णाभूषण-धारण की परंपरा का मूल है।

रोगों की उत्पत्ति के विषय में 'ऋतुसंधिषु वै व्याधिजयिते' के द्वारा नितांत आधुनिक 'मौसम बदलने से रोग हो जाता है' की बात कही गई है। कुछ कीटाणु भी रोगोत्पादक माने गये हैं जिन्हें सुवर्ण धारण, पात्र जल, एवं यज्ञीय अग्नि से मारा जा सकता है। सूर्य-रश्मियाँ कीटनाशक हैं, यह शतपथ में बताया गया है। अथर्ववेद में क्षय, गंडमाला, यक्ष्मा, खाँसी, दन्तपीड़ा, विद्रथ, श्वेतकुष्ठ, पलित आदि रोगों का विवरण एवं निरसन-उपाय दिये गये हैं। मलेरिया (तृतीयक, ग्रैस्म आदि नामों से) का १.२५ में वर्णन है। इसी प्रकार ६।१४ व ६.८३ में कुछ रोगों के भेद प्रभेद बताये गये हैं। पीले रंग की 'मधुकशा' नामक औषधि का वर्णन कई रोगों के निरसकार्थ एवं गर्भजनन के लिये आया है। श्वेतकुष्ठ और पलित के लिये १.५ में उसे गोमय से घिस कर लाल करने के उपरान्त भंगरैया, हल्दी, न्यवारी और नीलिका को पीस कर लेप करने से शमन का विधान है।

सोमरस को भी औषधि माना जाता रहा है, यह ऋग्वैदिक वर्णन है। रोगकारक नाना कीटाणुओं का वर्णन, नेत्र, नासिका तथा दंत-पीड़ा उत्पादक कृमियों के नाम और निरसन उपाय अथर्ववेद २।३१ व ५.२३ में देखे जा सकते हैं। सामान्य औषधियों की तो बात ही क्या, शल्य-चिकित्सा तक की सूचना वेदों में पाई जाती है—मूत्राघात होने पर शरशामाका द्वारा मूत्र का निःसारण, सुख-प्रसव के लिये योनि भेदन, घाव को धोकर साफ करने आदि की चर्चायें अथर्ववेद के प्रथम और पंचम काँड में आई हैं। विकृत अवयवों के स्थान में कृत्रिम अवयवों को लगाने का भी विवरण है। अश्विनी कुमारों ने विशाला को कृत्रिम जंघा लगाई थी। चेचक, क्षय आदि रोगों के निवारण के लिये वर्तमान में प्रचलित "विषस्य विषमौषधम्" के सिद्धान्त का उल्लेख भी ७.८८ में पाया गया है। विभिन्न प्रकार के सर्प और अन्य विषधारियों के विष को दूर करने के उपाय बताये गये हैं। इन सब बातों से यह तो भली भाँति कहा जा सकता है कि वैदिक काल के चिकित्सा शास्त्र की आधुनिक पद्धतियाँ प्रचलित थीं। सुखमय जीवन रहने के कारण रोगों की संख्या आज की अपेक्षा नगण्य ही थी। यही कारण है कि कुछ विशिष्ट रोगों की ही चर्चा की गई है। इस स्थिति का कारण भी है उनका पौष्टिक आहार, जिसमें दूध, दधि, घृत, नवनीत, मधु, इक्षुरस, यव और सत्तू, मट्ठा और माँस जैसी वस्तुओं का बाहुल्य था। गर्भवती स्त्रियों के लिये 'नवनीतं गर्भाणां' आधुनिक मत से भी सिद्ध है। सूर्य की उपासना का रहस्य उसकी कृमिनाशकता में ही है।

ज्योतिष—ज्योतिष तो पृथक् रूप से एक वेदांग ही माना गया है जिसके ज्ञान के आधार पर यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान का निश्चय किया जाता था। अतः ज्योतिर्विज्ञान तो भारतीय पुराकाल की सचमुच ज्योति है। उत्तरायण-दक्षिणायन गतियों के साथ सप्तर्षियों की गति की भी जानकारी प्रथम मंडल में दी गई है। अष्ठम मंडल में स्पष्ट है कि पृथ्वी आदि ग्रहों को

अपनी-अपनी कक्षा में नियंत्रित सूर्य ने ही कर रखा है। सौर और चांद दोनों प्रकार से संवत्सर माने जाते रहे हैं। साथ ही नक्षत्रमाला की भी मान्यता रही है। सभी वेदों में चांद्र नक्षत्रों के नाम हैं। अथर्ववेद में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से प्रारम्भ की गई है, जबकि आजकल यह अश्विनी से की जाती है। नक्षत्रों के इस परिभ्रमण के आधार पर ही श्री तिलक ने वैदिक काल गणना की है, क्योंकि एक नक्षत्र के परिभ्रमण में ९७२ वर्ष लगते हैं। ऋग्वेद काल में पुनर्वसु नक्षत्र-गणना थी, अतः उसका काल आज से ८००० वर्ष पूर्व बैठता है। अतः यह स्पष्ट है कि उस समय राशि, नक्षत्र, संवत्सर, सूर्य, पृथ्वी आदि ग्रहों का पूर्ण आवश्यक-ज्ञान रहा है। उस समय गणित को ज्यौतिष का ही एक अंग माना जाता था, संस्कृत पाठ्यक्रमों में 'गणित-ज्योतिष' आज भी प्रचलित है। इससे ज्योतिर्विद्या में प्रामाणिकता अनिवार्य-सी रहती है।

भौतिक विज्ञान—वर्तमान में जिन प्राकृतिक शक्तियों के रूप का अध्ययन भौतिक विज्ञान में किया जाता है, उनमें से अधिकांश को वेदकाल में देवता माना जाता रहा है, (ताप-अग्निदेव, प्रकाश-सूर्यदेव, शब्द-वेद आदि)। चुम्बक शक्ति का उल्लेख अभी नहीं मिला है, यद्यपि 'आकर्षण' अवश्य उपलब्ध है। वर्तमान में शब्द कम्पनों द्वारा उत्पादित होकर ध्वनित एवं अर्थ बोध करता है, परन्तु प्रारम्भ में दार्शनिकों का विचार था कि शब्द तो सदा से विद्यमान है, विभिन्न क्रियाओं द्वारा उसकी अभिव्यंजना की जाती है। उत्तर-दार्शनिकों ने इस बात का खंडन किया है, और बताया है कि शब्द संघर्ष से उत्पन्न होता है और वह द्रव्य (पुद्गल) है जिससे उसका व्याघात और विवर्तन संभव है। वेद में भी भाषा (शब्द) ऋषियों की अंतःकरण वाक् को प्रकट करने वाली बतायी गई है, और उसकी अनित्यता ख्यापित है। अतः आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी शब्द नित्यता वाली बात केवल भक्तिवश ही मानी जा सकती है, प्रयोगगत नहीं। यह मान लेने पर सचमुच ही वेद का वेदत्व-ज्ञान का अथाह समुद्रत्व प्रकट हो जाता है, क्योंकि अब यह तत्कालीन समाज, साहित्य और प्रगति का प्रतिबिंब बन कर हमारे सामने आता है, मात्र विधि और कर्म के आदेशों के रूप में नहीं, यद्यपि ये कर्म भी तत्कालीन समाज के अंग थे। सूर्य की प्रकाश की चर्चा की जा चुकी है। ताप शक्ति के सम्बन्ध में यह बात स्पष्ट है कि अग्नि और उसका वायवीय रूप उस समय बहुत मान्य रहा है। यज्ञस्थलियों से निस्सृत धूम्र से शीघ्र वर्षा होने की बात कही गई है। इस बात में एक तथ्य आधुनिक कृत्रिम वर्षा विज्ञान की दृष्टि से माना जा सकता है, वह यह कि धूम्र में विद्यमान ठोस कण ऊपरी शीत तापक्रम वाले आकाश में जाकर उड़ती हुई जलवाष्पों को केन्द्रित करने का कार्य कर सकते हैं, जिसकी एक संतृप्तावस्था ही वर्षा के रूप में प्रकट होती है। उस काल में समस्त देश में यज्ञ कर्म होते थे, अतः समय पर वर्षा स्वाभाविक ही थी। आज तो अवस्था ही बदल गई है, यही कारण है कि ठोस कार्बनडाइऑक्साइड या सिल्वर-लवणों के केलासों के द्वारा कृत्रिम वर्षा के प्रयोग किये जा रहे हैं। शतपथ में आया है—

अग्नेर्वै धूमो जायते, धूमादभ्रं, अभ्राद् वृष्टिः

विद्युत् के विषय में उसे वर्षा करने वाला तथा अन्नोत्पादक कहा गया है, यद्यपि ये दोनों बातें परोक्ष रूप से ही विद्युत् से आज सिद्ध हैं। वर्षा ऋतु विद्युत्-आवेश के असंतुलन से बिजली तड़कती है, उस समय रासायनिक क्रिया द्वारा पर्याप्त मात्रा में वायु के अवयव संयुक्त होकर नाइट्रेट या नाइट्राइट के रूप में पृथ्वी को प्राप्त होते हैं, जिनसे वह उर्वरा और अधिक अन्न उत्पादन समर्थ होती हैं। वायु और मरुत् से मेघों का निर्माण भी वहाँ बताया है—तस्माद् यां दिशां वायुरेति, तां दिशां वृष्टिरन्वेति।" उस समय वर्षा ही अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है, अतः उसके विषय में ही अधिक विवरण प्राप्त होता है।

कृषि प्रधान वेद काल में उपजाऊ व पड़ती जमीन थी। हल और फाल से बैलों द्वारा खेती होती थी। करीष (गोबर) खाद के रूप में था, खेत में लगा अनाज हसिये से काट कर पुलियों में बाँध कर खलिहान

में रख कर व माँड कर प्राप्त किया जाता था। कर्षण, बपन, लवण, मर्दन चार कृषि कर्म थे। गोधूम, यव, धान, मूंग, उड़द, तिल आदि बोये जाते थे। नदी और कुओं से सिंचाई होती थी। गाय, बकरी, ऊँट, कुत्ता, गर्दभ आदि तत्कालीन पशु हैं, जिन्हें रथ खींचने व माल ढोने के काम में लिया जाता था। भेड़ें तो बहुत अच्छी और आधिक्य में थी, तभी तो उर्णावत ये लोग कहलाते थे। विभिन्न जाति के अश्वों, हंसों, उल्लू, बाज, गिद्ध आदि का वर्णन ऋग्वेद में पाया जाता है। सौ खम्भों वाले महलों का उल्लेख है जिनमें अग्निशाला, हविर्भाग, पत्निसदन, सदस्—चार भाग होते थे। युद्ध के रथ विशिष्ट प्रकार के होते थे। देवताओं के लिये आकाशचारी, विना घोड़े वाले रथ का उल्लेख भी ऋग्वेद में (१. ११२. १२) पाया जाता है।
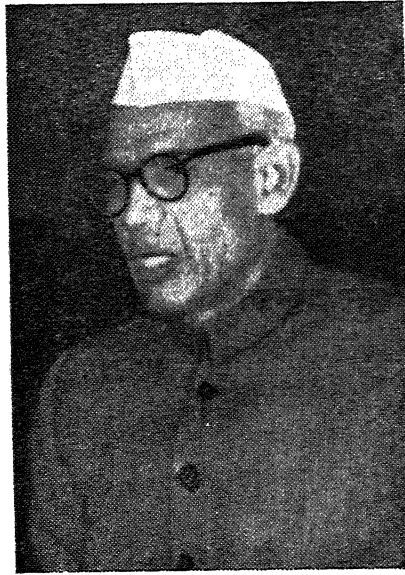
केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग के राज्य मंत्री, डा० के० एल० श्रीमाली ने १२ जनवरी १९५८ को विज्ञान-परिषद् भवन का निरीक्षण किया। परिषद् के कार्य की सराहना करते हुये आपने बताया कि इस समय केन्द्रीय सरकार प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद कराने के लिये विशेष उत्सुक है। आशा है कि देश के प्रमुख वैज्ञानिकों की सहायता से परिषद् इस महान कार्य में सरकार का हाथ बटायेगी।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के कार्य

[प्रो० एम० एस० थैकर]

हमारी राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ एक-एक करके इन्हीं दस वर्षों में स्थापित हुई हैं। अब ये यंत्रों आदि से सुसज्जित हो गयी हैं और देश के विकास के कामों से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य की ओर ध्यान दे रही हैं। प्रयोगशालाओं के निर्देशक और उच्च अधिकारी आयोजन आयोग और विकास परिषदों में रखे गये हैं, ताकि उन्हें पता रहे कि देश को किस विषय की गवेषणा की आवश्यकता है।

अनुसन्धान के परिणामों से कारखानों को लाभ पहुँचाने के अतिरिक्त प्रयोगशालाएं नये उद्योगों की योजना भी बनाती हैं यथा उन्होंने दुर्गापुर के इस्पात कारखाने की योजना और दक्षिण आरकाट के भूरे कोयले के उपयोग की योजना बनाने में आवश्यक आंकड़े और जानकारी देकर सहायता की है।

प्राकृतिक साधनों की पड़ताल और अनुमान

प्रयोगशालाओं के काम की सफलता इसी बात से नहीं नापना चाहिए कि उन्होंने ऐसे जितने अनुसन्धान या आविष्कार किये, जिनसे उद्योगों को लाभ हुआ। इन विज्ञानशालाओं ने वर्तमान उद्योगों के विस्तार करने के बारे में भी वैज्ञानिक सलाह दी है। इस दृष्टि से इन प्रयोगशालाओं ने बहुमूल्य कार्य किया है। प्रयोगशालाओं की ओर से सर्वेक्षण हुये, उनसे कोयले की कई बड़ी-बड़ी खानों का पता लगा। उदाहरणार्थ, झरिया की नं० १ परत में ४० करोड़ टन ऐसे कोयले का पता लगा है, जिससे कोक तैयार हो सकता है। इसी प्रकार यह भी पता लगाया गया है कि मध्यप्रदेश में झिलमिली की खानों का कोयला उस कोयले के साथ ४० प्रतिशत तक मिलाया जा सकता है, जिससे कोक तैयार होता है। यह भी खोज की गयी है कि रानीगंज की खानों के कोयले से, जो घटिया समझा जाता था, धातु-शोधन के काम आने वाला कोयला तैयार हो सकता है।

इस खोज का इस कारण से और भी महत्त्व है कि अब लोहे और इस्पात को शोधने के लिए अच्छा कोयला देश में ही प्रचुर मात्रा में मिलने लगेगा। अब तक यह सोचा जाता था कि भारत में इस तरह के कोयले की नितान्त कमी है।

कांच बनाने के काम आने वाले रेत, चीनी मिट्टी तथा दूसरी तरह की मिट्टियों, अधिक चूने वाले पत्थर, जम्मू-काश्मीर की सुगन्धित जड़ी-बूटियों और गुलाब उगाने वाले क्षेत्रों के बारे में भी जो सर्वेक्षण हुये उनसे अच्छे परिणाम निकले हैं।

खनिज उद्योग

इस समय देश में जो उद्योग खड़े हो रहे हैं, उनमें लोहे और इस्पात का उद्योग सबसे बड़ा है। इस उद्योग के लिए बढ़िया कोयला केवल बिहार (झरिया के आसपास) में मिलता है, जब कि अन्य आवश्यक कच्चा माल जैसे खनिज लोहा, चूने का पत्थर इत्यादि अन्य क्षेत्रों में भी पर्याप्त हैं।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद ने बढ़िया कोयले (कोक बनाने के कोयले) की कमी दूर करने के कई उपाय खोजे हैं। एक तरीका घटिया कोयले को बढ़िया कोयले के साथ मिलाने का है। यह मिश्रण बढ़िया कोयले के बराबर ही काम देता है। घटिया कोयले को धो लेने से भी यह धातु-शोधने के काम में लाया जा सकता है। इसी खोज के आधार पर कोयला धोने के तीन कारखाने स्थापित किये जा चुके हैं और दो इस समय बन रहे हैं। रानीगंज के और कई किस्म के कोयले को लोहा शुद्ध करने के योग्य बनाने की विधि निकाली गयी है।

इस्पात बनाने की सरल विधि

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं ने इस्पात बनाने की एक सरल विधि भी निकाली है। भारतीय लोहे में थोड़ा सा फासफोरस का अंश होता है और इससे इस्पात बनाने में दो प्रक्रियाओं की जरूरत होती है, लेकिन नये अनुसन्धान से अब एक ही प्रक्रिया के बाद इस्पात तैयार करने की विधि निकाली गयी है। अकोकी और दूसरे घटिया कोयले से इस्पात बनाने का परीक्षण करने के लिए १५ टन प्रतिदिन की क्षमता की एक भट्ठी बनायी जा रही है। जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातुशाला में मध्यप्रदेश के लोहे के चूरे से इस्पात बनाने के परीक्षण हो रहे हैं। अब तक यह चूरा कोई काम नहीं आता था। इसी प्रयोगशाला का एक उल्लेखनीय कार्य है, बेदाग इस्पात (स्टेनलेस स्टील) बनाने में निकिल की जगह मैंगनीज के प्रयोग की खोज।

भारत में सिलीमैनाइट और फास्टेराइट भारी मात्रा में मिलते हैं। पता लगाया गया है कि ये बढ़िया अग्नि-सह पदार्थ हैं और भारतीय ग्रेफाइट से ढलाई आदि के लिये अच्छे से अच्छे पात्र, टंकी आदि बन सकते हैं। ऐसी खड़ी भट्ठी या ब्वायलर भी निकाले गये हैं, जिनमें घटिया या बेकार जाने वाला छोटा टुकड़ा जलाया जा सकता है। धातु प्रयोगशाला में मैंगनीज, क्रोमाइट, वोल्फ्राम, पाइराइट आदि खनिजों के शोधन के प्रयत्न किये हैं। उड़ीसा में तितलीगढ़ में ऐसा कारखाना खोला गया है, यहां घटिया खनिज से बढ़िया ग्रेफाइट तैयार किया जाएगा। बिहार में घाटशिला में यूरेनियम युक्त खनिज पदार्थों से यूरेनियम निकालने का छोटा कारखाना खोला गया है। इसके अतिरिक्त जमशेदपुर की प्रयोगशाला में एक ऐसा यंत्र लगाया गया है, जिससे बिजली की प्रक्रिया से प्रतिदिन ३२ पौंड बहुत शुद्ध मैंगनीज बनाया जाता है।

रासायनिक उद्योग

रासायनिक पदार्थ बनाने की अनेक नयी विधियाँ निकाली गयी हैं और बहुत सी पुरानी विधियों में सुधार किया गया है। पानी में मिले हुए रासायनिक पदार्थों को निकालने के लिए एक नया पदार्थ 'कारवियन' तैयार किया गया है, जो भारत में और यूरोप के बहुत से देशों में खूब बिक रहा है। इस पदार्थ की सहायता से राजस्थान में खारी पानी को पीने योग्य बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है और अभी तक के परिणाम आशाजनक हैं। कोलतार से एक ऐसा पदार्थ बनाया गया है, जो रंग बनाने के काम आता है। इसके बने रंग बहुत सस्ते पड़ेंगे।

धुंआ रहित ईंधन

देश में बहुत दिनों के धुंआ-रहित सस्ते ईंधन की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। हैदराबाद और जीलगोड़ा में विविध श्रेणी के कोयले पर परीक्षण करने से पता चला है कि इस तरह का कोयला तैयार हो सकता है और इसके तैयार करने में और कई उपयोगी चीजें भी मिल सकती हैं।

उद्योगों में काम आने वाली गैसों से गन्धक निकालने के लिए दो उपयुक्त पदार्थ निकाले गये हैं। लिगनाइट और कोयले से ऐसी कारबन निकाली गयी है, जो वनस्पति तेलों और गन्ने के रस को साफ करने के काम आती है।

अन्य विद्युत् रसायनिक पदार्थों में घटिया मैंगनीज से मैंगनीज सल्फेट, और क्यूपरसआक्साइड (जो जहाजों की पेंदा में लगने वाले रोगन में काम आता है) और बैटरियों में काम आने वाला मैंगनीज डाइआक्साइड उल्लेखनीय हैं।

पूना की रासायनिक प्रयोगशाला ने कीड़े मारने के लिए खड़ी फसलों पर छिड़कने के लिये निकोटीन सल्फेट तैयार किया है। यह पदार्थ तम्बाकू के चूरे से निकाला गया है, जो प्रायः बेकार जाता है।

चमड़े का उद्योग

मद्रास की केन्द्रीय चमड़ा गवेषणाशाला ने चमड़ा उद्योग की उन्नति के लिए असाधारण काम किया है। इसने खालों को सुधारने, चमड़ा कमाने और तरह-तरह का चमड़ा तैयार करने की अच्छी विधियाँ निकाली हैं। नमक से खालों पर जो धब्बे पड़ जाते हैं उनको हटाने का जो तरीका निकाला है और खालों पर लगाने का एक ऐसा मिश्रण तैयार

किया है, जो खारी नमक से कहीं अधिक अच्छा रहता है। देशी छालों से ऐसा सत निकालने का एक यंत्र लगाया गया है, जो चमड़ा कमाने में विदेशी छाल के के बराबर ही उपयोगी रहेगा और इस प्रकार प्रतिवर्ष १७ लाख रु० विदेश जाने से बच जाएगा। चमड़ा कमाने के काम आने वाले जो विदेशी पदार्थ १ रु० ७५ न० पै०/पौंड मिलते हैं, उनकी जगह प्रयोगशाला का बना हुआ पदार्थ १० आने पौंड मिलता है। इसी प्रकार के और भी कई पदार्थ और विधियां प्रयोग-शाला ने निकाली हैं। जूतों के तले के चमड़े को कमाने का एक ऐसा तरीका निकाला गया है, जिससे ३ से ६ महीने के स्थान पर केवल ३-४ सप्ताह का ही समय लगेगा।

छोटे उद्योगों की सहायता

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के काम से छोटे उद्योगों को भी बड़ा लाभ पहुंचा है। नयी दिल्ली की राष्ट्रीय भौतिकीशाला ने रेडियो-सेटों में इस्तेमाल के लिए कलईदार अबरक के केपेसिटर बनाये है। रुड़की की वास्तुशाला ने काली मिट्टी की अच्छी ईटें बनाने की विधि निकाली है और एक ऐसी मशीन बनायी है, जिसे हाथ से चलाकर एक दिन में २ हजार ईटें बनायी जा सकती हैं। सीमेंट बचाने के लिए झागदार कंकरीट तैयार करने की विधि खोजी गयी है और दिल्ली की हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी में इसका प्रयोग हो रहा रहा है। रुड़की की प्रयोगशाला ने एक ऐसा भी लेप तैयार किया है, जिसके पोतने से कच्ची दीवारों पर पानी असर नहीं करता।

कलकत्ता की केन्द्रीय कांच तथा मिट्टी-अनुसंधान शाला ने देश में पहली बार झागदार कांच तैयार किया है, जो बहुत मजबूत होने के अलावा अच्छा ताप-निरोधक होता है। ऐसा काँच बनाया गया है, जिसमें सेलोनियम डालने की जरूरत नहीं होती और जिससे लाल चूड़िया बन सकती हैं। भारत में वर्ष में लगभग २ करोड़ रु० की लाल चूड़ियाँ बनती हैं और इनके लिए लगभग १५ लाख रु० का सेलेनियम बाहर से मंगाना पड़ता है। देशी चीजों से रासायनिक प्रयोजन के चोनी मिट्टी के बर्तन बनाना भी इस अनुसंधानशाला की उल्लेखनीय सफलता है।

पौष्टिक आहार

मैसूर को केन्द्रीय खाद्य गवेषणाशाला ने घटिया पदार्थों से कई तरह के पौष्टिक आहार तैयार किये है। टेपिओका से एक ऐसा पदार्थ बनाया गया है जो चावल से भी अधिक पौष्टिक होता है। इसके लिए आवश्यक यंत्र भी यहीं बनाया गया। मूंगफली के आटे और दालों से प्रोटीन और विटामिन युक्त आहार तैयार किया गया है। कुछ फलियों और काले चने से ऐसी प्रोटीन तैयार की गयी है, जो मधुमेह (शक्कर रोग) में लाभ कर सकती हैं। सरसों और तिल की खली से भी उपयोगी प्रोटीन निकाली गयी है। इसके लिए लखनऊ की केन्द्रीय औषधि गवेषणाशाला में एक यंत्र काम कर रहा है।

इस छोटे से लेख में प्रयोगशालाओं के बहुमुखी कार्य और उनकी सफलताओं पर केवल एक सरसरी निगाह ही डाली जा सकती है। यह भी पता चल जावेगा कि वैज्ञानिक अनुसंधान केवल किताबी चीज नहीं, इसका व्यावहारिक लाभ है। यह संतोष की बात है कि इंजीनि-यर, वैज्ञानिक और व्यावहारिक व्यक्तियों के सहयोग से देश के वैज्ञानिक अनुसंधान का ठोस लाभ मिल रहा है है और यह सहयोग बराबर बढ़ता जा रहा है।

हैदराबाद की इंजीनियरी गवेषणाशाला

[ले०—आर० के० वी० नरसिंहम्, निर्देशक, हैदराबाद इंजीनियरी गवेषणाशाला]

हैदराबाद इंजीनियरी गवेषणाशाला १९४५ में नागरिक इंजीनियरी के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में बुनियादी और विशेष गवेषणा करने के लिए खोली गयी थी। देश में खड़कवासला, मलिकपुर (पंजाब) कलकत्ता और बहादराबाद (उत्तर प्रदेश) की गवेषणाशालाओं में मुख्यतः पानी सम्बन्धी अध्ययन होता है, परन्तु हैदराबाद की गवेषणाशाला में पहली बार सिंचाई, सड़क, भवन-निर्माण आदि नागरिक इंजीनियरी के सभी क्षेत्रों में अध्ययन किया जाने लगा।

हैदराबाद गवेषणाशाला की पानी सम्बन्धी प्रयोगशाला हिमायत सागर झील (हैदराबाद शहर से १२ मील दूर) के आगे है। वहाँ पानी और सिंचाई के बारे में अध्ययन और प्रयोग करने के लिए काफी मात्रा में साफ पानी मिल जाता है। अब ये प्रयोगशालाएँ भी वहीं स्थानान्तरित कर दी जाएँगी :—(१) नहर, सड़क और भवन निर्माण सम्बन्धी अध्ययन की प्रयोगशाला; (२) इंजीनियरी सामान की जाँच करने की प्रयोगशाला; (३) भौतिक रसायन इंजीनियरी प्रयोगशाला; और (४) इंजीनियरी का गणित विभाग। ये प्रयोगशालाएँ अभी हैदराबाद शहर में रेडहिल्स में हैं। दूसरे आयोजन में नहर, सड़क और भवन निर्माण सम्बन्धी अध्ययन की प्रयोगशाला के लिए जब भवन और कर्मचारियों के लिए मकान बन जाएँगे, तब यह प्रयोगशाला वहाँ स्थायी रूप से स्थानान्तरित कर दी जाएगी।

पानी सम्बन्धी प्रयोगशाला में बाँध से पानी निकालने, पुश्ते बाँधने, नहरों के ऊपर से सड़क निकालने, साइफन आदि के बारे में बुनियादी तथा विशेष गवेषणा की जाती है।

नहर, सड़क और भवन निर्माण सम्बन्धी प्रयोगशाला में उनकी रूपरेखा तैयार करने, उन्हें बनाने और उनकी मरम्मत आदि करने के बारे में अध्ययन किया जाता है।

प्रयोगशाला में ५० फुट ऊँचे बाँध बनाने का बहुत अच्छा तरीका निकाला गया है। वहाँ टूटे-फूटे जलाशयों की मरम्मत करने और उन्हें अधिक पानी जमा करने लायक बनाने के लिए भी तरीके निकाले गये, जो बहुत उपयोगी साबित हुए। सिंचाई विभाग इन तरीकों को काम में ला रहा है।

प्रयोगशाला ने काली मिट्टी वाली जमीन पर सड़क बनाने और मकान की नींव डालने का भी बहुत अच्छा तरीका निकाला है।

प्रयोगशाला में वहाँ के तरीकों को सुचारु रूप से चलाने के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग के चुने हुए कर्मचारियों को शिक्षा दी जाती है। ये कर्मचारी बाद में उन प्रयोगशालाओं में काम करेंगे, जो विभिन्न योजना-स्थलों में खोली जा रही हैं।

हैदराबाद गवेषणाशाला ने सीमेन्ट और सुर्खी गारे की जाँच करने के भी तरीके निकाले हैं, जो अब तक के तरीकों से अधिक अच्छे हैं।

सीमेन्ट में पोजोलान नाम का एक ऐसा पदार्थ मिलाया जाता है, जिससे सीमेन्ट अधिक गर्मी में टिक सकता है तथा उसकी शक्ति भी बढ़ जाती है। इसके अलावा इससे सीमेन्ट की बचत भी होती है और खर्च भी कम पड़ता है। गवेषणाशाला ने पता लगाया है कि रेल ताप बिजलीघरों में जो कोयले की राख होती है, वह भी पोलोजान के स्थान पर काम लाई जा सकती है। सीमेन्ट में १५ प्रतिशत कोयले की राख मिलाने से उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

सिंचाई योजना में नहरें निकाल कर और जलाशय

बना कर जितने क्षेत्र में सिंचाई का अनुमान लगाया जाता है, उसके दो-तिहाई से तीन-चौथाई भाग तक ही सिंचाई हो पाती है। इसमें काफी नुकसान होता है और सभी क्षेत्रों में बराबर सिंचाई नहीं हो पाती। गणित विभाग इसकी जाँच करता है कि यह अन्तर कहाँ पड़ता है।

गवेषणाशाला राज्य के इन्जीनियरी विभागों की कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करती है। साथ ही वह साधारण लोगों के रहन-सहन का स्तर उठाने के लिए घरेलू चीजें भी बनाने में प्रयत्नशील है। इस दिशा में पहला कदम गवेषणाशाला के पहले निर्देशक डा० एस० पी० राजू ने उठाया था।

गवेषणाशाला में ऐसी घरेलू चीजें बनाने का प्रयत्न किया जाता है, जिन पर कम खर्च हो और जिससे रहन-सहन सुधरे। यहाँ धूम्रहीन चूल्हा बनाया गया तथा एक ऐसा डिब्बा भी बनाया, जिसे हम गरीबों का फ्रिजिडेयर कह सकते हैं। इसमें चीजें ठंडी की जा सकती हैं और इसे गाँव का कुम्हार भी बना सकता है। गाँव में ही उपलब्ध सामान से गाँवों में अच्छे मकान बनाने के लिए तरीका निकालने आदि का कार्यक्रम भी है।

हैदराबाद इंजीनियरी गवेषणाशाला राज्यों के पुनर्गठन के बाद आंध्र प्रदेश सरकार के अधीन आ गयी है।

गवेषणाशाला राज्य की नागार्जुनसागर और अन्य योजनाओं के डिजाइन तैयार कर रही है और उसे चलाने में मदद दे रही है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसके कार्यों से छोटी-बड़ी सभी योजनाओं को लाभ पहुँचेगा और उन पर खर्च भी कम होगा।

भारत में शिक्षा सम्बन्धी रेडियो कार्यक्रम

◆ सरकारी विभाग के रूप में अखिल भारतीय रेडियो १९३० में स्थापित हुआ और इसके कलकत्ता केन्द्र ने पहला स्कूली कार्यक्रम नवम्बर १९३२ में प्रसारित किया।

◆ अक्टूबर १९३८ तक अखिल भारतीय रेडियो के चार बड़े-बड़े केन्द्रों—दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में नियमित रूप से स्कूली कार्यक्रम प्रसारित होने लगे।

◆ आजकल अखिल भारतीय रेडियो के २० केन्द्रों से स्कूलों के लिए शिक्षाप्रद कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। इनमें से १३ केन्द्र स्वतंत्र कार्यक्रम प्रसारित करते हैं और ७ दूसरे केन्द्रों के कार्यक्रम रिले करते हैं।

◆ अखिल भारतीय रेडियो या आकाशवाणी के प्रधान कार्यालय में एक ऐसा विभाग है, जो एक केन्द्र के अच्छे कार्यक्रमों को दूसरे केन्द्रों को देता है।

◆ स्कूलों में रेडियो बढ़ते जा रहे हैं। अगस्त १९५७ के अंत में ऐसे स्कूलों की संख्या ६,१२४ थी जहाँ रेडियो सुनने की सुविधाएँ थीं।

◆ आकाशवाणी के शिक्षाप्रद कार्यक्रमों का उद्देश्य अध्यापक को हटाना नहीं, बल्कि उसके काम में हाथ बँटाना है।

◆ सलाहकार समितियों की सलाह से इन कार्यक्रमों की योजना की जाती है। इन समितियों में राज्यों के शिक्षा अधिकारी, प्रमुख शिक्षाविद तथा रेडियो सुनने वाले स्कूलों के कुछ मुख्याध्यापक रहते हैं।

◆ माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक स्कूली कार्यक्रमों को सुनवाने में अधिक से अधिक रुचि लें, इसके लिए उन्हें रेडियो सेटों को चलाना और उनकी देखभाल करना सिखाया जाता है। अब तक अध्यापकों के ५ दलों को इस तरह की शिक्षा दी जा चुकी है।

भारत में क्षय रोग की रोकथाम

क्षय रोग के बारे में लोगों का दृष्टिकोण काफी बदला है। पहले की तरह अब इसे असाध्य नहीं समझा जाता। इसकी चिकित्सा अब पहले जितनी खर्चीली नहीं है। इस रोग की रोकथाम कैसे की जा सकती है, इसके बारे में अब केवल अटकल नहीं लगायी जाती।

क्षय रोग के बारे में अन्य देशों में जो अनुसन्धान हुए हैं, उनका लाभ हमें पहुँचा रहा है। उदाहरण के तौर पर, बी० सी० जी० के टीकों का इस्तेमाल भारत में काफी हो रहा है।

लोगों के स्वास्थ्य की मुख्य जिम्मेदारी विभिन्न राज्य सरकारों पर है, फिर भी केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय का स्वास्थ्य निर्देशालय देश भर में हर तरह की स्वास्थ्य-सुविधाएँ जुटाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। क्षय रोग के रोकथाम की जिम्मेदारी तो पूरी तरह से केन्द्र ने ही संभाली हुई हैं। इसकी रोकथाम के लिए राज्य जो योजनाएँ बनाते हैं, उनके लिए भी केन्द्र उन्हें सहायता देता है। क्षय रोग-निवारण के लिए मोटे तौर पर निम्न-लिखित योजनाएँ बनायी गयी हैं :

(१) २०० नये क्षय रोग चिकित्सालय और राज्यों के मेडिकल कालेजों की सहायता से १० नये केन्द्र खोले जाएँगे। इन केन्द्रों में क्षय रोग की रोकथाम की ट्रेनिंग दी जाएगी।

(२) गन्दे स्थानों में रहने वाले क्षयग्रस्त लोगों को वहाँ से निकालकर अलग रखने के लिए अस्पतालों में कम से कम दस हजार बिस्तरों की व्यवस्था की जाएगी।

(३) लगभग १७ करोड़ देशवासियों को क्षय रोग हो जाने का अन्देशा है। १९६१ तक इन सभी को बी० सी० जी० के टीके लगा देने की योजना है।

(४) आठ ऐसे दस्तकारी केन्द्र खोले जाएँगे, जिनमें क्षय रोग से मुक्त हो चुके लोगों को काम दिलाया जाएगा।

(५) क्षय रोग सम्बन्धी गवेषणा की भी कई योजनाएँ हैं।

बी० सी० जी० के टीके लगाने की ओर केन्द्र का ध्यान सबसे अधिक है। इसी के लिए वह राज्यों को सहायता भी अधिक दे रहा है। भारत में बी० सी० जी० के टीके लगाने की शुरूआत १९४८ में की गयी। पहले थोड़े लोगों को परीक्षण के तौर पर टीका लगाया गया, बाद में अधिकांश बड़े नगरों में कारखाना मजदूरों तथा स्कूल के बच्चों के टीके लगाये गये। धीरे-धीरे यह योजना बनी कि जितने लोगों को यह रोग हो जाने का अन्देशा है, उन सभी के टीके लगाए जाएँ। इस दृष्टि से २० साल से कम अवस्था के लोगों की डाक्टरी जाँच खास तौर पर की गयी। सितम्बर, १९५७ के अन्त तक ९,३३,३०,००० लोगों की डाक्टरी जांच की गयी और ३,३७,३६,००० को बी० सी० जी० का टीका लगाया गया। किसी भी देश ने इतने बड़े पैमाने पर स्वास्थ्य की कोई योजना आज तक नहीं बनायी। बी० सी० जी० के टीके लगाने की योजना इसलिए और भी सफल हुई कि पुस्तिकाओं, इश्तिहारों, फिल्मों आदि के जरिए लोगों को समझाया जाता रहा है कि वे कैसे स्वस्थ रह सकते हैं।

बी० सी० जी० के टीके तैयार करने और सम्बद्ध संस्थाओं को मुहैया करने के लिए सरकार ने मद्रास में एक प्रयोगशाला खोली है। बी० सी० जी० के टीके तैयार करने वाली यह दुनिया की सबसे बड़ी प्रयोगशाला है। देश की जरूरत पूरी करने के अलावा यह बर्मा, श्रीलंका, मलाया, पाकिस्तान, थाईलैंड आदि को भी टीके भेजती है। बी० सी० जी० के टीके लगाने के आन्दोलन में भारत को विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र-बाल-आपातकोष आदि से भी सहयोग मिल-रहा है।

देश भर में क्षय रोग चिकित्सालयों का जाल बिछा

हुआ है। हर चिकित्सालय के कर्मचारी अपने-अपने क्षेत्र में घूमकर क्षय रोग के मरीजों का पता लगाते हैं और घर पर ही उनको चिकित्सा के साधन उपलब्ध करते हैं। वे मरीजों को और उनके परिवार वालों को रोग की रोकथाम के तरीके बताते हैं। इन चिकित्सालयों की संख्या १८० है, किन्तु जरूरत के देखते हुए ये बहुत कम हैं। दूसरी आयोजना में २०० नये चिकित्सालय खोलने की योजना है। राज्य इन चिकित्सालयों के लिए इमारतें और कर्मचारी देंगे तथा केन्द्र एक्स-रे आदि आवश्यक सामान जुटाएगा। इसके लिए अनुभवी कर्मचारी तैयार करने के लिए सरकार जल्दी ही केन्द्रीय प्रशिक्षण केन्द्र खोलेगी।

हमारे यहाँ अस्पतालों में इस समय कुल २३००० क्षय रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था है। इससे कहीं अधिक रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था करने के लिए केन्द्र राज्यों को काफी सहायता देगा। कुछ स्थानों पर सरकार क्षयग्रस्त बच्चों की चिकित्सा की भी पृथक व्यवस्था करेगी।

रोगियों के अच्छे हो जाने पर फिर उन्हें काम दिलाने की समस्या आती है। वे लोग हर काम करने लायक तो होते नहीं, उनके लिए विशेष कामों की व्यवस्था करनी होती है। देश में कुछ केन्द्र मौजूद भी हैं, जो डाक्टरों की देखरेख में मरीजों को काम सिखाते हैं। ऐसे ८ केन्द्र और खोलने की योजना है। इनमें मरीजों के अलावा, उनके परिवार वालों को भी दस्तकारी सिखायी जाएगी, जिससे वे किसी तरह रूखी-सूखी रोटी जुटा सकें।

क्षय रोग निरोधक साधनों से कितना लाभ पहुँच रहा है, इसका पता लगाने के लिए देश में कई अनुसन्धानशालाएँ काम कर रही हैं।

क्षय रोग से लड़ने के लिए सरकार ही सब कुछ नहीं कर सकती, लोगों का सहयोग भी जरूरी है। इसीलिए भारत का तपेदिक संघ विभिन्न राज्यों में सार्वजनिक संस्थाओं का भी सहयोग प्राप्त करता है। तपेदिक संघ इसके लिए रुपया इकट्ठा करने के हेतु हर साल विशेष टिकटें बेचता है।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि क्षय रोग की रोकथाम की इन योजनाओं से देश में क्षय रोग समूल नष्ट हो जाएगा, किन्तु इससे रोगियों की संख्या में कमी अवश्य हो जाएगी। हमें पूरा विश्वास है कि आने वाली सन्तति अवश्य ही इस रोग की आशंका से मुक्त रह सकेगी।

गिरडी का बी० सी० जी० का कारखाना

तपेदिक मानव ज्ञाति का एक बलवान शत्रु है। इसका डटकर मुकाबला करने में भारत ने कोई कसर बाकी नहीं रखी। इसका मुकाबला करने के लिये भारत जो प्रयत्न कर रहा है, गिरडी का विशाल बी० सी० जी० का कारखाना इसी प्रयत्न का अनूठा उदाहरण है।

डा० के० एस० रंगनाथन इस कारखाने के निर्देशक हैं। यह कारखाना बी० सी० जी० का टीका तैयार करने वाला संसार का सबसे बड़ा कारखाना है और इसमें हर महीने बी० सी० जी० के औसतन २० लाख २५ हजार टीके तथा पी० पी० डी० घोल की ४८ लाख खुराकें तैयार की जाती हैं। इसमें से ८० प्रतिशत टीके यहीं काम में आते हैं तथा शेष २० प्रतिशत पड़ोसी देशों में भेजे जाते हैं। अकेले पाकिस्तान को ही हर सप्ताह १,००,००० टीके भेजे जाते हैं।

जनवरी १९५७ में नयी दिल्ली में जो १४ वाँ अन्तर्राष्ट्रीय तपेदिक सम्मेलन हुआ था उसकी सिफारिश पर अब यहाँ बी० सी० जी० के टीके अधिक संख्या में बनाये जाएँगे।

इस कारखाने का काम निरन्तर बढ़ रहा है। निम्न-लिखित तालिका से पता चलेगा कि १९५३ में इसके उत्पादन में ५० प्रतिशत वृद्धि हुई है।

	बी० सी० जी० टीका	पी० पी० डी० घोल
	घन सेन्टिमीटर	घन सेन्टिमीटर
१९५३-५४	१८,३२,७०५	३८,४६,८१५
१९५४-५५	२४,२१,८५०	५३,३०,२४५
१९५५-५६	२८,०२,८४४	५७,६६,१३०

हवा बन्द डिब्बों में बरफ भरकर उसमें टीके की शीशियाँ रखकर विमानों से दूसरे देशों को भेजी जाती हैं जिससे टीका खराब नहीं होने पाता।

गिरडी का बी० सी० जी० का कारखाना अगस्त १९४८ में अन्तर्राष्ट्रीय तपेदिक आन्दोलन की सहायता से स्थापित किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन में संयुक्त राष्ट्र संघ का अन्तर्राष्ट्रीय-बाल-आपात-कोष भी शामिल है। कारखाने के उपकरणों का खर्च भारत सरकार ने उठाया। विश्व-स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान के अनुसार यहाँ टीका तथा पी० पी० डी० घोल तैयार किया जाता है। कारखाने की नयी इमारत पर ३,५०,००० रु० खर्च हुआ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय बाल-आपात-कोष ने १९५५-५६ में कारखाने को १६,००० डालर के उपकरण, रसायन आदि दिये और अब १९५७ में इससे १०,००० डालर का सामान मिलने वाला है।

यह कारखाना एक भव्य इमारत में है। इसमें टीका तैयार करने के लिये आवश्यक सुविधाएँ मौजूद हैं। कारखाने में टीका तथा यक्ष्मी (ट्यूबरक्यूलिन) घोल तैयार करने के तीन वातानुकूलित कमरे हैं जिसमें धूल, मिट्टी आदि नहीं जाने पाती। इनमें कीटाणु नहीं होते। इन्हीं कमरों में टीका तैयार किया जाता है और शीशियों में बन्द किया जाता है।

बी० सी० जी० का टीका तैयार होने पर उसकी जांच की जाती है। दवाई ठीक है तथा उसमें किसी भी तरह की खराबी नहीं है इसकी जांच के लिये सुअरों पर उसका प्रयोग किया जाता है। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद का बी० सी० जी० दल भी टीके की अलग-अलग मात्राओं की जांच करता है।

भारत सरकार ने कारखाने में सूखा टीका तैयार करने के लिये यंत्र आदि लगाना स्वीकार किया है। इस पर ३ लाख रु० खर्च होंगे। टीका सूखा होने से वह काफी दिनों तक अच्छी हालत में रखा जा सकेगा और उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने के लिये बरफ में रखने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

बी० सी० जी० टीका तैयार करते समय सफाई का

बहुत ध्यान रखा जाता है। बाहर के लोगों को उन कमरों में नहीं घुसने दिया जाता जहां टीका तैयार किया जाता है। बी० सी० जी० कारखाने के कर्मचारियों को नियमित रूप से एक्सरे द्वारा जांच की जाती है। जिनको जुकाम अधिक होता है उनकी हर छठे महीने एक्सरे द्वारा जांच की जाती है।

क्या आप जानते हैं ?

◆ उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में सुतौल गाँव के दो मील उत्तर-पूर्व में गन्धक के भंडार का पता चला है। भारतीय भू-सर्वे विभाग ने उस स्थान का प्रारम्भिक सर्वे कराया है। इस क्षेत्र में गन्धक का कोई सोता मालूम पड़ता है, जिससे गन्धयुक्त हाइड्रोजन गैस निकलती रहती है और गन्धक जमा होता रहता है। सोता कहाँ है, यह अभी तक नहीं पता चला है।

◆ इस समय देश में ७२ कपास अनुसंधान केन्द्र काम कर रहे हैं, जो इस बात की खोज करते हैं कि लम्बे रेशे की कपास उगाने के लिए किस-किस किस्म की कपास बोयी जाये।

◆ दूसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में मद्रास में टैक्नालाजी की उच्च शिक्षा के लिए एक कालेज के लिए २ करोड़ रु० की व्यवस्था की गयी है।

◆ राज्य सरकारों तथा निजी संस्थाओं ने राज्यों की दूसरी पंचवर्षीय आयोजना के शुरू होने से अब तक २० शिल्पिक कालेज खोले हैं। इनमें से दो कालेज पटियाला और लुधियाना (पंजाब) में खोले गये हैं।

◆ अलवाय (केरल) में डी० डी० टी० का नया कारखाना खोला गया। इसमें मशीनें आदि लगायी जा चुकी हैं और परीक्षण के तौर पर उत्पादन भी प्रारम्भ किया गया है।

◆ भारत में नये उद्योग और कल-कारखाने स्थापित करने में सहयोग पाने के लिए भारत सरकार ने १४ दिसम्बर को सोवियत सरकार के साथ ५ करार किये। ये उस करार के अन्तर्गत किये गये हैं, जिसके अनुसार भारत को रूस से ५० करोड़ रूबल ऋण मिलना है।

◆ एक करार के अन्तर्गत रूसी विशेषज्ञ नेवेली के भाप से चलने वाले बिजलीघर की योजना तैयार करेंगे। शेष ४ करार भी कोरबा की कोयला खानों की खुदाई और अन्य प्रकार के विकास के सम्बन्ध में हैं।

◆ हस्तकला सिखाने के लिए देश भर में १५ केन्द्र और खोले जाएँगे। इनमें गुड़िया और खिलौने बनाना सिखाने वाले केन्द्र भी सम्मिलित हैं।

◆ भारत सरकार ने अखिल भारतीय हस्तकला मंडल की सिफारिशों पर इन केन्द्रों को खोलने की योजनायें स्वीकार करके इनके लिए मण्डल तथा राज्य सरकारों को ४ लाख ५ हज़ार रु० का अनुदान और ऋण देना मंजूर किया।

◆ कलकत्ते के सेन्ट्रल ग्लास और सिरेमिक रिसर्च इंस्टिट्यूट ने ताँबे पर चढ़ाने के इनेमल या मुलम्मा बनाने की नयी विधि निकाली है। यह इनेमल घड़ियों, टेलीफोन यंत्रों और पानी और बिजली के मीटरों के डायलों पर चढ़ाया जाता है। अभी तक ऐसे डायल विदेशों से ही मँगाये जाते हैं। अनुमान है कि प्रतिवर्ष तीन लाख रुपये की इनेमल चढ़ी ताँबे की चीजों का आयात होता है।

◆ रेल मंडल ने भारतीय रेलों में कोयले के बढ़ते हुए व्यय को कम करने के लिए रेल मंडल के सदस्य श्री करनैल सिंह (इञ्जीनियरी) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की है।

मिट्टी में नाइट्रोजन-प्रक्रिया

[डा० एस० के० घोष, एम० एस-सी०, डी० फिल्० , द्वारिकानाथ घोष लेन, कलकत्ता—२७]
अनुवादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

मिट्टी में होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन कृषि शास्त्र की महत्वपूर्ण कला है; विशेषकर आधुनिक युग में जबकि कृषि ने विशुद्ध एवं व्यवहृत विज्ञानों में विशिष्ट स्थान बना लिया है। सभी प्रकार का जीवन मिट्टी से ही उद्भूत होता एवं उसी में मिल जाता है। मिट्टी पौदों को जीवनदायी पदार्थ पहुँचाती है और इन पौदों पर पशु-जीवन निर्भर होता है। फिर पौदों एवं पशुओं के विघटन-पदार्थ नयी फसल की वृद्धि में भोज्य पदार्थ का काम करते हैं और इस प्रकार से यह चक्र तभी से चल रहा है जब से पृथ्वी पर जीवन का अभ्युदय हुआ। मिट्टी कार्बनिक तथा अकार्बनिक—इन दोनों अवयवों से निर्मित है। अकार्बनिक पदार्थ में, जो वर्षा, ताप, वायु आदि के द्वारा चट्टानों के विघटन से प्राप्त होता है, प्रस्तर खंडों, बालू के कणों से लेकर श्लेषाभीय मिट्टी के अत्यन्त सूक्ष्म कण तक सम्मिलित हैं। वनस्पति एवं पशुओं के अवशेषों के असंख्य भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिवर्तनों के फलस्वरूप कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न होता है। मिट्टी के अवयवों में नाइट्रोजन संयुक्त रूप में एक आवश्यक तत्व की तरह वर्तमान रहती है क्योंकि यह एक महदोपयोगी वनस्पति-भोज्य-पदार्थ है। मिट्टी में वायुमंडल की मुक्त नाइट्रोजन की प्रक्रिया से नाइट्रोजनीय-यौगिक प्राप्त होते हैं जो समान रूप से जीवाणुओं एवं पौदों का पोषण करते हैं।

पौदों एवं पशुओं, दोनों ही के लिये नाइट्रोजन की प्राप्ति बड़े महत्व की है। पौदों को अपने विकास के लिये आवश्यक नाइट्रोजनीय यौगिकों के निर्माण हेतु नाइट्रेटों की ज़रूरत पड़ती है और पशु अपने शारीरिक-प्रोटीन के निर्माणार्थ नाइट्रोजन यौगिकों को पौदों से प्राप्त करते हैं। इसीलिये वनस्पति एवं पशु आहार में नाइट्रोजन को "विकास-तत्व" की संज्ञा प्रदान की जाती है। क्लोरोफिल (हरित पदार्थ), प्रोटीन तथा अन्य महत्वपूर्ण वनस्पति एवं पशु-जन्य यौगिकों में नाइट्रोजन वर्तमान रहती है। यद्यपि वायु मंडल में वर्तमान नाइट्रोजन सामान्यतया निष्क्रिय होती है किन्तु संयुक्त दशा में, युद्ध काल में विस्फोटकों के निर्माण एवं शान्ति के समय मिट्टियों में उर्वरकों के रूप में प्रयुक्त होने के कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वायुमंडल, समुद्र एवं पृथ्वी की संरचना में नाइट्रोजन का अंश एक प्रतिशत है। स्वतन्त्र दशा में यह वायुमंडल की हवाओं के आयतन का $\frac{4}{5}$ भाग घेरे है या यों कहें कि वायुमंडलीय हवाओं में ७८.४६% नाइट्रोजन वर्तमान है। यही नहीं, स्वतंत्र रूप से यह मछलियों में, पक्षियों की अस्थि-संधियों एवं पौदों में भी विद्यमान है। संयुक्त दशा में वायुमंडल में यह अमोनिया, नाइट्रस और नाइट्रिक अम्ल तथा उनके लवणों के रूप में पायी जाती है, जिनकी उपस्थिति वर्षा के जल में रहती है। हिसाब करके देखा गया है कि प्रति एकड़ भूमि के ऊपर की वायु में ३५,००० टन नाइट्रोजन विद्यमान है।

सभी जीवित पदार्थों एवं वनस्पति तथा पशु संबन्धी अवशेषों में संयुक्त नाइट्रोजन की प्रचुर मात्रा वर्तमान रहती है। यह जीवित प्राणियों के विकास के लिये आवश्यक अवयव है। प्रकाश और हरित पदार्थ की उपस्थिति में पौदे अकार्बनिक-नाइट्रोजनीय-यौगिकों को जटिल नाइट्रोजनीय- कार्बनिकपदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं, जो प्राणियों द्वारा निर्वाह के हेतु ग्रहीत होते रहते हैं। ये पौदे एवं पशु अपने क्रम में मृत्यु के पश्चात विघटित होकर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की सृष्टि करते हैं जिसके कुछ भाग

की नाइट्रोजन वायु के रूप में वायुमंडल में मुक्त होती रहती है और शेष अकार्बनिक यौगिकों में परिवर्तित होकर उगायी जाने वाली फसल के संवर्द्धन में काम आती है। जैसा कि **लीबिग** महोदय ने (सन् १८४३-५२ में) घोषित किया था कि पौदे वायुमंडल की नाइट्रोजन को अमोनिया के रूप में सीधे ग्रहण करने में समर्थ हैं, निराधार सिद्ध हो चुका है। और यह देखा गया है कि उनकी आवश्यक नाइट्रोजन की पूर्ति, मिट्टी में वर्तमान नाइट्रेट, अमोनियम लवणों एवं अन्य जटिल को नाइट्रोजनीय यौगिकों से होती है। कुछ दालीय फसलों छोड़ कर, जैसे **क्लावर, सनई, मटर** आदि—शेष सभी अन्य पौदे नाइट्रोजन को नाइट्रेट रूप में ही ग्रहण करते हैं। प्रोटीनों, अमोनियम लवणों तथा अन्य नाइट्रोजनीय यौगिकों को आक्सीकरित होकर सर्वप्रथम नाइट्राइटों में परिवर्तित होना पड़ता है, तभी वे पौदों के द्वारा उपयोग में लाये जा सकते हैं। मिट्टी में प्रोटीनें एवं अन्य नाइट्रोजनीय यौगिक जिन प्रक्रियाओं में होकर गुज़रते हैं, वे निम्न प्रकार को है :—
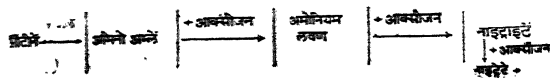
वर्षा के समय आकाश में वर्तमान नाइट्रिक अम्ल और अमोनियम नाइट्रेट, जो विद्युत्पात के समय वायु मंडल की मुक्त-नाइट्रोजन के आक्सीकरण से उत्पन्न होते हैं, अल्प मात्रा में पृथ्वी पर पुनः पानी में घुल कर लौट आते हैं। प्रकृति में नाइट्रोजन को जिन परिवर्तनों से होकर गुज़रना पड़ता है, **नाइट्रोजन-चक्र** के नाम से पुकारे जाते हैं। चित्र द्वारा उसे अगले कालम में प्रदर्शित किया गया है :—

उन्नीसवीं सदी के मध्य में **बोसिंगोल्ट** महोदय ने सुझाव रखा कि मिट्टी में नाइट्रोजन की प्रक्रिया कतिपय जीवाणुओं द्वारा, जो मिट्टी में बड़ी संख्या में वर्तमान हैं, संचालित होती है। १८३७ ई० में होने वाले उनके प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया कि नाइट्रोजन का स्थिरीकरण केवल दालीय पौदों, जैसे क्लावर, मटर यथा लूसर्न आदि, की उपस्थिति में ही होता है। सन् १८८६ ई० में **विलफार्थ** और **हेलरीगेल** ने प्रदर्शित किया कि दालों
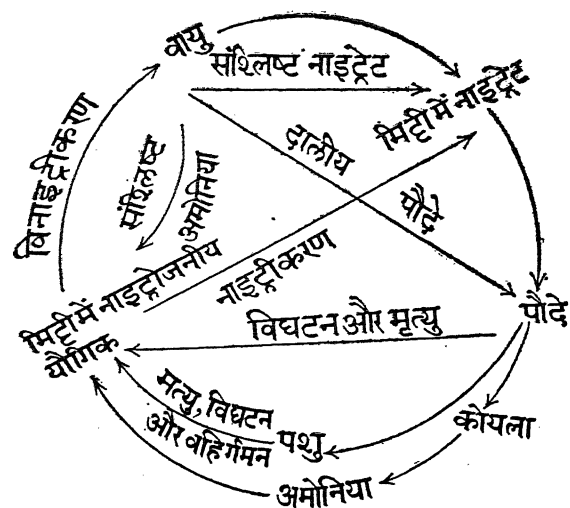
एवं मिट्टी के जीवाणुओं के संसर्ग से ग्रंथियाँ बनती हैं जिनसे नाइट्रोजन-स्थिरीकरण होता है और यह क्रिया **सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण** कहलाती है। ऐसे जीवाणु जिन्हें **रिजोबिया** कहा जाता है, सब से पहले सन् १८८८ ई० में **बेरिंक** द्वारा पृथक किये गये। तब से सहजीवी जीवाणुओं की विभिन्न जातियों, उनकी आकारिकी, जीवन-चक्र और दैहिकी पर प्रचुर मात्रा में शोध कार्य हो चुका है किन्तु फिर भी सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया एक विवादास्पद विषय बना हुआ है। **विनोग्रेडस्की** ने मिट्टी में से एक नवीन अजारक-जीवी-प्राणि—**क्लास्ट्रीडियम पैस्टोरियानम** को पृथक किया जो मिट्टी की निचली पर्तों में नाइट्रोजन स्थिर करते देखा गया। सन् १९०१ ई० में **बेरिंक** ने दो अ-सहजीवी जीवाणु, जिन्हें **अजेटोबैक्टर क्रूकोकम** और **अजेटोबैक्टर एजिलिस** कहते हैं, पृथक किये। फिर तो अनेक जीवाणुओं को ढूँढ निकाला गया। जिस महत्वपूर्ण प्रक्रिया द्वारा अमोनिया नाइट्राइट और नाइट्रेट में परिवर्तित होती है, उसे भी **मेयरहाफ** ने **नाइट्रोसोमोनास** और **नाइट्रोबैक्टर** नामक दो जीवाणुओं द्वारा संचालित सिद्ध दिया।

इसके अतिरिक्त सन् १९३० ई० के पश्चात् से **धर और उनके सहयोगियों** ने यह दिखाया है कि विशेषकर उष्ण, प्रदेशों की मिट्टियों में नाइट्रोजन-प्रक्रिया भा-रासायनिक होती है। यह देखा गया है कि जब मिट्टी में ऊर्जा प्रचुर कार्बनिक पदार्थ—जैसे ग्लीसेरोल, शर्करा, शीरा, मांड, घी, तेल, पत्तियाँ, तिन, बुरादा, फिल्टर पेपर, खली, कूड़ा करकट आदि जिनका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात १० से अधिक होता है, मिला दिये जाते हैं तो सूर्य के प्रकाश में इनका मंद आक्सीकरण होता है जिससे ऊर्जा उत्पन्न होती है और यह ऊर्जा वायुमंडल की नाइट्रोजन को मिट्टी की सतह पर स्थिर करने में सहायक होती हैं। इस प्रकार का नाइट्रोजन-स्थिरीकरण अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश में अधिक होता है, यद्यपि अंधकार में मिट्टी के हर ग्राम में **अजेटोबैक्टरों** की संख्या प्रकाश से अधिक होती है। इस प्रकार का स्थिरीकरण पूर्ण बन्ध्य-दशा में भी होता है। **धर, बोस, सिनहा और घोष** (१९५२) ने इस प्रकार के स्थिरीकरण की **कुशलता** (एफीसियेंसी) परिगणित की है और यह ज्ञात किया है कि यह व्यावसायिक विधियों के द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण की कुशलता से अधिक और सहजीवी-नाइट्रोजन-स्थिरीकरण के तुल्य है। इन कार्यकर्ताओं ने यह भी दिखाया है कि फासफेट, कैलशियम कार्बोनेट, और **बेसिक स्लैग** की उपस्थिति में यह कुशलता बढ़ भी सकती है। **धर और घोष** (१९५४) ने यह भी दिखाया है कि नाइट्रीकरण और प्रकृति में शोरे की कानों के उद्गम उत्प्रेरित-तल-प्रतिक्रियायें हो सकती हैं।

इन सब से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृति और मिट्टी दोनों में ही नाइट्रोजन प्रक्रिया का विशद अध्ययन बड़े महत्व का है क्योंकि नाइट्रोजन केवल व्यावसायिक कार्यों के लिये ही लाभदायक नहीं है वरन् हमारी मिट्टियों की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिये एवं पौदों के भोजन के रूप में अत्यन्त आवश्यक है। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, गंधक और फासफोरस के साथ-साथ सभी जीवित कोषों में जीवनदायी अंश के रूप में नाइट्रोजन वर्तमान रहती है और वह सभी वनस्पतियों एवं पशुओं का आवश्यक अंश है। इस प्रकार नाइट्रोजन-प्रक्रिया एक ऐसा नियमन है जो व्यावसायिक विधियों, सभी जीवित कोषों, मिट्टियों एवं पौदों में होता रहता है।

———

विज्ञान-वार्ता

आकाश में ७५ मील की ऊँचाई से भूमि का फोटो

सोवेत्स्काया रोस्सिया (सोवियत रूस) ने २४ दिसम्बर ५७ को पृथ्वी का वह फोटो प्रकाशित किया जिसे आकाश में ७५ मील की ऊँचाई तक उड़ान करने वाले राकेट ने लिया था।

फोटो में दीखने वाले बिखरे बादल पृथ्वी के धरातल और क्षितिज के घुमाव को प्रकट करते हैं।

पत्र ने और भी अनेक फोटो प्रकाशित किये हैं। इनमें वायुमंडल के ऊपरी धरातल का अध्ययन करने के लिए राकेटों के छोड़े जाने के, राकेटों की उड़ान और विशेष छतरियों की मदद से यंत्रों समेत शीर्ष भाग के उतरने के दृश्य भी सम्मिलित हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिकी वर्ष कार्यक्रम के अन्तर्गत सोवियत संघ के विभिन्न भागों में १२५ राकेट छोड़े जायेंगे। उनमें से अनेक तो सवासौ मील की ऊँचाई तक जा चुके हैं। सुदूर ऊँचाई पर वायु के तापमान तथा दबाव को मापने तथा अन्य तथ्यों को जानने के लिए इन राकेटों में विशेष यंत्र रखे रहते हैं। अपनी "सीलिंग" पर पहुँचने पर इन राकेटों के शीर्षभाग तथा अवयव स्वयं अलग हो जाते हैं। दोनों भाग विशेष छतरियों की सहायता से नीचे उतरते हैं। राकेटों की सहायता से चिकित्सा और जीव-विज्ञान सम्बन्धी परीक्षण किये जाते हैं। उदाहरणार्थ "अल्बिना" नामक कुत्ता दो बार ब्रह्मांड में पहुँचा और दोनों बार सवा सौ मील की ऊँचाई से छतरियों द्वारा नीचे उतरा। परीक्षणों ने सिद्ध किया है कि राकेटों में खड़ी उड़ान जानवरों के लिए पीड़ाहीन रहती है और इसका मतलब यह है कि मनुष्य भी ऊँची सतहों तक पहुँचने वाले राकेटों द्वारा ऊपर जा सकता है।

दूसरे सूर्य की सम्भावना

सम्भव है कि सन् २००० के नववर्ष के शुभारम्भ के अवसर पर मास्को के ऊपर आकाश में २०-३० किलोमीटर की ऊँचाई पर एक अग्नि कन्दुक प्रकाशित किया जाए, मानवकृत नया सूर्य उगाया जाए। मास्को के बाहरी अंचलों से प्रेषित अदृश्य उच्च आवृत्ति किरणें नगर के ऊपर एक बिन्दु पर मिलेंगी और वायुमंडल की तापोज्ज्वल गैसें (नाइट्रोजन, आक्सिजन) चमकदार प्रकाश के रूप में जल उठेंगी और सड़क की हजारों बत्तियों का स्थान ले लेंगी।

इस प्रकार मानव अपने सिर के ऊपर आकाश में एक नया सूर्य उगा देगा।

क्या आपने कभी उच्च आवृत्ति वाले बर्नरों की बात सुनी है? यदि उनकी प्रकाश शिखा में वह तरंग पहुँच जाएगी, जो रेडियो सेट से होकर गुजर रही है, तो शिखा तेजी से काँपने लगेगी और उसी प्रकार शब्द निकलने लगेंगे जैसे सूक्ष्म पर्दे से निकलते हैं। गाने वाली प्रकाश शिखाएँ।......

न यह मनगढ़न्त है और न निर्मूल कल्पना। रूस ने पहले पहल ऐसी प्रकाश शिखा १९४१ में फासिस्टों द्वारा घिरे लेनिनग्राद में जलायी थी। बिजली की शिखा जल उठी और उसने एक कारखाने की प्रयोगशाला में गाना गाया। गाने वाली शिखा का भविष्य है।

पाट के रेशे को निखारने की सरल विधि

अमोनियम सल्फेट के घोल और आक्जेलिक और फास्फोरिक एसिड से पाट के रेशे को निखारने के प्रचलित तरीके में दो दोष हैं—एक यह कि इससे रेशा निर्बल हो जाता है और दूसरे धोने के बाद रंग काफ़ी देर में आता है। कलकत्ता के इंडियन एसोसियेशन फार दि कल्टिवेशन आफ साइंस ने पाट को धोने की

एक सरल विधि निकाली है, जिसमें ये दोष नहीं हैं। विधि इस प्रकार है कि पहले रेशे को लाल दवा (पोटाशियम परमैंगनेट) में एक घंटे तक भिगोया जाता है और फिर धोकर यह पानी निकाल दिया जाता है। इसके बाद इसे आक्जेलिक एसिड और फास्फोरिक एसिड (पानी में मिले हुए) में हलका गर्म किया जाता है ताकि लाल दवा का रंग पूरी तरह निकल जाय। अब रेशे को धोकर सुखा दिया जाता है और सूखने पर यह बड़ा मुलायम और सुनहरे रंग का निकल आता है। इस तरह निखराने से भी रेशा निर्बल अवश्य पड़ जाता है पर प्रचलित विधि की धुलाई की तुलना में कहीं कम।

बेकार जाने वाली चीजों से ताप-रोधक पदार्थ

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य तथा प्राविधिक गवेषणाशाला ने मूँगफली या धान के भूसे, नारियल की जटाओं और ईख की खोई जैसी, बेकार जानेवाली वस्तुओं का सदुपयोग निकाला है। इस प्रयोगशाला ने इन वस्तुओं से विदेशी काक (कार्क) जैसा ताप रोधक पदार्थ तैयार किया है। गर्मी को रोकने के अतिरिक्त इस पदार्थ के गद्दे और शब्द-सोख फट्टे और फर्श आदि भी बनाये जा सकते हैं।

निरन्तर बढ़ता हुआ यह ब्रह्मांड

एक ओर मानव दूसरे लोकों और ग्रहों में पहुँचने की तैयारी कर रहा है और दूसरी ओर यह ब्रह्मांड चारों ओर को फैलता जा रहा है। खगोल शास्त्रियों का मत है कि समस्त ब्रह्मांड एक केन्द्र से नियत गति से चारों ओर को बढ़ता जा रहा है।

अमेरिका की माउंट विलसन, पालोमर और लिक वेधशालाओं में काम करने वाले खगोलशास्त्रियों का कहना है कि पिछले २० साल के अनुसंधान से इस मत की बराबर पुष्टि होती है। वहाँ की एक प्रमुख ज्योतिष पत्रिका में प्रकाशित इन विद्वानों के एक प्रतिवेदन में कहा गया है कि ब्रह्मांड के सब से दूर के ग्रहों का अन्तर पहले २ अरब प्रकाशवर्ष माना गया था लेकिन अब जो प्रमाण मिले हैं उनके अनुसार यह ३० प्र० श० अधिक मालूम होता है।

प्रकाश वर्ष वह अन्तर है जो प्रकाश की किरणें १,८६,३०० मील प्रति सेकिंड की गति से एक वर्ष में तय करती हैं अर्थात् लगभग ६ महापद्म मील।

२, ४-डी० से चीनी में वृद्धि

केन्द्रीय गन्ना अनुसंधान केन्द्र, पूसा, में जो परीक्षण किये गये हैं उनसे पता चला है कि गन्ने को काटने से पहले यदि उस पर २, ४-डी० का सोडियम-लवण (सोडियम-२, ४—डाई क्लोरोफिनाक्सी एसीटेट) छिड़क दिया जाय तो उससे गन्ने में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है। ५ भाग प्रति एक लाख भाग पानी में घोल बना कर ६० गैलन प्रति एकड़ पर छिड़काव किया जाता है। इसका प्रभाव छिड़काव के दो दिन बाद ही दिखाई देने लगता है और १०७ दिन तक रहता है।

२, ४-डी० का प्रयोग चौड़ी पत्ती वाले बेकार चारों को नष्ट करने के लिये भी होता है। इस खर पतवार नाशक का घासों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पर जब रुई, भिण्डी और टमाटर की फसलें पास खड़ी हों तो सतर्कता की आवश्यकता रहती है।

कैन्सर रोग के निदान के लिए नई मशीन

अमेरिका की राष्ट्रीय कैन्सर संस्था के निर्देशक डा० जौन आर० हैलर ने हाल ही में कैन्सर रोग का निदान करने वाली एक नई उत्तम मशीन के बारे में घोषणा की है। इस नई मशीन की सहायता से कैन्सर-ग्रस्त कोष का पता लगभग एक सैकिण्ड के ५,००० वें हिस्से से भी कम समय में लगाया जा सकता है। इसमें प्रचलित परीक्षण-विधि की अपेक्षा १०,००० वें हिस्से से भी कम समय लगता है।

इस नई मशीन को 'साइटोएनेलाइजर' कहते हैं। इस मशीन की निदान बतलाने वाली "आँख" एक विशेष अणुवीक्षण यन्त्र है। जब कैन्सर-ग्रस्त कोष को इस अणुवीक्षण यन्त्र के ताल के सम्मुख रखा जाता है, तब यह यन्त्र टैलिविज़न कैमरे के समान कार्य करता है तथा कोष का चित्र विद्युत-लहरियों के रूप में उपस्थित कर देता है। ये लहरियाँ हिसाब-किताब जोड़ने वाली मशीन में पहुँच जाती हैं। यहाँ इनकी तुलना मशीन में

पहले से विद्यमान अन्य सूचनाओं से होती है। इसके अनन्तर एक संकेत इस बात की सूचना देता है कि हिसाब-किताब जोड़ने वाली मशीन का निर्णय क्या है। क्या वह इस कोष को "सामान्य" अथवा "सन्देहास्पद" समझता है। इसके अनन्तर चिकित्सक सन्देहास्पद कोष की बारीकी से जाँच कर सकते हैं।

नये दूरमारक अस्त्र का दुबारा प्रयोग

अमेरिका की लाकहीड कम्पनी की दूरमारक अस्त्रों को तैयार करने वाली शाखा ने एक नया दूर-मारक अस्त्र तैयार किया है, जो ध्वनि की गति से भी दुगनी तेजी से हवा में उड़ान करने के बाद पैराशूट की सहायता से पृथ्वी पर नीचे पहुँच जाता है। इसके बाद इसे दुबारा प्रयोग किया जा सकता है।

इस लक्ष्यवेधी दूरमारक अस्त्र की लम्बाई लगभग ३६ फुट है। जेट-चालित इस वाहक को 'क्यू-५' कहा जाता है। इस नये दूर-मारक अस्त्र की क्रिया पर दूर बैठ कर नियन्त्रण रखा जा सकता है। इससे आक्रमणकारी शत्रु का पता लगा सकता है तथा लक्ष्य-स्थान पर निशाना भी लगा सकता है। निशाना लगाने के बाद यह अस्त्र बिना हानि पैराशूट की सहायता से पृथ्वी पर पहुँच जाता है।

नई रोगाणुनाशक औषधि

अमेरिका के डाक्टरी अनुसन्धानकर्ताओं के कथनानुसार, मैट्रोमाइसिन (ओलिएनडोमाइसिन) एक नई रोगाणुनाशक औषधि है जो जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती है और साथ ही प्रभावकारी कीटाणुनाशक का काम भी देती हैं।

अमेरिकी वैज्ञानिकों का कथन है कि यद्यपि इस औषधि के इस्तेमाल से जीवाणुओं का बढ़ना रुक जाता है लेकिन कुछेक किस्म के संक्रामक रोगों में छूतग्रस्त स्थानों में उनके जीवित रहने की सम्भावना रहती है। पूर्ण रूप से उपचार के लिए इन न बढ़ने वाले जीवाणु-कोषों का नष्ट होना जरूरी है।

अनुसन्धान से यह भी पता चला है कि जब मैट्रोमाइसिन जीवाणुओं की वृद्धि को ५ से ७ घंटे तक रोके रखती है तो उसके बाद 'असक्रिय' कोष वास्तव में नष्ट हो जाते हैं।

बर्फ के अभीक्षण के लिए फोटो केमरा

सोवियत उत्तरी ध्रुव उड्डयन संस्थान ने उत्तरी ध्रुव स्थित उत्तरी सागर मार्ग पर बर्फ के अभीक्षण के लिए टेलीविजन का परीक्षण किया है। एक टेलीविजन केमरा लगभग ४५ डिग्री पर्यवेक्षण कोण पर विमान के ऊपर लगाया गया है। बर्फ तोड़क के सेतु पर लगाये गये टेलीविजन के परदे पर कप्तान को आगे से ही बर्फ की सारी परिस्थितियाँ साफ नजर आती हैं। पानी और बर्फ का तापमान दिखाने के लिए एक विशेष प्रकार का यांत्रिक प्रसाधन भी लगा है। केमरा द्वारा उतारी गई विशेष प्रकार की पट्टी पाँच किलोमीटर (३ मील) चौड़ी है और बर्फ के बीच सबसे अच्छा मार्ग ढूँढ निकालने के लिए बिलकुल पर्याप्त है। इस समय डिजाइन बनाने वाले कारीगर विमान एवं उ० ध्रुवीय उड्डयन के प्रयोग के लिए स्थावर टी० वी० केमरा का उपयोग कर रहे हैं।

डा० अर्नेस्ट लारेन्स को फेर्मी पुरस्कार

प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की विकिरण सम्बन्धी अनुसन्धानशाला के निर्देशक डा० अर्नेस्ट ओ० लारेन्स को २ दिसम्बर को १६५७ का एनारिको फेर्मी पुरस्कार प्रदान किया गया। स्मरण रहे, १५ वर्ष पूर्व इसी दिन, प्रथम बार नियन्त्रित तथा श्रृङ्खलाबद्ध अणु-विखण्डन में, डा० फेर्मी ने सफलता प्राप्त की थी।

यह पुरस्कार अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन द्वारा ५० हजार डालर नकद तथा एक तमगे और प्रशस्ति-पत्र के रूप में दिया गया। प्रशस्ति-पत्र में साइक्लोट्रोन के आविष्कार एवं विकास तथा अणुशक्ति एवं आणविक भौतिकशास्त्र के विकास में आपके सहयोग की प्रशंसा की गई।

डा० लारेन्स "फेर्मी पुरस्कार" प्राप्त करने वाले तीसरे व्यक्ति हैं। १६५४ में यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति स्वयं फेर्मी थे, जो आणविक क्षेत्र में

एक महान मार्ग-दर्शक थे। आपकी मृत्यु हो जाने के बाद अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन ने अपने पुरस्कार का नाम फेर्मी-पुरस्कार रख दिया। गत वर्ष प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन के सदस्य स्वर्गीय डा० जौन वान न्यूमैन का नाम इस पुरस्कार के लिए चुना गया था।

डा० लारेन्स का जन्म १९०१ में दक्षिणी डाकोटा में हुआ था। आप १४ अमेरिकी विश्वविद्यालयों से सम्मानित उपाधियां तथा रूस, भारत एवं लगभग सभी पश्चिमी देशों सहित अनेक विदेशी सरकारों से सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। आपको १९३९ में भौतिक शास्त्र में नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका है।

आणविक भौतिकशास्त्रियों द्वारा पदार्थों के रहस्यों की खोज में सफलता

आणविक भौतिक शास्त्रियों की एक अन्तर्राष्ट्रीय मंडली ने पदार्थों की खोज सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण अध्याय को लिखने का काम पूरा कर लिया है।

इन वैज्ञानिकों ने इसे 'बीटा डिके' अर्थात् प्राणु (प्रोटोन) का विखण्डन नाम दिया है। कहा गया है कि उदजन-न्यष्टि (हाइड्रोजन न्यूक्लियस) में एक क्लीवाणु (न्यूट्रोन), एक विद्युदणु (इलैक्ट्रोन) तथा "न्यूट्राइनो" नामक एक गुप्त कण है।

चीन में पैदा होने वाले नोबेल पुरस्कार-विजेता डा० सी० एन० यैंग ने, जो इस समय प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में हैं, पोलैन्ड में पैदा होने वाले भौतिकशास्त्री डा० मोरिस ने जो इस समय ब्रुकहैवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में हैं तथा मास्को में ताप-अनुसंधान सम्बन्धी इन्स्टिट्यूट के डा० सर्जी निकितिन ने अपनी खोजों सम्बन्धी रिपोर्ट अमेरिकन फिजिकल सोसाइटी की पश्चिमी बैठक में, जो हाल ही में स्टैनफर्ड (कैलिफोर्निया) में समाप्त हुई है, पेश की हैं।

डा० यैंग तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डा० टी० डी० ली ने चिरकाल से स्वीकृत 'पदार्थों के समाहर्त्ता के सिद्धान्त' को गलत सिद्ध कर के यह नया अध्याय प्रारम्भ किया था।

उक्त सिद्धान्त के अनुसार पदार्थों में पूर्ण रूप से समानता समझी जाती थी। यह माना जाता था कि पदार्थों में कणों की संख्या एक समान होती है और ये बाएं से दाएं तथा दाएं से बाएं एक दिशा में घूमते हैं तथा प्रत्येक पदार्थ में धन एवं ऋण विद्युत् शक्ति वाले कणों की संख्या भी बराबर ही होती है।

डा० यैंग ने भौतिक शास्त्रियों को बताया कि उन्हें जिस खोज के लिए नोबेल पुरस्कार मिला है, उस में कई सम्भव विकल्पों के बारे में सुझाव दिए गए थे। आपने कहा "हमें वास्तव में यह पता नहीं है कि प्रकृति में इनमें से कौन सी सम्भावना विद्यमान है।"

अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन तथा रूस के वैज्ञानिकों ने यह पता दिया कि प्राणु के विखन्डन (बीटा डिके) से जो विद्युदणु (इलैक्ट्रोन) पैदा होते हैं उनमें असमानता है।

डा० मौरिस तथा उन के साथियों ने ब्रुकहैवन प्रयोगशाला में अपना ध्यान 'न्यूट्राइनो' नामी विचित्र कण की ओर केन्द्रित किया। इसे 'गुप्त छोटा आणविक कण' भी कहा जाता है। इसका न कोई पुञ्ज, न वजन, न विद्युत् और न चुम्बकीय गुण ही है। प्रकाश की गति से घूमना ही इस सूक्ष्म कण का काम है।

अमेरिकी भौतिक शास्त्रियों ने बहुत परिश्रम के बाद यह पता लगाया कि अधिकांश 'न्यूट्राइनो' बाईं से दाईं ओर घूमते हैं।

डा० यैंग ने बताया कि हमें अब यह पता चल गया है कि प्राणु-विखन्डन (बीटा-डिके) क्या है। लेकिन इतने से ही सारी बात समाप्त नहीं होती। हमें अभी तक यह पता नहीं चल सका है कि यह सब किस तरह से हुआ है।"

---

२२ फरवरी १९५८ को प्रातःकाल २ बजकर १५ मिनट पर भारत के केन्द्रीय शिक्षा एवम् वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का देहान्त हो गया।

आपका जन्म मक्का में और उच्च शिक्षा मिश्र के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय अलअज़हर में हुई। कई पत्रों का आपने समय-समय पर सम्पादन किया। आपके द्वारा किया गया क़ुरान का अनुवाद सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। दर्शन एवम् साहित्य पर भी आपने कई पुस्तकें लिखी है।

केवल ३५ वर्ष की आयु में सन् १९२३ ई० में आप प्रथम बार कांग्रेस के राष्ट्रपति चुने गये। दूसरी बार यह सम्मान पुनः आपको १९३० में मिला। बाद में सन् १९४० में तीसरी बार आप कांग्रेस के सभापति चुने गये। आपने यह कार्य भार १९४६ तक संभाला। अपने जीवन काल के लगभग ११ वर्ष आपने कारागार में बिताये।

सन् १९४७ में अन्तरिम सरकार बनने पर आप शिक्षा एवम् साहित्य मंत्री बने। फिर भारत के सार्वभौम सत्ता प्राप्त गणराज्य के भी शिक्षा मंत्री के पद पर आप आसीन रहे। बाद में वैज्ञानिक अनुसंधान का पोर्टफोलियो भी आपको मिला। अपने जीवन की अन्तिम श्वांस तक आपने यह भार बड़ी योग्यता से संभाला।

मौलाना साहब की मृत्यु में हमने एक स्वतन्त्रता संग्राम का सेनानी, अरबी फारसी का प्रकाण्ड पंडित, सच्चा राष्ट्रप्रेमी, उद्भट दार्शनिक, दूरंदेशी, स्पष्टवक्ता एवम् प्रमुख राजनीतिज्ञ खो दिया है। इस क्षति की पूर्ति सम्भव नहीं।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज़ के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान

मार्च १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए ३७२

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद तथा मुद्रक ओंकार प्रेस, प्रयाग ।

भाग ८७ संख्या १

अप्रैल १९५८, मेष २०१५ वि०, वैशाख १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये] [इस अङ्क का मूल्य ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में, विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मंत्री, दो मंत्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

—

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८७ | मेष २०१५ विक्र० चैत्र १८८० शाकाब्द; अप्रैल १९५८ | संख्या १

सम्पादकीय

नये बाट:—

सभ्यता के प्रारम्भ से ही भार, लम्बाई, क्षेत्रफल आदि के नापने की समस्या मनुष्यों के सम्मुख आई। इनके नापने के लिये विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के माप प्रचलित हुए। लगभग ५००० वर्ष पूर्व मिस्र देश के निवासियों ने एक ही आकार के पत्थरों को बाट के रूप में प्रयुक्त करना प्रारम्भ किया। इस भार का नाम बाद में स्टोन पड़ा जिसका भार ४ से २० पौंड के बीच में रहा। आज भी इंग्लैण्ड में स्टोन भार की माप के रूप में काम में लाया जाता है और उसका भार १४ पौंड निश्चित कर दिया गया है। अमेरिका में अभी तक बुशल को भार की मात्रा के रूप में प्रयोग में लाते हैं। प्रारम्भ में यह एक विशेष आयतन का द्योतक था। उस आयतन के बराबर अनाज का भार एक बुशल समझा जाता था।

धीरे-धीरे इन मापों में विकास होता गया, और इस बात का प्रयत्न किया गया कि इन पैमानों में एकरूपता लाई जाय। साथ ही, प्रणाली सरल और बोधगम्य हो और छोटे बड़े पैमाने सरल अंशों के हों जिससे उनका उपयोग राज्य भर में किया जा सके। इंग्लैण्ड ने अपनी प्रणाली चलाई जो इंग्लैण्ड अमेरिका और ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में अब तक मान्य है। भारतवर्ष में मन-सेर-छटाँक आदि की प्रणाली बहुत पुरानी है किन्तु एक स्थान के मन से दूसरे स्थान का मन भिन्न रहता था। देश भर में एक ही स्टैण्डर्ड का मन रखने के लिये भारत सरकार ने वे बाट प्रचलित कराये जिन्हें नम्बरी बाट कहते हैं। इस प्रकार से पैमाने की विविधता तथा तौल और बनावट में विषमता और विभिन्नता तो दूर हो गई किन्तु वैज्ञानिक मापों के लिये इन मापों को अपनाना उचित नहीं ज्ञात होता।

सन् १७९० ई० में फ्रांस ने मेट्रिक प्रणाली अपनाई। विषुवत् रेखा से ध्रुव तक की लम्बाई को एक करोड़ भागों में बाँट दिया गया और एक भाग का नाम मीटर रखा। इस मीटर के सौवें भाग को सेन्टीमीटर कहा गया। एक घन सेन्टीमीटर पानी का भार एक ग्राम मान लिया गया। इस

प्रकार मेट्रिक प्रणाली के माप निश्चित कर दिये गये। धीरे-धीरे इस प्रणाली का विकास किया गया और उसे वैज्ञानिक उपयोग के लिये ठीक कर लिया गया। आज संसार भर में वैज्ञानिक क्षेत्र में यहीं प्रणाली मान्य है।

सन् १८६० ई० में विदेशी सरकार ने भारत में पहली बार इस प्रणाली को प्रचलित करने के लिये कानून पास किया। किन्तु ब्रिटिश जनता के विरोध के भय से इसे यहाँ कार्यान्वित न किया जा सका। भारतवर्ष के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने इधर ध्यान दिया। श्री वी० वी० आप्टे की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई जिसने बाटों के प्रतिमान की विभिन्न प्रणालियों पर विचार किया और यह निश्चित किया कि मेट्रिक प्रणाली ही ऐसी है जिसे अपनाना उचित है।

शीघ्र ही यह नई प्रणाली कार्यान्वित की जावेगी। सबसे बड़ा बाट ५० किलोग्राम का रहेगा जिसका भार लगभग ५४ सेर है और सबसे छोटा बाट एक मिली ग्राम का होगा जो एक किलोग्राम का दस लाखवाँ भाग होगा। बड़े बाट क्रमशः ५०, २०, १०, ५, २ और १ किलोग्राम के होगें। इनसे छोटे बाट क्रमशः ५००, २००, १००, ५०, २०, १०, ५, २, १ के और सबसे छोटे बाटो में ५०० मिलीग्राम से १ मिलीग्राम तक के बाट रहेंगे। ५० किलोग्राम से ५ किलोग्राम तक के बाट लोहे के बनाये जावेंगे जिनमें मुलायम इस्पात के हत्ये होंगे जिससे उठाते समय ये हाथ से न फिसल जायें। २ किलोग्राम से १०० ग्राम तक के बाट मुलायम इस्पात के होंगे। जिनके ऊपर पकड़ने के लिये दस्ते या घुंडियाँ रहेंगी।

सोने-चाँदी आदि तौलने के लिये विशेष रूप से पीतल के बाट चालू किये जावेंगे। २० किलोंग्राम से १ ग्राम तक के ये बाट पीतल के रहेंगे और बेलनाकार होंगे। २० और १० किलोंग्राम के बाटों में दस्ते और ५ किलोग्राम से १ ग्राम तक के बाटों में घुंडियाँ रहेंगी। इन सब बाटों पर हीरे की शक्ल बनी रहेगी। २० ग्राम से ऊपर के बाटों पर हिन्दी और अँग्रेजी में "बुलियन" भी लिखा रहेगा और उन पर सीसे की मुहर भी रहेगी।

सुनारों की सुविधा के लिये १ किलोग्राम से १ ग्राम तक के चक्कों की भाँति चपटे बाट भी चलेंगे किन्तु इन पर हीरे की शक्ल नहीं रहेगी और न इन पर "बुलियन" ही लिखा रहेगा। मिलीग्राम के बाट पीतल, अल्यूमिनियम या निकिल के पत्तर के बनाये जायेंगे। ५००, ५० और ५ मिलीग्राम के बाट षटकोणाकार; २००, २० और २ मिलीग्राम के बाट आयताकार और १००, १० और १ मिलीग्राम के बाट त्रिभुजाकार रहेंगे।

सरकार की योजना प्रचलित बाटों को हटाकर १० वर्ष के भीतर मेट्रिक प्रणाली के बाटों को चलाने की है। प्रारम्भ में जनता को कठिनाई अवश्य पड़ेगी किन्तु कुछ समय के पश्चात् बड़ी सुविधा हो जावेगी। इग्लैण्ड के लोग भी मेट्रिक प्रणाली का प्रचलन चाहते हैं किन्तु उनके यहाँ औद्योगीकरण के फलस्वरूप इतनी हिसाब-किताब की मशीनें (Calculating machines) बन गई हैं कि वे नई प्रणाली के अपनाने पर उन्हें बेकार कर देने का साहस अब नहीं कर सकते। अभी भारतवर्ष का उद्योग अपने शैशवकाल में है इसलिये बाटों की प्रणाली में इसी समय परिवर्तन कर देना आवश्यक हो गया है। भारत सरकार का यह प्रयत्न स्तुत्य है। हमें आशा है कि जनता के समझदार लोग इस योजना का स्वागत करेंगे और इसे अपनाने में अपना सहयोग देंगे।

—:०:—

विज्ञान, अप्रैल, १६५८, ३-१२

गतांक से आगे—(४)

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल, साहित्यरत्न, प्राध्यापक, कृषि-रसायन, प्रयाग विश्वविद्यालय]

हमारे अवधी लोक-साहित्य में घाघ और भड्डरी की न जाने कितनी कहावतें प्रचलित हैं परन्तु खना देवी के नाम से हम सभी अपरचित से हैं। सम्भव है उनकी कहावतें किसी अन्य विशेष प्रदेश तक ही सीमित हों। किन्तु स्पष्टत: बंगला लोक साहित्य में, बराह, मिहिर एवं खना देवी तीनों के नाम बड़े आदर से एक ही साथ उच्चरित होते रहते हैं। जैसा कि खना देवी के जीवन चरित्र से ज्ञात होगा, वे सिंघल द्वीप से उज्जैन आई थीं। उस समय राजा विक्रमादित्य राज्य करते थे और उनके नवरत्नों में बराह भी था। कालिदास भी इन्हीं रत्नों में से थे। अतः इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय इतिहास में यह "स्वर्णिम युग" ४०० ई० के आस-पास था। घाघ और भड्डरी तो निश्चित रूप से १७ वीं सदी में हुए थे परन्तु खना देवी इनसे बहुत पहिले पैदा हुई प्रतीत होती हैं, अतएव उनका कृषि-ज्ञान मौलिक रूप से भारतीय कृषि के लिये उपयोगी रहा होगा और किन्हीं-किन्हीं अंशों में तो घाघ और भड्डरी को भी प्रभावित किया होगा। खना देवी के वर्षा-ज्ञान तथा विभिन्न फसलों की उत्पादन-कला को देखकर यह कहा जा सकता है कि उस समय स्त्रियाँ भी कृषि कर्म में हाथ ही नहीं बँटाती थीं वरन् कृषि-शास्त्र का अभूतपूर्व ज्ञान रखती थीं।

यों तो हमारे देश में कृषि सदैव से होती आई है किन्तु उसमें जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए उन्हें समझने के लिए खना-वचनों को जानना आवश्यक है। वर्षा की महत्ता कृषि के लिये कितनी है कहने की आवश्यकता नहीं, इसीलिये पुरातन काल से कृषि विशेषज्ञों को ज्योतिष-शास्त्र द्वारा वर्षा के आगमन अथवा उसके अभाव को जान लेना आवश्यक होता था। खना ने विभिन्न महीनों में होने वाली वर्षा का शुभाशुभ प्रभाव बताया है। चूँकि बंगाल में ही खना-वचन प्रचलित प्रतीत होते हैं (क्योंकि प्रस्तुत सम्पूर्ण वर्णन, बंगला की पुस्तक बराह मिहिर खना ज्योतिष ग्रंथ से जिसे कालीमोहन विद्यारत्न ने संग्रहीतकर सुलभ कलकत्ता लाइब्रेरी से प्रकाशित किया था अनूदित किया गया है) और खना ने धान, नारियल, केला, सुपारी तथा पाट आदि के बारे में ही विस्तृत वस्तुयें कहीं हैं अतः यह निर्विवाद सा जान पड़ता है कि खना की कर्मभूमि बंगाल में रही होगी क्योंकि ये सभी वस्तुयें बंगाल में अधिकांश रूप में पैदा होती हैं। खना ने खेतों की जुताई, उनकी बनाई तथा फसलों के बोने के उचित समय, काटने के समय और उनकी उपजों की मात्रा का ही वर्णन नहीं किया वरन् विभिन्न फसलों में प्रयुक्त होने वाली तत्कालीन उपयुक्त खादों का वर्णन भी किया है। आज हम अपने इस प्राचीन कृषि ज्ञान को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और आधुनिकता की बात चलाते हैं किन्तु जब सभी दिशाओं से शोधों को स्मरण करते हुए पिछले ज्ञान की फिर कर आलोचना करते हैं तो हमें उस ज्ञान में अनेक विचित्रतायें परिलक्षित होती हैं। खना द्वारा वर्णित भिन्न खादें या कृषि-पद्धतियाँ भारतीय कृषि की अत्यन्त मौलिक वस्तुयें हैं:—

"सड़ी-गली चीजें जो मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए अहितकर हैं वे पौधों के लिए आवश्यक हैं" इसमें वर्तमान कम्पोस्टिंग प्रणाली का पूर्वाभास है। सरसों तथा उरद, मूंग एक साथ बोने में वर्तमान दालों की खेती से नाइट्रोजन-स्थिरीकरण की ओर संकेत है। जहां राख डाली जाती हैं वहाँ लौकी लगाना, पेड़ों में कीड़े लग जाँय तो राख का छोड़ा जाना, अरुई के खेत में राख से उर्वराशक्ति बढ़ाना, मछली के धोवन से अच्छी लौकी पैदा करना, सुपारी के खेत में मदार लगाना, मदार के पत्ते छोड़ने से सुपारी में अधिक फल लगना, सुपारी के पेड़ में गोबर की खाद डालना, सूरन के खेत में कूड़ा करकट तथा मीठे आलू में राख छोड़ना, नारियल के पेड़ में लोना मिट्टी छोड़ना··· आदि के द्वारा, गोबर, राख, पत्ती, करकट, लोना, मछली

आदि खादों की बात कही गई है। इसके अतिरिक्त फसलों के दूर-दूर बोये जाने, समय पर केला-नारियल के काटे जाने, जिससे उनकी वृद्धि हो—का वर्णन है। खेतों की बनाई, कटाई, बुवाई के उचित समय पर भी दृष्टिपात है।

इनमें से कोई भी ऐसी बातें नहीं जो आज के कृषि विज्ञान द्वारा असत्य सिद्ध हो सकें वरन् आज का कृषि विज्ञान भी इन्हीं वस्तुओं के प्रयोग पर जोर देता है। इस विचार से प्राचीन समय में तथा वर्तमान समय में भी खना-वचनों का महत्व स्पष्ट है। जीवनी के पश्चात् बंगला पुस्तक से उद्धृत बंगला में मूल वचन हैं फिर उनके नीचे ही हिन्दी रूपान्तर दिया गया है। ऐसा इसीलिए किया गया कि मौलिकता विनष्ट न हो और पाठकों को सुभीता भी हो जाय।

खना की जीवनी

उज्जयिनी में विक्रमादित्य नाम के राजा हुए जो अत्यन्त धर्मात्मा एवं प्रजापालक थे। वे ज्ञान-विज्ञान की चर्चा में अपना समय बिताते और इसी के परिणामस्वरूप राजधानी में एक नवरत्न सभा की प्रतिष्ठा भी की थी। महापण्डित कालिदास, भवभूति आदि नवगुणी उस सभा के रत्न थे। इनमें से प्रत्येक अपने-अपने विषय का प्रकाण्ड पण्डित था। इन्हीं नवरत्नों में प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य बराह देव भी थे। किम्वदन्ती है कि बराह ने गणना द्वारा आकाश के नक्षत्र और जल के परिमाण को ठीक-ठीक बताया। उस समय बराहदेव के बराबर न्याय ज्योतिर्विद कोई दूसरा न था।

इनका जन्म मालवा के चुम्बी नामक ग्राम में हुआ। बचपन से ही ज्योतिष विद्या से इनका अनुराग था अतः उस समय कोई ज्योतिषग्रंथ न प्राप्त होने पर भी तमाम अनुसंधान करके इन्होंने इन ग्रंथों का संग्रह किया। बाद में राजा विक्रमादित्य ने इनके गुणों से प्रभावित होकर अपनी राजधानी में बुलाकर रत्न बना लिया। वहीं पर बराह देव ने विवाह किया। इनकी स्त्री धरणी देवी थीं। उन्होंने पहले ही गणना द्वारा जान लिया कि धरणी देवी के जो गर्भ है उससे रूपवान, दीर्घायु सुपुत्र जन्मेगा। जन्म होते ही बराह देव ने उस पुत्र की आयु गणना की। भ्रमवश बराह देव ने उसकी उम्र एक साल निकाली। तीन बार ऐसे ही गणना किया किन्तु भ्रमवश वही गणना उतरी इसलिए पुत्र को एक ताम्र-पात्र में रखकर समुद्र में प्रवाहित कर दिया। धीरे-धीरे यह ताम्र-पात्र सिंहलद्वीप के किनारे जा लगा। संयोगवश उसी समय सिंहल की एक राजकन्या, खना देवी स्नान करने आई थी। ताम्रपात्र को देखा तो उठा लिया। उसमें नवजात शिशु को देख आनन्दित हो उठी।

बाल्यकाल से ही खना देवी ज्योतिष-विद्या की पारदर्शिनी थीं। ऐसी कथा है कि उस समय के सिंहलद्वीप के सभी राक्षस ज्योतिर्विद्या में निपुण होते थे। एक बार मय दानव नामक राजा की लड़की खना को यह जानकर कि आगे चलकर यह अपने पति सहित ज्योतिर्विद्या में परम निपुणा होगी, राक्षसों ने चुरा लिया और उसको हरण करके अपने घर में लाकर उसे ज्योतिष की अच्छी शिक्षा दी। कार्यवश आई हुई खना देवी ने ताम्रपात्र में रखे हुए शिशु को उठा लिया और ज्योतिष गणना से यह जान लिया कि उस शिशु की आयु १००वर्ष होगी, वह आगे चल कर राजा से सम्मानित ज्योतिषी होगा। राक्षसों ने भी बाद में गणना द्वारा वैसा ही निरूपण किया और उस शिशु का नाम मिहिर रख दिया। बड़े होने पर उसे ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा दी गई। बाद में मिहिर एक अपूर्व ज्योतिषी बन गया।

परस्पर ज्योतिष के वाद-विवाद में खना और मिहिर आनन्द उठाते रहे। बाद में दोनों में प्रेम हो जाने पर राक्षसों ने दोनों का विवाह कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् मिहिर ने गणना द्वारा अपने जन्म, माता-पिता तथा जन्मभूमि का पता लगाया तो उनके दर्शनार्थ आकुल हो उठा। अतः माहेन्द्र क्षण में दोनों ने सोच विचार कर सिंहलद्वीप छोड़ दिया। अपनी पुरी में जाकर माता-पिता को अपना परिचय मिहिर ने दिया। पहले तो बराह को कोई विश्वास न हुआ किन्तु बाद में खना देवी ने जन्म-लग्न दिखा कर बराह की भूल दिखा दी। अपनी भूल पर बराह लज्जित हुआ किन्तु गुणवती पुत्रवधू तथा गुणज्ञ पुत्र

को पाकर वह अत्यन्त उल्लसित हो उठा। फिर भी उसे आत्मग्लानि होती रही कि किस प्रकार भूल वश उसने अपने विद्वान पुत्र को त्याग दिया अतः वह तीनों लोकों में मुँह दिखाने योग्य नहीं। यह ज्योतिष विद्या मेरे सर्वनाश का कारण बनी। आज ही समस्त ज्योतिष ग्रन्थों को समुद्र में फेंके देता हूँ। किन्तु खना और मिहिर ने रोकते हुये कहा, इसमें ग्रन्थों का कोई दोष नहीं, आप दोषी हैं।" बराह ने पूछा, "जिस क्षण राक्षसों ने तुम्हें रोकने के बजाय समुद्र पार कराया वह शुभ दिन था या अशुभ?" खना ने प्रत्युत्तर में कहा "वह शुभ दिन था और था माहेन्द्र क्षण।" बराह ने फिर पूछा "यदि उस समय चन्द्रमा ठीक न था तब यात्रा का यह शुभ क्षण कैसे हो सकता था?" खना बोलीं, "यदि चन्द्रमा ठीक न हो तो इस प्रकार यात्रा करनी चाहिए :—

तिथिवार स्वनक्षत्र, मासरे यत दिन।
एकत्र करिया तारे, साते कर हीन॥
एके लाभ दुये शुभ, तिने शत्रु क्षय।
चतुर्थेते कार्य सिद्धि, पंचमे संशय॥
षष्ठेते मरण जेन, शून्य हले दुख।

(अर्थात् तिथि, वार, नक्षत्र, महीने का जो दिन हो सबको जोड़कर सात घटाने से यदि एक शेष रहे तो लाभ, दो, तो शुभ, तीन में शत्रुहानि, चार में कार्य सिद्धि, पाँच में मृत्यु और शून्य होने से दुख होता है) बराह देव पुत्रवधू के इस पाण्डित्य पर अत्यन्त प्रसन्न हुये और राजा विक्रमादित्य से अपने पुत्र की प्रशंसा की। बाद में विक्रमादित्य ने मिहिर को नवरत्नों में से एक रत्न बना लिया। नित्यप्रति बराह और मिहिर दोनों ही राजसभा जाते और वहाँ पर जो-जो कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं, घर आकर खना से उन पर आलोचना करते। खना उन्हें हल करती। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद महाराज विक्रमादित्य को खना की विद्वता का पता चला। महाराज ने हँस कर बराह देव से कहा "तुम्हारी पुत्रवधू अत्यन्त गुणवती है अतः हम उसे अपनी नवरत्न सभा का अन्यतम रत्न बनाना चाहते हैं?" पिता पुत्र दोनों ही राजा के इस अभिप्राय को समझ गये। अतः जब वे दोनों घर लौट रहे थे तो उन्होंने परामर्श की कि यदि खना की जिह्वा को मिहिरदेव काट ले तो वह बोल न पावेगी जिससे नवरत्न बनने की कोई बात ही न उठ पायेगी और उनकी लाज भी बच जावेगी। अतः घर आकर मिहिर ने खना से कहा, "तुमने इस नराधम की किस प्रकार से रक्षा की और बाद में पत्नी बनी। किन्तु वही आज तुम्हारी जीभ काटना चाहता है।" खना ने उसी समय गणना की और देखा कि उसकी मृत्यु निकट है अतः वह बोली, "स्वामी! शीघ्र हो मेरी जीभ काट लें, पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करें, मेरी मृत्यु उपस्थित है। मेरी जीभ का यह गुण है कि जिस घर में वह रहेगी वहाँ कोई मूर्ख न होगा। सभी ज्योतिर्विद होंगे।" उसी समय मिहिर ने जीभ काट ली और खना की मृत्यु हो गई। मृत्यु से बराह, मिहिर तथा अन्य सभी रोने लगे। मिहिर ने जहाँ जीभ काट कर रखी, वह स्थान उसे भूल गया और दो चार दिन बाद जब उसे स्मरण आया तब तक वहाँ चीटियों ने उसे चट कर दिया था। कहा जाता है कि इसी कारण आज भी चीटियाँ बहुत बुद्धिमान होती हैं और किसी भी स्थान में रखी हुई चीज का उन्हें पता चल जाता है।

वर्षा के शुभाशुभ लक्षण

सागरे गुटि शस्ये भरा, सुख वछरा वसुन्धरा॥१॥

जिस वर्ष सागर में गुटिकापात हो, उस साल को अच्छा जानो अर्थात् उस वर्ष अच्छी खेती होगी।

काणार छाता बुधेर माथाय।
क्षेतेर फसल राखवे कोथाय॥२॥

जिस वर्ष बुध राजा तथा शुक्र मन्त्री हो उस वर्ष पृथ्वी फसल से पूर्ण होगी।

शनि राजा मङ्गल पात्र।
चाष खोंड केवल मात्र॥३॥

जिस वर्ष शनि राजा तथा मंगल मन्त्री हों उस वर्ष अनावृष्टि के कारण सम्पूर्ण खेती चौपट हो जावेगी।

पाँच रवि मासे पाये।
झराय किम्बा खराय जाय॥४॥

जिस वर्ष एक महीने में पाँच रविवार हों उस वर्ष अतिवृष्टि या अनावृष्टि से खेती नष्ट हो जावेगी।

चैत्रे तेरे शनिर घरे। काठार फसल कुडोय घरे ॥५॥

जिस वर्ष चैत में तेरस को शनिवार पड़े उस वर्ष एक बीघे जमीन में एक कोठिला अन्न होगा अर्थात् बहुत कम अनाज पैदा होगा।

पाँच शनि पाय मीने।
शकुनि मांस ना खाय घृणे ॥६॥

जिस वर्ष चैत मास में पाँच शनिवार हों उस वर्ष बहुत मनुष्य मरेंगे और कौवे भी घृणा के कारण नरमांस न खायेंगे।

मधुमासे प्रथम दिवसे हये जे जे वार,
रवि चोषे, मंगले वर्षे, दुर्भिक्ष है बुधवार।
सोम शुक्र गुरुवार, पृथिवी ना बय शस्येर मार ॥७॥

चैत के महीने का पहला दिन यदि इतवार हो तो अनावृष्टि, मंगलवार हो तो सुवृष्टि हो, बुधवार हो तो दुर्भिक्ष हो, शुक्र और बृहस्पति होने से पृथ्वी शस्य का भार न बहन करे अर्थात् खूब फसल हो।

डाक दिया वले महिरेर स्त्री शुन पतिर पिता,
भाद्र मासे जलरे माझे नड़ेन वसुमाता।
राज्यनाश, गोनाश, हये अगाध बान,
हाते काठाग्ही फेरे किन्तु ना पाय धान ॥८॥

खना अपने ससुर से कहती है, 'भादों महीने में पानी के बीच पृथ्वी काँप जाने से महा अमङ्गल होता है, मनुष्यों के मरने से राज्यनाश, गोनाश और ऐसा दुर्भिक्ष आता है कि गृहस्थ द्वार-द्वार भिक्षा पात्र लिये घूमते रहने पर भी एक मुट्ठी भिक्षा नहीं पाता।

आमे धान, तेंतुले वान ॥९॥

अधिक आम जिस साल हों उस साल अच्छा धान होगा और जिस साल इमली अधिक हो उस वर्ष बाढ़ आवेगी।

यदि न देखे अघाने वृष्टि, तबे ना हबे काँठाले सृष्टि। १०॥

जिस वर्ष अगहन में वृष्टि न होगी उस वर्ष कटहल नहीं फलेगा।

आंधी और वर्षा का ज्ञान

चैते थर थर वैसाखे झड़ पाथर।
ज्येष्ठे तारा फूटे, तबे जानबे वर्षा बटे ॥११॥

जिस वर्ष चैत में शीत हो, बैसाख में आंधी आवे और पत्थर पड़ें तथा ज्येष्ठ के महीने में आकाश साफ रहें उस वर्ष वर्षाकाल में प्रचुर पानी बरसेगा।

कि कर श्वसुर लेखा जोखा, मेघेइ बुझबे जलेर लेखा।
कोदाले कुडुले मेघेर गा, माझे दिच्छे बा ॥
चाषाके बलगे बांधते आल,
आज न हये हबे काल ॥१२॥

खना अपने ससुर से कहती है यदि बादल टुकड़े-टुकड़े हो जायँ और बीच बीच हवा बहे तो समझना चाहिये कि शीघ्र ही वर्षा होगी। ऐ कृषको अपने-अपने खेतों में मेंड़ बाँधना प्रारम्भ कर दो क्योंकि यदि आज न बरसा तो कल अवश्य बरसेगा।

आषाढ़े नवमी शुक्ल पारवा, किकर श्वसुर लेखा जोखा।
यदि बरसे मूसलधारे माझ समुद्रे बगा चरे।
यदि बरसे छिटे फोंटा, पर्वते है मीनेर घटा ॥
यदि बरसे निमि झिमि, शस्येर भार ना सय मेदिनी।
हेसे चाकि बसे पाटे, चाबार गरू बिकाय हाटे ॥१३॥

यदि अषाढ़ की शुक्ला नवमी को मूसलाधार पानी बरसे तो खना कहती है कि हे श्वसुर बिना सोचे विचारे समझना चाहिये कि, उस वर्ष अनावृष्टि से समुद्र भी सूख जायेंगे। यदि उस दिन थोड़ा पानी बरसे तो उस साल भीषण वर्षा होगी और खूब मछली पैदा होगी। यदि मन्द-मन्द वर्षा हो तो सुवृष्टि के कारण प्रचुर शस्य होगी और यदि उस दिन सूर्यास्त के समय आकाश साफ हो और सूर्य हँसते-हँसते डूबे हों तो बिल्कुल खेती न होगी। उस वर्ष किसान को अपने पशु बाजारों में बेच कर अन्न इकट्ठा करना पड़ेगा।

पौष गरमि, बैसाख जाड़ा,
प्रथम असाढ़े भरबे गाड़ा।
खना बले, सुनो हे स्वामी,
सावन भादर नाइको पानी ॥१४॥

खना अपने पति से कहती है कि सुनो, "जिस वर्ष पूस में गर्मी और बैसाख में जाड़ा लगे और अषाढ़ लगते ही सब गड्ढे भर जायँ तो यह समझना चाहिये कि सावन भादों फिर पानी न बरसेगा।"

भादरे मेघे विपरीत बाय, से दिन वृष्टिके घुचाय ॥१५॥

यदि भादों में आकाश में मेंघ घिर आवें और उलटी हवा चले तो समझना चाहिये कि खूब पानी बरसेगा।

यदि बरसे आघने, राजा जान मागने।
यदि बरसे पुषे, कड़ि है तुषे॥
यदि बरसे माघेर शेष धन्य राजार पुण्य देश।
यदि बरसे फाल्गुन, चिना काउन द्विगुने ॥१६॥

यदि अगहन में पानी बरसे तो राजा पागल हो जावेगा और यदि पूस में बरसा तो चीजों के दाम बढ़ जावेंगे। यदि माघ के अन्त में पानी बरसे तो उस राजा का देश धन्य है।

पूर्बेते उठिले काँड, डाम्बा डोबा एकाकार ॥१७॥

पूर्व में यदि इन्द्रधनुष दिखाई पड़े तो शीघ्र ही वर्षा होगी और ऊँचे तथा नीचे स्थान पानी से भर कर एक समान हो जावेंगे।

पश्चिमेर धनु नित्य खरा, पूर्वेर धनु वर्षे भरा ॥१८॥

पश्चिम में इन्द्रधनुष दिखाई पड़ने से अनावृष्टि तथा पूर्व में दिखाई पड़ने से अतिवृष्टि की सूचना मिलती है।

चाँदरे सभा मध्ये तारा, पानी बरसे मूसलधारा।
दूर सभा निकट जल, निकट सभा रसातल ॥१९॥

यदि चन्द्रमा से सभा दूर हो तो शीघ्र ही पानी बरसेगा और यदि निकट हो तो अनावृष्टि।

नोटः—सभा, चन्द्रमा के चारों ओर दिखाई पड़ने वाला मण्डल है जो चक्रवात-वर्षा का द्योतक है।

प्रथम बर्भरे ईशाने बाय। हबेई वर्षा खनाय कै ॥२०॥

खना कहती है कि यदि वर्षा प्रारम्भ होते समय ईशान कोण से हवा चले तो उस वर्ष प्रचुर वर्षा होगी।

व्यांग डाके घन घन। शीघ्र वृष्टि हवे जेनो ॥२१॥

अगर मेढक जोर जोर से बोलें तो समझना चाहिये कि शीघ्र ही पानी बरसेगा।

माघ मासे बरसे देवा। राजा छेड़े प्रजार सेवा ॥२२॥

जिस वर्ष माघ में वर्षा हो उस वर्ष अच्छी खेती होने के कारण प्रजा का सम्मान राजा से भी अधिक होगा।

पौषेर कुया, वैसाखे फल, य दिन कुया त दिन जल।
शनिर सात, मंगलेर तिन, आर सब दिने दिन ॥२३॥

पूस में जितने दिन कुहरा पड़े उतने दिन बैसाख में पानी बरसेगा। यदि शनिवार से पानी बरसना प्रारम्भ हो तो सात दिन तक बरसेगा; दूसरे दिन वर्षा आरम्भ होने से उसी दिन पानी बरस कर रह जावेगा।

पूर्ण अषाढ़ दक्षिणा बय। सेइ वत्सर वन्या हय।
ज्येष्ठे सुखा अषाढ़े धारा। शस्येर भार न सहे धरा।
चैत्रे वृष्टि नाशे रिष्टि। चाषार खेते शुभ दृष्टि।
ज्येष्ठे खरे अषाढ़े झरे। केटे मेड़े गोलाय भरे ॥२४॥

यदि पूरे अषाढ़ भर दक्खिनी हवा चले तो उस वर्ष बाढ़ आती है। अगर ज्येष्ठ में सूखा पड़े और अषाढ़ में पानी बरसे तो पृथ्वी में बहुत फसल होगी। अगर चैत में पानी बरसे तो विनाश की सम्भावना हट जाती है और खेती पर अच्छी निगाह हो जाती है। यदि ज्येष्ठ में सूखा पड़े और अषाढ़ में पानी बरसे तो किसान काट मांड़ कर अपनी खत्ती भर लेता है।

चैते कुया भादरे बान। नरेर मुंड गड़ागड़ि यान ॥२५॥

यदि चैत्र में कुहरा पड़े और भादों में बाढ़ आवे त चारों ओर मुर्दे ही मुर्दे दिखेंगे।

बादल, बामुन, बान। दक्षिणा पेलेइ यान ॥२६॥

जिस तरह दक्षिणा पा जाने पर ब्राह्मण नहीं रुकता—चला जाता है उसी प्रकार बादल और बाढ़ भी दक्षिणी हवा चलने पर नष्ट हो जाती हैं।

खेती की सफलता

धान

यदि बरसे मकरे, धान हबे टिकरे ॥२७॥

यदि मकर यानी माघ में पानी बरसे तो ठीकर (ऊँची भूमि में) में भी धान पैदा होगा।

करकट छुरकट सिंह शुका कन्या काने कान।
बिना व्यर्थ वर्षे तुला कोथा राखबि धान ॥२८॥

करकट अर्थात् अषाढ़ महीने में, छुरकट अर्थात् प्रचुर वृष्टि हो, सिंह अर्थात् भादों में, कन्या अर्थात् कुवांर में काने कान अर्थात् यथेष्ट वर्षण हो एवं तुला अर्थात् कार्तिक में हवा न बहे और धीरे-धीरे वर्षा हो तो प्रचुर धान पैदा होगा।

यदि है चैते वृष्टि तवे है धानेर सृष्टि।
कार्तिक ऊन जले। खना बले धान दूनो फले ॥२९॥

खना कहती है कि कार्तिक महीने में यदि हवा न चले और थोड़ी-थोड़ी वृष्टि हो तो हेमन्तिक धान दूना पैदा होगा। चैत में पानी बरसने से अच्छी धान की खेती होगी।

दिने रोद रेते जल दिन बाडे धानेर बल।
वैशाखेर प्रथम जले, आउश धान्य द्विगन फले।
खना बले सुन भाइ, तुलाय तुला अधिक पाई ॥३०॥

अगर दिन में धूप और रात में पानी हो तो दिनों-दिन धान बढ़ेगा। खना कहती है कि यदि बैसाख के प्रारम्भ में पानी बरसे तो औस धान दुगुना पैदा होगा और यदि कार्तिक मास में अच्छी तरह पानी बरसे तो कपास अधिक होगी।

खना बले सुन कृषक गण,
हाल लये माठे जावे यखन।
शुभ चण देखे करिबे यात्रा,
पथे जेन ना हय अशुभ वार्ता ॥३१॥

खना कहती है कि हे किसानो! शुभ लक्षण देखकर खेत की यात्रा करनी चाहिये और रास्ते में अशुभ वार्ता न करनी चाहिये।

आगे गिये करो दिक् निरूपण,
पूर्वादिक हते कर हल चालन।
ताहा हले तोर समस्त आशय,
हइबे सकल नाह्कि संशय।
बाप बेटाय चाष करा चाइ,
ता अभावे सहोदर भाइ ॥३१॥

खेत में पहुँच कर पहले दिशा का निर्णय करो फिर पूर्व से हल जोतना शुरू करो तब तुम्हारा मनोरथ सफल होगा, इसमें सन्देह नहीं। पिता और पुत्र को साथ-साथ खेती करनी चाहिये; नहीं तो अपने सगे भाई को साथ ले लेना चाहिये।

अमा पूर्णिमाय ये धरे हाल,
तार दु:ख चिरकाल।
तार ।बल देर है बात,
नाहि थाके घरे भात।
खना बले सुन आमार बानी,
ये चखे तार प्रमाद गनि ॥३२॥

खना कहती है कि पूर्णिमा और अमावस्या को हल जोतने से सदा दु:ख रहता है। बैलों के गठिया रोग हो जाता है और घर में खाने को अनाज नहीं रह जाता। अत: हमारी वाणी सुनो, जो जोतता है वह प्रमादी ही है।

आछे बलद ना बय हाल, तार हा भात चिरकाल।
आउशेर भुँइ बेले, पाटार भुँइ आटाले ॥३३॥

जिसके पास अच्छे हल नहीं हैं और जो हल नहीं जोतता वह सदा भूखा रहता है। भुरभुरी मिट्टी में औस किस्म का धान होता है और पिसान जैसी चिकनी मिट्टी में पाट (जूट) अच्छा होता है।

मानुष मरे याते, गाछला सारे ताते।
पचला साराय गाछला सारे,
गोंधला दिये कानुष मारे ॥३४॥

जिन गन्दी वस्तुओं से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है और मृत्यु होती है उन्हीं से पेड़ फलते-फूलते हैं। सड़ी हुई चीजों से पेड़ की बाढ़ अधिक होती है लेकिन इन्हीं गन्दी चीजों से मनुष्य की मृत्यु हो सकती है।

धान लगाने की विधि

आउश धानेर चाष, लागे तिन मास।
कोल पातला डागर गुछि,
लक्ष्मी बलेन ऐखाने आछि ॥३५॥

औस धान तीन माह में तैयार हो जाता है। फासला रख कर लगाने से जड़ें मोटी होंगी। लक्ष्मी जी का कहना है कि वे ऐसी जगहों में ही रहती हैं अर्थात् अधिक खेती उपजेगी।

श्रावणेर पूरो भादरेर बारो। एर मध्ये यत पार ॥३६॥

पूरा सावन एवं भादों के बारह दिन तक धान लगाने का ठीक समय है। इस बीच में धान लगाने से अच्छी खेती होगी।

आषाढ़े काड़ान् नाम्के। श्रावणे काड़ान धान के।
भाद्रे काड़ान् शीषके। आश्विने कोड़ान किस्के ॥३७॥

अषाढ़ में लगाने से सामान्य फल होगा, सावन में अधिक धान, भादों में केवल सुइयाँ निकल कर रह जावेंगी और कुंवार में लगाने से कुछ भी पैदा न होगा।

आषाढ़े पंचम दिने, रोपण जे करे धाने।
सुखे थाके कृषिवल, सकल आशा हैं सफल ॥३८॥

अषाढ़ के पहिले पाँच दिनों में ही धान लगा लेने से प्रचुर शस्य होगी और कृषकों की सारी इच्छायें पूरी होगीं तथा सुख मिलेगा।

धान की कटुई

थोड़ तिरेशे, फूलों बिमे, धोंड़ा मुखो तेरो दिन।
गुंजके ध्योंके भूके रेखे, या दिगे यार आछे हीन ॥३९॥

धान के पेड़ लगाने के तीस दिन बाद उसमें बालें लग जाती हैं इसके बीस दिन बाद बालें झुक जाती हैं जिसके १३ दिन बाद बालें काटने के उपयुक्त हो जाती हैं। इस प्रकार से धान के पेड़ की उम्र गिनकर दो एक दिन आगे पीछे काटने से अच्छा होगा।

शीश देखे बिश दिन। काटते माड़ते दश दिन ॥४०॥

बालें आने के २० दिन बाद धान के काटने का समय आता है और दश दिन बाद काट माँड़ कर घर ले जाया जाता है।

आघने पौटी, पौषे छेउटी।
माघे नाड़ा फाल्गुने फांड़ा ॥४१॥

अगहन में धान काटने से पूरा पूरा धान मिलेगा, पूष में काटने से छः आने, माघ में काटने से नाम मात्र और फाल्गुन में समस्त फसल झर कर नष्ट हो जायेगी।

जोतने के नियम

शोल चाखे तलो, तार अर्घ के मूलो
तार अर्ध के धान, बिना चारखे पान ॥४२॥

कपास के खेत को १६ बार जोतना चाहिये, मूली के खेत को ८ बार, धान के खेत को ४ बार किन्तु पान की खेती में जुताई की आवश्यक नहीं।

खना डेके बले जान। रोदे धान, छायाय पान ॥४३॥

खना चिल्लाकर कहती है कि जानो—धूप से धान की वृद्धि और छाया से पान की वृद्धि होती है।

एक आघने धान। तीन शाउने पान ॥४४॥

साल में धान एक ही बार होगा किन्तु साल में पान के तीन धान टूटेंगे।

मूली और ईख

खना बले सुन सुन। शरतेर शेषे मूला बुन।
मूलार भुइँ तुला कुशरेर भुइँ धुला ॥४५॥

खना कहती है सुनो सुनो "शरद ऋतु के अन्त में मूली बोओ। मूली के खेत की मिट्टी रुई की भाँति और ईख के खेत की मिट्टी धूल के समान मुलायम बनाना चाहिये।

पान

पान पोंते शाउने। खेले ना फुराय रावने ॥४६॥

सावन के महीने में पान की खेती करने से वह राक्षसों के भी न खाये चुकेगी।

सरसों, राई और कपास

घन सरिषा पातला राइ। नेगे कापास जाइ ॥४७॥

सरसों को घन, राई को पतला और कपास को दूर-दूर करके बोना चाहिये।

विभिन्न फसलें

खना बले चाषार पो। शरतरे शेषे सरिषा रो।
फाइरेर चारि आश्विनेर चारि।
कलाइ रोवे यत पारि ॥४८॥

खना कहती है कि ऐ किसान के बच्चो ! शरद ऋतु के अन्त में भादों के आखिरी चार दिनों में और कुंआर के पहले चार दिनों में (इन्हीं ८ दिनों में) सरसों बोना चाहिये।

आश्विनेर उनिश कार्तिकेर उनिश।
बाद दिये पारिस मटर कलाइ बुनिस ॥४६॥

कुआंर के अन्तिम और कार्तिक के प्रथम उन्नीस दिनों को छोड़ कर मटर और उर्द बोने पर अच्छी फसलें होंगी।

सरिषा बुने कलाइ मूंग। बुने बेहाड़ चापड़े बुक ॥५०॥

सरसों और उरद मूंग एक साथ बोने से अच्छी फसलें होंगी जिससे तुम छाती निकाल कर चल सकोगे।

कोदाले मान, तिले हाल। कातेन फाँका, माघे काल ॥५१॥

मान को कुदाल से खोदो और तिल के लिये हल से जोतो। कातिक में सफेद तिल और माघ में काला तिल होगा।

हले फूल, काटो शोना। पाट काटिले लाभ द्विगुना।
पौषर मध्ये धाने लाका। खना बले द्विगुणेर जाफा ॥५२॥

जब सन में फूल आवे तो उसे काट लेना चाहिये इसी तरह पाट (जूट) काटने से दूना लाभ होता है खना कहती है कि पूष के मध्य में धान काटने से दुगुना लाभ होता है। ऐसा न करने से हानि होगी।

तामाक बुन गुंड़िये माटि,
बीज पोंतो गुटि गुटि।
घन करे पुतो ना,
पौषेर अधिक रेखो ना ॥५३॥

मिट्टी को महीन करके तम्बाकू के बीज, एक साथ कई, बोना चाहिये और बीजों को फासले पर बोओ और पूस के अन्दर ही तम्बाकू काट लेना चाहिये।

छाइये लाउ, उठाने झाल,
कर वापु चाषार आउयाल।
थाके यदि टाकार गों,
चैत्र मासे भुट्टा रो ॥५४॥

जहाँ राख डाली जाय वहाँ लौकी का पेड़ बोना चाहिये और आँगन में मिर्च का पेड़। चैत्र के मास में भुट्टा बोओ तो काफी धन मिलेगा।

पटोल बुनले फाल्गुने,
फल बाड़े द्विगुणे।
शोन रे वापु चाषार वेटा,
माटिर मध्ये वेले जेटा।
ताते यदि बुनिस पटोल,
ताते तोर आशा फल ॥५५॥

फागुन में परवल बोने से दुगुने फल लगेंगे अत: ऐ किसान के लड़के सुन ! मिट्टियों में जो भुरभुरी हो तो उसमें परवल बोने से तुम्हारी आशा सफल होगी।

बले गेछे बरोहर पो,
दशटि मास वेगुन रो।
चैत्र बैसाख दिवे वाद,
इथे नाहि कोन बाद।
धरले पोका दिवे छाइ,
एर चेये भाल उपाय नाइ।
माटि शुकाले ढालबे जल,
सकल मासे पाबि फल ॥५६॥

बराह की पुत्रवधू खना कहती है कि चैत्र बैसाख छोड़ कर बाकी दस महीने बैंगन लगा सकते हो। इनमें कोई भी महीना न छोड़ो। अगर पेड़ में कीड़े लग जायँ तो राख छोड़ दो क्योंकि इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं। यदि पृथ्वी सूखने लगे तो पानी से सींचो जिससे सभी महीने बैंगन फले।

फाल्गुने ना रुले ओल,
शेष हय गन्डगोल।
छायार ओल चुलकाय,
मुख किन्तु ताहे नाहिक दुख ॥५७॥

यदि फागुन में सूरन न बोया गया तो गड़बड़ समझो। छाया में सूरन बड़े होते हैं किन्तु गले में खाने से खुजलाहट होती है लेकिन दुख की बात नहीं।

कचुवने छड़ाले छाइ,
खना बले तार संख्या नाइ।
नदीर घारे पुतले कचु,
कचु है तीन हात उचू। ५८॥

खना कहती है कि अरुई के खेत में राख छोड़ने से बड़ी पैदावार होगी। नदी की रेती में अरुई बोने से तीन तीन हाथ लम्बी अरुइयाँ होंगी।

बैसाखे ज्येष्ठ हलुद रोओ,
दाबा पाशा फेलिये थोओ।
आषाढ़ श्रावणे निड़ाये नाटि,
भाद्रे निड़ाये करबे खाटि।
अन्य नियमे पुतले हलदि,
पृथिवी बलेन ताते फलदि ॥५६॥

बैसाख-जेठ में हल्दी बोओ। समय न गँवाओ। अषाढ़ सावन में उसे निराओ। भादों में और निरा दो तो बहुत अच्छा। दूसरे नियम से यदि हल्दी बुवाई गई तो धरती कहती है कि मैं उसमें फल न लगने दूंगी।

उठान भरा लाउ शशा,
खन बले लक्ष्मीर दशा ॥६०॥

लौकी खीरा गृहस्थी के लिये उपयोगी हैं। जिसके घर लौकी खीरा है वहाँ लक्ष्मी है अतः जगह न हो तो आँगन में ही बोओ।

लाउ एर बल माछेर जल,
धेनो माटी ते झाल प्रबल ॥६१॥

लौकी में मछली का धोंवन डालने से अच्छी फसल होती है और धनिया वाले खेत में मिर्चा।

भादरे आश्विने ना रुये झाल,
ये चाषा घुमाये काटाय काल।
परेते कार्तिक आघन मासे,
बुडो गाछ चेते पूते आसे।
से गाछ मरिबे धरिये ओला,
पूरते ना हवे झालेर झोला ॥ ६२

भादों और कुवांर में आलस्यवश यदि मिर्चे का पेड़ न काटा गया तो कार्तिक अगहन में काटने से कुछ न होगा क्योंकि ओले से पेड़ नष्ट हो जावेंगे अतः किसी काम में आलस्य न करें।

चाल भरा कुमड़ा पाता,
लक्ष्मी बले आमि तथा ॥६३॥

जिसके घर में कुम्हड़े का पेड़ है वहाँ लक्ष्मी बास करती है।

शोन रे बापु चाषार पो,
सुपारि बागे मान्दार रो।
मान्दार पाता पड़ले गोड़े,
फल बाड़े चटपट करे।
गोये गोबरे बाँसे माटी,
अफला नारिकेल शिकड़ काटि।
ओल कुटि माने छाइ
एइ रूपे कृषि करगे भाइ ॥६४॥

ऐ किसान के लड़के सुन! सुपारी के बाग में मदार का पेड़ बोना चाहिये। जड़ों में मदार के पत्ते पड़ने से सुपारी के फल जल्दी बढ़ते हैं। इसमें गोबर की खाद भी डालनी चाहिये। बाँस की जड़ों को मिट्टी से ढक देना चाहिये। जिस नारियल के पेड़ में फल न लगे उसकी थोड़ी जड़ काटने से फल लगेंगे। सूरन के पेड़ में कूड़ा-करकट डालना चाहिये और मीठे आलू में राख डालनी चाहिये।

नारिकेल बारो सुपारि आट,
एर घन तखन काट ॥६५॥

नारियल के पेड़ १२ हाथ पर और सुपारी के पेड़ ८ हाथ की दूरी पर होने चाहिये। इससे अधिक घने होने पर पेड़ काट डालना चाहिये।

दातार नारिकेल कृपणेर बांश,
कमे ना बाड़ो बारो मास।
फाल्गुने आगुन चैते माटि,
तवे बांशेर परिपाटी।
शुन बाबू चाषार बेटा,
बाँश झाड़े दाउ धानेर चिटा।
हाते हात छोय ना,
मरा झाटि वय ना।

खना बले यखन चाय,
तखन केन लय ना ॥६६॥

नारियल का पेड़ दानी तुल्य है जिसमें बारहों महीने फल लगते रहते हैं अतः अधिक फल लगने से कुछ काट लेने पर वे बढ़ने लगते हैं। बांस का पेड़ कंजूस की तरह है जिसे जित कम काटिये उतना ही बढ़ता है। फागुन में बाँस के नीचे के कूड़े-करकट में आग लगा देनी चाहिये। चैत में बाँस के चारों ओर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये तब पेड़ अच्छी तरह बढ़ेंगे। ऐ किसान के लड़को, बाँस की जड़ों में धान बो देने से जड़े बढ़ेंगी और नये किल्ले फूटेंगे। नारियल के पत्तों को परस्पर न छूना चाहिये। यदि कोई डाल सूख जाय तो काट दो, नहीं पेड़ खराब हो जावेगा। तब फल न लगेंगे।

नारिकेल गाछे लुने माटी,
शीघ्र शीघ्र बांधे गुटी।
खना डाक दिये बले,
चिटा दिले नारिकेल मूल।
गाछु है ताजा मोटा,
शीघ्र शीघ्र धरे गोट ॥६७॥

नारियल के पेड़ में लोना मिट्टी डालने से जड़ें मजबूत होती हैं। नारियल की जड़ों में धान की भूसी देने के पेड़ ताजा मोटा होगा और जल्दी ही फल लगेंगे।

वाँश बने बुनले आलु है काछु बेडालु ॥६८।

बांस के जंगल में आलू बोने से पेड़ बढ़ते हैं और बड़े बड़े आलू होते हैं।

किकर स्वसुर खेटे,
फाल्गुन एँटे पोंत केटे।
बेधे याबे झाड़के झाड़,
कला बइते मांगबे घाड़।
यदि पोत फाल्गुने कला,
तबे हबे मास फसला ॥६९॥

दामाद अपने ससुर से कहता है कि फागुन में केले के पेड़ को तने से काट कर मिट्टी से खूब दबाकर लगाना चाहिये। तब पेड़ से गुच्छे के गुच्छे लटकेंगे और उसके वजन को पेड़ नहीं सहन कर पायेगा और प्रत्येक महीने केले लगेंगे।

सात हाते तिन बिघते,
कला लागावे ये पुते।
लागिये कला केटना पात,
तातेइ कापड़ तातेइ भात ॥७०॥

सात हाथ फासले पर और तीन वालिस्त गहराई पर एक बड़ा केला और एक छोटा का पेड़ (बीज) लगाओ। उसके पत्ते न काटो। ऐसा करने से उसी से कपड़े और भोजन मिलेंगे।

डाक छाड़े बले रावण,
कला लगावे आषाढ़ श्रावण।
तिन शत षाट कल रुये,
थाक गृहस्थ घरे शुये।
रुये कला ना काट पात,
तातेइ हबे कापड़ भात ॥७१॥

आषाढ़ सावन में केले का पेड़ लगाओ किन्तु पत्ते न काटो। ३६० केले के पेड़ जो लगा लेगा उसे अन्न वस्त्र की चिन्ता न रहेगी।

विज्ञान, अप्रैल १९५८,
पृ० १३-१५

पारमाणविक भट्ठी

[डा० रमा शंकर सिंह पी-एच० डी०, फिजिक्स विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय]

हम लोग परमाणु-युग में रहते हैं। इस समय पारमाणविक-शक्ति का उपयोग मानव-हित के लिये किया जा रहा है। संसार इस शक्ति को ऐटम-बम के रूप में पहले देख चुका है। अब प्रश्न इस बम को नियंत्रित करके इस शक्ति का उपयोग शान्तिमय कामों के लिये करने का है। पारमाणविक भट्ठी द्वारा यह नियंत्रीकरण एवं उपयोग संभव है। इस संबंध में यह जानकर संतोष होता है कि हिन्दुस्तान ने भी एक पारमाणविक योजना बनाई है और उस पर अमल भी हो रहा है। बंबई के निकट ट्रांबे में जाने पर जहाँ भारत-सरकार की ओर से परमाणु केन्द्र की स्थापना की गई है बड़ी आशा बँध जाती है। वहाँ पर यहां की तैराकी भट्ठी (स्विमिंग पूल रीऐक्टर) लगभग एक वर्ष से काम कर रही है। दूसरी भट्ठी जो कनाडा के सहयोग से बन रही है शीघ्र तैयार हो जायेगी। संसार के अन्य उन्नतिशील देश तो इस दिशा में बहुत आगे बढ़ गये हैं। निकट भविष्य में मानव जाति को इन प्रयासों से बड़ा लाभ होगा।

जब हम पारमाणविक शक्ति की चर्चा करते हैं तो प्रश्न उठता है कि इस शक्ति के पीछे कौन सा रहस्य है यह शक्ति यूरेनियम और थोरियम के कुछ विशेष प्रकार के परमाणुओं को न्यूट्रन द्वारा आघात पहुँचाने के फल स्वरूप मिलती है। परमाणु केन्द्र इस आघात द्वारा विचलित हो विघटित हो जाता है और इस क्रिया में न्यूट्रन बड़ी गतिशील अवस्था में बाहर निकलते हैं। ये गति-शील न्यूट्रन धीमा करके तापीय न्यूट्रन बना लिये जाते हैं, इस प्रकार यह क्रिया फिर जारी रहती है। साथ ही धीमा करने में तथा इस क्रिया के साथ जो शक्ति मिलती है वह ताप के रूप में बदल जाती है और यह ताप शक्ति फिर शीतलीकरण क्रिया से विद्युत में बदल ली जाती है जो अन्य प्रकार के कामों के लिये सुलभ हो जाती है।

यह तापीय न्यूट्रन जिनकी गति कम होती है परमाणु विघटन की बड़ी क्षमता रखते हैं। इसीलिये विघटन के पश्चात् प्राप्त हुये गतिशील न्यूट्रन को धीमा या तापीय न्यूट्रन बना लेते हैं। इनको धीमा करने के लिये गत्याव-रोधक (माडरेटर) की आवश्यकता पड़ती है जो दो वस्तुओं के टक्कर खाने के सिद्धान्त पर काम करते हैं। इस प्रकार हल्के तत्व इसके लिये अधिक उपयोगी हो सकते हैं, किन्तु वह न्यूट्रन का शोषण भी करते हैं इस लिये वे आदर्श गत्यावरोधक नहीं हो सकते। फिर भी गत्यावरोधक हल्के तत्व ही होते हैं जो ठोस या द्रव की दशा में प्रयुक्त होते हैं। नीचे दी गई तालिका (१) के द्वारा एक मिलियन एलेक्ट्रन वोल्ट वाले न्यूट्रन के वास्ते गत्यावरोधक मूल्या का पता चल जाता है।

तालिका (१)

तत्त्व	हाइड्रोजन	ड्यूटरान	हीलियम	बेरिलियम	कार्बन	आक्सीजन
भार संख्या	१	२	४	६	१२	१६
शक्ति ह्रास प्रति टक्कर	०·६३	०·५२	०·३५	०·१८	०·१४	०·११
तापीयकरण के लिये टक्करों की संख्या	१८	२५	४२	६०	११४	१५०
शोषण क्षेत्र	०·३	०·००१	०·०	०·०१	०·००५	०·००२

इस तालिका से प्रगट है कि आदर्श गत्यावरोधक हीलियम हो सकता है क्योंकि यह न्यूट्रन का शोषण नहीं करता, किन्तु इसके वास्ते तापक्रम बहुत कम होना चाहिये, इस लिये यह अव्यवहार्य है। बाकी चीजों में भारी पानी के रूप में ड्यूटरान, बेरिलियम और कार्बन उपयुक्त जान पड़ते हैं। आम तौर पर भारी पानी और ग्रेफाइट का उपयोग गत्यावरोधक के तौर पर होता है। अपेक्षाकृत बेरिलियम कम मिलता है इसलिये इसका अधिक उपयोग नहीं होता, किन्तु हिन्दुस्तान में यह प्राप्य है इसलिये इसके ऊपर प्रयोग किया जा रहा है और सम्भव है आगे इसका उपयोग यहाँ पर इस काम के लिये हो। जहाँ तक भारी पानी का सम्बन्ध है, इसकी गत्यावरोधक शक्ति हल्के पानी को छोड़ कर सब से अधिक है। इसकी अच्छी गत्यावरोधक शक्ति और साथ ही साथ न्यून शोषण क्षेत्र के होने से इसका गत्यावरोधक अनुपात (गत्यावरोधक शक्ति शोषण क्षेत्र) किसी भी अन्य चीज से कहीं ज्यादा है। इस तरह, भारी पानी ही केवल ऐसा गत्यावरोधक है जिसका विचार गम्भीरता पूर्वक किसी क्षमता शील शक्ति उत्पादक भट्ठी में किया जा सकता है। फिर भी इसका अधिक मूल्य इस मार्ग में सब से बड़ा बाधक हो सकता है।

दूसरी आवश्यक वस्तु भट्ठी में शीतली कारक (कूलैंट) की होती है। इसी के द्वारा ताप का विनिमय सम्भव है। शीतली करण की क्रिया गैस द्वारा पिघली धातु द्वारा अथवा पानी आदि द्वारा कीजाती है इसके द्वारा भट्ठी का सारा ताप बाहर किसी विद्युत संचालक इंजिन को चलानेके लिये किया जा सकता है यह शीतलीकारक सक्रिय किरणों द्वारा प्रभावित हो जाता है, इसलिये इसके प्रति काफी सावधानी बरती जाती है।

प्राकृतिक यूरेनियम में केवल ०·७२ प्रतिशत यूरेनियम२३५ पाया जाता हैं जो भट्ठी का मुख्य ईंधन है। ईंधन से तात्पर्य यहाँ विघटित होने वाले ऐसे पदार्थ से है जो शक्ति का उद्गम बन सके और साथ ही न्यूट्रन का भी उद्गम हो जिससे भट्ठी की लगातार कार्यवाही जारी रह सके। यूरेनियम२३३ और प्टोनियम२३९ भी ईंधन का काम देते हैं कुछ ऐसे भी पदार्थ है जो स्वतः तो ईंधन नहीं हैं किन्तु ईंधन में बदले जा सकते हैं। ऐसे पदार्थों को उत्पादक (फरटाइल) पदार्थ कहते हैं। यूरेनियम२३८ और थोरियम२३२ इसी प्रकार के उत्पादक हैं। भट्ठी में ईंधन का ही प्रयोग होता है किन्तु ऐसी भट्ठियाँ भी हैं जिनमें उत्पादक पदार्थों का प्रयोग कर ईंधन बनाने का क्रम भी साथ ही साथ जारी रहता है।

भट्ठी में ईंधनों को इस प्रकार रखा जाता है कि परिचालन की अवस्था प्राप्त हो सके। परिचालन की अवस्था उस समय मिलती है जब न्यूट्रन का श्रंखलाबद्ध उत्पादन जारी रह सके। इसके वास्ते ऐसे यंत्र रहते हैं जो ईंधन और कन्ट्रोलर को भट्ठी में आवश्यकतानुसार डाल सकते हैं या बाहर निकाल सकते हैं। कन्ट्रोलर ऐसे पदार्थ की छड़ें हैं जो न्यूट्रन शोषक होते हैं। कैडमियम की छड़ें विशेषतया इसके लिये प्रयोग में लाई जाती हैं। जब भट्ठी का कार्य बन्द करना हो तो कन्ट्रोलर छड़ों का जाल ईंधन छड़ों के इर्द-गिर्द बैठा दिया जाता है जिससे न्यूट्रन का शोषण हो जाय और श्रंखला टूट जाय। भट्ठी ईंधन और कन्ट्रोल छड़ों का आकार और ज्यामिति कई बातों पर निर्भर है जिसको पहले से तय कर किया जाता है। उदाहरण के तौर पर, हमारे स्विमिंग पूल रीऐक्टर 'अप्सरा' के लिए एक कमरा १०० फीट लम्बा, ५० फीट चौड़ा और ७० फीट ऊँचा बनाया गया है। बीच में भट्ठी २८ फीट लम्बी १० फीट चौड़ी और २८ फीट गहरी है जिसकी दीवार ८½ फीट चौड़ी है। इसको पानी से भर कर इसमें भट्ठी का मूल भाग तैराया जाता है, इसीलिये इसका नाम स्विमिंग पूल रीऐक्टर या तैराकी भट्ठी है। तह मूल भाग २ फीट घन है जो एक ट्राली से लटकता है और स्नानागार में रेल पर चलता है। इस मूल भाग में २५ से ३० तक ईंधन तत्व लगे होते हैं जिसमें विघटनीय पदार्थ यूरेनियम२३५ रहता है। अल्युमिनियम यूरेनियम२३५ ऐल्वाय की पट्टियों को अल्यूमिनियम की पट्टियों के बीच बीच में रखते जाते हैं। ईंधन तत्त्वों को अपने स्थान पर रखा जा सकता है या बाहर निकाला जा सकता है जिसके वास्ते ट्राली से अल्युमिनियम की छड़ें लटकाई गई हैं। इस भट्ठी में पानी को शीतलीकरण के लिये तथा गत्याव-

रोधक के तौर पर प्रयोग किया जाता है। इसमें कई एक बचाव के भी उपाय रखे गये हैं।

भट्ठियां कई प्रकार की हो सकती हैं। इसका कारण यह है कि किसी भी भट्ठी में आवश्यकीय वस्तु ईंधन है और ईंधन कोई लिया जा सकता है। इसी प्रकार शीतलीकरण के लिये कई पदार्थ हैं जिनमें एक का प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार कई गत्यावरोधकों में एक चुना जा सकता है। इस प्रकार ईंधन, उत्पादक, न्यूट्रन शक्ति शीतलीकारक, ज्यामिति तथा गत्यावरोधक का कोई एक मेल एक भट्ठी में हो सकता है। तालिका (२) में इन विभिन्नताओं को बताया गया है।

तालिका (२)

ईंधन	उत्पादक	न्यूट्रन शक्ति	शीतली कारक	ज्यामिति	गत्यावरोधक
यूरेनियम२३३	थोरियम	तीव्र	गैस	एकरूपीय	हल्का पानी
यूरेनियम२३५	यूरेनियम	अनुनादीय	द्रवित धातु	बहुरूपीय	भारी पानी
प्लूटोनियम२३९		न्यून	हल्का पानी		बेरीलियम
			भारी पानी कार्बन		बेरीलियम ओषिद-
			हाइड्रो आदि		कार्बन आदि

इस प्रकार भट्ठियों के ३×२×३×५×२×५= ९०० संभव मेल हो सकते हैं। तो भी १०० ऐसे मेल हैं जो उपयुक्त हो सकते हैं। वास्तव में अमेरिका और रूस में इनमें कई प्रकार के मेल वाली भट्ठियां चालू हो गई हैं। किसी एक विशेष प्रकार के मेल का निर्णय और चुनाव इन बातों पर निर्भर है :—(१) पदार्थीय निपुणता और तापीय निपुणता (२) एकरूपीय या बहुरूपीय रचना (३) तीव्र अथवा तापीय न्यूट्रन भट्ठी। अन्त में चल कर तापीय भट्ठियां थोरियम यूरेनियम२३३ ईंधन क्रम के आधार पर बहुधा बनेगीं।

इस सम्बन्ध में यह जान कर सन्तोष होता है कि भारत में थोरियम कच्चे पदार्थ के रूप में बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इस लिये भविष्य में पारमाणविक योजना के कार्यान्वित होने में सुविधा मिल सकती है। इस दिशा में कार्य भी आरंभ हो गया है। ट्राम्बे में थोरियम शोधन का कारखाना चालू कर दिया गया है। भारी पानी के उत्पादन की भी व्यवस्था हो रही हैं।

फिर भी इस शक्ति के उपयोग के मार्ग में बड़ी-बड़ी बाधायें हैं। भट्ठी और कारखाने में काम करने वाले लोगों पर रेडियोसक्रिय किरणों का बुरा प्रभाव पड़ सकता है। किसी भी दशा में कोई गड़बड़ी होने पर आस पास के स्थान के निवासियों के लिये बड़ा खतरा उपस्थित हो सकता है। इसलिये इस ओर भी बड़ा ध्यान दिया जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि इस अतुल शक्ति के भंडार के नियंत्रण पर भावी मानव जाति की सभ्यता और विकास निर्भर है।

व्यवहृत शब्दावली

Atomic Reactor पारमाणविक भट्ठी
Coolant शीतली कारक
Criticality परिचालन
Moderator गत्यावरोधक

नारियल उद्योग का विकास

संसार में नारियल की पैदावार में पहला स्थान फिलीपीन का है और दूसरा भारत का यहाँ लगभग १५ लाख ८० हजार एकड़ भूमि पर नारियल के बाग लगाये गये हैं जिनसे हर साल ४ अरब से भी अधिक नारियल मिलते हैं। नारियल के बाग मुख्यतः केरल, मैसूर, मद्रास और आन्ध्र राज्यों के तटवर्ती प्रदेशों में हैं।

नारियल के वृक्ष को कल्प-वृक्ष कहा जाता है वह उचित ही है। इसका प्रत्येक भाग उपयोगी होता है। गीले नारियल के भीतर जो पानी होता है, वह गर्मी के मौसम के लिए एक अच्छा शीतल पेय है। नारियल की गिरी की अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुएँ तैयार की जाती है। इससे तेल निकाला जाता है। इसकी खली ढोरों को खिलाई जाती है और इसके पत्तों से मकान की छतें बनायी जाती हैं। इसकी खोल से हुक्के तथा अन्य आकर्षक वस्तुएँ बनायी जाती है।

नारियल और उसके तेल की माँग निरन्तर बढ़ रही है। उदाहरणार्थ साबुन उद्योग में १९५३ में नारियल की खपत ४७,००० टन थी जो १९५६ में बढ़कर ५५,००० टन आ गयी। देश में विभिन्न उद्योगों का विस्तार तथा बढ़ती आबादी को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दूसरी आयोजना के अन्त तक नारियल के तेल की खपत ८०,००० टन हो जाएगी। आजकल लगभग ४०,००० टन नारियल के तेल की कमी पड़ती है और बाहर से तेल मंगाकर इसे पूरा कियाजाता है।

अन्य देशों के मुकाबले देश में नारियल की पैदावार बहुत कम है। यहाँ एक पेड़ से लगभग ३० नारियल मिलते हैं। इस सम्बन्ध में जो जाँच की गयी उससे पता चलता है कि पैदावार कम होने के कारण एक स्थान पर जरूरत से ज्यादा पेड़ों का होना, उनको पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व न मिलना तथा इन पेड़ों को लगने वाले कीड़े और अन्य बीमारियाँ हैं। चूँकि नारियल का पेड़ अस्सी साल से भी अधिक समय तक जीवित रहता है इसलिये खराब बीज बोया जाने से काफी सालों तक हानि उठानी पड़ती है।

भारत में नारियल की पैदावार बढ़ाने के लिये काफी गुँजाइश है। केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्रालय ने दूसरी आयोजना के अन्त तक नारियल की पैदावार बढ़ाने तथा उसकी कमी को दूर करने की योजनाएँ बनाई हैं। नारियल के बाग लगाने वालों को बागों में दिखाकर यह बताया जाता है कि नारियल के बाग और अच्छी तरह से कैसे लगाये जाते हैं तथा उनमें खाद डालने का बेहतर तरीका क्या है। इन लोगों को सस्ते दामों पर रासायनिक खाद बेची जाती है। कीड़ों तथा अन्य बीमारियों की रोकथाम के लिये भी उचित कदम उठाया गया है।

नारियल के बागों का विस्तार करने के लिये केन्द्रीय नारियल समिति राज्य सरकारों के सहयोग से २९ नारियल पौधशालाओं को आर्थिक सहायता देती है। ये पौधशालाएँ अच्छे किस्म के नारियल के पौधे वितरित करती हैं। इन शालाओं में नारियल के पौधों की पैदावार का निर्धारित लक्ष्य प्रति वर्ष ५ लाख पौधे हैं।

केरल, मद्रास, आन्ध्र और उड़ीसा में बलुवा किस्म की जमीन है। पम्पों द्वारा इस जमीन की सिंचाई के लिए भारत सरकार आर्थिक सहायता देती है।

नारियल की किस्म, पैदावार और उसके लिए आवश्यक खाद के सम्बन्ध में तथा उसको लगने वाले कीड़ों की रोकथाम के बारे में गवेषणा करने के लिये कासर गोद और काया मकुल्लम (केरल) के नारियल गवेषणा केन्द्रों का विस्तार किया जा रहा है। इसके बारेमेंअनुसंधान के लिये क्षेत्रीय गवेषणा केन्द्र भी खोले जा रहे हैं। नारियल के बागों का क्षेत्र और इसकी पैदावार के सम्बन्ध में अधिक अच्छी जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है।

नारियल के रेशे का धन्धा वास्तव में घरेलू धन्धा है। केरल के तटीय प्रदेश के घनी आबादी वाले हिस्सों में यह धन्धा विशेष रूप से केन्द्रित है। इससे २ लाख से भी अधिक परिवारों को रोजगार मिलता है और देश को भी काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

बालसुधार उपचार गृह

बालक यदि असाधारण ढंग का व्यवहार करता है, उसका दिमाग विकसित नहीं है और उसका स्वभाव टेढ़ा या विकृत है, तो इसके कारण को खोजना विशेषज्ञ का काम है। अनेक कारणों से बच्चों में ये खराबियाँ आती हैं। कुछ बच्चे जन्म से ही दिमाग और शरीर से कमजोर होते हैं, इससे उनके दिमाग और शरीर, दोनों ही का विकास रुक जाता है। अनेक बच्चे घरेलू परिस्थितियों, कुसंस्कार, माता-पिता के बर्ताव और इच्छाओं के दमन के कारण दुष्टता करने लगते हैं। अनेक बार बच्चे हकलाने या शरीर की खराबी आदि के कारण भी ठीक ढंग से विकसित नहीं हो पाते और खराब व्यवहार करने लगते हैं तथा सामाजिक व्यवहार और शिक्षा में पिछड़ जाते हैं।

बच्चों की अनेक खराबियों के लिए कोई खास दवा नहीं बनायी जा सकती। जब तक उन खराबियों का मूल कारण ही खोजा और नष्ट न किया जाय तब तक कोई भी इलाज स्थिति को और भी बिगाड़ सकता है। बच्चा बड़ा होकर असन्तुलित दिमाग का हो सकता है और समाज के लिए सरदर्द बन सकता है।

छोटे बच्चे की खराबियों को जान लेना और उसकी मानसिक विकृतियों को दूर करना दिल्ली के बाल सुधार उपचारगृह (क्लिनिक) का ध्येय है। इसमें बच्चे की शारीरिक कमजोरियों या बीमारियों का इलाज नहीं किया जाता। यह काम अस्पतालों और डाक्टरों का है। इस उपचारगृह में उन्हीं बच्चों की जांच और इलाज होता है जिन्हें कोई शारीरिक रोग नहीं है। इसमें मुख्यतः दिल्ली के अरविन और सफदरजंग अस्पतालों से मानसिक-रोगी-बच्चे भेजे जाते हैं। बाल-हितकारी संस्थाएँ, डाक्टर और स्कूल भी यहाँ बच्चों को भेजते हैं। इसके अलावा लोग स्वयं भी अपने बच्चों के बारे में सलाह लेने यहाँ आते हैं। यहाँ केवल ३ से १५ वर्ष के बच्चों की ही जांच की जाती है।

क्लिनिक के कर्मचारी दो प्रकार से बच्चे की जांच करते हैं :—पहला बच्चे के व्यवहार पर ध्यान देकर विकृति को समझना और विश्लेषण करना, और दूसरा यह देखना कि बच्चे की घरेलू और सामाजिक परिस्थिति क्या है और किस परिस्थिति में बच्चा कैसा व्यवहार करता है। इस तरह बाल-मनोविज्ञानी लोग जांच करके बच्चे की व्याधि का पता लगाते हैं।

बच्चे के ठीक-ठीक इलाज का तरीका निकालने के लिए तीन काम किए जाते हैं। पहले उससे बात की जाती है और उसकी गतियों पर ध्यान रखा जाता है ताकि उसकी मानसिक विकृति का पता लग सके। यह कार्य कठिन काम है। ऐसे अवसर पर बच्चा प्रायः प्रतिकूल काम करने लगता है, जिससे उसके इलाज का उपाय करना कठिन हो जाता है। अस्तु यह जरूरी है कि बच्चे को उसकी स्वाभाविक अवस्था में रखा जाए और कोई ऐसा काम न किया जाय जिससे वह उलटा आचरण करने लगे।

दूसरी अवस्था में उसके इलाज के तरीके की जांच होती है। खेलते समय, अन्य बच्चों के साथ और घर में उसके व्यवहार को देखा जाता है और यह देखा जाता है कि उसे जो कहा जाता है, उसपर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। तीसरी अवस्था म इन सब का निष्कर्ष निकाला जाता है। यह बहुत कठिन काम होता है। कभी-कभी तो निर्देशक, मनोविज्ञान-शास्त्री, समाजसेवी और बच्चे के माता-पिता को अनेक बार मिलकर विचार करना पड़ता है। इस चर्चा में जो निष्कर्ष निकलता है, इसी के अनुसार बच्चे का इलाज किया जाता है।

कुछ उदाहरण लीजिए :—एक बच्चा किसी शारीरिक खराबी के कारण ऐसे अनेक काम करने में असमर्थ रहता है, जिन्हें अच्छे और पुष्ट शरीर वाले बच्चे कर सकते हैं। ऐसी हालत में वह उन बच्चों से द्वेष करने लगता है। कोई बच्चा अपने भाई-बहनों से सिर्फ इसीलिए जलने

लगेगा कि वह यह समझता है कि उसके माता-पिता उसके भाई-बहनों को अधिक प्यार करते हैं और उसे नहीं चाहते। तब वह हल्ला मचा कर या फिट में आकर अपना विद्रोह प्रकट करता है। उसके इस व्यवहार का कारण केवल बाहरी स्थितियों को देखकर ही नहीं जाना जा सकता। इसी तरह मानसिक कमजोरी, हकलाने, शिक्षा में पिछड़ने आदि के भी मामले हैं। इसके अलावा बच्चों पर सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों का भी असर पड़ता है।

बच्चे पर किस चीज का असर पड़ा, इसकी जांच उपचार-गृह करता है और उसके इलाज का तरीका बताता है। कभी-कभी एक बच्चे की जांच करने में २-३ महीने तक लग जाते हैं, तब कहीं उसके इलाज का तरीका निकल पाता है। बाद में भी उसे जांच के लिए सप्ताह में एक-दो बार क्लिनिक आना पड़ता है। इलाज समाप्त होने के बाद भी काफी समय तक उसकी देखरेख की जानी चाहिए। चतुर माता-पिता ऐसा ही करते हैं, परन्तु अनेक (मुख्यतः आर्थिक) कारणों से कुछ माता-पिता देखरेख नहीं कर पाते। इससे बच्चे की हालत फिर पहले जैसी हो जाने का डर बना रहता है।

इसलिए उपचार-गृह के निर्देशक ने ठीक ही कहा है कि बच्चों की देखरेख और शिक्षा एक प्रकार से उनके माता-पिता की भी देख-रेख और शिक्षा है। बच्चों का इलाज खेल आदि की मदद से किया जाता है और माता-पिता में अपने बच्चों की कठिनाइयों को समझने और उनसे ठीक-ठीक व्यवहार करने की समझ पैदा की जाती है। माता-पिता के सामने जो आर्थिक सामाजिक तथा अन्य कठिनाइयाँ हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, परन्तु फिर भी अनेक ऐसे लोग इस उपचार-गृह से लाभ उठा रहे हैं, जो बिल्कुल साधारण श्रेणी के हैं।

देश में मानसिक व्याधियों से पीड़ित बालकों के इलाज के लिए उपचारगृहों की जो कमी है, उसे देखते हुए इस उपचार-गृह का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। हमारे पास न तो इतने साधन हैं और न धन, कि हम देश में मानसिक रोगियों के लिए बहुत से अस्पताल खोल सकें और मनोविज्ञान-शास्त्रियों को नियुक्त कर सकें। इसलिए, मानसिक रोगों के बढ़ने से पहले ही उन्हें रोकने में इस क्लिनिक का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है। रोग हो जाने पर इलाज करने के बजाय उसकी पहले से ही रोकथाम करना अधिक अच्छा है। यह क्लिनिक भी यही काम करता है। बच्चों के माता-पिता को बच्चों की देखभाल करना सिखाता है और इससे पहले कि बच्चे में कोई खराबी गहरी जड़ पकड़ ले, उसे दूर करता है।

जिस बालक की मानसिक व्याधियाँ इलाज के अभाव में बढ़ती जाएँगी, वह आगे चलकर समाज के लिए खतरनाक बन सकता है, परन्तु जिसका उचित समय पर मनोवैज्ञानिक ढंग से इलाज कर दिया जाए वह भविष्य में देश का स्वस्थ और योग्य नागरिक हो सकता है।

—:०:—

रस शास्त्र के रहस्यों पर नवीन प्रकाश

[वैद्य रामेश वेदी, गुरु कुल कांगड़ी, हरिद्वार]

आयुर्वेद के अनुसार सभी धातुएं स्वर्ण में रूपान्तरित हो सकती हैं। सभी धातुओं का बीज पारद में जारण करने से पारद अन्य धातुओं को स्वर्ण बना सकता है। रुद्रयामल तन्त्र के अनुसार सभी धातुओं की अत्यन्त शुद्धि के बाद निरुत्थ भस्में बनायी जायें तो उन भस्मों के योग से अन्य धातुओं को स्वर्ण में रूपान्तरित कर सकते हैं।

रसशास्त्र में पारद की दो प्रकार की जारणा बताई है—खेचरी और भूचरी। खेचरी में रत्नों की जारणा होती है। रत्नों की जारणा अत्यन्त व्ययसाध्य है। श्री नारायण स्वामी जी ने पूर्वाश्रम में इसका अनुभव किया था। परन्तु अब सन्यासाश्रम ग्रहण करने पर वे अपरिग्रही हो गये। वर्तमान समय में पूरे साधन न होने से उन्होंने इस व्ययसाध्य खेचरी जारणा को अभी हाथ में नहीं लिया। भूचरी जारणा के सारे नमूने उन्होंने बनाये हैं। उसमें स्वर्ण के अतिरिक्त शेष जो कल्पित बीज बनाये हैं, उनका विवरण मैं इस लेख में दे रहा हूँ। स्वर्ण के बदले में धातुओं के जो कल्पित बीज दिये जाते हैं वे उन्होंने पांच प्रकार से बनाये हैं।

नाग, ताम्र, यशद, जीवित भूनाग और नाग ताम्र।

एक पारद में आपने प्रथम शुद्धि के बाद बुभुक्षित करने के लिये विषों का जारण किया। बाद में अग्निस्थायी निर्धूम निर्गंध गन्धक का जारण किया। बाद में उसी पारद में भास्कराभ्र (ताम्र+अभ्रक) का जारण किया। फिर उसी पारद में जीवित भूनाग का जारण किया। यह पारद मैंने स्वामी जी की अनुसन्धानशाला में देखा है। यह अत्यन्त तेजस्वी, निर्मल, रंजित, स्वर्णिम है। स्वामी जी का कहना है कि डमरू यन्त्र में ऊर्ध्वपातन करने पर यह पूर्ण अग्निस्थायी पाया गया है। यह बुभुक्षित है। आप इसमें से थोड़े से पारद में अब स्वर्ण जारण करने वाले हैं।

पारद का दूसरा प्रकार

पारद की शुद्धि के बाद अग्निस्थायी गन्धक के त्रिगुण तेल से पारद का सतत् एक वर्ष तक जारण हुआ अर्थात् गन्धक तेल के अन्दर बालुकायन्त्र में सिलिका बेसिन (कटोरी) में और पोर्सेलेन कुण्डों में लकड़ी के कोयले की अंगीठी पर पकाया गया। इस प्रक्रिया से पारद बुभुक्षित अग्निस्थायी और रंजित हुआ है। उस पारद में स्वर्ण बीज, कल्पितबीज या मायाबीज देने से पारद बीजों के जारण के प्रमाण के अनुसार अलग २ प्रकार की वेधन-शक्ति पारद में आयेगी दशवेधि से कोटिवेधि तक जैसा-जैसा जारण होगा वैसी-वैसी शक्ति आयेगी। पारद में सुवर्ण और अभ्रक जारण करने से यह पारद देहसिद्ध और रोग नाश के लिये काम देगा।

पारद का तीसरा प्रकार

शुद्धि के बाद त्रिगुणगन्धनागद्रुति का जारण किया है। यह पारद अग्निस्थायी बुभुक्षित एवं रंजित हुआ है। इस में आप कल्पितबीज, मायाबीज और स्वर्ण बीज देने वाले हैं। इसमें भी जारण की मात्रा के अनुसार पारद की अलग-अलग वेध शक्ति होगी। यह पारद धातुवाद में उपयोगी है।

शुक्तुण्ड ताम्र

दो सेर ताम्र को अनेक रासायनिक विधियों से गुजारने के बाद स्वामी जी ने शुक्तुण्ड ताम्र प्राप्त कर लिया है। एक प्रयोग में उनको दो सेर ताम्र से ३॥ तोले ताम्र प्राप्त हुआ है। मैंने वह ताम्र देखा है। इसके पृष्ठ पर चमक है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व अब ताम्र का न रह कर स्वर्ण के आपेक्षिक गुरुत्व के समान है। स्वर्ण जैसा ही मुलायम यह बन गया है।

दूसरे शुक्तुण्ड ताम्र की भस्म तैयार की गई है। यह पारद में जारण करने योग्य हो गई है। इसको पारद में जारण करने से पारद सहस्र-वेधी बन जायगा।

पहले प्रकार के शक्तुण्ड ताम्र के बारे में स्वामी जी का कथन है कि इस ताम्र का स्वर्ण में रूपान्तर करना बहुत सुगम है और इस रूपान्तर में स्वर्ण उतना ही प्राप्त होगा जितना कि ताम्र था। इसकी भस्म बनाकर पारद को जारण करने से वह सहस्रवेधी बन जायेगा। स्वामी जी का कहना है कि ताम्र, स्वर्ण और नाग के जारण से पारद अग्निस्थायी और वेधक होता है। शेष धातुओं के जारण के लिये पारद को प्रथम पूर्ण अग्निस्थायी करके बाद में जारण करना चाहिये। स्वामी जी का यह भी अनुभव है कि अभ्रक या भूनाग सत्व के या जीवित भूनाग के जारण से पारद पूर्ण अग्निस्थायी होता है और उसकी वेधक शक्ति बढ़ती है। यहाँ अभ्रक और स्वर्ण मलिक का सत्व आपने निकाला था। उनकी इस समय भस्म बनाई जा रही है। इस सत्व से आपने पारद का जारण भी किया है।

यशद बीज

यह दो प्रकार से बनाया जाता है। यशद को शुद्ध करके अग्निस्थायी बनाया गया है। इसका बीज बनाया है। इसके जारण से पारद सहस्र-वेधी होगा। प्रथम प्रक्रिया में चौदह सेर यशद लिया था और अग्निस्थायी होने पर तेरह छटाँक बचा था। दूसरी प्रक्रिया में सवा सेर लिया था और एक रत्ती भी नहीं घटा था।

नाग बीज

सात सेर नाग को विधिवत् शुद्धि करने के बाद फिर बीज रंजक तेल में २१ बार रंजित किया, फिर इसे बुभुक्षित किया। इस सारी प्रक्रिया के बाद ढाई सेर शेष प्राप्त हुआ। यह नाग अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित हुआ। इसमें से एक सेर नाग की भस्म बनाई है। यह जारण और वेध समय में क्रामण के रूप में काम आयेगा। स्वामी जी ने अन्य क्रामण भी बनाये हैं।

बीज रंजक तेल

चार कनस्तर सरसों का तेल लेकर उसमें पलाश पुष्प, रतनजोत, रक्त-चन्दन आदि रक्त-पीत वर्ग की औषधियों के योग से यह तेल बनाया गया है। इस तेल के योग से कोई भी धातु पीत-रक्त हो सकती है। किसी भी धातु की लोह संक्राति (कालिमा) नष्ट होती है। इससे धातु स्वर्ण में परिवर्तित नहीं होती परन्तु उसमें स्वर्ण की आभा आ जाती है और तपाने से धातु काली नहीं पड़ती है। इसमें स्वर्ण को इक्कीस बार बुझाया जाय तो वह अधिक तेजस्वी तथा रक्ताभ होगा। इस तरह के रंजित स्वर्ण को जारित करने का शास्त्र में विधान है।

रस रंजक तेल

हरिताल, संखिया, शिंगरफ और मैनसिल को स्वामी जी ने अग्निस्थायी करके आकाशयन्त्र से इस तेल का पातन किया है। इस तेल को पारद में जारण करने से पारद अग्निस्थायी, रंजित और वेधक होगा। तेल का जितना जितना जारण किया जायेगा, उतनी-उतनी उसकी वेधक शक्ति बढ़ेगी। रस शास्त्र के सिद्धान्तानुसार यह तेल जारण करने के बाद किसी अन्य धातु का बीज देने की आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त चीजें मायाबीज मानी जाती है। इसके अतिरिक्त दो प्रकार से अग्निस्थायी शोरा बनाया है। अग्निस्थायी सुहागा भी बनाया गया है। इनके मिश्रण से एक ऐसा मोमियाँ शोरा बनाया है, जिसमें सारे रस-उपरस अग्निस्थायी हो जाते हैं। स्वामी जी का कहना है कि इस क्रिया में मनों के प्रमाण में रस-उपरस अग्निस्थायी किये जा सकते हैं।

माया बीज

शिंगरफ, हरिताल, मैनसिल, गन्धक और संखिया को आपने अग्निस्थायी बनाया है। उनका उपर्युक्त किसी पारद में आप अलग-अलग जारण करने वाले हैं।

अभ्रक जारण करने के लिये आप बीज बना रहे हैं। आपके एक मित्र आयुर्वेद रस-शास्त्र में जिज्ञासा रखते हैं। उनका नाम श्री टी० गोपालप्पा है। वे बैंकटगिरी

टाऊन आन्ध्र राज्य के प्रसिद्ध वैद्य हैं। आपने अत्यन्त परिश्रम करके बालमूत्र का क्षार लगभग एक सेर बीज के निर्माणार्थ बना कर भेजा है। प्राकृतिक नर-क्षार का वास्तव में क्या प्रयोग होता है, उस पर आप अपनी प्रयोगशाला में परीक्षण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त गाय, भैंस, बकरी और भेड़ के दध्यम्ल का क्षार बना कर उनके पारद पर प्रभाव के प्रयोग जाँच रहे हैं। गोरक्ष संहिता में तथा अन्य रस ग्रन्थों में हीरे के जारण के बदले में नर-मूत्र क्षार के और दध्यम्ल क्षार के जारण का संकेत मिलता है। साथ ही अन्य रस-ग्रन्थों में छः वनस्पतियों के क्षारों की जारणा की प्रक्रिया से पारद अग्निस्थायी करने के विधान मिलते हैं। उनमें से भी कुछ क्षारों का पारद पर प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। आपने बाजारू ठीकरी का नौसादर अग्निस्थायी किया है और उसका तेल पातन किया है। उसको भी आप बीज के रूप में काम लेने वाले हैं। आप का कहना है कि उसकी सहायता से पारद अग्नि-स्थायी और बुभुक्षित हो सकता है। इस तरह से सारे भूचरी जारण के प्रत्यक्ष नमूने स्वामी जी ने अपनी प्रयोग-शाला में तैयार किये हैं। भगवान नागार्जुन की अमर प्रेरणा "सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्रयगदं जगत्" से आप इस कठिन मार्ग की ओर चल रहे हैं। अपने प्रयोगों में उन्हें बड़े विचित्र अनुभव हुए हैं। विषाक्त पदार्थों की गैसों से मूर्छाग्रस्त हो जाना उनके परीक्षणों में असाधारण बात नहीं है। पारद के परीक्षणों में मूर्छावस्था में वे तीन बार स्ट्रेचर पर हास्पिटल में पहुँचाये गये हैं। उनकी सह-कर्मिणी श्रीमती कमला जी भी पारदीय विष में आक्रान्त होकर मरते-मरते बची हैं।

इस वर्ष मैं कन्दों और जड़ी बूटियों की तलाश में फूलों की घाटी म्यूधार में जा रहा था। बद्रीनाथ के पूर्व-दक्षिण में कोई पन्द्रह हजार फीट की ऊँचाई पर यह सुरम्य घाटी है, जिसमें सैकड़ों प्रकार की वनस्पतियाँ फूलती हैं। अपने मोहक सौन्दर्य में अनेकों विदेशियों को और विशेषज्ञों को इस घाटी ने आकृष्ट किया है। इस घाटी को जाते हुए मैं स्वामी जी के प्रयोगों को देखने के लिये यहाँ ठहरा था। पिछले वर्ष मैं कुछ घन्टों यहाँ ठहरा था। परन्तु इस बार तीन दिन ठहरा और स्वामी जी के कार्य के बारे में मैंने अधिक से अधिक जानने का प्रयत्न किया। मैंने अनुभव किया कि स्वामी जी का उद्देश्य स्वर्ण-निर्माण मात्र नहीं है। उनका लक्ष्य बहुत विशाल है। आयुर्वेद के रसशास्त्र में वर्णित जिन बातों का ज्ञान अब वर्तमान जगत को नहीं रहा, उस सब का वे प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाह रहे हैं। बात-बात में वे शास्त्रों के उदाहरण देते हैं। उन्हें अपने शास्त्रों के वचनों पर पूरा भरोसा है। अब तक वे जितना कार्य कर चुके हैं, उससे आयुर्वेद के विलुप्त गौरव की निश्चय ही पुनः स्थापना हुई है। यह ठीक है कि विगत छः वर्षों में इन प्रयोगों में पचास हजार रुपये से अधिक व्यय हो चुके हैं, परन्तु इनके सम्पादित कार्य को देखते हुए यह राशि नगण्य ही है। मैं आयुर्वेद के रस-शास्त्र के प्रेमियों को सलाह दूँगा कि वे स्वयं स्वामी जी के कार्यों को देखें। एक बात उन्हें ध्यान में रखनी चाहिए कि सोना बनाने का नुस्खा जानने मात्र के उद्देश्य से वहाँ जाने पर उन्हें निराशा मिलेगी। परन्तु अपने रस-शास्त्र के विलुप्त प्रकरणों को समझने के उद्देश्य से जब वे वहाँ जायेंगे तो उन्हें सचमुच आनन्द आयेगा। नागार्जुन की परम्परा को आगे चलाने की लगन में स्वामी जी का कार्य उन्हें निस्सन्देह अत्यन्त उपयोगी नजर आयेगा। अच्छा हो स्वामी जी के समान ही धुन के पक्के रसायनशास्त्र के जिज्ञासु त्यागी और तपस्वी कुछ व्यक्ति स्वामी जी के साथ इस कार्य में जुट जायें। मुझे विश्वास है कि इसमें देश का महान कल्याण होगा। स्वामी जी द्वारा रस-शास्त्र में एक नये अध्याय की अभिवृद्धि की हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे। भगवान इस महान प्रयत्न में स्वामी जी को दीर्घायु और स्वास्थ्य प्रदान करें।

—:o:—

रिहण्ड योजना

मध्य प्रदेश में उदयपुर की पहाड़ियों से निकलकर रिहण्ड नदी उत्तर की ओर बहती हुई गहरवार गाँव के पास से गुजरती हुई सिंधुरिया के पास सोन नदी में मिलती है। सोन बाद में गंगा नदी में मिल जाती है। किंवदन्ती है कि परशुराम के पिता जमदग्नि और माता रेणुका की कुटिया विन्ध्याचल में इसी नदी के उद्गम पर थी। इसी से इस नदी का नाम रेणुका पड़ा, जिसका आधुनिक रूप रेण्ड है।

अन्य बरसाती नदियों की तरह, रिहण्ड में भी वर्ष के अधिकांश महीनों में बहुत कम पानी रहता है। पर वर्षा-काल में इसकी बाढ़ के कारण मिर्जापुर और बघेलखण्ड जिलों में तबाही आ जाती है। इसकी बाढ़ का पानी मिल जाने से गंगा भी और उग्र रूप धारण कर लेती है।

इन्हीं सब कारणों से रिहण्ड के पानी को बाँधने की जरूरत पचास वर्ष पहले ही महसूस की गयी थी। अंग्रेज इंजीनियर श्री जी० एस० वार्लोवे को रिहण्ड सोन के संगम से २८ मील पर पिपरी के पास का स्थान बाँध बनाने के लिए उपयुक्त दिखाई पड़ा। यह स्थान चारों ओर पहाड़ियों से घिरा है। रिहण्ड ने इन पहाड़ों की कड़ी चट्टानों को काट कर अपने लिये गहरा और संकरा रास्ता बनाया है, इसलिए यहाँ छोटा बाँध बाँधने से ही जलाशय तैयार हो सकता है। उस समय जो योजना कागजी कारवाई से आगे नहीं बढ़ सकी थी, ५० वर्ष बाद अब अमल में लायी जा रही है।

बांध किस चीज से बनाया जाय, इस पर मतभेद था। केन्द्रीय जल-बिजली आयोग की राय पत्थर से बांध बनवाने की थी, क्योंकि वह वहां बहुतायत में मिलता था और इससे बहुत आदमियों को लम्बे समय तक काम मिलता, सीमेंट और इस्पात कम लगता और विदेशों से मशीनें मँगाने की जरूरत नहीं पड़ती। किन्तु उत्तर प्रदेश सरकार की राय थी कि सीमेंट-कंकरीट से बांध जल्दी बन सकता है और इसके जल्दी बन जाने से फसल आदि को जो लाभ होगा, उससे सीमेंट-कंकरीट पर अधिक खर्च पूरा हो जाएगा। अन्त में कंकरीट का बाँध बनाने का निश्चय किया गया।

रिहण्ड बांध की नीचे से अधिकतम ऊँचाई २६६ फुट और पिपरी के पास इसके ऊपर के भाग की लम्बाई ३,२५४ फुट होगी। तल में इसकी चौड़ाई २२७ फुट और लम्बाई १,२०० फुट होगी। इससे जो झील बनेगी, वह १८० वर्गमील में फैली होगी और इसमें ८६ लाख एकड़ फुट पानी जमा हो सकेगा। बांध के मध्य में पानी निकलने के लिए ६६४ फुट की झील होगी, जिसमें से प्रतिसेकेंड ४४०,००० घनफुट तक की गति से पानी बह सकेगा। झील के ऊपर २८ फुट ऊँचे और ४० फुट चौड़े १४ फाटक होंगे। नीचे भी ८-८ फुट के व्यास की दो नालियाँ होंगी।

रिहण्ड बाँध में ६ करोड़ १७ लाख घनफुट सीमेंट-कंकरीट लग जाएगा। इतने कंकरीट से कश्मीर से कन्या-कुमारी तक १२ फुट चौड़ी सड़क बनायी जा सकती है। मिश्र के सातों पिरामिडों में भी इतना मसाला नहीं लगा होगा।

रिहण्ड-बाँध के नीचे एक पनबिजलीघर खोला जाएगा, जिसमें ५०-५० हजार कि० वा० घंटा बिजली पैदा करने के ६ यन्त्र लगाये जाएँगे। इस बिजली को पहुँचाने के लिए ३,००० मील लम्बे तार लगाये जाएँगे।

रिहण्ड बाँध योजना पर कुल ४५ करोड़ २६ लाख रु० खर्च होगा। इसमें बाँध और बिजलीघर पर ३१ करोड़ ७३ लाख रु० और बिजली के तारों पर १३ करोड़ ५३ लाख रु० खर्च होगा। सन् १६५४ में इस काम के लिए अमेरिका से आर्थिक तथा प्राविधिक सहायता का समझौता हुआ।

अक्टूबर, १६५४ में प्रारम्भिक कारवाई शुरू हुई। मई, १६५५ में बाँध और बिजलीघर बनाने के लिए एक

बड़ी फर्म को ठेका दिया गया। बाँध-स्थलको पास के रेलवे स्टेशन, रावर्टसगंज, से मिलाने के लिए ५० मील लम्बी सड़क बनायी गयी और सोन नदी पर चोपन के पास कंकरीट का पुल बनाया गया। ये दोनों काम अक्टूबर, १९५६ में पूरे हो गये। बाँध-स्थल पर रिहण्ड पर भी कंकरीट का पुल बनाया गया है। वहाँ ५,००० मजदूरों के रहने की बस्ती भी बसायी गयी है, जिसमें बिजली, पानी, स्कूल, अस्पताल, डाकघर आदि की व्यवस्था की गयी है। वहाँ काम करने वाले सभी मजदूरों को मुफ्त घर दिये गये हैं, जिनमें सीमेंट के फर्श, पाखाने, गुसलखाने, पीने के पानी के नल आदि हैं।

बाँध और बिजलीघर की नींव की खुदाई पूरी हो चुकी है। बाँध बनाने के लिए नदी की धारा भी मोड़ी गयी है।

कंकरीट बनाने और डालने का पूरा काम मशीन से होता है, जो हर रोज १,२०,००० घनफुट कंकरीट डाल सकती है। कंकरीट के लिए पत्थर नदी के बाएँ किनारे पर ढाई मील दूर पर निकाला जाता है। पास में रेत पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती, इसलिए पत्थर को चूरकर रेत भी तैयार की जाती है और इस्पात के तार के रास्ते इसकी बाल्टियाँ बांध के स्थल तक पहुँचायी जाती हैं।

कंकरीट तैयार करने और डालने का तरीका भी बड़ा मनोरंजक है। बाँध में कंकरीट गर्मी के कारण फैलता है। इसलिए कंकरीट डालने से पहले ही ठण्डा कर लिया जाता है। रेत और सीमेंट मिलाने के पहले अलग-अलग बाल्टियों या ठेलों में भरकर तार पर सरका कर बाँध तक ले जायी जाती और डाली जाती है। बाँध के ऊपरी भाग पर कंकरीट ले जाने और डालने के लिए २० टन के दो तार-मार्ग हैं जो नदी के आरपार ३,०८१ फुट लम्बे हैं। दुनिया में यह सबसे बड़ा तार का रास्ता है। बाल्टियों से जो कंकरीट डाला जाता है, वह मशीन से मिलाया जाता है। यह मशीन सीमेंट रेत और पानी को मिलाकर प्रतिमिनट ६ हजार से ६ हजार बार हिलाती है। अगस्त, १९५७ तक नींव में ११ लाख ६ हजार घनफुट तक कंकरीट डाला जा चुका है।

जून से अक्टूबर तक वर्षाकाल को छोड़कर यहाँ पूरे वर्ष चौबीसों घण्टे काम चलता है। जिन दिनों काम नहीं होता, उन दिनों मशीनों की मरम्मत सफाई आदि की जाती है।

आशा है कि बाँध और बिजलीघर जून, १९६१ तक तैयार हो जाएँगे। १९५९ की बरसात से जलाशय में पानी भरना शुरू हो जाएगा।

रिहण्ड-जलाशय में उत्तर प्रदेश की ५८५,००० एकड़ जमीन और मध्य प्रदेश की ३० हजार एकड़ जमीन डूब जाएगी और ४७,००० लोग गृहहीन हो जाएँगे। इन लोगों को बसाने और खेती के लिए जमीन देने की व्यवस्था की जा रही है।

रिहण्ड बाँध योजना का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि उत्तर प्रदेश में दूर-दूर तक पर्याप्त बिजली पहुँचाई जा सकेगी, जिससे राज्य में उद्योग-धन्धों की काफी उन्नति होगी। बिजली से फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, मिरजापुर, गोरखपुर, देवरिया, बलिया, गाजीपुर, बनारस, आजमगढ़, जौनपुर, सुल्तानपुर, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, रायबरेली और बहराइच जिलों में नलकूप और पानी के पम्प चलाये जा सकेंगे, जिससे १४ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी तथा अनाज, गन्ने आदि की पैदावार में हर वर्ष २ लाख टन की वृद्धि होगी। इससे गाँवों में बिजली पहुँचेगी और घरेलू धन्धे पनप सकेंगे।

रिहण्ड जलाशय से नदी में पूरे साल तक कम से कम ५,००० घ० फु० प्र० से०.की गति से पानी की धारा बहती रहेगी। इससे बिहार में सोन नदी की नहर का विस्तार होगा तथा ५ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी। इससे सोन नदी में बाढ़ की भयंकरता भी कम होगी और उसमें नावों का यातायात चल सकेगा।

उत्तर प्रदेश के कानपुर तापबिजलीघर, बेतवा जल-बिजली विकास योजना और शारदा तथा गंगा शृंखलाओं, पश्चिम की दामोदर तथा उड़ीसा की महानदी बिजली-शृखला के साथ रिहण्ड बिजली से पूरे उत्तर भारत में विशाल कल-कारखाने चल सकेंगे, जो देश की समृद्धि में योग देंगे।

पृथ्वी के गर्भ से जन्म लेने वाला—पेट्रोल

अंग्रेजी के पेट्रोलियम शब्द का मूल यूनानी भाषा के दो शब्द "पेट्रा" और "ओलियम" हैं। "पेट्रा" का अर्थ है—चट्टान और "ओलियम" का तेल। जैसा कि इसका नाम है—पेट्रोल या पेट्रोलियम पृथ्वी के भीतर की चट्टानों में होता है या पानी के ऊपर तैरता है।

पृथ्वी के गर्भ में तेल कहाँ से आता है या कैसे बनता है, इसके बारे में कई धारणाएँ हैं। लेकिन सबसे मान्य धारणा यह है और व्यवहार में भी इसी की पुष्टि होती है कि पेट्रोल ऐसी जगह होता है, जहाँ कभी समुद्र (खारी पानी) और कारबनिक द्रव्य रहे हों।

इन हजारों वर्षों में भू-मण्डल पर न जाने क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं। एक परिवर्तन यह भी हुआ है कि बहुत से स्थानों पर जहाँ कभी अथाह महासागर लहरें मारते थे, वहाँ अब हिमालय जैसे पर्वत उठ आये हैं और बड़े-बड़े महाद्वीपों के स्थान पर समुद्र बन गये हैं। जब कोई भू-भाग धँसा और उसमें समुद्र का पानी भरने लगा तो, आस-पास की जमीन की मिट्टी भी इसके साथ बह आयी और समुद्री जीवों के साथ नीचे जम गयी। इसी प्रकार एक के ऊपर एक तह जमती गयी और अपने ही भार से ये और नीचे धँसती गयीं। मिट्टी के दबाव से गर्मी पैदा हुई और उसके साथ-साथ इसमें मिले हुए कारबनिक द्रव्यों पर विविध रासायनिक पदार्थों और जीवाणुओं का प्रभाव होता गया।

इन सब बातों के मिलने और अन्य अनुकूलताओं से कारबनिक द्रव्यों ने, उद्जन और कारबन के विधि योगिकों यानी पेट्रोल और प्राकृतिक गैस आदि का रूप ले लिया। इधर कारबनिक द्रव्य पेट्रोल और गैस बन रहे थे और उधर मिट्टी की तह धीरे-धीरे और बढ़ती जा रही थी और निरन्तर बढ़ते हुए दबाव के कारण यह रेतीले पत्थर या चूने के पत्थर आदि में बदलती जा रही थी। बाद में फिर कभी भू-गर्भ के हिलने और कांपने से तेल और गैस, मिट्टी में से निकल कर सोखने वाली (पोरस) चट्टानों में समाने लगा और यहीं इनका भंडार बन गया।

बड़ी मात्रा में तेल का जमाव होने के लिये यह जरूरी है कि जमीन के अन्दर बड़े-बड़े गढ़े हों। बड़े-बड़े गढ़ों का मतलब ऐसी चट्टानों से है, जिनके बीच में रिसने वाली और पेट्रोल तथा गैस से भरी चूने की या रेतीले पत्थर की चट्टानें हों और चारों ओर कठोर चट्टानें हों। अन्दर और कई प्रकार की बनावट से भी ये गढ़े बन सकते हैं।

तेल की खोज में सबसे पहले ऐसे ही गढ़ों को तलाश करना होता है। इसके अन्य कई उपाय करने के बाद अन्त में जमीन को खोदकर ही देखा जाता है।

यूँ तो प्रकृति ने तेल के बँटवारे में संसार के किसी भी भाग से पक्षपात नहीं किया है, लेकिन देखने में आता है कि तेल के भंडार, अत्यन्त दुर्गम और बीहड़ स्थानों में ही मिलते हैं। जहाँ मनुष्य पहुँच सकते हैं, वहाँ तो प्रायः सब तेल खोजा जा चुका है। इसलिए अब तेल की खोज बड़ा असाध्य काम बनता जा रहा है।

भारतीय उपमहाद्वीप में तेल के लिए दो उपयुक्त भू-भाग हैं। एक उत्तरी-पश्चिमी और दूसरा उत्तरी-पूर्वी। पहले में प० पाकिस्तान, पूर्वी पंजाब, हिमांचल प्रदेश, जम्मू, राजस्थान, कच्छ और खम्भात हैं और दूसरे में पूर्वी पाकिस्तान, प० बंगाल, उड़ीसा, त्रिपुरा, आसाम और बर्मा। इनमें से कुछ स्थानों पर विदेशी कम्पनियों ने तेल के कुएँ बनाये और थोड़ी मात्रा में तेल निकाला। उत्तर-पश्चिम में खौर, धुलियाँ और जोयामिर और उत्तर-पूर्व में डिगबोई, बदरपुर, नाहरकटिया और बर्मा के कुछ भागों में तेल निकाला जाता है। इस प्रकार काफी दिनों तक तेल निकालने का काम विदेशी कम्पनियों के ही हाथ में रहा।

एक तो उपर्युक्त कारण से और दूसरे देश में, देश की कुछ जरूरत का केवल १० प्रतिशत कच्चा तेल मिलने के कारण, सरकार ने अन्य क्षेत्रों में तेल की तलाश करने का विचार किया।

भारत को प्रति वर्ष ७० करोड़ रु० का पेट्रोल विदेशों से मंगाना पड़ता है। आजकल हमें प्रति वर्ष ४० लाख टन पेट्रोल की जरूरत होती है और उम्मीद है कि १९६२ तक यह जरूरत बढ़कर ७० लाख टन हो जाएगी।

देश की अर्थ-व्यवस्था में खनिज तेल यानी पेट्रोल और मिट्टी के तेल आदि के महत्त्व को समझकर ही भारत सरकार ने १९५५ में तेल और प्राकृतिक गैस विभाग स्थापित किया और अगस्त, १९५६ में इसे एक आयोग का रूप दिया।

सबसे पहले राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र में तेल की खोज की योजना बनाई गयी। खान तथा तेल मन्त्री, श्री केशवदेव मालवीय के नेतृत्व में एक शिष्ट मण्डल रूस और यूरोप के तेल पैदा करने वाले अन्य देशों का दौरा करने गया। कुछ सोवियत विशेषज्ञों को भी, आसाम आयल कम्पनी के पट्टे के क्षेत्र को छोड़कर, देश के अन्य भागों में तेल मिलने की सम्भावना का पता लगाने के लिए भारत बुलाया गया।

दिसम्बर १९५५ से मार्च १९५६ तक इन विशेषज्ञों ने भारत के भूगर्भ विभाग के अधिकारियों के साथ कई भागों के भूगर्भ की जाँच-पड़ताल की। विशेषज्ञों का कहना है कि भारत में तेल मिल सकता है। उन्होंने सिफारिश की है कि देश के विभिन्न भागों के भूगर्भ की जाँच करायी जाए और ३ से ४ हजार फुट तक और १० हजार फुट से अधिक दोनों तरह की खुदाई करके देखा जाए और थोड़े समय में ही सफलता प्राप्त करने के लिए एक साथ कई स्थानों पर खुदाई शुरू की जाए। जहाँ जमीन के अन्दर की चट्टानों की जाँच हो चुकी है, वहाँ तेल के कुएँ खोदने शुरू किये जाएँ और जहाँ यह जाँच नहीं हुई है, वहाँ यह जाँच शुरू की जाए।

कुछ क्षेत्रों में भूगर्भ सम्बन्धी जाँच के बाद और गहरी (१० हजार फुट से अधिक) खुदाई करने से पहले ३-४ हजार फुट तक की खुदाई करके देखने की भी विशेषज्ञों ने सिफारिश की है। उन्होंने तुरन्त ज्वालामुखी में कुएँ खोदने की सिफारिश की थी और आज यह खुदाई चल रही है।

ज्वालामुखी के क्षेत्र में तेल के लिए काफी अनुकूलताएँ मालूम होती हैं तेल निकालने के लिए बाकायदे गहरा कुआँ खोदने से पहले आजमायशी खुदाई की सिफारिश की गयी थी और अप्रैल, १९५७ से रूमानिया के एक विशेषज्ञ की देख-रेख में खुदाई चल रही है। इसी के साथ देश के अन्य भागों में भी खुदाई शुरू करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

यह सब होने पर भी तेल की खोज अँधेरे में टटोलने के समान है। इसके लिए बहुत धन, परिश्रम और धीरज की जरूरत होती है। इसमें थोड़े में काम नहीं बनता। दसियों जगह पर महीनों खुदाई और लाखों रुपया खर्च करने के बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि तेल हाथ लगेगा या नहीं। असफल होने पर भी पूर्ण विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि जहाँ खुदाई हुई, वहाँ तेल था ही नहीं या मिला नहीं।

रेडियो आइसोटोपों के चिकित्सा में उपयोग

रेडियो-आइसोटोप ऐसे सामान्य रासायनिक तत्त्व होते हैं, जिन्हें रेडियमधर्मी बना लिया जाता है, अर्थात् उनसे विकिरण होता है। वे अणुशक्ति की अत्यन्त महत्वपूर्ण कल्याणकारी खोजों में शामिल हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि अणुवीक्षण यन्त्र के आविष्कार के बाद अनुसन्धान-कार्यों में रेडियो-आइसोटोपों से सब से अधिक सहायता मिली है। चिकित्सा के क्षेत्र में, रोगों का निदान तथा उपचार करने में, इनका खूब प्रयोग हो रहा है।

"ओकरिज इन्स्टिट्यूट ऑव न्यूक्लियर स्टडीज" के डा० मार्शल एच० बूसर ने यह बताने के लिए आंकड़ों का उल्लेख किया है कि इन वस्तुओं के चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोगों में अधिकाधिक रुचि बढ़ती जा रही है। आपने बताया कि १९४६ में अमेरिका के अणुशक्ति-कमीशन से अनुमति प्राप्त कर केवल ३० अमेरिकी चिकित्सक रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग कर रहे थे। आज रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग करने वाले चिकित्सकों की सूची में ३ हजार से अधिक चिकित्सक शामिल हैं।

डा० बूसर ने इस बात पर बल दिया कि आणविक वैज्ञानिकों तथा डाक्टरों के मध्य सहयोग में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। आपने बताया कि भविष्य में अनेक नई सफलताओं की आशा की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, रेडियो-आइसोटोपों का चिकित्सा सम्बन्धी उपयोग अभी प्रारम्भ ही हुआ है।

कुछ रेडियो-आइसोटोप शरीर के कुछ विशेष भागों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जमा हो जाते हैं। इसी गुण के कारण कुछ विशेष रोगों के उपचार के लिए उनका प्रयोग करना सम्भव हो गया है। उदाहरण के तौर पर, रेडियम-धर्मी आयोडीन गलग्रन्थी में एकत्रित हो जाती है। वह गलग्रन्थी उस गति का नियमन करती है, जिससे भोजन से शक्ति प्राप्त की जाती है। यदि गलग्रन्थि अधिक तेज गति से कार्य करती है, तो आयोडीन के विकिरण से उसकी गति मन्द होकर सामान्य स्थिति में आ जाएगी।

रक्त की खराबी का जो रोग पोलिसाइथेमिया के नाम से प्रसिद्ध है, उसके इलाज में तथा ल्यूकेमिया तथा कुछ विशेष प्रकार के कैन्सरों के उपचार में रेडियम-धर्मी फास्फोरस का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा, आँख की रसौलियों का निदान करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। कैन्सर के कुछ रोगों में द्रव पदार्थ को जमा होने से रोकने के लिए रेडियम-धर्मी सोने का प्रयोग किया जाता है। रेडियम-धर्मी आयोडीन ऐसे रोगियों की सहायता कर रही है, जो एन्जीना पैक्टोरिस जैसे हृदय-रोगों से बुरी तरह पीड़ित हैं। आंखों के एक उपचार में रेडियम-धर्मी स्ट्रौंटियम तथा कैन्सर के इलाज में रेडियम-धर्मी कोबाल्ट का भी प्रयोग किया जाता है। इन कार्यों के लिए पहले रेडियम इस्तेमाल किया जाता था।

आज चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धानों में रेडियो-आइसोटोपों का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। अनुसन्धानकर्ता ऐसी खाद्य-सामग्री तैयार करते हैं, जिसमें थोड़ी मात्रा में रेडियम-धर्मी कार्बन, फास्फोरस अथवा कुछ अन्य रेडियो-आइसोटोप मौजूद हों। यह वस्तु अपने विकिरण के रूप संकेत प्रदान करती है। वैज्ञानिक लोग गाइगर काउन्टर की सहायता से शरीर में उसकी मौजूदगी के सम्बन्ध में पता लगा सकते हैं।

वे यह भी जान सकते हैं कि वह पदार्थ कहाँ जाता है, रासायनिक प्रक्रिया द्वारा कैसा रूप धारण करता है और कब शरीर फालतू वस्तु के रूप में इन अणुओं को खारिज कर देता है। इस प्रकार के अध्ययन से पता चलता है कि शरीर (जीवित-पदार्थ) के अधिकांश व्यूहाणु

(मोलिक्यूल) किस गति से बदलते रहते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि हर वर्ष मनुष्य के शरीर के ६८ प्रतिशत भाग की पुनः रचना हो जाती है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य का निर्माण करने वाले पदार्थों का ६८ प्रतिशत भाग, आज से एक वर्ष बाद बदल जाएगा।

किन्तु रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग शायद रोगों के निदान सम्बन्धी कार्यों में सबसे अधिक तेजी के साथ बढ़ता जा रहा है। ओक्लाहोमा नगर में हाल में हुए सम्मेलन में इस क्षेत्र में किए गए अनेक महत्वपूर्ण अध्ययनों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया गया है। एक लेख में हृदय-रोग से पीड़ित व्यक्तियों के रक्त-प्रवाह के विषय में किये गये अध्ययन का विवरण पेश किया गया। आजकल रक्त-प्रवाह को मापने के लिए रक्त धमनियों में जो नलिकाएं डाली जाती हैं तथा अन्य उपाय बरते जाते हैं, उनसे रोगी को बहुत असुविधा होती है।

अब वाशिंगटन राज्य में सिएटल विश्वविद्यालय के डा० रैक्स एल० हफ रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग कर के एक अधिक सरल विधि का विकास कर रहे हैं। वे रोगी की नस में मनुष्य की श्विति (एलब्यूमिन) की एक खुराक टीके द्वारा प्रविष्ट कर देते हैं। इस श्विति में वह रेडियम-धर्मी आयोडीन के "अन्वेषक" मिला देते हैं, जो हृदय में इस श्विति के मार्ग को स्पष्ट बता देते हैं।

ओक्लाहोमा में जो अन्य रिपोर्टें पढ़ी गईं, उन में रेडियम-धर्मी अन्वेषकों के उन अनुसन्धान कार्यों का वर्णन किया गया है, जो रोग के मूल कारणों का पता लगाने के उद्देश्य से किये गये हैं। रेडियो-आइसोटोपों के प्रयोग से जिगर तथा गुर्दों के रोगों और रक्त-चाप का निदान करने तथा मस्तिष्क की रसौलियों के स्थान का पता लगाने में सहायता मिलती है।

रोगों का निदान करने तथा उपचार करने के सम्बन्ध में रेडियो-आइसोटोपों के प्रयोग की दिशा में हाल में जो प्रगति हुई है, ये उस के कुछ उदाहरण हैं। अनेक देशों के चिकित्सक प्रतिदिन इन अमूल्य रेडियो-आइसोटोपों के उपयोग के नए-नए तरीके मालूम कर रहे हैं।

क्या आप जानते हैं ?

१—३० जून १६५७ तक छः महीनों में एयर इंडिया इंटरनेशनल और इंडियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन के विमानों से ३,०६,०४८ व्यक्तियों ने यात्रा की तथा उनके विमान कुल १,१५,८७,६२६ मील उड़े।

२—आलोच्य अवधि में रात को डाक ले जाने वाले विमानों से ३१,६६७ व्यक्तियों ने यात्रा की। इन्होंने १४,०६,५२६ पौंड माल ढोया तथा २१,१३,६६७ पौंड डाक पहुँचाई।

३—जिन विमानों का उड़ान मार्ग निर्धारित नहीं किया गया था वे ३० जून, १६५७ तक ३१,४६,५८० मील उड़े और उनसे ७४,७२८ व्यक्तियों ने यात्रा की तथा उन्होंने ५,६८,२६,०८३ पौंड माल ढोया।

४—३० जून १६५७ तक नागरिक उड़ान विभाग के अन्तर्गत कुल ८४ हवाई अड्डे थे।

५—दिसम्बर १६५६ में "ए" लाइसेन्स वाले ५२३ विमान चालक थे। जून १६५७ तक इनकी संख्या बढ़कर ७१५ हो गयी। "बी" लाइसेन्स वाले विमान चालकों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और आलोच्य अवधि में 'बी' लाइसेन्स वाले ५८६ विमान चालक थे।

६—विमानों की देखभाल करने के भारतीय लाइसेंस प्राप्त इंजीनियरों की संख्या जून १६५७ में ६०३ हो गयी जो दिसम्बर १६५६ में ८७० थी।

विज्ञान-वार्ता

गैसों द्वारा बिजली

अमेरिका की नेशनल कार्बन कम्पनी ने बिजली पैदा करने वाला एक ऐसा नया जैनरेटर तैयार किया है, जो उद्जन (हाइड्रोजन) और ओषजन (औक्सिजन) गैसों की रासायनिक शक्ति से प्रत्यक्ष रूप में विद्युत् शक्ति उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार का प्रथम यन्त्र सेना के रैडार यन्त्रों को विद्युत्-शक्ति प्रदान कर रहा है। इस यन्त्र को "फ्यूएल सैल्स" (ईंधन कोष) की संज्ञा दी गई है।

इस बिजली उत्पन्न करने वाले यन्त्र के संचालन का रहस्य कार्बन के खोखले और महीन छिद्रों से युक्त वे विद्युद्-द्वार (इलेक्ट्रोड्स) हैं, जिनका विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के अनन्तर उपयोग किया जाता है। एक "ईंधन कोष" (फ्यूएल सैल्स) में ऐसे ६ विद्युत् द्वार होते हैं, जो प्लास्टिक के एक गोल घेरे में जुड़े रहते हैं। जब यह "कोष" कार्य शुरू करता है, तब इसे पोटेशियम हाइड्रोक्साइड के घोल से भर दिया जाता है। यह विद्युदंश्य (इलैक्ट्रोलाइट) के रूप में कार्य करता है। इसके अनन्तर गैसें कार्बन के विद्युद्-द्वारों में से "कोष" में पहुँचती हैं तथा विद्युत्-रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बिजली के रूप में परिवर्तित होती रहती हैं।

आणविक "बिजली की आँख" का निर्माण

अमेरिका के "वैस्टिंगहाउस इलैक्ट्रिक कार्पोरेशन" ने एक नई किस्म की "बिजली की आँख" का निर्माण किया है, जिसमें दिखाई पड़ने वाली प्रकाश की धारा के बदले आणविक विकिरण का उपयोग किया जाता है। प्रचलित "बिजली की आँख" का उपयोग दरवाजे खोलने, बिजली का बटन दबाने तथा अन्य प्रकार के विद्युत् यन्त्रों में किया जाता है तथा यह कार्य फोटो-इलैक्ट्रिक बैटरी पर प्रकाश की धारा पड़ने से सम्पन्न होता है। नई "बिजली की आँख" रेडियमधर्मी स्ट्रोंशियम-९० की थोड़ी सी मात्रा से अपने कार्य सम्पन्न करती है। इसका उपयोग साधारण फोटो-इलैक्ट्रिक बैटरी में प्रकाश के लट्टू के स्थान पर किया जाता है। स्ट्रोंशियम से विकिरण की अदृश्य धारा फोटो-इलैक्ट्रिक बैटरी पर पड़ती है तथा बैटरी विकिरण को विद्युत् प्रवाह (करंट) के रूप में परिवर्तित कर देती है।

आणविक "बिजली की आँख" का लाभ यह है कि इसकी कार्य कुशलता पर अधिक भरोसा किया जा सकता है तथा यह देर तक काम भी कर सकती है। इसके पुर्जों को बदलने अथवा उनकी मरम्मत करने की भी आवश्यकता नहीं होती। वर्तमान व्यवस्था उन स्थानों में इस्तेमाल में नहीं आ सकती, जहाँ धुँआ या धूल हो, क्योंकि ये चीजें फोटो-इलैक्ट्रिक बैटरी तक पहुँचने से पूर्व ही प्रकाश-धारा को अस्पष्ट बना देती हैं। नई आणविक "बिजली की आँख" के संचालन में इस प्रकार कोई बाधा नहीं।

दूरगामी राकेट-यानों के निर्माण के लिए टिटैनियम धातु के नए मिश्रण

अमेरिका में टिटैनियम धातु के दो उल्लेखनीय नए मिश्रण तैयार किए गए हैं, जो अत्यधिक ताप उत्पन्न करने वाले यन्त्रों में इस धातु की उपयोगिता में अभिवृद्धि कर सकेंगे। आशा है कि ये मिश्रण राकेटों और दूरमारक अस्त्रों की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

इनमें से एक मिश्रण ऐसा है, जिसमें जोड़ या टांका लग सकता है। टिटैनियम धातु के अन्य मिश्रणों के समान ही यह मजबूत है। फिर भी यह २०० डिग्री अधिक ताप सहन कर सकता है।

दूसरा मिश्रण ऐसा है, जिससे वस्तुओं के निर्माण में अत्यधिक सुगमता होती है। जब मिश्रण अपेक्षाकृत

मुलायम हो, तब इसकी चादरें सुगमतापूर्वक बना ली जाती हैं। इसके बाद मजबूत करने के लिए ताप का उपयोग किया जाता है। इससे इसकी मजबूती तीन-गुने से भी अधिक हो जाती है।

इन मिश्रणों का विकास नाइल्स (ओहायो) की मैलोरीशेरोन टिटैनियम कार्पोरेशन द्वारा किया गया है।

प्लूटोनियम को ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने वाली आणविक भट्ठी का निर्माण

अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन की घोषणा के अनुसार अमेरिका ने एक ऐसी आणविक भट्ठी तैयार की है, जो यूरेनियम के स्थान पर ईंधन के रूप में प्लूटोनियम का इस्तेमाल करती है। संसार में यह इस किस्म की पहली आणविक भट्ठी है। अनेक कठिनाइयों को पार करने के बाद इंजिनियरों ने इसका विकास किया है।

यूरेनियम से सर्वथा विपरीत, प्लूटोनियम मनुष्य-निर्मित एक पदार्थ है। इसका निर्माण आणविक भट्ठी में किया जाता है। यूरेनियम २३८ (प्राकृतिक यूरेनियम) को न्यूट्रोन के सहारे परिवर्तित किया जाता है। प्रारम्भ में यह यूरेनियम-२३८ के रूप में परिवर्तित होता है, जो यूरेनियम का एक अस्थिर आइसोटोप होता है। यह तत्व एक बीटा कण का परित्याग कर स्थिरता प्राप्त करने की चेष्टा करता है तथा नैप्चूनियम नामी कृत्रिम और अस्थिर तत्व के रूप में परिवर्तित हो जाता है। नैप्चूनियम इसके बाद एक अन्य बीटा कण का परित्याग कर प्लूटोनियम बन जाता है।

प्लूटोनियम यूरेनियम के समान विखंडनीय पदार्थ है, किन्तु यह उसकी अपेक्षा अधिक प्रतिक्रियाशील और सक्षम है।

भारहीनता की अवस्था में जीव

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के कारेसपोंडिंग सदस्य येवगनी फेदोरोव ने अपने एक लेख में बताया कि स्पुतनिक में उड़ाये गये लैका की नाड़ी, रक्तचाप और श्वासक्रिया के विश्लेषणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम निकाले गये हैं जो बताते हैं कि भारहीन अवस्थाओं में जीवित शरीर की कोई हानि नहीं होती।

फेदोरोव का कहना है कि कुत्ते की गतिविधियों में कोई असंगति नहीं दिखाई दी। इस मामले में भारहीनता की अवस्थाओं में पेशियों की गड़बड़ियों की कुछ हद तक दृष्टिशक्ति ने पूर्ति की है। ब्रह्मांड किरणों के आंकड़ों से यह पता लगता है कि ब्रह्मांड विकिरण की प्रचंडता पृथ्वी की भू-चुम्बकीय अक्षांस रेखा पर बदलती है। इस तरह वैज्ञानिकों ने विभिन्न शक्ति के ब्रह्मांड कणों के परिचलन के तथाकथित अक्षांशीय प्रभाव का पता लगाया। इसका कारण यह तथ्य है कि बहुत बड़ी शक्ति के पारमाणविक बीजाणु पृथ्वी के वायुमण्डल के किसी भी स्तर में घुस सकते हैं। अमहत्वपूर्ण शक्ति वाले कण केवल मेरु अंचल में प्रविष्ट हो सकते हैं। कुछ मामलों में प्राकृतिक तरंग परिवाही अयनमंडल में पाये गये हैं। वे मुक्त रूप में विद्युत-चुम्बकीय तरंगों को खास दिशाओं में संचालित करते हैं।

पारमाणविक हथियार युक्त विमानों के चालकों में आकस्मिक मानसिक विकारों की सम्भावना

मानसिक-रोगों सम्बन्धी चिकित्सक प्रो० वासिली बांश्चिकोव ने बताया कि अनेक पश्चिमी देशों के ऊपर पारमाणविक और उद्जनीय बमों के साथ निरन्तर उड़ान करने वाले किसी विमान-चालक के मन में सहसा कोई विकार आ जाये तो उसके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं। यह बात सर्वविनाशकारी हथियार ले जाने वाले बमवर्षकों के चालकों तथा भूमि से विविध संचार-विधियों द्वारा चालकों को निर्देशन देने वाले तथा उनके कार्यों में समन्वय कायम करने वाले दोनों पर लागू होती है। अगर इनमें से किसी की ओर से भी साधारण से साधारण त्रुटि हो जाये या आधुनिक उड्डयन के निर्देशन की जटिल व्यवस्था में काम करने वाले किसी भी व्यक्ति का मस्तिष्क सहसा विकृत हो जाये तो परिणाम यह होगा कि लाखों मानवीय जीवन नष्ट हो जाएंगे।

मानसिक रोग बिना किसी पूर्व चेतावनी के प्रायः अकस्मात प्रकट हो जाते हैं क्योंकि रोग का पहला लक्षण अप्रयोजनकारी होता है। और बेढंगेपन की हरकतें दिखाई देती है जो अधिक अप्रत्याशित होती हैं क्योंकि वे ऐसे लोगों में प्रकट होती है जिनमें इससे पहले मानसिक रोग का कोई लक्षण नहीं दिखायी देता।

विधि आधिकी (फारेन्सिक साइकिएट्री) तथाकथित असामान्य अवस्थाओं को मानती हैं जिनमें ऐसे लोग जो मानसिक रोगी नहीं होते, सहसा मानसिक विकार के शिकार हो जाते हैं। ये अवस्थायें अनेक प्रकार की होती हैं जिनमें वैसे एक समान विशेषता होती है यानी कुछ मात्रा में मानसिक रोग और अपनी हरकतों को नियंत्रित करने की क्षमता अस्थायी रूप में खोना।

जो चीजें ऐसी असामान्य अवस्थाएं पैदा करती हैं, वे हैं निरन्तर दबाव, मानसिक अथवा शारीरिक थकान और अन्य बातें जो स्नायुतंत्र तथा समग्र रूप में शरीर को निर्बल बनाती हैं। इनमें से अनेक तो विमानचालक की कठिनाइयों और अथक कार्य के अनिवार्य फल होते हैं। खास तौर पर महत्वपूर्ण तो यह तथ्य है कि विमान चलाने वाले लोगों को निरन्तर वायुमंडलीय दबाव और अत्यन्त विरलीकृत हवा में अक्सर होने वाले परिवर्तनों के प्रभावों का सामना करना पड़ता है। इसका रक्त-संचार और सांस लेने जैसे शरीर के बड़े कार्यों पर असर पड़ता है और उच्चतर स्नायविक क्रिया-कलाप पर काफी ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

मास्को मानसिक रोग संस्थान के कार्यकर्ताओं ने उदाहरणार्थ विकारों पर आक्सीजन की अपर्याप्तता का प्रभाव सिद्ध कर दिया है।

विपत्ति किसी प्रकार आये —चाहे वह आकस्मिक गलती या आकस्मिक रोग के कारण आये अथवा जान-बूझ कर की जाने वाली उत्तेजना या युद्धोन्माद का फल हो —विनाश को टाला जा सकता है बशर्ते पारमाणविक और उद्जनीय बमों को ले जाने वाले विमानों की उड़ानों पर रोक लगा दी जाए।

भू-भौतिक वर्ष की खोजों के बारे में अमेरिका की रिपोर्ट

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के सिलसिले में अमेरिका ने शुरू के पाँच महीनों में जो कार्य किया है, उसके व्यापक वैज्ञानिक परिणाम निकले हैं। इन कार्यों के लिये सैकड़ों वैज्ञानिकों और बहुत सी वैज्ञानिक संस्थाओं ने योग दिया।

३० नवम्बर १९५७ तक की खोजों पर प्रकाश डालते हुये अमेरिकी भू-भौतिक वर्ष समिति के कार्यवाहक निर्देशक श्री ह्यू ओडिशा ने 'अमेरिकन सोसियेशन फौर दी एडवान्समेन्ट औव साइन्स' की सप्ताहिक पत्रिका "साइन्स" में एक लेख प्रकाशित किया है। इसमें समुद्र गर्भ, ग्रीनलैंड की हिमाच्छादित चोटियों, वाह्य आकाशमण्डल तथा एण्डीज पर्वतमाला सम्बन्धी खोजों का विवरण है।

इसमें आपने बताया है कि ग्रीनलैंड की बर्फ की चोटी के नीचे १००० फुट तक की खुदाई करने पर बर्फ की अनेक वार्षिक परतें सुरक्षित पाई गई हैं। इससे २,००० वर्ष के मौसम की जानकारी मिलती है।

अन्तरिक्ष से ऐसे रेडियो-संकेत प्रतिबिम्बित हुए है, जिन्हें इस बात की परीक्षा के लिये छोड़ा गया था कि सूर्य और पृथ्वी के बीच के रिक्त स्थान की पूर्ति क्या वस्तु करती है।

उच्च आकाशमंडल में जो रौकेट छोड़े गये उनसे रेडियों में रुकावट होने के कारणों का पता चला है। यह पता चला है कि सूर्य की लपटों के फलस्वरूप अयनमंडल के निम्नतम भाग के १०-१२ मील नीचे अयनिक कणों की एक बड़ी परत लग जाती है।

अन्तरिक्ष में छोड़े गये रौकेटों से दबाव, तापमान, घनता आदि के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़े उपलब्ध हुये हैं। गत ३० नवम्बर तक ऐसे ८१ रौकेट छोड़े जा चुके थे। इस विषय में रूसी उपग्रहों से भी लाभ होने की बात कही गई है।

प्रशान्त महासागर में किये गये पर्यवेक्षणों में इलैक्ट्रो जैट करेण्ट की विद्यमानता के विश्वास की पुष्टि हुई है। यह भूमध्यवर्ती एक विद्युत् करेंट है जो उच्च आकाशमंडल में भूमंडल का चक्कर लगाती है। अन्य धाराएँ उत्तरी और दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुवों का चक्कर लगाती है।

दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र के 'लिटिल अमेरिका' स्थित ऋतु-केन्द्र के कार्यों से दक्षिणी गोलार्द्ध में मौसम की भविष्यवाणी करने के काम में सहायता मिली है। इतिहास में पहली बार दक्षिणी ध्रुव-क्षेत्र के मौसम का नकशा दिन में दो बार तैयार करने में भी सफलता मिली है।

भूमि की ऊपरी परत के नीचे की भूगर्भ-बनावट सम्बन्धी खोजों से भूमि के भीतर पाये जाने वाले पदार्थों के वितरण के बारे में भी बहुत सी नई जानकारी मिली है।

उक्त रिपोर्ट में और जिन खोजों के बारे में संकेत किया गया है उनमें उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव के आलोकित क्षेत्र, खाड़ी की जल-धारा के १००० फुट नीचे की समुद्री लहर, दक्षिणी ध्रुव में तापमान की चरम सीमा, दक्षिणी ध्रुव का हिममंडल, एण्डीज पर्वतों की बनावट तथा समुद्र में गुरुत्वाकर्षण-शक्ति की पैमाइश की बातें भी हैं।

श्री औडिशा ने बतलाया है कि अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष सम्बन्धी तीन प्रमुख केन्द्रों में इस वर्ष के शुरू में बड़ी तेजी से आंकड़े इकट्ठे होने लगेंगे।

रेडार द्वारा मौसम की पूर्व-सूचना

नई दिल्ली में इस्पात के ७५ फुट ऊँचे बुर्ज पर स्थित एक रेडार यन्त्र द्वारा चौबीसों घण्टे हर क्षण ऐसे संकेत भेजे और प्राप्त किये जाते हैं जिन्हें भाषा में परिवर्तित करने से हवाई जहाजों के यात्रियों को अत्यधिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

यह रेडार सफदरजंग हवाई अड्डे के पास कायम है और दक्षिण पूर्वी एशिया में अपनी किस्म का सब से बड़ा है। यह तूफानों की पूर्व-चेतावनी दे देता है और सैंकड़ों मील दूर तक आँधी, तूफान व गड़गड़ाहट आदि की जानकारी प्राप्त कर लेता है और उससे हवाबाजों को मौसम की सही सूचना दी जा सकती है।

उड्डयन-कार्यों में सहयोग देने के लिए यह रेडार यन्त्र अमेरिका के "टैक्निकल सहयोग मिशन" ने उस समझौते के अधीन दिया है जो १९५४ में भारत-सरकार के साथ किया गया था। इस संयुक्त योजना के अन्तर्गत अमेरिका हवाई अड्डों पर दूरगामी संचार-साधनों तथा यातायात व ऋतु सम्बन्धी व्यवस्थाओं के सुधार और विस्तार के लिए दीर्घकालीन दृष्टि से सहयोग दे रहा है।

२५० किलोवाट की पूर्ण शक्ति से यह रेडार ४०० मील तक कार्य कर सकता है। इस पर ३०१८ लाख डालर (१५ लाख १० हजार रु०) खर्च आया है और यह अड्डे पर गत अक्तूबर से चालू किया गया है। इससे पूर्व अमेरिकी इंजीनियर टौमस नेग्री ने इसे लगाने और भारतीय कर्मचारियों को उसका प्रयोग सिखाने में मदद दी थी।

यह रेडार स्टेशन ऋतु-विज्ञान के महानिर्देशक के कर्मचारियों द्वारा चलाया जाता है। इससे हवाबाजों को मदद देने के अलावा मौसम का पूर्व अनुमान करने में भी मदद मिलती है। इसका सबसे बड़ा फायदा वर्षा ऋतु में होगा जब कि गहरे बादलों और वर्षा के कारण हवाई जहाजों का उड़ना जोखिम का काम हो जाता है। इससे पूर्व-सूचना पाने के कारण देश-विदेश के हवाई जहाजों का मार्ग इस इलाके में निरापद हो जायेगा।

अमेरिका में उच्च अध्ययन के लिए ५० यात्रा-अनुदान

जिन भारतीय विद्वानों ने सितम्बर, १९५८ से प्रारम्भ होने वाले शिक्षा-वर्ष में अमेरिका की उच्च शिक्षण संस्थाओं में प्रविष्ट होने के लिए अनुमति प्राप्त कर ली है वे अब फुलब्राइट द्वारा दी जाने वाली यात्रा सम्बन्धी ५० सहायता-वृत्तियों के लिए अपने प्रार्थनापत्र भेज सकते हैं।

भारत स्थित अमेरिकी शिक्षा प्रतिष्ठान ने यह घोषणा करते हुए कहा है कि सभी विषयों का अध्ययन करने वालों के प्रार्थनापत्र प्राप्त किये जायेंगे, किन्तु ललित-कला, प्राचीन साहित्य, काव्य, इतिहास, समाज-विज्ञान तथा

विशुद्ध विज्ञान का ध्ययन करने वालों को विशेषता दी जायेगी।

प्रत्येक प्रार्थी को प्रादेशिक समिति के समक्ष (१) सितम्बर १६५८ से प्रारम्भ होने वाले शिक्षा-वर्ष में किसी अमेरिकी विश्वविद्यालय अथवा अन्य उच्च शिक्षण संस्था में प्रविष्ट होने का अधिकृत अनुमतिपत्र, (२) छात्रवृत्ति प्रदान करने वाले किसी विश्वविद्यालय की ओर से एक अधिकृ पत्र के रूप में आर्थिक सहायता का आश्वासन, बैंक में हिसाब किताब का व्यौरा या प्रथम दर्जे के किसी मजिस्ट्रेट का ऐसा प्रमाणपत्र जिसमें पर्याप्त राशि की उपलब्धि की गारंटी की गई हो, प्रस्तुत करने होंगे। यह अनुमान है कि हर वर्ष के अध्ययन के लिए १० हजार रुपये की व्यवस्था रहनी चाहिए।

प्रार्थी भारत के नागरिक होने चाहिए और प्रार्थना भेजने तथा चुनाव के समय वे भारत में रहते हों। इसके अलावा, प्रार्थी को अपने विषय का कम से कम दो वर्ष का अनुभव होना चाहिए। चुनाव में उन लोगों को विशेषता दी जायेगी जिनके पास (क) स्नातकोत्तर उपाधि अथवा डिप्लोमा होगा; (ख) जिनके पास प्रथम दर्जे की स्नातकीय उपाधि अथवा स्नातकोत्तर उपाधि या डिप्लोमा होगा; (ग) जिनकी आयु २४ वर्ष से ३५ वर्ष के मध्य होगी और (घ) हाल में विदेश में शिक्षा नहीं पाई होगी।

उम्मीदवारों के पास तभी आवेदनपत्रों के फार्म भेजे जायेंगे जब वे ऊपर दी गई शर्तों को पूरा करेंगे और (१) एवं (२) में बताये गये कागज पत्रों को भेज देंगे। प्रार्थना-पत्र भर कर १५ अप्रैल १६५८ तक निम्न पते पर भेज देने चाहिए। इन पतों पर प्रादेशिक चुनाव-समिति से फार्म प्राप्त किये जा सकते हैं।

उत्तरी भारत के लिए यू० एस० एजुकेशनल फाउण्डेसन इन इण्डिया, १७ कर्जन रोड, नई दिल्ली। पूर्वी भारत के लिए: यूनाइटेड स्टेट्स इन्फर्मेशन सर्विस, ७ चौरंगी रोड, कलकत्ता। दक्षिणी भारत के लिए: यूनाइटेड स्टेटस इन्फर्मेशन सर्विस, १५८ माउण्ट रोड, मद्रास। पश्चिमी भारत के लिए: यूनाइटेड स्टेट्स इन्फर्मेशन सर्विस, दि इंटरनेशनल, १६ क्वीन्स रोड एस्टेट, बम्बई।

नये किस्म की कपास

सोवियत संघ के शोधकर्त्ताओं ने एक नये किस्म की कपास तैयार की है जिसके रेशे की लम्बाई ४२ मिलीमीटर तक है। कपास की यह किस्म प्रतिहेक्टर (१ हेक्टर = २·५ एकड़) ३·५ टन से ४ टन तक पैदा होती है जो मिस्र की कपास की सर्वोत्कृष्ट किस्म कार्नाक के उत्पादन की तुलना में अधिक है।

विगत पच्चीस वर्षों में सोवियत संघ में पैदा होने वाली कपास की मुख्य किस्में चार बार बदली गई हैं। कपास पैदा करने वाले और किसी भी देश में कपास की पुरानी किस्मों के स्थान पर उन्नत किस्मों को इतने पूर्ण रूप में कभी भी प्रयुक्त नहीं किया गया है।

प्लास्टिक का सामान तैयार करने का नया उपकरण

क्लीवलैण्ड की 'रैंड डिवेलपमैंट कार्पोरेशन' नामक कम्पनी एक नया उपकरण तैयार करके बेच रही है। इसकी सहायता से प्लास्टिक डाल कर मजबूत बनाई गई, तरह-तरह की वस्तुएँ जैसे नौकाएँ, ट्रकों के ढाँचे और तैरने के जलकुन्ड बनाने की लागत कम हो जायेगी और उन्हें बनाने में समय भी कम लगेगा। इसे 'प्लास्टिक गन' कहते हैं। इस 'गन' से काँच के रेशों को छील कर उसे प्लास्टिक राल के साथ मिलाकर किसी भी साँचे में ढाला जा सकता है या किसी भी परत पर बिछाया जा सकता है। उक्त कम्पनी ने यह रिपोर्ट दी है कि नौकाओं, ट्रकों के ढाँचों, रासायनिक टंकियों, नहाने के टबों या चिलमचियों और फर्शों तथा दीवारों पर रासायनिक तथा आर्द्रता-अवरोधक परत बिछाने के लिए इस उपकरण को सफलता-पूर्वक इस्तेमाल करके देखा जा चुका है। इसकी सहायता से कई तरह का प्लास्टिक का सामान बड़ी मात्रा में तैयार किया जा रहा है।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित **गवेषणापूर्ण** लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत चरना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान
अप्रैल १६५८

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद ।
मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, इलाहाबाद ।

भाग ८७

संख्या २

मई १९५८ वृष २०१५ वि० वैशाख १८८० श०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये] [एक अङ्क का मूल्य ३७ नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का, यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायँगे।

विज्ञापन की दरें

	एक अंक के लिये	एक वर्ष के लिये
पूरा पृष्ठ	२० रुपया	२०० रुपया
आधा पृष्ठ	१२ रुपया	१२० रुपया
चौथाई पृष्ठ	८ रुपया	८० रुपया

एक से अधिक रंग में विज्ञापन होने पर १५ रुपया प्रति रंग अतिरिक्त।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तै० उ० ।३।५।

भाग ८७ | वृष २०१५ विक्र० बैशाख १८८० शाकाब्द; मई १९५८ ई० | संख्या २

सम्पादकीय

सोवियत संघ द्वारा परमाणविक अस्त्रों के परीक्षण पर रोक

ईसा से लगभग ३०० वर्ष पूर्व कलिंग युद्ध के पश्चात् सम्राट् अशोक ने राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्ध का स्वेच्छा से त्याग किया था। आज की परिस्थितियों में जब दो विश्व युद्धों और आज के चल रहे शीत युद्ध से मानवता कराह रही है निरस्त्रीकरण की समस्या एक विशेष महत्व रखती है। सोवियत संघ ने एकपक्षीय ढंग से पारमाणविक तथा उद्जन बमों के परीक्षण पर रोक का निर्णय कर इस दिशा में एक ठोस कदम उठाया है।

पश्चिमी राष्ट्रों का कहना है कि अमेरिका प्रक्षेपणास्त्रों में रूस से पीछे है। रूस के समकक्ष आने के हेतु उसे प्रक्षेपणास्त्रों के बचाव के लिए अन्तरिक्ष में कुछ परीक्षण करने आवश्यक हैं। इस विषय में रूस के बराबर समर्थ होने पर वह भी पारमाणविक परीक्षण बन्द कर देगा। किन्तु यह आगे पीछे की समस्या तो सम्भवतः कभी हल न हो सकेगी। सोवियत रूस की यह घोषणा पश्चिमी राष्ट्रों की प्रतिष्ठा और शान्तिप्रियता को एक खुली चुनौती है। देखना है वह इसे किस प्रकार लेते हैं।

यह बड़े खेद की बात है कि जिन साधनों का उपयोग मानवता के सम्मुख उपस्थित भूख, गरीबी तथा अन्य समस्याओं के समाधान में होना चाहिये उन साधनों का उपयोग ऐसे हथियारों के उत्पादन और परीक्षणों पर होता रहा है जिनका लक्ष्य विनाश का सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग ढूँढ़ना रहा है। आज जब उत्पत्ति विषयक शास्त्रानुसार यह निश्चय हो गया है कि पारमाणविक शस्त्रों के परीक्षण का परिणाम भयावह ही होता है तब केवल यह कह कर ही इन परीक्षणों को करते जाना कि मानवता पर इनके प्रभाव के विषय में ठीक ज्ञात नहीं सर्वथा अनुचित है। १०—१५ पीढ़ियों के पश्चात जब इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकेगा कुछ भी कपना सम्भव न हो सकेगा। यही समय है जब रूस तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्र पारमाणविक शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोगों की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित करें।

शून्य लोक में कृत्रिम उपग्रह प्रेषित करने के पश्चात् यह घोषणा दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है जिसने सोवियत रूस को अत्यधिक लोकप्रिय बना दिया हैं। रूस के इस निर्णय

के उत्तर में यदि अन्य पारमाणविक शक्तियाँ भी इसी प्रकार ऐसे अस्त्रों का परीक्षण बन्द कर दें तो शान्ति को सुदृढ़ बनाने तथा समस्त संसार की सुरक्षा को स्थिर रखने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास होगा। ऐसा कदम समग्ररूप में अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों में सुधार करने की दिशा में निर्विवाद रूप से योगदान देगा और शान्ति के भविष्य और आने वाली पीढ़ियों के लिये पैदा हुये पीड़ादायी भय से मानव जाति को मुक्त करने में सहायक होगा।

प्रो० वोगल का देहान्त

विख्यात डच विज्ञान प्रो० जीन फिलिप वोगल का लेडन (हालैंड) के पास उनके अपने गाँव में १० अप्रैल को देहान्त हो गया है। उनकी आयु ८८ वर्ष की थी।

प्रो० वोगल भारतीय पुरातत्व शास्त्र के महान ज्ञाता थे और भारत की संस्कृति, साहित्य और कला से उनका पुराना सम्बन्ध था। मरने से पहले परिचार-गृह में भी वे अपनी पुस्तक, 'हंस मोटिफ इन इन्डियन आर्ट" (भारतीय कला में हंस-चिन्ह का स्थान) को अन्तिम रूप देने में व्यस्त थे।

श्री जीन फिलिप वोगल का जन्म ९ जनवरी, १८७१ को हुआ था। शूद्रक के सुप्रसिद्ध संस्कृत नाटक, 'मृच्छकटिक' का डच भाषा में अनुवाद करने पर १८९७ में एम्सटरडम विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट की उपाधि दी। १९०१ से १९१२ तक श्री वोगल ने भारत के पुरातत्व विभाग में कार्य किया। १९१४ में श्री वोगल लेडन विश्वविद्यालय में संस्कृत और भारतीय पुरातत्व शास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त किए गए जहाँ से उन्होंने १९३९ में अवकाश ग्रहण किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपना सारा जीवन भारतीय शास्त्रों के अध्ययन में ही बिताया। प्रो० वोगल ने डच, अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषाओं में भारतीय कला इतिहास और पुरातत्व शास्त्र पर जो किताबें लिखी हैं वे उनके गहन अध्ययन का प्रमाण है उन्होंने लेडन में कर्न इन्टीट्यूट की स्थापना की। हालैंड में यही एक ऐसी संस्था है जो भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति में शोध कार्य करती रही है आशा है कि यह संस्था अपने संस्थापक के चरणचिन्हों पर चलकर आगे भी सराहनीय कार्य करेगी और भारतवर्ष के पुरातत्व विभाग से सदैव की भाँति अपना सम्बन्ध रखकर अपने ध्येय की पूर्ति के हेतु प्रयत्नशील रहेगी।

विज्ञान, मई, १६५८,
पृष्ठ ३५—४३
गतांक से आगे—(५)

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल०, साहित्यरत्न, प्राध्यापक, कृषि रसायन, प्रयाग वि० वि०]

भारतीय कृषि के व्यावहारिक-क्षेत्र में **घाघ और भड्डरी** के प्रमुख स्थान हैं। मुगलकाल में राजा टोडरमल ने भूमि-पैमाइश में जो चातुर्य दिखलाया, उसे आज भी एक स्वर से स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार **घाघ और भड्डरी** ने जनता के मध्य जो कृषि विषयक ज्ञान प्रसारित किया वह आज भी लोक कहावतों एवं सूक्तियों के रूप में वर्तमान है। ये दोनों कृषि के प्रकाण्ड पंडित थे और इनकी शिक्षाओं से पूरा पूरा लाभ उठा कर ग्रामीण जनता आज भी इन्हें अपने हृदयों में बसाये हुये है। किन्तु खेद है कि इन दोनों का काल आज तक निश्चित नहीं हो पाया। यहाँ पर दो उद्धरणों के द्वारा इसे और स्पष्ट किया जा रहा है:—

श्री कृष्ण शुक्ल, विशारद अपनी कृति "घाघ भड्डरी की कहावतें—सं० १६६८" में लिखते हैं:—

"विक्रमाब्द की अठारहवीं शताब्दी के प्रायः अन्तिम भाग में कन्नौज के निकट-निवासी "घाघ कवि" एक अनुभवी कृषक हो गये हैं, जिन्हें खगोल का अच्छा ज्ञान था। वे वर्षा-विज्ञान के पूर्ण पण्डित थे और कृषि-शास्त्र के आदर्श आचार्य। जिस प्रकार 'घाघ' की कहावतें युक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) तथा बिहार में प्रचलित हैं उसी प्रकार पञ्जाब और राजपूताने में 'भड्डरी' की कहावतें प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। 'भड्डरी' का प्रामाणिक जीवन कहीं नहीं मिला अतः इतना ही कहा जा सकता है कि 'भड्डरी' राजपूताने के निवासी और एक योग्य ज्योतिषी थे। 'घाघ' के समान इनका भी वर्षा और खेती विषयक ज्ञान बड़ा ऊँचा था।"

"घाघ कवि कन्नौज के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवकली के दुबे थे। इनका जन्म विक्रम सम्वत् १७५३ कहा जाता है। इनका बसाया 'सराय घाघ' नामक गाँव कन्नौज स्टेशन से ३ फर्लाङ्ग पश्चिम है। इस गाँव में घाघ की आठवीं पीढ़ी के वंशज रामचरण दुबे व श्रीकृष्ण दुबे अब तक वर्तमान हैं।"

पं० शीतलाप्रसाद तिवारी अपनी पुस्तक "खेती की कहावतें—१६४६ ई०" में पृष्ठ ५ में लिखते हैं:—

तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर पता चला कि 'भड्डरी' की कहावतें तो अधिकतर ज्योतिष सम्बन्धी हैं, जिसमें नक्षत्रों की चाल के अनुसार यह बताया गया है कि कौन-कौन से नक्षत्रों के योग से वर्षा होगी; कौन से नक्षत्रों के योग से सूखा पड़ेगा। इसी प्रकार से फसलों में रोग लगने तथा टिड्डियों के आने एवं चूहों द्वारा फसलों को हानि पहुँचाने के बारे में भी भड्डरी ने जो बातें ज्योतिष शास्त्र के मुताबिक कही हैं अब अक्षरशः सत्य जँचती हैं।"

फिर भी रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी दो कृतियों, **कविता कौमुदी भाग १** तथा **घाघ और भड्डरी** (हिन्दुस्तानी एकेडमी, १६३१) में कुछ ऐसे प्रमाण रखे हैं जिनके आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि घाघ और भड्डरी दोनों ही १६वीं शती में हुये।

घाघ के सम्बन्ध में शिवसिंह सरोज का मत है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जो अन्तर्वेद में रहते और जिनका जन्म सं० १७५३ में हुआ था। मिश्र बन्धुओं ने भी इनका जन्मकाल सं० १७५३ और कविता काल सं० १७८० माना है। हिन्दी शब्द सागर के सम्पादकों ने घाघ को गोंडे का एक चतुर अनुभवी व्यक्ति कहा है। भारतीय चरिताम्बुधि में लिखा है कि ये कन्नौज के रहने वाले थे। सन् १६६६ ई० के आसपास इनकी उपस्थिति सम्भव है। पीर मुहम्मद मूनिस का मत है कि **शब्दावली** देखते हुये घाघ को चम्पारन और मुजफ्फरपुर जिले की सरहद पर औरैया मठ या बैरगनिया और कुड़वा चैनपुर के समीप किसी गाँव का निवासी माना जा सकता है।

बी० एन० मेहता घाघ को उपहासात्मक कहावतों का रचयिता कोई अहीर मानते हैं। मुकुन्दलाल का कथन है कि ये कानपुर जिले के अन्तर्गत किसी गाँव में सं० १७५३ में हुये थे। पं० रामनरेश त्रिपाठी एक स्थल पर लिखते हैं कि भाषा की दृष्टि से घाघ कन्नौज के निवासी नहीं जान पड़ते। कुछ लोग इन्हें फतेहपुर जिले का और कुछ छपरे जिले का बताते हैं। छपरे वालों का कथन है कि घाघ की पुत्रवधू कन्नौज की थीं। दोनों में परस्पर विवाद होते रहने के कारण अन्ततः घाघ को कन्नौज जा बसना पड़ा। यह भी कहा जाता है कि घाघ गंगा नदी के किनारे जिस गाँव में रहते थे, उसके ठीक दूसरी ओर लालबुझक्कड़ का गाँव था। यह आशु कवि था और घाघ को अपने व्यंग्यों द्वारा परास्त करना चाहता था। किन्तु एक दूसरे स्थल पर रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी खोजों का उल्लेख करते हुये घाघ को कन्नौज जिले के **चौधरी सराय** ग्राम का दुबे ब्राह्मण बताया है। ये पहले हुमायूँ के राज्यकाल में गंगा पार रहते थे। हुमायूँ के दरबार में रहने का सौभाग्य भी इन्हें मिला। इसके पश्चात् अकबर ने प्रसन्न होकर इन्हें **सराय घाघ** बसाने की आज्ञा दी। यह सराय घाघ कन्नौज से १ मील दक्षिण स्थित है। त्रिपाठी जी का कथन है कि घाघ को ग्वाल समझने वालों अथवा बराहमिहिर की संतान मानने वालों को अपनी भूल सुधार कर लेना चाहिये। अकबर का काल सन् १५४२ से सन् १६०५ तक है अतः घाघ का भी यही समय समझना चाहिये।

भड्डरी के विषय में भी अनेक किम्वदन्तियाँ हैं। बी० एन० मेहता ने लिखा है :—

"भड्डर के विषय में ज्योतिषाचार्य बराहमिहिर की एक बड़ी ही मनोहर कहानी कही जाती है। एक समय जब वे तीर्थ यात्रा कर रहे थे तो उनको मालूम हुआ कि अमुक दिन का उत्पन्न बच्चा बहुत बड़ा ज्योतिष-पंडित होगा अतः वे उज्जैन जाने लगे। रास्ते में एक गड़-रिया की कन्या से अपना विवाह किया और उनसे जो पुत्र हुआ उसका नाम भड्डरी हुआ। भड्डरी को भड्डली भी कहते हैं।"

यही बात कपिलेश्वर झा ने घाघ के लिये कही है किन्तु वह भड्डरी के लिये ही लागू होती है, घाघ के लिये नहीं। बिहार में घाघ के कई नाम प्रचलित हैं—डाक, खोना, भाड आदि। यह भाड ही भड्डरी है। मारवाड में 'डंक' नाम का अत्यधिक प्रचार है। मारवाड़ के भड्डरी स्त्री हैं, पुरुष नहीं। वह जाति की भंगिन थी और शकुन विद्या जानती थी। "डंक कहै सुनु भड्डली" के अनुसार डंक एक ब्राह्मण था जो ज्योतिष विद्या जानता था। ये दोनों आपस में विवाद किया करते। यह भी कहा जाता है कि भड्डली धन्वन्तरि की कन्या थीं। मेघमाला नामक संस्कृत ग्रंथ में भड्डरी की कई कहावतों के कुछ मूल श्लोक मिलते हैं।

घाघ की कहावतों के अध्ययन पर ज्ञात होने लगेगा कि 'घाघ' का दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर कृषि के लिये विस्तीर्ण एवं उपयोगी था। 'भड्डरी' राजपूताने जैसे शुष्क प्रदेश का वासी था और तब तक ज्योतिष शास्त्र का प्रयोग ग्रहों नक्षत्रों की गति बताने में हो चुका था अतः उस मरुभाग का वासी बनने के कारण भड्डरी ने वर्षा बताने की भविष्यवाणी प्रारम्भ की। इससे किसानों को अत्यन्त लाभ हुआ होगा किन्तु 'घाघ' ने वर्षा के साथ साथ कृषि में खादों के प्रयोग तथा बीजों की मात्रा और उनके बोने के समय, आदर्श कृषि तथा पशुबल पर भी जोर दिया। जहाँ तक कहावतों की बात है, ये निश्चित रूप से उत्तरी भारत की ही सृष्टि हैं क्योंकि भाषा अवधी है। साथ ही आज भी इसी भूभाग में ही इन कहावतों का कृषकों में अत्यन्त प्रचार है और कृषि पद्धति में वे उनकी पथ-प्रदर्शिका हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि 'घाघ' के उद्भव के पश्चात् ही 'भड्डरी' का विकास हुआ और 'घाघ' के अधूरे वर्षा ज्ञान को 'भड्डरी' ने पूरा किया। एक ओर जहाँ 'घाघ' ने कृषि में खादों के महत्व पर जोर दिया वहीं भड्डरी ने वर्षा या पानी पर जोर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय कृषि के लिये खाद और पानी दोनों ही अत्यावश्यक हैं। उस समय तक सिंचाई के प्रचुर साधन न थे, इसकी पुष्टि इसी से हो जाती है।

किन्तु इन दोनों कृषि-विशेषज्ञों ने एक ओर जहाँ कृषि शास्त्र को जनता की वाणी के माध्यम से उसे विस्तृत

करने की चेष्टा की वहीं दो एक त्रुटियाँ भी रह गईं। उदाहरणार्थ भूमि की उर्बरता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण और उसी के अनुसार खादों की उपयोगिता पर जोर। यहाँ यह सोचा जा सकता है कि उनके पूर्व तो भूमि का वर्गीकरण हो चुका था, उसकी क्या आवश्यकता? किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तब तक इस भूमि-वर्गीकरण को विशेष महत्व न देकर खादों के प्रयोग, उचित जुताई तथा पानी की मात्रा से ही भूमि उर्बरता बढ़ाने का एक सार्वभौमिक प्रयास इन दोनों विशेषज्ञों ने किया। गाय-बैलों पर विशेष ध्यान देते हुये भी 'घाघ' ने पशुओं के चारों (भोजन) का कोई वर्गीकरण न किया।

फिर भी ये प्रयास इतने सफल हुये कि आज भी, जब कृत्रिम खादों की बाढ़ आ रही है हमारे किसान 'घाघ' के पथ पर चल रहे हैं और 'भड्डरी' के वर्षा ज्ञान से लाभ उठा रहे हैं। उस समय वैज्ञानिक अध्ययन होना असम्भव था क्योंकि जनता में अशिक्षा का घना पहरा था। जो कुछ इन कहावतों से काम सधा वह अन्य साधनों से न सरता। फिर भी इन सम्पूर्ण तथ्यों में वैज्ञानिक-प्रवृत्ति की न्यूनता होने के कारण भारतीय कृषि अन्य देशों की होड़ में बहुत पीछे रह गई। अब हम घाघ और भड्डरी की कृषि सम्बन्धी कहावतों का विश्लेषण करेंगे:—

'घाघ'

कृषि सर्वोत्तम है

कृषि वेत्ता घाघ ने अपने समय के कृषकों में यह प्रेरणा भरी कि सभी व्यवसायों से कृषि उत्तम है और जो खेती के साथ साथ व्यापार भी करना चाहता है उसकी दुर्गति हो जाती है। उत्तम खेती तो वही है जिसमें किसान स्वयं जोतता है। नीचे लिखी कहावतें स्पष्ट बताती हैं:—

१—उत्तम खेती, मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।
२—खेती करै बनिज को धावै,
ऐसा डूबै थाह न पावै।
३—उत्तम खेती जो हर गहा,
मध्यम खेती जो सँग रहा।
४—जो हल जोतै खेती वाकी,
और नहीं तो जाकी ताकी।
५—उत्तम खेती आप सेती,
मध्यम खेती भाई सेती।
नौकरी खेती बिगड़ गई,
तो बलाय सेती।

आज हमारी सरकार ने जोतने वाले को ही भूमि-अधिकारी मानने का निश्चय किया है। यह साम्यवादी दृष्टिकोण की ओर सक्रिय एवंन्यायपूर्ण कदम है। 'घाघ' तो परिश्रमी कृषकों से इतने प्रसन्न होते कि सब से अधिक परिश्रमी कुरमी जाति के लिये उन्होंने लिखा है—

भली जाति कुरमिन की खुरपी हाथ,
अपना खेत निरावै, पिय के साथ।

२—खादों का महत्व

घाघ ने भारतीय कृषि की समुन्नति में खादों की महत्ता को स्वीकार करते हुये जो योग दिया वह अनिर्वचनीय है। हमारे किसानों की दरिद्रता, असंयम तथा अशिक्षा की दशा में घाघ की ही कहावतें उन्हें आधार तुल्य बनतो दीखती हैं। गोबर, कूड़ा, हड्डी तथा सनई-नील आदि की खादों का विस्तृत वर्णन एवं उनके उपयोगों को जनता में प्रसारित कर घाघ ने नये युग का सूत्रपात उसी प्रकार किया जिस प्रकार सन् १८४० ई० में यूरोप में सर बैरन लीबिग ने कृत्रिम खादों के सूत्रपात से किया था।

१—खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत।
२—खाद देय तो खेती होई,
नहीं तो रही नदी की रेती।
३—खेती करै खाद से भरै,
सौ मन कोठिला में वह धरै।

३—खाद का समय

किस समय खेतों में खाद डालनी चाहिये, इसको घाघ ने बताया। आज भी हमारे किसान उसी परम्परा में चल रहे हैं।

१—खाद अषाढ़ खेत मा डालै,
तब फिर खूबहिं दाना पालै।

२—असाढ़ में खाद खेतों में जावै,
तब भर मूठी दाना पावै।

४—खादों के भिन्न रूप

जितने भी प्रकार की जीवांश खादें सम्भव हो सकती थीं, घाघ ने वर्णित कीं। यथा :—

(अ) मूत्र—'जेहि क्यारिन मा मूतै ढोर
सब खेतन में वह सिरमौर।'

(ब) राखी, गोबर—'गोबर राखी पाती सड़ै
तब खेती में दाना पड़ै।'
'जेकरे खेत पड़ा ना गोबर,
उस किसान को जानों दूबर।'

(स) चकौंड़ा, रूस—गोबर, चोकर, चकवर, रूसा,
इसको छोड़ै होय न भूसा।

(द) हड्डी—वही किसानी में है पूरा,
जो छोड़े हड्डी का चूरा।

(य) सनई—सन के डंठल खेत छिटावै,
तिनते लाभ चौगुनो पावै।

(फ) नील की जूठी—जो तुम देव नील की जूठी,
सब खादन में रहै अनूठी।

(र) नीम की खली, मैला—गोबर मैला, नीम की खली,
यासे खेती दूनी फली।

(घ) गोबर की पाँस—जामें डालो गोबर-खाद,
तब देखो खेती का स्वाद।
खेत पाँसा जब न किसान, उसके घरै दरिद्र समान।

५—गहरी जोत

घाघ ने साथ ही साथ खेतों की गहरी जुताई पर ध्यान दिया। आज ट्रैक्टरों का उपयोग इसी बुनियाद पर किया जा रहा है किन्तु ध्यान रहे इस प्रकार की जुताई से क्षणिक लाभ तो हो जाता है क्योंकि नीचे के पर्तों के खनिज ऊपर आकर फसलों के भोज्य-पदार्थों की पूर्ति करते हैं किन्तु बाद में जीवांश की क्षति हो जाने के कारण भूमि सदा के लिये अनुर्वर हो जाती है। अतः यह कहना कि घाघ की सभी शिक्षायें ग्राह्य हैं—ऐसा नहीं, किन्तु हमें सोच विचार कर आगे बढ़ना होगा अब वैज्ञानिक-खोजों को भी ध्यान में रख कर खेती आगे बढ़ानी होगी।

१—बीज लगे फल अच्छा देत,
जितना गहरा जोतै खेत।

२—छोटी नसी, धरती हँसी,
हर लगा पाताल,
तो टूट गया काल।

३—जोत गहराई धूरि उधिरावै,
घास-दूब कुछ रहन न पावै।

४—छोड़ै खाद, जोत गहराई,
तब खेती का मजा दिखाई।

५—काह होय बहु बाहे, जोता न जाय थाहें।

६—बाह न कीना मोटा, बीज बतावै खोटा।

७—नौ नसी एक कसी।

(नसी का अर्थ छोटी फाल वाला हल और कसी का अर्थ है फावड़े से खोदना)

६—मेड़ बाँधना

आज हमारी सरकार बाँध, बंधियों तथा बड़े-बड़े बाँधों के निर्माण में असंख्य रुपये खर्च कर रही है। बाँधों की उपयोगिता यही है कि भूमि के पोषक-तत्वों को पानी में बह जाने से रोकें और साथ ही वर्षा के पानी को रोक कर पानी की कमी को दूर करें। घाघ ने बांधों, क्यारियों या मेड़ों के बाँधने पर पर्याप्त प्रकाश डाला :—

१—सौ को जोत पचासै जोतै,
पै ऊँच कै बाँधै बारी।
जौ पचास का सौ न तुलै,
तो देव घाघ का गारी।

२—मेड़ बाँध दस जोतन दे,
दस मन बीघा मोसे ले।

३—थोड़ा जोतै, बहुत हेंगावै,
ऊँच न बाँधै आड़ !!
ऊँचे पै खेती करै,
पैदा होवै भाड़।

४—तोड़ दीन्ह क्यारी,
खेत का उजारी।

५—जब बरसै तो बाँधै क्यारी,
बड़ा किसान जो हाथ कुदारी।

७—फसलों के बोने का समय, बीज की मात्रा आदि

घाघ ने फसलों के बोने का उचित समय, बीज की मात्रा तथा खेतों की बनाई आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उन सबों में वैज्ञानिक रहस्य तो है ही, किसानों को बड़ा भारी सहारा भी मिलता है।

समय :—

१—'जो न बाहे अषाढ़ एक बार,
फिर क्या बाहे बारम्बार।'
२—तेरह कातिक तीन अषाढ़,
जो चूका तो बिया न मार।'
३—पुष्य पुनर्वसु बोवै धान,
अश्लेषा जुन्हरी परमान।
मघा महीना बोवै रहिला,
तब दीजै परहल में ढेला।
४—कातिक बोवै, अगहन भरै,
ताको हाकिम फिर का करै।
५—आगे गेहूँ पाछे धान,
उसको कहिये बड़ा किसान।
६—अगहन बवा, कहूँ मन, कहूँ सवा।
७—आगे की खेती आगे आगे,
पीछे की खेती भागै जागे।

बीज की मात्रा :—

जब गेहूं बोवै पाँच पसेर,
मटर बीघा तीसै सेर।
बोवै चना पसेरी तीन,
तीन बीघा जुन्हरी कीन।
दो सेर मोथी, अरहर, मास,
डेढ़ सेर बीघा बीज कपास।
पाँच पसेरी बीघा धान,
तीन पसेरी जड़हन मान।
डेढ़ सेर बजरा-बजरी, सवा,
कोदों काकुन सोया बवा।
दो सेर बीघा साँवा जान,
तिल्ली सरसों अंजुरी मान।
इहि विधि से जब बुवै किसान,
दूने लाभ की खेती मान।

बीज की बुवाई :—

सन घनो, बन (कपास) बिगरा,
मेंढ़क फन्दे ज्वार।
पैंड पैंड पर बाजरा,
करै दरिद्दर पार।
छिद्दो भला जवा चना,
छिद्दो मलो कपास।
जिनको छिद्दी ऊखड़ी,
उनकी छोड़ो आस।
हिरन छलांगन काकड़ी,
पग पग रहे कपास।
जाय कहो किसान से,
बोवै घनी उखास।
कदम कदम पर बाजरा,
बेंग कुदौनी ज्वार।
ऐसा बोवै जो कोई,
घर घर भरै कुठार।

खेतों की बनाई :—

१—खेत बेपनियाँ जोतो तब,
ऊपर कुवाँ खुदाओ जब।
२—कच्चा खेत न जोतै कोई,
नाहीं बीज न अंकुरे कोई।
३—मैदे गेहूँ, ढेले चना।
४—जो ढेले दे तोड़ मरोड़,
ताको कोठिला दूंगी फोर।
जो करेगा मेरी कान,
ताके कोठिला आवै न हानि।

८—दालों की खेती का महत्व

आज सम्पूर्ण यूरोप-अमेरिका दालों की ही खेती से नाइट्रोजनीय-सन्तुलन प्राप्त कर रहा है। हमारे देश में घाघ जैसे कृषि विशारदों का भी लक्ष्य भूमि की उर्वरता

बढ़ाने के लिए दालों की खेती की ओर रहा होगा। ये दालें अपनी जड़ों में विशेष प्रकार के जीवाणुओं को आश्रय देती हैं जो वायु-मण्डल की नाइट्रोजन को स्थिर कर खेत की नाइट्रोजनीय-स्थिति को सुधार देते हैं और आगे की फसलों के लिये वे खेत उपजाऊ बन जाते हैं। खाद डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। बनस्पति विज्ञान के अनुसार उड़द, मूंग, मोथी, अरहर, मटर, नील तथा सन मुख्य दालें हैं जो कृषि में प्रयुक्त होती हैं।

सनई

१—सन के डंठल खेत छिटावै,
तिनते लाभ चौगुनो पावै।
२—सनई बोवै, सनई काट,
सनई सारे खेत मंझार।
उलटे-पुलटे दोनों जोतै,
बदि दीजै गल्ला को भार।

नील

१—अब्बर (खराब) खेत जो जूठी खाय,
सड़े बहुत तो बहुत मोटाय।
२—वेश्या-विटिया नील है,
बन साँवा पुत जान।
वो आवै सब घर भरै,
दरब लुटावत आन।

उर्द, मोथी

उर्द-मोथी की खेती करिहौ,
कुडिया तोड़ उसर में धरिहौ।

इसी प्रकार घाघ ने बहुत सी पैसे वाली फसलों पर जोर देते हुये कपास तथा ईख की खेती को बहुत महत्व दिया। उस समय तमाम कन्दों की खेती होती थी जिसका भी वर्णन मिलता है।

गाजर गन्जी, मूरी, तीनों बोवै दूरी।
या तो बोओ कपास औ ईख
ना तो खाओ माँग कै भीख।
जो तू भूखा माल का,
तो ईख कर ले नील का।

९—फसलों में हेर-फेर

उर्वरता को स्थिर रखने का सबसे सुगम साधन है कि उसी खेत में एक ही फसल लगातार न बोई जाय। घाघ ने इस बात को भली भाँति पहचान कर फसलों के अदलन-बदलन पर जोर दिया।

१—साठी में साठी करै बाड़ी में बाड़ी।
ईख में जो धान बोवै, फूकों वाकी दाढ़ी।
२—बोओ गेहूँ, काट कपास
न हो ढेला ना हो घास।
३—बाड़ी में बाड़ी करैं, करैं ईख में ईख।
वे घर यों ही जायँगे, सुनैं पराई सीख।

१०—कम्पोस्टिङ्ग

पांस बनाने में या तो गड्ढों का प्रयोग किया जाता है या सीधे खेत में ही पदार्थों को सड़ने दिया जाता है। घाघ ने दोनों प्रकार की कम्पोस्टिंग के बारे में कहा।

१—गोबर, मैला, पाती सड़ै,
तब खेती में दाना पड़ै।
२—गोबर, चोकर, चकवड़, रूसा,
इनको छोड़ो होय न भूसा।
३—कुडहल राखो खाद पंटाय,
तब धानों के बीज दिखाय।
४—सनई बोवै सनई काट,
सनई सारे खेत मझार।
उलटे-पुलटे दोनों जोतै,
बदि दीजै गल्ला का भार।
५—खेत पांसा जब न किसान,
उसके घरै दरिद्र समान।
६—अब्बर खेती जो जूठी खाय,
सड़े बहुत तो बहुत मोटाय।

११—सिंचाई पर जोर

पानी के बिना फसलों का होना असम्भव है अतः पानी चाहे वर्षा का हो या कुआँ-तालाब का पानी की आवश्यकता फसलों को होती है।

१—साठी होवे साठि दिना,
यदि पानी बरसै रात दिना।

२—सभी किसानी हेठी, अगहनिया पानी जेठी।
३—धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा।
४—खेत बेपनिया जोतो तब,
ऊपर कुआँ खोदो जब।
५—गेहूँ भवा काहे ? असाढ़ के दो बाहे।
६—खूब जोतै औ नावै खाद,
तब देखौ गेहूँ का स्वाद।
७—गेहूँ भवा काहे ? सोरह बाहें नौ गज थाहे।
गेहूँ बाहे से, चना पलोये से, धान गाहे से,
मक्की निराये से, ऊख कसाये से।

१२—ज्योतिष-ज्ञान

घाघ ज्योतिषी भी थे। उस समय वर्षा-ज्ञान के लिये ज्योतिष की आवश्यकता भी थी। अपने वर्षा ज्ञान के कारण घाघ निस्संदेह एक आदर्श कृषि-वेत्ता हो गये हैं।

१—जै दिन भादों बहै पछार,
तै दिन पूष मा पड़ै तुषार,
२—फागुन मास बहै पुरवाई,
तब गेहूँ माँ गेरुई धाई।
३—चना में सरदी बहुत समाई,
ताको जात गंधैला खाई।
४—माघै पूस बहै पुरवाई,
तब सरसों का माँहू खाई।
५—बायु चलेगी दक्खिना,
माँड कहाँ से चक्खना।
६—कुम्भै आवै, मीनै जाय,
पेड़ी लागै, पालौ खाय।
७—गेहूँ गेरुई गंधी धान,
बिना अन्न के मरा किसान।
८—नीचे ओद उपर बदराई,
घाघ कहै गेरुई अब खाई।

उपरोक्त से वर्षा ज्ञान ही नहीं अपितु फसलों में लगने वाले विभिन्न कीड़ों और रोगों का वर्णन भी मिलता है। आज विदेशों में इन रोगों से आक्रमण करने के लिये कीटाण-नाशक दवाइयों का अत्यधिक प्रचार है और इस तरह रोक-थाम करने के पश्चात उपजों में काफी वृद्धि सम्भव है किन्तु हमारे देशों में इन रोगों की पहचान या आशंका तो होती आई है किन्तु उसका उपचार न तो घाघ ने ही बताया और न आज भी हो रहा है। डी॰ डी॰ टी॰, गमक्सेन तथा अन्य दवायें और कुछ अच्छे बीजों की सृष्टि से ही यह कार्य छोटे पैमाने से दिल्ली की कृषिगवेषणाशाला के द्वारा सम्पादित हो रहा है।

१३—कृषियन्त्र तथा बैलों का ज्ञान

घाघ ने बैल के गुणों का वर्णन विस्तार में दिया है किन्तु उन सबके लिखने की आवश्यकता नहीं। यह भली भाँति ज्ञात है कि कृषि के मूल में बैल ही है अतः उसके गुणों की जानकारी आवश्यक है।

१—वह किसान है पातर,
जो बरदा राखै गादर।
२—दस हल राव आठ हल राना,
चार हलों का बड़ा किसाना।
३—कीकर पाथा सिरस हल,
हरियाने का बैल।
लोधा डाल लगाया कै,
घर पर चौपड़ खेल।

१४—चकबन्दी तथा सहकारी आन्दोलन का ज्ञान

घाघ को किसानों की संघ शक्ति पर विश्वास था, इसी लिये उसने लिखा कि—

यकसर खेती एकसर मार, घाघ कहैं ये सदहूँ हार।

किसानों के खेतों की चकवट से लाभ होता है क्योंकि किसान आसानी से उनको जुताई तथा रखवाली कर सकता है। इसी लिये—

१—आस पास रबी, बीच में खरीफ,
नोन मिर्च डालके, खा गया हरीफ।
२—पाही जोतै औ घर जाय,
तेहि गिरहस्तै भवानी खाय।

इसी लिये 'घाघ' ने अन्त में आदर्श किसान की आवश्यकताओं का निम्नप्रकार से चित्रण किया—

बीघा बायर होय, बाँध जो होय बँधाये,
भरा भुसौला होय, बबुर जो होय बुवाये।
बढ़ई बसे समीप, बसूला धार धराये,
पुरखिन होय सुजान, बिया बोउनिहा बनाये।
बरद बगौधा होय, बरदिया चतुर सुहाये,
बेटवा होय सपूत कहे बिनु करै-कराये।

यही नहीं—

भुइयाँ खेड़े, हर होय चार,
घर होय गिहथिन, गऊ दुधार।
अरहर कि दाल जड़हन का भात,
गागल निबुआ औ घिउ तात।
खांड-दही जो घर में होय,
बाँके नैन परोसै जोय।
कहै घाघ तब सबही झूठा,
उहाँ छाड़ि इहवैं बैकुण्ठा।

घाघ ने अपनी दो चार कहावतों में उस समय विस्तार करने वाले ऊसरों का भी जिक्र किया है। उनकी अनुर्वरता तथा उपेक्षा साफ साफ ज्ञात होती है।

१—खेत न जोतै राडी (ऊसर),
न भैंस बेसाहै पाड़ी।
२—सटका माघ पटकिगा ऊसर,
दूध भात मा परिगा मूसर।

भड्डरी

जैसा कि प्रारम्भ में लिखा जा चुका है 'भड्डरी' का क्षेत्र संकुचित है किन्तु वह उस क्षेत्र का मानों एक सम्राट हो। घाघ तो चक्रवर्ती है। भगवान पर आश्रित कृषकों को वर्षा की सूचना, ओलों की पूर्व पहचान तथा अकाल की भविष्यवाणियाँ उन्हें जागृति करती रहती हैं। इस दिशा में भड्डरी के हम कृतज्ञ हैं, नहीं तो हमारी सरकार को मौसमी-सूचनायें किसानों तक कहाँ पहुँच पाती हैं। यों तो चौमासा वर्षा के लिए विख्यात है किन्तु अगहन पूस में भ. खेती को पानी की आवश्यकता होती है अतः यदि फसल को उक्त समय में पानी न मिला तो मानों कृषकों पर आपत्ति आई। साथ ही यदि फागुन या माघ में बदली या पानी या पत्थर पड़ा तो कृषि नष्ट हो जाती है, गेरुई लग सकती है और अकाल पड़ सकता है। इन्हीं अकाल-वर्षा की सम्भावनाओं को इङ्गित करने में भड्डरी पटु थे। उदाहरण के लिए—

वर्षा का योग:—

१—जेठ मास जो तपै निरासा,
तो जानो बरसा की आशा।
२—उतरे जेठ जो बोलै दादुर,
कहैं भड्डरी बरसै बादर।
३—आसाढ़ी पूनो दिना,
गाज बीज, बरसंत।
४—नासै लच्छन काल का,
आनन्द मानो संत।
४—स्रावन केरे प्रथम दिन,
उवत न दीखै भानु।
चार महीना बरसै पानी,
याको है परमान।
५—भादों की छठ चांदनी जो अनुराधा होइ,
ऊबड़ खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा होय।
६—कल से पानी गरम है,
चिरिया न्हावैं धूर।
अन्डा लै चींटी चढ़ैं,
तो वर्षा भरपूर।
७—शुक्करवारी बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे ना जाय॥

अकाल :—

१—दिन को बादर, रात में चन्दर,
बहै पुरवैया, भद्दर-भद्दर।
कहै 'भड्डरी' बरसा नाहीं,
सिगरी खेती जाइ सुखाही।
२—जेठ बदी दशमी दिना,
जो शनिवासर होइ।
पानी होय न धरनि पर,
बिरला जीवै कोइ।
मौन अमावस मूल विन,
रोहिनि बिन अकतीज।

सावन सरवन ना मिलै,
वृथा बखेरो बीज।

खेत जोतने की तिथियों में भड्डरी ने सप्तमी, पंचमी, तृतीया, दशमी और एकादशी को श्रेष्ठ बताया है:—

साते पाँच तृतीया दशमी, एकादशि में जीव।
ऐहि तिथिन पर जोतहु, तौ प्रसन्न हों सीव॥

इनके अतिरिक्त राजपूताने में भी भड्डरी की कहावतें प्रचलित हैं जिनमें से कुछ को सार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:—

आसोजाँ रा मेहड़ा, दोय बात बिनास।
बोरडियाँ बोर नहिं, बिणयाँ नहीं कपास॥

आश्विन में यदि वर्षा हो तो दो प्रकार की हानि होगी—न तो बेर की झाड़ियों में बेर लगेंगे और न कपास में टेर।

काती रो मेह, कटक बराबर।

कार्तिक की वर्षा सेना के समान हानिकारक है।

द्वै मूसा द्वै कातरा, द्वै टीड़ी द्वै ताव।
दोयाँ री बादी जल हरै द्वै बीसर द्वै बाव॥

यदि मृगशिरा के प्रथम दो दिन हवा न चले तो चूहे पैदा हों। तीसरे चौथे दिन हवा न चलने से गुबरीले, पांचवें-छठवें दिन न चलने से टीड़ी और सातवें-आठवें दिन न चलने से ज्वर फैलेगा। नवयें-दसयें दिन न चलने से कम वर्षा, ग्यारवें-बारवें दिन जहरीले कीड़े और तेरवें-चौदहवें दिन हवा न चलने से खूब आँधी आती है।

एक आदरयो हाथ लग जाय पछै तो जाट राजी।

आद्रा में एक बार भी वर्षा हो जाने पर जाट (किसान) प्रसन्न हो जाता है।

रार करो तो बोलो आड़ा। कृषी करो तो रखो गाड़ा॥

यदि झगड़ा करना हो तो ऐंडी-बैंडी बातें करो, यदि खेती करना है तो गाड़ी रखो।

जो तेरे कंता धन घना। गाड़ी कर ले दे॥
जो तेरे कंता धन नहीं। कालर बाड़ी बो॥

यदि धन हो तो गाड़ी अवश्य ले और यदि धन नहीं तो कपास बोना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भड्डरी का भी उपदेश-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है किन्तु घाघ और भड्डरी की बातों को परस्पर इस प्रकार मिला दिया गया है कि उनमें से दोनों को पृथक करना सरल कार्य नहीं। किन्तु फिर भी हमें इस पचड़े में न पड़ कर उनके बताये चुटकुलों से अपनी कृषि को लाभान्वित करना है। उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग वैज्ञानिक अग्नि परीक्षा में भी खरा उतरता है, यह एक बड़े मार्के की बात है और इसी आधार पर हम भारतीय कृषि परम्परा को वैज्ञानिक घोषित करने में तनिक भी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करते।

सोवियत संघ और भारत के बीच उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वैज्ञानिक सम्पर्क

[ले० एस० कोनीयेव]

सोवियत संघ और भारत के बीच पुराने वैज्ञानिक सम्पर्क इन दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। आज से १०० वर्ष पूर्व २६ दिसम्बर १८५६ ई० को राजा राधाकान्त बहादुर ने रूसी-विज्ञान-अकादमी की सम्मानित सदस्यता प्राप्त की। इस सम्मान को प्राप्त करने वाले ये प्रथम भारतीय थे नोवेल पुरस्कार विजेता, भारत के विख्यात भौतिक शास्त्री सर सी० वी० रमण १६२५ में सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के द्विशती समारोह के सम्मान में आयोजित बैठक में सम्मिलित हुए थे किन्तु सोवियत संघ और भारत के बीच नियमित वैज्ञानिक सम्पर्क लगभग दस वर्ष पूर्व ही स्थापित हुये हैं।

१६४७ से सोवियत वैज्ञानिक भारतीय विज्ञान काँग्रेस की बैठकों में नियमित रूप से भाग लेते रहे हैं। अकादमिशियन के० वी० ओस्त्रोवित्यानोव, ए० वी० तोपचियेव, ई० इन० पावलोवस्की, डी० एस० कोर्झीन्स्की, आई० पी० गेरासीमोव, एस० एल० सोबोलेव, वी० ए० एगेलहार्डत, आई० एन० नाजारोव और बहुत से दूसरे सोवियत वैज्ञानिक भारत जा चुके हैं।

अपनी भारत-यात्रा में सोवियत वैज्ञानिकों को दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, बंगलौर, आगरा तथा अन्य नगरों के महत्वपूर्ण वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक केन्द्रों को देखने और भारतीय वैज्ञानिकों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय एवं सोवियत वैज्ञानिकों के बीच पत्र-व्यवहार तथा पुस्तकों का आदान-प्रदान एक दूसरे के लिए लाभपूर्ण सिद्ध हुआ है।

सोवियत वैज्ञानिकों के प्रतिनिधि मंडल ने भारत में आयोजित अन्य वैज्ञानिक कार्यक्रमों में भी भाग लिया। उदाहरणार्थ, १६५६ में सोवियत भूगोलशास्त्रियों ने इंटरनेशनल ज्योग्राफिकल सेमीनार में, तथा सोवियत गणितशास्त्रियों ने इंटर नेशनल जेटा-फंकशन सेमीनार में भाग लिया। १६५६ के दिसम्बर में सोवियत वैज्ञानिक भारतीय दर्शन-कांग्रेस में ३१वें अधिवेशन में तथा मध्ययुगीन एवं आधुनिक समाज के ऊपर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय इतिहास सेमीनार में सम्मिलित हुए।

बहुत से विख्यात भारतीय वैज्ञानिक हाल में सोवियत संघ की यात्रा कर चुके हैं जिनमें प्रो० महालानोबिस, दिवंगत प्रो० साहा, डाक्टर भाभा, डाक्टर कृष्णन, प्रो० चटर्जी, प्रो० सेन, प्रो० कौसाम्बी, डाक्टर रघुवीर, प्रो० बार्वे, आदि के नाम उल्लेख्य हैं। सोवियत संघ में आयोजित अनेकों सम्मेलनों और काँग्रेसों में भारतीय वैज्ञानिकों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया है। उदाहरणार्थ, १६५५ में उन्होंने भूगोल परिषद् काँग्रेस में तथा शरीर शास्त्रियों, जीव रसायनशास्त्रियों और औषधि शास्त्रियों की सोवियत संघीय कांग्रेस में भाग लिया। उसी वर्ष की शरद् ऋतु में विख्यात भारतीय वैज्ञानिक सोवियत संघ पधारे। भारतीय वैज्ञानिकों ने १६५६ के उस सम्मेलन में भाग लिया जिसमें चुम्बकीय पदार्थ पर विचार-विमर्श हुआ था। वे सोवियत संघ की तृतीय गणित कांग्रेस में और उच्च शक्तिकण सम्बन्धी भौतिक विज्ञान के ऊपर आयोजित सम्मेलन में भी उपस्थित थे।

सोवियत संघ की विज्ञान-अकादमी और उसके संस्थान भारत के कुछ वैज्ञानिक संस्थानों के साथ सहयोग करते हैं। १६५४ में सोवियत विज्ञान अकादमी तथा भारतीय आँकड़ा संस्थान जिसके प्रधान प्रो० महाला-

नोविस हैं के बीच स्थापित सहयोग का दृष्टान्त के रूप में उल्लेख किया जा सकता है। सोवियत विशेषज्ञों ने प्रो० डी० वाई० पानोव और डी० डी० देगत्यार के नेतृत्व में संस्थान में व्याख्यान दिये और भारतीय वैज्ञानिकों के साथ मिलकर प्रयोगशालाओं में काम किया। एक सोवियत विशेषज्ञ मंडल जिसके प्रधान गोसप्लान (राज्यीय योजना समिति) के उपाध्यक्ष ए० एफ० जेलेनोव्स्की थे नवम्बर १६५६ में भारतीय आँकड़ा संस्थान में वर्तमान एवं दीर्घकालीन आर्थिक योजना-निर्माण में सहायता करने के लिए भेजा गया।

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी निकट भविष्य में भारतीय संस्कृति की अन्तर्राष्ट्रीय अकादमी के साथ सहयोग स्थापित करने की योजना बना रही है। इस संस्थान के निर्देशक प्रो० रघुवीर सोवियत संघ पधार चुके हैं। सोवियत संघ में अपने प्रवास के समय प्रो० रघुवीर ने मास्को, लेनिनग्राद ताशकंत और समरकंद में बहुत से शोध-संस्थान, पुस्तकालय, पुरालेखसंग्रहालय और अन्य संग्रहालय देखे। उन्होंने भारत के बारे में रूसी वैज्ञानिकों की अद्भुत कृतियों से, मंगोलियन, तिब्बती और तांगुत भाषाओं में अलभ्य पांडुलिपियों से, इतिहास, दर्शन गणित एवं ज्योतिष-सम्बन्धी कृतियों से अपने को परिचित कराया। प्रो० रघुवीर के कहने पर इन कृतियों में से बहुतों के आलोक चित्र एवं माइक्रोफिल्म तैयार किये गये। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी ने इनकी कुछ प्रतिलिपियाँ मूल पांडुलिपियों के सहित भारतीय संस्कृति की अन्तर्राष्ट्रीय अकादमी को भेंट की।

भारतीय अकादमी के वैज्ञानिकों ने जिन्होंने इन सामग्रियों का अध्ययन आरम्भ कर दिया है सोवियत वैज्ञानिकों के सामने यह प्रस्ताव रखा है कि मुद्रणालय में प्रकाशनार्थ भेजने के लिए कुछ रचनाओं को मिल कर तैयार किया जाए। और भी अधिक आलोक चित्र और माईक्रोफिल्म निकट भविष्य में भारत भेजने की योजना है।

भारतीय अर्थ तंत्र, इतिहास, साहित्य, एवं भाषाओं के अध्ययन पर सोवियत संघ में अधिक ध्यान दिया जाता है। प्राच्य-अध्यन-संस्थान (सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी) के भारतीय विभाग के वैज्ञानिक इस समय "भारत के आधुनिक इतिहास" की रचना में लगे हैं और तिलक शती, तथा १८५७-१६५७ के राष्ट्रीय शती समारोह के ऊपर एक लेखमाला मुद्रणालय में प्रकाशनार्थ भेजने की तैयारी कर रहे हैं। वे हिन्दी, उर्दू और बंगला भाषाओं में नये शब्दकोष एवं व्याकरण की पुस्तकें तैयार कर रहे हैं। प्राच्य-अध्ययन-संस्थान के वैज्ञानिक का एक दल अभी हाल में भारत गया है।

सोवियत संघ और भारत के बीच वैज्ञानिक सम्पर्कों में पुस्तक-विनिमय का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार के विनिमय १६वीं शदी के मध्य से ही सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी द्वारा किये जा रहे हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों में उनका अधिकतम विस्तार हुआ है। अकादमी के पुस्तकालय इस समय भारत के एक सौ से ऊपर विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों, मंडलों, पुस्तकालयों तथा प्रकाशन-गृहों के साथ पुस्तकों का आदान-प्रदान कर रहे हैं जिनमें बंगलौर की भारतीय विज्ञान-अकादमी, दिल्ली के राष्ट्रीय विज्ञान-संस्थान, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शोध-परिषद्, वैज्ञानिक विकास सम्बन्धी भारतीय संस्था, भारतीय कृषि-शोध संस्थान, रासायनिक संस्थान, (कलकत्ता), कलकत्ता स्थिति राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा अन्य संस्थान हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, इलाहाबाद बनारस, तथा अन्य नगरों के साथ पुस्तकों का नियमित आदान-प्रदान चल रहा है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के पुस्तकालयों ने १६५५ में लगभग १०,००० पुस्तकें; पुस्तिकाएँ और पत्रिकाएँ भारतीय संस्थानों को भेजीं।

सोवियत संघ में ज्ञान की विशिष्ट शाखाओं में हुई प्रगति से भारतीय वैज्ञानिकों को और भी अधिक अवगत कराने के लिए सोवियत वैज्ञानिकों ने भारत की विज्ञान-सम्बन्धी पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ अकादमिशियन ए० एफ० इओफे लिखित "सोवियत संघ में डाइलेकट्रिक्स (ऐसे अ-परिवाहक जो विशेष परिस्थितियों में अस्थायी रूप में विद्युत् परिवाहिक बन जाते हैं) तथा अर्द्ध-

परिवाहकों पर विहंगम दृष्टिपात एवं अध्ययन", एस०ए० सेमीलेतोव लिखित "सोवियत संघ में इलेक्ट्रानोग्राफी", आर० आई० अवानेसोव लिखित "भाषा शास्त्रीय भूगोल की समस्या तथा रूसी भाषा की बोलियों का मानचित्र," डी० ए० खागीन लिखित "सोवियत संघ में भूकम्प विज्ञान का विकास", आदि लेख तैयार किये हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय वैज्ञानिकों के अनेक सुझावों पर सोवियत अकादमी अङ्गरेजी भाषा के माध्यम से काम करने वाले प्रमुख रूसी एवं सोवियत वैज्ञानिकों के ऊपर एक पुस्तक प्रकाशित करने का विचार कर रही है।

आशा है कि भविष्य में भारत-सोवियत वैज्ञानिक सम्पर्कों का निश्चय ही और भी अधिक विकास होगा।

क्या आप जानते हैं?

◆ देश में १९५०-५१ में ३० चिकित्सा कालेज थे। १९५५-५६ में इनकी संख्या बढ़कर ४२ हो गयी और इनमें भरती पाने वाले छात्रों की संख्या, जो १९५०-५१ में २,५०० थी, बढ़कर ३,१०० हो गयी।

◆ पिछले दो वर्षों में अनेक नये कालेज खोले गये और इनको केन्द्रिय सहायता दी गयी।

◆ पहली पंचवर्षीय आयोजना में शरीर-रचना शास्त्र, स्त्री-रोग-चिकित्सा आदि विषयों के विशेष अध्ययन के लिए हर प्रकार की सुविधाएं दी गयीं और मनश्चिकित्सा छाती के रोग, कुष्ठ आदि विषयों की पढ़ाई के लिए अलग से संस्थाएँ खोली गयीं।

◆ चिकित्सा कलेजों में अनुसंधान को बढ़ावा देने के भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, १९५३ से विशेष प्रयत्नशील है। १९५३ में परिषद् ने राकफेलर फाउंडेशन की सहायता से अनुसंधान करने वालों को वृत्तियां देना आरम्भ किया। पिछले चार साल में छोटी चिकित्सा संस्थाओं के अध्यापकों को विशेष अध्ययन के लिए ९५ वृत्तियां दी जा चुकी हैं। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि दूसरी आयोजना की शेष अवधि में जल्दी से जल्दी अधिक डाक्टर सिखाकर तैयार किये जाएँ। इसके लिए भारत सरकार ने राज्य सरकारों की सहायता से वृत्तियाँ देने का कार्यक्रम सुझाया है।

◆ स्वास्थ्य मंत्रालय ने अगस्त। सितम्बर, ११५४ में गांवो तथा तथा शहरों के लिए पानी और सफाई-योजना स्वीकार की थी।

◆ इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, विभिन्न राज्यों ने शहरों के लिए जो २५५ तथा गांवों के लिए १३३ योजनाएं बनायी थी। उन्हें सरकार ने स्वीकार कर लिया था और पहली आयोजना की अवधि में इन योजनाओं के लिए ८,२९, ४६, ५०० रु० का ऋण तथा २,८०,०६,७००रु० का अनुदान देना स्वीकार किया।

◆ शहरों में पानी की व्यवस्था करने और नालियां आदि बनवाने के लिए राज्यों को ऋण देने के लिए दूसरी आयोजना में ४० करोड़ रु० रखा गया है। इसमें निगमों के लिए पानी और नाली आदि के लिए जो १० करोड़ रु० की व्यवस्था की गयी थी, वह भी शामिल है।

◆ इसके अलावा, राज्यों की आयोजनाओं में शहरो में पानी तथा नाली आदि के प्रबन्ध की योजनाओं के लिए लगभग २३ करोड़ रु० की व्यवस्था है। राज्यों की दूसरी आयोजनाओं में गांवों में पीने तथानालियां बनवाने के लिएँ २८ करोड़ रु० की व्यवस्था है।

◆ भारत-अमेरिका कामकाजी करार के अर्न्तगत, अमेरिका ने भारत सरकार को जल तथा सफाई कार्यक्रम के लिए आवश्यक उपकरण खरीदने के वास्ते ६४, २५, ००० डालर दिया है। अमेरिका ने केन्द्रीय सार्वजनिक स्वास्थ्य इंजीनियरी संगठन के लिए सामान खरीदने के वास्ते १२,००० डालर और दिये हैं।

विज्ञान मई १६५८
पृष्ठ ४७-५१

नागार्जुन और भारतीय रसायन

[ले०—रमाशंकर राय, एम० एस-सी०, डी० फिल०, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय]

प्राचीन भारत में रसायन शास्त्र अत्यन्त विकसित अवस्था में था। भारतीय मनीषा की परम्परागत साधना, क्रमिक विकास और विलक्षण प्रतिभा के द्वारा समकालीन विश्व के रासायनिक ज्ञान की तुलना में वह अग्रणी बन चुका था। विज्ञान के इस अनवरत विकास में योग देने वाले विद्वानों में **नागार्जुन** का स्थान अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। इन्होंने **रसरत्नाकर, कक्षापुटतंत्र** तथा **आरोग्य-मंजरी** नामक वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना की थी। विख्यात इतिहासकार हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल के दरबार-पुस्तकालय से उपलब्ध ताड़पत्रों तथा हस्तलिखित पांडुलिपियों के आधार पर इनको, **योगसार** और **योगाष्टक** नामक अन्य दो ग्रंथों का भी लेखक बतलाया है। किन्तु इस महान् वैज्ञानिक विचारक तथा तत्ववेत्ता की तिथि के विषय में विद्वानों में बड़ा ही मतभेद है।

रसरत्नाकर के अध्ययन से पता चलता है कि 'प्रज्ञापारमिता' के आविर्भाव द्वारा नागार्जुन को रसायन शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ था। **'प्रज्ञापारमिता निशीथसमये स्वप्नेप्रसादीकृतं। नाम्ना तीक्ष्णमुखं रसेन्द्रममलं नागार्जुन प्रोदितम्'** ॥ समस्त प्राणियों के उपकार और भोजन प्रदान करने की उत्कृष्ट आकांक्षा से प्रेरित होकर द्वादश वर्षों की घोर तपस्या द्वारा उन्होंने रसायन का ज्ञानार्जन किया। समस्त बुद्धों के प्रति अपनी निष्ठा का प्रदर्शन करते हुए (प्रणिपत्य सर्वबुद्धान्) लोककल्याण की भावना से (वक्ष्ये सर्व हितार्थं) उन्होंने **रसरत्नाकर** की रचना की। समस्त बुद्धों के प्रति उनकी आस्था का यह उद्गार और प्रज्ञा-पारमिता का अवतरण यह सिद्ध करता है कि नागार्जुन बौद्ध थे और महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। चीनी पर्यटक **युवानच्वाँग** ने इनकी गणना प्रमुख बौद्ध आचार्यों में की है। भारतीय इतिहास से प्राप्त तथ्यों के आधार पर इन्हें कनिष्क के समकालीन बतलाया जाता है। तिब्बतीय इतिहासवेत्ता और बौद्धधर्म के इतिहास लेखक तारानाथ की पुस्तकों में यह उल्लेख मिलता है कि 'नागार्जुन बोधिसत्व' की जीवनी का चीनी भाषा में अनुवाद ईसा के जन्म से चारसौ वर्षोपरान्त हुआ था। इनकी विद्वता की ख्याति तिब्बत और चीन तक फैली हुई थी। **रसरत्नाकर** में बहुत सी रासायनिक क्रियाओं का वर्णन नागार्जुन और शालिवाहन के संवादों में मिलता है। भंडारकर के मतानुसार सातवाहन वंशीय राजा ई० पू० प्रथम शताब्दी से लेकर ईसा के जन्मो-परान्त तीसरी शताब्दी तक दक्षिण भारत में शासन करते थे। विदर्भ में उत्पन्न हुए नागार्जुन द्वारा उक्त प्रदेश के शासक शालिवाहन अथवा सातवाहन का उल्लेख इस बात की पुष्टि करता है कि इनका आवि-र्भाव ईसा के जन्मोपरान्त प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी में हुआ था। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विख्यात बौद्ध आचार्य और रसायन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् नागार्जुन एक ही पुरुष हैं। श्री अमलानन्द घोष और प्रोफेसर गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने भी इनका समय ईसा के उपरान्त प्रथम शताब्दी ही माना है। किन्तु भारतीय वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने इनका कार्यकाल सातवीं या आठवीं सदी ईसा के जन्मोपरान्त निर्धारित किया है। **रसरत्नाकर** पर दी गई आचार्य राय की यह धारणा कतिपय रासायनिक क्रियाओं और मुसलमान इतिहास लेखक अल्बरूनी के लेख पर आधा-रित है। अल्बरूनी ने सोमनाथ के निकटवर्ती देहक नामक स्थान पर निवास करने वाले रसायनज्ञ नागार्जुन का उल्लेख किया है, जिनकी उत्पत्ति उससे एक सौ वर्ष पूर्व हुई थी। इस प्रकार अल्बरूनी के आधार पर नागा-र्जुन का का काल नवीं शताब्दी निश्चित होता है।

सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नागार्जुन का होना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है, क्योंकि युवानच्वांग के पर्यटन का यही समय है और उसने अपनी पुस्तक में नागार्जुन का उल्लेख अपने से कई सौ वर्ष पूर्व किया है। इसके अतिरिक्त पाँचवी शताब्दी ईसा के उपरान्तआविर्भूत विद्वान हरिश्चन्द्रभट्टार की चरक और सुश्रुतसंहिताओं की टीकाओं तथा चन्द्र की पुस्तक के आधार पर नागार्जुन को पाँचवीं शताब्दी से पूर्व रख सकते हैं। संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक ए० बी० कीथ ने आचार्य राय द्वारा निर्धारित **रसरत्नाकर** के समय को विश्वसनीय नहीं माना है। यह भी सम्भव हो सकता है कि कतिपय रासायनिक प्रयोग, जिन पर आचार्य राय का मत आधारित है, बाद को रसरत्नाकर में जोड़ दिए गए हों, क्योंकि भारतीय साहित्य में इस प्रवृत्ति का प्रभाव प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

नागार्जुन विदर्भ के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। ज्योतिषियों ने इनके जन्म के समय यह भविष्यवाणी की थी कि इस बालक की मृत्यु इसके जन्म से एक सप्ताह के अंतर्गत ही हो जायगी। अतः ग्रहों की शान्ति द्वारा इन्हें आयु प्रदान की गई। इनकी शिक्षा नालन्दा के विश्वविद्यालय में हुई थी और यहीं पर इन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। एक बार देश में घोर अकाल पड़ा। इसी समय भिक्षुओं के जीवन-रक्षार्थ इन्होंने घोर तप द्वारा रसायन विद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

'सत्वानां भोजनार्थाय साधिता वटयक्षिणी।
द्वादशानि च वर्षाणि महाक्लेशः कृतो मया।

प्रयोगात्मक रसायन का ज्ञान साकाण्ड नामक गुरु से प्राप्त किया था। '**कथयामि न संदेहः साकाण्डेन यथाकृतम्**।' कुछ समय के उपरान्त यह नालन्दा विश्वविद्यालय के मुख्य अधिष्ठाता नियुक्त हो गए थे।

रसरत्नाकर में वटयक्षिणी, शालिवाहन, नागार्जुन तथा रत्नघोष के संवादों के द्वारा रासायनिक विधियों का विवरण दिया गया है। नागार्जुन की वैज्ञानिक प्रतिभा की तुलना वर्तमान कालीन विज्ञान से करना केवल एक भूल होगी। उसकी महत्ता का अनुमान तत्कालीन विश्व के वैज्ञानिक ज्ञान की समीक्षा द्वारा ही लगाया जा सकता है। धातुओं के शोधन तथा अयस्कों से शुद्ध धातुओं के प्राप्त करने के लिए कुछ ऐसे रासायनिक प्रयोग दिए गए हैं जिनकी परिमार्जित विधि द्वारा आज भी अयस्कों से ताँबा निकाला जाता है। चाँदी को सीसे के साथ गला कर और भस्मों के साथ मिला कर गरम करके आज भी चाँदी प्राप्त की जाती है। इसी प्रकार '**रसरत्नाकर**' में दी गई पारा, सीसा, जस्ता आदि धातुओं की धातु क्रियाएँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। भस्मों, संरसों (amalgams), मिश्र-धातुओं तथा सूक्ष्म-कणों में धातुओं को विभाजित करके औषधियों के रूप में प्रयोग करने का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है। आज से दो सहस्राब्द वर्ष पूर्व विज्ञान की शैशव अवस्था में किए गए इन प्रयोगों द्वारा जो वैज्ञानिक प्रेरणा हमें मिली, उसी का यह परिणाम था कि भारत में रासायनिक प्रगति एक सहस्र वर्ष तक होती रही। रसरत्नाकर तत्कालीन तांत्रिक विचार धारा के प्रभाव से बच न सका और यही कारण है कि अन्य धातुओं से सोना बनाने की अनेक विधियाँ दी गई हैं। यह प्रयोग न तो विश्वसनीय प्रतीत होते हैं और न तो इनमें कोई तथ्य ही है। तथापि इस बात का प्रयास किया गया है कि विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा धातुओं को पीले रंग में परिवर्तित कर दिया जाय। रसरत्नाकर के कुछ रासायनिक प्रयोगों का वर्णन यहाँ पर किया जायगा।

रसक (Calamine) को, जो जस्ते का एक अयस्क है, रस (पारा) तथा ताँबे के साथ तीन बार गरम करने पर सुवर्ण प्राप्त होता है। इस प्रयोग द्वारा जस्ते और ताँबे के मिश्रण को एक साथ गलाने पर पीतवर्ण की मिश्रधातु पीतल मिलती है।

'किमत्र चित्रं रसको रसेन,...
क्रमेण कृत्वाम्बुधरेण रञ्जितः,
करोति शुल्वं त्रिपुटेन काञ्चनम्।'

माक्षीक (Pyrite) को कुलथी, कादो के क्वाथ, नरमूत्र क्षार और वेतसादि अम्लों के साथ गरम करे और क्षार मिला कर तीन पुट दे। केले के रस और सूरणकन्द के साथ पका कर और एरण्ड तैल और घृत के साथ गरम करने पर माक्षीक शुद्ध हो जाता है। इन प्रयोगों द्वारा माक्षीक से ताँबा निकाला जाता था।

'कुलत्थ कोद्रवक्वाथे नरमूत्रेण पाचयेत।
वेतसाद्यम्लवर्गेण दत्वा क्षारं पुटत्रयम्॥'

'किमत्र चित्रं कदली रसेन
सुपाचितं सूरणकन्द संस्थम्।
वातारितैलेन घृतेन ताप्यम
पुटेन दग्धं वरशुद्धमेति ॥'

चाँदी प्राप्त करने के लिए चाँदी को सीसा, क्षार, पिशाचीतैल तथा भस्मों के साथ गलाया जाता था। वर्तमान खर्पर विधि (Cupellation Process) से यह मिलती जुलती है।

'नागेन क्षारराजेन ध्मापितं शुद्धि मृच्छति।
तारं त्रिवार निक्षिप्तं पिशाची तैल मध्यमम् ॥'

ताँबे को शुद्ध करने के लिए पृथ्वी पर उत्पन्न हुए, क्षार, भेड़ के दूध, घी तथा तेल के साथ गरम किया जाता था। आजकल के (Polling Process) से इसकी तुलना की जा सकती है।

अहो नु चित्रं पृथिवीभवेन
क्षारेणमेषीपयसाघृतेन।
तैलेन शुद्धं द्रुतषोडशांशं
भवेच्चशुल्वं शशिशृङ्गसन्निभम् ॥';

रसक का सत्व अर्थात् जस्ता धातु प्राप्त करनेके लिए रसक को क्षार, स्नेह, धान्याम्ल, ऊन, लाक्ष तथा सुहागे के साथ बन्द मूषा में गरम किया जाता था।

क्षार स्नेहैश्च धान्याम्ले रसकं भावितं बहु।
ऊर्णा, लाक्षा, तथा पथ्या भूतलाधूम संयुतम्।
मूकमूषागतं ध्मातं टंकणेन समन्वितम्।
सत्वं कुटिल संकाशं पतते नात्र न संशयः ॥

दरदसत्व अथवा पारा प्राप्त करने के लिए दरद (Cinnabar) को पातना यंत्र में पातन करके पानी के ऊपर संग्रह किया जाता था।

दरदः पातनायंत्रे पतितश्च जलाशये।
सत्त्वं सूतक संकाशं जायते नात्र संशयः ॥

टिन को हरिताल (Yellow orpiment), लोहे को दरद, सोने को सीसा, सीसे को शिला (लाल आर्सेनिक), ताँबे को गन्धक के चूर्ण और रजत को माक्षीक रस के साथ मिला कर मारना चाहिए।

तालेन वंग, दरदेन तीक्ष्णं
नागेन हेमं शिलया च नागम्।
गन्धाश्मना चैव निहन्ति शुल्वं
तारञ्च माक्षीक रसेन हन्यात्।

इसके अतिरिक्त ताँबे को बकरी के दूध और गन्धक द्वारा, चाँदी को स्नुही के दूध और माक्षीक द्वारा मारा जाता था। इन मृत धातुओं का उपयोग रसौषधियों के रूप में पलितादि रोगों के निदान तथा जरावस्था के विनाश के लिए होता था।

शुल्वं अजाक्षीर सुगंधकेन,
तारं स्नुहीक्षीर सुमाक्षिकेण।
यद्यस्य धातोर्विहितं च युक्तं
निरुत्थघातं कथितं च तीक्ष्णैः ॥
मृतानि लोहानि रसीभवन्ति,
रसेनयुक्त्वा मय नाशनानि।
अभ्यासयुक्त्वा पलितादिनाशं,
कुर्वन्ति तेषां च जरा विनाशम् ॥

पारे से रसबन्ध बनाने के लिए पारे को जम्बीरी नीबू के रस, नौसादर, अम्लों, क्षारों, पंचलवणों, त्रिकटुक (पीपल, सोंठ और काली मिर्च), शिग्रु के रस तथा सुरभिसूरणकन्द के साथ रगड़ा जाता था। इस प्रकार संमर्दित होने पर रसरूप आठ धातुओं के साथ संरस बनाता था।

जम्बीरजेन नवसार घनाम्लवर्गैः
क्षाराणि पंचलवणानि कटुत्रयंच।
शिग्रूदकं सुरभिसूरणकन्द एभिः
संमर्दितो रसनृपश्चरतेष्ट लोहान् ॥

पारे की मात्रा के बराबर सोना लेकर रगड़ा जाय और इसके उपरान्त इस यौगिक में गन्धक और सुहागा आदि मिला कर फिर रगड़ा जाय। इस प्रकार नष्ट और पिसे हुए पदार्थ को बन्द मूषा में रख कर धीरे-धीरे आँच देकर तब तक गरम किया जाय, जब तक कि भस्म न बन जाय। इस भस्म के सेवन करने से साधक दिव्य देह प्राप्त करता है।

रसं हेमसमं मर्द्य पीठिकागिरिगन्धकम्।
द्विपदी रजनीरम्भां मर्दयेत् टंकणान्विताम् ॥
नष्ट पिष्टं च शुष्कञ्च अंधमूष्यां निधापयेत।

तुषाल्लघुपुटं दत्वा यावद्भस्मत्वमागतः ॥
भक्षणात्साधकेन्द्रस्तु दिव्यदेहमवाप्नुयात ।

पारे के यौगिकों का विवरण रसरत्नाकर में बड़े ही विस्तार पूर्वक दिया गया है। पारे से पर्पटिका रस बनाने के लिए एक पल पारा तथा इसका चतुर्थांश साक्तुक विष मिलाने के उपरान्त समान भाग गन्धक और ताम्र चूर्ण डालना चाहिए। इस प्रकार कज्जली बना कर उसमें एक पल गन्धक और घृत देकर लोहे के पात्र में पकाना चाहिए। द्रावित होने पर तत्काल ही इसे दोने अथवा केले के पत्ते पर रख देना चाहिए।

सूतकस्य पलं गृह्य तुर्य्यांशं साक्तुकं विषम्।
तत्समं गन्धकं शुल्वं चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत ॥
कृत्वा कज्जलिकामादौ पलं दत्वा च गन्धकम्।
घृत पक्वञ्च तच्चूर्णं पचेदायसभाजने ॥
यावद्द्रवत्वमायाति तत्क्षणात् तं विनिक्षिपेत्।
पुटं वा कदली पत्रे सिद्धं पर्पटिका रसम् ॥

जब पारे की आद्रता, घनत्व और चपलता नष्ट हो जाती है, तब वह कई रंगों में बदल जाता है। इसका नाम मूर्छित पारा है। इसे बन्ध तब कहा जाता है, जब इसमें सूर्य की सी अरुणिमा आ जाय और अग्नि द्वारा द्रावित न हो।

आर्द्रत्वञ्च घनत्वञ्च चापल्य गुरुतेजसः।
यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्यागरुसूतकम् ॥
नानावर्णं भवेत्सूतं विहाय घन चापलम्।
लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्च्छितं तं वदन्तिहि ॥
गुरुत्वंअरुणत्वं वा तेजोभास्कर सान्निभम्।
अग्निमध्ये यदा तिष्ठेत खोटवन्धस्य लक्षणम् ॥

विमल को शिग्रु के दूध, फिटकरी, हराकसीस, सुहागा तथा वज्रकन्द के साथ मिला कर केले के रस के साथ गरम करे। पुनः मार्क्षीक क्षार मिला कर बन्दमूषा में गरम करने पर सोने के रंग वाला ताम्र अर्थात् विमल सत्व मिलता है।

विमलं शिग्रुतोयेन काक्षी कासीस टंकणैः।
वज्रकन्द समायुक्तं भावितं कदली रसैः ॥
माक्षीकक्षार संयुक्तं धामितं मूकमूषके।
सत्वं चन्द्रार्क संकाशं पतते नात्र न संशयः ॥

माक्षीक को मधु, गन्धर्वतैल, घी, गोरस, गोमूत्र, एरण्ड तैल और केले के रस से भावित करके मूषा में गरम करने पर सूर्य की सी आभा वाला शुद्ध ताम्र प्राप्त होता है।

क्षौद्रं गन्धर्वतैलं सघृतमभिनवं गोरसंमूत्रकञ्च।
भूयोवातारितैलं कदलीरसयुक्तं भावितं कान्ति तप्तम्।
मूषा कृत्वाऽग्निवर्णामरुणकरनिभां प्रक्षिपेन्माक्षिकेन्द्रम् ॥
सत्वं नागेन्द्र तुल्यं पतति च सहसा सूर्यवैश्वानराभम् ॥

अभ्रक (mica) को गन्धक के साथ तपा कर उसका सत्व निकाला जाता था। इसको अभ्रकादि सत्वपातन विधि कहते हैं। इसके अतिरिक्त पाँच श्लोकों में ताप्य से शुद्ध ताँबा बनाने की विधियाँ दी गई हैं। इनको माक्षीक सत्वपातन विधि कहते हैं।

गन्धकञ्च प्रभावेण सत्त्वभूयं स्वभावतः।
ततः ख्यातं महासत्वं रसेन्द्रस्य समं ततः ॥

सोने को पंचमृत्तिका, भस्म और लवण के साथ मिला कर पुटपाक द्वारा शुद्ध किया जाता था।

चपलाद्या धातवः सर्व्वे जम्बीररस भाविताः।
शोधितास्त्रिदिनं पंचमृत्तिकाभस्म लावणैः।
संयुताः संशोधयन्ति पुटपाकेन काञ्चनम् ॥

रत्नों को गलाने के लिए वेतसाम्ल, अम्ल तथा काञ्जी के घोल का प्रयोग होता था। मुष्काफल को एक सप्ताह तक वेतसाम्ल के साथ भावित करने पर पुटपाक द्वारा रत्न के चूर्ण का विलयन बन जाता था।

एकएव महाद्रावी पार्वतीनाथ सम्भवः।
किं पुनस्त्रिभिः संयुक्तो वेतसाम्लाम्ल काञ्जिकैः ॥
मुष्काफलानि सप्ताहं वेतसाम्लेन भावयेत।
पुटपाके ततश्चूर्णे द्रवते सलिलं यथा ॥
कुरुते योग राजोयं रत्नानां द्रावणे परम।

इन रासायनिक प्रयोगों के अतिरिक्त राजावर्त (Lapis Lazuli) शोधन, गन्धक शुद्धि और दरद शुद्धि द्वारा सोना बनाने का उल्लेख मिलता है। इन प्रयोगों में तांत्रिक विचारों का पूर्ण समावेश होने के

कारण कोई तथ्य प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार वैक्रान्त का सत्व प्राप्त करने के लिए रासायनिक प्रयोग किए गए हैं।

नागार्जुन ने **रसरत्नाकर** में रासायनिक प्रयोग करने वालों के लक्षण भी गिनाए हैं। उनके मतानुसार उन्हें बुद्धिमान्, निरावलम्ब, दृढ़व्रत, कुलीन, पापहीन, और जितेन्द्रिय होना चाहिए।

सहाय शोभना प्राज्ञा निरालम्भा दृढ़व्रताः।
कुलीनाः पापहीनाश्च साधयन्ति जितेन्द्रियाः॥

रासायनिक क्रियाओं के आरम्भ करने के पूर्व उसे कोष्ठिका यंत्र, (furnace) वक्रनाल (फुँकनी), उपले, लकड़ी, धौंकनी, लोहे के पत्र, औषध, काञ्जी, विड (अम्ल) तथा कन्दराएँ (hooks) एकत्र करना चाहिए।

कोष्ठिका वक्रनालञ्च गोमयं सारमिन्धनम्।
धमनं लोह पत्राणि औषधं काञ्जिकं विडम्।
कन्दराणि विचित्राणि—
सर्वमेलयनं कृत्वा ततः कर्म समारभेत॥

पिष्टिका की भस्म (गन्धक और पारे के यौगिक) बनाने के लिए गर्भयंत्र का विवरण दिया गया है। मिट्टी की मूषा, जिसका मुख गोलाकार हो, को बीस भाग लवण और एक भाग गुग्गुल से पोत कर धीरे-धीरे गरम करना चाहिए।

गर्भयन्त्र प्रवक्ष्यामि पीठिकाभस्मकारकम्।
चतुरंगुलदीघणा विस्तारेण च त्र्यांगुलम्॥
मूषां तु मृन्मयीकृत्वा सुदृढ़ां वर्त्तुलां बुधः।
विंशभागन्तु लोणस्य भागमेकं तु गुग्गुलोः॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वातु तोयं दत्त्वा पुनः पुनः।
मूषालेपं दृढ़ंबद्ध्वा लोणाद्धं मृत्तिका बुधः।
कर्षं तुषाग्निना भूयौ मृदुस्वेदेन स्वेदयेत॥

इसके अतिरिक्त **'रसेन्द्रमंगल'** से यंत्रों की एक सूची उद्धृत की गई है। यह यंत्र हैं शिलायंत्र, पाषाण-यंत्र, भूधरयंत्र, वंशयंत्र, नालिकायंत्र, गजदन्त-यंत्र, दोलायंत्र, अधःपातनयंत्र, भुवःपातनयंत्र, पातनयंत्र, नियामकयंत्र, गमनयंत्र, तुलायंत्र, कच्छपयंत्र, चाकीयंत्र, वालुकायंत्र, अग्निसोमयंत्र, गंधत्राहिकयंत्र, मूषायंत्र, हंडिकायंत्र, कमभाजनयंत्र, घोणायंत्र, गुडाभ्रकयंत्र, नारायणयंत्र, जालिकायंत्र और चारण यंत्रों का नाम दिया गया है। कोष्ठीयंत्र का उपयोग सत्त निकालने के लिए होता था। पातनयंत्र से उर्द्धपातन और आसुत द्रव बनाया जाता था। अधःपातनयंत्र पातनयंत्र से मिलता जुलता था। अन्तर इतना ही था कि ऊपर रखे गए पात्र से वाष्प नीचे रखे गए द्रव में एकत्र होती थी। गरम बालू के ताप से पारे के यौगिकों को धीरे-धीरे गरम करने के लिए बालुका यंत्र का प्रयोग होता था। भूधर यंत्र और नालिका यंत्र इसी से मिलते जुलते थे। केवल काँच के पात्र के स्थान पर धातु के पात्र का प्रयोग होता था। मूषाओं का उपयोग भस्मों तथा परिष्कृत धातुओं के बनाने में और तुलायंत्र से भार नाप जाता था। इनके अतिरिक्त अन्य यंत्रों का विवरण नहीं मिलता।

पारे को शुद्ध करने के लिए उसे उबालना चाहिए।

निक्षिप्य खल्ले त्रिपुरान्तकस्य वीजं
द्विशुद्धार्धपल प्रमाणम्।
काथेन तस्य त्रिपुरोद्भवेन
सम्मर्दयेतु त्रिदिनानि यावत्॥

इसके उपरान्त उसे गरम जल से धोकर (सम्मर्दितं तम उष्णतोय धौतम्) पातनयंत्र द्वारा पातित करने पर निर्मल पारा मिलता है।

त्रीणि प्रमाणान्यथ सप्तमञ्च
सम्पातयेत् पातनयंत्रयोगात्।
सम्पातितो निर्मलतामुपैति
सर्व्वं प्रयोज्योपिहितं प्रशस्तम्॥

इस पारे से क्षय, ज्वर, कुष्ट आदि रोगों के उपचारार्थ पोटलिका बनाने के लिए, पारा, ताँबा और गन्धक की विभिन्न मात्रा लेकर उसे घृत के साथ पकाया जाता था।

पलं समादाय रसस्य तस्य
शुल्बस्य शुद्धस्य चकर्षमेकम्।
कृत्वाष्टपिष्टी विधिवर्त्तयोश्च गन्धाश्म
चूर्णं द्विगुणञ्चदेयम्॥
घृत प्रयोगेन विपाच्य
पश्चान् निक्षिप्यखल्ले परिमर्दितञ्च।
निष्कञ्च मात्रां त्वमृतस्य दत्त्वा
गुञ्जा प्रमाणा गुटिका च कार्या॥
श्री लोकनाथस्य विभोः प्रसादात्
ज्ञातं मया पोटलिका विधानम्॥

राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम

भारत के राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम ने अपने तीन साल के अल्प जीवन में काफी उन्नति की है। इसकी स्थापना दिसम्बर, १९५३ में हुई थी।

मार्च ३१, १९५७ तक के इसके तीसरे वार्षिक प्रतिवेदन में बताया गया है कि इस साल यानी १९५६-५७ में २१ अनुसंधान संस्थाओं ने आगे विकास करने के लिए अपने १३४ आविष्कारों की निगम को सूचना दी। इस प्रकार, इस साल मार्च तक ३८८ आविष्कारों की सूचना मिली। इनमें से ११ आविष्कार व्यक्तिगत रूप से किये गये हैं।

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला (पूना) ने सबसे अधिक खोज या आविष्कार किये हैं, जिनकी संख्या ६० है। इसके बाद मद्रास की केन्द्रीय चमड़ा गवेषणाशाला (३१), वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद की योजनाओं (३०), इंस्टिट्यूट आफ साइंस बंगलौर (२८), कराइकुडी की केन्द्रीय विद्युत्-रासायनिक गवेषणाशाला (२३), मैसूर की खाद्य प्राविधिक गवेषणाशाला (२२), हैदराबाद दक्षिण की प्रादेशिक गवेषणा प्रयोगशाला (२२) और कलकत्ता की केन्द्रीय काँच तथा मिट्टी गवेषणाशाला (१९) का स्थान है।

देश की विभिन्न प्रयोगशालाओं और अनुसंधानशालाओं में जो काम हुआ, और उसके फलस्वरूप जिन विधियों आदि का आविष्कार हुआ, उनके पेटेन्ट कराने के लिए इस वर्ष ९ अर्जियाँ दी गयीं।

कानपुर की चीनी गवेषणाशाला में गन्ने पर महत्वपूर्ण खोज की गयी। इसी प्रकार निगम की विकास योजनाओं में बाँस की लुगदी बनाने, बच्चों के लिए उपयुक्त भोजन तैयार करने और भाप से चल कर बिजली बनाने वाले यन्त्रों के बारे में काफी परीक्षण किये गये।

आलोच्य वर्ष में, छः विधियों के लाइसेन्स देने के बारे में बातचीत और लिखा-पढ़ी पूरी हुई। छः अन्य विधियों के बारे में भी बातचीत चल रही है। ११ विधियाँ बिना कुछ लिये, सम्बद्ध व्यक्तियों या फर्मों को बतायी गयीं।

विदेशों से भी कुछ खोजों के बारे में निगम से पूछताछ की गयी। कुछ भारतीय पेटेन्टों को ब्रिटेन और कनाडा की संस्थाओं को देने और विदेशों में इनका विकास कराने के बारे में बातचीत चल रही है। निगम के विस्तार की भी बहुत सी योजनाएँ इस समय विचाराधीन हैं।

इन तीन सालों में निगम को कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है। एक समस्या यह है कि अनुसंधान के पूरे होने के बाद, आविष्कार या नयी विधि का बड़े पैमाने पर उपयोग करने में कम से कम दो वर्ष लग जाते हैं। यह भी तब सम्भव है, जब हर व्यवस्था ठीक तरह से चलती रहे और किसी प्रकार की बाधा मार्ग में न आये। कई ऐसे भी अनुसंधान हुए हैं, जिनके अनुसार बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं हो सका और वे बेकार गये।

एक और प्रश्न भी उठता है, वह यह कि किसी नयी विधि की परीक्षा के लिए जो यंत्र आदि लगाये जाएँ, क्या उन्हें चालू रखा जाए? इस बारे में निगम ने यह नीति बनायी है कि जहाँ अनुसन्धान में दिलचस्पी बनाये रखने के लिए यन्त्रों का चालू रखना जरूरी हो, वहाँ इन्हें चालू रखा जाए और इनकी बनी हुई चीज को बेचा भी जाए, लेकिन इस तरह की चीजें तैयार करना और बेचना, प्रयोगशाला के जिम्मे नहीं होना

[शेष पृष्ठ ६१ पर]

विज्ञान मई १९५८
पृष्ठ ५३—५५

ज्योतिर्मय पिण्ड

[दुलह सिंह कोठारी, उदयपुर]

आकाश अनंत है। और उसमें विकीर्ण तारा-गणों की अनुपम छटा से सबका मन मुग्ध होता रहता है। रात्रि के अँधियारे में टिमटिमाते हुए इन तारागणों को देख कर जिज्ञासु मानव के मन में अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं—इन तारों की दूरी पृथ्वी से कितनी है? इनकी उत्पत्ति कब एवं कैसे हुई? इनकी संख्या कितनी है? क्या वर्तमान में भी नवीन तारों का निर्माण होता है? इत्यादि। नवीनतम उपकरणों से तथा संभाव्य साधनों से सुसज्जित संसार की विविध वेधशालाओं एवं प्रयोगशालाओं में ज्योतिषी असीम संयम तथा साधना से, जो भी प्रकाश की रश्मियाँ तारों से पृथ्वी पर पहुँचती है, उनके विश्लेषण एवं अध्ययन द्वारा इन ज्योतिर्पिण्डों के बारे में परिचय प्राप्त करने में संलग्न हैं।

(१) तारों की संख्या तथा दूरी

वैसे तो ब्रह्माण्ड में तारों की संख्या असंख्य है, परन्तु किसी भी रात्रि को निर्मल आकाश में एक साथ ३००० से अधिक तारे नहीं दिखाई पड़ते। किन्तु शक्तिशाली दूर-वीक्षण यंत्र के प्रयोग से तो कई हजार तारे एक ही साथ देखे जा सकते हैं। वे विशालकाय ज्योतिपिन्ड होते हुए भी हमको बिन्दु के समान प्रतीत होते हैं। तारों को दूरी प्रकाश-वर्ष में नापी जाती है। १८६००० मील प्रति सैकेन्ड की गति से गमन करता हुआ प्रकाश एक वर्ष में जितनी दूरी तय करता है, उसको एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं (१ प्रकाश-वर्ष—५.७८×१०^{१२} मील)। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में ८ मिनट लगते हैं। अतः पृथ्वी से सूर्य की दूरी [illegible] प्रकाश-वर्ष है। हमारे सबसे निकटवर्ती तारे की दूरी ४ प्रकाश-वर्ष है। ऐसे अनेक तारे विस्तृत ब्रह्मांड के अन्तरिक्ष में परिभ्रमण कर रहे हैं जो हमारी पृथ्वी से सैकड़ों तथा हजारों प्रकाश वर्ष दूर हैं। माउंट विलसन वेधशाला के जगत विख्यात दूरवीक्षण-यंत्र से ५० करोड़ प्रकाश-वर्ष दूर तारों का फोटो चित्र लिया जा सकता है। और माउंट पलोवर का सर्वश्रेष्ठ यंत्र तो आकाश को चीरता हुआ १०० करोड़ प्रकाश-वर्ष दूरी पर स्थित तारागणों का फोटो लेने की अतुलनीय क्षमता रखता है। तारों की भयंकर दूरी के विचार मात्र से हमारे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहता।

(२) तारे क्या हैं?

तारे विशाल तापोज्वल वायव्य पिंड हैं। इनके ऊपरी स्तर का तापमान बहुधा हजारों अंश होता है। भीतर का तापमान तो धीरे-धीरे बढ़ता जाता है यहाँ तक कि केन्द्र पर पहुँचते पहुँचते वह लाखों करोड़ों अंश हो जाता है। हमारा सूर्य भी एक विशिष्ट तारा है। इसके बाह्य धरातल का तापमान लगभग ६००० अंश है परन्तु इसकी नाभि का ताप २ करोड़ अंश है। हमारे बहुत ही निकट होने के परिणामस्वरूप ही यह इतना बड़ा दिखाई पड़ता है। यदि किसी अकस्मात् घटना के कारण हमसे वह कुछ प्रकाश-वर्ष दूर चला जाय तो फिर यह भी एक तारे के सदृश ही दिखाई पड़ेगा। सृष्टि के गर्भ में जितने भी तारे विद्यमान हैं वे सब एक ही आकार के नहीं है। कुछ ऐसे भी तारे देखे गये हैं, जिनका व्यास सूर्य के व्यास का १००० गुना अधिक है, अर्थात् जिनके अन्दर हमारे सूर्य जैसे एक अरब पिंड सरलता से समा सकते हैं। साथ ही कुछ ऐसे लघु तारे भी हैं, जिनका व्यास सूर्य के व्यास का १०० वाँ अंश है अर्थात् इस तरह के दस लाख पिंड हमारे सूर्य में समा सकते हैं। सब तारों की दीप्ति भी बराबर नहीं होती। ऐसे अनेक तारे हैं जिनकी दीप्ति हमारे सूर्य की अपेक्षा १०००० गुनी अधिक है तथा ऐसे भी तारे हैं जिनकी दीप्ति अपेक्षा-कृत १०००० गुना क्षीण है। विविध दीप्ति

के तारों का रंग भी भिन्न-भिन्न होता है। हमारा सूर्य कुछ पीला है। परन्तु अत्यधिक तापोज्ज्वलित पिण्डों का रंग नील-श्वेत होता है। ऐसे तारे जिनका ताप अपेक्षा-कृत कम होता है लालिमा लिये हुए दिखाई पड़ते हैं। तारों का रंग उनके ताप पर निर्भर रहता है।

तारों की प्रदीप्ति तथा उनके भार में भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसे तारे जिनका भार सूर्य के भार का १७ गुना है उनकी दीप्ति सूर्य की दीप्ति से ३०,००० गुना अधिक है परन्तु वे तारे जो सूर्य की अपेक्षा २½ गुना भारी हैं, वे सूर्य की तुलना में केवल ४० गुना अधिक तेजी से ही चमकते हैं।

तारे कितने प्रकार के हैं ?

आकार तथा अन्य भौतिक अवस्थाओं की दृष्टि से तारों को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) भीमकाय लाल तारे—इनसे आने वाली प्रकाश की रश्मियाँ लालिमा लिये होने के कारण यह तारे लाल दिखाई पड़ते हैं। इनका ताप अपेक्षाकृत कम होता है। उदाहरण के लिये जहाँ हमारे सूर्य का आन्तरिक ताप २० करोड़ अंश है वहाँ इन महान् पिंडों के केन्द्रीय भागों का ताप १० लाख से ५० लाख अंश के आसपास होता है परन्तु आकार में ये इतने भयंकर होते हैं कि हमारे सूर्य जैसे हजारों पिंड इनके गर्भ में समा सकते हैं मृगशीर्ष नक्षत्र में आर्द्रा नामक लाल तारा इतना विशालकाय है कि पृथ्वी की सम्पूर्ण कक्ष (जिसका व्यास १८६०००००० मील है) इसके अन्दर बड़ी सुगमता से समा सकती है। ज्येष्ठा (वृश्चिक-नक्षत्र) रोहिणी (वृष-नक्षत्र) ब्रह्म एवं प्रजापति इत्यादि भी इसी वर्ग के तारे हैं। इन तारों की कतिपय विशेष-ताएँ हैं। प्रथम तो यह कि भार के अनुपात में विशाल आकृति के कारण जिस वायव्य पदार्थ के वे बने हुए हैं, वह बहुत ही विरली-कृत है अर्थात् उसका घनत्व अत्यन्त ही कम है। द्वितीय ताप कम होते हुए भी विस्तृत होने के परिणाम स्वरूप उनकी तेजी (विशुद्ध) अर्थात् दीप्ति अधिक होती है।

(२) मध्यम वर्गीय तारे—अधिकांश तारे इसी श्रेणी के होते हैं। इनका आकार सूर्य से विशेष भिन्न नहीं होता परन्तु अन्य बातों में इनमें बहुत सी अस-मानता होती है। इस जाति के भारी पिंड नील श्वेत प्रकाश से चमकते हैं एवं अति उष्ण होने के साथ ही उनका तापमान भी अधिक रहता है। इस श्रेणी के कुछ कम भार वाले तारे श्वेत रंग लिये हुए होते हैं तथा उनसे हल्के तारों का रंग क्रमशः पीला लाल तथा गहरा लाल होता है। कुछ ऐसे भी तारे हैं जिनके भार तथा आकार लघु होने के कारण उनकी दीप्ति इतनी क्षीण होती है कि वे सरलता से देखे भी नहीं जा सकते।

(३) श्वेत बामन तारे—यद्यपि भार में इस प्रकार के तारे अन्य वर्ग के तारों से बहुत विभिन्न नहीं होते। फिर भी आकार में यह आपेक्षिक दृष्टि से बहुत ही छोटे होते हैं। रंग में श्वेत होने के कारण इनको श्वेत-बौने तारे कहते हैं। सामान्यतः बौने तारों का आकार पृथ्वी से कुछ ही गुना अधिक होता है और इसी लिये इनका तापमान अत्यधिक होते हुए भी इनकी दीप्ति कम होती है। सबसे रहस्यमयी बात इनके सम्बन्ध में यह है कि जिस वायव्य द्रव्य के ये बने हुए हैं वह तो पानी से लाखों गुना भारी है। इस द्रव्य से भरे हुए एक चाय के प्याले का भार ६० मन होगा। आकाश में श्वेत-बौनों की संख्या लगभग १० प्रतिशत है, इसका अभिप्राय यह है कि हमारी आकाश गंगा की आयु अन्य तारक पुञ्जों की अपेक्षा कुछ कम अवश्य है।

अपने अनुसंधान एवं शोध के आधार पर वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सृष्टि के आदि में एक समय था जबकि सम्पूर्ण ब्रह्मांड में जितने भी छोटे-मोटे पिंड हैं उनका द्रव्य, वायव्य रूप में सर्वत्र व्याप्त था। कालान्तर में किसी उपद्रव के कारण यह अविरत गैस कई एक पृथक्-पृथक् परन्तु विस्तृत बादलों में विभाजित हुआ। गुरुत्वाकर्षण के परिणाम स्वरूप जैसे-जैसे "यह बादल संकुचित होने लगे उनके आन्तरिक भागों में शक्ति के मुक्त होने से तापमान भी बढ़ता गया। इस अवस्था में पिंडों का रंग लाल रहा होगा। उनकी यह अवस्था भीमकाय लाल तारों के सदृश्य थी। परन्तु संकोचन होते-होते जब उनका आकार प्रारम्भिक आकार का दस

करोड़ अंश का दस करोड़वाँ अंश हो गया तब उनके अन्तरिक्ष में तापमान तथा दबाव इतने अधिक हो गये कि उदजन के नाभिकों का संगलन प्रारम्भ हो गया, ठीक उसी तरह जिस तरह की हाइड्रोजन बम के विस्फोट द्वारा होता है। फिर पिण्ड एक संतुलित अवस्था को प्राप्त करता है। संतुलित दशा में उसका बाह्य ताप, दीप्ति, व्यास इत्यादि भौतिक अवस्थाएँ केवल उसके भार पर ही निर्भर रहती हैं।

परन्तु उपरोक्त स्थायी अवस्था में लाखों करोड़ों वर्ष व्यतीत करते-करते जब पिण्ड में १५ प्रतिशत उद्जन गैस का क्षय हो चुकता है तो उसके भीतरी भागों में दबाव के बहुत बढ़ जाने से उसके गुरुत्वाकर्षण में (जिसके कारण पिंड का संकुचन होना चाहता है) तथा उसके अन्दर संगलन द्वारा मुक्त ऊर्जा (जिसके कारण उसका प्रसरण होना चाहता है) में संतुलन भंग हो जाता है और उसके जीवन में सक्रियता का आभास होने लगता है। एक बार से फिर उस पिंड का बड़े ही वेग से प्रसरण होना आरम्भ हो जाता है तथा उसमें उद्जन का क्षय बड़ा तेजी से होने लगता है। प्रसरण काल में उसके आकार का विस्तार बढ़ते-बढ़ते ५०-१०० गुना हो जाता है एवं ठंडा होने के परिणामस्वरूप उसका ताप भी कम हो जाता है। इस अवस्था में वह पुनः एक लाल तारे का रूप धारण कर लेता है।

परन्तु ६० प्रतिशत उद्जन समाप्त होने पर उसके अन्दर दबाव पुनः कम होने लगता है और इस कारण से वह महान् पिंड एक बार फिर से संकुचित होने लगता है। उसके भीतरी भागों में विविध पारमाणविक प्रतिक्रियाओं के एवं आकुंचन से इतनी भयंकर मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है कि वह पिंड अस्थायी हो जाता है और फिर विविध भौतिक परिस्थितियों के अनुसार वह एक श्वेत तारा बन जाता है, जो करोड़ों वर्षों में ठंडा होते-होते अपनी समस्त दीप्ति का परित्याग कर सदा के लिये आँखों से ओझल हो जाता है। यही उस महान् पिंड के सक्रिय जीवन-चक्र का अन्त है।

हमारे सूर्य का भविष्य

तारों की गति-विधि के अध्ययन से वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उनका भी जीवनचक्र अरबों वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ होगा। अनुमान है कि हमारे सूर्य की वर्तमान आयु लगभग ६ अरब वर्ष है। परन्तु कदाचित इतनेही वर्षों तक उसका अस्तित्व बना रहेगा। एक प्रकार से वह तो अपने यौवन काल में एक स्थायी अर्थात् संतुलित तारे का रूप धारण किये हुए है। अपने उद्जन गैस का १५ प्रतिशत व्यय करने में उसे लगभग ६ अरब वर्ष और लगेंगे और तब उसका प्रसरण होना आरम्भ होगा। यहाँ तक की उसका व्यास बढ़ते-बढ़ते वर्तमान नाप का ५० गुना हो जावेगा। तब आकाश में वह एक भीमकाय लाल पिंड के सदृश दिखाई पड़ेगा। बुध ग्रह की सम्पूर्ण कक्ष उससे पूर्णतया घिर जावेगी और पृथ्वी का ताप भी १३००° हो जावेगा। जितने प्राणी मात्र इस भूतल पर विचरण करते हैं वे सब भस्म होकर राख में विलीन हो जावेंगे।

परन्तु जब हमारे सूर्य में जितना भी उद्जन है वह समाप्त होने को आवेगा तो फिर से उसका आकुञ्चन होना प्रारम्भ होगा और सम्भवतः करोड़ों वर्ष में ऐसी अवस्था उपस्थित होगी जब सूर्य की प्रखरता अत्यधिक हो जावेगी और उसका विकराल विस्फोट होकर कदाचित वह शक्ति तारे में परिणत हो जाय। तदनन्तर ठंडा होकर वह सदा के लिये अस्त हो जावेगा। समस्त पृथ्वी पर निविड़ अंधकार का साम्राज्य स्थापित हो जावेगा। फिर भी हमें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि सूर्य का अन्त किसी भी तरह आज से १० अरब वर्ष पूर्व होना सम्भव नहीं है।

शरावती—भारत की सबसे बड़ी जल-विद्युत योजना

मैसूर राज्य में पश्चिम की तरफ बहने वाली अनेक नदियाँ हैं। इनमें कुछ बड़ी हैं, कुछ छोटी, कुछ सदानीरा हैं, कुछ नहीं। इन नदियों से बिजली पैदा करना आसान है, क्योंकि ये सब पहाड़ों में बहती हैं। अनुमान है कि इन सब नदियों की सहायता से लगभग ३० लाख किलोवाट बिजली तैयार की जा सकती है। इन नदियों में काली नदी, शरावती, वाराही आदि मुख्य हैं।

इन नदियों में शरावती अधिक उपयोगी है। मैसूर की अन्य नदियों की तरह इसका उद्गम भी पश्चिमी-घाट पहाड़ों में होता है। अम्बुतीर्थ नामक स्थान से निकलकर ६४ मील बहने के बाद, वह जोग नामक स्थान पर ९०० फुट गहरे दर्रे में गिरता है। शरावती नदी से पहले से ही बिजली पैदा की जा रही है। जोग पर महात्मा गांधी जल-बिजलीघर में १,२०,००० किलोवाट बिजली तैयार की जाती है। जिसे शरावती घाटी योजना का नाम दिया गया है, वह बड़ी योजना है, जिससे इस घाटी में बहने वाली नदियों की पूरी क्षमता का उपयोग किया जायगा। इस योजना के अनुसार जोग से कुछ मील दूर, लिंगनामक्की स्थान पर एक जलाशय और पत्थर का बांध बनवाया जाएगा। इस बांध की लम्बाई ७०९० होगी और वह नींव से लगभग २०५ फुट ऊंचा होगा। इस जलाशय में १७८ अरब घनफुट पानी इकट्ठा किया जा सकेगा। दूसरा इससे छोटा जलाशय 'तालकलेल' नदी पर होगा, जिसमें पहले जलाशय का अधिक पानी भी रखा जाएगा और तालकलाले नदी का भी कुछ पानी संचित किया जाएगा। इस जलाशय तक पानी ले जाने के लिए १४१९० फुट लम्बी नहर और २००० फुट और ३११० फुट लम्बी दो सुरंगें निकाली जाएंगी। इनमें से प्रति सेकेण्ड ८७७० घनफुट की गति से पानी बह सकेगा। बिजली पैदा करने वाले यन्त्र को चलाने के लिए जलाशय से, ४३०० फुट लंबे दस बड़े-बड़े नलों से सीधे १४९४ फुट नीचे पानी की खड़ी धारें गिरायी जाएंगी। नीचे दस बिजली-उत्पादक यन्त्र लगाये जाएंगे। प्रत्येक यन्त्र की क्षमता ८९१०० किलोवाट बिजली पैदा करने की होगी। बांध के पास जो बिजलीघर होगा, उसमें ४०००० किलोवाट बिजली पैदा की जाएगी। जोग के वर्तमान बिजलीघर में १,२०,००० किलोवाट बिजली तैयार करने की क्षमता है। इस प्रकार इस योजना में कुल मिलाकर १० लाख किलोवाट से अधिक बिजली तैयार की जा सकेगी। इस प्रकार यह देश की सबसे बड़ी जल-विद्युत योजनाओं में होगी। अनुमान है कि इस योजना पर ३१ करोड़ रु० खर्च होगा, यानी प्रति किलोवाट ५०० से ६०० रु० तक लागत बैठेगी। यह भारत में सबसे सस्ती बिजली होगी।

अनुमान है कि उपरोक्त १० बिजली-उत्पादक यन्त्र हर साल ४ अरब ५० करोड़ यूनिट बिजली तैयार करेंगे, जिसकी लागत प्रति यूनिट केवल पौन या ¾ नया पैसा होगा। ५५ लाख टन लिगनाइट से जितनी शक्ति प्राप्त होती, उतना यहाँ प्रतिवर्ष ४½ अरब यूनिट बिजली से प्राप्त होगी! इस बिजली से मैसूर तथा अन्य निकटवर्ती राज्यों की आर्थिक उन्नति में बड़ी सहायता मिलेगी।

शरावती के अलावा, मैसूर की अन्य नदियों से जैसे काली नदी, वडपाल, वाराही योजना, वेरती-हौंदा-अघनाशनी, आदि से १४०० फुट से २२०० फुट नीचे पानी की धार गिराकर बिजली-उत्पादक यन्त्र चलाये जाएंगे। इनसे कुल मिलाकर २५ लाख किलोवाट से भी अधिक बिजली तैयार की जा सकेगी, और इसकी लागत भी करीब-करीब शरावती के ही समान कम होगी।

देश में पन-बिजली की पड़ताल से पता चला है कि बिजली-उत्पादक यन्त्रों को ६० प्रतिशत क्षमता से ही चलभग ४ करोड़ किलोवाट जल-बिजली उत्पन्न की जा सकती है। पानी से बिजली उत्पन्न करने का प्रबन्ध देश में सर्वत्र किया जा सकता है और इससे इतनी बिजली उत्पन्न की जा सकती है, जो उस क्षेत्र के लिए अगले दो-तीन दशकों तक काफी होगी।

विज्ञान मई-१९५८
पृष्ठ ५७—५९

दुग्ध-उद्योग के आनुसंगिक पदार्थों से प्राप्त पूरक भोज्य पदार्थ

[लेखक—मदनगोपाल मिश्र, विद्यार्थी, राष्ट्रीय दुग्धशाला गवेषणालय, बंगलोर]

दुग्ध स्वयं एक पूर्ण एवं संतुलित पेय पदार्थ है। अधिकांश लोग दूध पीना पसन्द करते हैं किन्तु जब कहीं दूध उपलब्ध नहीं होता तो लोगों को दूध से बने अथवा निकले अन्य पदार्थों से सन्तोष करना पड़ता है। कभी-कभी जब किसी स्थान पर इतना अधिक दूध मिलता है कि वह पीने से अधिक मात्रा में होता है तो उसको दूसरे प्रकार के पदार्थों में परिवर्तित करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार से दुग्ध-शालायें, जहाँ प्रतिदिन हजारों मन दुग्ध एकत्र होता है, दूध वितरित करने के साथ-साथ अन्य पदार्थों का भी निर्माण करती हैं। ऐसे पदार्थों में **मक्खन, घी, चीज, छेना,** इत्यादि होते हैं। इनके बनाने से **मखनिया दूध,** छाछ या **मट्ठा, छेना तोर, मैहर या कींट** उच्छिष्ट के रूप में बच रहते हैं। इस प्रकार के दुग्ध-भोज्य-पदार्थों में **तेली** का भी नाम आता है।

१—मखनिया दूध—कच्चे दूध से मलाई निकालने के पश्चात् जो दुग्ध-पदार्थ शेष रहता है उसे मखनियाँ दूध कहते हैं। मखनिया दुग्ध पूर्ण रूप से नाइट्रोजन युक्त भोज्य-पदार्थ होता है, जिसमें शुद्ध दूध के वसा एवं वसा-घुलित-विटामिन **अ** और **व** के सिवाय सभी शक्तिदायक पदार्थ होते हैं, तथा इसमें शरीर पोषक प्रोटीन, हड्डी वर्धक खनिज पदार्थ तथा ऊर्जा देने वाला लैक्टोस उपस्थित रहते हैं। साथ ही पानी में घुलनशील विटामिन तथा दुग्ध में ही प्राप्य रिबोफ्लाबिन भी इसमें वर्तमान रहते हैं। वर्तमान युग में मखनिया दुग्ध का अधिकांश उपयोग 'केजिन' बनाने के लिए होता है जो कि औद्योगिक कार्यों में प्रयुक्त होता है। केजिन के अतिरिक्त अभी अन्य शेष-पदार्थ फेंक दिये जाते हैं, जिससे अनेक लाभदायक भोज्य पदार्थों की हानि होती है। यद्यपि मखनिया दूध में वसा या घी का स्वाद होता है किन्तु दही या मट्ठा में बदल कर इसको और अधिक सुस्वाद बनाया जा सकता है। इस प्रकार स्वादिष्ट पेय के रूप में इसका उपयोग हो सकता है।

मखनिया दूध को आसानी से सुखाकर चूर्ण के रूप में बंद डिब्बों में काफी समय तक रक्खा जा सकता है। इस चूर्ण से पुनः दूध बनाया जा सकता है। महीन चूर्ण को चपाती, टाफीज, बिस्कुट में डाला जा सकता है या बराबर मात्रा में वसा एवं पानी मिलाकर **मलाई बरफ़** (आइस क्रीम) बनाने के काम आ सकता है। इससे **खोया** भी बनाया जा सकता है जिसके द्वारा नाना प्रकार की मिठाइयाँ बनाई जा सकती हैं। मोटे-दाने-वाले शुष्क-चूर्ण को बराबर मात्रा की सूजी के साथ मिलाकर **हलवा** बनाया जा सकता है। यह देखा गया है कि प्रायः १०० पौंड मखनिया दूध से ९ पौंड शुष्क-पदार्थ मिल सकता है जिसमें कि ३९.२ प्रतिशत प्रोटीन, ४९.१ प्रतिशत लैक्टोज, ८.७ प्रतिशत खनिज तथा ब समूह के सभी विटामिन भी होते हैं।

भारत में प्रतिवर्ष अनुमानतः ३५८ लाख मन मखनिया दूध निकलता है, जिससे ३५ लाख मन आवश्यक ठोस भोज्य पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं, जिनके द्वारा भारतीय भोज्य-पदार्थों की पूर्ति हो सकती है। इन भोज्यों से आवश्यक खनिज पदार्थ प्रोटीन, कैलसियम एवं विटामिन 'ब' की पूर्ति हो सकती है। भारत में यह प्रयोग करके देखा गया है कि प्रतिदिन १० औंस शुष्क दुग्ध-चूर्ण बच्चों को देने पर उनकी लम्बाई, भार तथा स्वास्थ्य में वृद्धि हुई है। यदि भारत में प्राप्त

सारे मखनिया दूध को सुखा कर ठीक से वितरित किया जाय तो उसके द्वारा १·२ करोड़ भारतीय मनुष्यों के भोजन में सुधार लाया जा सकता है और उनके भोजनों को संतुलित बनाया जा सकता है।

२—छाछ या मट्ठा—दूध को जमा कर मक्खन को निकाल लेन के पश्चात् जो तरल पदार्थ बच रहता है, **बटर मिल्क,** छाछ या मट्ठा के नाम से विख्यात है। इस मट्ठ में प्रोटीन, अस्थि-निर्माण करने वाले खनिज पदार्थ एवं विटामिन पाये जाते हैं। परन्तु इसे अधिक समय तक रखने से खट्टा हो जाने का भय रहता है, जिससे यह काम के योग्य नहीं रह पाता। अतः प्रतिवर्ष लाखों मन मट्ठा नालियों में बहाना पड़ता है। यदि इसे सुरक्षित किया जाय तो इसका अत्यन्त सुन्दर उपयोग हो सकता है। तथा इसे समयानुकूल बाजार में बेचा जा सकता है। मट्ठे को संरक्षित करने की कई विधियाँ हो सकती हैं, जैसे—मट्ठे से कुछ प्रतिशत जल निकाल कर इसको **अर्द्ध-ठोस** के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है अथवा इसका सम्पूर्ण जल निकाल कर **शुष्क चूर्ण** के रूप में भी सुरक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार १०० पौंड मट्ठे से २० पौंड अर्द्ध-ठोस पदार्थ और ४·५ पौंड शुष्क ठोस पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। **अर्द्ध-ठोस पदार्थ,** में ८० प्रतिशत प्रोटीन, १२·५ प्रतिशत लैक्टोस तथा १·७५ प्रतिशत खनिज पदार्थ होते हैं, और **पूर्ण-शुष्क** ठोस पदार्थ में ३५ प्रतिशत प्रोटीन, ५५ प्रतिशत लैक्टोस और ७·६० प्रतिशत खनिज पदार्थ होते हैं। दोनों प्रकार के पदार्थों में पानी में घुलनशील विटामिन एवं कच्चे खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। इन दोनों पदार्थों को धातुओं के बर्तनों में न रखना चाहिए क्योंकि उनमें उपस्थित लैक्टिकाम्ल धातुओं से प्रतिकूल क्रिया करता है। छिद्र रहित लकड़ी के कार्क बन्द करने के काम में आ सकते हैं। घरों में शीशे के बर्तनों में कार्क करके या चीनी मिट्टी के बर्तनों में इन पदार्थों को रक्खा जा सकता है।

ये दोनों प्रकार के पदार्थ हमारे नैतिक भोजनों में कई प्रकार से प्रयुक्त हो सकते हैं। इनमें आवश्यक जल की मात्रा डाल कर अधिक मात्रा में बनाया जा सकता है तथा मूली, पलकी एवं गरम मसाले डाल कर रायते के रूप में खाया जा सकता है। ये पदार्थ चपाती, दोशा इडली, बनाने में भी काम लाये जा सकते हैं। इस प्रकार यदि १० औंस शुष्क मट्ठा-चूर्ण या २० औंस अर्द्ध ठोस मट्ठा को प्रतिदिन के भोजन में स्थान दिया जाय तो मनुष्य की पाचक शक्ति अवश्य ही बढ़ सकती है। अनुमान लगाया है कि ३७६४ लाख मन मट्ठा या छाछ प्रतिवर्ष भारतवर्ष में होता है। यदि इसी को उपरोक्त कार्यों में प्रयोग किया जाय तो इसके द्वारा ६ करोड़ बच्चे-नर-नारियों का भोजन संतुलित हो सकता है।

३—छेना-तोर—केवल बंगाल में गाय के दूध से अत्यधिक मात्रा में छेना बनाने की प्रथा है किन्तु भारत के कुछ अन्य स्थानों में भी थोड़ी मात्रा में छेना बनाया जाता है। अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष छेना से १५,००,००० मन छेना-तोर अलग करके फेंक दिया जाता है। रासायनिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि १०० पौंड छेना-तोर में ६-७ पौंड ठोस दूध होता है जिसमें लैक्टोस, कुछ मात्रा में प्रोटीन, वसा तथा करीब ७५ प्रतिशत दूध के खनिज पदार्थ होते हैं एवं पानी घुलित सभी 'ब' समूह के विटामिन होते हैं। छेना-तोर एक बहुत ही पाचक भोज्य-पदार्थ है जो भारतीय भोजन में काम आ सकता है। वास्तव में यदि आधा पौंड छेना-तोर प्रति आदमी अपने भोजन के साथ खाये तो उसके भोजन का स्तर ऊँचा हो सकता है। यदि इसका सम्पूर्ण पानी निकाल दिया जाय तो १०० पौंड छेना-तोर से ६·५ पौंड शुष्क पदार्थ मिलेगा जिसमें ६ प्रतिशत प्रोटिन, ७६·८ प्रतिशत लैक्टोस, ८·३ प्रतिशत खनिज पदार्थ एवं 'ब' समूह के सभी विटामिन पाये जाते हैं, तथा इस शुष्क चूर्ण को डिब्बों में भर कर रक्खा जा सकता है। भारतवर्ष में प्रति वर्ष इस प्रकार ६० हजार मन शुष्क छेना-तोर चूर्ण बनाया जा सकता है जिसको कि मट्ठा के शुष्क चूर्ण की तरह भोज्य पदार्थों के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है।

४—मैहर या कीट—जब मक्खन को गर्म करके घी निकाला जाता है तो एक प्रकार का ठोस पदार्थ अलग हो जाता है जिसको **कीट** या **मैहर** के नाम से

पुकारते हैं। देहातों में इस को घी छानने के पश्चात् फेंक दिया जाता है, या इसे चावल इत्यादि के साथ अधिक पाचक बनाने के लिए खाया जाता है। उन केन्द्रों में भी जहाँ घी अधिक मात्रा में बनाया जाता है, इस कीट को या तो फेंक दिया जाता है या गड्ढों में गाड़ दिया जाता है। अनुमानतः भारत में प्रति वर्ष घी से १·२ लाख मन कीट निकलता है। रासायनिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि १०० पौंड कीट में ३० पौंड प्रोटीन, ३६ पौंड वसा, २८ पौंड लैक्टोस तथा कुछ मात्रा में खनिज पदार्थ भी होते हैं। शुद्ध दूध में प्रोटीन की उपस्थिति, तथा वसा एवं लैक्टोस के कारण अनुमान लगाया गया है कि कीट एक महत्व पूर्ण भोज्य पदार्थ है।

परन्तु इस समय भारतीय घी बनाने वाले केन्द्रों में कीट को नष्ट कर देते हैं अतः कीट को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया गया है। फिर भी कीट, में घी की अधिक मात्रा होने के कारण खटास आ जाती है, जिसके कारण अधिक दिनों तक नहीं रक्खा जा सकता है। इसके लिए एक विधि निकाली गई है जिसके द्वारा कीट में उपस्थित घी की मात्रा को अलग करके बचे हुए पदार्थों को अर्द्ध-ठोस के रूप में रक्खा जा सकता है। कीट में कुछ मात्रा में नमक एवं सिरका डाला जाताहै। तत्पश्चात् उस पदार्थ में एक निश्चित अनुपात में खमीर (ईस्ट) मिलाया जाता है जिसके कारण विटामिन तथा खनिज पदार्थों कैलशियम गंधक, लोहा की पूर्ति हो जाती है। कीट का अर्द्ध शुष्क पदार्थ जो कि बंद काँच के या चीनी मिट्टी के बर्तनों में रक्खा जाता है कभी भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इसे मुख्य रूप से टाफी, बिस्कुट एवं दोसा बनाने के काम में लाया जा सकता है। दुग्ध पदार्थ होने के कारण शाकाहारियों एवं माँसाहारियों के उपयोग के लिये समान रूप से काम में आ सकता है।

५—तेली—ब्याने के शीघ्र ही तत्पश्चात् जो दूध निकलता है उसे **तेली** कहते हैं। तेली की रासायनिक रचना शुद्ध दुग्ध की अपेक्षा भिन्न होती है क्योंकि इसमें जल, चीनी एवं वसा की मात्रा कम होती है। साथ ही केजिन, एलबुमिन, ग्लाबुलिन तथा खनिज पदार्थों की मात्रा शुद्ध दूध की अपेक्षा अधिक होती है। सबसे बड़ा अन्तर ग्लाबुलिन के कारण होता है क्योंकि इसकी मात्रा तेली में १२-१३ प्रतिशत तक होती है, जब कि शुद्ध दुग्ध में बहुत ही कम मात्रा में पाई जाती है। रासायनिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि तेली में औसतन पूर्ण ठोस २८·३ प्रतिशत वसा ३·३७ प्रतिशत, केजिन ४·८३ प्रतिशत, एलबुमिन १५·८१ प्रतिशत, लैक्टोस २·४८ प्रतिशत, ग्लाबुलिन १२·५ प्रतिशत एवं खनिज पदार्थ १·७८ प्रतिशत होते हैं। तेली शुद्ध दूध से रंग एवं स्वाद में भी भिन्न होता है। इसका रंग लालिमा युक्त पीत होता है एवं खटास लिए हुए स्वाद होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व १·०७ होता है। इसको भोज्य पदार्थ के रूप में गरम करके तथा चीनी डाल कर खाया जा सकता है, क्योंकि गरम करने पर तेली जम जाती है। सोंठ एवं गुड़ डालने से एक विशेष स्वाद आ जाता है जिसे हम अपने भोजन में खा सकते हैं। इस बने हुए पदार्थ को कसेवर, या पेउसरी के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार इसे नालियों में न फेंक कर भोज्य पदार्थों के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दुग्ध उद्योग में अवशिष्ट पदार्थों का सदुपयोग मनुष्यों के भोज्य पदार्थों के रूप में होकर, वृथा में होने वाली हानियों को रोका जा सकता है और राष्ट्रीय स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है।

परिवार आयोजन कार्यक्रम

[ले०--श्री वी० के० वी० पिल्ले, आई० सी० एस०]

दूसरे पंचवर्षीय-आयोजन-कार्यक्रम के अन्तर्गत शहरों और देहात में परिवार आयोजन केन्द्र खोले जा रहे हैं, राज्य सरकारों तथा सेवा संस्थाओं को सन्तति निग्रह केन्द्र खोलने के लिए सहायता दी जा रही है और परिवार आयोजन कार्यकर्त्ताओं को काम सिखाया जा रहा है। साथ ही देश की जनसंख्या के बारे में गवेषणा की योजनाएँ बनायी जा रही हैं। इसके अलावा लोगों को सन्तति निरोध के तरीके सिखाये जा रहे हैं और उनको इससे होने वाले लाभ बताये जा रहे हैं।

परिवार आयोजन की सबसे ऊँची संस्था केन्द्रीय परिवार आयोजन मंडल है। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री इस मंडल के अध्यक्ष हैं और मंडल की एक स्थायी समिति भी है। इसी प्रकार का ढाँचा राज्यों में भी है। परिवार आयोजन के प्रकार के लिए सार्वजनिक संस्थाओं का सहयोग लिया जाता है। सार्वजनिक संस्थाएँ भी अब इस काम में अधिकाधिक उत्साह ले रही हैं।

इस कार्यक्रम के लिए दूसरी आयोजना में ४ करोड़ ९७ लाख रु० की व्यवस्था है। इसमें से ४ करोड़ रु० केन्द्रीय और ९७ लाख रु० राज्यों की योजनाओं पर खर्च किये जाएँगे। परिवार आयोजन कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों को केवल यही समझाना नहीं है कि अपनी सन्तान की संख्या कम करें, बल्कि यह बताना भी है कि इससे राष्ट्र के विकास में कितनी मदद मिलेगी तथा लोगों के स्वास्थ्य को कितना लाभ होगा और रहन-सहन का स्तर कैसे उठेगा। साथ ही परिवार-आयोजन का प्रचार इस ढंग से होना चाहिएं, जिससे लोग विशेषतः देहात के लोग, खुशी से इन तरीकों को अपनावें।

भारत की जनसंख्या हर साल ५.० लाख की दर से बढ़ रही है और यदि यही गति रही तो हमारी आर्थिक विकास की योजनाएँ पीछे पड़ जाएँगी। वैसे तो हर एक राष्ट्रीय आयोजना में जनसंख्या की वृद्धि को ध्यान में रखा जाता है और बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए अन्न, वस्त्र और मकान का प्रबन्ध किया जाता है, परन्तु यदि इस वृद्धि पर कोई रोक न रहे तो खाने वालों की सख्या बढ़ती ही जाएगी और अन्न या और अधिक साधन कभी पूरे न पड़ेंगे। लोग भी अधिक जनसंख्या या बहुत बड़े परिवार से होने वाली कठिनाइयों को समझते हैं, अतः उन्हें गर्भनिरोध के वैज्ञानिक तरीके बताये जाएँ और समझाया जाए कि इस प्रकार वे अपने परिवार का आयोजन कर सकते हैं। यह काम सरकारी और गैर सरकारी दोनों ओर से होना चाहिए। परिवार आयोजन का तरीका बताने के लिए तो सरकारी डाक्टर हैं और लोगों को इसके लिए प्रेरित करने का काम समाज-सेवक करें। इस कार्यक्रम में सबसे पहला काम देश भर में परिवार आयोजन के तरीके सिखाने वाले केन्द्र खोलना है। सरकार का विचार है कि दूसरी आयोजना में देहातों में २,००० और शहरों में ५०० परिवार आयोजन-केन्द्र खोले जाएँ। पहली आयोजना में १४७ केन्द्र खोले गये। पिछले नवम्बर तक देहातों में ६४ और शहरों में ६० केन्द्र खोले जा चुके हैं।

परिवार आयोजन कार्यक्रम में दूसरा स्थान डाक्टर, स्वास्थ्य निरीक्षक, समाज सेवक तथा लोगों में जाकर काम करने वाले कर्मचारियों की शिक्षा को दिया गया है। ये ही लोग केन्द्रों को चलावेंगे, वहाँ आने वाले को सलाह देंगे और गर्भनिरोध के तरीके बतावेंगे और घर-घर घूम कर यह भी देखेंगे कि काम कहाँ तक सफल हो पाया है।

कर्मचारियों को सिखाने की व्यवस्था बम्बई के परिवार आयोजन और गवेषणा केन्द्र में है, रामनगरम के परिवार आयोजन, प्रदर्शन और प्रयोग केन्द्र में और कलकत्ते के अखिल भारतीय आरोग्य तथा सार्वजनिक स्वास्थ्यशाला (इंस्टिट्यूट आफ हाइजीन एंड पब्लिक हेल्थ) में है। निकट भविष्य में छः क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र भी स्थापित किये जाएँगे। इसके साथ ही जो डाक्टर, स्वास्थ्य निरीक्षक या समाज-सेवक इस काम में लगे हैं, उनके ज्ञान को ताजा करने के लिए छोटी-छोटी कक्षाएँ भी लगायी जाएँगी। शिक्षित कर्मचारियों का अभाव दूर करने के लिए अधिक प्रशिक्षण केन्द्र खोलने की व्यवस्था की जा रही है। इन केन्द्रों में इस शर्त पर वृत्तियाँ दी जाएँगी कि सीखने वाले बाद में कम से कम तीन साल तक परिवार आयोजन की सरकारी या स्थानीय संस्थाओं में नौकरी करेंगे।

इसके साथ ही जनसंख्या की वृद्धि के सम्बन्ध में अध्ययन की तथा विभिन्न श्रेणी के लोगों के लिए अच्छे और अधिक प्रभावी गर्भनिरोधी उपकरण निकालने के लिए गवेषणा की जरूरत है। परिवार आयोजन कार्यक्रम में यह अध्ययन भी किया जाएगा कि देश में कितने लोग पैदा होते हैं और मरते हैं तथा इसका ठीक अनुमान लगाया जा सके और देखा जा सके कि परिवार आयोजन का क्या प्रभाव पड़ता है।

देश में दो जनांकिकी (जनसंख्या के आँकड़े) केन्द्र खोले गये हैं; एक बम्बई में जो दोराव जी टाटा-ट्रस्ट के साथ काम करेगा और दूसरा दिल्ली विश्वविद्यालयके तत्वावधान में दिल्ली में।

परिवार आयोजन कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके सब अंगों की प्रगति समान हो। यदि कार्यक्रम के किसी विशेष क्षेत्र में अधिक काम हुआ और दूसरे क्षेत्र पीछे रह गये, तो पूरे कार्यक्रम को नुकसान होगा।

परिवार आयोजन राष्ट्र के विकास और देश की आर्थिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसे समाज के कल्याण और जनता के सुधार का आधार समझना चाहिए। तभी इसका महत्व समझ में आवेगा। देहातों में जो प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये हैं, परिवार आयोजन का काम उनका अभिन्न अंग होना चाहिए। परिवार आयोजन से जनता का जीवन सुधरेगा, इसलिए यह कार्य देश के आर्थिक विकास की योजना का अंग है।

राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम (पृष्ठ ५२ से आगे)

चाहिए। यदि आजमाइश के तौर पर उत्पादन जारी रखने का निश्चय किया गया, तो यह भी सोचना पड़ेगा कि ऐसे यंत्रों के चलाने की जिम्मेदारी किस पर हो।

राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम का काम प्रयोगशालाओं के आविष्कारों या अनुसंधानों के अनुसार, व्यापारिक आधार पर उत्पादन कराने की व्यवस्था करना है। पेन्टेटों का उपयोग करने का काम भी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद् से निगम ने अपने हाथ में ले लिया है। व्यक्तिगत अनुसंधानों को पेटेन्ट कराने का काम भी यही निगम करता है, लेकिन ऐसे अनुसंधानों का पेटेन्ट तभी कराया जाता है, जब ये सार्वजनिक हित के माने जाएँ।

विज्ञान-वार्ता

अमेरिकी विशेषज्ञ द्वारा उत्तम घास उगाने के कार्यक्रम में योग

सौराष्ट्र भूमि-संरक्षण-विभाग उपेक्षित भूमि पर अच्छी किस्म की घास उगाने और इस प्रकार भूमि-क्षरण को रोकने की दोहरी कार्यवाही में लगा हुआ है। घनी घास जहाँ भूमि-क्षरण की रोकथाम में सहायक होगी, वहाँ किसानों के लिए आय का साधन भी होगी।

सौराष्ट्र में, उपेक्षित भूमि से अधिक से अधिक लाभ उठाने के इन प्रयत्नों में कैन्सास राज्यीय कालेज के घास-विशेषज्ञों की एक टोली मदद दे रही है।

इस टोली का कार्यक्षेत्र बम्बई और आन्ध्रप्रदेश हैं। इसके एक सदस्य डा० एल्बर्टसन हाल में हैदराबाद पधारे थे। एक भेंट में इस घास-विशेषज्ञ ने बताया कि इन दिनों घास की जमीनों के सुधार के सम्बन्ध में चल रहे कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बेकार भूमि में अच्छी किस्म की घास उगा कर भूमि-क्षरण को रोकना है। इस घास से भूमि को कड़ा करने में मदद मिलेगी और इस प्रकार भूमि को कमजोर पड़ने से रोका जा सकेगा।

अच्छी किस्म की घास के उत्पादन में रासायनिक खाद के प्रयोग का प्रदर्शन करके किसानों को यह बतलाया जाता है कि अच्छी किस्म की घास उगाने से कैसे उनकी आय बढ़ सकती है और साथ ही उनके मवेशियों में कैसे सुधार हो सकता है। ये प्रदर्शन सौराष्ट्र भर में फैली १० से लेकर ४०० एकड़ तक की विभिन्न चुनी हुई जमीनों में किये जा रहे हैं। इन परीक्षणों से भूमि को कड़ा करने वाली विभिन्न किस्मों की घासों तथा फलियों के बारे में यह भी पता लगाया जा सकेगा कि वे पशुओं के लिए रुचि और चराई की दृष्टि से कहाँ तक उपयुक्त हैं।

घास की जमीनों के सुधार के काम में दिलचस्पी पैदा करने के विचार से, सरपंचों प्रगतिशील किसानों तथा विविध बस्तियों के अन्य इच्छुक व्यक्तियों को प्रदर्शन-योजनाओं को देखने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। यहाँ किसानों को तस्वीरें और स्लाइडें दिखलाई जाती हैं तथा उनके समक्ष भाषण दिये जाते हैं। जिन छोटे क्षेत्रों को पिछले वर्षों में कम या ज्यादा विभिन्न अनुपात में बुवाई के लिए इस्तेमाल किया गया है, उनमें वनस्पतियों अथवा घास की घनता, बनावट और पैदावार के सम्बन्ध में निश्चय करने वाली योजनाएं भी तैयार की जा रही हैं।

डा० एल्बर्टसन का कहना है कि सौराष्ट्र में २ वर्ष के प्रदर्शन-कार्य के बाद घास की जमीनों के विकास का कार्य अधिक बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए और नई प्रदर्शन-योजनाएँ चालू की जानी चाहिए।

सौराष्ट्र में घास के मैदान इतने विस्तृत और बुरी दशा में हैं कि यदि इस कार्यक्रम को सफल बनाना हो तो उच्चतम सरकारी अधिकारी से लेकर अपने मवेशियों के लिए घास का उपयोग करने वाले ग्रामीण तक प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्रयत्न किये जाने की आवश्यकता है। जिन इलाकों में घास की पैदावार कम है, उनकी स्थिति को सुधारने का विशेष रूप से प्रयत्न किया जाना चाहिए और योजना के प्रारम्भिक वर्षों में मवेशियों के प्रयोग के लिए सुरक्षित प्रदेशों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

भारतीय गऊएं जो कम मात्रा में दूध देती हैं कारण है कि इन पशुओं के मालिक अपने पशुओं को उपयुक्त आहार नहीं देते। इसका इलाज यही है कि पशुओं की नस्ल सुधार कर और उन्हें अधिक मात्रा में चारा देकर दूध के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाये।

ब्रह्मांड में नयी खोजें

आर्मीनियाँ स्थित ब्यूराकान ज्योतिर्भौतिकी वेधशाला के प्रधान अकादिमिशियन विक्तोर अम्बत्सुमियाँ ने कहा, "वेधशाला के कर्मचारियों ने नये प्रकार के नक्षत्र जगत का पता लगाया है जिसका नाम हमने "नक्षत्र-संघ" रखा है। कुछ ही समय पूर्व तक अधिकतर ज्योतिर्भौतिकीविदों का विश्वास था कि छायापथ के समस्त तारे एक साथ उद्भूत हुए। और सच तो यह है कि छायापथ को विकास के मामले में स्थिर माना जाता था। वेधशाला में जो अनुसन्धान किये गये हैं, उनके कारण हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि तारों के निर्माण की प्रक्रिया जारी है। यह निष्कर्ष विशुद्ध ज्योतिर्भौतिकी महत्व का होने के अलावा विश्व के परिवर्तनशील स्वरूप और विकास की भौतिकवादी धारणा का एक और प्रमाण प्रस्तुत करता है।"

वेधशाला अरागात्स पर्वत के एक ढलुवा स्थान पर अवस्थित है और समुद्र की सतह से १५०० मीटर की ऊँचाई पर है तथा ब्यूराकान गाँव से बहुत दूर नहीं। आर्मेनियाई जनतंत्र की विज्ञान अकादमी की यह वेधशाला हमारे देश की नवीनतम वेधशालाओं में से एक है जो युद्ध के बाद बनायी गयी।

वैज्ञानिकों ने यह जगह इसलिए चुनी क्योंकि यहाँ बहुत ही सुन्दर वायु मंडलीय अवस्थाएँ हैं जो ज्योतिष-विज्ञान सम्बन्धी अवलोकनों के अनुकूल हैं।

तास के सम्वाददाता ने विक्तोर अम्बत्सुमियाँ से कहा कि वह वेधशाला में होने वाले अन्य अनुसन्धान कार्यों के बारे में कुछ बतायें।

उन्होंने बताया, "नक्षत्र-संघों के बारे में हमारे अध्ययन का एक और प्रकार के नक्षत्र मंडलों के अनुसन्धान के लिए विशेष महत्व है जिन्हें एक अर्से से नक्षत्र-दल के नाम से जाना जाता है। लगभग बीस साल पहले सोवियत वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया था कि नक्षत्रदल तुलनात्मक दृष्टि से नये समूह है। ब्यूराकान में जो और अध्ययन किया गया, वह बताता है कि ये दल प्रत्यक्षतः नक्षत्र-संघों से सम्बन्धित हैं। इस सम्बन्ध के स्वरूप के बारे में वेधशाला के कर्मचारी दल के सदस्य बी० मार्कारियाँ ने विशेष खोज की है।"

अकादमिशियन ने आगे चलकर बताया कि नक्षत्र संघों और नक्षत्र दलों के जो उनके ही भाग हैं, बारे में विस्तृत खोज के फलस्वरूप वैज्ञानिक सर्वाधिक महत्व के निष्कर्ष पर पहुँचे हैं और वह यह है कि इन मंडलों में नक्षत्र अकेले नहीं बल्कि दलों में उद्भूत होते हैं।

अकादमिशियन अम्बत्सुमियाँ ने कहा—"इस कारण हम छायापथ में नक्षत्रों के निर्माण के स्वरूप के बारे में सीधे एक आखिरी नतीजे पर पहुँच जाते हैं।"

वेधशाला में हो रहे मौजूदा काम के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा :—

इस समय हमारा कार्यकर्ता दल नये तारों की जो नक्षत्र संघों के भाग हैं, भौतिक अवस्थाओं का अध्ययन कर रहा है। पिछले सालों में हमने देखा कुछ नये तारों के बाहरी सतहों में सर्वथा असामान्य और गूढ़ प्रक्रियाएँ घटित होती हैं। हमने देखा कि इन तारों के इर्द-गिर्द के वायुमंडल की अवस्थाओं में बहुत तेजी से परिवर्तन हुए, इनमें रंग, उत्पादित शक्ति की मात्रा में परिवर्तन आदि शामिल हैं।

इस समय हमारे वैज्ञानिक जो खोज कर रहे हैं, उनमें इन अस्थिर तारों के समन्वित अध्ययन का मुख्य स्थान है। इसके अलावा अस्थिर तारे और उनके बारे में अध्ययन की विधियाँ गत वर्ष हमारी वेधशाला में हुए सम्मेलन के विषय थे। इस सम्मेलन में सोवियत वैज्ञानिकों के अलावा फ्रांस, अमरीका, मैक्सिको, चीन और युगोस्लाविया के प्रमुख ज्योतिर्भौतिक विशारदों ने भाग लिया था।

अ-स्थिर तारों का अध्ययन नक्षत्रलोक के विकास को नियंत्रित करने वाले नियमों का पता लगाने और पदार्थ की नयी और अब तक अज्ञात गुणागत अवस्थाओं के बारे में हमारे ज्ञान को बढ़ाने के लिए महान् सुअवसर उपस्थित करता है।

हमारी वेधशाला ऐसे केन्द्रों में से एक है जहाँ रेडियो-ज्योतिविज्ञान और विद्युतीय फोटोमीट्रिक अध्ययन

जैसे ज्योतिष विज्ञान के नये क्षेत्रों का; विकास किया जा रहा है। हमारे कुछ कार्यकर्ता खगोलीय पदार्थ के विकिरण से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के लिए नवीनतम रेडियो-भौतिक विधियों के विशदीकरण में लगे हुए हैं।

अकादिमिशियन अम्बत्सुमियाँ ने इसके बाद वेधशाला में इस्तेमाल में आने वाले साज-सामान के बारे में बातें बतायीं और कहा कि वेधशाला बहुत ही बढ़िया ढंग के सोवियत निर्मित साज-सामान से युक्त है, वहाँ १०,१६ और २० इंची आइना दूरबीनें और संसार के सब से ज्यादा शक्तिशाली निहारी-वर्णपटचित्रों में से एक मौजूद है।

उन्होंने कहा कि व्युराकान की रेडियो-ज्योतिष और साज-सामान निर्माण प्रयोगशाला ने तीन रेडियो-दूरबीनें बनायी हैं, वे काम करने लगी हैं। यह आशा की जा रही है कि वेधशाला में शीघ्र ही और शक्तिशाली यन्त्र आ पहुँचेंगे।

दक्षिण ध्रुव में पच्चीस करोड़ वर्ष पुराने उद्भिदजीवाश्म

सोवियत संघ के ध्रुवीय अनुसन्धानकर्त्ताओं ने दक्षिण ध्रुव में काष्ठ के प्रांगारित टुकड़ों तथा बालुका राशि पर पत्तियों की छापों का पता लगाया है। ये पौधे वहाँ बीस-पच्चीस करोड़ वर्ष पूर्व लगाये गये थे। वैज्ञानिकों ने जानवरों की हड्डियों से मिलते-जुलते अश्मीभूत अवशेषों का पता लगाया है। ये जानवर सम्भवतः करोड़ों वर्ष पूर्व दक्षिण ध्रुव में रहते थे। जब वैज्ञानिकों की मंडली मुख्य भूमि के पूर्वी भाग में हौर्नबुल्फ के पास उतरी तब उन्होंने यह अनुसन्धान किया। भूगर्भशास्त्रियों ने यह स्थापित किया है कि हौर्नबुल्फ की रेत में लगभग ३० प्रतिशत ग्रेनेट और बड़े परिमाण में कैसीटेरीटो विद्यमान है।

सोवियत संघ के दक्षिण ध्रुवीय तृतीय समुद्री अभियान ने पश्चिम में नौक्स समुद्र-तट से पूर्व में जार्ज पंचम नामक भूखंड तक दक्षिण ध्रुव के मुख्य प्रदेश में विस्तृत क्षेत्र का पता लगाया। अभियानकारी उस भूखंड के पास पहुँचे जहाँ पहले कोई नहीं गया था। वहाँ मेरु शीर्ष पूर्णतया हिम विहीन है क्योंकि वायु के प्रबल झोंके हिम को उड़ा ले जाते हैं।

कास्पियन समुद्र तट पर स्वयंचालित ऋतु स्टेशन

कास्पियन समुद्र के उत्तर-पूर्वी किनारे के रेगिस्तानी क्षेत्रों में स्वयंचालित रेडियो ऋतु स्टेशनों का सफलतापूर्वक परिचालन हो रहा है। ध्वजदंड स्थित रेडिओ पथदर्शक यंत्र प्रति छः घंटे वायुमंडलोय दबाव, वायु के तापमान, वायु की दिशा और गति की सूचना देता है। इन तथ्यों को अंकित करने वाले यंत्र भी ध्वज-दंड के ऊपर लगाये गये हैं अधिकांश यंत्रादि, जैसे नियंत्रणकारी प्रसाधन, शक्तिस्रोत तथा घड़ी के पुर्जे जैसे स्वयंक्रिय चालक यंत्र भूगर्भ में हैं। ऐसी व्यवस्था की गई है कि उनकी विद्युत् शक्ति के स्रोत साल भर तक काम देंगे। पूर्वी स्टेशन २५० मील के घेरे में काम करता है। बाकू का ऋतु कार्यालय स्वयंचालित ऋतु स्टेशनों के इन संकेतों को अंकित करता है तथा कास्पियन क्षेत्र के लिए ऋतु सम्बन्धी पूर्व सूचनाएँ देता है। इस वर्ष दागेस्तान और अजरबैजान के उत्तुंग पर्वत शिखर पर स्वयंचालित स्टेशन स्थापित किये जाएँगे जो वायुमंडलीय चाप, वायु के तापमान, गति और दिशा के अलावा वायुमंडलीय अधःक्षेप को अंकित करेंगे।

विज्ञान

मई १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए ३७२

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद तथा मुद्रक ओंकार प्रेस, प्रयाग।

भाग ८७

संख्या ३

जून १९५८, मिथुन २०१५ वि०, आषाढ १८८० शा०

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८७ | मिथुन २०१५ विक्र० ज्येष्ठ १८८० शाकाब्द; जून १९५८ | संख्या ३

सम्पादकीय

तृतीय स्पुतनिक

१५ मई को रूस ने एक विशालकाय स्पुतनिक छोड़ा है। इस स्पुतनिक की सहायता से वायुमंडल के ऊपरी धरातलों का अध्ययन सम्भव हो गया है। संवाद प्रेषण की उत्तम चयनात्मकता और बहुप्रणाली युक्त टेलीमीटरिंग पद्धति के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर स्थापित रिकार्डिंग स्टेशनों पर तथ्यों तथा आंकड़ों का सम्प्रेषण अधिक सरलता से हो सकेगा। सौर बैटरियों के समावेश के फलस्वरूप अधिक अवधि तक पर्यवेक्षण और वैज्ञानिक आंकड़ों के पंजीकरण की सुविधा भी रहेगी।

स्पुतनिक शंकु के आकार का है। इसका व्यास ५ फुट ८ इंच, ऊँचाई ११ फुट ८॥ इंच तथा भार २९२५.५ पौंड है। केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान सम्बन्धी यंत्रों, रेडियो माप यन्त्रों और विद्युत शक्ति साधन यन्त्रों का भार २१३४ पौंड है। विद्युत रासायनिक बैटरियों के अतिरिक्त सौर बैटरियों से भी इसे लैस किया गया है जिसके विद्युत रासायनिक बैटरियों की समाप्ति के पश्चात भी सौर बैटरियों की सहायता से वैज्ञानिक तथ्यों का सम्प्रेषण सम्भव हो सके। स्पुतनिक का कक्ष विषुवत रेखा से ६५° के कोण पर है। पृथ्वी की एक बार परिक्रमा करने में इसे १०८ मिनट लगते हैं। पृथ्वी से स्पुतनिक की महत्तम दूरी ११६८ मील है। स्पुतनिक में लगा ट्रान्समीटर १५०-३०० मिली सेकन्ड में २०.००५ मेगासाइकिल की गति से शक्तिशाली टेलीग्राफ संकेत देता है। उदयाचल तथा अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों में स्पुतनिक बिना दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता के देखा जा सकता है।

इस स्पुतनिक की सहायता से निम्न की मात्रा के अध्ययन और मापन के हेतु यन्त्र लगे हैं :—

१—वायुमंडल के ऊपरी स्तरों के चाप और गठन।

२—धन अयनों के समावेश।

३—स्पुतनिक के तडिताधान के परिणाम और पृथ्वी के स्थिर वैद्युतिक क्षेत्र के तनाव तथा पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के तनाव।

४—सूर्य के कण विकिरण की तीव्रता।

५—प्राथमिक ब्रह्माण्ड विकिरण के गठन।

६—ब्रह्माण्ड किरणों में फोटोनों और भारी परमाणु केन्द्र पदार्थों (न्यूक्लियसों) के वितरण।

७—क्षुद्र उल्काओं।

८—स्पुतनिक के भीतर और उसके धरातल के तापमान।

स्पुतनिक के रैडार स्टेशनों द्वारा गृहीत स्थानांको सम्बन्धी तथ्य और आंकड़ों के वर्गीकरण तथा नियमबद्धीकरण को स्वयं चालित ढंग से करने की व्यवस्था की गई है। इन्हें प्रतिमानित और ज्योतिर्वैज्ञानिक समय में रूपान्तरित कर लिया जाता है और संचार सूत्रों द्वारा योगसूत्र स्थापनकरी एवं गणनाकारी केन्द्र में सम्प्रेषित किया जाता है। विभिन्न स्टेशनों से गणनाकारी केन्द्र द्वारा प्राप्त माप स्वयं चालित उच्चवेगयुक्त विद्युत गणना यन्त्रों में डाल दिये जाते हैं जो स्पुतनिक कक्ष के आधारभूत परिमितियों और उसके एथेमेराइड्स की गणनाओं का निर्धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक दृष्टि सहायक पर्यवेक्षण केन्द्र, ज्योतिर्विज्ञानी वेधशालायें, रेडियो क्लब आदि भी तृतीय स्पुतनिक के पर्यवेक्षण में योग दे रहे हैं।

तृतीय स्पुतनिक की सहायता से पृथ्वी के वायुमंडल पर सौर विकिरण के प्रभाव के विषय में, चुम्बकीय तूफानों, ध्रुव प्रभा आदि की व्याख्या के सम्बन्ध में आश्वस्तता-मूलक ढंग से भविष्यवाणी की जा सकेगी। ब्रह्माण्डीय यानों की सुरक्षा के हेतु उल्का पिण्डीय कणों के केन्द्रीकरण एवम् उनकी शक्ति के निर्धारण की माप भी सुविधापूर्वक की जा सकेगी।

अणुशक्ति के विकास का उज्जवल भविष्य

इस शताब्दी के शेष काल में अणुशक्ति के विकास को सबसे बड़े एवं प्रमुख विकाशील उपयोगों में समझा जायेगा। १९६० से लेकर १९७० तक लोकतन्त्री देशों में लगभग १० अरब डालर के व्यय से आणविक बिजली उत्पादन-केन्द्रों की स्थापना की जायेगी। १९७० के बाद आणविक बिजलीघरों के निर्माण पर और अधिक व्यय किया जायेगा।

अमेरिका की बिजली कम्पनियाँ १९६२ तक लगभग १० लाख किलोवाट बिजली तैयार करने की क्षमता वाले आणविक बिजलीघरों के निर्माण की योजनायें बना रही हैं। इसके बाद के पाँच वर्षों में ये कम्पनियाँ ६५ लाख किलोवाट बिजली तैयार करने वाले अन्य आणविक बिजलीघरों की स्थापना करेंगी। अनुमान है कि १९६७ से १९७२ तक पाँच वर्षों की अवधि में ३ करोड़ ५० लाख किलोवाट की तैयार विद्युत-उत्पादन क्षमता वाले आणविक बिजलीघर हो जायेंगे। इस निरन्तर वृद्धि के कारण यह विश्वास किया जाता है कि १९९० तक अमेरिका में तैयार होने वाली लगभग ८० प्रतिशत बिजली आणविक बिजलीघरों से पैदा की जाने लगेगी।

ब्रिटेन इस दिशा में पहले से ही काफी आगे है। उसने १९६२ तक १४ लाख ७५ हजार किलोवाट बिजली और १९६५ तक ६० किलोवाट बिजली के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित कर रखा है। 'यूरेटम' कार्यक्रम—जिसमें फ्रांस, इटली, लक्समवर्ग, वेल्जियम, हालैण्ड तथा पश्चिमी जर्मनी भी शामिल हैं--के अन्तर्गत १९६७ तक कुल १ करोड़ ५० लाख किलोवाट बिजली तैयार करने वाले बिजलीघरों के निर्माण की व्यवस्था की गई है।

अनुमान है कि १९६५ के आसपास तक जापान के आणविक बिजलीघरों में १० लाख किलोवाट बिजली तैयार होने लगेगी और १९८० तक आणविक बिजली का उत्पादन १ करोड़ या १॥ करोड़ किलोवाट तक पहुंच जाने की संभावना है।

भारत तथा अन्य एशियाई देशों और दक्षिणी अमेरिका के कुछ देशों ने भी १९६० से १९७० तक आणविक बिजलीघरों द्वारा बिजली तैयार की योजनाएँ बना ली हैं।

अणुशक्ति द्वारा व्यापारी जहाजों तथा नौसेना के जहाजों के निर्माण-क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण योग दिये जाने की सम्भावना है। अणुशक्ति को इस्तेमाल करने से जहाज में ईंधन (तेल या कोयले) रखने के गोदाम की आवश्यकता नहीं रहेगी और इस स्थान को माल ढोने के लिए प्रयुक्त किया जा सकेगा। दूसरे, इन जहाजों को बन्दरगाह पर ईंधन भरने के लिए रुकना नहीं पड़ेगा, इसलिए समय की बचत होगी। तीसरे, अणुशक्ति-चालित ईंधनों के कारण ये जहाज अधिक तेज चलेंगे और इसके परिणामस्वरूप हर वर्ष अधिक यात्रा कर सकेंगे।

इन योजनाओं के फलस्वरूप अणु शक्ति अन्य शक्ति साधनों का स्थान ले लेगी और अधिक सुविधापूर्वक अनेक जटिल समस्याओं को सुलझा सकेगी।

विज्ञान जून १६५९
पृष्ठ ६७-७०

चौथा आयाम

[डा० ब्रजमोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

हम देखते हैं कि प्रकृति में मनुष्य, जीव-जन्तु और पौधे इन सब में आरम्भ से ही किसी न किसी प्रकार की सम्मिति होती है। और ज्यों-ज्यों प्राणी अथवा पौधे का विकास होता है यह सम्मिति ज्यों की त्यों बनी रहती है। इस विषय में कुछ अपवाद भी मिलते हैं। किन्तु यहाँ हम अपवादों को छोड़कर सार्वस्थिति पर विचार करेंगे। इस सम्मिति में कौन से नियम निहित हैं। जब कली बढ़कर फूल हो जाती है तो किस नियम के अनुसार उसकी आकृति की सम्मिति अक्षुण्ण बनी रहती है। ऐसा बहुत बार देखने में आता है कि किसी व्यक्ति को हम बचपन में देखते हैं और फिर वर्षों उससे कोई सम्पर्क नहीं रहता। २०-२५ वर्ष पश्चात् हमें उसकी शक्ल दिखाई पड़ती है और हम पहचान लेते हैं कि यह वही व्यक्ति है जिसे बचपन में देखा था। उसकी आकृति बहुत कुछ बदल जाती है। आकार पहले से बहुत बढ़ जाता है। मुख की आकृति में अन्तर पड़ जाता है। दाढ़ी मूँछें निकल आती हैं किन्तु फिर भी उसके शरीर की गठन के कुछ लक्षण अपने मौलिक रूप में विद्यमान रहते हैं। इसी कारण हम उस व्यक्ति को पहचान लेते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि उसके शरीर का विकास कुछ निश्चित नियमों के अनुसार हुआ है, अलल टप्प नहीं हुआ है।

उन नियमों का अध्ययन करने के लिये एक घन पर विचार कीजिए जो छोटे छोटे २७ घनों से बना हुआ है। मान लीजिये कि यह घन किसी प्राणी के शरीर अथवा पौधे को निरूपित करता है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि प्रत्येक छोटे घन का भार और द्रव्य मान उसके केन्द्र पर पुंजीभूत है। इस प्रकार हमें २७ बिन्दु प्राप्त हो गये जिनमें से एक केन्द्र में स्थित हैं और शेष २६ उससे कम या अधिक दूरी पर स्थित है। इन २६ बिन्दुओं को केन्द्र से जोड़ दीजिए। जब इस घन का विकास होगा तो इस प्रकार होगा कि उससे किसी दूसरे घन के विकास में बाधा न पहुँचे। घन के विस्तार में ये २६ बिन्दु केन्द्र बिन्दु से दूर हट जायेंगे और घन के संकोच के समय केन्द्र बिन्दु के समीप आ जायेंगे। इस प्रकार हमें घन के विकास का पहला नियम प्राप्त हो गया।

नियम १—विस्तार और संकोच के क्रियाकाल में अणु उन ऋजु रेखाओं पर चलते हैं जो उन्हें केन्द्र बिन्दु से मिलाते हैं।

हम यह भी देखते हैं कि जो रेखायें २६ बिन्दुओं को केन्द्र से मिलाती हैं सब बराबर नहीं होतीं। जो घन बड़े घन की बाहरी परिधि पर स्थित है उनको केन्द्र से मिलाने वाली रेखायें बड़ी होती हैं। शेष घनों को केन्द्र से मिलाने वाली रेखायें अपेक्षाकृत छोटी होती है। अब यदि एक बिन्दु को केन्द्र से मिलाने वाली रेखा परिमाण में दुगुनी हो जाती है तो समस्त बिन्दुओं को केन्द्र से मिलाने वाली रेखायें दुगुनी हो जायेंगी। यदि एक रेखा तिगुनी होगी तो समस्त रेखायें तिगुनी हो जायेंगी। किन्तु ये समस्त रेखायें लम्बाई में समान नहीं हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विस्तार और संकोच में भिन्न-भिन्न अणुओं का वेग एक सा नहीं होता। इस प्रकार हमें दूसरा नियम मिल जाता है।

नियम २—विस्तार और संकोच में अणुओं की गति उन रेखाओं के अनुपात में होती है जो उनको केन्द्र से मिलाती है।

अब मान लीजिए कि हम उन रेखाओं को कैसे निरूपित करें जो २६ बिन्दुओं को केन्द्र से मिलाती हैं

और उन रेखाओं को दू से निरूपित करें जो भिन्न-भिन्न अणुओं को एक दूसरे से मिलाती हैं। तो समरूप त्रिभुजों की रचना से यह स्पष्ट है कि रेखाओं दू की वृद्धि रेखाओं की वृद्धि के अनुपात में होगी। इस प्रकार हमें तीसरा नियम प्राप्त हो गया।

नियम ३—संकोच और विस्तार में अणुओं की पारस्परिक दूरियाँ उसी अनुपात में घटती बढ़ती हैं जिस अनुपात में केन्द्र से अणुओं की दूरियाँ घटती बढ़ती हैं।

इस नियम से यह भी स्पष्ट हो गया कि जो अणु विस्तार से पहले केन्द्र से समदूरस्थ थे विस्तार के पश्चात् भी समदूरस्थ ही रहेंगे। उसके अतिरिक्त जो विन्दु किसी तीसरे विन्दु से समदूरस्थ थे वह उस विन्दु से अब भी समदूरस्थ रहेंगे।

अब केन्द्र को छोड़कर किसी अन्य बिन्दु पर विचार कीजिए। यह स्पष्ट है कि जो बिन्दु पहले इस बिन्दु से समदूरस्थ थे, वह अब भी समदूरस्थ रहेंगे और यदि इस विन्दु से किसी विन्दु की दूरी दुगुनी हो गई है तो इस बिन्दु से शेष समस्त विन्दुओं की दूरियाँ भी दुगुनी हो जायँगी।
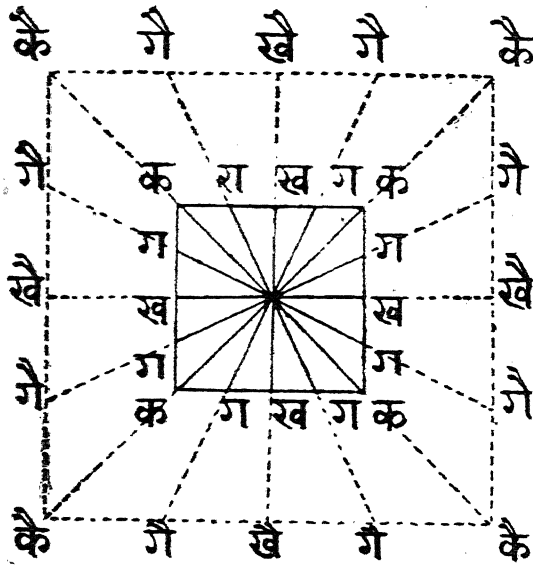
तो इसका यह अर्थ निकलता है कि यदि हम केन्द्र विन्दु के स्थान पर इसी विन्दु को केन्द्र मान लें तो ऐसा प्रतीत होगा कि शेष सब विन्दु इस विन्दु से दूर हट रहे हैं अथवा इसी विन्दु के समीप आ रहे हैं। अतः यदि हम केन्द्र विन्दु के स्थान पर इसी विन्दु को केन्द्र मान लें तो भी परिणाम में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इस प्रकार हमें चौथा नियम प्राप्त होता है।

नियम४—विस्तार और संकोच में प्रत्येक विन्दु केन्द्र का काम करता है।

हम यहाँ घन के उदाहरण को और भी सरल रूप देते हैं। घन के स्थान पर हम एक वर्ग की आकृति बनाते हैं। मान लीजिए कि वर्ग के चारों शीर्षक क हैं और वर्ग की चारों भुजाओं के मध्य विन्दु ख हैं। हम मध्य विन्दुओं और शीर्षों के मध्यस्थ विन्दुओं को ग से निरूपित करते हैं। मान लीजिए कि विस्तार के पश्चात् प्रत्येक विन्दु क की स्थिति कै हो जाती है। इसी प्रकार विन्दु ख की स्थिति खै हो जाती है और ग की गै।

चारों बिन्दु क केन्द्र से समान दूरी पर स्थित हैं। चारों बिन्दु ख भी केन्द्र से समान दूरी पर स्थित हैं। इसी प्रकार आठों बिन्दु ग भी। हम देखते हैं कि इन बिन्दुओं की नई स्थितियाँ भी केन्द्र से समान दूरी पर स्थित हैं। चारों विन्दुओं कै की केन्द्र से दूरी समान है। इसी प्रकार चारों विन्दुओं खै और आठों विन्दुओं गै की भी। इसके अतिरिक्त यदि कोई एक रेखा खै गै अपने सामने की रेखा ख ग की दुगुनी हो तो कोई सी भी रेखा खै गै अपनी सम्मुख रेखा ख ग की दुगुनी होगी।

अब मान लीजिए कि वर्ग बढ़ता जा रहा है। जब तक उसके विस्तार में कोई बाधा नहीं पहुँचती वर्ग के समस्त बिन्दु उपरिलिखित विषयों के अनुसार केन्द्र से दूर हटते जायँगे। अब मान लीजिए कि अकस्मात किसी विन्दु ग की गति अवरुद्ध हो जाती है और विन्दु चलते-चलते एकदम रुक जाता है। अब दो में से एक बात होगी। या तो शेष सातों बिन्दु ग अपने रास्ते चलते जायंगे मानो कुछ हुआ ही न हो। या शेष सातों बिन्दु ग भी एकदम

रुककर निश्चल हो जायंगे। पहली दशा में तो वर्ग की आकृति बिल्कुल लुंजी हो जायगी। जैसा प्रायः प्रकृति में दिखाई नहीं देता। दूसरी स्थिति में वर्ग के स्थान पर एक सम्मिति तारिका बन जायगी। ऐसी आकृतियाँ हम दिन-रात देखा करते हैं। हमने जो दूसरे और तीसरे नियम प्रतिपादित किये हैं उनके अनुसार यह मानना पड़ेगा कि कोई विषमआकृति नहीं बन सकती तारिका ही बनेगी।
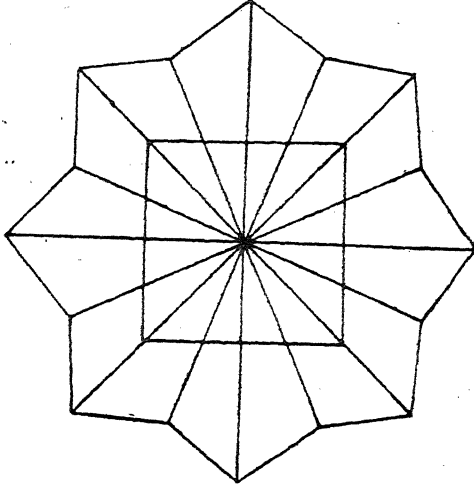
अब तनिक द्रव्य के तीनों रूपों पर विचार कीजिए। ठोस, द्रव और गैस। यह वर्गीकरण कोई बहुत सन्तोषजनक नहीं है। एक बार द्रव्य के एक चौथे रूप पर भी लोगों ने विचार किया था। यह एक प्रकार की बहुत सूक्ष्म गैस होती है जो क्रुक नलियों (Crooks Tubes) में परिलक्षित होती है। कुछ लोगों ने इसका नाम तेजस्वी द्रव्य रक्खा था। यदि इसका विचार छोड़ भी दें तो यह मानना पड़ेगा कि द्रव्य के कुछ ऐसे रूप भी होते हैं जो ठीक प्रकार से उपरिलिखित तीनों में से किसी भी रूप के परिचायक नहीं होते। कीचड़ और रबड़ी को ठोस कहेंगे या द्रव। इसी प्रकार मधु, लेई, पुटीन और कोलतार किस वर्ग में आयेंगे। अशुद्ध भाप को क्या कहेंगे जिसमें पानी के कण मिले रहते हैं। क्या उसे शुद्ध गैस कहा जा सकता है। जब हम रेल में बैठते हैं तो इंजन के धुयें में कोयला भी मिला हुआ उड़कर आता है। क्या हम ऐसे धुएँ को गैस की संज्ञा दे सकते हैं। इस विषय में सोडे की बोतल की अन्तर्वस्तु की क्या स्थिति होगी। बच्चे साबुन के पानी से गुब्बारे बनाकर उड़ाया करते हैं। उन गुब्बारों को द्रव्य का कौन-सा रूप कहेंगे। दूध के झाग, जिसे निमिस भी कहते हैं, कौन से वर्ग में रक्खे जायेंगे।

यदि हम उपर्युक्त सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि द्रव में अणुओं का फैलाव ठोस से अधिक है और गैस में द्रव से भी अधिक। यों कहना चाहिए कि द्रव में अणुओं की गति ठोस की अपेक्षा अधिक होती है। अथवा द्रव के अणु ठोस के अणुओं की अपेक्षा अधिक चल चुके होते हैं। संक्षिप्त भाषा में हम यह कह सकते हैं कि द्रव में काल की मात्रा ठोस से अधिक होती है और गैस में द्रव से अधिक। जैसे-जैसे ठोस पिघलकर द्रव बनता जाता है, उसमें अवकाश कम होता जाता है और काल बढ़ता जाता है। या यों कहिये कि द्रव की मात्रा घटती जाती है, गति की मात्रा बढ़ती जाती है। इसी प्रकार जब द्रव की गैस बनती है उसमें अवकाश घट जाता है, काल बढ़ जाता है। इस काल की मात्रा को ही हम चौथा आयाम कह सकते हैं। जब किसी जीवित पदार्थ का विकास होता है वह चौथे आयाम में चलता है। जब बर्फ गिरता है, बर्फ के टुकड़े बड़ी अद्भुत, सुन्दर, सम्मिताकार आकृतियाँ बनाते हैं। घास और शीशे पर पाला बड़े सुन्दर चित्र खींचता है। तारों की आकृतियाँ सुरम्य और मनमोहक दिखाई पड़ती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो संसार का रचयिता एक विलक्षण रूपांककार (Designer) है जो चौथे आयाम में घुमाकर वस्तुओं को सुन्दर रूप प्रदान कर देता है।

अन्त में हम इस विषय पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार करेंगे। एक लट्टू लीजिये। उस पर स्याही से एक धब्बा डाल दीजिये। अब लट्टू को घुमाइये। जब तक लट्टू मन्द गति से चलता रहेगा, हमको धब्बा स्पष्ट दिखाई देगा। जब उसकी गति तीव्र हो जायगी, धब्बा आँखों से ओझल हो जायगा।

साइकिल का एक पहिया लीजिये। उसकी दो तीलियों के बीच में आप आसानी से एक डंडा डाल सकते हैं। अब पहिये को भूमि पर रखकर जोर से घुमाइये। जब

उसके आवेप (Vibrations) बहुत बढ़ जायँगे, आप उसमें डंडा नहीं डाल सकेंगे। आतिशबाजी की चरखी में जब आग लगायी जाती है तो आरम्भ में तो चार विन्दुओं पर पृथक-पृथक चार प्रकाश पुंज दिखाई पड़ते हैं। किन्तु जब चरखी घूमने लगती है तब उन प्रकाश पुंजों का अस्तित्व मिट जाता है और उनके स्थान पर एक गोल चक्कर दिखाई पड़ता है। महाभारत में भीष्म के सम्बन्ध में यह उल्लेख आता है कि वह इतनी तीव्र गति से अस्त्र-शस्त्र चला रहे थे कि स्वयं दिखाई नहीं पड़ रहे थे। उनके चारों ओर अग्नि का एक चक्कर दिखाई पड़ रहा था, जिसको 'अलात चक्र' का नाम दिया गया है।

संसार में प्रत्येक प्राणी अथवा पदार्थ के कार्य के प्रत्येक विन्दु के कुछ निश्चित आवेप होते हैं। जब आवेप बढ़ जाते हैं तब पदार्थ ठोस स्थिति से द्रव स्थिति में परिणत हो जाता है। जब आवेपों की संख्या और बढ़ जाती है तो पदार्थ इतना सूक्ष्म हो जाता है कि हमारी आँखों को कठिनाई से दिखाई पड़ता है। उस स्थिति में हम उस पदार्थ को गैस कहते हैं। कुछ रूपों में गैस हमें दिखाई पड़ती है जैसे भाप और धुआँ। सामान्य वायु हमें दिखाई नहीं पड़ती। किन्तु उसके चलने से हमारी त्वचा को उसकी गति का भान होता है। जब वायु तेज होती है, पेड़ों के पत्ते हिलते हैं, कपड़े उड़ने लगते हैं और हमें ठंढ या गर्मी लगने लगती है। इस प्रकार हमें वायु की अनुभूति हो जाती है।

अब मान लीजिये कि कुछ प्राणी अथवा पदार्थ ऐसे हैं जिनके आवेपों की संख्या गैस के आवेपों से भी बढ़ी हुई है। तो वह दिखाई तो देंगे ही नहीं, हमको उनका बोध गैसों की अपेक्षा भी कम होगा। ऐसे प्राणियों अथवा पदार्थों को हम चतुरायाम कार्य कह सकते हैं। सामान्यतः गैसें हमारे ठोसों में नहीं घुस पातीं। किन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, कुछ पदार्थ इतने सूक्ष्म होते हैं कि हमारे ठोसों को भेदकर पार निकल जाते हैं। यदि चौथे आयाम के प्राणियों का अस्तित्व हो तो संभवतः वे हमारे कमरों की दीवारों और पत्थरों में घुस जायँगे।

विज्ञान, जून, १९५८, पृ० ७१-७६

गतांक से आगे—(६)

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल०, साहित्यरत्न, प्राध्यापक, कृषि-रसायन, प्रयाग विश्वविद्यालय]

काल परिवर्तन के साथ ही भारतीय कृषि की प्राचीन परम्परा का प्रायः कायापलट हो गया। हर्ष के पश्चात् कई सौ वर्षों का इतिहास अन्धकारपूर्ण है। केवल अलाउद्दीन खिलजी के ही राज्यकाल में (१३०० ई०) हम पुनः कृषि की व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण प्रकाश पाते हैं। जमींदारों पर कठोर बर्ताव होने के साथ ही करों में इतनी वृद्धि कर दी गई थी कि भूमि के अतिरिक्त घरों और पशुओं पर भी कर लगाये गये थे और चीजों के मूल्य इतने गिरा दिये गये थे कि खिलजी के राज्यकाल की दरों को आज भी 'अन्धेर नगरी, अन्धेर राजा' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन भावों का उल्लेख बरनी ने तारीख फिरोजशाही में इस प्रकार किया है:—

गेहूँ १ पैसे में २ सेर, जौ ३½ सेर, धान ३ सेर, खड़ी माश ३ सेर, चने की दाल ३ सेर, मोठ ५ सेर, खांड ४½ छटांक, गुड़ १८ छटांक, मक्खन १४½ छटांक, तिल्ली का तेल १७½ छटांक और नमक ६ सेर।

किसानों को लगान में अनाज देना पड़ता था। उस समय दुधार गाय का मूल्य ३-४ रुपये और बकरी का दाम १०-१२ पैसे था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि किसानों के लिये कृषि कितनी अलाभकर वृत्ति थी। अलाउद्दीन के पश्चात् फीरोजशाह तुगलक के काल में किसानों को कुछ राहत मिली। करों में घटती हुई। कहा जाता है कि शेरशाह को छोड़ कर मध्ययुगीन काल में फिरोज तुगलक के समान किसानों का हितैषी कोई शासक न हुआ। जो भी हो, उस समय बिना खेती के जमीन की चिट भी शेष न थी। उसने सिंचाई के लिये सतलज और जमुना नदी से नहरें निकलवाईं। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिंचाई होती थी उनसे पैदावार का १/१० भाग सिंचाई-कर के रूप में लिया जाने लगा। अनाजों के भावों में कुछ उतार आया। एक पैसे में १¾ सेर गेहूं, ३½ सेर जौ, ३½ सेर अन्य अनाज व दालें; ढाई छटांक चीनी तथा पौने तीन छटांक घी बिकने लगा। इसी काल में भारी अकाल पड़ा तो अनाजों के दाम बढ़ गये। फिर मुहम्मद तुगलक का समय आया। १० वर्षों तक घोर अकाल रहा जिससे कृषि का सत्यानाश हो गया। देश का धन अपहरण करने की लालसा से ही बाबर के पूर्व के आक्रमणकारियों एवं शासकों ने भारत पर राज्य किया। अतः १५०० ई० तक कृषि में किसी प्रकार का उन्नयन न हो सका। रही सही सारी व्यवस्था विशृंखलित हो गई। बाबर ने मुगल राज्य की स्थापना भारत में अवश्य की किन्तु युद्धों में व्यस्त रहने के कारण कृषि की ओर उसका कोई ध्यान ही न गया। हुमायूँ को भी अपनी स्थिति संभालते बीता। किन्तु शेरशाह सूर ने कृषि व्यवस्था में अपने अल्पकालीन शासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन कराये। ये ही परिवर्तन सम्राट अकबर की सफलताओं की आधारशिला हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि मुगलकाल के पूर्व भी सरकारी आय का सबसे बड़ा साधन जमीन-कर या लगान था। बिहार में अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करते हुये अफगान बादशाह शेरशाह ने लगान-प्रणाली का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था अतः अपने राज्याभिषेक (सन् १५४०) के पश्चात् उसने लगान-व्यवस्था चालू की जिसकी सफलता के परीक्षण वह स्वयं सहसराम और टांडा में कर चुका था। राजा टोडरमल उसका मन्त्री था। बाद में इसी टोडरमल ने अपने अनुभवों को सम्राट अकबर के प्रश्रय में भूमि-व्यवस्था में प्रयुक्त किया। शेरशाह ने समान-पद्धति

पर जमीन की पैमाइश कराई और जिस जमीन पर पैदावार होती थी या हो सकती थी, उसे हर गाँव में पृथक निश्चित कर दिया। फिर पैदावार योग्य जमीन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया—अच्छी, साधारण और खराब इन तीनों प्रकार की जमीनों की पैदावर भी निश्चित की गई। इनको जोड़ कर तीन से भाग देने पर प्रति बीघे की औसत पैदावार निकाली गई। इस पैदावार का एक तिहाई सरकारी हिस्सा समझा जाता था। सरकारी लगान को किसान अन्न अथवा नकदी, दोनों ही रूप में दे सकते थे। चूँकि प्रत्येक स्थान की जमीनें और उनकी पैदावारें भिन्न थीं अतः शेरशाह ने लगान निश्चित करने की तीन प्रणालियाँ अपनाईं :—

(१) गल्लाबख्शी अथवा बटाई। (२) नश्क अथवा मुकताई या कनकूत और (३) नकदी अथवा जब्ती या जमाई।

बटाई वह प्रणाली थी जिसमें किसान और जमींदार किसी भूमि से उत्पन्न अनाजों को आपस में बाँट लेते थे। यह बटाई तीन प्रकार की हो सकती थी—(१) खेत-बटाई, जिसमें खेत का क्षेत्रफल ही बँट जाता था। (२) लाँक-बटाई, जिसमें अन्न निकालने के पूर्व ही भूसा सहित अनाज बाँट लिया जाता था और (३) रास बँटाई, जिसमें अन्न निकाल कर बँटाई की जाती थी।

नश्क वह प्रणाली थी जिसमें जमीन की पैदावार को मोटे तौर पर करने के पूर्व आँक लिया जाता था। नकदी प्रथा रुपये देने की थी। इसमें तीन वर्ष या उससे अधिक के लिये प्रति वर्ष प्रति बीघे का लगान निश्चित हो जाता था और उसे किसानों को प्रत्येक दशा में देना पड़ता था, भले ही सूखा पड़े, बाढ़ आवे या अन्य दैवी प्रकोपों से फसल नष्ट हो जाय। दूसरी ओर अच्छी फसल होने पर भी सरकार लगान में वृद्धि न कर पाती थी। भूमि के सर्वेक्षण और लगान वसूलयाबी के लिये किसानों से २½ से ५% तक अधिक लगान लिया जाता था। प्रायः अनाज के रूप में वह लगान इकट्ठा होता था, जो अकाल आदि के लिये सुरक्षित रखा जाता था।

इस प्रकार से शेरशाह-काल में कृषि की उन्नति सीधे पैदावारों के बढ़ाने के प्रयासों के रूप में न होकर कृषि योग्य भूमि की व्यवस्था के रूप में हुई। कृषि-शास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है—भूमि सर्वेक्षण। उसकी असली नींव इसी समय पड़ी, यद्यपि खिलजी ने भी ऐसी पैमाइशें कराई थीं।

शेरशाह के बाद का युग भारतीय इतिहास का सर्वोत्तम युग माना जाता है और वह है अकबर का काल। सम्राट अकबर के साथ-साथ, राजा टोडरमल का नाम सर्वदा लिया जाता है। टोडरमल ने जो भूमि व्यवस्था चलाई उसके मूल रूप में मुगलकाल में कोई परिवर्तन नहीं हुये यद्यपि अकबर के उत्तराधिकारियों ने उसके चलाये हुये बन्दोबस्त में कुछ हेर-फेर अवश्य किये। लेनपूल का कथन है कि मध्य-कालीन इतिहास का कोई भी व्यक्ति भारत में आज तक टोडरमल की ख्याति नहीं पा सका क्योंकि उसका भूमि-कर-संगठन प्रजा को सर्वाधिक लाभकर सिद्ध हुआ। यद्यपि भारत में सदा से भूमि-कर आय के स्रोत रहे हैं किन्तु अकबर-काल में अन्य अनेक करों के हट जाने से भूमि-कर में सहसा बड़ी भारी वृद्धि आ गई। किन्तु फिर भी भूमि की व्यवस्था ने कृषकों को अप्रसन्न न रखा। उनका सीधा सम्बन्ध सरकार से जुड़ गया। इतिहासकारों का मत है कि सम्राट अकबर का भूमि-कर-संगठन रैयत-वाड़ी था क्योंकि भूमि-कर सीधे रैयत (प्रजा) से लिया जाता।

अकबर के भूमि सम्बन्धी सुधार सन् १५७०-७१ ई० से प्रारम्भ हुये। इसके लिये स्थानीय कानूनगोओं से सर्वप्रथम अनुमान-पत्र तैयार कराये गये और फिर राजधानी में दस प्रधान कानूनगोओं ने उनका निरीक्षण किया। मुजफ्फर खां तुरबती ने राजा टोडरमल की सहायता से इन्हीं अनुमान पत्रों के आधार पर भूमि-कर निर्धारित किये। इसके पूर्व भूमि-कर अनुमान से ही लिये जाते थे और भिन्न-भिन्न स्थानों के अफसरों की सहायता नहीं ली जाती थी। इस व्यवस्था के पश्चात् सन् १५७३-७४ ई० में राजा टोडरमल ने गुजरात प्रान्त का बन्दोबस्त वहां छः महीने रहकर किया। भूमि को व्यवस्थित रूप से नाप कर उसके भिन्न-भिन्न विभाग किये और क्षेत्रफल तथा उपज के अनुसार कर लगाये। जो भूमि कृषि-योग्य न थी, उनमें बँटाई आदि प्रथाओं को जारी किया। इसी समय राजा

टोडरमल ने भूमि के नापने के गजों में आमूल परिवर्तन किये। कपड़े और भूमि नापने के अलग-अलग गज थे। इसी समय इलाही गज चला जो ४१ अंगुल का था और सब कार्यों के लिये प्रयुक्त होने लगा। अभी तक जरीबें पटुवे की होतीं जो घट-बढ़ सकती थीं। अब लोहे की छल्लों से युक्त बांस या नर्कट की जरीबें बनाई गई जो ५५ गज के बजाय ६० गज की होने लगीं। इन जरीबों के बनने से पैमाइश में सरलता होने लगी। एक वर्ग जरीब का ही बीघा होता था। एक बीघे में ३६००वर्गगज होते। फिर बीघे में बिस्वा,बिस्वांश,तिस्वांश, तपवांस,अंस्वांश भी होते। किन्तु पैमाइश में बिस्वांश के नीचे के क्षेत्रफल न नापे जाते और ६ बिस्वांश तक का भूमि-कर छोड़ दिया जाता था।

जरीब और बीघे के निर्धारण के पश्चात् भूमि को उपज के अनुसार विभक्त किया गया। चार प्रकार की भूमि मानी गई :—

(१) पोलज, जिसमें प्रति वर्ष खेती होती।

(२) **परौटी या परती** जो उर्वर बनाने के लिये कुछ दिनों तक बेकार पड़ी रहती।

(३) **चांचर**—वह जो ३-४ वर्ष तक बिना जोते पड़ी रहती।

(४) **बंजर**—जो ५ या ५ से अधिक वर्षों तक बिना जोते पड़ी रहती।

कर-निर्धारण में भूमि की उर्वरा शक्ति का ध्यान तो रक्खा ही जाता था, किन्तु भिन्न-भिन्न अनाजों के लिये भी कर में भिन्नता रखी गई थी। प्रजा अनाज अथवा उसके मूल्य द्वारा राज्य-कर दे सकती थी। किन्तु तरबूज, अजवाइन, प्याज, नील, पोस्ता, पान, हल्दी, सिंघाड़ा, सन, कचालू, गाजर, मूली, केला, तेंदू, ईख तथा तरकारियों का कर नकद रूप में ही लिया जाता था।

भूमिकर केवल बोई हुई भूमि का लिया जाता था। परौटी भूमि का कर उतने ही दिनों का लिया जाता था, जितने दिन उसमें फसल उगायी जाती। फिर यह कर पोलज के ही सदृश हो जाता। अतिवृष्टि या अनावृष्टि के कारण तीन या चार साल तक बेकार पड़ी रहने वाली भूमि चाचर के नाम से पुकारी जाती। खेती करने पर इसमें प्रथम वर्ष ५/१२ या १/३ लगान लगता। फिर धीरे-धीरे इसकी गणना पोलज में होने लगती थी। इसी प्रकार बंजर भूमि पर प्रथम वर्ष १-२ सेर प्रति बीघे लगान, दूसरे वर्ष ५ सेर, तीसरे वर्ष उपज का १/६, चौथे वर्ष उपज का १/४ और पांचवे वर्ष बंजर को पोलज मानकर उसके ही समान कर लिया जाता। इस प्रकार कोई भी भूमि पांच सालों में पोलज हो जाती थी। तब केवल फसल भेद रह जाता था।

खेतों की उपज को फसलों के अनुसार **आषाढ़ी** और **सावनी** में विभक्त किया गया था। इन दोनों के कर भिन्न होते थे। यह कर पोलज को तीन प्रकारों में विभक्त करने के पश्चात् उन तीनों प्रकारों की उपजों का औसत लगाकर निश्चित किया जाता था। प्रत्येक व्यवस्था में यह कर औसत का तृतीयांश ही होता। पोलज के उक्त तीन प्रकार थे—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। नीचे पोलज भूमि की प्रति बीघा उपजों को आषाढ़ी तथा सावनी फसलों के अनुसार दिया जा रहा है। साथ ही कर की भी मात्रा दी जा रही है :—

प्रति बीघा पोलज भूमि की उपज (मन-सेरों में)

आषाढ़ी

अनाज	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट	औसत	कर (१/३ औसत)
गेहूँ	१८ म०	१२ म०	८ म० ३५ से०	१२ म० ३८½ से०	४ म० १२¾ से०
मसूर	८ म० १० से०	६ म० २० से०	४ म० २५ से०	६ म० १८½ से०	२ म० ६ से०
जौ	१८ म०	१२ म० २० से०	८ म० १५ से०	१२ म० ३८⅓ से०	४ म० ११½ से०
अलसी	६ म० २० सेर	५ म० १० से०	३ म० ३० से०	५ म० ७ से०	१ म० २६ से०
मटर	१३ म०	१० म० २० से०	८ म० २५ से०	१० म० २३ से०	३ म० २३ से०
कूर धान	२४ म०	१८ म०	१४ म० १० से०	१८ म० ३० से०	६ म० १० से०

प्रति बीघा पोलज की उपज (मन-सेरों में)

सावनी

अन्न	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट	औसत	कर (औसत का १/३)
गुड़	१३ म०	१० म० २० से०	७ म० २० से०	१० म० १३ १/२ से०	३ म० १८ से०
रुई	१० म०	७ म० २० से०	५ म०	७ म० २० से०	२ म० २० से०
मामूली धान	१७ म०	१२ म० २० से०	६ म० १५ से०	१२ म० ३८ १/२ से०	४ म० १३ से०
मूँग	१० म० २० से०	७ म० २० से०	५ म० १० से०	७ म० ३० से०	२ म० २३ १/२ से०
उर्द	१० म० २० से०	७ म० २० से०	५ म० १० से०	७ म० ३० से०	२ म० २३ १/२ से०
ज्वार	१३ म०	१० म० २० से०	७ म० २० से०	१० म० १३ १/२ से०	३ म० १८ से०
साँवा	१० म० २० से०	८ म० २० से०	५ म० ५ से०	८ म० १ १/२ से०	२ म० २७ १/२ से०
कोदो	१७ म०	१२ म० २० से०	६ म० १५ से०	१२ म० ३८ १/२ से०	४ म० १२ १/२ से०
मडुवा	११ म० २० से०	६ म०	६ म० २० से०	६ म०	३ म०

अबुलफजल ने बंजर भूमि के असाढ़ी और सावनी करों का पंचवार्षिक चक्र भी दिया है, जिसके अनुसार किसानों से कर वसूल किया जाता था।

इस प्रकार से बड़े ही यत्नों के साथ अकबर के काल में छठे वर्ष से २४ वें वर्ष तक के भूमि-कर संबंधी आँकड़ों को एकत्र किया गया था। अबुलफजल ने मुल्तान, लाहौर, मालवा, इलाहाबाद, दिल्ली, अवध, आगरा आदि सूबों के १६ वर्षों के असाढ़ी और सावनी करों का वार्षिक विवरण दिया है। किन्तु प्रायः अनाजों के मूल्यों के निर्धारण में देर लगती थी अतः किसानों को लगान चुकता करने में समय लगता फलतः दस वार्षिक-बन्दोबस्त चालू किया गया, जिसमें १५ वें से २४ वें वर्ष तक के एकत्रित कर को जोड़ कर दस से भाग दे दिया गया था और जो औसत आया वही वार्षिक भूमि कर नियुक्त हुआ। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि केवल २० वें से २४ वें वर्ष तक कर एकत्रित कर ध्यान से लगाया गया था। अतः पिछले पाँच वर्षों में कर निर्धारण के लिये प्रतिवर्ष की सर्वोत्तम फसल को ग्रहण किया गया और उसी के अनुसार भूमि-कर नियत किया गया। इस बन्दोबस्त के पूर्व भूमि-कर का विवरण **आइने अकबरी** में १६ वर्षों के लिये विस्तृत रूप से दिया गया है। इन सबसे स्पष्ट है कि उस समय का भूमि-कर-संगठन आधुनिक पद्धति की तुलना में अत्यन्त पेंचदार था। कर वसूल करने के लिये कई प्रकार के कर्मचारी थे जिनमें **पटवारी** का काम प्रत्येक कृषक की भूमि एवं कर का व्यौरा रखना था। इस प्रकार का बन्दोबस्त कृषकों के लिये भले ही कष्टकारक रहा हो किन्तु आपत्तियों के समय कृषकों को कर-मुक्त कर दिया जाता था। राजा की आज्ञा थी कि दैनिक आपत्तियों की सूचना उन्हें अवश्य दी जाय परन्तु अबुलफजल ने सम्राट द्वारा माफी का उल्लेख दो-एक बार ही किया है। यहाँ पर अकबर कालीन भावों पर दृष्टिपात करते हुए वर्तमान भावों से उनकी तुलना करना अप्रासंगिक न होगा :—

अकबर के समय वस्तुओं के मूल्य

मन = २६ सेर। दाम = १/४० रुपया

सामग्री	मूल्य प्रति मन (दामों में)	रुपयों में प्रतिमन	आज के प्रति मन से मूल्य।	अकबर काल से आज के मूल्यों में गुनी वृद्धि
गेहूँ	१२	४·८ आना	७·५ आना	४०
जौ	८	३·२ ,,	४·८ ,,	—
चावल बढ़िया	११०	२ रु० १२ आ०	४ रु० २ आ०	१२
चावल घटिया	२०	८ ,,	१२ ,,	४०
मूँग	१८	७·२,,	११·४ ,,	३६
उड़द	१६	६·४,,	६·६ ,,	५५
चना	१६	६·४,,	६·६ ,,	२५
वार	१	४·०,,	६ ,,	—
चीनी	१२८	३ रु० ३·२ आना	४ रु० १२·८ आ०	७
घी	१०५	२ ,, १४ ,,	३ रु० १५·५ ,,	२१५
तिल-तेल	८०	२ रु०	३ ,, ० ,,	४०
मक्र	१६	६·४ आना	६·६ ,,	१७

उपरोक्त को देखते हुये स्पष्ट हो जाता है कि अकबर के काल से आज तक पैदावारों तथा उनके दामों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये हैं। अंग्रेज इतिहास लेखकों ने अकबर काल की कृषि सफलताओं से विद्वेषित होकर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि अकबर के काल में अकाल ही अकाल पड़े। ये अकाल सन् १५५६, १५७३-७४, १५८३ और १५९५-९८ में पड़े। सन् १६३० ई० में, अकबर की मृत्यु के पश्चात् फिर एक बड़ा भारी अकाल पड़ा जिसमें लोगों को आटे के साथ हड्डी का चूर्ण खाना पड़ा। कहा जाता है कि सन् १५९५-९८ ई० के अकाल में भी आदमी ने आदमी को अपना भोजन बनाया था। परन्तु भारतीय इतिहासकार मुगलकाल में न तो अकालों की बहुलता को और न कठोरता को ही स्थान देते हैं। वे मुगल काल में कृषि को फलवती हुई बताते हैं।

अकबर के काल में जंगलों तथा उद्यानों के संरक्षण और सुव्यवस्था में विशेष ध्यान दिया गया। मुगलकालीन उद्यान-शास्त्र निश्चित रूप से स्तुत्य है। जंगलों का संरक्षण केवल शिकार के दृष्टिकोण से होता था। अकबर

की मृत्यु के पश्चात् कृषि ने कोई उन्नति न की। अंग्रेजों का धीरे-धीरे प्राबल्य होता गया और उन्होंने अपने लाभों के आगे, व्यवसायी दृष्टिकोण के कारण, अधिकाधिक कर पर ही ध्यान दिया। कृषि की उन्नति पर उनका ध्यान ही न गया। बहुत बाद में कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत को उपनिवेश बनाकर अंग्रेजों ने यहाँ वैज्ञानिक कृषि की नींव १६ वीं शती के अन्तिम चरण में डाली। इस वैज्ञानिक कृषि के विकास का अध्ययन पृथक लेख माल द्वारा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जायगा।

मध्यकालीन खेती का विस्तृत वर्णन हमें "आइने अकबरी" तथा "अकबरनामा" में मिलता है। इनके अनुसार भारत में अनाज, कपास, गन्ना, तिलहन, फलफूल की खेती बहुतायत से होती और यहाँ के निवासी समृद्ध थे। विदेशी यात्री बर्नियर ने अपनी मुगल साम्राज्य की यात्रा में लिखा है—"सारा देश उपजाऊ बगीचों के सदृश दिखलाई देता है। नाना प्रकार की सुन्दर और उपजाऊ फसलों और बनस्पति से घिरे हुए यहाँ के गाँव स्वावलम्बी हैं। यहाँ पर गेहूं, धान, सन, केसर, सेव, नाशपाती आदि फलों और शाक-भाजियों की खेती होती है। पैदावार की मात्रा पर्याप्त से भी अधिक है—बंगाल में धान और गन्ने की खेती बहुत होती है, जो गोलकुण्डा, कर्नाटक, अरब, मैसोपोटामिया और फारस तक भेजी जाती है।"

अभी तक भारतीय कृषि के विकास के सम्बन्ध में जितना कुछ लिखा जा चुका है, उसके प्रकाश में मुगल काल में कृषि सुव्यवस्था ने सर्वेक्षण एवं लगान निर्धारण की ओर अग्रगामी पद रखे। घाघ और भड्डुरी जैसे कृषि पंडितों ने इसी युग में लोक-वाणी के माध्यम से व्यावहारिक कृषि की शिक्षा दी। भारतीय कृषि ने हर्ष के पूर्वकालिक वैभव को शेरशाह और अकबर के काल में फिर देखा। जनता ने कृषि की ओर आकृष्ट होकर उसे सम्पन्न बनाने का प्रयास करना प्रारम्भ किया किन्तु सहसा अंग्रेजों के प्रवेश, उनकी नीति तथा दमन के चक्र के वशीभूत हो कृषि-वृत्ति को छोड़ दिया और नाना प्रकार के उद्योग-धन्धों से जीवन-निर्वाह करने का स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया। यह है, हमारी भारतीय कृषि की प्राचीन गौरव गाथा।

—:o:—

क्या आप जानते हैं ?

❁आजकल जितने मार्ग में बिजली की रेलें चलती हैं, उसको छगुना बढ़ाना है। इस समय केवल २४०·२४ मील में बिजली की रेलें दौड़ती हैं और दूसरी आयोजना के दिनों में इनका मार्ग १,४३४ मील और बढ़ जाएगा।

❁भारत में सबसे पहली बिजली की रेल ३ फरवरी १६२५ को चली और तीन सरल बाद यानी ८ जनवरी, १६२८ को पुरानी बी० बी० सी० आई० रेलवे पर बिजली की रेलों का पहला मार्ग बना। इसके तीन साल बाद १६ मई १६३१ को पुरानी साउथ इन्डियन रेलवे पर भी बिजली की रेलें चलने लगीं। लेकिन पूर्वी क्षेत्र में बिजली की रेलों का श्रीगणेश काफी समय बाद १४ दिसम्बर, १६५७ को हावड़ा से हुआ।

❁अब भारत के रेलमार्ग की लम्बाई ३५ हजार मील से ऊपर पहुंच गयी है। एशिया में अब भी हमारी रेलों का पहला और संसार भर में चौथा स्थान है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से देश में १,०१६·७ मील में रेलें और निकल गयी हैं।

❁चितरंजन के रेल इंजन के कारखाने में दिसम्बर १६५७ के अन्त तक यानी उत्पादन शुरू होने के करीब ८ साल के अन्दर यहाँ ६२५ इंजन बने। २६ जनवरी, १६५० को यह कारखाना चालू हुआ था और ४ साल बाद, ६ जनवरी, १६५४ को यहाँ से १००वाँ इंजन बन कर निकला। इसके बाद उत्पादन तेजी से बढ़ा और ५ फरवरी, १६५५ को २०० वाँ, ३० नवम्बर १६५५ को ३०० वाँ, १२ अगस्त १६५६ को ४०० वाँ, २५ मार्च, १६५७ को ५०० वाँ और नवम्बर, १६५७ में ६००वाँ इंजन बन कर निकला।

विज्ञान, जून १६५८ पृ० ७७-८०
विशेष लेखमाला, पुष्प—२

प्राचीन भारत के रसायनवेत्ता चरक, सुश्रुत और वाग्भट

[लेखक—डा० रमाशंकरराय, एम० एस-सी०, डी० फिल०, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय]

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शरीरे सुश्रुतः प्रोक्तः चरकस्तु चिकित्सिते॥

अथर्ववेद तथा **शतपथब्राह्मण** की रचना के उपरान्त से लेकर गौतमबुद्ध के आविर्भाव तक की वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का लिपिबद्ध विवरण **चरक संहिता** और **सुश्रुत संहिता** में मिलता है। चरक संहिता संसार का प्राचीनतम आयुर्वेद ग्रन्थ है। इसमें औषधियों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। सुश्रुत संहिता में शल्य-चिकित्सा के साथ साथ औषधियों का भी उल्लेख मिलता है। उक्त पुस्तकों की अनेक टीकाएँ हुई हैं। चरक संहिता की टीकाओं की रचना गुप्तकाल से प्रारम्भ होती है, जब कि पाँचवीं शताब्दी में हरिश्चन्द्र भट्टार ने **'चरकन्यास'** नाम से इसकी टीका की और छठीं शताब्दी में वाग्भट के शिष्य जेज्जट ने **'निरन्तरपद'** तथा ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रपाणि दत्त ने **'आयुर्वेद दीपिका'** या **'चरकन्यास'** लिखा। इस प्रकार गुप्तकाल से लेकर मुस्लिम साम्राज्य की संस्थापना तक इसकी टीकाएँ बनती रहीं। मुसलमान इतिहासकार **अल्बरूनी** ने इसे आयुर्वेद की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना है। इसकी उपादेयता तथा लोकप्रियता का अनुमान इसकी टीकाओं से और इसकी महत्ता का अनुमान इसके अरबी भाषा में किए गए अनुवाद से लगाया जा सकता है। चरक संहिता की कुल मिलाकर लगभग पचास टीकाएँ हो चुकी हैं।

चरक और सुश्रुत की तिथियों के विषय में बड़ा ही मतभेद है। सिलवन लेवी ने चीनी त्रिपिटक के आधार पर चरक को कनिष्क के समकालीन बतलाया है। लेवी चरक को कनिष्क का राज्यवैद्य मानते हैं। चरक संहिता के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय तक पारे की औषधियों का प्रचलन नहीं हुआ था। इसके विपरीत **नागार्जुन** ने, जो कनिष्क के समकालीन था, पारे के यौगिकों का वर्णन अपनी पुस्तक **'रसरत्नाकर'** में किया है। पारे से बनी औषधियों के विषय में चरक की अनभिज्ञता यह सिद्ध करती है कि उनका आविर्भाव अवश्य ही नागार्जुन से पूर्व हो चुका था। इस प्रमाण के आधार पर सिलवन लेवी की धारणा उचित नहीं प्रतीत होती। आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय इन्हें बुद्धकालीन भारत से पूर्व का मानते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के भारतीय वैज्ञानिक **चक्रपाणिदत्त** ने चरक और पतन्जलि को एक ही पुरुष माना है। 'पातञ्जल महाभाष्य चरक प्रति संस्कृतैः।' योग-दर्शन के रचयिता तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि मौर्यकाल के उपरान्त हुए थे। चरक को 'वाह्लीकाः पह्लवाश्चीनाः शूलीकाः यवनाः शकाः' के आहार-विहार तथा स्वभाव का पता था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन लोगों के भारत में आने के उपरान्त ही चरक उत्पन्न हुए थे। इस प्रमाण के आधार पर चरक उत्तर-मौर्यकाल के प्रतीत होते हैं। वैदिक साहित्य में चरक का उल्लेख पाया जाता है।

चरक और सुश्रुत की संहिताओं पर सांख्यदर्शन और न्याय-वैशेषिक प्रणाली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। चरक ने प्रयोगात्मक पद्धति की अपेक्षा सिद्धान्तों के विवेचन पर विशेष ध्यान दिया और इसके विपरीत सुश्रुत ने वैज्ञानिक विधि का आश्रय लिया। चरक संहिता में वैदिक मंत्रों और देवताओं का समावेश है। इसक

शैली भी 'ब्राह्मणों' से मिलती है। ये 'ब्राह्मण' वेदों एक विशिष्ट अंग हैं। इन प्रमाणों के आधार पर चरक संहिता को सुश्रुत संहिता के पूर्व रख सकते हैं। चरक संहिता में अग्निवेश के वैज्ञानिक कार्यों का भी समावेश है। इसके अतिरिक्त अनेक अध्याय औषधियों के विषय में आयोजित एक गोष्ठी के विचार विमर्शों के आधार पर लिखे गये हैं। वास्तव में चरक संहिता एक ऐसा संग्रह है, जो कई सौ वर्षों की वैज्ञानिक प्रगति को लिपिबद्ध करके सम्पादित किया गया है। एक बौद्ध जातक के आधार पर अग्निवेश बुद्धकालीन-भारत में तक्षशिला में भेषज का प्राध्यापक था। चरक संहिता में वर्णित रासायनिक विधियाँ और धातु सम्बन्धी ज्ञान कौटिल्य कालीन भारत से निम्नतर हैं। अतः हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि कम से कम चरक चौथी शताब्दी ई० पू० के हैं।

चरक संहिता के समान सुश्रुत संहिता भी अति प्राचीन ग्रन्थ है। ए० बी० कीथ ने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि महाभारत के अनुसार सुश्रुत विश्वामित्र का पुत्र था। कॉरडियर ने अपनी पुस्तक 'Recentes Decouvertes' में लिखा है कि नागार्जुन ने पुनः सुश्रुत संहिता का सम्पादन किया था। जेज्जट ने पाँचवीं शताब्दी में इसकी टीका लिखी थी और इसी के आधार पर चन्द्रट ने सुश्रुत के पाठ का संशोधन किया। ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रपाणिदत्त ने 'भानुमती व्याख्या' नाम से इसकी टीका की। कीथ के मतानुसार सुश्रुत संहिता चरक संहिता के उपरान्त लिखी गई। पर हॉर्न्ले ने अपनी पुस्तक में (Studies in Medicine of Ancient India, Vol. I) इसे चरक के समकालीन माना है। सुश्रुत की विधियाँ चरक से भिन्न नहीं हैं। चरक ने विस्तृत विवरणों द्वारा वैज्ञानिक विधियों का निरूपण किया है। इसके विपरीत सुश्रुत ने न केवल अनावश्यक विवरणों का ही परित्याग किया है, किन्तु संयत तथा नीरस शैली में वैज्ञानिक प्रयोगों के विवरण दिये हैं। चरक के कतिपय श्लोक सुश्रुत संहिता से अक्षरशः मिलते हैं। इससे यह पता चलता है कि सुश्रुत चरक के बाद के हैं। एक बुद्ध जातक में ऐसा उल्लेख मिलता है कि सुश्रुत काशी विश्वविद्यालय का एक प्राध्यापक था और गौतम बुद्ध के समकालीन था। ए० बावेर नामक, एक बृटिश लेफ्टिनेण्ट को चीनी तुर्किस्तान के 'कत्चा' (Kutcha) स्थान पर १८९० में एक बौद्ध विहार से कुछ हस्तलिखित पुस्तकें मिली थीं। यह पुस्तकें गुप्तकालीन लिपि में लिखी गई हैं। इनके लेख के आधार पर इनका समय ३५० ईस्वी के लगभग निश्चित किया गया है। इनके बहुत से भाग तो अक्षरशः चरक और सुश्रुत संहिता से मिलते हैं, किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इनमें चरक का नाम नहीं है। इसके विपरीत सुश्रुत का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरक और सुश्रुत की ख्याति भारत भूमि की सीमा को लाँघ कर विदेशों में भी पहुँच चुकी थी। अपने कार्यों की गरिमा से वह केवल अपने देश में ही लोकप्रिय नहीं हुए थे किन्तु हिमालय के उस पार भी उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा का आदर होता था। वास्तव में इन दोनों ग्रन्थों में समकालीन रासायनिक प्रयोगों का ही निर्देश नहीं है किन्तु उनमें उत्तर वैदिक कालीन भारत से लेकर पूर्व कौटिल्य-कालीन-भारत के वैज्ञानिक ज्ञान के विकास का वर्णन है। यह भी निर्विवाद सत्य है कि इन दोनों ग्रन्थों के समय में विशेष अन्तर नहीं है।

चरक और सुश्रुत के समान ही वाग्भट भी आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने **अष्टांग संग्रह** नामक पुस्तक लिखा है। इनके पिता का नाम सिंहगुप्त था। यह बौद्ध धर्म के अनुयायी थे और 'अवलोकित' नामक गुरु से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। चीनी पर्यटक इत्सिंग (Itsing) ने इनका उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि कुछ समय पूर्व आयुर्वेद के अष्टांगों का संकलन एक विद्वान ने किया था। सिंहगुप्तात्मज वाग्भट के अतिरिक्त एक अन्य वाग्भट का भी उल्लेख मिलता है। प्राकृत साहित्य में यह 'बाहट' के नाम से विख्यात हैं। इनके गुरु का नाम सङ्घगुप्त है। इन्होंने **'अष्टांग हृदय संहिता'** की रचना किया है। इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में भी अनुवाद हुआ था। गरुड़ पुराण में 'अष्टांगहृदय' तथा 'अष्टांग संहिता' के निदान स्थान के कतिपय श्लोक मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम वाग्भट द्वितीय वाग्भट के पूर्वज थे और अपने विख्यात पूर्वज की परिपाटी का अनुकरण करके उन्होंने एक दूसरा ग्रन्थ 'अष्टांग हृदय

संहिता' लिखा। अष्टांग हृदय में आठ खण्ड, एक सौ बीस अध्याय तथा ७४४४ श्लोक हैं। इन दोनों पुस्तकों में सभी पूर्वकालीन तंत्रों के उद्धरण मिलते हैं। इसके साथ-साथ नवीन प्रयोगों का भी समावेश है। वाग्भट ने अपनी पुस्तक के आरम्भ में बुद्ध की वन्दना किया है। इससे उनके बौद्धमतावलम्बी होने में सन्देह नहीं है। कुछ विद्वानों ने वाग्भट का समय ईसा के उपरान्त सातवीं शताब्दी निर्धारित किया है। इसके विपरीत डी० सी० भट्टाचार्य ने भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की पत्रिका के १९४७ के २८ वें अंक में वाग्भट का समय ई० के पश्चात् ८०० से ८५० के बीच में माना है।

चरक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राचीन परम्परा से मिलता जुलता था। वह पंचभौतिक सिद्धान्तों में विश्वास करते थे। चरक संहिता में सोना, ताँबा, सीसा, टिन तथा लोहे और इनकी भस्मों का औषधियों के रूप में उपयोग किया गया था। उस समय पंच लवणों, सौवर्चल (Nitre) सैन्धव (RockSalt) वित (Black Salt) ओद्भिज (Vegetable Salt), समुद्र (Sea Salt) का ज्ञान हो चुका था। तूतिया, कसीस, मनःशिला (Realgar) ताल (Orpiment) तथा गन्धक का उपयोग चर्म रोगों में होता था। सीप की भस्म, मूँगा, राजवर्त, लौहभस्म, ताँबा तथा सौवीर (Stibnite) को भी मिलाकर औषधियाँ बनाई जाती थीं। धातुओं के गुणों को नष्ट करके उनके यौगिक बनाए जाते थे, जिसे धातु-मारण कहते थे। इसके लिए मुक्ता, लौह, ताम्र तथा गन्धक के चूर्ण को गन्धक के साथ गरम किया जाता था। लोहा, सोना तथा चाँदी के पतले-पतले टुकड़ों को लवणों तथा भस्मों के साथ गरम करके उनसे औषधियों का निर्माण होता था। औषधियों के बनाने में प्राकृतिक पार्थिव द्रव्यों (खनिज पदार्थों) का भी उपयोग किया गया था। अयस, अयस्कृति, अश्मकासीस, ओद्भिज, कांचन, कांचनगैरिक, कासीस, कांक्षी, कांस्य, गंधक, गैरिक (Red Ochre) ताम्र, त्रपु, मनःशिला, मरकत, माक्षीक, रजत, लोह, वज्रविड, स्वर्ण, स्वर्णमाक्षिक, सामुद्रक, सैन्धव, सौराष्ट्री, सौवर्चल, स्फटिक, हरिताल इत्यादि अनेक पार्थिव तथा खनिज पदार्थों की तालिका भी दी गई है। कुष्ट रोग की चिकित्सा में रस (पारा), गन्धक, सुवर्णमाक्षिक को मिलाकर औषधि बनाई जाती थी।

गन्धक योगादथवा सुवर्णमाक्षिक योगाद्वा।
सर्व व्याधि निवर्हणमद्यात् कुष्ठी रसं च निग्रहीतम्॥

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर पारे के लिए रसोत्तम शब्द प्रयुक्त हुआ है।

कालीयक न ताम्रास्थि हेमकाल रसोत्तमैः।
लेपः सगोमयरसैः सवर्णीकरणः परः॥

गन्धक और पारे के अपर्याप्त विवरण से यह अनुमान लगाया जाता है कि चरककालीन भारत में इन वस्तुओं का उपयोग इतनी अधिकता से नहीं हुआ था, जितना कि आगे आने वाली पीढ़ियों में हुआ। चरक संहिता के आहारों की सूची में किन्व किए गए द्रव्यों और मद्यों का नाम भी पाया जाता है। अन्न, फल, मूल, काष्ठ, पुष्प, डंठल, पत्तियाँ, छाल और शर्करा आदि पदार्थों से चौरासी आसव बनाए जाते थे। इनमें से उल्लेखनीय हैं— मदिरा, अरिष्ट, शार्कर, गौड़सुरा, मध्वासव, सौवरिक, तुषोदक तथा अम्लकाञ्जिक।

क्षारों के विषय में चरक का ज्ञान प्रशंसनीय है। क्षारों का प्रयोग रक्तस्राव, चर्म तथा माँस को काटने और गलाने में किया जाता था। लेपों के बनाने में पलाशक्षार (K_2CO_3) गोमूत्र, क्षार, त्रपु, वंग, सीस, लोहचूर्ण तथा किन्व का प्रयोग होता था। क्षार सान्द्र, तनु तथा मध्यम-शक्ति के बनाए जाते थे।

मांसी मरिचं लवणं रजनी तगरं सुधा गृहाद्धूमः।
मूत्रं पित्तं क्षारः पालाशः कुष्टहा लेपः॥
त्रपु सीससमयश्चूर्णं मण्डलनुत् फल्गु चित्रकौ बृहती।
गोधारसः सलवणो दारु च मूत्रं च मण्डलनुत्॥

चरक संहिता में लिखा है कि शरीर में लगने पर क्षार जलन पैदा करते थे। कुछ क्षारों का उपयोग शरीर के बाह्य अंगों पर और कतिपय क्षारों का प्रयोग पीने में होता था। वृक्षों की राख को पाँच छः बार पानी में घोलकर तथा इक्कीस बार कपड़े से छानकर क्षार बनाया जाता था। यह क्षार पोटैशियम कार्बोनेट था। बाह्य प्रयोग में आने

वाले क्षारों को प्रतिसारणीय-क्षार तथा खाए जाने वाले क्षारों को पानीय-क्षार कहते थे। पानीय-क्षार सोडियम बाई कार्बोनेट था।

पानीयस्तु गरगुल्मोदराग्निसङ्गा जीर्णारोचकानाह शर्करा-श्मर्यभ्यिन्तर विद्रधिक्रमि विषार्शः सूपयुज्यते।

सुश्रुत ने वनस्पतियों का उपयोग विशेषरूप से किया है। तथापि टिन, सीसा, ताँबा, चाँदी, लोहा तथा सोना और उनकी भस्मों की उपयोगिता से परिचित थे। तूतिया, कसीस, गैरिक (Red Ochre) मनः शिला (Realgar) से भी बनी औषधियों का भी विवरण मिलता है।

लोहे का भस्म बनाने के लिए लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ों को नमक, सौवर्च्चल (KNO_3) तथा मैगनीशियम सल्फेट के साथ मिलाकर सोलह बार जलाया जाता था। अन्य धातुओं के भस्म भी इसी प्रकार बनते थे। धातुओं के भस्म तथा उनके लवणों के बनाने का प्रारम्भ सुश्रुत ने किया। सुश्रुत ने फेनास्मभस्म (श्वेत आर्सेनिक) तथा हरिताल (Orpiment) की गणना भस्मों में की। सुश्रुत संहिता में पारे का उल्लेख बहुत ही कम है। सुहागे को क्षारों की सूची में स्थान दिया गया है। सुश्रुत यवक्षार (पोटैशियम कार्बोनेट) तथा सर्ज्जिक क्षार (Trona) के बीच में अन्तर समझते थे।

चरक और सुश्रुत संहिता में क्षारों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। उनको बनाने के लिए निम्न-लिखित वृक्षों को काटकर उनके छोटे-छोटे टुकड़े किए जाते थे। इन छोटे-छोटे टुकड़ों के ऊपर चूने का पत्थर रखकर जलाया जाता था। "कुटजपलाशाश्वकर्ण परिभद्रकविभीतकारग्वधतिल्वकार्कस्नुह्यपामार्ग पाटलानक्त मालवृषकदलीचित्रकपूतीकेन्द्रवृक्षास्फोताश्वमारकसप्तच्छ दाग्निमन्थ गुञ्जातसश्चकोशातकीः समूलपत्रशाखा दहेत।" अग्नि बुझ जाने पर लकड़ी तथा चूने की स्ममों को पृथक-पृथक संग्रह किया जाता था। भस्म को छः गुना पानी में घोलकर कपड़े से छाना जाता था। इक्कीस बार यह क्रिया करने के उपरान्त इस द्रव को कड़ाही में हिला हिलाकर पकाया जाता था। द्रव पदार्थ के निर्मल, तीक्ष्ण तथा पिच्छिल हो जाने पर इसे छाना जाता था। फिर इसे क्वाथ करके गाढ़ा किया जाता था। इसमें शंखग्रंथि, चूना, कटशर्करा (खड़िया) को एक कड़ाह में लाल करके और जल डालकर चूर्ण बनाकर क्षारीय जल के साथ मिलाया जाता था। फिर द्रव को तब तक पकाया जाता था, जब तक कि न तो यह अधिक गाढ़ा हो जाय अथवा न अधिक तनु। फिर इसे लोहे के पात्र में संग्रह किया जाता था। इसे 'मध्यमक्षार' कहते थे। इस मध्यमक्षार में यदि प्रतिवाप्य द्रव्यों का प्रक्षेपन करके पका लिया जाय तो यह 'मृदुक्षार' बन जाता था। **'एष च वा प्रतीवायः पक्व संख्यहिमो मृदुः।'** यदि संग्रह किए गए क्षार का बल क्षीण हो जाय तो उसे पूर्वोक्त विधि से क्षारोदक मिलाकर पुनः पकाना चाहिए। 'क्षीणबले तु क्षारोदक-मावयेद्बलकरणार्थम्।' सुश्रुत के मतानुसार क्षार रंग में श्वेत तथा स्पर्श में साबुन की तरह चिकना होना चाहिए। सुश्रुत ने लिखा है कि काञ्जिकाम्ल के साथ मिलाने पर क्षार की तीक्ष्णता नष्ट हो जाती है। इससे यह निश्चित है कि सुश्रुत क्षारों तथा अम्लों की शिथिलीकरण क्रिय से अवगत थे।

चरक तथा सुश्रुत की परम्परा का अनुगमन करते हुए वाग्भट ने भी काष्ठौषधियों के साथ-साथ खनिज पदार्थों तथा प्राकृतिक लवणों का उपयोग औषधियों के लिए किया। पारे के सूक्ष्म विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इनके यौगिकों का ज्ञान नहीं था। व्रण लेप बनाने के लिए उन्होंने तूतिया, गैरिक (Red Ochre) मनः शिला (Realgar) हरिताल (Orpiment) तथा कसीस (Ferrous Sulphate) का प्रयोग किया था। वाग्भट ने सोना, चाँदी, ताँबा, टिन तथा सीसे के यौगिकों के बनाने का विस्तार पूर्वक विवरण दिया है। अन्धमूषा में स्रोतांजन (Stibium) चौसठभाग तथा ताँबा, लोहा चाँदी, तथा सोने में से प्रत्येक का एक भाग लेकर गरम करना चाहिए। वाग्भट ने सुश्रुत की विधियों का अनुकरण मृदुक्षार बनाने में किया था। पारा तथा सीसे का समान भाग लेकर और उनके भार के बराबर स्रोतांजन तथा कपूर मिलाकर कोलीरियम (Collyrium) बनाया जाता था।

विज्ञान, जून, १६५८,
पृ० ८१-८४

विज्ञान और राष्ट्र

[डा० सत्यप्रिय मित्र, एम० एस-सी०, डी० फिल०, प्राध्यापक, रसायन विभाग, प्रयाग वि० वि०]
[अनुवादक—डा० शिवगोपाल मिश्र]

पुरातन काल से मिश्र, बेबीलोनिया और भारतवर्ष के धर्मोपदेशकों एवं महन्तों ने ज्ञान का अर्जन करके साधारणजन समुदाय से उसे दूर रखा। ग्रीकवासियों ने ही सर्वप्रथम ज्ञान को सर्वसुलभ बनाया और प्लैटो ने संसार की सर्वप्रथम 'अकादमी' की नींव डाली जिसका उद्देश्य था कि सैनिक शिक्षण और खेल कूदों से भी अधिक महत्वपूर्ण राष्ट्र-कल्याण के लिये मनन करना है। कहा जाता है कि अकादमी की भित्ति पर यह भी एक नियम था कि जो ज्यौमिति नहीं जानता उसे अकादमी में प्रवेश न होने दिया जाय। नौ शताब्दियों तक इस अकादमी का उज्वल जीवन रहा।

एथेंस की महान अकादमी के अतिरिक्त प्राचीन विश्व में अन्य अनेक विद्वत्सभायें विकसित होती रहीं। तृतीय शती ई० पू० में स्थापित अलेक्जेन्ड्रिया के महान संग्रहालय ने उस समय के सुप्रसिद्ध विद्वानों को आकर्षित किया जिनमें यूक्लिड, हिपैरकस, टाल्मे और एरैटोस्थेनीज के नाम प्रमुख हैं। अन्य भागों में भी कुछ अकादमियाँ थीं जिनमें एशियामाइनर में पर्गामम-स्थित एवं सिसली में सिराक्यूज-स्थित उल्लेखनीय थीं।

ईसाई-धर्म के अभ्युदय के कारण यूरप में वैज्ञानिक-वृत्ति सुप्त होने लगी। उत्थान युग के साथ ही माध्यमिक संसार ने पुनः ग्रीक संसार की सभ्यता का सौंदर्य देखा। अब नवीन भावनाओं का केन्द्र इटली देश हुआ और पेल्ला नामक इटली-वासी के द्वारा सन् १५६० ई० में नैपुल्स में प्रथम वैज्ञानिक अकादमी की स्थापना हुई। महत्वपूर्ण कार्यकलापों के पश्चात् १७८० ई० में इसका पुनः संगठन हुआ और इसका नाम इटली की वैज्ञानिक रायल अकादमी हुआ। इसके पश्चात इंगलैंड की बारी आई जहाँ के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रांसिस बेकन ने अपनी एक कृति न्यू अटलांटिस में अकादमी की भावी रूपरेखा पर विचार किया किन्तु उनकी मृत्यु (सन् १६२६) के बहुत बाद २० मई सन् १६६३ को उनका स्वप्न पूरा हुआ जब कि इंगलैंड की रायल सोसाइटी की प्रथम बैठक हुई। तब से प्रायः ३०० वर्ष हुये कि यह सोसाइटी संसार में सर्वश्रेष्ठ बनकर अनेक सोसाइटियों की जननी बन गई है।

सन् १६३४ ई० फ्रेंच अकादमी की स्थापना हुई किन्तु सन् १७८६ की राज्य क्रांति के फलस्वरूप वह मृत हो गई और 'इन्टीच्यूट द फ्रांस' की नींव पड़ी जिसमें विभिन्न अकादमियाँ सम्मिलित कर ली गईं। जर्मनी में सन् १७०० ई० में महान गणितज्ञ एवं दार्शनिक लाइबनिट्ज के कहने पर प्रशिया के शासक ने विज्ञान की प्रशियन अकादमी की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में विज्ञान की नेशनल अकादमी वाशिंगटन प्रमुख स्थान रखती है। रूस की विज्ञान-अकादमी अत्यन्त मर्यादित एवं शक्तिशाली संस्था है। इसके अधिकार में अनुसंधान कराने के लिये प्रचुर धनराशि है। यह राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार अनुसंधान की दिशायें निर्धारित करती है। जापान का इम्पीरियल अकादमी (आजकल जापान अकादमी) और चीन की अकादिमिया सिनिया की स्थापनायें क्रमशः सन् १८८७ और १६२७ ई० में हुईं। ये दोनों इंगलैंड की रायल सोसाइटी के समकक्ष हैं।

ऐसी ही भावनाओं से प्रेरित होकर प्रो० मेघनाद साहा ने सन् १६२६ ई० में उत्तर प्रदेश में **विज्ञान-अकादमी** खोलने का विचार किया क्योंकि उस समय तक देश में कोई ऐसी अकादमी न थी जो इगलैंड की रायल सोसाइटी या फ्रेंच-अकादमी की तुलना कर सकती। ४ दिसम्बर सन् १६३० ई० से स्वीकृत हो **विज्ञान की नेशनल अकादमी** आजकल संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों की संस्था बन गई है।

इस अकादमी की स्थापना से समाज के प्रति विज्ञान के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुये हैं। राज्य को यह अनुभव होने लगा है कि राष्ट्रीय जीवन को अधिकाधिक महत्व प्रदान करने के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान की दिनोदिन जिम्मेदारियाँ बढ़ती रहेंगी। विज्ञान के उदार-प्रोत्साहन की ओर राज्य का ध्यान आकर्षित करते हुये बेकन ने यह आशा की थी कि विज्ञान के गहन अध्ययन और जीवन में उसके व्यवहार के द्वारा एक अच्छे संसार की सृष्टि होगी। किन्तु यह आवश्यक नहीं था कि उस समय इन विचारों पर सम्बोधित किये गये तत्सम्बन्धी समकालिक शासकों ने गम्भीरता से मनन किया हो। इन शासकों ने उन्हें उस अव्यावहारिक स्वप्नद्रष्टा के रूप में देखा-समझा होगा जो वृथा ही शासकों को तंग करना चाहता था। अधिकारियों में इस भ्रांति के उठने का कारण विज्ञान में निहित मानवीय एवं काव्य-तत्वों को समझने की अशक्यता थी। इस प्रकार के दृष्टिकोण की पृष्ठ भूमि में एक ऐसी काल्पनिक प्रतिक्रिया कार्य कर रही थी जिसमें जीवन की विपदाओं एवं आपत्तियों की अवहेलना करते हुये अधिक भाग्यशाली वर्गों की दशाओं पर आधारित सादे जीवन की बातें सोची जा रही थीं।

वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये राजकीय-वृत्ति को जिसके लिये बेकन ने दृढता से समर्थन किया था, कार्य रूप में परिणत होने में तीन शताब्दियाँ लग गईं। इस अवधि में कुछ मनुष्यों के समुदाय अपनी प्रयोगशालाओं एवं कार्यशालाओं में अपनी इच्छानुकूल समस्याओं पर नाना कष्टों को झेलते, आवश्यकताओं एवं गरीबी के मध्य सहयोग की अपेक्षा रखने पर भी राज्य से किसी प्रकार का योग न पाते हुये भी कार्य करते रहे और व्यक्तिगत प्रयासों के फलस्वरूप ही वैज्ञानिक उपलब्धियाँ होती रहीं। निस्सन्देह अब यह बड़े हर्ष का विषय है कि राज्य अपने उस ऋण के प्रति, जो समाज एवं उद्योग पर विज्ञान के कारण चढ़ा है, जागरूक दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

जिन स्रोतों पर हमारी पुनर्निर्माण की योजनायें एवं सामाजिक उन्नतियाँ निर्भर हैं, उनका उपयोग एवं सम्बर्धन अधिकतम पूर्व-दृष्टि, मस्तिष्क एवं साहस के साथ करना होगा। यह सक्रिय एवं सुनियोजित वैज्ञानिक अनुसंधान के व्यवहार के द्वारा ही सम्भव है। लार्ड बर्टण्ड रसेल के शब्दों में "यदि लोग विज्ञान का सदुपयोग करें तो इसी से अच्छे संसार की निर्माण-दिशा में न जाने कितना कार्य किया जा सकता है।" अब विज्ञानवेत्ता स्त्री-पुरुष यह अनुभव करने लगे हैं कि वे अधिक दिनों तक एकान्त में नहीं रह सकते; अब उन्हें जीवन के क्षेत्र में उतर कर सामाजिक कार्यों को जानना और विज्ञान के राजनीतिक व्यवहारों तथा मानवीय सभ्यता में उसके स्थान को समझना पड़ेगा। भारतवर्ष को केवल अपनी सघन जनसंख्या के कारण अन्य राष्ट्रों से अनुसन्धान के आवश्यकीय कार्य में पीछे नहीं रहना है। यदि हमें अपने सम्मान को स्थिर बनाये रखना है तो हमें अपने वैज्ञानिकों-इंजीनियरों की मौलिक योग्यता और अपने कामकरों की सुबुद्धि तथा कार्यकुशलता का पूरा-पूरा लाभ उठाना होगा। हमारे उद्योग को उन्हीं वस्तुओं के निर्माण में ध्यान केन्द्रित करना होगा जिनके उत्पादन में विशिष्ट योग्यता एवं प्राविधिक नैपुण्य की आवश्यकता होती है। विज्ञान का व्यवहार अधिकाधिक भूमि, पशु, बन, मत्स्य तथा भूगर्भ सम्बन्धी उत्पादनों की प्राप्ति के लिए करना होगा। पंडित जवाहरलाल जैसे कर्मठ विज्ञान सन्देशवाही को पाकर आज भारत धन्य है। ५ मार्च सन् १६३८ को नेशनल अकादमी के समक्ष उन्होंने निम्न शब्दों में अपना भाषण दिया था :—"यह वही समय है जब हमने अपने मस्तिष्कों को विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ ऊपर उठाते हुए पुराने युग की बेकार प्रतिस्पर्धाओं का त्याग कर दिया है। यह सच है कि विज्ञान परिवर्तनशील है और उसके

लिए कोई भी सनातन या अन्तिम निर्णय नहीं। फिर भी विज्ञान का ढंग कभी नहीं बदलता और यही आवश्यक है कि शोध, सामाजिक जीवन, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन तथा धर्म के क्षेत्र में अपने विचारों एवं कार्य क्षेत्रों में हम स्थिर रहें।"

नेहरू की ही उदारता का प्रतिफल है कि गत कतिपय वर्षों में भारतीय सरकार ने इस देश में व्यवहृत-शोध के लिए अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की स्थापना की। आज के युग में व्यवहृत-शोध की महत्ता को कदराया नहीं जा सकता।

ग्रेटब्रिटेन की राष्ट्रीय रासायनिक तथा भौतिक प्रयोगशालायें लम्बी अवधिवाले व्यवहृत-शोधों को अधिक महत्व न देकर मूलगत शोधों पर अधिक ध्यान देती हैं। यदि पिछले पच्चीस वर्षों के आंकड़ों की खोजबीन की जाय तो यह देखा जायगा कि इंगलैंड में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान विभाग का तीन-चौथाई शोध "विशुद्ध-विज्ञान" पर ही हुआ है। नित्यप्रति की व्यवहृत-शोध-समस्याओं को उद्योगों और औद्योगिक शोध समुदायों पर छोड़ दिया गया है। संसार भर में औद्योगिक स्वयं ही शोधों पर प्रचुर धन व्यय करते हैं। सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह उद्योगों को शोध कराने तथा औद्योगिक शोध समुदायों के निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करे। इस प्रकार से उद्योग अपनी समस्याओं को सरकारी प्रयोगशालाओं में काम करने वाले वैज्ञानिकों से, जिन्हें उनका अल्प अनुभव अथवा उद्योगों की वास्तविक समस्याओं के प्रति किंचित अभिरुचि नहीं होती, अच्छे ढंग से हल कर सकेंगे। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं को मूलगत शोधों पर ही ध्यानावस्थित होकर व्यवहृत-शोधों को लेशमात्र में ही स्पर्श करना चाहिये।

भारत में स्रोतों के सम्वर्धनार्थ, यह परमावश्यक है कि सरकार विश्वविद्यालयों में मूलगत शोधों को प्रोत्साहित करे एवं अर्थ प्रदान करे। जहाँ तक विज्ञान के प्रति विश्वविद्यालयों का कर्त्तव्य है, वह दोहरा है। एक तो वैज्ञानिक कर्मकारों का प्रशिक्षण और दूसरे मूलगत शोध का निर्देशन। भारत की अधिकतर शैक्षणिक प्रयोगशालाओं के पुनर्संस्थापन एवं विस्तारण की आवश्यकता है जिससे वे उच्चतम प्राविधिक स्तरों को प्राप्त कर सकें।

विशुद्ध विज्ञान के प्रोत्साहन के प्रश्न ने हमारे भारतीय संगठनों में अधिकाँश ऐसे उद्योगपतियों एवं पदाधिकारियों के प्रवेश के कारण, जो दुर्भाग्यवश विज्ञान से अनभिज्ञ हैं और उसकी आत्मा को भी नहीं पहचान पाते, एक विवादास्पद दिशा ले ली है। शायद ही पश्चिम में को ऐसा वैज्ञानिक होगा जो यह सोचता हो कि क्या मेरी शोधें अर्थ कमाने में सहायक होंगी? प्रारम्भ में, इंगलैंड में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शोधविभाग के खुलने से विशुद्ध शोधों के दावों को व्यवहृत शोधों के द्वारा दबाये जाने की आशंका थी। यहां तक कि रायल सोसाइटी को सर जे० जे० थामसन, (अध्यक्ष रायल सोसाइटी) के नेतृत्व में एक सद्भावना मंडल कौंसिल के लार्ड प्रेसिडेंट, बलफूर के अर्ल के पास भेजना पड़ा था और मूलगत शोध के अधिकारों के समर्थन में उन्हें निम्न अविस्मरणीय शब्द कहने पड़े थे :—

"व्यवहृत विज्ञान का बीज विशुद्ध विज्ञान है। विशुद्ध विज्ञान की इस प्रकार की उपेक्षा उसी कोटि की होगी जैसे कि किसी भूमि में खाद डालने तथा जोतने में प्रचुर धन व्यय करते हुए भी कोई बीज बोना भूल जाय।"

सौभाग्य से भारतवर्ष में वैज्ञानिकों को पं० जवाहर लाल जी का वैसा ही प्रोत्साहन प्राप्त है जैसा कि इंगलैंड में थामसन को बालफूर का। विश्वविद्यालयों को चाहिए कि ज्ञान का अनुसरण उसके विश्वजनीन दृष्टिकोण से करें। उद्योगों के साथ साथ उनको अपनी गतियों को विकसित करना होगा। साथ ही आधुनिक राज्यों को भी विश्वविद्यालयों की समस्याओं को समझना होगा। उनके निर्देशकों को विज्ञान एवं उसके युद्ध एवं शान्ति सम्बन्धी प्रयोगों से भली भाँति परिचित होना होगा।

विशुद्ध विज्ञान केवल प्रेरणा का द्योतक है। वह न तो शोध के लक्ष्य और न निष्कर्षों को ही सूचित करता है। यदि हम यह चाहते हैं कि उच्चतम महत्व का अन्वेषण हो तो हमें चाहिए कि जिनकी प्रवृत्ति एवं जिज्ञासा विज्ञान की ओर है, उन्हें सद्यः प्रायोगिक व्यवहारों के उद्देश्य से बोझिल न बनाते हुए मुक्त रीति से कार्य करने दें। उन्हें भौतिशास्त्र, जीवशास्त्र या अन्य रासायनिक इंजीनियरी में भी सन्तोष मिल सकता है। कोई भी पुरुष विज्ञानकी

दिशा के विषय में न तो भविष्यवाणी ही कर सकता है और न यह ही बता सकता है कि कब और किस पुरुष के द्वारा उसका उपयोग होगा। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ज्ञान का अनुसरण अन्ततः मनुष्य जाति का सबसे फलदायी व्यवसाय होता है किन्तु उसका शीघ्र ही प्रयोग ढूँढ निकालने का प्रयत्न उसके पूर्ण विकास की दिशा में अवरोधक सिद्ध होगा। अतः अवसरवादियों को विज्ञान एक वस्तु के रूप में देखने दिया जाय और वैज्ञानिकों को उनकी मौलिक विचारधारा तथा शोधों के बल पर न कि उनसे प्राप्त आर्थिक या व्यावहारिक मूल्यों के अनुसार महत्व दिया जाय।

उद्योग अथवा जनकल्याण की व्यावहारिक समस्याओं में विज्ञान के प्रयोग के विषय में आवश्यक है कि निर्देशन कार्य केवल व्यावहारिक पुरुषों पर न छोड़ दिया जाय, यदि उन्हें विज्ञान का अनुभव अथवा परिज्ञान नहीं है। इस प्रकार का निर्देशन वैज्ञानिकों एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार के पुरुषों का संगठित कार्य होना चाहिए। किसी ने कहा है कि वैज्ञानिक भले ही प्रमुख स्रोत हो किन्तु उसे शीर्ष पर न होना चाहिए। फलतः उसे भले ही उच्चतम स्थान न प्रदान किया जाय, व्यावहारिक निष्कर्षों की प्राप्ति के लिये विज्ञान के व्यवहृत किये जाने में उसे समान साझीदार मानना चाहिए। ऐसे समसाझेदारी के अभाव में विज्ञान और प्रशासन अथवा व्यवसाय के क्षेत्र में श्रेष्ठ परिणाम न प्राप्त होंगे।

मूलगत शोध को व्यवहृत शोध से उच्चतर चारित्रिक गुणवाली मानना कुप्रवृत्ति ही कही जायगी क्योंकि ऐसा करने का कोई प्रमुख कारण नहीं दीखता। व्यवहृत शोधों में आने वाली उलझनें मूलगत शोधों में होने वाली अड़चनों से किसी प्रकार कम नहीं और विज्ञान के प्रयोग, व्यवहार तथा संवर्द्धन के इच्छुक कार्यकर्त्ताओं के लिए जिन व्यक्तिगत विशेषताओं की आवश्यकतायें होती हैं वे मूलगत शोधकों से किसी भी तरह कम नहीं। व्यवहृत तथा मूलगत शोधों के कार्यकर्त्ता परस्पर पूरक हैं। यह वैज्ञानिकों के ही परिश्रम का फल है कि मूलगत शोधों को व्यवहृत करके इस प्रकार के ज्ञान को फलित करते हैं। प्रारम्भ में किये गये अन्वेषणों को व्यवहार योग्य बनाने के लिए जिन प्राविधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है वे किसी भी स्थिति में प्रारम्भिक कठिनाइयों से कम जटिल नहीं, भले ही उनका स्वरूप दूसरा हो। सभी वर्गों के परिश्रम की समान आवश्यकता होती है।

प्रायः यह शिकायत की जाती है कि विश्वविद्यालय अपने श्रेष्ठ विद्यार्थियों को उद्योग में नहीं भेजते और यही कारण है कि विश्वविद्यालयों द्वारा प्रशिक्षित लोगों को उद्योग में अधिक मान्यता नहीं दी जाती। ऐसी भर्त्सना कुछ अंशों में ठीक भी है क्योंकि विश्वविद्यालयों एवं उद्योगों के मध्य अल्पतम सम्पर्क रहता है। ऐसे सम्पर्कों को लाना कोई कठिन काम नहीं। शैक्षणिक क्षेत्र में कार्य करने वाले अनुसन्धानकर्त्ताओं के निकटतर सम्पर्क से प्रायः उद्योग लाभान्वित भी हो सकते हैं और औद्योगिक प्रयोगशालाओं में शैक्षणिक अनुसन्धान कर्त्ताओं को कार्य करने का अवसर प्रदान कर उनके संकुचित दृष्टिकोणों को बदला जा सकता है।

सारे संसार में शोध की अर्थ-व्यवस्था एक अत्यन्त कठिन समस्या है, विशेषकर हमारे देश में। रूस में राष्ट्रीय आय का १ प्रतिशत, संयुक्तराष्ट्र में ०·३ प्रतिशत और ग्रेट ब्रिटेन में ०·१ प्रतिशत शोध पर व्यय किया जाता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा मूलगत शोधों पर प्रचुर धनराशि खर्च की जाती है। ऐसी संस्थाओं में नफील्ड, राकफेलर, फोर्ड आदि प्रमुख हैं। किन्तु भारतवर्ष में यह व्यय पूर्णतया सरकारी कोषों पर ही आधारित है। व्यक्तिगत अनुदानों का यहाँ पूर्ण अभाव है। यही शुभ घड़ी है जब बड़े-बड़े उद्योगपति चेत करें और वृहद् मात्रा में शोध योजनाओं को आर्थिक सहयोग देकर शोध-कार्य को विशेषतया विश्वविद्यालयों में पल्लवित करें। भारतवर्ष में विश्वविद्यालयों में होने वाली शोधों की अर्थ व्यवस्था नितान्त असन्तोषजनक है। उनको मिलने वाली सहायता इतनी कम होती है कि उससे मूल्यवान यन्त्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति असम्भव है। फल यह होता है कि शोध-कर्त्ता को अच्छे यन्त्र के लिए चारों ओर हाथ फैलाना पड़ता है। यदि उस समय को, जो इधर उधर यंत्रों के माँगने-जाँचने में खर्च हो जाता है, शोधकार्य में

लगाया जाय तो वृथा होने वाले श्रम का उचित उपयोग हो।

यह देखा गया है कि भारत में प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय ६५ रुपये है और यदि सरकार प्रतिवर्ष इस राष्ट्रीय आय का ०.१ प्रतिशत भी शोध के ऊपर खर्च करे तो ३ करोड़ की धनराशि एकत्र हो सकती है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या यह राशि अधिक है ? नहीं। फ्रांस में हर एक नौकर को प्रति १० हजार फ्रैंक के पीछे २ फ्रैंक का कर देना पड़ता है जिससे प्रतिवर्ष ३ करोड़ रुपये एकत्र होते हैं, जिसका सदुपयोग प्राविधिक और उद्यम-सम्बन्धी शिक्षणों में होता रहता है।

विज्ञान की उन्नति के कारण वैज्ञानिक की मौलिकता तथा विरलता में परिवर्तन आ गया है। आज का वैज्ञानिक मुक्त नहीं। सर्वत्र ही, अब वह राज्य द्वारा नियुक्त वेतन भोगी पुरुष अथवा औद्योगिक संस्थान या अर्द्धस्वतंत्र-संस्था जैसे विश्वविद्यालय आदि से सम्बन्धित होता है। फलतः वैज्ञानिकों की वास्तविक स्वच्छन्दता उनकी जीविका सम्बन्धिनी आवश्यकताओं तथा वेतन प्रदत्तकों के द्वारा सीमित हैं। युद्ध तथा युद्ध सम्बन्धी तैयारियों से ऐसी प्रवृत्ति का सम्बन्ध होता है और इस युग में तो उसका बोलबाला सा हो रहा है। यद्यपि अधिकांश वैज्ञानिक युद्ध के विरोधी हैं किन्तु ऐसे बहुत ही कम वैज्ञानिक हैं जो ऐसे कार्यों के लिए ना कर सकें। वे जानते हैं कि यदि वे यह कार्य नहीं करते तो दूसरे तो कर ही लेंगे जिससे उनका आदर घट जावेगा। अतः एक ऐसी अकादमी की स्थापना होनी चाहिए जो वैज्ञानिकों तथा शोध कार्य दोनों के हितों की समान रूप से रक्षा करती हुई देश के उन्नयन में योग दे सके।

क्या आप जानते हैं ?

❁भारत में आदिम जातियों के लोगों की संख्या काफी है। उनकी भलाई की योजना बनाते समय मानवशास्त्र से सहायता लेनी होगी।

❁केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में मानवशास्त्र का पृथक विभाग है। इसमें अनुसंधान के लिए निम्नलिखित आठ विभाग हैं—सामाजिक मानवशास्त्र विभाग, सामाजिक मनोविज्ञान विभाग, भाषा-विभाग, मानवजीव शास्त्र (एक्स-रे विभाग सहित), नृवंश विभाग, जीव-रसायन विभाग, तुलनात्मक आकार विज्ञान (शरीर रचना और रीढ़दार जन्तु शाखा सहित) और देह-विज्ञान विभाग।

❁मानवशास्त्र विभाग के शिलांग, नागपुर और पोर्ट ब्लेयर (अन्डमान और निकोबार द्वीप समूह) में भी तीन अनुसन्धान केन्द्र हैं। एक केन्द्र दक्षिण भारत में खोलने की योजना है।

❁ये केन्द्र उन स्थानों पर हैं, जहाँ आदिम जाति के लोगों की संख्या ज्यादा है। ये केन्द्र पड़ताल का काम करते हैं।

❁पिछले दस वर्षों में मानवशास्त्र विभाग के सदस्यों ने विभिन्न पत्रिकाओं में १२२ वैज्ञानिक लेख आदि प्रकाशित कराए हैं। विभाग ने इस अवधि में चार बुलेटिन, दो संस्मरण, एक आदिम जाति सम्बन्धी नक्शा, दो अनुक्रमणिकाएँ भारत की जातियों के सम्बन्ध में एक पुस्तिका के हिन्दी बंगाली और तामिल अनुवाद प्रकाशित कराए।

❁व्यावहारिक मानवशास्त्र विभाग खोलने की भी योजना है। यह विभाग राज्य सरकारों, समाज-सेवा संगठनों तथा अन्य संस्थाओं को समाज हितकारी योजनाएँ चलाने के बारे में सुझाव देगा।

❁मानवशास्त्र के अध्ययन की ओर पिछले कुछ वर्षों में काफी रुचि जाग्रत हुई है। सात विश्वविद्यालय इस विषय पर स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रम शुरू करने को तैयार हो गए हैं।

❁भारत सरकार ने विश्वविद्यालयों, केन्द्र और राज्यों के कल्याण विभागों आदि से सम्पर्क रखने के लिए केन्द्रीय मानवशास्त्र मंडल की स्थापना की है।

जीवन की अनेकता और एकता

[प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन]

आकाशवाणी द्वारा आयोजित सरदार पटेल स्मारक भाषण-माला का एक भाषण—

भारत सरकार ने इन भाषणों के लिए निमंत्रित करके मेरा बहुत सम्मान किया है। जब मुझे यह मालूम हुआ कि मुझसे पहले श्री राजगोपालाचार्य और डा० कृष्णन इस भाषणमाला में भाग ले चुके हैं, तब तो मुझे और भी अधिक सम्मान का अनुभव हुआ। इस देश में मेरे सहयोगियों में से निश्चय ही ऐसे लोग चुने जा सकते थे, जो श्री राजगोपालाचार्य और डा० कृष्णन के स्थान की पूर्ति कर देते। मैं भी भारत में दो या तीन वर्ष रह चुकने के बाद, अधिक उपयोगी भाषण कर पाता। मुझे आशा है कि इस अवधि में मैं आपके पौधों और जन्तुओं के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त कर लूंगा और इतनी संस्कृत सीख लूंगा, जिससे प्राचीन भारत के महान् विचारकों के मूल ग्रन्थ पढ़ सकूँ। उनके ग्रन्थों के अनुवाद और संक्षिप्त रूपान्तर पढ़कर इन विचारकों से तादात्म्य स्थापित करना अधिक सम्भव नहीं।

भारतीय सांख्यिकीय संस्थान में मैं जिन विषयों की शिक्षा दे रहा हूँ और अनुसन्धान कर रहा हूँ, उन पर भाषण करना शायद ज्यादा अच्छा होता। भारत में यदि टेलीविजन होता, तो मैं आपको गायों, मुर्गियों, धान और पटसन के पौधों आदि की विभिन्न किस्में दिखाता और बताता कि उनमें जो विभिन्नता है, वह वंशगत है और उसका आर्थिक महत्व क्या है।

मैंने अधिक साधारण विषय पर बोलने का निश्चय किया है, क्योंकि एक तो मैं उन पौधों और जन्तुओं के विषयों में बोल सकता हूं, जिनसे आप काफी परिचित हैं और दूसरे, एकता और अनेकता के विषय में भारतीय विचारकों की दो हजार वर्ष से भी अधिक समय से रुचि रही है। मेरा यह भी विश्वास है कि यह विषय सरदार वल्लभभाई पटेल की स्मृति में दिये जाने वाले भाषणों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। उनकी सर्वश्रेष्ठ सफलता यह है कि उन्होंने देशी रियासतों को मिलाकर भारतीय गणराज्य की नींव रखी। यह एक ऐसा काम था, जिसे भारत के मित्र और शत्रु, दोनों ही असम्भव समझते थे।

'जीवन की अनेकता' से मेरा क्या आशय है? इसके अनेक आशय हैं। पहला तो यह कि संसार में विभिन्न प्रकार के प्राणी जैसे, गाय, कोयल, धान का पौधा और पीपल का वृक्ष मौजूद हैं। इन विभिन्न प्रकार के प्राणियों के बोध के लिए हम जाति शब्द का प्रयोग करते हैं। ऐसे प्राणियों की दस लाख से भी अधिक जातियां हैं। दूसरा यह कि इन जातियों में भी अनेक सदस्य होते हैं और वे सब एक दूसरे से थोड़े-बहुत भिन्न होते हैं। तीसरा यह कि प्रत्येक प्राणी का शरीर विभिन्न भागों, जैसे— बाल और हड्डियां, पत्ते और जड़ का बना होता है और अपना आचरण बदल भी सकता है। उदाहरणार्थ एक समय वह भागता है, तो दूसरे समय वह खाता है; एक समय उसमें फूल आते हैं, तो दूसरे समय उसमें फल लगते हैं।

आप सब इन तथ्यों को जानते हैं। पर शायद आपने उनके बारे में गंभीरता से विचार नहीं किया या इस बात पर विचार नहीं किया कि भारत से इनका क्या सम्बन्ध है। उदाहरण के रूप में, मैं पूछ सकता हूँ कि फूल देने वाले पौधों की कितनी जातियां हैं और उनमें से कितनी भारत की ही उपज हैं? इस प्रश्न के उत्तर से भारत की सम्पदा का कुछ अनुमान लग सकता है।

'जीवन की एकता' से मेरा क्या आशय है? मोटे तौर से मेरा आशय यह है कि एक नजर देखने पर जितनी विभिन्नता दीखती है, वह वास्तव में उतनी नहीं है। पहली बात यह कि विकास के सिद्धांत के अनुसार, जिसमें मेरा

विश्वास है, गाय और सांप इतने भिन्न दीखने पर भी उनके पूर्वज एक ही थे। इस उदाहरण के विषय में हम एक कदम आगे बढ़कर यह भी कह सकते हैं कि ये पूर्वज उस युग में रहते थे, जब ब्रिटेन के भूगर्भ में कोयले की तहों का निर्माण हो रहा था। इस बात का प्रमाण मौजूद है कि पृथ्वी के सब प्राणियों के पूर्वज एक ही थे। हालांकि यह प्रमाण बहुत ठोस नहीं हैं। इस प्रमाण का कुछ अंश मैं आपके सामने रखूंगा। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय विचारकों ने इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्यों और पशुओं में वंशगत सम्बन्ध है और कुछ पशुओं में बुद्धि भी होती है।

किसी पौधे या जन्तु में अपनी ही एक इयत्ता होती है। यह इयत्ता क्या किसी आत्मा के कारण होती है, जो काया से न्यूनाधिक रूप से मुक्त होती है या क्या वह काया के विभिन्न अंगों के आचरण का परिणाम है, जैसे परिवार या राष्ट्र की इयत्ता उसके सदस्यों के आचरण के रूप में व्यक्त होती है? भारतीय विचारकों ने मानव बुद्धि या मन के रूप पर भी विचार किया है और उनके मत भिन्न हैं। बौद्ध विचारकों का मत है कि मन या बुद्धि क्षणिक तत्वों का समुदाय मात्र है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि मन या बुद्धि अणुओं का संघटन है। इसी के साथ व्यक्ति की अलग सत्ता या अहंकार का प्रश्न भी है। बौद्ध और अद्वैत दोनों दर्शनों में यह प्रतिपादित है कि अहंकार एक भ्रम है। मैं इस प्रश्न पर बौद्धिक नहीं बल्कि जैविक दृष्टि से विचार करूँगा।

तीसरी बात यह कि जन्तुओं के परिवार की एकता जैसी भी एक चीज होती है। यहां मेरा परम्परागत भारतीय विचारधारा से गहरा मतभेद है। आपके विचारकों ने मात्स्य-न्याय की बात कही है। उन्होंने इस मत का प्रतिपादन किया है कि मनुष्यों का आपस में एक-दूसरे के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है और सबल का दुर्बल को हड़प कर जाना, न्यायोचित है, क्योंकि मछलियां भी ऐसा ही करती हैं। मैं मछलियों को इस कलंक से बचाने और यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि कम से कम कुछ मछलियाँ ऐसी हैं, जो पति या पत्नी के प्रति वफादारी, बच्चों की देखभाल और सामाजिक जीवन के मामले में मनुष्यों के लिये आदर्श हो सकती हैं।

मेरा पहला काम जातियों की विविधता और उनके पूर्वजों के एक होने के प्रमाण के बारे में कुछ बताना होगा। किसी जाति की हम कोई निश्चित व्याख्या नहीं कर सकते। मोटे तौर से हमारा आशय जन्तुओं अथवा पौधों के ऐसे वर्ग से होता है, जो अन्य सब वर्गों से कई प्रकार से भिन्न हो और जिसे दूसरों से मिलाने वाली कड़ी के रूप में बीच का कोई जन्तु वर्ग न हो। कई सौ उदाहरण ऐसे हैं, जिनके बारे में कहा जा सकता है कि वे दो अलग जातियों के इसलिए हैं, क्योंकि वे आपस में मैथुन नहीं करते और यदि करते हैं तो उससे किसी संकर जाति का जन्म नहीं होता या खच्चरों की भांति नपुंसक संतति का जन्म होता है।

विभिन्न जातियों की संख्या का मोटा अनुमान लगा लेना चाहिए। जन्तुओं के जिनवर्गों से हमारा विशेष परिचय है, वे हैं स्तनपायी काफी जन्तु हैं। स्तनपायी जन्तुओं की लगभग १० हजार और पक्षियों की ८ हजार जातियां हैं। इससे अधिक जातियों का पता चलने की सम्भावना कम है। मछलियों की लगभग २० हजार जातियां हैं और सर्प आदि तथा मेंढक की भांति जल और थल, दोनों पर रहने वाले जन्तुओं की संख्या कुछ कम है। कहना चाहिए, रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं की कुल मिलाकर ४० हजार जातियां हैं। इसके विपरीत कीड़ों की लगभग १० लाख ऐसी जातियां हैं, जिनके बारे में हमें ज्ञान है। सम्भव है कीड़ों की १० लाख जातियां और हों जिनकी जानकारी प्राप्त करना अभी बाकी है। बाकी जन्तुओं, जैसे घोंघे, केंचुए आदि की संख्या शायद ५ लाख है।

यहाँ मैं रीढ़ की हड्डी वाले जानवरों का संक्षिप्त इतिहास आपके सामने रख दूं। ऐसे जन्तु लगभग ४० करोड़ वर्ष पहले पानी में रहा करते थे। वे बहुत कुछ मछली की तरह होते थे, परन्तु उनके न तो मछलियों की भाँति पंख होते थे और न ही निचला जबड़ा होता था। वे वर्तमान मछलियों की भाँति नहीं खाते थे, बल्कि कीचड़ को चूस लेते थे। यह कीचड़ उनके मुँह के पीछे बने अनेक छिद्रों से छन जाता था। उनकी आँखें होती थीं, लेकिन उनका जीवन केंचुओं से बहुत भिन्न नहीं था। इनके कुछ वंशज, जो आज भी उन्हीं जैसा जीवन बिताते हैं, अब तक शेष हैं।

इन जन्तुओं के मुँह में छलनी को सहारा दिये हुए कोमल हड्डियों की सलाखों का ढाँचा होता था। लगभग ३५ करोड़ वर्ष पहले या उससे भी पहले इस ढाँचे की प्रथम सलाखें जुड़ गयीं और उनके जुड़ने से इन जन्तुओं के दो जबड़े बन गये। अब ये जन्तु पहले से बड़ी चीजें खा सकते थे। लगभग इसी समय मछलियों की भाँति इनके पक्ष भी उग आये और ये जन्तु मछलियों की ही भाँति तैरने लगे। कुछ करोड़ साल तक मछलियों की बहुत सी भिन्न जातियाँ रहीं। इनमें से कुछ के तीन या चार पक्ष होते थे, लेकिन केवल दो पक्षों वाली मछलियाँ ही जीवित बचीं। यही हमारे और वर्तमान मछलियों और पक्षियों तथा चौपायों के पूर्वज थे। यदि छः पक्ष वाले जन्तु बने रहते तो आज शायद हमारे भी फरिश्तों की तरह पंख और हाथ होते या दैत्यों की तरह बहुत से हाथ होते।

लगभग ३२ करोड़ वर्ष पहले बहुत सी छिछली खाड़ियाँ थीं जो समय-समय पर सूखती रहीं। इन खाड़ियों की जो मछलियाँ बाहर निकल आयीं केवल वही बची रहीं। इनके पक्षों में जोड़ हो गये, जो बाद में पाँव बन गये। मछलियाँ जमीन पर होने वाले पौधों और कीड़ों को खाने लगीं। हमारे पास ऐसी ठठरियाँ मौजूद हैं, जिनसे इस प्रकार के विकास का प्रमाण मिलता है। एक ऐसे जन्तु की ठठरी भी है, जिसके चार छोटे-छोटे पाँव हैं और मछलियों जैसी पूँछ है।

ये आदिम चौपाये जन्तु पानी और जमीन, दोनों पर रहते थे और इनकी शक्ल बहुत कुछ गोह या छिपकलियों की तरह थी। लेकिन, मेंढकों की भाँति इन्हें भी अंडे देने के लिए पानी में जाना पड़ता था। लगभग ३० करोड़ वर्ष पहले इनमें से कुछ जन्तुओं ने जमीन पर भी खोलदार अंडे देने शुरू किये। यह क्रिया इन जन्तुओं के दो दलों में या तो स्वाधीन रूप से हुई या ये दो दल बाद में अलग-अलग हुए। इनमें से एक दल के जन्तु, जो बाद में स्तनपायी जन्तुओं के पूर्वज बने, लगभग १० लाख वर्ष तक स्थल पर रहने वाले सबसे विशाल जीव थे। फिर वे लगभग नष्ट हो गये और १ करोड़ वर्ष तक भूमि पर छिपकलियों या गोहों और पक्षियों की सी शक्ल के जन्तुओं का आधिपत्य रहा। इनमें से कुछ हाथियों से भी बड़े थे और कुछ चूहों से भी छोटे। बहुत से जन्तु पिछले पाँवों पर खड़े होकर चलते या दौड़ते भी थे। जन्तुओं के दो दल ऐसे थे, जो हवा में भी उड़ने लगे। इनमें से पहला दल उन विशालकाय जन्तुओं का था, जिनके पंख चिमगादड़ों की तरह थे। बाद में, पक्षी भी हवा में उड़ने लगे। जन्तुओं का एक दल जमीन खोद कर नीचे जाने और रहने लगा और कालांतर में उनके पांव नहीं रहे। जब वे दोबारा भूमि की सतह पर आये तो वे सांप आदि बन चुके थे। कुछ जन्तुओं ने अपने को एक प्रकार के कवच से ढक लिया और वे कछुआ आदि बने। जन्तुओं के कम से कम पाँच दल फिर समुद्र को लौट गये, हालांकि उन्होंने हवा में सांस लेना जारी रखा। रीढ़ की हड्डी वाले और हवा में साँस लेने जन्तुओं में आज जितनी जातियाँ हैं, १० करोड़ वर्ष पहले उससे शायद कहीं ज्यादा थीं। इसी काल में मछलियों का आकार और शरीर रचना भी वर्तमान मछलियों की भाँति होती गयी।

लगभग ८ करोड़ वर्ष पहले एक ऐसी आश्चर्यजनक घटना घटी, जिसका आज तक कोई कारण नहीं मालूम। लगभग २ करोड़ वर्ष की अवधि में रेंग कर चलने वाले जन्तुओं के अधिकांश वर्ग नष्ट हो गये। उनका स्थान स्तनपायी जन्तुओं, मछलियों और पक्षियों ने ले लिया। शुरू में, स्तनपायी जन्तुओं में बहुत विभिन्नता नहीं थी, लेकिन बाद में ७ करोड़ वर्ष तक उनका भिन्न-भिन्न ढंग से विकास हुआ। जहाँ तक आकार का प्रश्न है, उनमें इतना परिवर्तन नहीं हुआ, जितना रेंगने वाले जन्तुओं में। स्तनपायी जन्तुओं में कोई भी इतना विचित्र नहीं है, जितना सांप या कछुआ हालांकि, दक्षिण अमेरिका के कुछ जन्तुओं के शरीर पर कछुओं की भाँति कवच-सा उत्पन्न हो गया। ये जन्तु अब बाकी नहीं हैं। सबसे मौलिक जन्तु वर्ग शायद हाथियों का था, जो ५० लाख वर्ष पहले आस्ट्रेलिया, दक्षिण ध्रुव देश और अधिकांश द्वीपों को छोड़ बाकी सारे संसार में फैल गये थे।

तीन दुखद घटनाओं के फलस्वरूप यह चमत्कारपूर्ण विविधता कम हो गयी। दक्षिण अमेरिका पहले एक द्वीप था। लगभग ५० लाख वर्षप हले वह उत्तर अमेरिका से जुड़ गया और आज तक जुड़ा हुआ है। तब उत्तर के

स्तनपायी जन्तुओं ने दक्षिण पर धावा बोला और अधिकांश दक्षिण देशी जन्तुओं को, जिनमें से कुछ बहुत सुन्दर थे, नष्ट कर डाला। १० लाख वर्ष या उससे कुछ कम पहले अनेक हिमयुग आये, जिन्होंने जन्तुओं की अनेक जातियों को नष्ट कर दिया। अन्त में मनुष्य का विकास हुआ और उसने कम से कम २॥ लाख वर्ष तक मुख्यतः जन्तुओं का ही शिकार करके जीवन बिताया। कुछ जन्तुओं को उसने पालतू भी बना लिया, लेकिन अन्य जन्तुओं को नष्ट कर डाला। गोला, बारूद और बन्दूक आदि के बनने से जन्तुओं के नाश का क्रम और भी तेजी से चल पड़ा और ऊष्णदेशीय अफ्रीका को जो हिमयुगों के आक्रमण से बच रहा था, मनुष्यों ने करीब-करीब जन्तु हीन कर डाला। अब, आखिरकार हम यह महसूस करने लगे हैं कि जन्तुओं के रूप में सृष्टि में जो विविधता शेष है, उसको बनाये रखना हमारा कर्तव्य है। भारत सरकार भी यहाँ सिंह और गेंडे को बचाने का पूरा प्रयत्न कर रही है।

हम देखते हैं कि जैसे-जैसे नयी-नयी शक्तियों का उदय हुआ, वैसे ही जीवधारियों में विविधता बढ़ती गयी, परन्तु मनुष्य के प्रादुर्भाव के बाद यह क्रम उलटा हो गया। जीवशास्त्री की नजर में एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से कोई भेद नहीं, परन्तु अपने आचरण और बुद्धि में वे बहुत भिन्न होते हैं। यह एक नयी प्रकार की विभिन्नता है। मैं यहाँ उसकी चर्चा नहीं करूँगा। जब हम कीड़ों का, विशेषकर सामाजिक कीड़ों का इतिहास जान पायेंगे, तो वह शायद रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं के इतिहास से भी अधिक दिलचस्प साबित होगा।

कीड़ों में इतनी विविधता क्यों है? आपको याद होगा कि कीड़ों की दस लाख या इससे भी अधिक जातियाँ हैं। मैं एक उदाहरण दूंगा। कीड़ों में बुद्धि होती है और मेरा मत है कि उनमें से कुछ की बुद्धि काफी विकसित होती है। पाश्चात्य प्राणिशास्त्री 'इन्स्टिंक्ट' या पशु बुद्धि की बात कहते हैं। किसी जाति के कीड़े केवल एक ही जाति के पौधों या जन्तुओं का आहार करते हैं, इस बात को कहने के लिए 'स्वधर्म' भी उतना ही अच्छा शब्द है। उदाहरणार्थ जुओं की तीन जातियाँ ऐसी हैं, जो केवल मनुष्य के रक्त पर ही जिन्दा रहती हैं। अतः आचरण की भिन्नता के कारण भी अनेक जातियाँ पैदा हो जाती हैं।

फूलों वाले पौधों की २,१०,००० या २ लाख जातियाँ ज्ञात हैं। मेरा ख्याल है कि अब शायद ३० हजार जातियाँ बची हों, जिनका अभी पता नहीं चला है। यह दिलचस्प बात है कि उपर्युक्त जातियों में से १० प्रतिशत भारत में पायी जाती हैं। रूस जैसे अधिक बड़े देशों में कम जातियाँ पायी जाती हैं। केवल ब्राजील ऐसा देश है, जहाँ फूलों वाले पौधों की भारत से भी अधिक जातियाँ मिलती हैं। ब्रिटेन में तो केवल १ हजार ही जातियाँ मिलती हैं।

मुस्लिम और ईसाई वैज्ञानिकों का विश्वास था कि संसार की सृष्टि को १० हजार वर्ष से भी कम हुआ है। स्वभावतः उन्होंने सोचा कि प्रत्येक जाति का अलग-अलग निर्माण हुआ है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने परिणाम या परिवर्तन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, परन्तु 'विकास' का आधुनिक सिद्धान्त इससे भिन्न है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले फ्रांस में लैमार्क ने किया। लेकिन, जीवशास्त्रियों को इस सिद्धान्त की सच्चाई का विश्वास सबसे पहले डारविन ने कराया। डारविन ने विकास के सिद्धान्त का वैज्ञानिक ढंग से समझाया है और अब मैं समझता हूँ कि उसका मत अधिकांश में ठीक है यद्यपि इसे मानने की जरूरत नहीं है कि प्रकृति चुन-चुन कर दुर्बल जीवों को मारती रही है। जैसे यह ठीक है कि अजातशत्रु ने लिच्छवियों को हराया पर हम यह नहीं मानते कि उसने देवताओं की मदद से ऐसा किया।

विकास की क्रिया के दो प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। एक तो, प्रस्तरीभूत कंकाल से और दूसरा, प्रजनन विज्ञान से अर्थात्, जीवित पौधों और जन्तुओं के वास्तविक प्रजनन से। जिन पुरातन चट्टानों में पर्याप्त सुरक्षित रूप में प्रस्तरित अस्थियाँ मिलती हैं, वे लगभग ५५ करोड़ वर्ष पुरानी हैं। वैसे, इससे भी पुराने प्रस्तरित कंकाल मिले हैं और सम्भव है कि पृथ्वी पर जीव सृष्टि की उम्र इससे दुगुनी हो। पृथ्वी के बहुत से भू भागों में कोई प्रस्तरीभूत कंकाल नहीं मिलते। उदाहरण के रूप में, दक्षिण का

निर्माण ज्वालामुखियों के जमे हुये लावे से हुआ है। अन्य भू-भाग, जैसे गंगा के काँठे पर इधर का कीचड़ मिट्टी जमा है। लखनऊ और कलकत्ते के बहुत नीचे जो चट्टानें हैं, उनमें पुराने पथराये कंकाल हो सकते हैं, लेकिन ये चट्टानें बहुत नीचे हैं।

यदि पिछले ५० करोड़ वर्ष में पृथ्वी के सभी युगों के अवशेष मिलते तो प्रत्येक १० लाख वर्ष की अवधि में बनी चट्टानें पृथ्वी के एक हजारवें भाग पर मिलतीं। पर कुछ युगों की चट्टानें या अवशेष तो अब मिलते ही नहीं। जितने पुराने अवशेष होते हैं, उनका मिलना उतना ही दुर्लभ होता है। बहुत से जन्तु और पौधे ऐसे होते हैं, जिनका कोई ठोस और सख्त अवयव नहीं होता। ऐसे जन्तुओं और पौधों की अस्थियाँ प्रस्तरीभूत रूप में नहीं पायी जातीं। कीड़ों आदि की तुलना में हड्डियों वाले जन्तुओं के कंकाल बचे रहना अधिक सम्भव है।

जो भी हो, पिछले करोड़ों वर्षों में बनी मिट्टी या चट्टानों आदि की जो तहें पायी जाती हैं वे यह दिखाने के लिये काफी हैं कि कुछ जातियाँ धीरे-धीरे लेकिन निरन्तर रूप से बदलती रहीं और यह परिवर्तन इतना बड़ा था कि यदि एक ही जाति के विभिन्न युगों में जीवित नमूनों को लिया जाए तो वे अलग-अलग जाति के माने जाएँगे। जैसे भारत में पाये जाये जाने वाले शालिग्राम जो पुरातन शंख जाति के जीवों का रूपान्तर है। कुछ वर्तमान जन्तुओं, जैसे घोड़ों और हाथियों के प्राचीन कंकाल काफी मात्रा में उपलब्ध हैं और इस प्रकार हम उनके वंश-क्रम के बारे में जान सकते हैं। जहाँ तक दूसरे प्राणियों, जैसे मनुष्य का प्रश्न है यह श्रृंखला बीच-बीच में काफी टूटी हुई मिलती है। तो भी, ऐसे बहुत से कंकाल मिलते हैं, जिनका सिर मनुष्य के सिर से छोटा है, लेकिन अपने आकार के अन्य जन्तुओं से बड़ा है और जो वर्तमान मनुष्य का पूर्व रूप जान पड़ता है।

विकास की क्रिया के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाएँ अनेक कारणों से भ्रामक हैं। एक कारण यह है कि इस क्रिया की अत्यन्त मन्थर गति पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। आप जानते हैं कि घोड़ों के दाँत विशेष प्रकार के होते हैं। ये दाँत घास चरने के काम आते हैं और चरने से घिसते भी जाते हैं। पिछले ५० करोड़ वर्षों में घोड़ों के जो पूर्वज रहे, उनके दाँत देखने पर पता चलता है कि इनमें सबसे पहले पूर्वजों के दाँत मनुष्यों और सूअरों की तरह छोटे-छोटे थे। बाद में उनके दाँत बड़े होते चले गये। यह वृद्धि प्रति १० लाख वर्ष में औसतन ३ या ४ प्रतिशत के हिसाब से हुई।

दूसरी मिथ्या धारणा यह है कि विकास प्रायः प्रगतिशील होता है और नयी संतति, आकार तथा आचार में अपने पूर्वजों से अधिक विकसित होती है। मेरा विचार है कि ऐसी प्रगति का यदि एक उदाहरण लिया जाय तो अवनति के दस उदाहरण मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ, पक्षी शायद उस एक जाति के वंशज हैं, जिसने पहले पहल उड़ना सीखा, परन्तु बहुत से पक्षियों की उड़ने की सामर्थ्य नष्ट हो गयी है, जैसे शुतरमुर्ग। इसी तरह मछलियों की बहुत सी जातियाँ समुद्र-गर्भ की चट्टानों में बनी गुफाओं में रहने लगीं और अपनी दृष्टि खो बैठीं। सब मिलाकर विकास की क्रिया इस दृष्टि से प्रगतिशील है कि एक जाति जिसने नयी सामर्थ्य पायी, उसकी अनेक संतति हो सकती हैं जो इस सामर्थ्य का विभिन्न प्रकार से लाभ उठायें। जो जाति सामर्थ्य खो दे, सम्भव है वह नयी जातियों को जन्म न दे सके।

५० वर्ष पहले यह समझा जाता था कि विभिन्न नस्लों के कुत्तों, मुर्गियों या मटरों में बहुत भेद होते हुए भी यह भेद केवल ऊपरी है, क्योंकि वे सब परस्पर मैथुन कर सकती हैं और ऐसी संतति को जन्म दे सकती हैं, जो दूसरी संतति पैदा कर सकती है। जब कि कुत्ते और लोमड़ियाँ ऐसा नहीं कर सकतीं। परन्तु अब एक जाति में ही नहीं, बल्कि किसी नयी जाति में भी परस्पर मैथुन और संततिजन्म का अवरोध सम्भव हो गया है। विकासात्मक परिवर्तन बहुत शीघ्र होते भी देखा गया है। उदाहरणार्थ, इंगलैंड के धुएँदार औद्योगिक क्षेत्रों में पतंगों की लगभग ७० जातियाँ काली हो गयी हैं। एक जाति के बारे में तो यह निश्चित रूप से प्रमाणित हो गया है कि यह परिवर्तन प्राकृतिक चुनाव के कारण हुआ है। अतः, अधिकांश प्राणिशास्त्रियों का विश्वास है कि दो भिन्न जातियों में उसी

प्रकार का भेद होता है, जैसा एक ही जाति की दो शाखाओं में।

रीढ़ की हड्डी वाले जानवरों के विकास का काफी इतिहास हमें ज्ञात है। कीड़ों के इतिहास का हमें इतना ज्ञान नहीं। जन्तुओं में ये दो-श्रेणियाँ ही सबसे अधिक उन्नत हैं। ४० करोड़ वर्ष पहले जो कीड़े और रीढ़ की हड्डी वाले जन्तु थे, वे दूसरी श्रेणियों के जन्तुओं से बहुत भिन्न नहीं थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय कीड़ों या रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं की जीवित जातियाँ उस समय की एक या थोड़ी सी जातियों की ही वंशज हैं। जैसा कि प्रो० एम० आर० साहनी और दूसरों ने बताया है, कि भगवान विष्णु के विविध अवतारों से मोटे तौर पर इस बात का पता चलता है कि विभिन्न युगों में रीढ़ की हड्डी वाले कौन से जन्तु सर्वाधिक विकसित थे। ३५ करोड़ वर्ष पहले रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं में मछलियाँ ही सबसे ज्यादा विकसित थीं (मत्स्य अवतार)। २५ करोड़ वर्ष पहले उनका स्थान रेंग कर चलने वाले जन्तुओं ने ले लिया था। ६ करोड़ वर्ष पहले स्तनपायी चौपाये, जो बाराहों की तरह रहे होंगे, सबसे अधिक विकसित थे (बाराह अवतार)। १॥ करोड़ वर्ष पहले उनमें मानवों जैसे कुछ गुण आ गये थे। नरसिंह अवतार से इसी बात का संकेत मिलता है। लगभग १० लाख वर्ष पहले सीधी खड़ी रहने वाली बौनों की जाति, जो मनुष्य तो नहीं थी परन्तु बन्दरों के मुकाबले में मनुष्य से अधिक मिलती जुलती थी, रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं में सबसे अधिक विकसित थी। वामन अवतार इसका द्योतक है।

रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं में जिस प्रकार मछलियों की श्रेणी सबसे पुरानी है, उसी प्रकार पंख वाले कीड़ों में टिड्डियाँ और इसी प्रकार के कीड़े सबसे पुरानी जाति के हैं। पौधों के विकास के बारे में हमें कम मालूम है। फूलों वाले पौधों का तो जन्म ही केवल १५ करोड़ वर्ष पहले हुआ। मैं यह तिथियाँ कुछ विश्वास के साथ पेश कर रहा हूँ, क्योंकि चट्टानों में रेडियो सक्रियता से उत्पन्न पदार्थों के जमा रहने के कारण अब इस बात का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है कि वे चट्टानें कितनी पुरानी हैं। परंतु समुद्री जन्तुओं की अनेक श्रेणियाँ ऐसी हैं, जो ५० करोड़ वर्ष पहले भी करीब-करीब इसी रूप में थीं। उनके उद्गम के विषय में हम क्या कह सकते हैं?

जीव-विज्ञान की तीन शाखाएँ ऐसी हैं, जो कंकालों द्वारा पता चलने वाले इतिहास की पुष्टि और पूर्ति करती हैं। इनमें से एक शरीर की भीतरी रचना के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। अलग-अलग जाति के दो जन्तुओं के शरीर की भीतरी रचना जितनी ही समान होगी, उनके समान पूर्वज का अस्तित्व उतना ही कम पुराना होगा। उदाहरण के लिए घड़ियाल बाहरी तौर पर पक्षी के बजाय गाय से अधिक मिलता-जुलता है। परन्तु, उसका हृदय और अन्य भीतरी अंग बहुत कुछ पक्षियों से मिलते हैं। वास्तव में घड़ियाल और पक्षियों के समान पूर्वज २० करोड़ वर्ष पहले रहते थे। जब कि गाय और घड़ियाल के समान पूर्वज लगभग ३० करोड़ वर्ष पहले थे। अतः जब कंकाल उपलब्ध न हो, तब हम शरीर की भीतरी रचना की तुलना करके विभिन्न जाति के जन्तुओं के परस्पर सम्बन्ध का पता चला सकते हैं। सादृश्य के रूप में हिन्दी और इतालियन भाषा को लें तो उनमें बहुत थोड़ा साम्य है। परन्तु इन दोनों की पूर्वज भाषाओं, संस्कृत और लैटिन में, कहीं अधिक साम्य है और, इसमें संदेह नहीं कि संस्कृत और लैटिन का जन्म किसी एक ही भाषा से हुआ होगा। यदि हमें पुरानी भाषाओं के लेख आदि न मिलते तो भाषाओं के विकास का क्रम न बताया जा सकता। परन्तु, संस्कृत, लैटिन, हीब्रू और अन्य प्राचीन भाषाओं का हमें जो ज्ञान है, उसके आधार पर हम इन भाषाओं का अफ्रीकी भाषाओं से सम्बन्ध ढूँढ निकाल सकते हैं। इसी प्रकार हम यह भी विश्वास के साथ कह सकते हैं कि कीड़ों, कनखजूरों, मकड़ियों और केकड़ों के पूर्वज एक ही थे और घोंघों, सीपों आदि के पूर्वज भी इसी प्रकार एक थे।

तुलनात्मक भ्रूण विज्ञान से भी हमें इसी बात का पता चलता है। परस्पर सम्बन्धित जन्तुओं के विकास की प्रारम्भिक क्रिया प्रायः एक जैसी होती है। अनेक जन्तु, जो वयस्क होने पर एक-दूसरे से नहीं मिलते, वे भी भ्रूण, अवस्था में परस्पर मिलते हैं।

सबसे साधारण शरीर रचना एककोशी जन्तुओं की होती है। इनमें से अनेक जमीन या पानी में रहते हैं और उनसे कोई नुकसान नहीं पहुँचता, परन्तु कुछ एक-कोशी जन्तु परजीवी होते हैं और मलेरिया तथा आमातिसार जैसे गंभीर रोगों को जन्म देते हैं। इन एककोशी जन्तुओं को बहुकोशी जन्तुओं का पूर्वज समझा जाता है।

स्पंज, जिन्हें मुश्किल से ही जन्तु कहा जा सकता है, शायद इन एककोशी जन्तुओं के एक वंश के प्रतिनिधि हैं और बाकी सब बहुकोशीय जन्तु दूसरे वंश के। बहुकोशी जन्तुओं में रचना की दृष्टि से सबसे सरल आन्तरगुही जन्तु जैसे प्रवाल आदि है। इन जन्तुओं को प्रायः आदिकालीन समझा जाता रहा है। परन्तु, यूगोस्लाविया के एक जीव-शास्त्री, हाजी ने यह मत प्रकट किया है कि आन्तरगुही जन्तु शुरू से ही ऐसे नहीं थे, बल्कि बिगड़कर ऐसे बने हैं।

मेरा विश्वास है कि इस प्रकार के पशुओं का निर्णय जीवशास्त्र की एक तीसरी शाखा-जीव-रसायन -द्वारा किया जा सकता है। जो जन्तु रचना की दृष्टि से एक जैसे होते हैं, वे जीवरसायन की दृष्टि से भी एक समान होते हैं। आप यह जानते हैं, पर आपको शायद यह नहीं मालूम कि आपको यह ज्ञान है। आप शायद यह मानकर चलते हैं कि रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं का रक्त लाल होता है और दूसरे जन्तुओं का लाल नहीं होता। वास्तव में, ध्रुव प्रदेश की कुछ मछलियों का रक्त पारदर्शक होता है, जब कि कुछ कीड़ों, घोंघों की और कुछ पौधों जड़ों में भी वह तत्व मिलता है, जिससे रक्त का रङ्ग लाल होता है। इसलिए, रक्त की अपेक्षा रीढ़ की हड्डी ही वर्गीकरण का श्रेष्ठ माप-दण्ड हैं। परन्तु, रक्त के रङ्ग से परस्पर सम्बन्ध की अच्छी जानकारी मिलती है।

रंगहीन पदार्थों विषय में ऐसी ही बात देखने को मिली है। उदाहरणार्थ, रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं को मांसपेशियां सिकोड़ने के लिए जिस तत्व से शक्ति मिलती है, वह तत्व बिना रीढ़ की हड्डी वाले कुछ जन्तुओं में भी मिला है, लेकिन अन्यत्र नहीं मिलता। इससे तुलनात्मक शरीर रचना और भ्रूण विज्ञान द्वारा प्रकट इस बात की पुष्टि होती है कि ये जीव रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं से सम्बन्धित हैं।

तुलनात्मक जीवरसायन से सबसे आश्चर्यजनक जानकारी यह मिली कि सब जन्तुओं और पौधों में जो जीवित तत्व होते हैं, उनकी रचना एक सी होती है और उनमें एक से ही रासायनिक परिवर्तन होते हैं। प्राणियों के निर्जीव भाग, जैसे हड्डियां, लकड़ी, छिलके आदि एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, मनुष्य के रक्त में एक हजारवां भाग वह शक्कर होती है, जिसे ग्लूकोज़ कहते हैं। इस शक्कर का उपभोग हमारे शरीर का प्रत्येक अंग करता है। बहुत से पौधों में भी ग्लूकोज मिलता है। अन्य पौधों में इक्षु-शर्करा होता है, यह ग्लूकोज और स्तनपायी जन्तुओं के वीर्य में मिलने वाली शर्करा का योग होता है। जिन रासायनिक प्रक्रियाओं से प्राणी श्रम करने योग्य बनते हैं, वे प्रक्रियाएं सभी प्राणियों में एक सी होती हैं। रहट के बैल को लीजिए, जो कुएं से पानी खींचता है। उसके पास ही खड़े किसी ताड़ के वृक्ष को भी लीजिए। वृक्ष भी पानी खींचता है, हालांकि उसको पानी खींचने की गति प्रति घंटा कुछ फुट की होती है। यदि वह पानी खींचना बन्द कर दे, तो उसके पत्ते शीघ्र ही सूख जाएँगे। पशु और वृक्ष की शक्ति का स्रोत निश्चय ही एडेनोसाइन ट्राइफास्फेट नामक रासायनिक तत्व है। जुगनुओं में प्रकाश भी इसी के कारण होता है। बैल और ताड़, दोनों को जिस शक्ति की जरूरत होती है, उसे देने वाला तत्व एडेनोसाइन ट्राइफास्फेट अनकी रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप बनता है। इन प्रतिक्रियाओं में बहुत थोड़ा सा अन्तर होता है। श्री जगदीश चन्द्र बसु का यह विश्वास सत्य प्रमाणित हो चुका है कि पौधों और जन्तुओं में एक सा जीवन है।

वास्तव में जन्तुओं और पौधों के कोशों में जो प्रक्रियाएं होती हैं, वे लगभग एक जैसी ही हैं, हालां कि ये कोश बहुत भिन्न भिन्न कार्यों के लिए होते हैं। यदि सभी प्राणियों के पूर्वज एक ही थे यह मान लिया जाय तो यह समानता तुरंत समझ में आ जाती है।

मुझसे कहा गया है कि मैं जीवन की उत्पत्ति के विषय में भी बोलूं। इस विषय में विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करने और उनके समर्थन में प्रमाण पेश करने में मुझे एक घंटा और लग जाएगा। व्यक्तिगत रूप से मेरा विचार है कि सजीव और निर्जीव पदार्थों में विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं है। अपने मत के पक्ष में मुझे उन विषाणुओं की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं, जिनसे चेचक और इंफ्लूएंजा होता है और जिन्हें कुछ लोग सजीव मानते हैं और कुछ लोग निर्जीव। मांडी के एक व्यहाणु में कार्बन का जो एक अणु होता है, जरा उसकी कल्पना कीजिए। जब आप चावल की माँडी खाते हैं और जब वह आपके मुंह या पेट में होती है तो कार्बन का अणु जीवित शरीर में होने पर भी उसका अंग नहीं बन जाता। जब वह रक्त में मिलता है, तब भी वह आपका हिस्सा नहीं बनता। वहाँ से वह जिगर में जाता है और फिर रक्त के द्वारा किसी मांसपेशी तक पहुंचता है। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। हो सकता है कि कार्बन का यह अणु कुछ वर्ष तक हमारे शरीर में बना रहे या आक्सीजन से मिलकर कार्बन-डाइ-आक्साइड के रूप में हमारी सांस के रास्ते बाहर निकल आए। यह कोई नहीं कह सकता कि वास्तव में वह कब हमारे जीवन का हिस्सा बना और कब उससे अलग हो गया। हालां कि इसमें सन्देह नहीं कि वह कुछ समय तक हमारे जीव का अंग अवश्य रहा।

इसी प्रकार अतीत के बारे में हमारा ज्ञान अब से बहुत अधिक भी हो जाय तब भी हम नहीं कह सकेंगे कि कुछ प्रकार के पदार्थ ठीक किस समय सजीव हो उठे। हमारे सौरमंडल के अन्य नक्षत्रों की हवा में आक्सीजन, अलग रूप से, बहुत कम होती है। पृथ्वी पर भी वह मुख्य रूप से पेड़-पौधों से मिलती है, जो सूर्य की सहायता से हवा में से कार्बन-डाइ-आक्साइड खींच लेते हैं। अतः पृथ्वी के आदिकालीन वातावरण में आक्सीजन अलग रूप से शायद नहीं थी। यदि ऐसा था तो शक्ति देने वाले और सृजन करने वाले बहुत से रासायनिक तत्व हवा, पानी और मिट्टी में मिले रहे होंगे। बाद में धीरे-धीरे वे अलग हुए होंगे।

संचित रासायनिक शक्ति को ताप और गति में बदलने की क्रिया जिस पद्धति के अनुसार होती है, वह इस क्रिया के कारण एक रूप धर लेती है, जो कुछ समय तक बना रहता है। आग की लपटें इसका उदाहरण हैं। इसी प्रकार कुछ परमाणु दूसरे परमाणुओं को खींच लेते हैं और उनसे मिलकर 'कण' का रूप लेते हैं। इस प्रश्न का अभी निश्चयपूर्वक उत्तर नहीं दिया जा सकता कि क्या भौतिक क्रियाओं की कोई आदिकालीन पद्धति इतनी विकसित हो गयी थी कि उसने जीवन का रूप धारण कर लिया।

मैंने हाल ही में इस विषय पर विस्तृत रूप से विचार किया है और विशेष रूप से गणित और विज्ञान के कुछ ऐसे प्रश्न सामने रखे हैं, जिनका उत्तर देना बहुत कठिन नहीं होगा। इन प्रश्नों के उत्तर से उपर्युक्त सिद्धान्त के सही या गलत होने का पता चल जाएगा। यह सिद्धान्त गलत सिद्ध होने पर पृथ्वी के सब प्राणियों के एक पूर्वज से जन्म पाने के विषय में दो ही सिद्धान्त और रखे जा सकते हैं। एक सिद्धान्त यह है कि पदार्थ और जीवन अनादि अनन्त हैं, परन्तु क्योंकि जीवन की उत्पत्ति केवल जीवन से ही हो सकती है, अतः पहला जीवधारी किसी दूसरे नक्षत्र से यहाँ आया होगा। दूसरा सिद्धान्त, जिसे डारविन ने सुझाया है, यह है कि जीवन की उत्पत्ति परमात्मा ने की और उसने एक बार ही समूचे जीवन का सृजन किया। परमात्मा ने प्राणियों की सृष्टि अलग-अलग नहीं की जैसा कि बहुत से धर्मों में माना जाता है। व्यक्तिगत रूप से मेरा मत है कि पृथ्वी पर जीवधारियों की सृष्टि एक प्राकृतिक प्रक्रिया के फलस्वरूप हुई।

इस विषय में हाल ही में मास्को में एक सम्मेलन हुआ है। इस सम्मेलन में मुख्यतः भूमि, समुद्र और वायु की रासायनिक रचना, निर्जीव तत्वों से जीव तत्व का निर्माण वर्तमान जीवधारियों की जीवन प्रक्रिया आदि के विषय में विचार किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य जीवन की सृष्टि करने का प्रयत्न करेगा। यदि यह सम्भव है तो उसके लिए स्पुतनिक छोड़ने के मुकाबले उतना ही अधिक शिल्पिक और बौद्धिक प्रयत्न करना पड़ेगा, जितना ५० गज दूर तीर छोड़ने वाला पहला धनुष बनाने की तुलना में स्पुतनिक बनाने के लिए करना पड़ा था।

विज्ञान-वार्ता

साइबेरिया की पुरातत्वीय सामग्री

सोवियत पुरातत्व अभियानमंडल ने बैकाल झील (साइबेरिया) से एक सौ किलोमीटर उत्तर की ओर अंगारा नदी के बायें किनारे नवप्रस्तर युग के मानव के कब्रिस्तान का पता लगाया है। रेत के अन्दर एक खोपड़ी पाई गई है। ऐसा लगता है कि यह खोपड़ी किसी अधेड़ उम्र के आदमी की है जो बैठने की मुद्रा में दफनाया गया था। मानव-अवशेष के अलावा बाणों के सिलिसियम तथा अस्थिनिर्मित सिरे, हरे तथा दूध जैसे सफेद नेप्राईट के बने पालिश किये हुए चाकू, शेल की बनी आरी, हड्डी के बने अस्त्र तथा मछली मारने की बंसी, हरिण का पत्थर में उत्कीर्ण सिर, पाये गये हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह कब्रिस्तान किसी कारीगर का है जो मछली और आखेट खेलने के यंत्रादि बनाया करता था।

यह सुरक्षित खोपड़ी मास्को भेजी गई है जहाँ विख्यात नृविज्ञानविद् और मूर्ति कलाकार प्रो० गेरासिमोव नवप्रस्तर युग के मानव की आकृतियों का पुनर्निर्माण करने का प्रयास करेंगे।

अंगारा की घाटी में इससे पूर्व नवप्रस्तर युग के मनुष्यों की बहुत सी खोपड़ियाँ पाई गई हैं। लेकिन विशेषज्ञों के मतानुसार कब्रिस्तान में पाई गई उपर्युक्त वस्तुएँ अपनी समृद्धि-सम्पन्नता और विविधता के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान हैं।

एलेक्ट्रोकार्डियोस्कोप

सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किये गये नये चिकित्सा यंत्र का नाम एलेक्ट्रोकार्डीयोस्कोप है। इसके निर्माताओं को लेनिन पुरस्कार प्रदान करने का निर्णय किया गया है। इस यंत्र के द्वारा हृदय के जीव-विद्युत-प्रवाहों का अनुसन्धान किया जाएगा।

यह सर्वविदित है वर्तमान यंत्र हृदय की क्रियाओं का पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं कर पाते। केवल हृदय के स्पन्दन को ही प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। यह नया यंत्र हृदय के भीतर सूक्ष्मतम परिवर्तन को भी बताता है। चिकित्सकगण विशेष प्रकार के पर्दे पर हृदय की क्रियाओं को देख सकते हैं उनके फोटो ले सकते हैं।

शीशा-इस्पात से घरों का निर्माण

एक विशेष प्रकार के प्लास्टिक से जिसे इसके आविष्कारकर्त्ता बुरोव और आन्द्रीव्स्काया ने 'शीशा इस्पात' की संज्ञा दी है केवल अड़तालीस टन वजन के तिमंजिले घर का निर्माण किया जा सकता है। सोवियत वास्तुशिल्पकार मेतानियेव ने इसका नकशा तैयार किया है। यह नई सामग्री इस्पात जैसी टिकाऊ है लेकिन इसका वजन इस्पात की तुलना में लगभग ८३ प्रतिशत कम है। मोटर-गाड़ियों और हलके जहाजों के ढाँचों, सुन्दर साज सामान, विद्युत सामान, तेल के कूयें खोदने के यंत्रों का निर्माण करने में इसका प्रयोग किया जा सकता है। 'शीशा इस्पात' तैयार करने की कच्ची सामग्री शीशा-प्लाईवुड बनाने के लिए लेनिनग्राद के प्लाटिक कारखाने में एक प्रायोगिक वर्कशाप खोला गया है।

चन्द्रलोक की यात्रा पूर्णतः सम्भव

सोवियत संघ की स्थल, नौ एवं वायु सेना साहाय्य ऐच्छिक मंडल के व्योमचारण विभाग के अध्यक्ष निकोलाई बार्वारोव **सोवेत्स्की फ्लोट** में लिखते हैं कि रासायनिक ईंधन का प्रयोग करने वाले राकेटों के सहारे चन्द्रलोक में पहुँचना पूर्णतः सम्भव है। २५,००० मील प्रति घंटे के हिसाब से उड़ने वाला उपग्रहीय राकेट ११५ घन्टों में चन्द्रलोक में पहुँच सकता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से मंगल तथा शुक्र ग्रहों की उड़ान भरने के मार्ग में ऐसी कठिनाइयाँ नहीं है जिन पर काबू नहीं पाया जा

सकता। अब व्योमचारियों के सामने स्वयंचालित नियन्त्रण-युक्त राकेट चन्द्रलोक में पहुँचने के लिए छोड़ने तथा मानव-चालित पृथ्वी-उपग्रह निर्माण करने का कार्य है। चन्द्रलोक तक पहुँच जाना तो पूर्णतः सम्भव है किन्तु राकेट विज्ञान के वतमान स्तर को दृष्टिगत रखते हुए चन्द्रलोक से लौटना अव्यवहार्य है। किन्तु इस कठिनाई पर तभी काबू पाया जा सकता है जब ईंधन देने के स्टेशन की व्यवस्था व्योम में हो। इसमें सन्देह नहीं कि पारमाणविक शक्ति के उपयोग से व्योमचारियों के लिए नई सम्भावनाएँ उन्मुक्त हो जाएँगी। चन्द्रलोक तथा उसके पार्श्ववर्ती अन्य ग्रहों की उड़ान बीच के स्टेशन में ईंधन लिए बिना भी सम्भव हो जाएँगी।

सोवियत ज्योतिर्विदों का नया आविष्कार

सोवियत संघ का सबसे बड़ा रेडियो दूरवीक्षण यंत्र जिसका व्यास लगभग १०० फुट है सिमीज की स्वास्थ्य-शाला से जहाँ सोवियत सङ्घ की विज्ञान अकादमी का भौतिक विज्ञान संस्थान है लगभग दो मील की दूरी पर क्रीमिया में लगाया हुआ है।

क्रीमिया के ज्योतिर्विदों ने इस रेडियो दूरवीक्षण यंत्र के सहारे यह पता लगाया है कि 'कर्क' नीहारिका का रेडियो विकिरण अभिस्पन्दित है। यह तथ्य नीहारिका के भीतर क्षिप्रगामी कणों के अस्तित्व सम्बन्धी सोवियत सिद्धान्तों की पुष्टि करता है। इन कणों की शक्ति पारमाणविक प्रतिक्रियाओं और विस्फोटों से समुद्भूत शक्ति की तुलना में कई गुना अधिक है और उनसे ब्रह्मांड किरणों की समस्या के प्रति भिन्न दृष्टिकोण प्राप्त होता है। ज्योतिर्विदों के मतानुसार कर्क नीहारिका की तरह रेडियो विकिरण के स्रोत भी ब्रह्मांड किरण के स्रोत हैं।

ज्वार भाटों का निर्देश

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अनुसन्धानात्मक जल-पोत 'वेमा' पर जो वैज्ञानिक विद्यमान हैं, उन्हें दक्षिण अमेरिका के तट पर समुद्र के तल में ऐसे निशान मिले हैं, जिनसे तूफानों और ज्वार-भाटों के प्रारम्भ का पता चल सकेगा।

इस समुद्र-तल में लहरियों के जो निशान मिले हैं, उनकी संसार के अन्य क्षेत्रों में मिलने वाले ऐसे निशानों से तुलना की जाएगी। यह तुलना समुद्र के तट में पानी के बहाव की जानकारी प्रदान करने की दृष्टि से एक प्रमुख साधन सिद्ध होगी। वैज्ञानिक यह अनुभव करते हैं कि समुद्र के तल में पानी के बहाव तथा ज्वार-भाटों, तूफानी बाढ़ों और उत्ताल तरंगों में आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है।

'वेमा' में विद्यमान ये वैज्ञानिक अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के अन्तर्गत अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं। इन्होंने मैजेलेन खाड़ी में समुद्र-तल के जो चित्र उतारे हैं, उनमें लहरियों के निशान पाये हैं। पैलिसेड्ज (न्यूयार्क) स्थित कोलम्बिया विश्वविद्यालय की लेमण्ट भू-गर्भ-शास्त्रीय वेधशाला के भू-भौतिकशास्त्री डा० विलियम जे० लुडविग का कथन है कि भूमध्य-रेखा से लेकर दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश तक के समुद्र तलों के जो चित्र 'वेमा' अपनी यात्रा में उतारेगा, उनसे इस बात का निश्चय करना सम्भव हो जाएगा कि उत्तरी अतलांतिक की ऋतु सम्बन्धी सतहें दक्षिणी अतलांतिक तक विस्तृत हैं या नहीं। इन सतहों के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त होगी, उससे इस बात का निश्चय हो सकेगा कि हिम-युग एक साथ ही सारी दुनिया में आया था या बारी बारी से यह एक-एक गोलार्द्ध में आया। 'वेमा' ने अपनी यात्रा का प्रारम्भ गत ८ नवम्बर को न्यूयार्क से किया था। यह १० मास में ३४,००० मील की यात्रा करेगा। इस यात्रा में दक्षिणी अतलान्तिक महासागर, भारतीय सागर तथा भूमध्यसागर की यात्रा करेगा। इसके बाद सितम्बर तक न्यूयार्क पहुँच जाएगा।

धातु के बने पत्रों और रकाबियों का आकाशमण्डल के रहस्यों को समझने में प्रयोग

अमेरिकी सेना के वैज्ञानिकों ने यह सूचना प्रदान की है कि इस प्रकार के परीक्षण किए जा रहे हैं, जिनमें राकेट का इस्तेमाल पृथ्वी से ५० मील ऊपर धातु के बने पत्रों और रकाबियों को गिराने के लिए किया जा रहा है। यह कार्यवाही उच्च आकाशमण्डल में हवा की जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से की जा रही है।

वैज्ञानिकों को आशा है कि इससे उच्च आकाशमंडल में हवा के व्यवहार के सम्बन्ध में सही-सही जानकारी प्राप्त हो सकेगी तथा मौसम की भविष्यवाणी करने के नए सिद्धांत विकसित किए जा सकेंगे। इन नए परीक्षणों में छोटे राकेटों इस्तेमाल किए जाते हैं, जो अपने साथ अलूमीनियम की तश्तरियाँ इत्यादि ले जाते हैं। पूर्व निश्चित ऊँचाई पर ये राकेट इन रकाबियों को गिरा देते हैं। रेडार यन्त्रों की सहायता से इन रकाबियों का पता किया जाता है, जिससे हवा के सम्बन्ध में शीघ्र से शीघ्र सही जानकारी प्राप्त हो सके। ये राकेट ५४ मील ऊपर तक पहुँच चुके हैं। उच्च आकाशमण्डल का हवाएँ इन रकाबियों को २०० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से उड़ा ले गई हैं। इस अधिकतम ऊँचाई से लेकर १ लाख फुट से कम ऊँचाई तक विभिन्न ऊँचाइयों से इस प्रकार के परीक्षण किए गए हैं। इन परीक्षणों से इस बात का पता लगा है कि परीक्षण क्षेत्र में ये हवाएँ प्रायः उसी गति से पूर्व की दिशा में अग्रसर होती हैं, जिस गति से ३०,००० से लेकर ४०,००० फुट तक की ऊँचाई पर बहने वाली 'जेट हवाएँ' पश्चिम दिशा में अग्रसर होती हैं।

वैज्ञानिकों ने इस बात का संकेत दिया है कि इन परीक्षणों से जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, वे मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी करने वाले लोगों के लिए अत्यधिक महत्व की हैं। इसके अतिरिक्त इनसे उच्च आकाशमण्डल की हवाओं तथा भूमि के मौसम पर वे अपना क्या प्रभाव डालती हैं, इस सम्बन्ध में भी जानकारी मिलती है।

भारत में इंजीनियरी कालेज की योजना

आयोजन आयोग ने स्वराष्ट्र मंत्रालय के जन-शक्ति निर्देशालय (मैन पावर डायरेक्टरेट) से विचार-विमर्श करने के बाद अनुमान लगाया है कि दूसरी आयोजना में ३५,००० इंजीनियर स्नातकों तथा ६० हजार डिप्लोमा प्राप्त इंजीनियरों की और जरूरत पड़ेगी।

इससे पहले, इञ्जीनियरी कर्मचारी समिति भी इस मामले का अध्ययन कर चुकी है। समिति का अनुमान था कि दूसरी आयोजना में २६,५०० नये इञ्जीनियर स्नातकों और ५५,००० डिप्लोमा प्राप्त इञ्जीनियरों की जरूरत होगी। जाँच-पड़ताल से पता चला है कि १९५५ के अन्त तक देश में कुल ३१,००० इञ्जीनियर स्नातक और ४१,००० डिप्लोमा प्राप्त इञ्जीनियर थे।

देश की मौजूदा इञ्जीनियरी संस्थाएँ ज्यादा से ज्यादा २० हजार इञ्जीनियर स्नातक और ३० हजार डिप्लोमा प्राप्त इंजीनियर और तैयार कर सकती हैं। इस प्रकार १५,००० स्नातकों और ३० हजार डिप्लोमाप्राप्त लोगों की कमी रहती है।

अधिक से अधिक इंजीनियर जुटाने के लिये १९ इंजीनियरी कालेजों और ४१ बहुशिल्पी संस्थाओं (पालिटेकनिकों) में, स्नातक पाठ्यक्रम में २, ४५८ और डिप्लोमा पाठ्यक्रम में, ४३७० नये छात्रों की पढ़ाई की व्यवस्था की गयी है। इसके अलावा, दूसरी आयोजना में ५ नये इञ्जीनियरी कालेज, २१ बहुशिल्पी संस्थाएँ, ३ उच्च शिल्पविज्ञानशालाएँ खोलने की भी योजना है। इस्पात, खान और ईंधन मंत्रालय के, लोहा और इस्पात विभाग ने भी इस्पात-कारखानों के लिए देश में तथा विदेशों में भी कर्मचारियों की ट्रेनिंग की व्यवस्था की है। श्रम तथा नियोजन मंत्रालय ने भी दूसरी आयोजना में ७,००० लोगों को इञ्जीनियरी को ट्रेनिंग देने की योजना बनायी है।

नये चावल के पकाने की विधि

नयी फसल का चावल पकाने से लेसदार और बेस्वाद हो जाता है। मैसूर की खाद्य गवेषणाशाला ने इसे पकाने की सरल विधि निकाली है, जिससे गृहणियों को खास दिक्कत नहीं होती। पकाने से पहले चावल को ठंडे पानी में दो-तीन घन्टे तक अथवा गरम पानी में आध घन्टे तक भिगो दिया जाता है। फिर उसे किसी छेदार बर्तन में रखकर, किसी और बर्तन से ढककर, १५ मिनट तक भाप दी जाती है। उसके बाद खौलते हुए पानी में पकाने से यह १० मिनट में ही पक जाता है और लेसदार नहीं रहता। चावल जितना भिगोया जाएगा, पकने पर उतना ही कड़ा होगा।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना [illegible] जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान
जून १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्य प्रदेश तथा पूर्वी पंजाब के शिक्षा संचालकों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

भाग ८७ संख्या ४

जुलाई १९५८, कर्क २०१५ वि०, श्रावण १८८० शा०

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मंत्री, दो मंत्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८७	कर्क २०१५ विक्र० श्रावण १८८० शाकाब्द; जुलाई १९५८	संख्या ४

सम्पादकीय

मलेरिया उन्मूलन

विश्व भर में फैला होने के कारण मलेरिया मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु कहा जा सकता है। केवल मलेरिया ग्रस्त क्षेत्रों में ही भारतवर्ष की आधी जनसंख्या रहती है। अनेकों बार इस रोग ने महामारी का रूप भी धारण किया और जन और धन की अपार हानि हमें उठानी पड़ी। पूरे संसार में इस रोग से सन् १९४६ ई० में ३० लाख व्यक्ति मरे थे।

मलेरिया को मिटाने के प्रयत्न विभिन्न देशों में पर्याप्त समय से होते रहे हैं। प्राचीनकाल में रोमन लोग दलदलों को सुखाने के लिये नालियाँ बनाते थे जिससे दलदलों से उठने वाली दूषित भाप बीमारी न फैला दे। १७ वीं शताब्दी में जूड़ी और बुखार से मुक्ति पाने के हेतु सभ्य समाज ने प्रथम वार सिनकोना की छाल के चूरे को औषधि के रूप में उपयोग किया। यह दवा बड़ी प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई। सन् १८०४ ई० में रसायनज्ञों के अनवरत प्रयत्नों के फलस्वरूप इस छाल के चूर्ण से कुनैन बनाने की विधि ज्ञात हुई और इस प्रकार मलेरिया से मुक्त होने का एक साधन मानव को प्राप्त हुआ। किन्तु प्रयोगों से पता लगा कि केवल कुनैन के प्रयोग से ही मलेरिया से मुक्ति नहीं मिल सकती। कुनैन इस रोग के संक्रमण को रोकने में सक्षम सिद्ध न हो सकी। परिणामस्वरूप इस रोग की और भी अधिक छानबीन की गई।

सन् १८९८ ई० में रौस ने पता लगाया कि मलेरिया फैलाने वाला एनाफीलिस नाम का मच्छर है। यह खोज बड़ी महत्वपूर्ण है। परिणामस्वरूप मलेरिया से मुक्ति के इच्छुक लोगों ने मच्छरों के सर्वनाश करने की योजनायें बनाईं। नालियों और गन्दे गड्ढों में जहाँ पानी सड़ता है मच्छर अंडे देते हैं। इसलिये मच्छरों से मुक्ति पाने का एक उपाय तो इस प्रकार के गड्ढे तथा दलदल आदि सुखा देने का हो सकता है किन्तु यह अधिक व्ययसाध्य होने के कारण सम्भव नहीं। इस हेतु दूसरे महायुद्ध तक गंदे पानी में मिट्टी का तेल मुर्बी या पेरिस ग्रीन छिड़ककर मच्छरों से युद्ध चलाया जाता रहा। कुछ देशों में गम्बूसिया मछली का उपयोग भी इन कीटाणुओं को नष्ट करने के हेतु किया जाता रहा। किन्तु इन साधनों का व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोग न किया जा सका।

स्विटजरलैण्ड के नोवेल पुरस्कार विजेता पाल मूलर ने डी० डी० टी० का आविष्कार किया। इस आविष्कार

से मलेरिया को मिटाने के हेतु एक प्रवल शस्त्र मिल गया और मलेरिया से मुक्ति पाने का साधन मानव के हाथ में आ गया। डी० डी० टी० के छिड़कते ही मच्छरों के अंडे मर जाते हैं तथा इसका प्रभाव सप्ताहों या महीनों तक बना रहता है। सन् १९४८ ई० में जब विश्व स्वास्थ्य संगठन का जन्म हुआ तो मलेरिया से मुक्ति के कार्यक्रम को प्राथमिकता मिली। इस संगठन ने घरों में डी० डी० टी० छिड़कने पर बल दिया। सन् १९४९ से भारतवर्ष में डी० डी० टी० छिड़कने के ढंग सिखाने के लिये प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ। विदेशी सहायता तथा बाल सहायक निधि से दान स्वरूप बहुत सा सामान तथा डी० डी० टी० प्राप्त हुये।

सन् १९५५ में **मैक्सिको** में विश्व स्वास्थ्य संगठन की बैठक हुई। उसमें निश्चित किया गया कि मच्छरों में प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न होने के पूर्व ही उन्हें नष्ट कर डाला जाय। इस कार्य को शीघ्रता पूर्वक सम्पन्न करने के हेतु एक विश्व-निधि खोली गई।

मनुष्य के रक्त में मलेरिया के जो जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं वे बिना किसी उपचार के स्वतः ही ३ वर्ष में नष्ट हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार ऐसा प्रबन्ध हो सके कि इस तीन वर्ष की अवधि तक मलेरिया पीड़ित व्यक्तियों को मच्छरों के काटने से रोका जा सके तो मलेरिया से मुक्ति मिल सकती है और बार बार डी० डी० टी० छिड़कने की आवश्यकता भी नहीं रहती। **संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, पोर्टोरिको, चिली, साइप्रस, कोर्सिका और इटली में** मलेरिया का प्रायः उन्मूलन किया जा चुका है। वहाँ फिर से इस रोग का प्रकोप अभी नहीं हुआ है। फिर भी वहाँ अभी पूरी सावधानी बरती जा रही है। दक्षिण योरप में पहले ४० लाख व्यक्ति इस रोग से पीडित होते थे अब उनकी संख्या केवल १० हजार रह गई है।

सन् १९५१ में पता चला कि मच्छरों की एक जाति डी० डी० टी० से नहीं मरी। इसके बाद के अनुसंधानों से पता लगा कि मच्छरों की कुछ अन्य जातियों पर भी डी० डी० टी० का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त मच्छरों की वे जातियाँ जिन पर डी० डी० टी० का प्रभाव पड़ता है कुछ समय के पश्चात डी० डी० टी० के प्रति प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न कर लेती हैं। इन सब समस्याओं को देखते हुये यह आवश्यक हो जाता है कि इन मच्छरों का विनाश उनमें प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न होने के पूर्व कर दिया जाय।

डा० वी० ए० राव की अध्यक्षता में भारत में **मलेरिया संस्थान** नाम की संस्था कार्य कर रही है। यह संस्था मलेरिया के संक्रमण की रोकथाम तथा उपचार के सम्बन्ध में गवेषणात्मक कार्य कर रही है। संस्था की आयु देखते हुये कार्य अच्छा चल रहा है। फिर भी इस कार्य में अधिक गति लाने की आवश्यकता है यह प्रसन्नता का विषय है कि डी० डी० टी० और उसे छिड़कने के प्रसाधन अब भारत में ही बनने लगे हैं।

मलेरिया उन्मूलन का कार्य सरल नहीं है। इसके हेतु अदम्य उत्साह और अटूट लगन की आवश्यकता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों को हमें अन्त तक चालू रखना पड़ेगा। साथ ही जनता के सहयोग से ही वैज्ञानिक इस कार्य को पूर्णकर सकेंगे। यही अवसर है कि जनता और वैज्ञानिक मिलकर मच्छरों में प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न होने के पूर्व ही उन्हें नष्ट करके भारत को ही नहीं अपितु, सारे संसार को इस महामारी से मुक्ति दिला दें।

विज्ञान जुलाई १९५८
पृष्ठ ९९—१०२

आधुनिक रसायनशास्त्र की प्रगति

(ऑल इंडिया रेडियो से अप्रैल ११, १९५८ को प्रसारित)

डा० सत्य प्रकाश

प्रत्येक युग में ही रसायन शास्त्र की थोड़ी बहुत उन्नति हुई है, पर जो उन्नति अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शती में हुई उसने तो इस दुनिया की काया पलट ही कर दी, बीसवीं शती में यह प्रगति रुकी नहीं, और हम यह देख रहे हैं कि गत पचास वर्षों में रसायन के क्षेत्र में ऐसी खोजें हुईं जिन्होंने हमें आश्चर्य में डाल दिया। रसायन विद्याका सम्बन्ध कला-कौशल और उद्योग-धन्धों से है, और साथ ही साथ इसका संबंध स्वास्थ्य और चिकित्सा से भी। अतः स्पष्ट ही है कि रसायन के क्षेत्र में जो खोजें होती है, उनसे हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता ही है। रसायन शास्त्र की उन्नति इस बात पर निर्भर है कि हम अणुओं और परमाणुओं की रचनाओं को अच्छी तरह समझें, और फिर नित्य नूतन यौगिक बनाते जायं। इन यौगिकों का जो उपयोग हो उसकी परीक्षा करें, और फिर इन खोजों से मानव जाति का हित करें। हजारों वर्ष पहिले भी रसायन के अध्ययन के दो उद्देश्य थे—एक तो तुच्छ चीजों को बहुमूल्य चीजों में परिणत कर देना और दूसरा, रोग और इसके कष्टों से बचना। ये दोनों उद्देश्य आज भी हमारे मार्ग का प्रदर्शन कर रहे हैं।

बीसवीं शती के आरंभ में ही श्रीमती क्यूरी और लार्ड रथरफोर्ड के समान युगप्रवर्त्तक व्यक्तियों ने रेडियम और रेडियम के समान गुण धर्म वाले अनेक तत्वों पर कार्य आरंभ किया। कोई यह नहीं कह सकता था कि पचास वर्षो के भीतर ही रेडियम के समान शक्ति रखने वाले तत्त्वों के अध्ययन से ऐसी विस्मय कारक खोजें होंगी, जैसी हमारे देखते ही देखते गत दस-बारह वर्षों के भीतर हुईं। परमाणु विस्फोट और उससे प्राप्त होने वाली शक्ति की कहानी नयी होने पर भी पुरानी परिचित सी प्रतीत होने लगी है। नये तत्वों के आविष्कार का प्रयत्न तो दो शतियों से किया जाता रहा है, पर मनुष्य की कल्पना से यह परे की बात थी कि ऐसे तत्त्व मनुष्य स्वयं भी बनावेगा, जो प्रकृति में कहीं पर इस लोक में क्या, अन्य लोकों में भी नहीं पाए जाते। यूरेनियम से भारी भी कोई तत्त्व मिल सकेगा, इसकी आशा उन्नीसवीं शती के रसायनज्ञों को न थी। पर बीसवीं शती में हमने ८-१० ऐसे तत्त्व बना डाले जिन पर मनुष्य को गर्व हो सकता है। इनके नाम हैं—नेप्ट्यूनियम, प्लूटूनियम, क्यूरियम केलिफोर्नियम आदि आदि। रसायन शास्त्र के विकास के इतिहास में तीन युग रहे हैं—पहला युग तो वह था जब हमने प्रकृति में पाए जाने वाले पदार्थों को पृथक् करना सीखा दूसरा युग वह आया जब हमने अपनी विधियों से उन पदार्थों को बनाना सीखा जो प्रकृति स्वयं अपनी प्रयोगशाला में बनाती है; और इसके बाद तीसरा युग वह आया जब हमने सहस्रों ऐसे यौगिक बनाए जो प्रकृति के भण्डार में नहीं पाए जाते हैं। आज भी हमारी ये तीनों प्रवृतियाँ ही हमें नित्य नूतन खोजों के प्रति प्रेरणा दे रही हैं।

रसायन शास्त्र के विद्यार्थियों की एक आकांक्षा यह भी रही है, कि प्रकृति की होड़ में वह ऐसे भी पदार्थ बना सके जिन्हें जीवित पदार्थ कहा जाता है। मृत द्रव्य बना लेना तो रसायन का एक सरल काम ही है, पर क्या हम अपनी विधियों से किसी सजीव द्रव्य की भी रचना कर सकते हैं—क्या मृत पिंडों में प्राण का संचारण कर सकते हैं?—यह प्रश्न हमारे सामने आज भी सन्दिग्ध रूप में बना हुआ है। इस शती के आरंभ में ही लोगों ने प्रोटीनों

की रचना का अध्ययन किया, एमिलफिशर और उसके बाद के रसायनज्ञों ने प्रोटीन से मिलते जुलते योगिक तैयार किए, पर इन यौगिकों में जीवन के चिह्न प्रकट नहीं किए जा सके। इस प्रयास में सन् १६३५ का वर्ष भी ऐतिहासिक माना जाता है। इस वर्ष अमरीका में स्टैनले (W.M. Stanley) ने और बौडेन और पिरी (F.I. Bawden of N. W. Pirie) ने यह पहली बार दिखाया कि पौधों से पाए जाने वाले कुछ वाइरस न्यूक्लिओ प्रोटीन वर्ग के हैं, और इनके रवे भी प्राप्त किए जा सकते हैं। यदि पौधों में इन न्यूक्लिओ प्रोटीनों के कुछ अणु प्रविष्ट करा दिए जायं, तो कुछ काल के बाद इन पौधों में इन अणुओं के बहुत से लाखों अन्य अणु बन जावेंगे। यह एक विचित्र बात थी अन्य औषधियों के साथ तो ऐसा कभी पाया नही गया। तो क्या रवेदार वाइरस के ये अणु जीवित अणु हैं, और कालान्तर में वे एक से अनेक सन्ततियाँ उत्पन्न करने में समर्थ है एक अणु अपने ही जैसे अन्य अणुओं को पैदा करने वाला हो, यह आश्चर्य ही तो है। वाइरस के समान ही क्रोमोसोम और जीव हैं, ये भी न्यूक्लिओ प्राटीनों के बने होते हैं, और अपनी जैसी अनेक सन्ततियाँ उत्पन्न करते हैं। रसायनज्ञ इन सबका मर्म जानने के इच्छुक हैं।

पेनिसिलिन और उसके से गुणों वाली अनेक औषधियों का आविष्कार इस युग की एक विशेष देन है। अनेक प्रकार की एन्टिबायोटिक औषधियाँ—आज चिकित्सा के क्षेत्र में काम दे रही हैं। सन् १६४० में लोगों को यह पता लगा कि पेनिसिलिन में ऐसी शक्ति है कि इसकी विद्यमानता में रोग का संक्रमण नहीं होने पाता। आपने सुना या देखा होगा कि मामूली चोट भी लग जाय तो उसके पकने, और उसमें पीव पड़ने की सदा आशंका रहती है। चीड़फाड़ की चिकित्सा में ताजे घावों के खराब हो जाने का डर रहता है। पर यदि पेनिसिलिन के इंजेक्शन ले लिए जायं तो इस प्रकार के पूति दोष से रोगी बचा रह सकता है। पेनिसिलिन के आविष्कर ने सर्जरी या शल्य चिकित्सा को बहुत कुछ निस्पृह बना दिया है। आपने ज़मीन पर काई लगी हुई देखी होगी। बरसात में यह काई बहुत लगती है। तभी और हवा पाकर वनस्पतियों के समान धरती पर फैल जाती है। पेनिसिलिन इसी प्रकार की काइयों में से निकल गया एक द्रव्य है। आपने एक और चीज का नाम सुना होगा स्ट्रेप्टोमाइसिन। यह एक रासायनिक यौगिक है, जो बैकटीरिया और काई के बीच के द्रव्यों में से निकल गया है—$C_{21}H_{39}O_{12}N_7$—इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन और नाइट्रोजन तत्व हैं। स्ट्रेप्टोमाइसिन में पेनिसिलिन के ये ही उपयोगी गुण है इसकी उपस्थिति में शरीर से बैकटीरियों की उत्पत्ति रुक जाती है। रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु इसके होते-होते पनपने नहीं पाते। सन् १६४६ के लगभग लोगों को विश्वास होने लगा कि शायद स्ट्रेप्टोमाइसिन से क्षय और यक्ष्मा रोग के कीटाणुओं के मारने में सहायता मिले। क्षय और यक्ष्मा के समान प्राणघातक तक और कष्टदायक अन्य कोई रोग नहीं है। इस रोग की कोई दवा अब तक पता नहीं चली है। स्ट्रेप्टोमाइसिन से कुछ प्रारम्भिक दवाओं की चिकित्सा में लाभ भी हुआ है। रसायनज्ञ अभी प्रयत्न करते जा रहे हैं। संभव है कि एक दिन हम यक्ष्मा पर भी विजय प्राप्त करलें। आज से ११ वर्ष पहले स्ट्रेप्टोमाइसिन की तीन महीने की खूराक का खर्चा ७--८ सौ रुपया पड़ता था, पर अब तो यह सस्ती आने लगी है। स्ट्रोप्टोमाइसिन के समान ही ओरिमाइसिन है, जिसके सेवन से अनेक घातक रोगों में लाभ हुआ है। इन औषधियों की खोज ने चिकित्सा शास्त्र में एक नये युग को जन्म दिया है। हमने अपने इस विवरण में सल्फा-औषधियों का नाम तो लिया ही नहीं। न हमने उन सब औषधियों का नाम लिया जो मलेरिया बुखार में कुनैन के स्थान पर व्यवहार में आने लगी हैं। टायफॉयड भी ऐसा ज्वर समझा जाता था, जिस पर किसी का वश न था, पर क्लोरोमाइसिटिन ने इस पर भी विजय प्राप्त कर ली है। हाथीपाँव के समान बुखार वाले रोगों में (जैसे फाइलेरिया आदि) आर्सेनिक और एण्टिमनी की कई औषधियाँ उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। हृदय रोग में सर्पगन्धा बनस्पति से प्राप्त द्रव्य ने रोगियों को अचूक लाभ पहुँचाया है। औषधियों का इतिहास नित्य नूतन चरण आगे बढ़ा रहा है। काढ़ों और भस्मों के युग से हम आज कितने आगे

बढ़ गए हैं, इसका परिचय तो प्रतिदिन की चिकित्सा से मिलता ही है।

धातुओं से मानव जाति का पुराना परिचय रहा है। ताँबा, सोना, चाँदी, जस्ता, सीसा और राँगा—ये हमारी पुरानी धातुयें हैं। एक युग था जब सोना सबसे मूल्यवान धातु समझी जाती थी, फिर प्लैटिनम का युग आया। वे दिन गए जब हम धातुओं का मूल्यांकन उनकी चमक-दमक देखकर किया करते थे। वे भी दिन गए जब धातुओं का मूल्य सिक्कों के प्रचलन और आभरण-आभूषण में ही था, रसायनशास्त्र की नयी-खोजों ने धातुओं के नए-नए मूल्यांकनों को जन्म दिया। जब तक न्यूट्रोनों का जन्म नहीं हुआ था, और परमाणु शक्ति से लोगों का परिचय न था, बेरीलियम धातु की किसी को उपयोगिता प्रतीत न होती थी। पर आज तो संसार के समस्त देशों में बेरीलियम का यातायात शासन के प्रतिबन्ध में हो रहा है। यूरेनियम और थोरियम धातुओं का भी यही हाल है। परमाणु शक्ति के उपार्जन में हीरे से भी अधिक महत्व ग्रेफाइट को प्राप्त है। रसायन के नये नये युगों में परिचित पदार्थों का मूल्य भी नया नया ही आँका जावेगा। साधारण पानी का तो कोई मूल्य है ही नहीं, पर इस पानी के चार हजार भाग में एक भाग ऐसे पानी का है, जिसे भारी पानी कहते हैं। परमाणुशक्ति के उपक्रमों में इस भारी पानी का बहुत अधिक महत्व है, और व्यय साध्य-विधियों द्वारा इसे उपलब्ध किए जाने का समस्त सम्पन्न राष्ट्रों में प्रयत्न किया जा रहा है।

वस्त्रों के व्यवसाय ने भी गत पन्द्रह बीस वर्षों में बड़ी उन्नति की। सूती, ऊनी और रेशमी-ये तीन प्रकार के वस्त्र हजारों वर्षों से पहिने जाते रहे हैं। बहुत वर्ष हुए नकली रेशम का प्रचार बढ़ा। यह रेशम-रेशम के कीड़ों द्वारा नहीं बनाया जाता था। यह था तो कपास के समान ही सेल्यूलोज के बने पदार्थों का पर इसमें रेशम के समान चमक थी। पर कपड़ों के इतिहास में एक नया युग संश्लेषित सूत्रों का आया है, जो कृत्रिम रेशम, कपास और ऊन इन सब से भिन्न है। आपने बाजार में नाइलोन के वस्त्र देखे होंगे। नाइलोन के समान अनेक पदार्थ आज वस्त्रों के काम आ रहे हैं—विन्योन, विलोन, टेरिलीन, औलोंन आदि। कैरोथर्स (carothers) कम्पनी के एक कार्यकर्त्ता ने एक पिघले हुए "सुपर पालिमर" में काँच की छड़ डाल कर बाहर निकाली, तो उसने देखा कि छड़ के साथ-साथ एक धागा खिंचता जा रहा है, और शीघ्र ही यह धागा ठोस पड़ गया। आश्चर्य की बात तो यह थी, कि यह धागा ठोस और ठंडा पड़ने पर भी खिंचने पर लगभग चौगुना बढ़ जाता था, मानों रबर हो, पर रबर से भिन्न यह इस बात में था, कि खींचने के बाद फिर छोड़ देने पर यह छोटा नहीं पड़ता था। खींचने पर इस धागे में मजबूती भी आ जाती थी, और चमक भी। बस इस घटना ने नाइलोन के वस्त्रों को जन्म दिया। नाइलोन बनाया जाता है कार्बोलिक ऐसिड से। आपने कार्बोलिक साबुनों का नाम सुना होगा। इसी ऐसिड को हाइड्रोजन से प्रभावित करके साइक्लोहेक्सानोल बनाते हैं, उससे फिर एडिपिक ऐसिड, और फिर आगे वही नाइट्रोजन यौगिक बनकर नाइलोन देता है। तात्पर्य यह है कि कपास के सूत से बने कपड़ों की तुलना में नाइलोन के कपड़े सर्वथा भिन्न हैं। बिल्कुल यही बात विन्योन, औलोंन आदि की है।

पत्थर, मिट्टी और धातु के बर्तनों का युग तो बहुत पुराना है। काँच और चीनी मिट्टी का युग आया, सीमेंट का युग आया, और साथ ही साथ रबर और सेल्यूलाइड का युग आया। हमारे देखते ही देखते इसी प्रकार के कई युग आए। ऐल्यूमिनियम के बर्तनों का युग भी हमने देखा। आज स्टेनलेस स्टील के बर्तन का भी युग आ गया है। रसायन विद्या ने अनेक प्रकार की इस्पातें या स्टीलें दीं। पर यह स्टेनलेस स्टील घरेलू काम की बड़े महत्व की निकली। खाने पीने के बर्तन अगर स्टेनलेस स्टील के बने होंगे, तो इन पर खटाई आदि से दाग धब्बे नहीं पड़ते। हवाई जहाजों के काम की हलकी धातुओं और तरह २ की मिश्र धातुओं का आविष्कार रसायन शास्त्र के विद्यार्थियों ने किया। धातुओं के इतिहास के साथ ही साथ प्लास्टिक युग की भी झाँकी हमने देखी। आज हमारे बाजारों में प्लास्टिक के खिलौने, प्लास्टिक के बर्तन, प्लास्टिक की चप्पलें, और प्लास्टिक के बिछौने सब जगह शोभा पा रहे

हैं, प्लास्टिक के सामान की इतनी भरमार है। कि लोग आज कल के युग को प्लास्टिक का युग कहने लगे हैं। प्लास्टिक के समान ही अब एक और तरह के पदार्थ बाजार में आप को मिलेंगे—ये पौलीथीन के बने होते हैं। पौलीथीन की हलकी बोतलें आप ले सकते हैं, जिनमें तेल भरा जा सकता है। आप इन बोतलों में भरकर यात्रा में पीने का पानी ले जा सकते हैं। प्लास्टिक कड़े होते हैं, पर पौलीथीन की वस्तुयें मुलायम और हलकी होती हैं। आप इन्हें पिचका सकते हैं, और ये पिचकाने पर खराब नहीं होतीं।

हमने अपने इस विवरण में नकली रबरों का अभी तक उल्लेख नहीं किया। मोटर टायरों की आवश्यकतायें इतनी बड़ी हैं, कि प्राकृतिक रबर से काम नही चल सकता। अतः नकली रबर तैयार की गई, और रसायन की खोजों ने रबर के व्यवसाय में गत १५ वर्षों में बहुत उन्नति की है। सच बात तो यह है कि कोई भी ऐसा उद्योग धन्धा नहीं है, जिसमें गत दस बीस वर्षों में कुछ विकास न हो गया हो। यूरोप और अमरीका के प्रत्येक धन्धों में रसायन के विद्यार्थी अनुशीलन का कार्य करते रहते हैं, और उनकी खोजों के फलस्वरूप उद्योगों में बराबर विकास होता रहता है। पेट्रोल और पेट्रोल से प्राप्त पदार्थों का रसायन में भी विकास हो रहा है। कारखानों में से निकली किसी चीज को व्यर्थ नहीं समझना चाहिए। चमड़े के कारखानों के नाबदानों के पानी से और इसी प्रकार चीनी और शराब के कारखानों के नाबदानों के पानी से भी ऐसी गैसें तैयार कर ली जाती हैं जिन्हें जलाकर ईंधन का खर्चा बचाया जा सकता है, और जिनका कूड़ा कचरा धरती को उपजाऊ बनाने में खाद का काम देता है। कारखानों की चिमनियों से निकले हुए धुएँ को भी व्यर्थ नहीं जाने देते। बगीचों के सड़े गले फलों से, और फलों के छिलकों से भी ऐसी चीजें तैयार करली जाती हैं, जो बाजार में अच्छे दामों पर बिक सकें और जिनसे जनता को लाभ हो। रसायन के अध्ययन और अनुशीलन ने इस युग में इस प्रकार व्यर्थ चीजों को भी सार्थकता दी।

क्या आप जानते हैं ?

❁ भारत सरकार की दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में चिकित्सा की देशी प्रणालियाँ (इनमें होमियोपैथी भी शामिल है) के विकास के लिये १ करोड़ रुपये रखे गये हैं।

❁ इस कार्य के लिये राज्यों की आयोजनाओं में ५ करोड़, २१ लाख ८३ हजार रुपयों की व्यवस्था है। इसमें से २ करोड़ २१ लाख ४९ हजार रुपये वर्तमान कालेजों की तरक्की और नये कालेज खोलने के लिये खर्च किये जाएँगे।

❁ दूसरी आयोजना में केन्द्रीय सरकार राज्यों को निम्नलिखित सहायता देगी :—(१) चुनी हुई संस्थाओं को अनुसंधान के लिये रखे रोगियों की देखभाल का आवर्तक खर्च, प्रति पलंग प्रति साल २,००० रु० की दर से; (२) अनुसंधान की विशेष योजनाओं के लिए तथा (३) राज्यों की शिक्षा-संस्थाओं की तरक्की के लिए धन से।

❁ आयुर्वेदिक, यूनानी और होमियोपैथी की सलाहकार समितियों की सिफारिशों पर, सरकार ने विभिन्न राज्यों की देशी चिकित्सा संस्थाओं को, १९५७-५८ में २,९३,५०० रु० के अनुदान दिये हैं। इन संस्थाओं में होमियोपैथी संस्थाएं भी शामिल हैं।

❁ आयोजन आयोग के तत्वावधान में बम्बई में २१ और २२ जून १९५७ को आयुर्वेदज्ञों की बैठक हुई थी। बैठक ने सिफारिश की कि आयुर्वेदिक अनुसंधान के लिये केन्द्रीय परिषद स्थापित की जाय। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों से राय मांगी है।

गतांक से आगे—(७)
विज्ञान, जुलाई
पृष्ठ १०३-१०७

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र एम० एस-सी०, डी० फिल्०, साहित्यरत्न]

यों तो जब से मानवीय सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ तभी से किसी न किसी रूप में पेट पालने के लिये मनुष्यों ने अन्न उत्पन्न किये। जब शिकार से प्राप्त मांसादि से पेट न भरा तो कृषि में विचित्र उन्नति हुई। धीरे-धीरे अधिकाधिक क्षेत्रों में अन्न बोया जाने लगा। किन्तु जंगलों तथा खेतों के बीच ऐसा सन्तुलन रखा गया कि खेतों में काम करने वाले पशु तथा दूध देने वाले पशु केवल खेतों में उत्पन्न भूसे से ही निर्वाह न करें वरन् जंगलों में भी जाकर चरें। अप्रत्यक्ष रूप में इन जंगलों से पानी बरसने तथा भूमि के क्षति न होने में सहायता मिलती; किन्तु जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ी, उसके निर्वाह के लिये अधिक अन्न उपजाने की आवश्यकता तथा प्रवृत्ति ने जंगलों को खेतों में परिवर्तित कर दिया। बाद में बहुत-सी उपजाऊ भूमि अव्यवस्थित हो जाने के कारण ऊसर या बंजर भी हो गई। आज सम्पूर्ण भारत में खेती योग्य बेकार भूमि का क्षेत्रफल ८ करोड़ ७० लाख एकड़ है। केवल उत्तर प्रदेश में ही १॥ करोड़ एकड़ बेकार भूमि है जिसमें से २२ लाख एकड़ भूमि में ऊसर हैं बाकी में भूड़ या घासों से युक्त क्षेत्र या वे क्षेत्र हैं जो नदियों द्वारा काटे जा चुके हैं। इस प्रकार से खेती योग्य क्षेत्रफल का ४०% बेकार पड़ा है जिसके सुधार की आवश्यकता है।

मृत्तिका-विशेषज्ञों ने सम्पूर्ण भारत की मिट्टियों को निम्न वर्गों में बाँटा है :—

१—**लाल मिट्टियाँ**, जिसमें लाल-दोमट तथा पीली-मिट्टियाँ सम्मिलित हैं। इनका विस्तार २००,००० वर्ग मील है।

२—**लेटराइट**, या लौह आक्साइड युक्त मिट्टियाँ जो मुख्यतः दक्षिणी भारत में पाई जाती हैं और जिनका क्षेत्रफल ४९,००० वर्ग मील है।

३—**काली मिट्टियाँ**, जिनमें कपास की मिट्टियाँ तथा मध्य प्रान्त की उथली-भूरी मिट्टियाँ सम्मिलित हैं, २००,००० वर्ग मील में विस्तृत हैं।

४—**दोआबा की मिट्टियाँ**, जिनमें डेल्टा, समुद्र तटीय तथा अन्य अंतःप्रान्तीय मिट्टियाँ हैं ३००,००० वर्ग मील से भी अधिकमें हैं।

५—**पहाड़ी चरागाहों की मिट्टियाँ**, जो ४४,००० वर्ग मील में व्याप्त हैं।

६—**रेगिस्तानी, अर्ध रेगिस्तानी तथा भूड़** जो ८४,००० वर्ग मील में फैली हैं।

७—**लवणीय एवं क्षारीय मिट्टियाँ**, जो कम वर्षा वाले प्रदेशों में वर्तमान हैं और जिनके सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। ये प्रायः ५,००० वर्ग मील में हैं।

८—दलदल, ये समुद्री किनारों, झीलों तथा अन्य क्षेत्रों में ३,००० वर्ग मीलों में फैले हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त विभाजन पर्याप्त वैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् हुआ होगा। खेत योग्य भूमि का उपयोग ही मृत्तिका-विज्ञान या कृषि विज्ञान का लक्ष्य नहीं क्योंकि तुरन्त एक सीमा ऐसी आ सकती है जिसके आगे पृथ्वी का क्षेत्रफल बढ़ाया नहीं जा सकता। अतः उन्नत तरीकों से प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि लानी आवश्यक होगी। इन साधनों में विशिष्ट बीजों के चुनाव, सिंचाई के लिये पानी के सुभीते, यन्त्रों के द्वारा खेती, विशिष्ट खादों के प्रयोग तथा हानिकारक कीटाणुओं के नाश आदि प्रमुख हैं। दूसरे रूप में पशु-पालन को भी महत्व दिया जा सकता है क्योंकि उनके मूत्र तथा गोबर से खादें प्राप्त होंगी जिनके प्रयोग करने से हम अपने खेतों की उर्वरता बढ़ा सकते हैं; किन्तु आजकल इस मशीन-युग में बैलों को मशीनों के द्वारा

स्थानांतरित किया जा रहा है जिससे हमारी कृषि-प्रणाली का सन्तुलन नष्ट हो रहा है। आदर्श कृषि के अन्तर्गत समस्त भूमि सम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त पशु-पालन का ज्ञान भी आवश्यक है क्योंकि पुरातन काल से हम इसी पशु वर्ग पर विभिन्न प्रकार की खादों के लिए निर्भर रहते आये हैं। इसके विपक्ष में यह यहाँ पूछा जा सकता है कि कृत्रिम खादें एवं कम्पोस्टें गोबर की खाद की तुलना कर लेंगी किन्तु यह यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पशुओं से खाद के अतिरिक्त हमें भोज्य पदार्थ भी उपलब्ध होते हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मुगल काल में हमारी कृषि की सर्वांगीण उन्नति घाघ और भड्डुरी जैसे व्यवहारिक कृषि विशेषज्ञों के निरीक्षण में हुई। उसके बाद भारत में धीरे-धीरे अंग्रेजी राज्य सन् १८५७ ई० तक दृढ़ हो गया। सन् १८४० ई० में यूरप में बैरन लीबिग ने कृषि-विज्ञान में आमूल परिवर्तन किये जिनका अनुकरण सारे विश्व में हुआ। भारत को तो अंग्रेजों ने अपना उपनिवेश-सा बना ही लिया था अतः वे यहाँ से बिनौले, खली, गेहूँ, रुई, सरसों तथा हड्डी का निर्यात अपने देशों को करते। इसीलिए उन्हें यह आवश्यकता हुई कि भारत में भी कृषि को वैज्ञानिक रूप देकर अच्छी फसलें उगाकर फिर अधिक मात्रा में ये सामग्रियाँ बाहर भेजी जावें। फलतः यहीं से भारत में भी कृषि में वैज्ञानिक-प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ।

सर्वप्रथम यहाँ सन् १८२० ई० में "एग्रीहार्टीकल्चुरल सोसाइटी आफ इन्डिया" की स्थापना हुई। १८३३ ई० के बाद आसाम के चाय-उद्यानों का प्रबन्ध दूर-दूर के कुलियों द्वारा प्रारम्भ हुआ और सन् १८३६ में पश्चिमी ढंगों से खेती करने के लिए अमेरिका से १२ सिद्धहस्त भारत में बुलाये गये। १८६४ ई० में भाप से चलने वाले इंजन, हल तथा अन्य यन्त्र विदेशों से मद्रास में आये गये। लार्ड कर्जन के काल में भारतीय कृषि ने थोड़ी बहुत उन्नति भी की। सन् १८६६ ई० में पहिली बार "दुर्भिक्ष कमीशन" ने भारत में कृषि-विभाग खोले जाने के सुझाव दिये। सन् १८८० ई० के 'दुर्भिक्ष कमीशन' के प्रयासों तथा लंकाशायर में कपास की माँग बढने के कारण भारत में कपास की खेती की ओर अधिक ध्यान दिया गया तथा सभी प्रान्तों में कृषि विभाग खोले गये जिनका मुख्य उद्देश्य था दुर्भिक्षों का सामना करना। पहले तो कृषि विभाग के मुख्य कार्यों में आँकड़े इकट्ठा करके उनकी तालिका-मात्र बनाना था; किन्तु बाद में सैदापेट, पूना, कानपुर और नागपुर में अनुसन्धान-क्षेत्रों की स्थापनायें हुईं। १८८६ ई० में डा० वोयेल्कर ने सम्पूर्ण भारत का दौरा किया और अपने अनुभवों में यह स्पष्ट लिखा कि भारत में न तो किसानों के बीच संगठन है न यन्त्रों की ही पूर्ति हो रही है। अतः उसने भारत में कृषि के वैज्ञानिक अध्ययन एवं उसकी उन्नति के लिये कृषि के नये ढंगों पर जोर दिया। फलस्वरूप १८६२ ई० में केन्द्रीय सरकार के लिए एक कृषि रसायनज्ञ तथा बम्बई के लिये कृषि-उप शिल्प संचालक की नियुक्तियाँ हुईं। सन् १६०१ ई० में भारतीय सरकार ने कृषि के सामान्य निरीक्षक की नियुक्तियाँ की और साथ ही एक "माइकोलाजिस्ट Mycologist" की भी नियुक्ति हुई। सन् १६०३ में एक "एन्टामालाजिस्ट Entomologist" भी रखा गया। इस प्रकार राजकीय कृषि को दृढ बनाया गया जिससे प्रान्तीय कृषि विभागों का निरीक्षण हो सके और वे ठीक से काम करें। फिर सन् १८६८ ई० में डा० बार्बर को पश्चिमी द्वीप समूहों से भारत में (मद्रास में) गन्नों के रोगों के अध्ययन के लिये बुलाया गया किन्तु कृषि विभाग को सबसे बड़ा प्रोत्साहन १६०३ ई० में मिला जब कि बिहार-स्थित पूसा में सर्वप्रथम एक राजकीय अनुसन्धान शाला तथा एक कालेज स्थापित हुआ। इनकी लागत का अधिकांश (३०,००० पौंड के लगभग) एक अमेरिकन पर्यटक एवं परोपकारी श्री एच० फिप्प (H. Phipp) द्वारा दिया गया और सन् १६०५ से प्रति वर्ष १३३००० पौंड की निधि अनुसन्धान, कृषि की उन्नति, प्रयोगों, प्रदर्शनों तथा शिक्षण पर खर्च किये जाने के लिये सरकार द्वारा दी जाने लगी। सभी प्रान्तों के कृषि

विभागों में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से एक "अखिल भारतीय कृषि सङ्घ" भी बनाया गया। सन् १९०६ ई० से भारत में कृषि सेवायें (एग्रीकल्चर सर्विसेज) प्रारम्भ हुईं जिसके पश्चात् ही सन् १९०८ ई० में पूना में एक कृषि-विद्यालय खुला। फिर तो नागपुर, कानपुर, लायलपुर, कोयम्बटूर तथा मांडले में भी ऐसे ही विद्यालय खुले। इन सब में अंग्रेज ही नौकर रखे जाते अच्छे बीजों के उत्पादन के लिये पूसा में "केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसन्धान-क्षेत्र" की भी स्थापना की गई।

अभी हाल ही में एस० जे० डेविड ससून ने बम्बई सरकार के अधिकार में ५३,३०० पौंड की निधि दी है जिससे कृषि-पाठशालायें खोली जायंगी और कृषि की उन्नति के लिये प्रयास किये जायेंगे। सन् १९१२ ई० में ही सामान्य-निरीक्षक का पद हटा दिया गया और सन् १९२९ ई० तक राजकीय अनुसन्धान विद्यालय पूसा का संचालक ही भारतीय सरकार का कृषि-सलाहकार होता रहा। सन् १९१९ में ही कृषि को भारतीय सचिव के आधीन कर दिया गया जिसके बाद उसमें अनेक सुधार हुए। सन् १९२६ ई० में "राजकीय कृषि कमीशन" की नियुक्ति हुई जिसने १९२८ ई० में ऐसे अनेक सुझाव प्रस्तुत किये जिनके द्वारा भारतीय कृषि विभाग के पुनर्संगठन पर विस्तृत विवेचना की गई और "राजकीय अनुसन्धान कृषि-परिषद" खोले जाने का सुझाव दिया। १५ अगस्त १९४७ के बाद इनका नाम "भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद" रख दिया गया। उपरोक्त कमीशन के सुझावों के ही अनुसार दिल्ली में स्थित कृषि अनुसंधान-विद्यालय तथा मुक्तेश्वर में स्थित "पशु सम्बन्धी अनुसन्धान विद्यालय" के पृथक पृथक संचालक नियुक्त हुये। सन् १९३४ ई० में भारतीय सरकार के लिए एक कृषि मार्केटिंग-निरीक्षक नियुक्त हुआ जो राजकीय कृषि अनुसंधानपरिषद का भी प्रधान होता था। सन् १९३६-३७ ई० में इस परिषद की कार्य प्रगति का निरीक्षण करने के लिये बाहर के दो बड़े वैज्ञानिक—सर जान रसल तथा एन० सी० राइट बुलाये गये। उन्होंने निरीक्षण के पश्चात् अनेक सुझाव दिये। फिर तो समय-समय पर बाहर के विशेषज्ञ बुलाये गये। वो उचित परामर्श देते थे।

अब राजकीय कृषि विभाग के मुख्य कार्य सम्पूर्ण भारत की कृषि समस्या का निरीक्षण करना एवं दिल्ली स्थित कृषि अनुसन्धान विद्यालय, मुक्तेश्वर के पशु-चिकित्सा विद्यालय, बंगलोर के पशु-पालन एवं दुग्ध विभाग, कर्नाल के पशु संवर्धन राजकीय क्षेत्र, आनन्द-मलाई के राजकीय केन्द्र कोयमबटूर के गन्ने के राजकीय केन्द्र, पूसा स्थित (बिहार में) चीनी की संस्था तथा वर्तमान चीनी संस्था एवं विद्यालय कानपुर के प्रबन्धों को देखना हैं। प्रायः कृषि विभाग के कार्य ३ प्रकार के होते हैं :—

(१) उन्नत बीजों को उत्पन्न करना, कीटाणुओं के विनाश करने वाली औषधियों का आविष्कार एवं उनका प्रयोग तथा अन्य नवीन उपाय ढूँढना।

(२) किसानों को कृषि करने के नये ढंगों का प्रदर्शन एवं पुराने ढंगों के सुधारने के कुछ उपाय बताना।

(३) खादों के उचित निर्माण एवं उनके प्रयोगों की विधियों पर अनुसन्धान की।

यद्यपि कृषि का चतुर्दिक उत्थान के लिये सन् १९१२ ही में माइकोलाजिस्ट, एन्टा-मालजिस्ट, बोटानिस्ट तथा कपास-विशेषज्ञों का एक संगठन स्थापित किया गया किन्तु खेद की बात है कि आज तक भारतीय कृषि की समुचित उन्नति नहीं हो सकी। आज भी प्रयोगशालाओं एवं कृषकों के क्षेत्रों के बीच इतनी दूरी है कि वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त परिणामों को सफलतापूर्वक क्षेत्रों में प्रतिफलित नहीं किया जा सकता। आजकल पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसी खाई को पाटने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। जो अनुसन्धान अब किये जा रहे हैं वे केवल हानिकारक रोग-कीटाणुओं या उन्नत बीजों के पैदा करने तक ही सीमित नहीं वरन् मृत्तिका प्रशिक्षण, उर्वरकों के प्रयोग एवं उनके निर्माण पर भी विशेष ध्यान रखते हैं। सभी प्रान्तों में सहकारी समितियों की स्थापनायें हो जाने के कारण उन्नत बीज नये यंत्र तथा खादें किसानों को सुगमता से मिल सकती

हैं। कांग्रेस मंत्रिमंडल की स्थापना के बाद केवल उत्तर प्रदेश में ही ३७६ और बीज गोदाम तथा लाखों प्रदर्शन क्षेत्र-खंड स्थापित हुए हैं। बड़े-बड़े कृषि-मेलों का भी प्रबन्ध किया जाता है। पूना में लगे मेले का निरीक्षण राजकीय कमीशन के तमाम सदस्यों द्वारा किया गया था। यह एशिया में होने वाला सबसे बड़ा मेला था।

विशद रूप से भारतीय कृषि के वैज्ञानिक विकास जानने के लिये हमें विषय की अधिक गहराई तक जाना पड़ेगा। हमें ज्ञात है कि सन् १८८८ ई० में सर्वप्रथम कलकत्ता में भारतीय विचित्रालय ने खेती के कीड़ों की ओर ध्यान दिया गया और तभी से भारतीय कीट विज्ञान का सूत्रपात भी हुआ। सर्वप्रथम १९०१ ई० में कलकत्ते में कीट वैज्ञानिक की नियुक्त भी हुई किन्तु सन् १९०५ ई० में बिहार स्थित पूसा क्षेत्र में ही अनुसन्धानशाला खुल जाने के कारण वह कीट वैज्ञानिक यहीं चला आया। यहीं के सर्वप्रथम कीट वैज्ञानिक श्री मैक्सवेल लेफराय ने दो ग्रन्थ—"भारतीय हानिकर कीट तथा भारतीय कीट जीवन" लिखे जिनके द्वारा भारत में पाये जाने वाले कृषि को क्षति पहुँचाने वाले कीटाणुओं का वर्णन है। सन् १९१० में एक दूसरे वैज्ञानिक टी० वानब्रिग ल्फेचर ने दक्खिनी भारत के कीटाणुओं पर एक पुस्तिका लिखी। पिछले ५० वर्षों में नाना प्रकार के कीट इकट्ठे किये गये जिसमें १५ हजार से अधिक जातियों के ११०००० नाम धारी कीट हैं और बहुत से ऐसे भी कीट हैं जिनके नामों का पता भी नहीं है। "भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद" की ओर से अनुदान मिलने के कारण कीटों का विस्तृत अध्ययन सम्भव हो सका है। ईख में लगने वाले कीट "चीलो" की अब कई उपजातियाँ ढूँढ निकाली गई हैं। परजीवी कीटों का भी जीवन शोधा जा रहा है। ईख, कपास, मक्का, ज्वार और तरकारियों में लगने वाले कीटों के भक्षकों (शिकारी कीटों) का भी अध्ययन हो रहा है। ईख में लगने वाले हानिकर कीटों को इन भक्षकों के द्वारा नष्ट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। काश्मीर में सेव तथा बेरों में लगने वाले कीटों को नष्ट करने वाले शिकारी कीटों का अध्ययन किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में अमरूद में लगने वाले "विल्ट" रोग की रोकथाम के लिये कानपुर में प्रयोग हो रहे हैं जिनसे यह परिणाम निकाला गया है कि रोगग्रस्त पौदों को नष्ट कर दिया जाय, औषधियों का प्रयोग किया जाय तथा रोग मुक्त कलमें लगाई जायँ। अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष भारत में इन कीटों द्वारा २०० करोड़ रुपये की क्षति होती है।

कीट विनाशक औषधियों पर भी सन् १९४८ ई० से गवेषणा कार्य प्रारम्भ हो चुका है और अब तक हाइड्रोसायनिक एसिड तथा डी० डी० टी० के गुणों के बारे में खोजे हो चुकी हैं। टिड्डियों के विनाश के लिये वैज्ञानिक साधनों की खोज भी हो रही है। गोदामों में रखे हुए अनाजों में लगने वाले कीटों का तथा मधुमक्खी पालन का भी कार्य प्रारम्भ हो चुका है।

भारतवर्ष एक ऐसा प्रदेश है जहाँ मानसून से वर्षा होती है किन्तु अनिश्चित वर्षा होने के कारण दुर्भिक्ष पड़ने की सदैव आशंका रहती है। अतः बादलों से पानी के लिये निर्भर रहने वाले किसानों के लिये पानी सुलभ बनाने के प्रयत्न बहुत पहले से होते आये हैं जिससे अनाज का उत्पादन एकदम रुक न जाय वरन् सूखा पड़ने वाले सालों में भी खेतों में कुछ पैदा हो सके। मुगल काल में ही यमुना-नहर निर्मित हुई थी जिससे आगरा—गुरदास पुर आदि के जिलों को पर्याप्त पानी मिलता था। सन् १७४८ ई० में यमुना-नहर में कुछ और सुधार हुये। सन् १८३६ ई० में कोटलावाला ने नहर गंग खोलने की एक योजना बनाई जिसका कार्य सन् १८४२ ई० में प्रारम्भ होकर १८५४ ई० में समाप्त हुआ। इसी बीच १८३७-३८ ई० में द्वाबे में महान अकाल पड़ा। अन्न के लिये त्राहि-त्राहि मच गई। उस समय अकाल-पीड़ितों को इस नहर गंग की खुदाई में काम करने को मिलता जिससे पैसा पैदा करके वे अपना गुजर करते थे। इस नहर के खुद जाने से सिंचित क्षेत्रफल में आशातीत वृद्धि हुई है सिंचाई के कारण पंजाब में पहले से ही कुछ भूमियाँ बेकार हो रही थीं। इसी प्रकार गंगा-यमुना के द्वाबे में भी उपजाऊ भूमि क्रम से बिगड़ने लगी। किसानों ने कई फसलों के उगाने के लिए खेतों को कई बार सींचा जिससे

खेतों में अधिक काल तक पानी रुका रहा और अन्त में जल का धरातल ऊपर उठ आया जिससे भूमि ऊसर हो गई। बहुत से खेतों में पानी के साथ बालू आ जाने के कारण भूड़ उत्पन्न हो गई। इस प्रकार एक ओर जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध होने से वर्षा के न होने पर भी अन्न उगाने की आशा बंधी। वहीं ऊसरों भूडों की उत्पत्ति की एक नई बला सिर आ पड़ी। सबसे पहिले अलीगढ़ के पास इस प्रकार से भूमि में नमक फूटते देखा गया। अतः इसकी जाँच पड़ताल करने के लिए सन् १८७६ ई० में एक समिति नियुक्त हुई जिसका नाम **"रहे कमीशन"** रखा गया। इस कमीशन ने जाँच के पश्चात् सूचना प्रस्तुत की जिसमें ऐसे क्षेत्रों के अनुपजाऊ होने के कारणों पर प्रकाश डाला गया किन्तु उस समय कोई वैज्ञानिक अध्ययन न हो पाया। दिन प्रति दिन यह नमक फूटने की समस्या बढ़ती गई अतः तत्कालीन भारतीय अंग्रेजी सरकार ने इंगलैंड के सुप्रसिद्ध भूमि रसायनज्ञ जे० ए० **वोयेल्कर** (J. A. Voeleker) को भारत में भ्रमण करने के लिये आमन्त्रित किया। वे भारत में १८८९ ई० में आए और दक्षिण भारत, बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब का दौरा करके सन् १८९१ ई० में वापस चले गये। इंगलैंड जाकर उन्होंने अपनी सूचना पुस्तकाकार रूप में सन् १८९१ ई० में ही "भारतीय कृषि के सुधार" (Improvements in Indian Agriculture) प्रकाशित कराई जो तत्कालीन भारतीय कृषि का एक वैज्ञानिक ढाँचा प्रस्तुत करती है। उन्होंने प्रयाग तथा कानपुर में रुक कर एकत्रित भारतीय मिट्टियों का रासायनिक विश्लेषण भी किया।

[क्रमशः]

———

हमारे खाद्य सम्बन्धी आंकड़े

यह सच है कि आँकड़ों से भूख नहीं मिटती, लेकिन भूख मिटाने में ये सहायक अवश्य हैं। आप पूछेंगे, यह कैसे? सुनिये! यह तो आप मानेंगे ही कि भूख के साथ ही यह सवाल उठता है कि हमारे पास अन्न भूख से कम है या अधिक। दूसरे, बाढ़, अकाल या सूखा पड़ने पर भी यह पता होना चाहिये कि कितने अनाज की कमी पड़ी, तभी वहाँ के पीड़ितों को सहायता की जा सकती है। यह जानकारी न हो तो या तो पीड़ित क्षेत्र के लोग भूखों मर जाएँगे और या वहाँ अंधाधुन्ध अनाज भेजने से कहीं और अकाल पड़ जायगा। सङ्कटों को भी छोड़िये, सामान्य स्थिति में किसान को अपनी उपज का मुनासिब दाम मिले और उपभोक्ता को भी मुनासिब भाव पर चीज मिले, इसके लिये बाजार में माल का बराबर पहुँचते रहना जरूरी है। माल की इस आमद के लिये भी सही आंकड़े जरूरी हैं।

भारत में १६ वीं शताब्दी से अन्न के आंकड़े रखने की व्यवस्था चली आ रही है। राजा टोडरमल ने जब लगान वसूल करने के लिये पटवारी नियुक्त किये, तो उन्हें काश्त के क्षेत्र और उपज का अन्दाज बताने का भी काम सौंपा गया था।

आजकल दो-चार जगह से फसल कटवा कर उसके अनाज से क्षेत्र भर की उपज का अनुमान लगाया जाता है। इस व्यवस्था को खाद्य तथा कृषि सङ्गठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ने भी स्वीकार कर लिया है। इतना ही नहीं, कई और देशों ने भी फसल का अनुमान लगाने की इस विधि को अपना लिया है।

औद्योगिक उत्पादन या बैंक के उधार आदि के आंकड़ों की तरह खेती-बाड़ी के आंकड़े कभी बिल्कुल सही नहीं हो सकते। फिर भी, जैसा कि खाद्यान्न जाँच समिति ने, जिसके अध्यक्ष श्री अशोक मेहता थे, कहा है कि देश में अनाज आदि के आंकड़े इकट्ठे करने की व्यवस्था अब दस वर्ष पहले की अपेक्षा कहीं अच्छी है।

पिछले साल जो मँहगाई हुई, उसके कारण लोगों के मन में यह सन्देह हुआ कि क्या १९५६-५७ के जो सरकारी आंकड़े हैं, पैदावार उतनी हुई भी या नहीं। समिति ने इस बारे में खुद भी जाँच-पड़ताल की और कई अन्य संस्थाओं से भी जाँच करायी और वह इसी नतीजे पर पहुँची कि १९५६-५७ में १९५५-५६ से उपज अवश्य बढ़ी।

दो-चार खेतों से फसल काटकर और उपज को तोल कर देखने से बढ़कर, क्षेत्र भर की उपज का अनुमान लगाने का और कोई तरीका नहीं हो सकता। क्योंकि राज्य भर के उपज के आंकड़े इसी विधि से फैलाए जाते हैं और इसमें २ प्रतिशत तक की गलती की गुंजाइश रहती है, इसलिये देश भर की उपज के आंकड़ों में भी यह गलती उपेक्षणीय कही जा सकती है।

स्वतन्त्रता के पहले, पैदावार के आंकड़े तीन तरह के अनुमान पर आधारित होते थे—फसल का क्षेत्र, सामान्य उपज और फसल की दशा। तीसरी बात यानी फसल की दशा केवल आँख से देखकर अनुमान लगाने की चीज थी कि "फसल रुपये में दस आने है" या "रुपये में बारह आने"। फसल के क्षेत्र का हिसाब पटवारी के कागजों से लगाया जाता था या अधिकारियों के अनुमान से। बहुत से क्षेत्रों से इस तरह की सूचनाएँ ही नहीं मिलती थीं और इनके बारे में भी अनुमान से ही काम लिया जाता था। इस प्रकार बहुत दिनों तक यही व्यवस्था चलती रही। १९४९-५० से धीरे-धीरे देश भर में नमूने के तौर पर फसल काटकर और अनाज तोलकर क्षेत्र भर की फसल का अनुमान लगाने की व्यवस्था की गयी।

हो सकता था कि यदि फसल के आंकड़े इकट्ठा करने का काम एक ही संगठन को सौंपा जाता, तो इसमें कुछ दोष रह जाते। इसलिए इस काम में अब बहुत से संगठन शामिल हैं।

विज्ञान जुलाई १९५८
पृष्ठ १०९-११३

खाद्य-समस्या पर विचार विमर्ष

[डा० सत्यप्रिय मित्र, एम० एस-सी०, डी० फिल०, प्राध्यापक रसायन विभाग]
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
अनुवादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे युग में खाद्य समस्या ने सभों के मस्तिष्कों को व्यग्र कर रखा है। विश्व भर की जनसंख्या का केवल एक तिहाई भाग अच्छी किस्म का भोजन प्राप्त करता है। उसके द्वारा सम्पूर्ण भोज्य-सामग्री का ½ भाग खर्च किया जाता है। शेष आधा मानव समाज भूखा रहता है और आज भी प्राचीन काल की भाँति अकाल एवं भुखमरी उसे बुरी तरह संतप्त किये है। रोग, सामाजिक आर्थिक संघर्ष तथा राजनीतिक उथल-पुथल-ये सभी खाद्य सामग्री के अभाव के सूचक हैं।

भुखमरी सभी प्रकार की सामाजिक विपदाओं की स्रोतस्विनी रही है, किन्तु हमारी संस्कृति ने सदैव इसके प्रति अपनी आँखें मूंद रखी हैं और उसका मुकाबला करने में वह भयभीत रही है। आधुनिक पारमाणविक सभ्यता ने तो वैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि युद्ध आवश्यक है और जीवन के प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है। एक ओर जहाँ युद्ध की अनिवार्यता पर पश्चिम ने बल दिया, वहीं भुखमरी को क्षुद्र-ऐंद्रियता की संज्ञा प्रदान कर उसकी स्थिति तक को अस्वीकार किया।

सन् १८९८ ई० में सर विलियम क्रुक्स ने ब्रिटिश एसोशियेशन के समक्ष दिये गये भाषण के द्वारा सम्पूर्ण संसार को यह बताते हुये दहला दिया कि कृषि-विकास की प्रक्रिया प्रायः समाप्त हो चुकी है और यदि उत्पादन न बढ़ाया गया तो सन् १९३० ई० तक संसार में भुखमरी फैल जायगी। उन्होंने वायुमण्डल से संश्लिष्ट नाइट्रोजनीय उर्वरकों के निर्माण की आवश्यकता की ओर सभों का ध्यान आकर्षित किया। इस भाषण का तात्कालिक प्रभाव हुआ और कृषि के अन्वेषकों को नये सिरे से प्रयास करने के लिये प्रोत्साहन मिला।

पिछले दशक में विश्व की जनसंख्या में २ अरब की वृद्धि हुई है। भोजन के लिये प्रतिवर्ष २० करोड़ अधिक मुंह बढ़ते जाते हैं या यों कहें कि प्रतिदिन ५५ हजार के हिसाब से जनसंख्या बढ़ती है। इस प्रकार विश्व की खाद्य-स्थिति से उसकी जनसंख्या दो कदम आगे रहती है। जनसंख्या का विभाजन अत्यन्त असमान है। चीन भारत तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया में आधे से अधिक लोग रहते हैं और देश-देश में जनसंख्या-वृद्धि की गति भी पृथक-पृथक है। जहां औषधियों का ज्ञान है वहां मृत्यु-संख्या में विशेषकर के बाल-मृत्यु-संख्या में अत्यन्त ह्रास होने के कारण जनसंख्या की वृद्धि सर्वाधिक है। वहां परिवार नियोजन जैसी सामाजिक प्रथाओं का भी सर्वथा अभाव है। पाश्चात्य देशों की अपेक्षा पूर्व के श्यामवर्णी मनुष्य वाले देशों की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। यही नहीं, पूर्वीय तथा पाश्चात्य देशों के निम्न वित्त के लोग ही सबसे अधिक वृद्धि करते हैं।

संसार के कतिपय भागों की प्रति एकड़ पैदावार अथवा बेकार पड़े हुये संसार के वृहत खंडों को प्रयोग में लाने की असमर्थताओं को देखते हुये भी कोई भी वैज्ञानिक यह न चाहेगा कि कोई भी आदमी भूखों मरे। किन्तु विश्व की खाद्य समस्या का आदर्श रूप व्यावहारिक दृष्टि कोण से इतना विकृत हो चुका है कि अनेक देश भुखमरी से पीड़ित हैं। केवल इस कल्पना से कि सम्पूर्ण विश्व के उत्पादन को सम्पूर्ण जनसंख्या में वितरित कर दिया जाय, एक ऐसे विश्व की योजना बन जाती है जिसमें खाद्यों के प्रवाह (आयात-निर्यात) में किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रह जाता। किन्तु न तो कभी

यह समस्या रही है और न ऐसी सम्भावना ही की जा सकती है।

सबसे बड़ी अड़चन यह है कि जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ कृषि-योग्य भूमि में समान रूप से सर्वदा वृद्धि की पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती। संसार का कुल क्षेत्रफल ३५·७ अरब एकड़ है किन्तु उसमें से केवल ११ अरब एकड़ ही जलवायु के अनुसार, फसलों के उगाने योग्य हैं। किन्तु इसमें से भी अधिकांश भाग खेती-योग्य न होने के कारण केवल ३ या ४ अरब एकड़ ही खेती के अनुकूल है इस क्षेत्रफल का ८०% भोज्य पदार्थों के उत्पन्न करने और शेष औद्योगिक फसलों के लिये प्रयुक्त होता है। इस प्रकार जलवायु के अनुसार यद्यपि प्रति व्यक्ति के लिये ५ एकड़ कृषि-योग्य भूमि है किन्तु उसमें से केवल १½ एकड़ भूमि पर ही खेती हो पाती है। शेष ३½ एकड़ भूमि का कृष्यकरण अत्यन्त कठिन है अतः हमें प्रति एकड़ भूमि की पैदावार बढ़ा कर ही विश्व की भुखमरी समस्या का हल ढूंढना पड़ेगा।

सारणी १—

	देश	क्षेत्रफल १० लाख वर्गमील की इकाइयों में	प्रतिवर्गमील जनसंख्या-घनत्व	प्रति व्यक्ति के लिये कृष्यभूमि, (एकड़ों में)
१	योरप और योरोपीय रूस	२·८	१८६	२·१
२	पूर्वीय उत्तरी अमेरिका	१·६	५२	५·६
३	सुदूर पूर्व	१·७	२६२	०·६
४	भारत	१·०	४००	०·६

एशिया भर में भारत की खाद्य समस्या अपनी कोटि की अकेली है। सन् १६५१ में भारत की जनसंख्या ३६. करोड़ थी। यह सन् १६४१ की जनसंख्या से १२½% अधिक थी। भारत का क्षेत्रफल ७२·६ करोड़ एकड़ है जिसमें से ५२८३ करोड़ एकड़ का वर्गीकरण भिन्न रूप से किया गया है:—

सारणी २

भारत संघ

(क्षेत्रफल दसलाख एकड़ों में)

१.	वर्गीकृत क्षेत्रफल	५३६
२.	कृष्य ,,	३७०
३.	बोया गया ,,	२३६
४.	सिञ्चित ,,	४६
५.	कृष्य किन्तु अनबोया ,,	१३४

प्रति मनुष्य पीछे ३·६ एकड़ बोयी गई भूमि आती है। सन् १६११ में यह क्षेत्रफल ०·६ एकड़ था। तब से खेती योग्य क्षेत्रफल में वृद्धि ही हुई है किन्तु जनसंख्या की वृद्धि के साथ वह होड़ नहीं लगा सका। साथ ही प्रतिवर्ष भूमिक्षरण, पानी रुक जाने तथा अन्य कारणों से बड़े-बड़े खण्ड बेकार होते रहते हैं कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं है कि प्रति एकड़ पैदावार में वृद्धि ही हुई है।

उष्ण प्रदेशों की भाँति भारतीय मिट्टियां भी कार्बनिक

पदार्थ एवं नाइट्रोजन-न्यून हैं। इंगलैंड की मिट्टियों में सम्पूर्ण नाइट्रोजन का प्रतिशतत्व ०·१२—०·१६ हैं जब कि यहाँ की मिट्टियों में ०.०५%नाइट्रोजन वर्तमान है। इस न्यूनता का कारण दीमक तथा अन्य जीवाणुओं द्वारा अधिक ताप पर कार्बनिक पदार्थ का क्षय तथा भूमि पर किसानों द्वारा क्लावर, लूसर्न या घासों के उगाने में अक्षमता का प्रदर्शन है क्योंकि ऐसी हरी फसलों के द्वारा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार से नाइट्रोजन तथा अन्य पौदों के पोषक तत्वों की कमी के कारण भूमियों की अनुर्वरता में, कृत्रिम उर्वरक छोड़े जाने वाले भागों को छोड़कर वृद्धि ही होती रहती है। भारतीय कृषि के समक्ष जल की समस्या बड़ी भयानक है। कृषि योग्य क्षेत्रफल का ४/५ भाग मानसूनी वर्षा पर निर्भर है अतः जब कभी मानसून नहीं आता तो अकाल पड़ जाता है। कुल मिलाकर ४९३ लाख एकड़ भूमि नहरों, तालाबों तथा कुओं द्वारा सींची जाती है। आज तक नदियों के बरसाती पानी को रोक कर उसका उचित उपयोग सम्भव नहीं हो सका किन्तु अब आशा की जाने लगी है कि नदी-घाटी योजनाओं की पूर्ति के साथ सभी ऋतुओं में प्रचुर जल सिंचाई के लिये मिलने लगेगा।

यदि पैदावार के आंकड़ों पर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होगा कि पिछले सात वर्षों में किसी प्रकार की भी वृद्धि नहीं हुई। उदाहरणार्थ सन् १९३७ में धान की पैदावार २८८ लाख टन थी और सन् १९५१ में वही २८५ लाख टन पर ही स्थिर रही। प्रति एकड़ अन्न की औसत उपज ५४० पौंड (६¾ मन) है जिससे ९ लाख कैलोरी शक्ति प्राप्त हो सकती है। प्रति व्यक्ति पीछे साल भर में पैदा होने वाले अन्नों तथा प्रोटीन की मात्रायें भी नीचे दी जा रही हैं:—

सारणी ३

सन्	१० लाख एकड़ों में	दस लाख टनों में
१९४३—४४	१९२	५१.७
१९४४—४५	२०२	५१.१
१९४७—४८	१९१	४८·२
१९४८—४९	२०२	४७·८
१९४९—५०	२१३	४९·१
औसत	२००	४८·५

सारणी ४

प्रति व्यक्ति पीछे प्रति वर्ष अन्न-उत्पादन (पौंडों में)

	१६३८-३६	१६४६-५०
१. मोटे अनाज	३१५	२६२
२. मांडदार मूलें	१८	१५
३. दालें	४८	४४
४. चीनी	३१	२६
५. वसा	६.६	६.६
६. फल	५७	३५
७. तरकारियाँ	५५	३५
८. मांस	६.६	४.४
६. दुग्ध	१४३	६६

सारणी ५

प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति पीछे प्राप्य प्रोटीन की मात्रा (पौंडों में)

सन्	पशु-प्रोटीन	बनस्पति-प्रोटीन	योग
१६३८--३६	८	४८	=५६
१६४६–५०	६	३८	=४४

इस प्रकार से पिछले १०-१५ वर्षों में उत्पन्न किये जाने वाले खाद्य पदार्थों में न के बराबर वृद्धि हुई है जब कि जनसंख्या बराबर बढ़ती रही है। फलतः द्वितीय युद्ध के पूर्व जहाँ प्रति व्यक्ति को प्रतिदिन १५ औंस मोटा अनाज मिलता था वह सन् १६४६-५० में ११ औंस तक उतर आया और प्रतिदिन उपलब्ध कैलोरियों में १६७० से १७०० हो गई। प्रतिदिन प्रत्येक स्वस्थ पुरुष के लिये कम से कम २७०० कैलोरियों की आवश्यकता होती है और ७० ग्राम प्रोटीन की जिसमें से आधा प्रोटीन पशु-स्रोतों से मिलना चाहिये। । इन बातों को ध्यान में रखते हुये यदि यह कहा जाय कि भारतवर्ष के लोग आधे-पेट रहते हैं, तो अतिशयोक्ति नहीं। यदि विश्व के विभिन्न

भागों से भारत की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि भारत के लोग सबसे खराब भोजन करते हैं। यदि जनवृद्धि पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न किया गया तो भारत की भोज्य-समस्या कभी भी हल न हो पावेगी। खाद्यों का प्रतिमान जैसा है उसे ही स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि या तो अगले दस वर्षों में ३ करोड़ २० लाख एकड़ भूमि में और खेती की जाय अन्यथा प्रति एकड़ उपज में १५%की वृद्धि की जाय, (जो १ करोड़ २० लाख एकड़ नवीन भूमि पर सिंचाई करने से भी सम्भव है) यद्यपि ये सम्भावनायें साध्य हैं किन्तु दुष्कर भी। अतः नितान्त आवश्यक है कि भूमि की उर्वरता में उन्नति की जाय।

पौदों के तीन पोषक तत्वों—नाइट्रोजन, पोटेशियम एवं फासफोरस—में नाइट्रोजन सबसे महत्वपूर्ण है। सन् १९०० के पश्चात् वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने की प्रक्रियाओं में इतनी वृद्धि हुई कि सन् १९५२ ई० में विभिन्न राष्ट्रों ने मिलाकर ५५लाख टन नाइट्रोजन स्थिर की। किन्तु प्राविधिक उन्नतियों के बावजूद कृत्रिम नाइट्रोजन स्थिरीकरण की कार्य निष्पत्ति (दक्षता) किसी भी प्रकार ७·८% से अधिक न होने के कारण नाइट्रोजनीय उर्वरकों के मूल्य अत्यन्त उच्च रहे हैं, जो भारतीय कृषकों की सामर्थ्य के बाहर हैं।

अनाजों की एक फसल उगाने के लिए कम से कम २५-५० पौंड नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, किन्तु अत्यन्त उन्नत राष्ट्रों में भी प्रति एकड़ डाली जाने वाली नाइट्रोजन की मात्रा बहुत कम है। यथा हालैंड (२४·८), बेल्जियम (२८·५), जर्मनी (१५·६ , डेनमार्क (१०·२), नार्वे (६·०), स्वीडन (५·२), फ्रान्स (४·०), इटली (४·३), ग्रेटब्रिटेन (२·५), संयुक्तराष्ट्र अमेरिका (१ ४), पोलैंड (०·७) और हंग्री (०·२)।

भारत के २३ करोड़ ६० लाख एकड़ों में कम से कम २० पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ के हिसाब से डालने पर २० लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ेगी। सिंधरी में १ करोड़ ७० लाख पौंड की लागत से अमोनियम सल्फेट निर्माण करने के लिये एक उर्वरक फैक्ट्री का निर्माण किया गया है जिसमें सन् १९५२ई०से उर्वरक बनने लगे हैं और प्रति वर्ष ३५०००० टन अमोनियम सल्फेट निर्मित होता है जिसमें ७५००० टन नाइट्रोजन रहती है जिससे ७५०००० टन अधिक खाद्यान्नों के उत्पन्न किये जाने की सम्भावना है। इस प्रकार से आवश्यकता का अल्पांश ही इस स्रोत से पूरा होगा, शेष की पूर्ति आयात के द्वारा ही करनी होगी। यही कारण है कि विश्व भर के उत्पादन का केवल ३% ही कृत्रिम नाइट्रोजनीय उर्वरकों द्वारा सम्भव है। अब देखना है कि शेष ९७%उत्पादन किन स्रोतों से सम्भव होता रहा है।

[क्रमशः]

क्या आप जानते हैं ?

रेशम उद्योग की उन्नति

❁भारत में कच्चे रेशम का उत्पादन बराबर बढ़ता जा रहा है। १९५३ में कीड़ों का और दूसरी तरह का २४, ६१, ७५६ पौंड रेशम तैयार हुआ। १९५६ में कच्चे रेशम का उत्पादन ३४, १३, २४५ पौंड तक पहुँच गया।

❁देश में रेशम के कीड़े पालने के धन्धे को बढ़ावा देने के लिये १९४९ में एक विशेष संगठन, केन्द्रीय रेशम मंडल, खड़ा किया गया।

❁केन्द्रीय रेशम मंडल का प्रयत्न है कि दूसरी पंच-वर्षीय आयोजना के अन्त तक देश का रेशम उद्योग आत्म-निर्भर हो जाय। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिये दूसरी आयजोना में ५ करोड़ रु० रखा गया है और केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों ने इस उद्योग को बढ़ाने के लिये बहुत सी योजनाएँ बनाई हैं।

❁मंडल ने १९५७-५८ में रेशम के कीड़े पालने के तरीकों में सुधार, शहतूत की खेती में वृद्धि और कच्चे रेशम की बिक्री की कई योजनाएँ बनाईं। रेशम के कीड़े पालने की शिक्षा देने के लिये एक अखिल भारतीय केन्द्र खोलने की भी योजना बनायी गयी है।

❁केन्द्रीय रेशम मंडल की सिफारिश पर १९५७-५८ में राज्य सरकारों को इन योजनाओं को पूरा करने के लिये ३९,७६,५७५ रु० कर्ज और २०,८७,०५० रु० अनुदान स्वीकार किया गया।

हमारे खाद्य सम्बन्धी आंकड़े का शेष (पृष्ठ १०८ से आगे)

राज्यों के अंकशास्त्री, राजस्व अधिकारी और कृषि अधिकारी क्षेत्र कर्मचारियों के आंकड़ों की फिर एक बार छानबीन करते हैं। इस काम पर आँख रखने और इसको और सुचारु रूप से करने के लिये केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्रालय की ओर से भी राज्यों की सहायता की जाती है और राज्यों के आंकड़ों को इकट्ठा करने के लिए मंत्रि-मण्डल सचिवालय के अधीन एक राष्ट्रीय नमूना पड़ताल कार्यालय (नेशनल सैम्पल सर्वे) काम कर रहा है। अ० भा० आंकड़े केवल सब राज्यों के आंकड़ों के जोड़ होते हैं। इनमें जिलों या राज्यों के आंकड़ों में हेर-फेर किये बिना और इसके लिये सब सम्बद्ध संगठनों की अनुमति के बिना कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। जब से नये ढंग से आँकड़े इकट्ठे होने शुरू हुये हैं, तब से पुरानी और नयी पैदावार की तुलना के लिये केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्रालय ने कुछ सूचक अंक नियत कर दिये हैं। अब किसी चीज की पैदावार अमुक साल में इतनी थी और अमुक में इतनी, यह कहने के बजाय अमुक वर्ष का उस चीज का सूचक अंक इतना था और अमुक का इतना, इस प्रकार कहा जाता है। इन सालों में अनाज की उपज के आँकड़े इकट्ठा करने के तरीकों को और सुधारने की काफी कोशिश की गयी है। अब तक करीब ६० हजार पटवारियों और कानूनगोओं को आंकड़ों के काम की शिक्षा दी जा चुकी है। पुरानी रियासतों आदि स्थानों में उपज और क्षेत्र आदि की जानकारी देने की कोई व्यवस्था नहीं थी। अब वहाँ भी इनकी व्यवस्था की गयी है। जिन लोगों पर पैदावार की जाँच का वास्तविक दायित्व है, उनका क्षेत्र घटा दिया गया है, ताकि वे थोड़े क्षेत्र की और भी सही जानकारी दे सकें।

विज्ञान, जुलाई, १९५८
पृष्ठ ११५-१२३

रेलवे विभाग की पारिभाषिक शब्दावली

(लेखक :—ओंकारनाथ शर्मा, चीफ मिकेनिकल इंस्ट्रक्टर, एन० ई० रेलवे, गोरखपुर)

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित अस्थायी पारिभाषिक शब्दावली के शब्दों और मुहाविरों को प्रयोग में लाकर देखने का कुछ अवसर मिला, अतः उसके आधार पर इस लेख में कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं जिनसे आशा है कि शिक्षा मंत्रालय की पारिभाषिक शब्द-विशेषज्ञ-समिति को शब्दावली को अंतिम रूप देने में शायद कुछ सहायता मिलेगी। शब्दावली के प्राक्कथन में समिति के संयोजक महोदय ने स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तुत शब्दावली में केवल रेल-यातायात विभाग तथा उससे सम्बन्धित लोगों के सामान्य व्यवहार तथा लिखा-पढ़ी में आने वाले साधारण शब्दों पर ही विचार किया गया है; और तकनीकी (प्राविधिक) शब्दों को छोड़ दिया है जो कि इस प्रकार के प्रथम प्रयास में उचित ही है।

(१) रेलवे संचालन-प्रणाली पर व्याख्यान देते समय लेखक को कुछ ऐसे शब्द भी सूझे जिन्हें इस शब्दावली में स्थान नहीं मिला है और रेलवे यातायात कर्मचारियों को उनकी आवश्यक पड़ा करती है। इस लेख के अन्त में प्रकाशित परिशिष्ट सं० १ में इसी प्रकार के थोड़े से शब्दों का संग्रह दिया है और साथ ही उनके समानार्थी हिन्दी-रूप भी देने का प्रयास किया है। इस शब्दावली का आलोचनात्मक अध्ययन करते समय केवल "रेलवे के जनरल रूल्स्" को ही दृष्टिगत रखते हुए विचार किया है कि इस शब्दावली की सहायता से उसके सब भाव व्यक्त हो सकते हैं या नहीं; और छुटे हुए शब्द और मुहाविरे उपर्युक्त परिशिष्ट में दे दिये हैं। यदि पारिभाषिक-विशेषज्ञ-समिति 'उक्त-जनरल रूल्स्' के अतिरिक्त ट्रैफिक-मैन्युअल, ट्रैफिक-टैरिफ्स्, क्लेम्स् मैन्युअल, ट्रैफिक ऑडिट मैन्युअल, एस्टेब्लिशमेंट कोड, मिकेनिकल कोड, स्टोर्स मैन्युअल, वर्किंग टाइमटेबुल इंस्ट्रक्शन्स् और एक्सिडेन्ट मैन्युअल" आदि प्रमुख नियमावलियों में से भी अनुवाद करने योग्य कठिन शब्द और मुहाविरे चुनकर उनके हिन्दी रूपान्तर निश्चित कर दे तो रेलवे संचालन-विभाग का एक बहुत बड़ा काम पूरा हो जावे, फिर केवल प्राविधिक शब्दों का निर्माण ही बच रहेगा। आजकल हमारे देश में बड़ी-बड़ी रेल दुर्घटनाओं के होने का तांता सा लग रहा है। उनकी जांच होने पर अकसर यही कारण बताया जाता है कि तीसरी और चौथी श्रेणी के कर्मचारियों के रेल संचालन नियम सम्बन्धी अज्ञान के कारण ही दुर्घटनायें होती हैं। यदि इस बात को ठीक मान लिया जाय तब तो यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि उन नियमावलियों का जल्दी से जल्दी सरल और सुबोध अनुवाद करके प्रचार किया जाय। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि जब तक रेलवे विभाग के बड़े-बड़े अफसर अपनी सब लिखा पढ़ी और बोलचाल हिन्दी में नहीं करेंगे तब तक उनके आधीनस्थ कर्मचारी भी हिन्दी में प्रकाशित नियमावलियों का प्रयोग करने में हीनता की भावना का अनुभव करेंगे। अतः जब तक पहिले प्रमुख नियमावलियों और आवश्यक प्राविधिक ग्रन्थों का अन्तरिम अनुवाद प्रकाशित होकर सब दर्जों के कर्मचारियों में उनका व्यापक प्रयोग न चालू हो जाय तब तक हमें हिन्दी भाषा में मँजे हुए शब्द और मुहाविरे नहीं मिल सकेंगे।

(२) इस शब्दावली के कुछ हिन्दी शब्द जो धारा-प्रवाह भाषा में बैठ नहीं सके उन्हें परिशिष्ट सं० २ में इकट्ठा कर दिया है, साथ ही में कुछ ऐसे शब्द भी सुझाये

गये हैं जो कि समिति के प्रस्तावित शब्दों से कुछ सरल हैं अथवा प्रयोग में भी आ रहे हैं।

(३) रेलवे कर्मचारियों के नित्य प्रयोग में बहुत से ऐसे भी अंग्रेजी शब्द आते हैं जो कि थोड़े-थोड़े अर्थ-भेद के साथ प्रयोग किये जाते हैं लेकिन साधारण लोगों को वे समानार्थी से ही लगते हैं। ऐसे शब्दों के लिए हिन्दी शब्द निश्चित करते समय हमें भी उनके सूक्ष्म भेद को बनावे रखना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसे कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं :—

अंग्रेजी शब्द	समिति द्वारा प्रयुक्त शब्द	लेखक के प्रस्तावित शब्द
Coach	डिब्बा	संयान, रथ
१ Carriage or car	वाहन, गाड़ी, डिब्बा	गाड़ी
Saloon	सैलून	स्यंदन, सैलून
Train	गाड़ी	रेलगाड़ी
Truck	खुला डिब्बा, ट्रक	शकट, ट्रक
Trolly	रेल ठेला, ट्रॉली	ठेला
Lorry (Material)	...	भारकश (भार कर्षक), लॉरी
Van	यान, डिब्बा	यान
Vehicle	गाड़ी, डिब्बा	वाहन
Wagon	माल डिब्बा	डिब्बा
२ Haulage	कर्षण	ढुलाई
Traction	कर्षण	कर्षण
३ Arc	चाप	चाप
Arch	चाप	महराब
४ Axle	धुरी	धुरा
Shaft	...	धुरी
Spindle	...	तकली
५ Bar	...	छड़

Rod	दंड	दंड
६ Brake power	ब्रेक शक्ति	ब्रेक शक्ति, रोधनशक्ति
Brake efficieney	...	ब्रेक (रोधन) क्षमता
७ Cashier	खजांची	रोकड़िया, रोकपाल
Treasurer	...	खजांची
८ Conversion	परिवर्तन	बदलना
Alteration	परिवर्तन, अदल बदल	परिवर्त्तन
Interchange	...	अदल बदल
६ Signal	संकेत	संकेत
Indicator	संकेत	प्रदर्शक

(४) इंजीनियरिंग विभाग की पूर्व प्रकाशित एक "अस्थायी पारिभाषिक शब्दावली" के प्राक्कथन में समिति के संयोजक महोदय ने अपना मत व्यक्ति करते हुए एक बड़ा अच्छा सिद्धान्त बताया था कि सरल बोल-चाल की भाषा में जब अंग्रेजी, उर्दू अथवा संस्कृत के शब्द अकेले ही किसी अंग्रेजी शब्द के भाव को व्यक्त करने में समर्थ हों तब तो हमें स्वतन्त्रतापूर्वक जिसका चाहें आवश्यकतानुसार प्रयोग कर लेना चाहिये; लेकिन जब किसी अंग्रेजी अथवा उर्दू शब्द के साथ किसी संस्कृत शब्दों को संस्कृत करके मिश्रित शब्द बनाना पड़ जावे तब हमें दोनों शब्द या तो संस्कृत के ही लेने चाहिये या दोनों ही उर्दू, फारसी के और संस्कृत के साथ यदि अंग्रेजी शब्द आ जाय तो उसे हिन्दी के व्याकरण से शासित होना चाहिये जिससे कि वह मिश्रित शब्द पूर्णतया सन्तुलित जान पड़े। रेलवे शब्दावली में कई स्थानों पर इस नियम का पालन नहीं किया गया है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि नई शब्दावली बनाते समय पूर्वनिर्मित शब्दावलियों के सिद्धान्तों का भी यथाशक्य ध्यान रखा जाय जिससे कि उन सब में सामंजस्य बना रहे। जहाँ तक हो सके शब्द कर्णकटु भी न बनने पावें। नीचे दी हुई तालिका में इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिये गये हैं। Push trolly और Push Vihicle का अनुवाद समिति की शब्दावली में क्रमशः धक्का ट्राली और धक्का गाड़ी दिया है, जिससे सुनने वालों के दिमाग में वास्तव में धक्का ही लगता है।

अंग्रेजी शब्द	समिति द्वारा प्रयुक्त शब्द	लेखक के प्रस्तावित शब्द
Alarm Signal Apparatus	खतरा उपकरण	खतरा जंजीर

Assistant Chargeman	सहायक चार्ज मैन	सहायक मिस्त्री
Coaching Vehicle	कोचिंग वाहन	यात्री वाहन
Crossmovement	दुतर्फा संचलन	द्विदिश संचलन
Head Draughtsman	प्रधान नक्शा नवीस	सदर नक्शा नवीस प्रधान उद्रेखक (मानचित्रक)
Reservation Clerk	आरक्षण क्लर्क	आरक्षण बाबू
Coachingtraffic	कोचिंग यातायात	यात्री (सवारी यातायात
Traffic preferential	तरजीही यातायात	अधिमान्य यातायात
Traffic yard	यातायात यार्ड	यातायात प्रांगण
Stop board	रुको फलक	रोकफलक
Stop indicator	रुको संकेत	रोक प्रदर्शक
Pushtrolly	धक्का ट्राली	हाथ ठेला, ठेला
Push Vehicle	धक्का गाड़ी	हथवाहन, ठेला
Watertight	जल रोक	जलाभेद्य

(५) आजकल Machine, Instrument और Tool आदि सब शब्दों के लिए यंत्र शब्द का प्रयोग निरंकुश रूप से हो रहा है जो कि अनुचित है। इसी शब्दावली में Detonater के लिए "स्फोटन यन्त्र" प्रयुक्त हुआ है जब कि उसके लिये "पटाखा" जैसा साधारण शब्द प्रचलित है। कई लोग Thermometer के लिये भी यन्त्र शब्द का प्रयोग करते हैं जब कि उसमें कोई चलते फिरते पुर्जे नहीं है, लेखक की सम्मति में इस प्रकार के शब्दों में निम्न प्रकार से भेद करना उपयुक्त होगा :—

अंग्रेजी शब्द	हिन्दी शब्द	अंग्रेजी शब्द	हिन्दी शब्द
Apparatus	साधित्र	Instrument	उपकरण
Contrivance	प्रयुक्ति, जुगाड़	Machine	यन्त्र
Equipment	सज्जा, संभार, सरंजाम	Mechanism	उपयन्त्र
Gearing	तन्त्र	Metre	मापक, मापी
Device	युक्ति, उपाय, तदबीर	Tool	औजार, बटाली

परिशिष्ट—१

रेलवे संचालन के पारिभाषिक शब्द जो कि शब्दावली में नहीं दिये गये हैं।

पारिभाषिक शब्द	प्रस्तावित शब्द	विशेष विवरण
Advanced Section	प्रगत खंड	
Advance Startar Signal	अग्रिम चालक संकेतक	
Applicability	प्रयोज्यता, लागू होना	of rules etc.
Absolute Block System	विशुद्ध खंड (ब्लाक) पद्धति	
Acceptance	स्वीकार, स्वीकृति, ग्रहण	of line clear etc.
Adequate distance	पर्याप्त दूरी	
Accident	दुर्घटना	
Automatic Block System	स्वचल-खंडोपकरण प्रणाली	
Approaching train	पहुँचने वाली गाड़ी, अवाई गाड़ी, अभिगम्य गाड़ी	
Attention Signal	ध्यानाकर्षक संकेत	
Arm	हत्था	of a signal
Attachment	लगाना, जोतना, जोड़ना	of wagons etc.
Block section	रोक खण्ड	
Banner flag	भयपट, भयसूचक ध्वजा	
Blasting	उत्स्फोटन, सुरंग लगाना	
Bracket post	टोडेदार खम्भा	
Bracketted Signal	संयुक्त संकेतक	
Calling on signal	आह्वान संकेतक	
Channel	गली	for flanges of wheels

Catch siding	फंदा साइडिंग	
Cessation	विराम, निवृत्ति, समाप्ति	of Working.
Cinder	अंगार, बुझा कोयला, कोलसा	
Claim	दावा, अभ्यर्थना	
Couplings	युग्मक, मिथुनक, कपलिंग	
Crossing (noun)	मेल, संगम, संपारण	of trains etc.
Curves	मोड, घुमाव	
Coacting Signal	सहवर्त्ती संकेतक, सहसंकेतक	
Conduct	आचरण	of Rly. servants etc
Cancellation of signal	संकेतक विलोपन, सिगनल मंसूख	
Distinction	प्रभेद, भिन्नता	between signals
Documents	प्रलेख	
Dummy truck	वकानुवाहीशकट, वकशकट	Match truck
Distinguishing marks	प्रभेदक चिह्न, विशिष्ट चिन्ह	on train staff tickets
Exchange of signals	संकेतानुकरण, सिगनल मिलाना	
Explode	धडाका, उत्स्फोटन	of detonater
Efficient	सक्षम	Brakes
Entraction of token	सिक्का निकालना, निशानी लेना, प्रतीक प्राप्ति	
Equipment	सरंजाम, साजसामान	
Escaping	भाग निकलना, विपलायन	of vehicles
Essentials	सार, सारभूत बातें	of absolute block system
Exceptions	अपवाद	to rules

Following train system	अनुगमन पद्धति	
Failure of—	बिगड़ जाना, विफल होना	
Guide rail	मार्गदर्शक रेल	
Gang	वृन्द, टोली	
Ganger	वृन्दनायक, नायक, जमादार	
Gradiant	प्रावण्य ढाल	
Hose (pipe etc.)	नम्यनाल, रबड नल	
Interchange	अदलबदल, विनिमेयता, विनियम	
Interfering	हस्तक्षेप, छेड़ छाड़	with points etc.
Introduction	प्रवर्त्तन, प्रयोग	of systems etc.
Life guard	जीवरक्षी	
Lorry	लॉरी, भारकस (भारकर्षक)	Fireman to keep
Look out	निगाह रखना	
Manning	आदमी रखना, चौकसी	of engines in motion
Marker light	संकेत दीप	
Nonblock station	अखण्ड स्टेशन	
One engine oniy system	एक इंजन पद्धति	
On	लगी, उठी, खुली (हालत) खुल	position
Off	हटी, गिरी, बंद (हालत) बंद	position
Obligation	जिम्मेदारी, दायित्व, अधिबंधन	to provide
Out laying	वहिर्वर्ती	sidings
Proceedures	क्रियाविधि	
Pilot	मार्गदर्शी, कदरी, अरकाटी, माँझी	Guard or engine

Private member	प्रतीक संख्या	
Path	पथ, रास्ता	
Preservation	संचयन, परिरक्षण	of records etc.
Passing	पार करना, गुजरना	of trains
Pushing engine	प्रचालक (प्रवर्त्तक) इंजन	
Placing	धरना, रखना, स्थापित करना	of wagons etc.
Provisions	प्रबंध उपबंध	for the use cf
Protection	संरक्षण	of trains—etc.
Refusal	इनकार अस्वीकृत	of
R et:urn	अंक पत्र	monthly etc.
Run through	अविराम धावन, बेठहरे जाना	
Section Clew system	निर्बाध खंड पद्धति	
Slipping	स्खलन, फिसलना	
Slipsiding	स्खलन पार्श्विका, स्लिपसाइडिंग	
Setting	बैठाना, लगाना, जमाना	of points etc.
Shutting off	बंद करना	of steam ete,
Starter signal	चालन, संकेतक	
Subordination	मातहती, अधीनता	of guards etc.
Surrender	सौंपना, अध्यर्पण	of Railway property
Stock	स्कंध, संग्रह	of materials
Securing	जमाना, जाम करना, बाँधना, पुख्ता करना	
Thick foggy weather	घने कुहासे का मौसम	
Train porting	रेलगाड़ी विखंडन	
Token	सिक्का, निशानी, प्रतीक	

Trap point	पाश कांटा, जाल कांटा	
Trap siding	जाल पार्श्विका, जाल लाइन, फंदा लाइन	
Transmission of signals	संकेत पारेषण, संकेत भेजना	
Travelling crane	सफरी क्रेन, चलवकोट	
Testing signal	परीक्षण संकेत	
Timings	कालनियमन, समय नियमन, समय	of train etc.
Tender foremost	टेन्डर आगे, टंकी आगे, जलांगारी आगे	
Up keep	देखभाल, समारक्षण	
Vehicle	वाहन	
Works	कर्मान्त	Way and works
Way and works	रेलपथ और कर्मान्त	
Water crane	जल वकोट	
Water column	जल स्तम्भ	
Water line	पानी लाइन	
Water hut	प्याऊ	
Ware house	भण्डार, कोठार	
Wash out	गुसल, अपधावन	
Water gauge	जलमान	
Water marking	जलांकन	
Way side station	छोटे स्टेशन	
Working order	काम के लायक, चालन नियम	

विज्ञान-वार्ता

सोवियत संघ ने २६४ मील की ऊँचाई पर ३३५१ पौड वजनका रौकेट छोड़ा

२६४ मील की ऊँचाई पर सोवियत भू-मौतिकी रौकेट छोड़ने का समाचार प्रकाशित करते हुए प्रावदा लिखता है कि रौकेटों की सहायता से ऊपरी वायुमंडल तथा ब्रह्माण्डीय अवकाश के निकटतम स्तर-स्थित वस्तुओं का अध्ययन सोवियत संघ में कई वर्षों से जारी है। तरल ईंधनयुक्त पहला रौकेट शोध के लिए १६३३ में छोड़ा गया। मई १६४६ में एक रौकेट पहली बार बिल्कुल सीधे ६८ मील की ऊँचाई पर भेजा गया। इस प्रकार के कुछ रौकेटों का वजन २६४ पौड से २८६ पौंड तक था। हाल के वर्षों में यह आंकड़ा ३, ३००० पौंड तक चला गया है।

प्रावदा लिखता है कि चालू किये गये कुछ भू-मौतिक रौकेटों में पांच मंजिलें थीं और उनमें जो यंत्र और जानवर थे, वे सकुशल वापिस आ गये।

१६५१ में १३२ मील की ऊँचाई तक रौकेट छोड़े गये, इनके प्रयाग सम्बन्धी यंत्रों का वजन ४८४० पौण्ड था। यंत्र और पशु सुरक्षित रूप में वापस लाये गये।

२१ फरवरी १६५८ को २६४ मील की ऊँचाई पर एक मंजिल का रौकेट छोड़ा गया। इसमें यंत्रों का वजन ३३५१ पौण्ड था। यह रौकेट इस प्रकार के रौकेटों में संसार में एक रेकार्ड स्थापित कर देता है।

प्रावदा लिखता है कि सोवियत वैज्ञानिक तीन जगह राकेट सम्बन्धी अनुसन्धान कर रहे थे, उत्तरी ध्रुव में फ्रांज जोसेफ लेण्ड में, सोवियत संघ के यूरोपीय भाग में मिर्नी वेधशाला के पास और दक्षिणी ध्रुव के खुले सागर में

स्पुतनिक और रौकेट छोड़ने की उपयोगिता के सम्बन्ध में पत्र लिखता है कि केवल स्पुतनिकों के सहारे भूमौतिक क्षेत्र की सारी बातों की जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकती, इसलिए रौकेट भेजना जरूरी है।

अन्तर्राष्ट्रीय भूमौतिकी वर्ष के कार्यक्रम के अन्तर्गत सौवियत संघ ने त्रिविध ऊँचाइयों पर वायुमण्डल के तापमान, दबाव और रासायनिक गठन का अध्ययन किया। अयन मण्डल के उपादानों, ब्रह्माण्ड किरणों, सौर वर्णावलि के अति बेंगनी भाग के विकिरण और क्षुद्र उल्काओं का भी अध्ययन किया गया।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव में अब तक १० रौकेट छोड़े जा चुके हैं। उनसे इन ध्रुव प्रदेशों की औसत ऊँचाइयों के तापमान और वायुचाप का पता चला है। प्रावदा ने उन यंत्रों का विवरण दिया है जो २६४ मील की ऊँचाई पर जाने वाले राकेट में थे। जहाँ तक अनुसन्धान और ऊँचाई का प्रश्न है, इस रौकेट ने ऊपरी वायुमण्डल के सम्बन्ध में रौकेटों द्वारा किये गये समस्त घरेलू और विदेशी अनुसन्धान प्रयत्नों में बाजी मारी है। विशेष यंत्रों के द्वारा वायुचाप को मापा गया। रौकेट की सतह के विद्युत् क्षेत्र के तनाव का रेकार्ड एक अन्य विशेष यंत्र के द्वारा लिया गया। एक अन्य यंत्र के द्वारा विरल गैसों के अयनीय पदार्थ का निर्द्धारण किया गया। सकारात्मक अयनों के जमाव, इलेक्ट्रानिक तापमान की माप, अयनमण्डल के विविध भागों में इलक्ट्रानों के जमाव का लेखा और सौर वर्णावलि के अति बेंगनी भाग की लघु तरंगों के फोटो लेना आदि वैज्ञानिक कार्य विविध यंत्रों के द्वारा किये गये। ये तथ्य या तो रेडियों के द्वारा धरती पर भेजे गये, या इनके टेप रेकार्ड ले लिए गये जो बाद में धरती पर लाये गये।

चढ़ाव और उतार दोनों में १६२ मील की ऊँचाई तक में एक मिलीमीटर की १० डिग्री से ऋण ७ डिग्री तक का चार रेकार्ड किया गया।

जब राकेट ७८ से १८६ मील के बीच में पहुँचा, तब क्षुद्र उल्काओं से कुल २६८ टकराव हुए। ७८ से १५६

मील के बीच प्रति वर्ग मीटर में ४४ टकराव हुए और १८६ मील की ऊँचाई तक में ६ टकराव हुए। ब्रह्माण्ड अवकाश में रौकेटों और स्पुत्निकों की सुरक्षा के लिए ये बातें बड़े महत्व की हैं। प्रावदा ने पहले के अनुसन्धानों का हवाला देते हुए बतलाया है कि इस रौकेट के अनुसन्धान कितने महत्वपूर्ण है तथा उनसे क्या नयी बातें मालूम होती हैं। पत्र सूचित करताहै कि २६२ मील की ऊँचाई पर सोवियत रौकेट ने प्रति घन सेण्टीमीटर में १० लाख इलेक्ट्रनों के जमाव का रेकार्ड लिया, जब कि अमरीका ने जोप्रयोग किया था, उसमें २३६ मील की ऊँचाई पर इलेक्ट्रनों का जमाव लगाया था। इससे इसकी पुष्टि होती है कि एफ० स्तर की अधिकतम ऊँचाई के ऊपर इलेक्ट्रानिक जमाव में कमी बहुत ही कम होती है। सोवियत प्रयोग इस मामले में अमरीकी ढंगों जैसे हैं कि उनमें भी लघुतर रेडियो तरंगों का उपयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप रिकार्डों के परिधानों पर पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव कम पड़ता है।

प्रावदा लिखता है कि १९४९ से ही वायुमण्डल के ऊपरी स्तरों की उड़ानों में जीवधारियों सम्बन्धी अध्ययन बड़े पैमाने पर किये जा रहे हैं। पहले दौर में पशु (कुत्ते) ६२ से १३० मील तक की ऊँचाई तक गये। वायुवर्जित कक्ष होने के कारण ताप, वायु आदि ठीक उतना रहा जितने की जरूरत थीं,। इस अवस्था में दो पशु तीन घण्टे तक कक्षा में रहे। कक्ष को रौकेट से अलग कर पैराशूट के जरिये उसे धरती पर लाया गया। इस प्रकार पशु नीचे आये। पशुओं पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। और उनमें से कुछ दूसरी उड़ान में भी गये। दूसरी मन्जिल में पशु को धरती पर लाने की एक अन्य विशेष व्यवस्था की गयी। ५३ से ४७ मील की दूरी से धरती तक आने में पशु को एक घण्टे से अधिक समय लगता था। वायुमंडल के ऊपरी स्तर की उड़ान का या वहाँ से धरती पर आने का पशु पर कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ा।

अन्त में पत्र ने चन्द्रलोक की यात्रा से सम्बन्धित समस्याओं की चर्चा की है। पत्र का कहना है कि राकेट-विद्या का और विकास होने पर सम्यक् अनुसन्धान के बाद कुछ वर्षों के भीतर चन्द्रलोक पहुँचा जा सकेगा। प्रावदा जो देते हुए लिखता है कि वजनी स्पुत्निकों की रचना अन्तरिक्ष-यात्रा की समस्या के शीघ्रातिशीघ्र समाधान का का मार्ग प्रशस्त कर देती है। इस समस्या का समाधान छोटे स्पुत्निकों की सहायता से नहीं हो सकता। उनका उपयोग अनुसन्धान तक सीमित है।

बाल से भी पतली नलियाँ

यूक्रेन का निकोपाल धातु कारखाना ऐसी नलियाँ तैयार कर रहा है जिसकी दीवारें बाल से भी दुगुनी पतली हैं। ये नलियाँ २५ वायुमंडल तक चाप बरदाश्त कर सकती हैं। ये नलियाँ "रोलर मिलों" के ऊपर शीत-पद्धति द्वारा बनाई जाती है। इन नलियों का वजन परम्परागत शीत-रोलिंग यंत्रों की तुलना में ५० प्रतिशत कम है। सोवियत इंजीनियरों ने पहली बार ऐसी "रोलर मिलें" तैयार की है।

४०४ मील प्रतिघंटे की उड़ान

चार-इंजिनयुक्त "आई० एल-१८" नये विमान ने जिसमें पचहत्तर यात्रियों के बैठने की व्यवस्था है मास्को-इर्कुटस्क, पेट्रोपावलोव्स्क कामचात्स्की-उत्तरध्रुव छः स्टेशन-टिक्सी खाड़ी-मास्को मार्ग से ११,१८५ मील की परीक्षात्मक उड़ानें पूरी कर ली हैं। विमान का चालन करने वाले सुविख्यात परीक्षण-चालक व्लादिमिर कोकिनाकी के अनुसार इस लम्बी उड़ान में विमान तथा इसके पुर्जों ने बहुत ही अच्छी तरह काम किया यद्यपि विशेषकर कमचटका क्षेत्र में मौसम की स्थिति पर्याप्त उलझनपूर्ण थी। विमान ने प्रति घंटे ४०४ मील औसत रफ्तार से २७ घंटे ३४ मिनट में दूरी तै की। उत्तरी समुद्र मार्गीय प्रशासन की एयरो-फ्लोट लाइन तथा उत्तरध्रुवीय लाइनों पर यह नया विमान शीघ्र ही नियमित रूप से उड़ाने भरने लगेगा।

धातु का नया ग्लाईडर

सोवियत कारीगरों की एक टोली ने ओलेक आंतोनोव के नेतृत्व में "ए-१३" मार्का एक नया ग्लाईडर बनाया है, जो पूर्णतया धातु निर्मित है। इसमें केवल एक व्यक्ति बैठ सकता है। इसके दो जोड़े डैने हैं जो अलग किये जा सकते

हैं : एक जोड़ा छोटी उड़ानों और ग्लाईडिंग के अभ्यास के लिए और दूसरा जोड़ा लम्बी दूरी की उड़ानें भरने के लिए है। यह ग्लाईडर सफलतापूर्वक परीक्षणात्मक उड़ानें भर चुका है।

सूर्य के ज्योतिर्मण्डल के १५००० फोटो

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष के पिछले नौ महीनों में कजाख-ज्योतिर्भौतिक-विज्ञान संस्थान की वेधशाला में सूर्य के ज्योतिर्मण्डल और उसकी विस्फोटक सूर्योन्नत ज्वालाओं के १५००० से ऊपर फोटो लिये गये। यह वेधशाला समुद्र की सतह से ८,४५० फुट की ऊँचाई पर ट्रांसिलि अलाताऊ पर्वतश्रेणी के ऊपर स्थित है। एक विशेष प्रकार के कोरोनोग्राफ के द्वारा, तथा सोवियत संघ में विद्यमान दस क्रोमोस्फीयर-फोटोस्फीयर दूरवीक्षण यंत्रों में से एक के द्वारा पर्यवेक्षण किये जाते हैं।

संस्थान के सौर भौतिक विज्ञान विभाग के प्रधान मितखात करीमोव ने तास को बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी कार्यक्रम के अन्तर्गत पर्यवेक्षणों के दौरान सौर क्रियाकलाप तीव्र हो गया है। वेधशाला ने बहुत से वर्ण-मंडलीय सूर्योन्नत ज्वालाओं को दर्ज किया है। यह उल्लेख्य है कि ज्योतिर्मण्डल की सामान्यतया तीव्र हरी और लाल रेखाओं के साथ साथ अपेक्षाकृत विरल और पीतवर्ण की ज्योतिर्मण्डलीय रेखा देखी गई। ३१ मार्च को पांच शक्तिशाली वर्णमंडलीय सूयूर्योन्नत ज्वालाओं की फिल्में सिने-कैमेरा के सहारे ली गई।

कीटाणु और ब्रह्माण्ड

निहित कीटाणु स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर के अन्दर पाये जा सकते हैं। वे अपने विकास की निहित अवस्था में परजीवी होते हैं। यदि विभिन्न कारणों से मानव शरीर कमजोर हो जाए तो ये कीटाणु कभी-कभी रोग पैदा करने लगते हैं।

उदाहरणार्थ, चर्म रोग सम्बन्धी कीटाणु अनेक स्वस्थ लोगों में भी पाये जा सकते हैं। मुंह की श्लैष्मिक झिल्ली में ये कीटाणु इस तरह प्रवेश कर जाते हैं कि उनके वहां होने का भान तक नहीं होता। लेकिन ज्यों ही वह व्यक्ति मलेरिया, इनफ्लुयंजा, न्यूमोनिया या अन्य रोगों से ग्रस्त होता है चर्म रोगवाले कीटाणु बहुधा सक्रिय हो जाते हैं, ओठों और नासिका-रन्ध्रों में फुंसियां हो जाती हैं। कुछ दिनों के बाद फुंसियों से निकलने वाला पानी सूख जाता है, चोईयां गिर पड़ती हैं और कीटाणु पुनः अन्तर्निहित हो जाते हैं।

ब्रह्माण्डीय अवकाश में अन्तर्निहित कीटाणुओं को क्या हो सकता है? मानव-शरीर के बाहर अपेक्षाकृत अल्पकाल में ही कीटाणु मर जाते हैं। सूर्य की, विशेषकर अतिबैंगनी किरणें तथा ह्रस्व तरंगों के विकिरण उनके लिए मौत के समान हैं।

क्या कीटाणु अवकाश-पर्यटकों के शरीर में रोगोत्पादक क्रिया फिर से चालू कर सकते हैं? यह निर्विवाद है कि ऐसा सम्भव है, लेकिन पृथ्वीतल पर सामान्य जीवन में जैसा होता है उससे अधिक नहीं होना चाहिए। यहीं अनुमेय है कि अवकाश पर्यटक यथासम्भव उन्हीं परिस्थितियों में यात्रा करेंगे जिन परिस्थितियों में वे पृथ्वी पर सामान्य जीवनयापन करते हैं। उनका शरीर ब्रह्माण्डीय अवकाश के हानिकारक विकिरण से सुरक्षित रहेगा। ब्रह्माण्डीय यान के भीतर का जलवायु उस जलवायु के समान होगा जिसका मानव अभ्यस्त है। श्वास लेना और खाना यथासम्भव स्वाभाविक ढंग का होगा। ब्रह्मांड में यात्रा करने वाले प्रथम पर्यटक लैका पर किये गये परीक्षण बताते हैं कि ऐसा पूर्णतः सम्भव है। लोगों का यह कथन कि रोगाणुओं के द्वारा अवकाश पर्यटक दम तोड़ देंगे नितान्त भ्रमपूर्ण है।

देश में सिगनल के शीशों का निर्माण

कलकत्ता की केन्द्रीय कांच तथा मिट्टी अनुसन्धान-शाला का प्रयोग सफल होने के परिणामस्वरूप सिगनलों के शीशे अब देश में ही बनने लगेंगे। रेलों में तथा सड़क यातायात के नियंत्रण के लिए विविध रंगों के सिगनलों के शीशों की जरूरत होती है। आजकल ये विदेशों से मँगाये जाते हैं। अनुसन्धानशाला ने नमूने के शीशे पहले रेलवे यार्डों में भेजे, जहाँ इस बात की जाँच की गयी कि वर्षा, धुआँ, धुन्ध, मौसम आदि का इन पर क्या असर पड़ता है। जाँच से पता चला है कि ये शीशे विदेशी शीशों से अच्छे हैं और रंगों की चमक-दमक भी वैसी ही है, जैसी चाहिये। इसके अलावा ये चलाऊ भी अधिक हैं और मौसम की प्रतिकूलता का इन पर असर नहीं होता।

अंडमान में सागवान की पैदावार

अंडमान-प्रशासन के वन-विभाग ने अच्छी किस्म की इमारती लकड़ी-विशेषतया सागवान उगाने की उन्नत विधि निकाली है। अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह में इमारती लकड़ी बहुत होती है, इसलिए यहाँ वन लगाने पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन अब देश को उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये इमारती लकड़ी की काफी जरूरत है, इसलिए इस द्वीपसमूह में वृक्षों की संख्या बढ़ाना जरूरी हो गया है। सागवान के पेड़ अब तक यहाँ कम लगाए जाते रहे थे। अब कुछ हिस्सों में सागवान के पेड़ अधिक लगाने की योजना है।

१९५४-५५ में दक्षिण-अंडमान में १२० एकड़ जमीन में सागवान के पेड़ लगाए गए। उसके बाद अन्य स्थानों पर भी पेड़ लगाए गए।

भारत में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की उन्नति

राज्यसभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर ने बताया कि द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में देशी चिकित्सा प्रणालियों की उन्नति के लिए १ करोड़ रु० रखे गये हैं। उन्होंने सभा की मेज पर एक वक्तव्य रखा, जिसमें आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की उन्नति के कार्यक्रम का विवरण दिया गया था। इसमें कहा गया कि १९५६-५७ में बम्बई सरकार ने ६ लाख ५३ हजार ७४ रु० और केरल की सरकार ने १६, ६६६ रु०, इस कार्य पर खर्च किये। १९५७-५८ में १९५७ के अन्त तक बम्बई ने ६,२४,३०० रु०, उत्तरप्रदेश ने २२,००० रु०, आंध्र प्रदेश ने ६०,००० रु०, मद्रास ने ७,२०० रु०, राजस्थान ने ४०,००० रु० और केरल ने ३०,००० रु० आयुर्वेदिक चिकित्सा की उन्नति के लिए खर्च किये।

पहले पंचवर्षीय आयोजन में स्वास्थ्य मन्त्रालय ने देशी चिकित्सा प्रणालियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करने के लिए ३७ लाख ५० हजार रु० रखे थे। इसमें से पहले पंचवर्षीय आयोजन की अवधि में १२ लाख रुपये दिये गये। चूँकि यह योजना पंचवर्षीय आयोजन के उत्तरार्द्ध में शुरू की गई थी और चूंकि राज्यों ने अधिक रुचि नहीं प्रकट की तथा अनुसंधान संस्थाओं ने भी नियमित रूप से अनुसंधान योजनाएं प्रस्तुत नहीं की, इसलिए १२ लाख रुपये जो पंचवर्षीय आयोजन में रखे गये थे, वे सारे प्रयोग नहीं किये गये।

देशी चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में भारत सरकार को सलाह देने के लिए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने एक सलाहकार समिति नियुक्त की है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, यूनानी और होमियोपैथी चिकित्सा प्रणालियों के सम्बन्ध में अनुसंधान की जो योजनाएं प्राप्त हों, उनकी छानबीन करने के लिए भी सरकार ने विशेषज्ञों की समितियां नियुक्त की है। जून १९५७ में योजना आयोग ने आयुर्वेदिक प्रणाली के विशेषज्ञों की जो बैठक बम्बई में बुलाई थी, उसने सिफारिश की थी कि एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसंधान परिषद की स्थापना की जानी चाहिए। भारत सरकार इस पर विचार कर रही है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिग्राम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रुपया ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेशवेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण- ले० एल० ए० डाउस्ट अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर—	२ रुपया
१०—कलम पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरखप्रसाद डी० एस० सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरखप्रसाद	४ रुपये
१६—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
२०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनियाँ—श्री रामेशवेदी	४ रुपये
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
६३—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

म्योर कालेज कम्पाउंड

थार्नहिल रोड

इलाहाबाद

विज्ञान
जुलाई १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

विषय सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा, प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञ नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ०।३।५।

भाग ८७ | सिंह २०१५ विक्र० श्रावण १८८० शाकाब्द; अगस्त १९५८ | संख्या ५

सम्पादकीय

विज्ञान को लोकप्रिय बनायें

वैज्ञानिक अनुसंधान तथा संस्कृत मंत्री श्री हुमायूँ कबीर की अध्यक्षता में १८ तथा १९ जुलाई १९५८ को दिल्ली में भारतीय वैज्ञानिकों, उपकुलपतियों और शिक्षा विशेषज्ञों का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने और देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के विभिन्न साधनों पर विचार किया।

सम्मेलन ने सिफारिश की कि उच्च पदों पर काम करने वाले लोगों के वेतन और नौकरी की स्थितियों में सुधार किया जाय, जिससे विभिन्न कार्यों के लिये, विशेषतः शिक्षा और अनुसंधान कार्य के लिये योग्य व्यक्ति मिल सकें। प्रारम्भिक वेतन इतना होना चाहिये कि विश्वविद्यालय के हर विभाग में योग्य व्यक्ति आ सकें। देश में पर्याप्त संख्या में ऐसे प्राध्यापक नियुक्त किये जाने चाहिये जिनका वेतन उच्चतम प्रशासनिक अधिकारी के बराबर हो, जिससे कि वे अध्यापन क्षेत्र में स्थिर रहने की सोच सकें। माध्यमिक स्तर से ही योग्य व्यक्तियों की खोज करने तथा ऐसे व्यक्तियों को चुनकर उपयुक्त संस्थाओं में भेजने की व्यवस्था करनी चाहिये। विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश लेने वाले १५-२० प्र० श० छात्रों को छात्रवृति देनी चाहिये। छात्रवृति कम से कम इतनी होनी चाहिये कि छात्रों के सभी उचित खर्चे उससे पूरे हो सकें।

अनुसंधानकर्ताओं को उपकरणों, प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों आदि की पर्याप्त सुविधाएं देनी चाहिये। विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं के अनुसंधान और अनुसंधान कर्ताओं को पर्याप्त आर्थिक सहायता देनी चाहिये, विश्व विद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में अनुसंधान करने वालों, विशेषतः तरुण अनुसंधानकर्ताओं को अपना विषय चुनने तथा अनुसंधान के परिणामों को प्रकाशित करने की अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिये, योग्य व्यक्तियों को अनुसंधान कार्य में स्थिर रखने के लिये पर्याप्त संख्या में छात्रवृत्तियाँ देनी चाहियें, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि ये प्रशिक्षित व्यक्ति अन्त में उपयुक्त रोज़गार पा सकें।

उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों के सदुपयोग के लिये आवश्यक है कि विद्यालयों, अनुसंधान संस्थाओं और विज्ञान सम्बन्धी सरकारी तथा अर्ध-सरकारी संस्थाओं में निकट सहयोग और विज्ञान तथा शिल्प के ज्ञाताओं का आदान-प्रदान किया जाय।

उद्योगों और सरकारी विभागों को यह सुविधा होनी चाहिये कि वे विश्वविद्यालयों अथवा अनुसंधान संस्थाओं से वैज्ञानिकों आदि को परामर्शदाता आदि की तरह रख सकें और उन्हें अपना पहला स्थान भी न छोड़ना पड़े।

देश में विज्ञान के अध्ययन की रुचि उत्पन्न करने के लिये व्याख्यानों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों विज्ञान क्लबों, प्रदर्शिनियों आदि का प्रबन्ध होना चाहिए और भारतीय भाषाओं में विज्ञान की प्रमाणिक पुस्तकें निकाली जानी चाहिएं जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का ही प्रयोग होना चाहिये।

स्कूलों और कालेजों के लिये आवश्यक उपकरण भारत में ही बनाये जांय। लोगों को वैज्ञानिक और शिल्पिक जानकारी देने के लिये एक केंद्रीय वैज्ञानिक तथा शिल्पिक सूचना संस्था खोली जाय जो देश विदेशों से विज्ञान संबंधी सूचनायें संग्रह कर उनका प्रचार करे।

विज्ञान परिषद् गत ४५ वर्षों से हिन्दी के माध्यम द्वारा विज्ञान को लोकप्रिय बनाने और जनता में वैज्ञानिक वृत्त उत्पन्न करने में प्रयत्नशील रही है हमें प्रसन्नता है कि आज देश की सरकार तथा वैज्ञानिक कार्यों में रुचि रखने वाले लोगों ने भी इस दिशा में कार्य करने का इच्छा प्रकट की है। देश की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि विज्ञान की प्रगति के लिये सरकारी और गैर सरकारी कार्यों में सहयोग हो जिससे कुछ ठोस काम होसके।

वन महोत्सव

मनुष्य के जीवन में वृक्षों की बहुत उपयोगिता है। इनसे हमारे घरों गावों और नगरों की शोभा बढ़ती है। ये भूमि क्षरण को रोक कर हमारे खेतों की रक्षा करते हैं तथा जंगली जीवों को आश्रय देते है। बनों और उपवनों के वृक्ष हमें सुखदायी छाया और शान्ति प्रदान करते हैं। वृक्षों से हमें ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी और फल मिलते हैं। इस प्रकार वृक्षों की कमी या बहुलता देश के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर बुरा या अच्छा प्रभाव डालता है।

विभिन्न देश विभिन्न नामों से वृक्षारोपण के सामूहिक कार्य-क्रमों में योग देते हैं। जापान में "वृक्षारोपण सप्ताह" इजराइल में "वृक्ष का नव वर्ष" कोरिया में "वृक्षानुराग दिवस" यूगोस्लाविया में "वृक्षारोपण सप्ताह" और आइसलैण्ड में "छात्रों का वृक्षारोपण दिवस" नाम से वन महोत्सव मनाया जाता है।

रूस में फलों तथा बेरी की अच्छी जाति के वृक्ष लगाये जाते हैं। इनके फलों का उपयोग भोजन तथा मदिरा निर्माण में होता है। मधुमक्खियों तथा चिड़ियों की सहायता से एक फूल का पराग दूसरे पर पहुँचता है और संकर जाति के उत्तम अन्न तथा पौदों का जन्म और विकास होता रहता है। इससे उपज में भी वृद्धि होती है। रेगिस्तानों की बाढ़ रोकने के हेतु इन पेड़ों का उपयोग किया जाता है।

न्यूजीलैण्ड में रेगिस्तानों की प्रगति को रोकने के हेतु वृक्षों के कुँज लगाने तथा सड़कों के दोनों ओर वृक्षों की पंक्तिआँ लगाने पर अधिक बल दिया जाता है। फलदार तथा मधु मक्खियों को आश्रय देने वाले वृक्षों के लगाने के हेतु विशेष तत्परता दिखाई पड़ती है।

अमेरिका में "आर्बर डे" (कुँज दिवस) मनाया जाता है। स्कूलों तथा सार्वजनिक स्थानों पर किसी की स्मृति में वृक्ष और कुंज लगाते हैं।

आइसलैण्ड में छात्रों द्वारा वर्ष में एक बार पेड़ लगाना अनिवार्य है ब्रिटेन में "आर्बर दिवस" पर बीज बांटे जाते हैं। जंगलों के छोटे-छोटे खंड स्कूलों को बाँट दिये जाते हैं जो इनकी देख भाल करते हैं। इटली में बागबानी से रुचि रखने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कार दिये जाते है।

हमारे देश में वृक्षारोपण को बड़ा महत्व पूर्ण और पुण्य का कार्य माना गया है। आठ वर्ष पूर्व भारत ने सरकारी तौर पर इस महत्वपूर्ण कार्य को वन महोत्सव के रूप में प्रति वर्ष मनाने की योजना निकाली। एक वृक्ष को काट देना बड़ा सरल है किन्तु एक वृक्ष के तैयार होने में लगभग एक पीढ़ी का समय लगता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये जब तक अत्यन्त अनिवार्य न हो किसी भी वृक्ष को न काटना चाहिये। पेड़ लगाने से एक अपूर्व सन्तोष मिलता है। आगामी पीढ़ी के लिये तो यह बहुत बड़ा उपकार है। वन महोत्सव मनाते समय हमें ध्यान में रखना चाहिये कि यह उत्सव केवल एक दिन या एक सप्ताह की चहल पहल नहीं है अपितु यह देश के विकास का प्रमुख अंग तथा भविष्य के विश्वास का प्रतीक है।

विज्ञान, अगस्त १९५८
पृष्ठ १३१—१३६
गतांक से आगे

रेलवे विभाग की पारिभाषिक शब्दावली

[ओंकार नाथ शर्मा, मिकेनिकल इन्स्ट्रक्टर, एन० ई० रेलवे, गोरखपुर]

परिशिष्ट—२

रेलवे संचालन विभाग की शब्दावली

अंग्रेजी के शब्द	समिति द्वारा प्रयुक्त हिन्दी शब्द	लेखक के प्रस्तावित शब्द	कारण
Alarm chain Apparatus	खतरा जंजीर†	खतरा जंजीर	
	खतरा उपकरण	भयसूचक शृंखला	
Alteration	परिवर्तन, †अदल बदल	परिवर्त्तन	
Alarm signal	खतरे का संकेत†	भीति संकेत	
Ambulance	एम्बुलैंस,† अस्पताल गाड़ी†	चलचिकित्सालय	
Ambulance corps	अस्पताली दल†एम्बुलैंस दल†	चलचिकित्सालय दल	
Ash pit	राख का गड्ढा	अंगार गोदी, राख गोदी*	
Adjusting	समंजनकारी	समंजक	
Adjusting screw	समंजन कारी पेंच	समंजक पेंच	
Advanced training	उच्च शिक्षण	उच्च प्रशिक्षण	
Arch	चाप	महराब*	Arc चाप
Assistant chargeman	सहायक चार्ज मैन	सहायक मिस्त्री*	
Axle	धुरी	धुरा*	Shaft धुरी
Axle guard	धुरी रक्षी	धुरा रक्षक	
Axles and wheels	धुरी और पहिये	धुरे और चक्के*	
Back axle	पिछली धुरी	पिछला धुरा*	
Beats	आघात	फड़कन*	
Baggage car	सामान यान	सामान गाड़ी	
Blank paper ticket	कोरे पर्ची टिकट	पर्ची टिकट*	
Boiler maker	बॉयलर मेकर†	बॉयलर मिस्त्री*	

Boiler tube	बॉयलर की नली†	(बायलर) धूम्र नालिका	
Balance sheet	तुलन पत्र	स्थिति विवरण पत्र	
Balance weight	पासंग	संतोलन भार	
Booked route	बुक किया मार्ग	निर्धारित मार्ग	
Brake block	ब्रेक कुन्दा, रोधक कुन्दा	ब्रेक ब्लाक, ब्रेक गुटका	
Brake drum	ब्रेक ड्रम†	रोधक ढोल (रम्भ)	
Brake handle	ब्रेक का हत्था, ब्रेक का मूठ	ब्रेक हेन्डिल, रोधक मूठ (हत्था)	
Brake power	ब्रेक शक्ति, रोधक शक्ति	ब्रेक क्षमता, रोधन क्षमता, ब्रेक ताकत	Power (dynamic) = शक्ति Power (instrumental) = क्षमता
Brake rod	ब्रेक दंड†	रोधक दंड, ब्रेक दंड	
Buffer	टक्कर रोक	थापी *	
Buffer stop	टक्कर थाम	रोक थापी, संघात सह	
Bullheaded (Rail)	वृषभ सिरा	मुण्डी रेल	
Bunker	कोठा	कोठा, कुठली, प्रकोष्ठ	
Call book	कार्य पुस्तक	बुलावन पुस्तक	
Card pass	कार्ड पास†	कार्ड पास, स्थूल पारक	
Card ticket	कार्ड टिकट†	कार्ड टिकट, स्थूल पत्रक	
Carriage examiningpit	गाड़ी परीक्षण कूप	गाड़ी परीक्षण गोदी*	
Cashier	खजांची	रोकड़िया*, रोकपाल	Treasurer = खजांची
Chief cashier	बड़ा खजांची	प्रधान रोकड़िया	
Caution	सावधान	चेतावनी	
Caution indicator	सावधानता सूचक	सचेतक, चेतावनी प्रदर्शक	
Caution order	सावधानता आदेश	सचेतनादेश	
Cleaner	क्लीनर	सफाई वाला	
Clearance	अवकाश, गुँजाइश	अन्तराल	

Clerk	क्लर्क	बाबू*	
Coach	डिब्बा	संयान, रथ	
Coach (passenger)	सवारी डिब्बा	यात्री संयान	Wagon = डिब्बा
Coaching vehicle	कोचिंग वाहन	यात्री वाहन	
Coal	कोयला†	कोल*, कोयला	
Coal bunker	कोयला घर†	कोल घर	
Coal field	कोयला क्षेत्र†	कोल क्षेत्र	
Coal mine	कोयले की खान†	कोल खान	
Communicating	संचार यंत्र	संचारण	
Conversion	परिवर्त्तन	बदलना	Alteration = परिवर्तन
Coupled wheels	जुड़वाँ पहिये	युग्मित चक्के	
Coupler	योजक, आंकड़ा	युग्मक, मिथुनक	
Cow catcher	इंजन का पंखा	पक्खा, जीव निवारक	
Crane	क्रेन†, मलखूत†	बकोट यंत्र	पूर्वशब्दावलियों से
Cross movement	दुतरफा संचलन	दुतरफा आमदरफ्त, द्विदिश संचलन	
Detonator	स्फोटन यंत्र	स्फोटक, पटाखा*	
Device	कल, यंत्र, तदबीर, युक्ति*, उपाय*	युक्ति, तदबीर, उपाय	Machine यंत्र
Dog spike	कुत्ता कील	ग्राह कील	
Double acting	उभयवर्त्ती	द्विक्रियात्मक	
Double expansion	दोहरा विस्तार	दोहरा प्रसार	
Double lock	दो कुञ्जी वाला ताला†	दोहरा ताला	
Double key lock	दो कुञ्जी वाला ताला†	दो कुञ्जी ताला*	
Double riveted	दोहरी रिवट से कसा हुआ	द्विपंक्तिलवंगन	
Electric charges	बिजली का खर्चा†	बिजली खर्च, विद्युतव्यय	

Electric fittings	बिजली का लगा सामान	बिजली का सामान, विद्युत जुडनार	
Electric bell	बिजली की घंटी†	विद्युत घंटी	
Electric instruments	बिजली के औजार	विद्युतोपकरण	Tools = औजार
Examination pit	परीक्षण गर्त	परीक्षण गोदी, जांच गोदी*	
Extensometer	वितान्य मीटर	वितान्य मापी	
Fittings	फिटिंग्स†	जुडनार,* अन्वायोजक	
Fitting shop	फिटिंगशाला†	जुडनार घर*, अन्वायोजन शाला	
Fixed signal	स्थावर सिगनल	स्थायी सिगनल, स्थायी संकेतक	
Fly shunting	उडन शंटिंग	ठोकर शंटिंग*	
Fog signal	कुहासा संकेत	पटाखा*, कुहासा संकेतक	
Fouling mark	उल्लंघन चिह्न†	जाम चिन्ह, जाम पट्टी*	
Front Axle	अग्र धुरी, अगली धुरी	अग्रधुरा, अगला धुरा	
Front Truck	अगला ट्रक†	अग्र शकट	
Fuel stages	ईंधन स्थान	ईंधन मंच	
Goods truck	माल ट्रक†	मालशकट	
Hand rail	हस्तदंड†, डंडा, कटहरा†	हथडंडा, हस्तदंड, कटहरा	
Hand wheel	हथ पहिया	हथ चकरी*	
Haulage	कर्षण	ढुलाई*	Traction कर्षण
Haulage charges	कर्षण प्रभार	ढुलाई खर्च	
Head draughtsman	प्रधान नक्शा नवीस*	सदर नक्शा नवीस, प्रधान उद्रेखक, प्रधान मानचित्रक	
Home signal	निकट संकेत, निकट सिगनल	भीतरी संकेतक, घरेलू संकेतक	Outer signal = बाहरी संकेतक
Home station rest	अपने स्टेशन पर विश्राम	घर पर विश्राम	
Manual	गुटका	पोथी	Block = गुटका

Memo invoice	मीमो बीजक	रुक्का बीजक	Slip = परची
Metal badge	धातुबैज	धातुबिल्ला, चपरास,*	Medal = पदक, तगमा
Metre gauge	मीटर लाइन	छोटी लाइन*	Broad gauge = बड़ी लाइन Narrow gauge = सकरी लाइन
Mono rail	एक पटरी की लाइन	इकेहरी पटरी, एक पटरी	
Motor trolly	मोटर ट्राली†	मोटर ठेला	
Motor truck	मोटर ट्रक†	मोटर शकट	
Motor vehicle	मोटर	मोटर वाहन	
Movement (office)	गति	संचालन, चालन (कार्यालय)	Motion = गति
Net	निवल	निरा, निरी	
Railway warant	रेल वारंट†	रेल परवाना, रेल अधिपत्र	Warrant = अधिपत्र
Reply memo	जबाबी मीमो	जबाबी रुक्का*	
Rounding off	पूर्णांकन†	सरलांकन	
Ruling gradient	नियंत्रक ढाल	प्रमुख ढाल	
Running repairs	छोटी मरम्मत	चालू मरम्मत*	
Running room	परिचालक कमरा	परिचालक विश्रामालय	
Running shed	इंजन शेड†	इंजन गोदाम	
Scotch block	आड़, रोध	आड़क, रोधगुटका	
Sub Inspector	सहायक निरीक्षक	उपनिरीक्षक	
Stop signal	रोक सिगनल†	रोक संकेतक	
Tariff	शुल्कदर†	प्रशुल्क, शुल्कावलि	
Tank engine	टंकी इंजन	बंडा इंजन*	
Tender	टेंडर†	जलांगारी*	

Through road van	सीधी सडक वैन	सीधायान, आद्यंत मार्गी यान	
Track	पथ	रेल की लीक, लीक*	Path = पथ
Trailing truck	अनुयान ट्रक†	अनुयान, अनुगामी शकट	
Train Pipe	गाड़ी पाइप	ब्रेक पाइप	
Unclaimed consignment	वेवारसी परेषण	बेवारसी माल, अस्वामिक माल, बेदाबेदार लदान*	
Uniform velocity	एक सार वेग†	सम वेग	
Vacuum	निर्वात†	वैक्युम, निर्वात	
Wagon load	बैगन भार†	बैगन भर,* डिब्बा* भर,	
Wagon open	खुला वैगन†	खुला डिब्बा*	
Wagon transfer register	बैगन बदली रजिस्टर वैगन परिवर्त्तन रजिस्टर	डिब्बा बदली रजिस्टर	
Yard	यार्ड	प्रांगण	
Zonal railway	क्षेत्र रेलवे	क्षेत्रीय रेलवे	

*चिन्हित शब्द मुहाविरे में आ चुके हैं।
समिति द्वारा प्रयुक्त † चिन्हित शब्द भी ठीक है।

विज्ञान, अगस्त, १९५८,
पृष्ठ १३७-१४३

भारतीय दर्शनों में जगत् की रूपरेखा

नन्दलाल जैन

१. दर्शन का प्रयोजन—साधारणतया दर्शन का अर्थ दृष्टि या देखना होता है। अतः दर्शन मानव-मात्र के लिये प्राकृतिक या स्वाभाविक बात है। हमारी दृष्टि के लिये दो साधन हैं—ज्ञानेन्द्रियाँ या अन्य सूक्ष्म या दूरदर्शी यंत्रादिरूप भौतिक साधन और बुद्धि मन या आत्मा जैसे अभौतिक साधन। धर्म को देखने और परखने के लिये सामान्यतः दर्शन का अवतार हुआ है। हमारे वर्तमान युग में देखने जानने के भौतिक साधनों ने इतनी प्रगति करली है, कि हमें मात्र बुद्धि या मस्तिष्क की बातों पर प्रत्यक्ष विश्वास करने के लिये उन बातों का इन साधनों द्वारा स्थापन आवश्यक सा प्रतीत होने लगा है। मेरी बुद्धि में तो यह बात आती है कि दर्शन का मूल प्रयोजन भौतिक-अभौतिक साधनों द्वारा तथ्य-परीक्षण कर 'तत्व' प्राप्त करा देना है। भारतीय दर्शन शास्त्र के इतिहास पर दृष्टि डालने पर जहाँ एक ओर हमें तीव्र अन्तर्दर्शिता के दर्शन होते हैं, वहीं हमें भौतिक साधनों द्वारा तत्वान्वेषण के प्रति उल्लेख या संकेत तक की गंध नहीं आती है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन जहाँ बुद्धि-चाकचैक्य के रूप में रह कर भौतिक जगत को स्वप्नसम, असत, संवृति मात्र बता कर भूतल पर रहने वाले प्राणियों के लिये बुद्धगम्य, ईश्वर व स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने की आशावादी प्रेरणा देता है, वहीं वह भौतिक जगत् के प्रति उपेक्षित बना देता है, जिसका ही यह फल है हमारे देश में जैसी अनैतिकता, विषमता और अव्यवस्था हो रही है, वैसी किसी भी भौतिकवादी देश में नहीं पाई जाती। अतएव आज की भौतिक साधनों की उपस्थिति ने भारतीय दार्शनिकों के समक्ष एक स्वात्म-पर्यालोचन एवं संस्करण का अवसर उपस्थित किया है, जिसका लाभ हमारे दार्शनिकों को लेना चाहिये और हमें मात्र परलोक सुधारने की भावना को आधार बनाकर धर्म पालन को संस्थापित करने वाली परंपरा के साथ-साथ उतनी ही महत्ता के साथ इहलोक कल्याण की भावना का भी पोषण करना चाहिये, ताकि समाजवादी समाज भौतिक जगत् में ही स्थापित हो सके, परलोकादि में उसकी समस्या ही क्या हो सकती है!

२. दर्शनों की प्रामाणिकता : जब कभी हम दर्शन की चर्चा करते हैं, तो हम सीधे ही उस वास्तविक तत्व के विषय में बात करने लगते हैं, जो एक है और अनंत भी है, जो सत् भी है, असत् भी है; संक्षेप में उसे बुद्धि से परे और शब्द-वर्णनातीत कह कर भक्ति श्रद्धा व स्वात्मानुभूति से प्राप्त बताया जाता है। उसी एकत्व की प्राप्ति को जीवन का ध्येय बना लिया गया है। यदि यह पूछा जावे कि प्रारंभ में सृष्टि में क्या था, तो बुद्ध के लिये यह प्रश्न 'स्थापनीय' या अविचारणीय (निष्प्रयोजनाचात्) हो जावेगा, क्योंकि इससे हमारे दैनिक व्यवहार में कोई अंतर नहीं पड़ता है। हिन्दू मतों के अनुसार कमलनाल से ब्रह्म और तदुपरान्त सृष्टि हुई। जैन मतानुसार सृष्टि जैसे आज है वैसे ही प्रारंभ में थी : यह अनादि और अनंत है सृष्टि के कर्ता के रूप में विभिन्न वादों ने सृष्टि के प्रारंभ को चेतन जन्य बताया है, जैनमत सृष्टि को अकर्तृक एवं प्राकृतिक मानता है। बुद्धमतावलम्बी तो सृष्टि 'चराचर' जगत् को मात्र कल्पना (ज्ञान, आलय, विज्ञान, परंपरा) और शून्य

मानते हैं। वेदान्तियों ने तो इसे मायाजाल और ब्रह्म विवर्त माना है। सभी धर्म और दर्शनों का आविर्भाव 'संसार दुखमय है' से प्रारंभ हो कर 'संसार छोड़ो' पर समाप्त होता है। ऐसी स्थिति में दृश्यमान चराचर सृष्टि के विषय में विभिन्न दर्शनों के विभिन्न मत होने पर प्रामाणिकता की स्थापना की समस्या आज हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

भारतीय दर्शनों में भौतिक जगत् के संबंध में दो विचार धारायें स्पष्ट दिखती हैं एक तो है लोकायतिक-ऋणं, कृत्वा घृतं पिबेत् वाली—प्रकृष्ट भौतिक वादी धारा जो सभी बुद्ध्यगम्य सत्ताओं से इंकार करती है। और दूसरी है—वेदान्त (या उपनिषदीय) धारा जो एक बुद्ध्यगम्य की सत्ता को स्वीकार कर भौतिक जगत् की असत्वता मानते हुए पूर्णात्मवादी धारा है। ये दोनों ही धारायें संसार समुद्र के दो किनारे हैं, सुदूरवर्ती, जिनके मिलने की गुँजाइश कई दर्शनों में रखी गई है। दृष्टान्त के तौर पर साँख्यमत जड़चेतनवाद मानता है जड़ परिवर्तन शील है और चेतन अपरिवर्तनशील या नित्य हैं, पर दोनों में बुद्धिदर्पण के कारण छाया प्रतिबिम्ब के रूप में मित्रता हो जाती है, और जड़ के भले बुरे परिवर्तनों का फल बेचारे निष्क्रिय चेतन को भुगतना पड़ता है बुद्धमत के सम्प्रदायों में 'सर्वास्तित्ववादी' संप्रदाय है, जो जड़, आत्मा, विज्ञान भौतिक जगत् के सभी पदार्थों को स्वीकार करता है, पर उन्हें सदा परिवर्तन शील मानता है, यत्सत् तत् क्षणिकं, अर्थक्रियासमर्थं। नैरात्म्यवादी होने के कारण आत्मा चेतन नहीं, पर जड़ ही परमाणुपुँज यहाँ मानी गई है। जैन मत स्वभावतः जड़ और चेतन को पृथक पृथक मानता है, और प्रत्येक को परिणामिनित्य, विरोधिगुण समुदाय युक्त, 'उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्' मानता है। और राहुल जी के शब्दों में आज के भौतिक जगत् के वैज्ञानिक रूप के वर्णन के निम्न तीन आधार हैं— १) विरोधि समागम (विद्युत् धारा प्रवाह, स्त्री पुरुष आदि) (२) परिमाणभेद से गुण भेद (H_2O से पानी, H_2O_2 से दूसरा पदार्थसैलों की निश्चित संख्या तक अजीवता, तथा संख्याधिक्य से सजीवता का प्रादुर्भाव) (३) प्रतिषेध का प्रतिषेध क्रिया और प्रतिक्रिया) जिनके आधार पर अचेतन से चेतन की सृष्टि हुई है, यद्यपि जीवन की प्रारंभिक अवस्था में निर्जीवता व सजीवता की कोई स्पष्ट सीमा रेखा नहीं है, जिसके दृष्टान्त स्वरूप 'विरस' नाम धारी न्यूक्लिओप्रोटीन लिये जा सकते हैं, जिनकी रचना में शर्करायें, फास्फोरिक अम्ल तथा नाइट्रोजनीय क्षार वाले वृहदणुक अम्लों से संयुक्त प्रोटीन-सम्मिश्र प्रोटीन-पाये गये हैं एवं जिनमें प्रसव क्रिया देखी गई हैं, जो सजीवता का चिन्ह है। तात्पर्य यह है भौतिक जगत् का कुछ तथ्य दर्शक रूप साँख्य, जैन एवं बौद्ध दर्शनों में प्राप्य हैं। यद्यपि बौद्ध दर्शन में डा० चद्रधर शर्मा ने 'बोधिचित्। या धर्मधातु के रूप में लंकावतार सूत्र के आधार पर जगत् को मिथ्या (परमार्थतः या संवृतिसत्य मानकर अद्वैत के समान एक तत्वी प्रतिपादन विज्ञानवादियों एवं शून्यवादियों के मत से प्रस्थापित किया है। उक्त तथ्य-दर्शक रूप से यह स्पष्ट है कि भौतिक जगत् सजीव और निर्जीव-दो पृथक् गुणधारी (पदार्थों) से व्याप्त है, चाहे निर्जीवात्मक जड़ रूप अंश मायाजाल ही क्यों न हो, विवर्त ही क्यों न हो, असत् ही क्यों न हो, व्यवहारसत्ता उसकी सभी दर्शन-वैज्ञानिक दर्शन-भी स्वीकृत करते हैं लेकिन प्रश्न यह होता है कि भौतिक जगत् में इन सजीव निर्जीव पदार्थों का अस्तित्व कब और कैसे हुआ ? इनका मूल रूप क्या है ?

३—वेद और उपनिषदों में सृष्टि—सृष्टि विषयक उल्लेख वेदों में कम है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त १०।१२९ में बताया गया है विश्व में प्रारंभ में सत्, असत् कुछ नहीं था, यह भेद शून्य जल मात्र था, जो एकाकी स्वावलंबी शक्ति से श्वसित था। सर्व व्यापी चेतन शक्ति की इच्छा हुई और चेतन से समस्त सृष्टि का उद्भव हुआ। इससे अधिक जब जिज्ञासा हुई तो स्पष्ट ही अपना अज्ञान प्रदर्शित करते हुए कह दिया "वही जानता है, जो द्यौलोक का शासन करता है।" उपनिषदों में भी यद्यपि विश्व विषयक स्पष्ट और व्यवस्थित उल्लेख नहीं है, फिर भी 'आप एवं इदमग्र आसुः' जैसा

रूप बृहदारण्यक में पाया जाता है। आरुणि-श्वेतकेतु का शारीरकब्रम्हवाद पोषक प्रसिद्ध संवाद सत् व अदृश्य सूक्ष्म अणु से स्थूल जगत् की बात कहता है। अणु की सत्ता बीज के चूर्णीकृत अदृश्य अंश व नमक के घोल में विद्यमान अदृश्य सूक्ष्म लवण कणों के समान सिद्ध करता है यहाँ भी 'सदेव...सोम्य इदमग्र आसीत के साथ कार्य कारण वाद की प्रख्यापना करते हुए चेतन सत् की 'बहुस्याम्' कामना से क्रमशः तेज सूर्य या ज्योति पिंड) जल और अन्न (पृथ्वी) आर्विभूत हुए, अन्न की परिपक्ति से तीन अश प्राप्त होते हैं। स्थूल (निम्न धातु (१) पुरीष, बिचला (२) मांस और अतिसूक्ष्म भाग (३) मन जैसे दही से सर्पिः (मक्खन)। बृहदारण्यक में सत्कार्यवाद है, पर कामना से छान्दोग्य के विपरीत पहले जल, तब पृथ्वी, तब अग्नि (सूर्य , उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार सत् ने अकेलेपन के कष्ट को मिटाने के लिये अपने ही पुरुषात्मा को दो भाग कर प्रजनन कार्य का भी प्रारंभ किया। इस तरह छांदोग्य में जहाँ प्रजनन का वर्णन ही नहीं है या उसे पृथ्व्यादि प्रकृति जन्य-सा प्राकृतिक माना है, यहां उसे चेतन की कामना का रूप दे दिया है। फलतः चेतन–अचेतन–सारी–सृष्टि सत् (भावरूप चेतन) से उत्पन्न हुई बताई है। सत् से जगत् ठीक ऐसे उत्पन्न होता है जैसे अंगारे से चिंनगारियाँ। यह बताया गया है कि पाँचवीं आहुति (विकास-स्तर ?) में जल पुरुषनामरूपात्मक (चेतन) होता है।

एतरेयोपनिषद् में कुछ आगे का विवरण मिलता है—सत् से जल–जल से (पाँचवी आहुति में) शरीर—उसमें क्रमशः मुख, नाक, कान, आँख, त्वक् हृदय, नाभि, शिश्न (जननेन्द्रिय) विकसित हुए जिनके अनुरूप विभिन्न सहायक अवयव बने।

सत् ब्रह्म की जिज्ञासा हुई, तो तैत्तिरीय उपनिषद ने कहा--अन्न ब्रह्म है--विज्ञान ब्रह्म है--आनंद ब्रह्म है--फिर 'यतो वाचो निवर्तनो, अप्राप्य मनसा सह' वह ब्रह्म है–यहां बुद्धयगम्य ब्रह्म बन गया।

प्रश्नोपनिषत में प्राण (जीवन) व रयि (भूत)–दो तत्व बताये गये हैं जो एक ही सत् के रूप हैं। सारे भूत प्राण से उद्भूत हैं, क्योंकि प्राण निकलने पर अन्य सब निकल जाते हैं। भूतों की उत्पत्ति व विकास का क्रम यहाँ निम्न है। सत् से आकाश, वायु, अग्नि जल, पृथ्वी, (वाणी, मन, नेत्र, श्रोत्र,) अर्थात मूलसत व अग्निपिंड के बीच दो तत्व और उत्पन्न हुए, इसके बाद भौतिक तत्त्व, पार्थिव वस्तुओं में फिर क्रमशः इंद्रियों व मन का विकास इस सबका एक ही मूल है—प्राण चेतन, जीवन)

केन और कठ उपनिषद् में पुरुष की परापरता के उल्लेख से साँख्य के सृष्टि क्रम का आभास होता है—इंद्रियों के (विकासोपरान्त) बाद मन, बुद्धि, अहं भाव, प्रकृति, पुरुष क्रमशः श्रेष्ठ हैं, इस क्रम के विपर्यय से हम पूर्वोक्त सृष्टि चक्र पाते हैं। पुरुष में अहंभाव की उत्पत्ति, 'बहुस्याम्' की बुद्धि, इंद्रिय प्राणों का विकास चेतन (पुरुष अणोरणीयान महतो महीयान् है। इन उपनिषदों में अभी तक सत् व सृष्टि दो ही वस्तुयें थीं, अब यहाँ सत् (आदि ब्रह्म) आत्मा (प्रत्यम् ब्रह्म) व सृष्टि (पृथ्व्यादि भूतात्मक) तीन वस्तुयें विश्व में हो गईं।

मुंडकोपनिषत में पुरुष को हृदय में छिपा बताया है और कहा है कि अग्नि से शिखाओं के समान अक्षर (ब्रह्म) से क्षर नश्वर) जगत् उत्पन्न होता है, जिसका प्रथम रूप प्राण, मन व इंद्रियाँ है, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी देव मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राणपान औषधि रस आदि पैदा होते है। निमित्त और उपादान बनकर सत् ब्रह्म सृष्टि का सर्जक होता है। एक जगह अंगुष्ठमात्रः पुरुषः (आत्मा) भी बताया गया है। श्वेताश्वतर में विश्व मकड़ी की भांति अव्यक्त (प्रकृति) से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा गया है। प्रकृति को अचेतन बताया गया है। सृष्टि का मूल (भौतिक) अचेतन है। आदि पुरुष तो पृथक है, उसे सृष्टि से कोई प्रयोजन नहीं है।

उपनिषदों के विवरण से हमने यह देखा कि यह सृष्टि–किसी एक ही कारण से चाहे वह चेतन (आदि सत्) हो, या अचेतन (प्रकृति) हो—उत्पन्न होकर विकसित हुई है।

४. वेदान्त में सृष्टि—उपनिषदीय ज्ञान पर आश्रित ही वेदान्त दर्शन है। इसके अन्तर्गत, माया अविद्या, ब्रह्म, जीव, साक्षि, प्राज्ञ, ईश्वर आदि के विवरण की विशेषता के बावजूद भी सृष्टि विषयक कुछ सामग्री मिल जाती है। अनिर्वचनीय गुण युक्त चेतन ही, जो हृदय में अणुमात्रावच्छिन्न हो अधिष्ठित है, माया द्वारा आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति का कारण है। प्रतीयमान अचेतन सृष्टि चेतन ब्रह्म का अंश होने से चेतन ही है, उसका अविकसित रूपः सृष्टि में विद्यमान खनिजों से लेकर मानवों तक का नाम रूप प्रपंच एक पैमाना है, जहां विकास की स्थूलता से सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। आदि चेतन का स्वभाव ही सृष्टि निर्माण है, उसके स्वभाव की यह स्थूल अभिव्यंजना है। सृष्टि के मूल कारण के लिये 'ईश्वर' की बात है, जो चेतन ब्रह्म व अचेतन प्रकृति के समागम का रूप ही है। यह मूल कारण सत्, अविनाशी व त्रिकालवर्ती है। इस प्रकार वेदान्त का चरम दृष्टि कोण सृष्टि के विवरण पर इतना नहीं है, जितना उसकी एक मूलकता की ओर : श्री. जे. बी. एस हाल्डेन के इस वर्ष के भाषणों का सार भी सृष्टि के मूल की एकरूपता ही सिद्ध करती है। सृष्टि की एकमूलकता के अतिरिक्त उसका भौतिक रूप भी उपनिषद् जैसा ही है: कुछ बातें और स्पष्ट होती हैं—सूक्ष्म शरीर (भूत) की बातः पंचभूत से पंच तन्मात्रायें, उनसे सूक्ष्म शरीर चेतन या अचेतन) उससे स्थूल शरीर और जगत्। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि जगत् का आविर्भाव 'सूक्ष्म' कणों की ईश्वर या अदृष्टकारित प्रक्रियाओं का परिणाम है। वेदान्त की एक बात महत्वपूर्ण है सृष्टि को कोई आदि-सूक्ष्म चेतन की अभिव्यक्ति (विवर्त) और कोई क्रमिक परिवर्तन (परिणाम) का क्रम मानते हैं। परिवतंन यदि विकास की प्रक्रिया मानी जावे, तो सूक्ष्म चेतन के क्रमिक विकास का ही यह सृष्टि रूप है।

५. साँख्य-योग में सृष्टि—उपनिषत् और वेदान्त के अनुसार सृष्टि का मूल एक ही है, पर इस युग में इस विषय पर एक मत नहीं दिखता है, क्योंकि वहीं भिन्न मत भी दृष्टिगोचर होते हैं। सांख्य-योग की सृष्टि के मूल में दो तत्व माने गये हैं—चेतन और अचेतनः निष्क्रिय और क्रियाशीलः क्रियाशील को प्रकृति बताया गया है उसमें सत्व, रज व तम गुणों के कारण परिवर्तन होते हैं जिन्हें धर्म (गुण , लक्षण, और अवस्था परिणाम कहा जाता है। नाना कारणों से, सत् कार्यवाद के अनुसार, कार्य उत्पन्न होता है। इस सृष्टि के मूल कारण की खोज करते-करते उसे अनादि और अनंत माना गया है : साथ ही प्रलय को भी प्रकृतिक माना गया है। सांख्य के अनुसार, सृष्टि में २५ तत्व हैं और ईश्वर मिला कर योग के २६ तत्वः।

६. न्याय—वैशेषिक—इन दर्शनों में 'यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः 'और'...तत्व ज्ञानान्निःश्रेयसम् की प्रतिज्ञा के अन्तर्गत भौतिक जगत् सम्बन्धी विश्लेषण दिया गया है। वैशेषिक दर्शन का नाम 'विशेष' नामक नवीन पदार्थ मानने के कारण है, जिसके अनुसार सृष्टि में छह प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं—(१) नव द्रव्य (चार भौतिक भूत), भौतिक मन, आकाश, आत्मा, काल, दिशा-चार-अभौतिक) (२) चौबीस गुण, जो भिन्न-भिन्न द्रव्यों में पाये जाते हैं, जिनमें आत्मा व पृथ्वी में १४-१४ पाये जाते हैं (३) पाँच कर्म, उत्क्षेपण, अवक्षेपण, सिकुड़ना, फैलना और गमन, (४ सामान्य (जाति वाचक पदार्थ) ५, विशेष (६) समवाय, अयुत सिद्धों का संबंध। इन छह पदार्थों में से तीन-द्रव्य, गुण, कर्म-दृष्ट-हेतुक हैं, बाकी अदृष्ट-हेतुक हैं। वैशेषिकों को ही भारत में परमाणुवादी होने का श्रेय दिया जाता है : इनके मुख्य चारभूत द्रव्यों का मूल परमाणु है जो नित्य, अदृश्य, सूक्ष्म, रूपादिगुणयुक्त हैं, अविभागी भी है, (सदकारण वन्नित्यं)। वैशेषिक दर्शन में दो बातें महत्वपूर्ण हैं—(१) ताप के कारण परमाणु पिंडों में 'पीलुपाक' या 'पिठर पाक' रूप से परिवर्तन होता है और (२) प्रारंभिक परमाणुपिंडों का निर्माण प्रकृति (अदृष्ट) प्रेरित होता है।

न्याय-दर्शन वैशेषिक का परमाणुवाद मानता है

हैं। स्थानीय प्रश्न होने से सृष्टि के मूल, आदि, अंत विषयक चर्चायें यहां नहीं मिलतीं, पर जो जड़ पदार्थ हैं, उन्हें 'चार महाभूतों की काया' के रूप में व्यक्त किया गया है। द्वादशाँगी प्रतीत्य समुत्पाद (कार्य कारण वाद) के अनुसार पंच स्कंध (भौतिक तत्व और मन) आहार से उत्पन्न होता है, चेतना प्रत्यय से उत्पन्न होती है: जगत् गुणात्मक परिवर्तन और विच्छिन्न प्रवाह का मिश्रित रूप है। विश्व के मूल तत्व दो ही तो हैं— (१) नाम-मानसिक। व सूक्ष्म पदार्थ व (२) रूप-स्थूल व भौतिक पदार्थ। ये दोनों परस्पराश्रयी हैं : सहजन्मा भी: बुद्ध के दर्शन को यदि हम आज की कोटि में कहें, तो आइन्स्टाइन के 'सापेक्षवाद' के आगे की कोटि कह सकते हैं, जहाँ अपेक्षा छोड़ अनिवर्चनीयता आ गई है।

८. विज्ञान-सम्मत सृष्टि का रूप—तेज: से जल, जल से (तरल तेज:) पंचभूतात्मक परमाणुमय सृष्टि का आविर्भाव, एवं पूर्वोक्त विधि से सजीव सृष्टि वनस्पति और मानव सजीव हैं, इसका प्रथम वैज्ञानिक संकेत उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में मिला था जब यह बताया गया कि वे एक ही प्रकार के 'सेल' (तन्तुओं) से निर्मित हैं। ये सेल पार्थिव है, और इनमें रचना-परक संकुलता के साथ वृद्ध, प्रजनन आदि की क्रियायें देखी जा चुकी हैं। इस वर्ष रसायन शास्त्र के नोबल-पुरस्कार विजेता ने इन्हीं न्यूक्लिओ-प्रोटीन युक्त सेलों से जीवन-विकास की प्रक्रिया का सूक्ष्य अध्ययन किया है। १८५९ के डार्विन के विकासवाद ने जीवन व जातियों के विकास की एक सुलझी हुई वैज्ञानिक रूपरेखा रखी: यद्यपि अब उसमें कुछ दोष भी बताये जाने लगे हैं। इसके अनुसार जीवन्त वस्तुओं में परिस्थितियों से लाभ उठा कर जाति परिवर्तन की क्रिया होती है, और नयी सजीव जाति का विकास होता है : प्रारम्भ में कर्मेंद्रियों का विकास हुआ है, फिर ज्ञानेन्द्रियों का (भारतीय दर्शन पांच इंद्रिय मानता है, विज्ञान उन पांच के अतिरिक्त 'तोलन' नामक छठी इंद्रिय भी मानता है), फिर मस्तिष्क या मन और चेतना-शक्ति युक्त मानव का आविर्भाव हुआ है। वैज्ञानिक मन और चैतन्य को भौतिक एवं नश्वर मानते हैं कुछ भारतीय दर्शनों में-जैन-बौद्ध में मन प्राकृतिक भौतिक एवं आहार से निर्मित, कायाश्रित माना गया है। नश्वर भी : छान्दोग्योपनिषद् में भोजन के सूक्ष्म परिणमन के रूप में मन को भौतिक बताया गया है। कुछ दर्शन-न्याय-सांख्य में मन को भौतिक-अणु रूप-एवं स्थिर बताया गया है, यह स्थिरता विज्ञान सम्मत नहीं है) मन को क्रिया मानने का भी एक मत आज प्रचलित है, जो विभिन्न तन्तुओं (ज्ञान) के संदेश-आदेशों का प्रसारण, संकलन एवं संयोजन- नियंत्रण के रूप में व्यक्त होता है।

इसी प्रकार चैतन्य भी मस्तिष्क (मन) की क्रिया का एक विशिष्ट रूप माना जाता है : न्याय दर्शन चैतन्य को 'मुक्ति होने पर' नाशवान् मानता है। बौद्ध दर्शन मन (भौतिक) ही चेतना के रूप में कहता है : अन्य दर्शनों में चेतन एक स्वतंत्र तत्व स्वीकृत किया गया है, और 'संघात-पदार्थत्वात् अंतप्रत्ययत्वात् स्मृति, इच्छा, सुख-दुखादि प्रवृत्तियों के कारण नित्य स्वीकृत किया गया है। कहीं-कहीं 'अणोरणीमान्- महतो महीयान्' के द्वारा कुछ उसकी भौतिकता का निरूपण भी माना जा सकता है : एक रूसी वैज्ञानिक श्री पाव-लोव के अनुसार सेरेब्रम-के करोड़ों-तन्तुओं की क्रिया है : इस क्रिया में अतीत के प्रतिबिंब 'चित्रों' के 'निगेटिव' के समान उन तन्तुओं में रहते हैं, जो उत्तेजित होने पर स्मृति का कारण बनते हैं। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का मूल रूप निम्न होगा—

(१) सृष्टि के प्रारंभ में तेज था, उससे जल, व पार्थिव तत्वों का परमाणुमय रूप में उद्भव हुआ।

(२) सजीव सृष्टि का विकास क्रमश: जल से ही प्रारम्भ हुआ है : वनपस्पति, पशु-पक्षी व मानव सजीव हैं।

(३) सजीव सृष्टि का प्रादुर्भाव अचेतन परमाणुओं से, अणुगुच्छक, गुच्छक, प्रोटीन, न्यूक्लिओ-

प्रोटीन, सेल, प्रोटोजोआ बनस्पति, अमीबा आदि के रूप में विकासवाद के अनुसार हुआ है। सेल का कुछ अंश नश्वर है, कुछ 'क्रोमोसोम' आदि के रूप में अमर रहता है।

(४) मन और चेतना भौतिक क्रियाएँ हैं। जो अगणित ज्ञानतन्तुओं एवं मस्तिष्क के कार्य हैं।

(५) चन्द्र, मंगल, आकाश गंगा, नीहारिकायें आदि तेजः (यह) भी इस सृष्टि में हैं : नरक-स्वर्ग कुछ नहीं।

(६) विश्व अनादि और साँत है : क्योंकि यह सान्त परमाणुओं से निर्मित है।

—:o:—

देश में बढ़िया और सस्ती सड़कें

[शेष पृष्ठ १४४ का]

५ से १० प्रं० श० चूना मिलाने से खराब से खराब काली मिट्टी पर भी बढ़िया पक्की सड़क बन सकती है। इस बारे में अब और परीक्षण किये जा रहे हैं।

राजस्थान के मरुस्थल में पानी और पत्थर की कमी, बहुत आड़े आती है। अनुसंधानशाला, रेत को जमाने के लिए राल या दूसरी चिपकने वाली चीजों का प्रयोग करके देख रही है और इसके प्रयोग के लिए राल और रेत की छोटी-छोटी सड़कें भी बनायी गयी हैं।

कंकरीट में मिट्टी के प्रयोग से कंकरीट की सस्ती सड़कें बनाने की भी कोशिश की जा रही है। अनुसंधान के परिणामों को व्यवहार की कसौटी पर कस कर देखा जाता है और इसके लिए भिन्न भिन्न मौसम में और हल्के भारी सब तरह के यातायात के लिए छोटी-छोटी सड़कें बना कर नयी सामग्री की उपयोगिता की जांच की जाती है।

अमेरिका आदि देशों की तुलना में हमारे देश में घातक सड़क-दुर्घटनाएं काफी कम होती हैं फिर भी यदि १० हजार गाड़ियों पीछे हिसाब लगाया जाय तो भारत में इन दुर्घटनाओं की संख्या बहुत अधिक यानी ७५ बैठती है, जब कि ब्रिटेन में यह औसत १६ और अमेरिका में ८ हैं।

अनुसंधानशाला का यातायात विभाग और कुछ अन्य संगठन इस बात की पड़ताल कर रहे हैं कि नयी दिल्ली और आस-पास के रास्तों पर कितना और किस प्रकार का यातायात होता है और इसे कैसे नियंत्रित किया जा सकता है। अनुसंधानशाला ने, नयी दिल्ली में कुछ सड़कों पर यातायात के संकेतों की अच्छी व्यवस्था करने की योजना बनायी है।

दिल्ली में साइकिलों की भरमार है और यातायात का ६० प्र० श० साइकिलें ही होती हैं। ऐसी जगहों के लिये साइकिलों के उपयुक्त सड़क का नमूना तैयार किया गया है। सड़क-दुर्घटनाओं की पड़ताल से पता चला है कि हर तीन में एक दुर्घटना साइकिलों से होती है।

हमारे देश में अभी बरसों तक बैलगाड़ियाँ भी चलेंगी। लेकिन इनकी हाल से सड़क बहुत जल्दी खराब हो जाती है। भारतीय सड़क काँग्रेस के सहयोग से यह अनुसंधानशाला गाड़ियों के लिये पहिये और धुरे का एक ऐसा मेल तैयार करने की कोशिश कर रही है, जिसकी हाल सड़क के उभरे हुए हिस्से को काटे नहीं।

इस प्रकार अनुसंधानशाला हर तरह की छोटी-बड़ी सड़कों की समस्याओं को हल करने में संलग्न है और इस काम में इसे वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों तथा सीमेंट और कोलतार जैसे उद्योगों से बड़ी मदद मिल रही है। बदले में इन उद्योगों को भी इसके अनुसंधानों से लाभ होता है।

देश में बढ़िया और सस्ती सड़कें

दिल्ली-मथुरा सड़क पर, ओखला के पास, केन्द्रीय सड़क अनुसंधान शाला के सामने करीब आध मील की सड़क पर मोटर कार से गुजरने वालों को कुछ अधिक झटके लगने से शायद झूंझल आती हो। लेकिन यदि उन्हें यह पता लग जाय कि वे किसी अनुसंधान में हाथ बंटा रहे हैं, तो शायद वे इन झटकों का बुरा नहीं मानेंगे।

इस आध मील की सड़क को केन्द्रीय सड़क अनुसंधान शाला ने बनाया है, और इसमें १८ विभिन्न तरीकों और सामग्री से सड़क बनायी गयी है, इसका उद्देश्य यह देखना है कि किस तरीके से किस चीज की बनी सड़क सबसे मजबूत रहती है और किन कारणों से सड़क जल्दी टूट-फूट जाती है।

पैदल से लेकर मोटर में चलने वाले तक, हर सवारी के लिए सड़क बड़ी जरूरी है। हमारे देश में करीब १ करोड़ बैलगाड़ियाँ, ४० लाख साइकिलें और ४ लाख मोटरगाड़ियाँ हैं, जिनमें ४० हजार मोटर साईकिलें हैं। अनुसंधानकर्ता को इन सबके लिये उपयुक्त आदर्श सड़क बनाना चाहे जितना असाध्य हो, पर उसे यह करना अवश्य है। इतना ही नहीं, दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में उसे देश में करीब ड्योढ़ी सड़कें फैलानी हैं और इन सड़कों को हर साल करीब ६ करोड़ टन और १९६०-६१ तक २७-२८ करोड़ टन माल ढोने लायक मजबूत भी बनाना है। साथ ही सड़कें सस्ती भी हो, यह भी उसका जिम्मा है। साराँश यह है कि देश की बढ़ती हुई समृद्धि के साथ-साथ देश में सड़कों का भी जाल फैलते जाना चाहिए।

देश में कुल ३,१६,००० मील लम्बी सड़कें हैं, जिनमें से ९७,५४६ मील की सड़कें पक्की हैं। ये सड़कें पहाड़ों, रेगिस्तानों, जंगलों आदि हर प्रकार के भूभाग में फैली हुई हैं।

नयी सड़कें बनाने के बारे में केन्द्रीय सड़क अनुधानशाला की एक महत्वपूर्ण खोज है स्थानीय सामग्री के प्रयोग की। इस खोज के कारण डामर की सड़क की लागत आधी हो गयी है। उदाहरणार्थ, पंजाब में स्थानीय चीजों से जो २५० मील की सड़कें बनायी गयी हैं, वे हर तरह के यातायात के लिए काफी मजबूत सिद्ध हुई हैं। अब मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, आसाम और बंगाल में भी सस्ते सामान की खोज के लिए मिट्टी की परीक्षा आदि की जा रही है।

शायद यह जानकर बहुतों को आश्चर्य हो कि हमारे देश में बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ सड़क में काम आने वाला पत्थर मिलता ही नहीं और दूर से लाना काफी मंहगा पड़ता है। बम्बई का उत्तरी भाग, मध्यप्रदेश का कुछ क्षेत्र, मद्रास और आंध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्र, उत्तर प्रदेश और प. बंगाल के काली मिट्टी के क्षेत्र और राजस्थान के रेगिस्तानी भाग की यही स्थिति है। काली मिट्टी सूखने पर तो पत्थर जैसी सख्त हो जाती है, लेकिन पानी पड़ते ही यह कीच बन जाती है। सूखने पर इसमें दरारें पड़ जाती हैं, जिसके कारण ऊपर सड़क पर भी दरारें और गढ़े पड़ जाते हैं।

सड़क अनुसंधान शाला ने काली मिट्टी के इस दोष को दूर करने की तरकीब निकाली है तीन प्रकार की काली मिट्टी पर परीक्षण किये गये और पता लगा कि

[शेष पृष्ठ १४३ पर]

विज्ञान अगस्त १९५८
पृष्ठ १४५-१४७

पूर्व का अत्यन्त घातक सांप—दबोइया

श्री रामेश बेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

३१ जनवरी १९५६ के दैनिक हिन्दुस्तान दिल्ली में एक सांप का शोक सम्वाद छपा है। लखनऊ के सम्वाद दाता ने इसमें लिखा है—लखनऊ के चिड़िया घर का एक मूल्यवान् प्राणी बहुत बचाव करने पर भी सरदी खाकर मर गया। वह भारत में प्राप्त भयंकर विषधर सांपों में से था। यह जिसको डस लेता वह कुछ क्षण ही जीवित रह सकता था जब कि काले नाग का खाया हुआ कुछ मिनट ही जी सकता है। वह गोमती की बाढ़ में गत वर्ष बह आया था। उसे दो रिक्शा मजदूरों ने पानी में पड़ा देखा था और वेउ से चिड़िया-घर में ले आये और कुछ थोड़े से पैसे में अधिकारियों को बेच गये। पीछे पता चला कि वह तो रसल्स वाइपर नाम का अंग्रेजी किस्म का सांप है। उसको एक विशेष बक्स बनवा कर बिजली के ताप यन्त्रों से गरम करके रखा गया। गत वर्ष की सरदी वह काट गया किन्तु इस वर्ष वह सरदी से मर गया। यह विषधर बहुत कड़ी सरदी सहन नहीं कर सकता।

उक्त तिथि के आसपास के अनेक दैनिकों ने भी इस समाचार को प्रायः ऐसे ही रोचक शब्दों में दिया है। इसे पढ़ कर मेरे अनेक मित्रों ने उत्सुकता से मुझसे इस सांप के बारे में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ प्रकट की हैं। हरिद्वार में यह सांप असाधारण नहीं है और हर साल मुझे कोई आधा दर्जन रसल्स वाइपर तो मिल ही जाते हैं।

विविध भाषाओं में नाम

उक्त संवाद में इसका नाम रसल्स वाइपर दिया है। यह लेटिन नाम है जो समस्तसंसार के वैज्ञानिकों में प्रचलित है। वैज्ञानिक दृष्टि से हमारे देश को नैसर्गिक सम्पदा का अध्ययन करने वाले प्रारम्भिक मनीषियों में से एक विद्वान् डाक्टर पैट्रिक रसल ने १७९६ ईसवी में इसका ध्यान आधुनिक जगत की ओर खींचा था। उनके सम्मान में इसे डाक्टर रसल का वाइपर 'रसल्स वाइपर' कहने लगे। इससे पूर्व भी हमारे देश-वासी इस सांप से भली भांति परिचित थे जन साधारण में यह दबोइया नाम से प्रसिद्ध है। दबोइया का अर्थ है दबकैल। खतरा देख कर यह अपने सिर को शरीर में दुबका लेता है। शायद इसी आदत के कारण इसे यह नाम मिला है। हिन्दी का यह दबोइया नाम अंग्रेजी में भी अपना लिया गया है। महर्षि सुश्रुत ने आदर्श मण्डली के नाम से इसका वर्णन किया है। इसकी पीठ पर सुस्पष्ट गोल-गोल निशान होते हैं इसी विशेषता को सुश्रुत ने आदर्श मण्डल शब्द में दर्शाया है। मलयालम, मलाबार, मैसूर आदि में इसके जो नाम प्रचलित हैं वे भी मण्डलों की विशेषता के आधार पर बने हैं। ये गोल निशान पीठ पर तीन पंक्तियों में चले गये होते हैं। इस विशेषता के कारण इसे चैन वाइ-पर या नैकलेस वाइपर भी कहते हैं।

कहाँ-कहाँ मिलता है

यह सामान्यतया मैदानों में पाया जाता है। कभी-कभी सात हजार फीट की ऊँचाई पर भी पाया गया है। भूटान के पहाड़ों के पास ब्रह्मपुत्र घाटी में देखा गया है। कुल्लू और काश्मीर की घाटियों में पाँच हजार से छह हजार फीट की ऊँचाई तक देखा गया है, यद्यपि यह मैदानों का तथा घाटियों में दो से तीन हजार

फीट तक का निवासी है। घने जंगलों को छोड़ कर सब जगह मिल जाता है। ऐसे खुले प्रदेशों को अधिक पसन्द करता है जहाँ सूर्य की धूप अच्छी तरह लगती है। कुछ क्षेत्रों में जैसे पंजाब में बम्बई के पड़ोस में और ब्रह्मा के कुछ भागों में तथा मद्रास प्रेजिडेन्सी में अधिक पाया जाता है। राजपूताना और बंगाल में मिलता है। ब्रह्मा, लंका, चीन, स्याम, मलय प्रायः द्वीप, बोर्नियो डच ईस्ट इण्डीज, सुमात्रा और जावा में तथा कोमेडो के छोटे द्वीपों में भी रहता है।

नाप

एशिया के मण्डली सांपों में वाइपर्स में यह सब से बड़ा सांप है। बहुत सुन्दर रंगों वाला यह सरीसृप बम्बई में पाँच फीट तक पहुँच जाता है। हरिद्वार में इस लम्बाई का दबोइया मैंने कभी नहीं देखा। हर साल मेरे पास जो दबोइये आते हैं उनमें कभी-कभी नौ इञ्च के बच्चे भी रहते हैं। अधिकतर तीन-साढ़े तीन फीट तक के रहते हैं। इस प्रदेश में यह सामान्यतया चार फीट एक इञ्च की लम्बाई प्राप्त करता है। इस नाम के सांप का घेरा छह इञ्च, सिर की चौड़ाई दो इञ्च और लम्बाई दो इञ्च होती है। पूँछ की लम्बाई सात इञ्च होती है।

फूत्कार-एंजिन के शब्द जैसी

छेड़ने पर यह इकट्ठा हो जाता है। गुस्से में तेजी से और स्थिरता से फूत्कार मारता है। इसके फेफड़े बड़े होते हैं। इनमें हवा भर लेता है और उसे अपने नथुनों से बाहर निकालता है जिससे ऊँची आवाज पैदा होती है। इसकी आवाज सब सांपों से ऊँची होती है। एक शाँत कमरे में यह आवाज पास खड़े हुए एंजिन की सी लगती है। श्वांस के प्रत्येक उच्छ्वास और निश्वास के साथ शरीर ऊपर उठता है और नीचे गिरता है जैसे धौंकनी चलाई जा रही हो। हमला करने के लिए जब यह तैयार होता है तो भयंकर फूकार करता है। एक बार किसी ने इसकी फूँकार सुनी हो तो वह इसे भूल नहीं सकता। पिटारी को छोड़ने पर यह जोर से फूँकार उठता है। ऐसा मालूम देता है कि भरी हुई फुटबॉल के किसी छिद्र से हवा निकल रही हो।

अत्यन्त घातक सांप

पूर्व के भयावह सांपों में मनुष्य जीवन के साथ फनियर के बाद दबोइये का सम्बन्ध है। बड़े विष दन्तों के कारण और बहुत अधिक विष डालने के कारण विषविद्या के कुछ विशारद इसे सामान्य फनियर से अधिक भयंकर समझते हैं, परीक्षणों में देखा गया है कि खरगोश के लिए इसके विष की न्यूनतम घातक मात्रा शिरना द्वारा ७.२३ मिलिग्राम प्रति किलोग्राम है। इस सांप से काटी गई मुर्गी आधे से सवा मिनट में मर जाती है, कुत्ते सात मिनट में और बिल्ली क़रीब एक घण्टे में मरती है, घोड़े प्रायः साढ़े ग्यारह घण्टे में मरते हैं। वॉल (१८८३) के परीक्षणों के अनुसार पक्षियों की अपेक्षा छोटे स्तन पोषितों को मरने में कुछ देर लगती है। ४ घनशतिमान सी. सी. की मात्रा में ताजा विष गिरगिट को दस मिनट में मारता है, एक्टन और नौलेस (१९१४) ने मालूम किया है कि जंगली चूहे के लिये न्यूनतम घातक मात्रा ०.५ से २.५ मिलिग्राम प्रति सौ ग्राम है और मौत आठ से चौदह घण्टों के अन्दर होती है। खरगोश और गिनिपिगों में जब घातक मात्राएं डाली गईं तो विष का कार्य इतना जल्दी नहीं हुआ जितना फनियर के विष से होता है। विष का कार्य मुख्यतया स्थानिक प्रतीत होता है, रक्त को जमा देने के कार्य के कारण विष उस स्थान पर ही रह जाता है। जंगली चूहों के उदाहरणों में सात सौ ग्राम भार वाले प्राणियों में शिरा द्वारा आठ से नौ मिलिग्राम दो से चार घन्टे में घातक था। प्राणी ने पहले बेचैनी दिखाई, श्वास उखड़ता सा मालूम दिया, फिर दम घुटने लगा, श्वास बन्द होने के कारण आक्षेप पैदा होने लगे, और पिछले अंगों का पक्षाघात हो गया। मृत्यु श्वास बन्द होने के कारण होती है। श्वास बन्द होने के कुछ समय बाद भी हृदय की धड़कन कुछ समय जारी रहती है। वॉल ने बताया है कि मेढक पर इसका प्रभाव बहुत कम होता है। पांच सेण्टीग्राम. (६६ ग्रेन) फनियर का सूखा विष एक मेढक को सत्तर मिनट में मार देता है परन्तु इतना ही रसल्स वाइपर का विष तुलना में बहुत तुच्छ प्रभाव उत्पन्न करता

है और नौ घन्टे में मेढक फिर पूर्णतया स्वस्थ हो जाता है।

फनियर की तुलना में रसल्स वाइपर की विष ग्रन्थियां छोटी होती हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि काटने में यह सांप कुछ सैकिण्ड तक उस स्थान पर दांत गड़ाये रहता है एक बार कुत्ते के साथ यह कुछ गज़ों तक घसिटता चला गया था। मेजर एफ० वाल का विश्वास है कि एक दंश में यह जितना विष घाव में पहुँचा सकता है वह क्षुद्र प्राणियों को तो निस्सन्देह शीघ्रता से मार देता है परन्तु बड़े प्राणियों को जल्दी मारने के लिए अधिक विष की आवश्यकता होती है। एक उदाहरण में एक जवान आदमी सात घण्टे में मरा था। एक पोस्ट मास्टर की करीब साढ़े तेईस घण्टे बाद मौत हुई थी। दबोइये ने उसे एड़ी पर काटा था, ढाई फीट लम्बे दबोइये के अंगुली पर दंश से एक आदमी की सत्ताईस घन्टे में मृत्यु हुई थी। मौत जल्दी हो या देर से, यह इस बात पर निर्भर करता है कि दंश में विष की मात्रा घाव में कितनी डाली गई है। इसके दंश से बहुधा मनुष्य मर जाया करते हैं। केवल आत्म रक्षा के लिए या छेड़े जाने पर ही यह मनुष्य को काटता है। साधारणतया मनुष्य को काटने में इसका विशेष झुकाव नहीं होता परन्तु जब काटता है तो पूरी शक्ति और दृढ़ता से।

—:o:—

स्पुतनिक और सूर्य

[शेष पृष्ठ १४८ का]

के साथ, सौर वायुमंडल के कुछ अंशों की चमक में जो कई मिनटों तक अथवा कई दर्जन मिनटों तक ठहरती है, आकस्मिक परिवर्तनों के साथ घनिष्ठ रूप में जुड़े हैं।

स्पुतनिक में रखे हुए यंत्र सूर्य की एक्स किरण तथा अतिवैंगनी विकिरण की तीव्रता में होने वाले परिवर्तनों को दर्ज करते हैं। इस तथ्य की तुलना पृथ्वी की सतह से किये गये सूर्य के तारा—भौतिकी पर्यवक्षणों के साथ करने से हमें बहुमूल्य वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होगी और हम क्रोमोमंडलीय विस्फोटों की प्रकृति की समस्या के समाधान के और भी निकट आ जाएंगे।

किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ये अनुसंधान केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से मनोरंजक हैं, व्यावहारिक दृष्टि से भी ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। क्रोमोमंडलीय विस्फोट यदि वे सशक्त हों तो देर तक रेडियो-संचार में व्यवधान डाल देते हैं, चुम्बकीय तूफान पैदा करते हैं, तथा सौर स्रोत के ब्रह्माण्डीय रश्मि प्रवाह उत्पन्न करते हैं।

सूर्य के लघु तरंग विकिरणों का अध्ययन करने के लिए विशेष प्रकार का यांत्रिक साज सामान तैयार किया गया है। एक दूसरे से १२० डिग्री के कोण पर लगाये हुये तीन प्रकाश-संग्राहकों में से कोई भी एक संग्राहक किरणों को पकड़ लेता है। यह यांत्रिक प्रसाधन इस ढंग से बनाया गया है कि वह तभी चालू होता है जब सूर्य की किरणें उस पर पड़ती हैं। इससे बिजली की खपत में पर्याप्त कमी हो जाती है। प्रत्येक संग्राहक के सामने धातु के पतले प्लेटों, पौली-एथेलिन फिल्म तथा विशेष प्रकार के दृष्टि सहायक उपकरणों के बने फिल्टरों से युक्त घूमने वाला चक्र होता है जिनसे सूर्य की लघु तरंग वर्णावली के विविध क्षेत्रों को अलग करने में मदद मिलती है।

प्रकाश संग्राहकों में पैदा होने वाले विद्युत् स्पन्दन विशेष प्रकार की रेडियो व्यवस्था द्वारा अनेक गुणा वर्द्धित कर दिये जाते हैं और उसके बाद पृथ्वी पर अवस्थित स्टेशनों में सम्प्रेषित किये जाते हैं।

सोवियत स्पुतनिक के प्रयोग सम्बन्धी हमारे प्रथम परीक्षण ऐसे ज्ञान की बहुमूल्य नई निधि से विज्ञान को निसन्देह समृद्ध करेंगे जो अभी भी हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है लेकिन जो अदूरवर्ती भविष्य में जब मानव ब्रह्माण्ड की यात्रा आरम्भ करेगा, विशेष रूप से महत्वपूर्ण होगी।

स्पुतनिक और सूर्य

[एस पोलोस्कोव, भौतिक और गणित- शास्त्र के डाक्टर]

सोवियत वैज्ञानिकों के सामने मुख्य कार्य प्रकाश और ताप के उद्गम स्रोत सूर्य का अध्ययन करना है। इस लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए सौर वर्णावली तथा ब्रह्माण्डीय विकिरण के अतिबैंगनी और एक्स किरण क्षेत्रों का लगातार कई दिनों तक पर्यवेक्षण करने के लिए स्पुतनिकों के ऊपर समुचित यंत्र रखे गये थे।

सूर्य में जीवन-अस्तित्व के विषय में जानकारी प्राप्त करना मानव जाति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पृथ्वी की जैव्य एवं अजैव्य प्रकृति में घटने वाली बहुत सी बातें इस नक्षत्र के अन्तरालों में और सतह पर होने वाली प्रक्रियाओं पर निर्भर करती हैं।

सूर्य से आने वाली दृश्य एवं अदृश्य दोनों प्रकार की विभिन्न किरणों की जाँच-परख के द्वारा हम इस ग्रह के बारे में प्रायः समस्त जानकारी प्राप्त करते हैं। लेकिन इन किरणों का अंश मात्र पृथ्वी तक पहुँचता है। वायु मण्डल २६०० ऐंगस्ट्रोम्स (एक ऐंगस्ट्रौम एक मिलीमीटर का १।१००००००० वाँ हिस्सा) तक तरंग दैर्ध्य पर प्रायः समस्त विकिरणों को सोख लेता है और इस लिए पृथ्वी की सतह से देखा नहीं जा सकता।

किन्तु सौर वर्णावली का मात्र यह हिस्सा वायुमंडल के ऊपरी स्तरों में अनेक भौतिक बातों को प्रभावित करता है। सूर्य का अतिबैंगिनी विकिरण (४००० पर २० ऐंगस्ट्रोम तक) ओजोन का निर्माण करता है, ऊपरी वायु मण्डल के मोटे स्तरों को विद्युत् परिवाही बनाता है और इस प्रकार अयनमंडल का निर्माण करता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अयनमंडल के अन्दर विविध स्तरों का निर्माण क्रोमोमंडल और प्रभामंडल से समुद्भूत विकिरण के प्रभावों के अन्दर होता है।

इन किरणों का अध्ययन किये बिना हम सूर्य के बाह्य क्षेत्रों की प्रकृति के बारे में अर्थात् वायुमंडल के बारे में जो क्रोमोमंडल कहलाता है, तथा उसके और भी दूरवर्ती हिस्से—प्रभा—मंडल के बारे में जाँच परख करने का विचार तक नहीं कर सकते। कहने का साराँश यह है कि सूर्य के इन क्षेत्रों का विकिरण मुख्यतः लघु-तरंगों के ऊपर होता है।

सौर वर्णावली की किरणें और भी ह्रस्व तरंग की होती है। ये एक्स किरणें हैं जिनका तरंग दैर्ध्य २० से ०००६ ऐंगस्ट्रोम तक होता है और जो स्वभावतः पृथ्वी तक नहीं पहुँचतीं।

सौर वर्णावली के इस क्षेत्र सम्बन्धी प्रारम्भिक प्रायोगिक तथ्य और आँकड़े रोकेटों के प्रयोग द्वारा प्राप्त किये गये लेकिन यह अल्पकालिक, अत्यन्त अपूर्ण पर्यवेक्षणथा जिससे कई प्रश्नों का समाधान नहीं होता था। उदाहरण के लिये पूर्ण विकिरण के सम्बन्ध में हमारा सूर्य ज्योतिर्विदों के मतानुसार एक अचल ग्रह है। इसका यह अर्थ है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वर्णावली के दृश्य भाग में सूर्य की शक्ति में नाममात्र का परिवर्तन होता है और इसका पूर्ण प्रवाह सौर क्रियाकलाप की अवस्थाओं से प्रायः स्वतंत्र होता है। वर्णावली का अतिबैंगनी क्षेत्र तथा विशेषकर एक्स किरणें बिल्कुल ही भिन्न चित्र प्रस्तुत करती है तथा विकिरण के गठन और परिमाण में भारी परिवर्तन होता है। इस प्रकार इस दृष्टि से सूर्य अत्यन्त परिवर्तनशील नक्षत्र है।

इन परिवर्तनों के कारण क्या हैं? अब यह पता लगाया गया है कि ये परिवर्तन सूर्य की सतह पर होने वाली प्रक्रियाओं के साथ, जैसे क्रोमोमंडलीय विस्फोटों

[शेष पृष्ठ १४७ पर]

विज्ञान अगस्त १६५८
पृष्ठ १४६-१५३

प्रागैतिहासिक एवम् वैदिक कालीन भारत में रसायन शास्त्र की प्रगति

डा० रमाशंकर राय एम० एस-सी०, डी० फिल०, रसायन विभाग गोरखपुर विश्वविद्यालय

भारत भूमि में सभ्यता का प्रारंभ ईसा के जन्म से चार सहस्राब्द पूर्व हो गया था। सिन्ध नदी की निचली घाटी तथा बलूचिस्तान में सर्व प्रथम कृषि पर आश्रित रहने वाले मानवों के चिन्ह मिलते हैं। इन लोगों की सभ्यता समकालीन भूमध्यसागरीय तथा पाश्चात्य एशिया की कांस्यकालीन सभ्यताओं से बहुत कुछ साम्य रखती है। विकास की इस शैशव अवस्था में मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाना और उन्हें आग पर पकाना सीख लिया था। इन प्रारम्भिक सभ्यताओं का कार्यकाल उत्खनन से प्राप्त मृरणपात्रों के आधार पर निर्धारित किया गया है।

बलूचिस्तान के क्वेटा, नाल नदी की घाटी, दक्षिणी बलूचिस्तान की कुल्ली घाटी तथा सिन्ध प्रदेश के अमरी नामक स्थान पर माँसल रंग के बर्तन (Buff ware) पाए गए हैं। इसके अतिरिक्त लाल रंग के बर्तन उत्तरी बलूचिस्तान की झोब (Zhob) नदी के किनारे मिले हैं। क्वेटा में पाए गए मिट्टी के बर्तनों पर भूरे बैंगनी रंग अथवा काले रंग की चित्रकारियां (Designs) भी की गई हैं। अमरी और नाल घाटी के मिट्टी के बर्तनों में यद्यपि समानता पाई जाती है। तथापि वह क्वेटा के बर्तनों से भिन्न हैं, नालघाटी के एक श्मशान से मांसल अथवा लाल रंग के बर्तनों के अतिरिक्त बहुरंगे मिट्टी के बर्तन भी मिले हैं। ये बर्तन लाल, नीले हरे तथा पीले रंगों से रंगे गए है, दक्षिणी बलूचिस्तान के कोलवा प्रदेश में भी एक ऐसी ही सभ्यता का उदय हुआ था, जिसे इतिहासकार कुल्ली घाटी की सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। इस प्रदेश में पाए गए मिट्टी के बर्तन काले रंग से रंगे गए हैं, किंतु कभी कभी लाल रंगों का भी उपयोग किया गया है। कुछ ऐसी भी मिट्टी के पात्र मिले हैं, जिनके ऊपर रक्तपीत वर्ण के अथवा श्वेत रंग के आवरण के ऊपर रंगीन चित्र बने हुए हैं, झोब नदी की घाटी में प्रागैतिहासिक सभ्यता के चिन्हों के रूप में लाल रंग के मिट्टी के बर्तन उपलब्ध हुए हैं। इन बर्तनों के अतिरिक्त कुछ लाल और काले रंग के भी बर्तन मिले हैं कुल्ली सभ्यता के समान ही यहाँ पर भी पशुओं और स्त्रियों की मृरणमूर्तियां मिली हैं। इतिहासवेत्ताओं ने इस प्रकार की सभ्यता को सिन्ध घाटी की सभ्यता से पहले का माना है। पुरातत्वविदों ने इसका अन्तिम चरण सुमेर सभ्यता के समकालीन निर्धारित किया है। सुमेर सभ्यता का आविर्भाव २८०० ई० पू० हो गया था। यही कारण है कि इस प्रारंभिक सभ्यता के अन्तिम काल में पाए गए मृरणपात्र हरप्पा में उपलब्ध मृरणपात्रों से मिलते जुलते हैं। इन वस्तुओं से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि ४००० ई० पू० मनुष्य मिट्टी के बर्तन बनाकर पकाना सीख गया था। इतना ही नहीं उन्हें सुसज्जित करने की कला भी उसने सीख ली थी। उनका ज्ञान विविध प्रकार के रंगों तथा चित्रों द्वारा मृरणमूर्तियों तथा मृरणपात्रों को सुसज्जित करने तक ही सीमित था। इससे यह पता चलता है

कि खुली और बन्द दोनों प्रकार की भट्टियां बनाना उस समय तक लोग सीख गए थे ।

नाल नदी की घाटी में पाए गए एक कब्रिस्तान में एक ताँबे की कुल्हाड़ी मिली है। इसी घाटी में एक दूसरे स्थान पर ताँबे के बने हुए हथियारों के दो संग्रह भी मिले हैं तांबे की एक कुल्हाड़ी के रासायनिक विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि इसमें पाँच प्रतिशत निकेल तथा दो प्रतिशत सीसा भी है। इसके अतिरिक्त आर्सेनिक अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में (Traces) में मिला है। हरप्पा, मोहेनजोदारो तथा मेसोपोटामिया में पाए गए ताम्र उपकरण में भी निकेल की मात्रा अधिक हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि यह सभ्यता कुछ अंशों में हरप्पा से मिलती है किन्तु आर्सेनिक की निम्नतर मात्रा यह प्रदर्शित करती है कि तांबा प्राप्त करने का उद्गम हरप्पा से भिन्न था। नाल के कब्रिस्तान से प्राप्य स्फटिक तथा राजवर्त के मनकों से भी यह पता चलता है कि कदाचित इन लोगों का हरप्पा निवासियों के साथ आदान प्रदान होता था। इसी प्रकार कुल्ली घाटी में भी एक कब्र के भीतर तांबे और कांस्य की वस्तुएं अधिक संख्या में पाई गई हैं। कुल्ली घाटी के मेही स्थान पर एक पाँच इंच व्यास का ताम्र दर्पण मिला है, जिसके हैंडिल की आकृति स्त्री की सी है। यह उस समय के कारीगरों की कुशलता का प्रतीक है। इसी श्मशान में एक दूसरा पांच इंच व्यास का ताम्र दर्पण मिला है, किन्तु इसमें कोई हैंडिल नहीं है। इसके अतिरिक्त तांबे की बनी हुई दो सुईयाँ भी मिली हैं, जिसमें एक का सिरा गोल और चपटा है, दूसरी सुई के सिरे पर राजवर्त की मणि लगाई गई है यहां पर तांबे के कड़ों के टुकड़े तथा एक छोटा पात्र भी मिला है। एक अन्य ताँबे की पिन भी मिली है, जिसका सिरा मुड़ा हुआ है। इन धातु की बनी हुई वस्तुओं के अतिरिक्त राजवर्त के टुकड़े तथा सोने की एक पतली चादर भी मिली है। नाल घाटी तथा कुल्ली घाटी की तुलना में झोब घाटी में बहुत ही कम धातु की वस्तुएँ मिली हैं तथापि अन्तिम सतह में तांबे की वस्तुएं और राजवर्त की मणियां उपलब्ध हुई हैं। इन प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सिन्ध घाटी की सभ्यता के बहुत पहले से भारत में ताँबे के अयस्कों से मनुष्य ने तांबा निकालना सीख लिया था इतना ही नहीं हथौड़े से पीटने, काटने और मोड़ने का भी ज्ञान उसे प्राप्त हो गया था किन्तु ताँबे को पिघलाना उसे ज्ञात न था। फिर भारतीय रसायन के श्री गणेश का श्रेय तो उसे ही मिलेगा क्योंकि अयस्कों से धातु प्राप्त करने की विधियों का आविष्कार उसने सर्व प्रथम किया।

ईसा के जन्म के ढ़ाई सहस्राब्द पूर्व बलूचिस्तान, सिन्ध, पंजाब, काठियावाड़ तथा राजस्थान में एक सुव्यवस्थित तथा उन्नत सभ्यता का आविर्भाव हुआ। इस सभ्यता में बड़े बड़े नगरों के चिन्ह मिलते हैं। इसकी तुलना दजला और फरात की घाटी तथा नील नदी की घाटी में निवास करने वालों की समकालीन सभ्यताओं से की जा सकती है। इसके विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए लगभग चालीस स्थानों पर खुदाइयां हुई हैं। इन उत्खनन के फलस्वरूप दो समृद्धिशाली नगरों (हरप्पा तथा मोहेनजोदारो) के चिन्ह प्राप्त हुए हैं पुरातत्ववेत्ताओं ने इस कांस्यकालीन सभ्यता का नाम सिंध घाटी की सभ्यता अथवा हरप्पा की सभ्यता रखा है। यह सभ्यता तत्कालीन सुमेर तथा मिश्र की सभ्यताओं से मिलती जुलती है। इन नगरों में हुई खुदाई में मिट्टी के बर्तन, धातु की वस्तुएँ तथा अन्य बहुत सी वस्तुएँ मिली हैं जिनसे तत्कालीन रसायन ज्ञान का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन स्थानों पर गए पाए मिट्टी के बर्तन अच्छे प्रकार की मिट्टी से बनाए गए हैं, जो पकने पर लाल अथवा हल्के लाल रंग में परिवर्तित हो जाती थी। मिट्टी के साथ साथ बालू, अभ्रक तथा चूना मिलाया जाता था। अभ्रक की उपस्थिति में मिट्टी के बर्तन सरलता पूर्वक बनते थे और सूखने पर रन्ध्ररहित होते थे। हरप्पा के समान ही अभ्रक के अतिरिक्त चूने का उपयोग टेम्परिंग (Tempering पदार्थ के रूप में मिश्र के पूर्ववंशीय काल के बर्तनों के बनाने में हुआ है। हल्के लाल आवरण के ऊपर लाल या हरे रंगों से रंगे गए बर्तन

मिले हैं। लोगों का यह अनुमान है कि लोहे के ओषिद को अवकारक अथवा धूम्रमय वातावरण में पकाने पर काला या भूरा रंग मिलता था। इसके अतिरिक्त मैगनीज डाई आक्साइड से काले रंग के बर्तन बनते थे। आज भी मुल्तानी मिट्टी (red ochre) का उपयोग लाल तथा मैंगनीज और फेरिक आक्साइड का उपयोग काले रंग के बर्तनों में होता है। मैगनीज की उपस्थिति में रंग पूर्णतः काला पड़ जाता है। काले रंग की चमकदार मिट्टी की बनी हुई चूड़ियों के अतिरिक्त लाल रंग की मिट्टी की चूड़ियाँ भी मिली हैं। रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इनमें लोहे के ओषिद तथा चूने की मात्रा अधिक है। चूने तथा मैगनीशिया की उपस्थिति में आवरण चमकदार बन गया था और अवकारक वातावरण में फेरस आक्साइड काले रंग में परिवर्तित हो गया। उत्खनन में मिले बर्तनों का रंग प्रायः एक सा ही है, न तो यह अत्यधिक पके ही हैं और न तो कम ही पके हैं। यहाँ तक कि एक इंच मोटे बर्तनों में भी सर्वत्र रंगों की समानता पाई जाती है। हरप्पा और मोहेनजोदारो में मिट्टी के बर्तन बनाने की कई भट्ठियां भी मिली हैं, जिनके पर्यवेक्षण से पता चलता है कि बर्तनों के पकाने के लिए विशेष उच्च तापक्रम उत्पन्न किया जाता था। भट्ठियों के किनारे पर चिपके हुए चमकदार पदार्थ भी मिले हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि उनकी भट्ठियां ताप नियंत्रित होती थीं। ग्लेज किए गए बर्तन संसार में सर्व प्रथम हरप्पा में ही बने थे क्योंकि मिश्र में इससे बहुत समय के उपरान्त इस प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनाए गए।

मोहेनजोदारो में बहुत सी ऐसी वस्तुएं भी मिली हैं, जो कोणात्मक क्वार्टज के दानों से बनी हुई हैं। इन टुकड़ों को जोड़ने के लिए एक पारदर्शक सीमेंट का उपयोग हुआ है। इस सीमेंट में बालू की मात्रा लगभग ६० प्रतिशत है। ऐसा सम्भव हो सकता है कि सोडा को बालू के साथ अधिक तापक्रम पर गरम कर के सोडियम सिलिकेट बनाया गया हो, और इसे पानी के साथ मिला कर जोड़ा गया हो। नीले तथा हरे रंग के बर्तनों के विश्लेषण से पता चला है कि इन में मिट्टी के साथ तांबे की भस्म भी मिला दी गई थी। हल्के लाल रंग के बर्तन बनाने के लिए लोहे के आक्साइड को तथा चाकलेट रंग के बर्तन बनाने के लिए तांबे के ओषिद को मिला कर बन्द भट्ठी में गरम किया जाता था। चूर्ण किए गए खनिज (steatite) का उपयोग भी वस्तुओं के बनाने में हुआ था। इस प्रकार बनाए गए बर्तनों की पालिश भी बहुत ही सुन्दर है।

यहां पर बनी हुई मुद्राओं के ऊपर एक चिकना और चमकदार आवरण चढ़ा हुआ है, जिसका धरातल (steatite) का बना हुआ है। जिप्सम नामक खनिज पदार्थ से बनाई गई सीमेंट का उपयोग मोहेनजोदारो की कतिपय दीवालों के रंगने में किया गया है। इस रंग में चूने का पत्थर भी मिश्रित है।

सिन्ध घाटी के निवासी तांबे तथा काँस्य के उपकरण तथा पात्रों का उपयोग करते थे। इनको सोना, चाँदी और ताँबा पर्याप्त उपलब्ध था। साथ ही साथ सीसे तथा टिन से वह लोग अनभिज्ञ न थे। क्योंकि ताँबे के साथ-साथ यह धातुयें भी पाई गई हैं। तांबे और कांस्य के बर्तन, कुल्हाड़ियाँ, तलवारें, चाकू, भाले, तीर तथा कृषि के हथियार पाए गए हैं। इनके अतिरिक्त चूड़ियां, अंगूठियां, अन्य आभूषण, तथा धातुओं की छड़ें भी मिली हैं। यहां पर पाए गए कांस्य पदार्थों में टिन की मात्रा लगभग दस प्रतिशत है। टिन तथा तांबे के अयस्क साथ-साथ पाए जाने के कारण इन्हें एक साथ ही गरम किया गया था। सिन्ध घाटी के बर्तन ढाल कर या पीट कर बनाए गए हैं। यदि ताँबे को बन्द सांचे में ढाला जाय तो आक्सीजन की उपस्थिति में वह रन्ध्रमय हो जाता है। लेकिन यदि टिन अथवा आर्सेनिक भी मिला हो तो आक्सीजन नष्ट हो जाती है और यह रन्ध्रता नहीं उत्पन्न होती। सिन्ध घाटी में पाए गए ताँबे के बर्तनों में वह दोनों धातुऐं भी मिली हुई थीं। काँस्य उपकरण प्रायः ढाल कर बनाए गए हैं। ताँबे को पहले गरम किया जाता था। इसके उपरांत इसे मिट्टी की मूषा में शुद्ध किया जाता था। एक ऐसी मिट्टी की मूषा मिली है, जिसके किनारे पर धातु का कुछ भाग (slag) लगा हुआ है। ऐसा ज्ञात होता है

कि इन लोगों को अशुद्ध तथा शुद्ध तांबे, तांबे तथा टिन की मिश्रधातु और ताँबा, आर्सेनिक तथा सीसे की मिश्रधातु बनाने की कला ज्ञात हो गई थी।

अशुद्ध तांबे की भट्टी में गरम करके तथा हथौड़ों से पीटकर भारी तथा हल्की वस्तुएँ ढाली जाती थीं। शुद्ध ताँबे को साँचों में ढाल कर बर्तन बनाए जाते थे। कांसे की बनी हुई वस्तुओं में टिन की मात्रा लगभग १०–१३ प्रतिशत तक मिली है। तीक्ष्ण धार वाले अस्त्रों के बनाने में श्वेत धातु का उपयोग इस बात की पुष्टि करता है कि धातुओं का ज्ञान तांबे तक ही सीमित न था, किन्तु उसकी मिश्रधातुएँ बनाने में लोग प्रवीण हो गए थे। धातुओं के कड़ापन बढ़ाने के लिए कांस्य की वस्तुओं में आर्सेनिक भी मिलाया जाता था। सीसे की उपस्थिति में तांबे तथा काँसे को सरलता पूर्वक फ्यूज किया जाता था, और इस प्रकार ढालने में भी सुविधा हो जाती थी। बलूचिस्तान के शाह बल्लोल तथा रोब्रात नामक स्थानों पर ताँबे के स्लैगों के ढेर मिले हैं। इन से पता चलता है कि यहां पर धातुओं को गरम करके शुद्ध किया जाता था। सिन्ध घाटी में प्रयुक्त हुए तांबे के अयस्क सम्भवतः राजस्थान या बलूचिस्तान से अथवा अफगानिस्तान लाए गए थे, क्योंकि इन अयस्कों में निकेल और आर्सेनिक की मात्रा पाई जाती थी। धातुओं को शुद्ध करने के लिए लकड़ी के कोयले का ईंधन प्रयुक्त होता था। सोने का उपयोग आभूषणों तथा सुन्दर वस्तुओं के बनाने में किया जाता था। मोहनजोदारो में सोने तथा चांदी की मिश्र धातुएँ भी मिली हैं। मोहनजोदारो से उपलब्ध एक चांदी के टुकड़े के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि चांदी के अयस्य सीसा मिश्रित होते थे और सीसे से चाँदी को पृथक करना वह लोग जानते थे।

अयस्कों तथा धातुओं के अतिरिक्त सिन्ध घाटी के निवासी खनिज पदार्थों से भी अवगत थे उनको बहुत सी मूल्यवान मणियों का ज्ञान भी प्राप्त हो चुका था। दरद तथा आर्सेनिक के ओषिद का उपयोग सम्भवतः औषधियों के लिए किया जाता था। सीसे से प्लास्टर बनाने तथा सीसे के अयस्क को (galena) रंग बनाने में उपयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त मंजिष्ठी (madder root) से लाल रंग के वस्त्र रंगे जाते थे।

स्टुअर्ट पिगेट ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि वाह्य आक्रमणों के प्रभाव से सिन्ध घाटी के लोग पूर्व की ओर बढ़े और गंगा की घाटी में जाकर बस गए। इन लोगों के चिन्ह मध्य प्रदेश के बालाघाट डिवीजन के गंगेरिया नामक स्थान पर और राँची के समीपवर्ती पर्वतमालाओं पर मिले हैं। रांची के आस पास तांबे या कांस्य की चपटी तथा लम्बी कुल्हाड़ियां और बर्छे मिले हैं। गंगेरिया में चांदी के एक सौ दो पतले पतले टुकड़े मिले हैं। जिनमें ३.७ प्रतिशत भाग सोना भी है। यहां पर तांबे के हथियार भी मिले हैं। किन्तु इस प्रकार के हथियारों की संख्या उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से पाई जाती है। बिजनौर जिले के राजपुर, फतेहगढ़, उन्नाव जिले के परिओर, हरदोई तथा बुलन्दशहर जिले में इस प्रकार के मिट्टी के बर्तन तथा तांबे और लोहे के हथियार मिले हैं। इस सभ्यता का उत्कर्ष इन आक्रमणकारियों तथा सिन्ध घाटी के निवासियों के समिश्रण से हुआ। सिन्ध घाटी की सभ्यता के विनाश के उपरान्त केवल कुछ बर्बर जातियों के आक्रमणों के चिन्ह यत्र तत्र मिलते हैं। किन्तु हरप्पा के भग्नावशेषों के उपरान्त भारतभूमि में सभ्यता का उदय आर्यों के समय से प्रारम्भ होता है।

आर्यों के वैज्ञानिक ज्ञान का परिचय वेदों की ऋचाओं में मिलता है। ऋग्वेद की ऋचाओं से ज्ञात होता है कि आर्य लोग कांस्य, ताम्र, स्वर्ण तथा रजत धातुओं से अवगत थे। ऋग्वेद का समय कम से कम पंद्रहवीं शताब्दी ई० पू० निर्दिष्ट किया गया है। ऋग्वेद की एक ऋचा में यह उल्लेख मिलता है कि कांस्य कटाह को अग्नि के ऊपर रख कर मांस पकाया जाता था। कड़े, अंगूठियां इत्यादि आभूषणों के बनाने में आर्य लोग सोने का प्रयोग करते थे। धातुओं में विशेषतया कांसे के बर्तन, हथियार और कवच प्रयुक्त हुए हैं। इससे यह पता चलता है कि आर्य लोग इन

धातुओं से परिचित थे। वेदों की ऋचाओं में स्थान-स्थान पर अयस का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मणों और उपनिषदों में लोहितायस और कृष्णायस का उल्लेख मिलता है सम्भवतः अयस का प्रयोग लोहे के लिए किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इन दो धातुओं में इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता न थी।

आर्य लोग किन्व करके (Fermentation) सोमरस बनाते थे। इन द्रव पदार्थों में मधु और सुरा का भी उल्लेख पाया जाता है। सोमरस, सोम नामक लता को किन्व करके तथा सुरा जौ को किन्व करके बनाई जाती थी। वस्त्रों को बैंगनी या मटमैले रंगों से रंगा जाता था। श्वेत यजुर्वेद में अयस, हिरण्य (silver), लोहा (तांबा) श्याम (लोहा) सीस (सीसा) त्रपु (टिन) इन छः धातुओं का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में सोने को हरित, चाँदी को रजत, तांबे को लोहित कहा गया है। विज्ञान जगत में तांत्रिक विचारों का प्रारम्भ अथर्व वेद से होता है क्योंकि औषधियों की खोज में रसायन शास्त्र विकसित हुआ।

यजुर्वेद में हिरण्य (सोना) अयस् (लोहा) श्याम (तांबा), लोह, सीस (सीसा) तथा त्रपु (वंग या टिन) का उल्लेख मिलता है।

अश्माच में मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मे ऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पताम्। यजुर्वेद के एक मंत्र में अयस्ताप (iron smelter) का भी उल्लेख मिलता है। जिसमें लोहे के खनिज को लकड़ी के कोयले के साथ तपाकर लोहा तैयार किया जाता था। (मन्यवे अयस्तापम्)। अथर्व वेद में लोहे से बाँधने की-शृंखलाएँ तथा लोहे के द्रुपदों का भी वर्णन मिलता है। अयस्मयान् विचृता बन्ध पाशान्। अयस्मये द्रुपदे बेधिषे)। अथर्व वेद में सीसे का भी उल्लेख मिलता है।

—:o:—

काजू-हम जिससे डालर कमाते हैं

[पृष्ठ १५४ का शेष]

तोड़ कर उन्हें नयी जगह लगाने का तरीका निकाला गया। हवाकलम की विधि से लागने पर टहनी मूल पौधे से कटे बिना ही जड़ पकड़ लेती है। इस प्रकार नयी जड़ और पत्तियों से युक्त नया पौधा तैयार हो जाता है, जिसे दूसरी जगह लगाया जा सकता है। इस तरीके से कई पेड़ों पर साल में १०० पौंड तक काजू लगे हैं, जब कि आम तौर पर एक पेड़ पर १० पौंड से ज्यादा काजू नहीं होते यह तरीका कुछ कठिन अवश्य हैं, किन्तु उपयोगी भी बहुत है।

दूसरी आयोजना में काजू की पैदावार का क्षेत्रफल १ लाख ६० इजार एकड़ और बढ़ाने का लक्ष्य है। इसके लिए केन्द्र राज्यों को १५० रु० प्रति एकड़ के हिसाब से कर्ज देता है। इस सहायता से अब तक ३० हजार और एकड़ में काजू की पैदावार होने लगी है। कुछ राज्यों ने जमीन का कटाव रोकने के लिए भी काजू पैदा करना शुरू किया है। काजू के पेड़ में शाखाएँ जल्दी लगती हैं और पत्ते घने होते हैं। इसलिए हवा के साथ उड़ कर आने वाले रेत को भी ये रोकते हैं। इसीलिए रेगिस्तानी क्षेत्र में रेल की पटरियों के साथ काजू के पेड़ लगाये जाते हैं, ताकि पटरियों पर रेत इकट्ठा न हो सके। आंध्र में वपताला के पास तीन साल से यह तरीका अपनाया जा रहा है। इससे रेल की लाइन ठीक रखने पर होने वाले खर्च में कमी आयी है।

काजू का उपयोग इतना ही नहीं है कि इससे स्वादिष्ट गिरियां निकलती हैं। इसके कड़े छिलके से तेल बनता है जो रोगन बनाने में तथा अन्य कई उद्योगों में काम आता है। केश्यू एपिल से भी आर्थिक लाभ उठाया जा सकता है। फिलहाल हर साल लगभग २॥ लाख टन केश्यू एपिल बरबाद जाता है। चरपरा होने के कारण खाने के तो यह काम नहीं आता। किंतु मैसूर की केन्द्रीय खाद्य अनुसंधानशाला ने पता लगाया है कि उससे मुरब्बे और कई पेय बनाए जा सकते हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर काजू-उद्योग को प्रोत्साहन दिया जाय तो इससे भारत को और भी अधिक आय हो सकती है।

काजू—हम जिससे डालर कमाते हैं

काजू बहुत ही स्वादिष्ट मेवा है। सभी लोग इसे खाते हैं। हम इसे बेच कर विदेशों से रुपये भी कमाते हैं। लेकिन संभवतः अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि काजू भारतीय वनस्पति का पौधा नहीं है। सोलहवीं शताब्दी में इसे जमीन का कटाव रोकने के लिए ब्राजील से लाकर भारत में लगाया गया था। धीरे-धीरे यहां की जलवायु उसके अनुकूल हो गयी और तेजी से उसका विकास होता गया, आज क्या किसान और क्या सरकार यह दोनो को प्रिय है। किसान को यह इसलिए प्रिय है कि कम उपजाऊ जमीन में भी यह उगता है, और सरकार को इसलिए कि वह इसे बेच कर विदेशों से पैसा कमा लेती है। यहाँ तक कि खोमचे वाले भी इसे बेचना पसन्द करते हैं, क्योंकि उन्हें सिर पर भारी बोझ रख कर नहीं भटकना पड़ता। इस समय काजू पश्चिमी समुद्र तट पर कन्या कुमारी से बम्बई तक और पूर्वी समुद्र-तट पर बरहामपुर तक पैदा होता है। करीब-करीब हर तरह की जलवायु और जमीन में काजू का पौधा बढ़ता है। काजू की उपज सब से ज्यादा केरल में होती है।

इतना सब होने पर भी हमें काजू बाहर से मंगाना पड़ता है। देश के १५० काजू-कारखाने हर साल १ लाख ७० हजार टन काजू फोड़ सकते हैं, लेकिन हम इतना काजू जुटा नहीं पाते। विवश होकर हम ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका से काजू खरीदते हैं। वहाँ से हमें काजू इसलिए मिल पाता है कि वहां के मजदूरों को ठीक तरह से काजू फोड़ना नहीं आता। यहाँ की औरतें बड़ी कुशलता से काजू फोड़ती हैं। इस प्रकार विदेशों में हम जो इतना काजू खपा पाते हैं, उसका बहुत श्रेय हमारे देश की पश्चिमी महिलाओं को है।

हम सदा ही काजू आयात नहीं कर सकते। और आयात करने पर भी हम इतना काजू नहीं जुटा सकते, जिससे काजू फोड़ने के हमारे कारखाने पूरे साल चालू रह सकें। समस्या का एकमात्र हल यही है कि काजू का क्षेत्रफल बढ़ाया जाय और खेती के अच्छे तरीके अपना कर पैदावार बढ़ायी जाय।

अब तक काजू की खेती पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। जब इससे डालर की आय होने लगी तब इसे वैज्ञानिक ढंग से उगाने की ओर ध्यान गया। फलस्वरूप १९५५ में केरल सरकार और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने मिलकर बंगलौर के पास कोटेकर में केन्द्रीय काजू अनुसंधान केन्द्र खोला। इस समय केरल में कोट्टरकारा में, आंध्र प्रदेश में, बपताला में और बम्बई में रत्नगिरि में भी क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र चल रहे हैं। इन केन्द्रों में वैज्ञानिक ढंग से काजू पैदा करने के कई ढंग निकाले गए। हैं यह देखा गया है कि तीन इञ्च गहराई में बीज डालने से पौधा जल्दी बढ़ता है तथा पौधों के बीच कम से कम २०-२० फुट का फासला होना चाहिए। काजू के पौधे को—कीट व्याधियों और रोगों से बचाने के तरीके भी निकाले गए, जो सफल हुए हैं।

काजू की उपज में यह जरूरी नहीं है कि अच्छा बीज बोने से पौधा अच्छा ही बढ़े। पौधे की वृद्धि बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि पौधे पर किन-किन पौधों का पराग पड़ता है। कमजोर पौधे का पराग पड़ने पर अच्छा बीज होते हुए भी पौधे का ठीक विकास नहीं होता। इसलिए काजू के अच्छे पेड़ की टहनियाँ

[शेष पृष्ठ १५३ पर]

विज्ञान अगस्त १९५८
पृष्ठ १५५–१५७

वेदों में गणित के निर्देश

[विद्याभास्कर, वेदरत्न, उदयवीर शास्त्री, प्रधानाचार्य श्री शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर]

वेदों के विषय में वैदिक विद्वानों का ऐसा विश्वास है, कि वेद सब सत्य-विद्याओं का आगार है। यह विश्वास निराधार नहीं। गम्भीरता पूर्वक वेदों का अध्ययन किसी भी विचार शील व्यक्ति को इस परिणाम पर ले जाता है। १९५८ मार्च के 'विज्ञान' में 'वेदों में वैज्ञानिक तथ्य' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें गणित, रसायन, चिकित्सा, भौतिकी, ज्योतिर्विज्ञान तथा अन्य विविध विषयों को लेकर वेदों के आधार पर कतिपय निर्देश दिये हैं। वहीं से प्रेरणा प्राप्त कर इस संक्षिप्त लेख द्वारा केवल गणित के संबंध में वेद के कुछ तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं।

गणित के दो आधार भूत नियम हैं। जोड़ और घटाना। अन्य समस्त नियम इन्हीं दो के विस्तार अथवा प्रकारान्तर हैं। सब गणनायें संख्या के आधार पर की जाती हैं। जिसका मूल 'एक' है। इसको अनन्त राशि तक जहां एक और बढ़ाया जा सकता है, वहां दूसरी ओर उसी प्रकार घटाया भी जा सकता है। पहला जोड़ और दूसरा घटाना है। गणित के पहले नियम अर्थात् 'जोड़' के अन्य अनेक प्रकारों में से 'वर्ग' और 'गुणा' ये भी दो प्रकार हैं। यहां इन्हीं दो के सम्बन्ध में वेद के निर्देश प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

वर्ग—

इसका यह नियम है, कि संख्या की कोई भी इकाई उसी से गुणा कर दी जाय, अथवा उतनी ही बार उसको आपस में जोड़ दिया जाय तो वह उसका वर्ग होता है, दो को तो गुणा कर दिया जाय, या जोड़ दिया जाय, तो चार होता है। वह दो का वर्ग है।

यजुर्वेद [१८।२४] में इसके लिये एक अद्भुत सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। यजुः के इस समस्त सन्दर्भ[1] का अभिप्राय गणित की दृष्टि से केवल इतना है, कि विषम संख्याओं का प्रारम्भ से यथाक्रम जोड़, क्रमानुसार संख्याओं के वर्ग को बनाता चला जाता है। गिनती में प्रारम्भ से जितनी विषम संख्या जोड़ी जायेंगी, उतनी का वह वर्ग होगा। जैसे प्रारम्भ से एक और तीन का जोड़ चार है, इसमें एक और तीन।

ये दो विषम संख्या जोड़ी गई हैं, तो वह जोड़ दो का वर्ग होगा। इसी प्रकार इन दो में अगली विषम संख्या पांच जोड़ दी जाय, तो इनका जोड़ तीन विषम संख्याओं का जोड़ होगा, इसलिए वह जोड़ तीन का वर्ग होगा।

मन्त्र में एक से आगे विषम संख्याओं का दो दो वार उल्लेख है, जिनका अभिप्राय है, उस संख्या तक के जोड़ में आगे की संख्या मिला दी जावे, तब पिछला जोड़ जिस संख्या का वर्ग है, अगली संख्या मिलाकर वह पहली संख्या से अगली का वर्ग बन जायगा।

१—एका च मे तिस्रश्च मे, तिस्रश्च मे पञ्च च मे, पञ्च च मे सप्त च मे, सप्त च मे, नव च मे, नव च मे, एकादश च मे, एकादश च मे त्रयोदश च मे, त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे, सप्तदश च मे नवदश च मे, नवदश च मे एकविंशतिश्च मे, एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे, त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे, पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे, सप्तविंशतिश्च मे नव- विंशतिश्च मे, नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे, एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

मन्त्र में पहले पद हैं—'एका च मे तिस्रश्च मे, एक और तीन इन दो विषम संख्याओं का जोड़ 'चार' होता है, जो संख्या दो का वर्ग है, क्योंकि यह दो विषम संख्याओं का जोड़ है। मन्त्र में इससे अगले पद हैं—'तिस्रश्च मे पञ्च च मे, इसका अर्थ हुआ—तीन तक की विषम संख्याओं के जोड़ में तीन से अगली विषम-संख्या 'पाँच' को जोड़ दीजिये, इसका फल होगा—'नौ। यह दो के आगे की संख्या 'तीन' का वर्ग है, क्योंकि यह यथाक्रम प्रारम्भ से तीन विषम संख्याओं का जोड़ है। इसी प्रकार मन्त्र में आगे पद हैं--पञ्च च मे सप्त च मे।' पूर्ववत् इसका अर्थ हुआ--पाँच तक की विषम संख्याओं के जोड़ में 'सात' और मिला दीजिए, योग—फल होगा--'सोलह'। पाँच तक की विषम संख्याओं का जोड़ (नौ), तीन का वर्ग हुआ हैं। उसमें पाँच से अगली विषम संख्या सात जोड़कर 'सोलह' योगफल, तीन से अगली संख्या 'चार' का वर्ग हो गया, क्योंकि यह यथाक्रम चार विषम संख्याओं का जोड़ है।

इसी प्रकार आगे आगे विषम संख्या को पिछले योग में जोड़ते जाने से यथाक्रम संख्याओं का वर्ग निकलता जावेगा, और जितनी विषम संख्याओं का वह जोड़ होगा, उतने का ही वह वर्ग होगा। यह इस मन्त्र में वर्ग निकालने का एक सिद्धान्त बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र में ३३ तक की संख्याओं का उल्लेख है, जो १७ संख्या तक के वर्ग को बनाता है, क्योंकि एक से लगा कर तेंतीस तक सत्रह विषम संख्या होती हैं, इनका जोड़ सत्रह का वर्ग होगा। मन्त्र में यहीं तक गणना क्यों की गई? इससे पहले ही इसे क्यों न समाप्त कर दिया गया, अथवा कुछ और आगे क्यों न उल्लेख किया गया? इसके भी समाधान है किन्तु उनका वर्णन विस्तार के भय से नहीं किया जा रहा है।

गुणा—

ज्योतिर्विद्या के अनेक अंगों का उल्लेख वेदों में उपलब्ध होता है। गणित ज्योतिष का ही एक भाग है, और उस रूप में गणित के अनेक प्रकारों के संकेत वेदों में उपलब्ध हैं। यहां केवल एक प्रकार 'गुणा' के विषय में कुछ संकेत प्रस्तुत किये जाते हैं।

ऋग्वेद [२।१३।६] में पद हैं—शतं...दश साकं' इनका अर्थ है—'सौ...दस साथ।' विचारणीय है, कि यहाँ सौ और दस का जोड़ है अथवा गुणा है। यदि जोड़ है तो फल होगा--एक सौ दस, और गुणा है तो फल होगा—एक सहस्र। जोड़ मानने पर इसका यह अर्थ भी किया जा सकता है, कि सौ का दस बार आपस में जोड़। तब फल वही होगा, जो सौ को दस से गुणा करने पर होता है। वस्तुतः गुणा, समान संख्याओं के उतने जोड़ का ही नाम है, और ऐसे जोड़ का यह एक संक्षिप्त प्रकार है।

आचार्य सायण ने इन पदों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये ऋग्वेद की एक ऋचा [६।४७।१८] को उद्धृत किया है। उसमें पद आये हैं--'शता दश' इसका अर्थ किया गया है—'सहस्रसंख्या का:' इससे स्पष्ट है, कि यहां सौ के साथ दस का गुणा अभिप्रेत है। इस ऋचा का देवता इन्द्र है, और इस रूप में सहस्ररश्मि सूर्य का यह वर्णन है। निश्चित ही यहाँ उसकी सहस्र किरणों का निर्देश किया गया है। पहली ऋचा [२।१३।६] का भी देवता इन्द्र है। छठे मण्डल की ऋचा के 'शता दश' पदों के 'सहस्र' अर्थ के अनुसार 'शतं..दश साकं' का अर्थ भी 'सहस्र' किया गया है जो दोनों संख्याओं के परस्पर गुणा किये जाने का संकेत करता है।

एक और ऋचा [५।२६।७] में 'त्री शतानि' पद हैं। व्याख्याकारों ने इसका अर्थ 'तीन सौ' किया है, एक सौ तीन नहीं। इससे स्पष्ट होता है, कि यहाँ सौ के साथ तीन के गुणा का संकेत है।

ऋग्वेद की एक और ऋचा [६।२७।६] में 'त्रिशच्छतम्' पद आया है। इसमें दो भाग हैं—'त्रिशंत्' और 'शतम्'। इसका 'तीस सैकड़ा' किया गया है। इसका अभिप्राय होता है--तीस से सौ का गुणा। यदि इन संख्याओं का परस्पर जोड़ ही माना जाय, तो यह तीस और सौ = एक सौ तीस-होगा। ऋचा का अर्थ का

स्वारस्य या सामञ्जस्य प्रसंगानुसार सहस्रों की संख्या में उपयुक्त जंचता है।

ऋग्वेद [६।६६।२] में 'द्विः' और 'त्रिः' पद द्विगुण और त्रिगुण अर्थ का बोध कराने के लिये प्रयुक्त हुए हैं यहां भी गुणा करने की भावना का स्पष्ट संकेत प्रतीत होता है।

ऋग्वेद [१।१५५।६] में दो संख्याओं का उक्त भाव को प्रकट करने के लिये बड़ा आकर्षक प्रयोग हुआ है। वहां पद हैं—'चतुर्भिः साकं नवतिं' इनको जोड़ने से संख्या ९४ होती है और गुणा कर देने से ३६०। इस ऋचा का देवता विष्णु है। वैदिक द्वादश आदित्यों में एक विष्णु भी हैं। इस प्रकार विष्णु पद द्वारा सूर्य के क्रान्त-वृत्त का वर्णन ऋचा में किया गया प्रतीत होता है। एक वृत्त एक वर्ष में पूरा होता हैं, जो साधारण रूप से ३६० दिन का है, फलतः एक वर्ष के क्रान्त वृत्त के ३६० दिनों का निर्देश इस ऋचा द्वारा किया गया है। यह चार के साथ नब्बे का गुणा करने पर ही संभव है।

जितने उदाहरण ऋग्वेद से संख्याओं के यहां दिये गये हैं, प्रायः उन सब स्थलों में 'साकं' पद का प्रयोग उपलब्ध होता है, जिसका साधारण अर्थ साथ या सहयोग है। पर इन संख्याओं के प्रसंग में 'साकं' पद उन संख्याओं के परस्पर सहयोग में गुणन की भावना को प्रकट करता प्रतीत होता है। आजकल गणित के भिन्न नामक नियम के प्रयोग में गुणा को प्रकट करने का सब से मूर्द्धन्य चिन्ह 'का' का प्रयोग देखा जाता है। यह तो कहना कठिन है, कि गणित में यह प्रक्रिया कितनी पुरानी है, और इसका आधार क्या रहा होगा, पर ऐसी कल्पना की जा सकती है, कि कदाचित् यह गुणा का भाव प्रकट करने वाले वेद के 'साकं' पद का ही अवशिष्ट चिन्ह तो नहीं है ?

'चतुर्भिः साकं नवतिं' [ऋ. १।१५५।६] पदों का अर्थ आचार्य सायण ने ९४ ही किया है। उन्होंने उक्त संख्याओं का परस्पर गुणा न मान कर जोड़ माना है, और इस ९४ संख्या का सामञ्जस्य बैठाने के लिये निम्नलिखित रूप से प्रयत्न किया है—

संवत्सर................१
अयन.....................२
ऋतु.......................५

[हेमन्तशिशिरयोः समासेन,=हेमन्त और शिशिर को एक मान कर, ६ की जगह ५ गिनी हैं]

मास.......................१२
अर्धमास (पक्ष)......२४
अहोरात्र..................३०
याम [प्रहर]...........८
मेषादि लग्न [दैनिक].१२
योग ९४

आचार्य सायण की व्याख्या में कहाँ तक सामञ्जस्य है, यह विचारणीय है। ९४ संख्या को पूरा करने के लिये किसी एक आधार या सिद्धान्त का आश्रय नहीं लिया गया। एक संवत्सर को पहले अलग मान कर आगे उसके चार अवान्तर विभागों की संख्या को जोड़ा गया है। उसमें भी वास्तविक ६ ऋतुओं की जगह ५ ही गिनती में ली गई हैं, अन्यथा योग ठीक नहीं बैठता। वर्ष के चार अवान्तर विभागों के आगे 'अहोरात्र' रूप में एक मास के विभाग का ही उल्लेख किया है, और आगे के दो विभाग तो एक दिन के आधार पर ही हैं। यद्यपि वैदिक साहित्य में वर्ष के द्वादश आदित्यों का स्पष्ट उल्लेख है, पर उनके साथ मेषादि लग्न के सामञ्जस्य के के प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

किसी भी वृत्त का चतुर्थांश ९०° अंश का माना जाता है, जिसे समकोण कहते हैं। उसका माप त्रिकोणमिति में त्रिज्या से किया जाता है प्रस्तुत ऋचा में क्रान्तवृत के चतुर्थांश ९०° अंश को ही आधार माना गया है, जो रेखागणित से भी आगे बढ़ कर त्रिकोणमिति के गणित की ओर संकेत करता है। इससे परिणाम निकलता है, कि वृत के चतुर्थांश ९० अंश को प्रस्तुत ऋचा में चार से गुणा किया गया है, और क्रान्तवृत ३६० दिन में पूरा होता है, इसकी ओर स्पष्ट संकेत किया गया है।

विज्ञान वार्ता

दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्र में सोवियत अभियान मंडल का पर्यवेक्षण

दक्षिणी ध्रुव के निकटवर्ती क्षेत्रों में सोवियत संघ के चार अनुसंधान केन्द्र हैं। सोवियत अभियानकारी मंडल का मत है कि यदि दक्षिणी ध्रुव को पूरी की पूरी बर्फ पिघल जाय तो सारे संसार में समुद्र का धरातल १४० फुट ऊंचा हो जावेगा। जून १६, १६५८ को सोवेत्स्काया केन्द्र का तापक्रम शून्य से ८१.२ अंश सेन्टीग्रेड नीचे था। इससे कम तापमान में अभी तक कोई भी व्यक्ति नहीं रहा है। दक्षिणी ध्रुव के कुछ भागों में जीवधारियों की संख्या पर्याप्त है। हास्वेल द्वीप में प्रति वर्ग मील में विभिन्न प्रकार के पक्षियों की संख्या लगभग ७७२० पाई गई है।

अभी तक यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि दक्षिणी ध्रुव प्रदेश एक महाद्वीप है या द्वीप समूह। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मिर्नी नगर समुद्र के किनारे के पास एक द्वीप में है जिसका विस्तार लगभग २५० मील है। सोवियत-अभियानकारी मंडल विमानों द्वारा किये गये सर्वेक्षणों के आधार पर दक्षिण ध्रुवीय समुद्री किनारे के एक तिहाई हिस्से का प्रामाणिक मानचित्र तैयार कर रहा है। यह संसार में अपने ढंग का पहिला मानचित्र होगा।

दमे की नई चिकित्सा पद्धति

लेनिनग्राद के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्योत्र बुलातोव ने दमे की नई चिकित्सा पद्धति निकाली है।

यह तो सभी जानते हैं कि दमा और हाईपरटोनिया के मरीजों को जंगलों या पर्वतीय स्थानों में जाने की सलाह दी जाती है जहां की वायु में प्रचुर परिमाण में अयन, अर्थात विद्युत-सक्रियकण विद्यमान होते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरी काकेशिया के किस्लोवोद्स्क नामक स्वास्थ्यशाला में इन रोगों की चिकित्सा करने के पश्चात् बहुत ही अच्छे नतीजे हासिल हुए हैं। यहां की वायु किस्लोवोद्स्क के चतुर्दिक पर्वतों की समृद्ध प्राकृतिक तेजस्क्रियता के कारण निरन्तर अयनों से भरपूर रहती है।

बीस वर्षों से ऊपर से फुफ्फुस, हृदय और रक्तवाहिनी सम्बन्धी रोगों का अध्ययन करने के बाद प्रोफेसर बुलातोव ने यह स्थापित किया कि श्वास रोग और हाईपरटोनिया के रोगियों की चिकित्सा कृत्रिम अयनों के द्वारा हो सकती है। इस बात को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने बिजली का एक विशेष प्रकार का यंत्र बनाया

कृत्रिम प्रोटीन का उत्पादन

अमेरिकी रसायनशास्त्रियों के कथनानुसार प्रयोगशालाओं में निर्मित प्रोटीन से ऊन जैसा सूत, उन्नत किस्म का फोटोग्राफी का कागज, रक्त के असम्बु की अभिवृद्धि करने वाला पदार्थ तथा उद्योगों, चिकित्सा तथा विज्ञान के क्षेत्रों में उपयोग में आने वाले बहुत से पदार्थ तैयार किए जा सकते हैं।

सूती वस्त्रों में धातुओं के रसायनों का प्रयोग

अमेरिकी कृषि विभाग की सूचना है कि टैक्सास के डेण्टन स्थित महिला कालेज में सूती वस्त्रों पर धातुओं के रसायनों का प्रयोग इन्हें जलने, पानी में भीगने तथा फंफूदी लग जाने से बचाने की दृष्टि से

किया जा रहा है। प्रारम्भिक परीक्षणों से यह बात पता चली है कि अलूमीनियम, मैग्नीशियम तथा कोबाल्ट से निर्मित रसायनों के सूती कपड़ों पर प्रयोग से लाभ होने की आशा है।

जल के वाष्पीकरण की रोकथाम

न्यूयार्क नगर स्थित कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अनुसन्धानकर्ताओं ने सूचित किया है कि लाखों गैलन जल को वाष्प के रूप में उड़ने से बचाने के लिए एक सस्ते तरीके का पता चलाया गया है।

"हैक्साडैकानोल" (सीटाइल एल्कोहल नामी निरापद रसायन की बहुत थोड़ी मात्रा उक्त विधि में इस्तेमाल की जाती है। दक्षिण पश्चिमी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के जलाशयों पर इस सस्ती रासायनिक दवा को छिड़क कर कई महीनों तक जो परीक्षण किये गये हैं उन से पता चला है कि इस दवा के कारण वाष्प के रूप में पानी के उड़ने में ५० प्रतिशत से ६५ प्रतिशत तक कमी हो जाती है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग के प्रोफेसर डा० विक्टर के० ला-मर ने बताया कि उक्त रसायन को, जिसे अब व्यापारिक स्तर पर तैयार किया जाता है, जब जल पर डाला जाता है तब यह दवा जल को एक व्यूहाणु की मोटाई की परत से ढक देती है और उस पर हवा का असर नहीं होता। एक पौण्ड 'हैक्साडैकानोल' नामी दवा १० एकड़ जलाशय के ढकने के लिए प्रर्याप्त होती है।

डा० ला-मर ने यह संकेत किया कि यदि संसार के उन क्षेत्रों में जहां जल का सदा अभाव रहता है, इस नई विधि द्वारा जल को उड़ने से बचाया जाये तो प्रतिवर्ष लाखों डालर की बचत हो सकती है। इस दवा की परत को पानी पर कायम रखने के लिए उसे हवा और धूल से बचाये रखने की समस्याओं का भी समाधान करना होगा। उस परत को दुबारा डालने की व्यवस्था भी विचारणीय होगी। एक किनारे से दूसरे किनारे तक परत रख कर ही वाष्पीकरण को रोका जा सकता है, पर तेज प्रवाह वाले नदी-नालों पर परत कायम नहीं रखी जा सकती।

जले घावों के लिए औषधि

एक अमेरिकी शल्य-चिकित्सक ने एक ऐसी दवा तैयार की है जिसे छिड़कने से उन रोगियों को शीघ्र आराम आ जाता है जिनके शरीर पर जल जाने से घाव हो गये हों।

उपचार में थोड़ी-थोड़ी देर बाद रोगी पर जल में मिला कर यह औषधि तथा फिसोनेक्स नामक कीटाणु-नाशक घोल छिड़का जाता है। घावों को नरम रखने तथा खुरण्ट को सुखाने के लिए रोगी को १०० प्रतिशत नमी वाले वातावरण में रखा जाता है। इससे मृत कोष-समूहों को हटाना तथा संक्रमण के खतरे को कम करना आसान हो जाता है।

अनुवाद का नया यन्त्र

'मैसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट औव् टैक्नोलौजी' में कार्य करने वाले वैज्ञानिक एक ऐसे विद्युदणुयन्त्र का विकास कर रहे हैं जो शीघ्रता के साथ विदेशी भाषाओं की पुस्तकों आदि का अनुवाद कर सकेगा। उन्हें आशा है कि यह यन्त्र १६६२ तक बड़े पैमाने पर बिक्री के लिए बन कर तैयार हो जायेगा।

इसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि यह यन्त्र बड़ी शीघ्रता के साथ कार्य करेगा और इसमें किसी भी विदेशी भाषा के समस्त शब्द तथा उनके पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द उपलब्ध रहेंगे।

तेज गति वाली टेलिप्रिन्टर मशीन

अमेरिकी सेना ने संसार की सबसे तेज गति से संदेश भेजने वाली टेलिप्रिन्टर मशीन का उद्घाटन किया है। 'स्मिथ कोरोना' नामक कम्पनी की सहायक कम्पनी 'क्लीनोश्मिट लेबोरेटरीज' द्वारा इस यन्त्र का विकास किया गया है। 'स्मिथ कोरोना' अमेरिका की टाइपराइटर बनाने वाली सब से बड़ी कम्पनियों में से है। यह मशीन एक मिनट में ७५० शब्द छापती है। यह सामान्य टाइपिस्ट से १० से १५ गुना, साधारण बात-चीत से ५ गुना और प्रचलित टैलिटाइप मशीनों से १० गुना से अधिक तेज काम करती है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिग्राम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमाँसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेशवेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण ले० एल० ए० डाउस्ट अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर—	२ रुपया
१०—कलम पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस०-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
२०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रुपये ५० नये पैसे
२२—साँपों की दुनियाँ—श्री रामेशवेदी	४ रुपये
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन

थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान

अगस्त १९५८

रजिस्टर्ड सं० ए ३७२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, पंजाब तथा आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशन—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रेस, ९३ चक, इलाहाबाद—३।

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा, प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञापन की दर

	एक अंक के लिये	एक वर्ष के लिये
पूरा पृष्ठ	२० रुपया	२०० रुपया
आधा पृष्ठ	१२ रुपया	१२० रुपया
चौथाई पृष्ठ	८ रुपया	८० रुपया

प्रत्येक रंग के लिये १५ रुपया प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८७	कन्या २०१५ विक्र० भाद्रपद १८८० शाकाब्द; सितम्बर १९५८	संख्या ६

सम्पादकीय

(विकासवाद के सौ वर्ष)

१ जुलाई सन् १८५८ को लन्दन की लीनियन सोसायटी के समक्ष चार्ल्स डारविन ने विकास वाद के विषय में प्रथम बार अपने विचार प्रकट किये। परन्तु किसी ने इनके वक्तव्य की ओर ध्यान तक न दिया। सृष्ट्युत्पत्ति संबंधी पुराने विचारों से बंधे लोग ऐसे व्यर्थ के विचार मानने को तैयार न थे। वह इनको यों भूल गये मानों कुछ हुआ ही नहीं, यद्यपि डारविन का वह २० वर्ष से अधिक का परिश्रम था। डब्लिन के प्रोफेसर हाटन ने डारविन के विचारों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये थे जैसा बाद में स्वयं डारविन ने लिखा है। प्रोफेसर हाटन के विचारानुसार डारविन के विचारों में "जो कुछ नया था वह गलत था और जो कुछ सच था वह पुराना था।"

किसी भी नये विचार को जनता के सामने उपस्थित करने के लिये यह आवश्यक है कि उसका पूर्ण विवरण साधारण ढंग से समझाया जावे। यह विचार जो स्वयं डारविन के हैं, बिल्कुल सत्य है। अगले वर्ष (सन् १८५९) में डारविन की पुस्तक "दी ओरिजिन आफ स्पीसीज" प्रकाशित हुई। यह एक बड़ी पुस्तक है और पांचगुनी बड़ी हो सकती थी। पर डारविन ने अपने पाँडित्यपूर्ण विचारों को बड़े विवेक के साथ संगठित करके संक्षिप्त रूप में उपस्थित किया। इस पुस्तक ने सारे संसार को हिला दिया। धर्म के महापंडितों को बड़ा धक्का लगा। वे अपने विचारों को उखड़ते नहीं देख सकते थे, इसलिये इनके मत के परम विरोधी बन गये।

मानव की उत्पत्ति के विषय में यह सबसे महत्वपूर्ण अनुसंधान है। इसी के सहारे आधुनिक जीव-विज्ञान के पंडितों ने विकासवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुये अनेक अकाट्य प्रमाणों की सहायता से यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य सूक्ष्म जीवों से विवर्तन की दीर्घ कालीन अतिमंथर क्रियाओं के उपरांत विकसित हुआ है। विकासवाद के तथ्यों को मानते ही मनुष्य का मस्तिष्क आगे बढ़ा और अनेक महत्वपूर्ण खोज करने में सफल हुआ।

आज के जगत में विकास वाद को साधारण मनुष्य उसी तरह मानता है जिस तरह सूर्योदय को। डारविन के विषय में व्यक्त किये गये पुराने विचारों का लोग अब भी उपयोग करते हैं। वह डारविन की संज्ञा "विकास-वाद के खोजी" से करते हैं यह उसे वह मनुष्य बताते हैं "जिसने कहा है। कि हमारी उत्पत्ति बन्दर से हुई है।"

परन्तु डारविन ने इन दोनों में से कुछ नहीं किया। नहीं वह "विकास वाद का खोजी" है और न ही उसने

कहा कि "हमारी उत्पत्ति बन्दर से हुई है।" डारविन ने इतने परिश्रम के पश्चात् जो कुछ लिखा और जिस मत का प्रचार करना चाहा वह अब भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। उसके विचारों से बड़े-बड़े वैज्ञानिक पूरी तरह से सहमत नहीं, ग्लैडस्टोन के १८७६ में व्यक्त किये गये यह विचार अब भी पूरी तरह लागू हैं। डारविन उन लोगों में प्रथम नहीं है जिन्होंने प्रकृति को उस प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जिन्हें विकासवाद कहते हैं। परंतु निश्चय ही डारविन वह प्रथम व्यक्ति हैं जिसने 'एवोल्यूशन' (विकास वाद) शब्द का उपयुक्त प्रयोग किया। उनका विचार है कि सभी सजीव इकाइयों में सदा परिवर्तन होता रहता है। वह बदलते रूपों से होकर अपने आधुनिक रूप पर आये हैं। परिवर्तन की इस क्रिया को व्यक्त करने के लिये उन्होंने इस शब्द (एवोल्यूशन) का प्रयोग किया।

ईसा के समय से शताब्दियों पहले ऐसे महापुरुष थे जिनके विचारानुसार वनस्पति तथा जन्तु इसी रूप में उत्पन्न नहीं हुये जिसमें वह आज हैं। परंतु यह सब एक निरंतर खुलने वाली कुन्डली पर बिन्दुओं की भांति हैं। राम के कवि ल्यूक्रैटियस (६८-५१ ई० पू०) के काव्य में विकासवाद की ओर संकेत है। ग्रीस दार्शनिक एम्पीडौक्लिास (४६०–४३० ई० पू०) ने भी इस ओर अपने विचार व्यक्त किये हैं। फिर पन्द्रहवीं शताब्दी के ख्याति लब्ध कलाकार व वैज्ञानिक लियोनार्डो डाविन्सी ने फ्लोरैएटाइन न्यायालय में सिद्ध किया कि फौसिल्स निश्चित रूप में पुरातन जन्तुओं के अस्थि-अवशेष है और जब जीवित थे तब यह जंतु आज के जंतुओं से पूर्णतया भिन्न थे।

लिओनार्डो डाविन्सी से पूरी तीन शताब्दियों बाद फ्राँस के प्रसिद्ध जीव विज्ञान विद् लैमार्क ने अपनी पुस्तक "फिलासफी जूलौजिक" द्वारा अपने विचार उपस्थित किये। इनके मतानुसार प्रत्येक प्राणी अपने वातावरण की प्रेरणा से कुछ विचित्र चरित्र पैदा कर लेता है। इस प्रकार अर्जित विचित्रतायें वंशानुक्रम के अनुसार संतान-को प्राप्त हो जाती हैं। उदाहरण के लिए व्हेल एक स्तनी कि पायी थलचर है पर यह पुनः जल में वापस आ गया और जल में अपने हाथ पैरों का उपयोग नहीं किया इस लिये वे छोटे हो गये और ऐसे जिसे तैरने के लिये वह पतवार की भाँति उपयोग कर सके यह एक अर्जित चरित्र है जो अब लगातार एक व्हेल से दूसरे व्हेल को वंशानुक्रम के अनुसार पहुँचता है। लामार्क के इस मत ने कि उपयोग तथा अनुपयोग से प्राप्त चरित्र संतान को प्राप्त होते हैं संसार के सोचने वाले व्यक्तियों को थर्रा दिया।

१७६८ में एक अंग्रेज टी० आर० माल्थस ने जनसंख्या के संबन्ध में एक निबन्ध प्रकाशित किया। इस निबन्ध के कई संस्करण प्रकाशित हुए। इसमें "भोजन के लिये संघर्ष" नामक एक भाग था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्धभाग में लोग इसको बहुत पढ़ते थे। इन पढ़ने वालों में चार्ल्स डारविन और अल्फ्रैड रसैल वालेस भी थे। इन्होंने काफी भ्रमण भी किया था और माल्थस द्वारा उपस्थित की गई कुछ समस्याओं से प्रेरित हो कर इन्होंने अपना अध्ययन प्रारम्भ किया।

डारविन एच० एम० एस० बीगल नामक जहाज पर एक पंचवर्षीय यात्रा पर गया। इस यात्रा का ध्येय था संसार के जीव जन्तुओं का तथा अनेकों प्राकृतिक बातों का अध्ययन। इस यात्रा से वापस आने पर १८३६ में डारविन एक अनुभवी जीव विज्ञान विद् हो गया फिर भी वह अपने विचारों को संसार के सामने रखने से डर रहा था इस लिये कि उसके पास समर्थन के लिये उपयुक्त उदाहरण फिर भी नहीं थे। वह वर्षों सोचता रहा, लिखता रहा और १८४४ में उसने अपने विचारों को एक निबन्ध रूप में लेखनी बद्ध किया। दो साल बाद यह ३२ पृष्ठ वाला लेख १३० पृष्ठ का हो गया। इस के चौदह वर्ष पश्चात् वालेस ने मलाया से डारविन के पास एक लेख भेजा। इसका मुख्य विषय था कि "विभिन्न जाति के जीवों में मूल प्राणियों से परिवर्तित होने की प्रवृति होती है"

[शेष पृष्ठ ३६७ पर]

विज्ञान सितम्बर १९५८
१६३–१६७

कुथ की जड़ों से कुथ-तैल का पृथक्करण

[श्री ब्रह्मशंकर वर्मा वन अनुसन्धान शाला, देहरादून]
अनुवादक श्री बाबूराम शर्मा

कुथ तैल गन्ध-शिल्प में संशोधक तथा स्थायक के रूप में व्यवहृत होने के कारण बहुत मूल्यवान माना जाता है। यह कुथ (सासुरिया लप्पा, सी० बी० क्लार्क) की जड़ों से प्राप्त किया जाता है। इसका पौधा, जो क्षुप रूप में ७ फीट ऊंचाई तक बढ़ता है संग्रथित (Composital) कुल से सम्बन्धित है। काश्मीर में यह पश्चिमी हिमालय के हिम प्रदेशों में ८,००० से १२,००० फीट तक की ऊँचाई पर जंगली दशा में पाया जाता है। उसी या उससे कुछ अधिक ऊँचे धरातल पर लाहौल, गढ़वाल, नैपाल तथा अन्य पड़ोसी प्रदेशों में कुछ सीमा तक इसकी खेती भी होती है। पहले इस पौधे की जड़ों का पर्याप्त मात्रा में चीन देश को निर्यात किया जाता था, जहाँ वे मन्दिरों में धूप के स्थान पर जलाई जाती थीं। जर्मनी को तैल-स्रावण के लिये भी यह भारी परिमाण में निर्यात की जाती थीं।

जड़ों से तैल साधारण जल-स्रावण रीति से निकाला जाता है और शिमल एण्ड कम्पनी के विवरणानुसार उत्पत्ति १ प्रतिशत है और नेन्यूज के कथनानुसार ०.६ से ०.८ प्रतिशत के लगभग रहती है। परन्तु वन अनुसन्धान शाला, देहरादून में कई वर्षों तक किए गए अन्वेषणों से पता चलता है कि जड़ों को अल्कोहल द्वारा निस्सारण करने तथा पीछे निस्सर (extract) के वाष्प-स्रावण करने पर और भी अधिक (१.५ से ५.० प्रतिशत तक) प्राप्ति हो सकती हैं जो स्थान, पौधे की आयु तथा संग्रह काल पर निर्भर करती है।

उच्चतम सीमा तक तैल-पृथक्करण के लिए उपयुक्त रीति निर्धारण की दृष्टि से कुछ प्रयोग किए गए है। परिणामतः यह ज्ञात हुआ है कि जल-स्रावण रीति से तैल की कम मात्रा में प्राप्ति का मुख्य कारण तैल का आस्रवित-जल के साथ मिल जाना तथा फलानुसार प्रथमोक्त का उत्तरोक्त से अलग न हो सकना है, जो जल के सन्निकट ही तैल का घनत्व होने के कारण है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए उस आसोत्र (Still) को, जिसमें आस्रवण-जल के आसोत्र में स्वतः ही लौट आने का प्रबंध हो, प्रयोग किया गया है। एक न्यादर्श (Sample) में जिसमें २.२ प्रतिशत आस्रवार्थ तैल बताया गया, इस रीति से ३० घण्टे की आस्रवण क्रिया से १.६ प्रतिशत तक तैल मिला, जब कि जल-स्रावण की साधारण रीति से उत्पत्ति केवल ०.८ प्रतिशत है। इस स्वचालित पुनस्स्रवण रीति के प्रबन्ध वाला उपकरण नीचे चित्र सं० १ में दिखाया गया है।
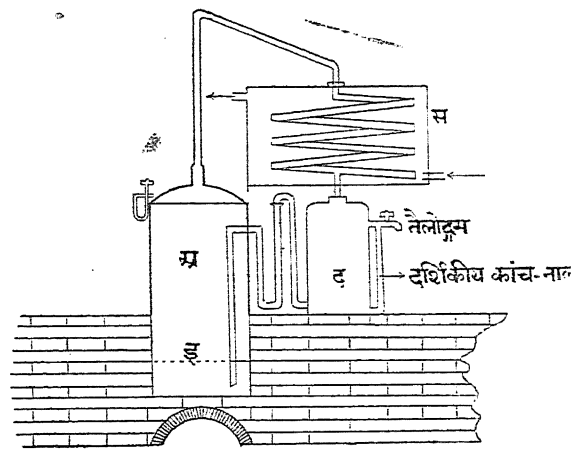
चित्र—१

स्वचालित पुनस्स्रवण आसोत्र

अ =	आसोत्र
ब =	संकीर्ण ग्रीवा
स =	संघनक
द =	आदाता
इ =	कृत्रिम तल

तैल की उत्पत्ति को और अधिक बढ़ाने के लिए साधारण या चक्रित जल-स्रावण रीति के स्थान पर घोलक-निस्सारण रीति का आविष्कार किया गया है। अल्कोहल द्वारा जड़ों का निस्सारण तथा घोलक के आस्रवण के पश्चात एक गाढ़ा उपासीय पदार्थ बच रहता है। निस्सर उद्यास को २ प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड की प्रक्रिया से दूर करके फिर बहुत अधिक रिक्त स्थान पर आस्रवण करके तैल की ४.० से ५.० प्रतिशत तक प्राप्ति की जाती है। निस्सारण का विस्तृत विवरण इस प्रकार है।

चित्र—२
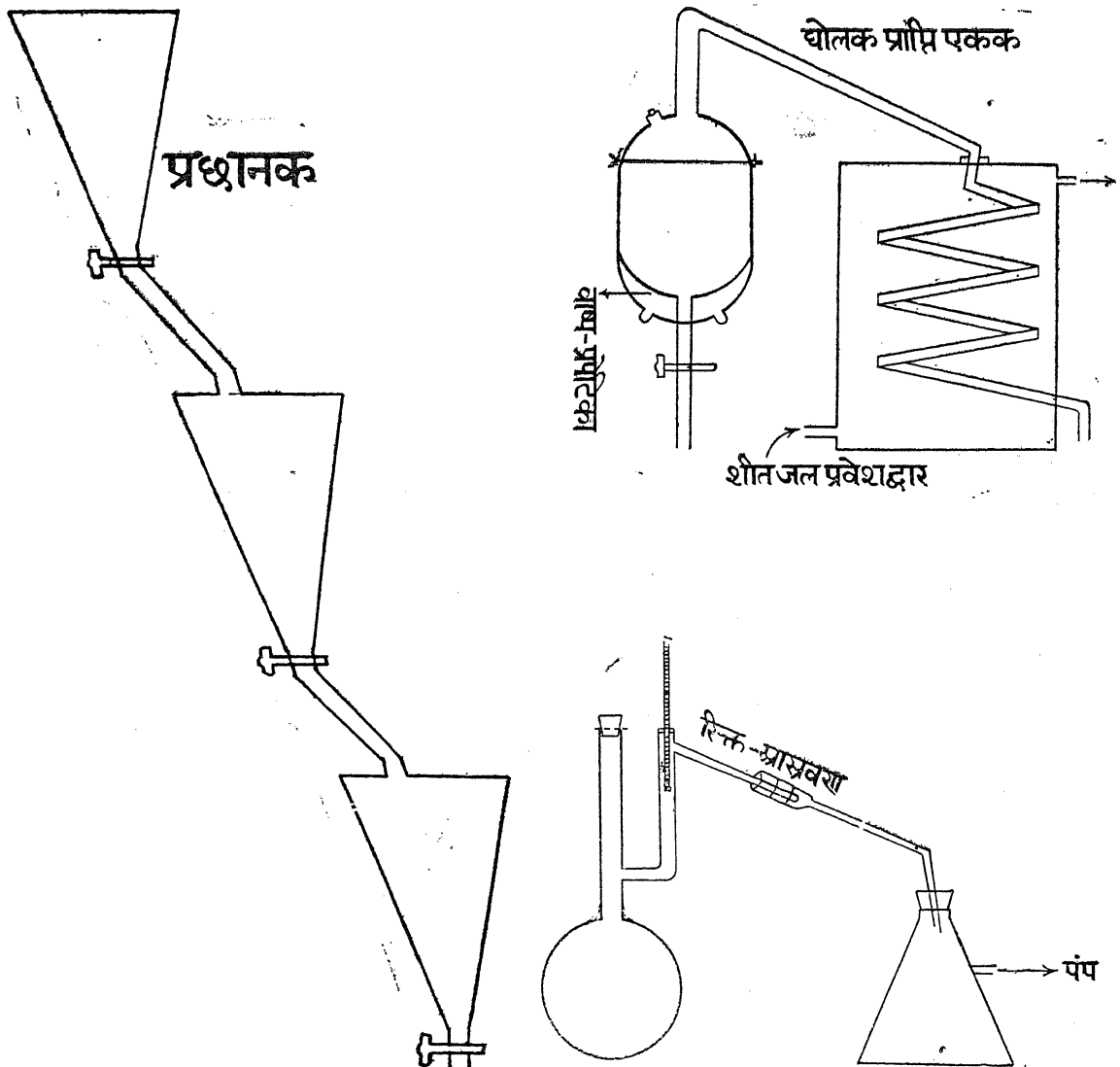
कुथ की जड़ों के महीन चूर्ण (१ किलोग्राम) को रात भर ९५ प्रतिशत अल्कोहल (५ लिटर) में प्रच्छानक (Percolator) में रख कर भिगोया जाता है और बचे हुए निस्सर को अलग कर लिया जाता है। इसी क्रिया को दो बार, परन्तु हर बार केवल तीन लिटर उस अल्कोहल लेकर पुनः किया जाता है, इस मिले-जुले

निस्सर से घोलक अलग कर लिया जाता है और पृथक-करी–कीप में डाल कर २५० घन सेण्टीमीटर २ प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड में मिलाकर दो बार निस्सारित कर लिया जाता है । क्षार मिश्रण का क्षार पूर्णतया अलग करने के लिए उसे पानी से धोया जाता है। फिर इसकी आर्द्रता अजलेय मैगनीशियम सल्फेट (anhydrous magnesium sulphate) डाल कर दूर कर ली जाती है। और जल कुन्डी पर रखकर घोलक प्राप्ति के लिये आस्रवित कर लिया जाता है। शेष पदार्थ गहरे रंग का गाढ़ा तेल लगभग ७० ग्राम प्राप्त होता है। इस गाढ़े तेल को बाद में क्लेशन-फ्लास्क में रिक्तता (Vacuum) पर आस्रवित करते हैं। इस क्रिया में बहुत चतुरता तथा अनुभव की आवश्यकता है क्यों कि आस्रवण के समय झाग बहुत आते हैं। आस्रवण के दबाव को धीरे-धीरे १० मिलीमीटर तक घटाकर आंच धीरे-धीरे बढ़ाई जाती है। आस्रवण ६० डिग्री सें० पर आरम्भ हो जाता है और उस समय तक चालू रक्खा जाता है जब तक फलास्क के पदार्थ जलने के चिह्न, श्वेत धूम, (२१५ डिग्री सें०) दिखाई न देने लगे। इस प्रकार कुल ४०-५० ग्राम तक तैल इकट्ठा हो जाता है (४ से ५ प्रतिशत उत्पत्ति)। विभिन्न प्रभागों की प्रतिशत उत्पत्ति तथा भौतिकी आंकड़े, जब घटाए दबाव पर प्रभागशः तैल आस्रवित किया जाता है, इस प्रकार है (विभिन्न प्रभागों की उत्पत्ति जो सेमलर और फेलस्टीन ने प्राप्त की, तुलनार्थ सम्मिलित हैं)।

सारणी १

	क्वथन परिसीमाएँ (Boiliug ranges)	उत्पत्ति सेमूलर और फलस्टीन द्वारा प्राप्त प्रतिशत	उत्पत्ति लेखक द्वारा प्राप्त प्रतिशत	आपेक्षिक घनत्व Specific gravity २०°	मुड़ायनाँक (Refractive Index)	प्रकाश घूर्णन (optical rotation)
१.	६०°–१५०°/११ मि०मी०	१४.८ (कुल)	३.८	०.६१३०	१.४८२०	+१५.०°
२.	१५०°–१६०°/११ ,,	१४.४	१.८	—	१ ४८४५	+१६.८°
३.	१६०°–१७५°/११ ,,	१२.०	६.१	०.६३६१	१.४८८२	+ ६.४°
४.	१७५°–१६०°/११ ,,	६.२	६.६	०.६६८१	१.५०२०	+१६.४°
५.	१६०°–२००°/११ ,,	१४.४	१४.६	१.०४४८	१.५१०८	+२५.६°
६.	२००°–२१०°/११ ,,	१४.४	२८.०	१.०७२५	१.५१५०	+३०°
७.	२१०°–२१५°/११ ,,	१३.०	१६.६	१.०८०५	१.५२००	+२७.२°
	शेष		१६.०	—	—	—

यह ध्यान देने योग्य है कि आसवण के समय जो प्रभाग १८० डिग्री—२०० डिग्री / ११ मिलीमीटर में आता है वह संघनक नाल में जमने लगता है। थोड़ा गरम करके इसे आदाता (Reciver) की ओर चला दिया जाता है। ठन्डा होने पर यह प्रभाग एक रंग विहीन स्फटीय ठोस पदार्थ के रूप में बचता है जो चूषक पम्प (Suction pump) द्वारा छाना जा सकता है। ऊपर की सारणी में दिए आंकड़े उस तैल भाग के लिए हैं जो स्फटीय ठोस पदार्थ जो सासुरिया लैक्टोन नाम नया लैक्टोन है, को अलग करने से प्राप्त हुए।

घोलक-निस्सारित तैल जैसा कि उचित ही है अन्य रीतियों से प्राप्त तैल के नमूनों से थोड़ा भिन्न होता है। तीनों विभिन्न रीतियों से प्राप्त तैल के नमूनों की विशेषताएँ नीचे दिखाई गई हैं।

सारणी—२

	तैल जल स्रावण रीति से प्राप्त १	तैल स्वचालित पुनस्सरण आसोत्र द्वारा प्राप्त २	तैल घोलक निस्सारण रीति द्वारा प्राप्त (ठोस) कणों को छानने के पश्चात ३
उत्पत्ति	०.८ प्रतिशत	१. ६ प्रतिशत	४–५ प्रतिशत
घनत्व)Consistency)	गाढ़ा तैल	अधिक गाढ़ा तैल	अधिक गाढ़ा तैल
रंग	पीत	भूरा पीत	भूरा पीत
क्वथन परिसीमा	६०°-२१०°/११ मि० मी०	६०°-२१५°/११ मि० मी०	६०°-२१५°/११ मि० मी० (२१४)
घनत्व ३०° सें० पर	०. ९३६	१. ०३६०	१. ०४६०
३०° सें० पर भुजाय-नांक	१. ४६३२	१. ५१२०	१. ५ ३५
३०° सें० पर प्रकाश घूर्णन	+१५. १२°	+१६. ३२°	+१३. ८
अम्ल अर्हा	७.८	१५. ३	६.७
एस्टर अर्हा (ester value)	४२. ६	११०	१.८०
शुम्तलन के (acetyl-ation) पश्चात एस्टर अर्हा	७४. ७	१७५	२१४

यद्यपि कुछ भौतिक विशेषताएं (Constants) अन्य नमूनों से भिन्न हैं यह घोलक निस्सारित तैल गन्ध तथा सुरभि में उनसे बहुत मिलता जुलता है। प्रथम तथा तृतीय नमूने मूल्याँकन तथा सम्मति के लिए गन्ध व्यवसाय के एक विशेषज्ञ के पास भेजे गए उसका विवरण इस प्रकार है "लगभग १६० घण्टे खुला रखने के पश्चात दोनों नमूने, जहाँ तक गंध शक्ति का सम्बंध है आपस में बहुत मिलते जुलते हैं। वाष्प-आस्रवित नमूनों में (१) ३२ दिन के पश्चात कोई गन्ध नहीं रही। परन्तु दूसरे नमूने में (२) (घोलक-निस्सारित) फिर भी थोड़ी गन्ध विद्यमान थी"। एक आस्ट्रेलियन फर्म का विवरण है कि नमूना (३) अति उत्तम गुणों से युक्त है। साबुन सुगन्ध-शिल्प तथा अंगराग (Soap, perfumery and cosmetics) नाम लन्दन के पत्र के सम्पादक की सम्मति है कि यह तैल उच्च कोटि का है तथा अत्युच्च गंध सामग्री है।

भारतवर्ष में गंध संशोधन क्रिया महती सीमा तक नहीं बढ़ी इस लिए देश के भीतर इस तेल की खपत बहुत कम है। देश के अधिकाधिक सुगंध प्रेमी बनने के साथ गन्धनिर्माण कला में भी उन्नति होगी तथा कुथ के तेल की भी स्थायक के रूप में मांग बढ़ेगी। इगलैन्ड, फ्रान्स, अमेरिका प्रभृति देशों में इस तेल की गंध व्यवसाय के क्षेत्र में बड़ी ख्याति है तथा यह अकल्पनीय मूल्य पर बिकता है, उदाहरणतः लन्दन में इसका मूल्य ५५०-६०० शिलिंग प्रति पौण्ड कहा जाता है, ग्रैसे (फ्रांस) में इस का मूल्य ५५,००० से ७०,००० फ्रांक प्रति किलोग्राम के बीच में घटता बढ़ता है और न्यूयार्क में इसका मूल्य २५ डालर प्रति औंस कूता गया है पिछले महायुद्ध के आरम्भ होने से पूर्व काश्मीर प्रतिवर्ष २,००० से ४,००० मन कुथ की जड़ें बाहर भेजता था। उत्तर प्रदेश में गढ़वाल बन तथा पंजाब (भारत) में कुलूवन एक-एक हजार मन का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार देश में कच्चे माल की बहुलता तथा उन्नत (Essential) तैलों के अधिक मूल्य के कारण देश में इस तेल का पर्याप्त क्षेत्र है।

सम्पादकीय

[शेष पृष्ठ १६२ का]

वालेस के निबन्ध में डारविन ने अपने विचारों की झलक पाई केवल कुछ विचारों में वह वालेस से सहमत नहीं था। वह वालेस को इस खोज के लिये पूरा अधिकार तथा सम्मान देने को तैयार हो गया। परन्तु अपने साथियों तथा अन्य वैज्ञानिकों से विवश किये जाने पर १८५८ में उसने अपना निबन्ध लीनियन सोसायटी के सन्मुख पढ़ा और १८५६ में अपनी पुस्तक "ओरिजिन आफ स्पीसीज" प्रकाशित की डारविन के विचारों में प्रधान है प्राकृतिक निर्वाचन (नेचुरल सिलैक्शन)। प्राणियों में संतानोत्पति की वृहत शक्ति होती है परंतु चूकि प्रकृति के नियमनुसार जन-संख्या स्थिर रहती है इसलिये जीवित रहने के लिये संघर्ष होता है और उसमें केवल उपयुक्ततम ही जीवित रहते हैं। प्राकृतिक निर्वाचन का यह एक साधन।

डारविन वाद का नीव तीन वैज्ञानिक तथ्यों और उनके निकले हुये उपयुक्त दो परिणामों पर आधारित है। डारविन के इन विचारों की कड़ी आलोचना हुई। इन आलोचनाओं के बाद डारविनवाद में लोगों का विश्वास हटने लगा। अब से लगभग तीस वर्ष पहले बहुत से वैज्ञानिक यह समझने लगे थे कि प्राकृतिक निर्वाचन का विकास की क्रिया में कोई हाथ नहीं हो सकता। यहां तक कि विरोधी कहने लगे कि "प्राकृतिक निर्वाचनवाद गुब्बारे की तरह फूल कर फट गया।"

परंतु कुछ समय बीतने के बाद वंशानुक्रम विज्ञान (जैनैटिक्स) की प्रगति के कारण डारविनवादियों और वंशानुक्रम वैज्ञानिकों में समझौता होने लगा। अब डारविन और मैण्डल दोनों के अनुयायी मान बैठे हैं कि विकास 'म्यूटेशन', निर्वाचन और 'जीनों' के विविध संयोगों का फल है। इस प्रकार प्राकृतिक निर्वाचनवाद अर्थात डारविनवाद का पुनर्जन्म हो गया है और अब विकासवादी मानते हैं कि प्राकृतिक निर्वाचन का विकास की क्रिया में बहुत बड़ा हाथ है।

समृद्धि की ओर

सन् १९४७ में राजनीतिक स्वतंत्रता के उद्भव के उपरान्त राष्ट्र में नव निर्माण का युग प्रारम्भ हुआ। केन्द्र एवं राज्यों में जनता की सरकारों ने जनता के सहयोग से सृजनात्मक शक्तियों को बढ़ावा दिया जिसके फलस्वरूप प्रत्येक क्षेत्र में विकास और निर्माण की गतिविधियाँ परिलक्षित हुई। सदियों की सुप्तावस्था के बाद देश के सहकर्मियों ने पहली बार श्रम का स्वर्णिम विहान देखा और अन्य राज्यों की तरह उत्तर प्रदेश में भी पंचवर्षीय योजनाओं का सूत्रपात इसका प्रतीक था। योजना के अन्तर्गत जन-समाज की चतुर्दिक प्रगति के लिए सुव्यवस्थित प्रयास किया गया जिसके फलस्वरूप

खाद्योत्पादन बढ़ा

योजना के अनुसार प्रदेश में लगभग १० लाख टन अतिरिक्त खाद्योत्पादन का लक्ष्य रखा गया था जो अवधि समाप्त होने से पहले ही पूरा हो गया।

सिंचन सुविधाएं बढ़ी

योजना से पूर्व प्रदेश में कुल सिंचित क्षेत्र ७८ लाख एकड़ ही था जो योजना समाप्त होने तक बढ़कर १ करोड़ ६ लाख एकड़ हो गया।

नये क्षेत्रों में बिजली सुलभ हुई

सिंचाई की सुविधाओं के प्रसार के लिए जिन साधनों एवं प्रक्रियाओं का सहारा लिया गया उनके फलस्वरूप विद्युत-उत्पादन में स्वभावतः वृद्धि हुई और २३ नये जिलों में प्रकाश एवं उद्योगों के संचालन के लिये 'शक्ति' सुलभ हुई।

और इसके साथ ही

औद्योगिक विकास की नीव पड़ी

प्रदेश के इतिहास में सर्वप्रथम सरकार द्वारा दो बड़े उद्योगों की स्थापना की गयीं। इनमें से एक मिर्जापुर के पास चुर्क नामक स्थान पर सीमेंट का कारखाना है और दूसरा है लखनऊ स्थित अणुवीक्षण यंत्र कारखाना। ज्ञातव्य है कि सीमेंट कारखाने की उत्पादन क्षमता ७०० टन सीमेंट प्रतिदिन है। लखनऊ के कारखाने में मार्च १९५६ तक लगभग ३३९६५ जलमापक यंत्र एवं २७२ अणुवीक्षण यन्त्रों का निर्माण हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सीमेंट के कारखाने का विस्तार किया जायगा और अणु-वीक्षण यंत्र कारखाने में डाक्टरी औजार जैसी नयी वस्तुएँ बननी आरम्भ हो जायेंगी।

आठवाँ पुष्प
विज्ञान सितम्बर १६५८
पृष्ठ १६६–१७५

भारतीय कृषि का विभाग

[डा० शिवगोपाल मिश्र एम. एस.-सी., डी. फिल., साहित्यरत्न]

भारतीय कृषि का प्रथम वैज्ञानिक विश्लेषण हमें जे० ए० वोयेल्कर की पुस्तक 'Improvements of Indian Agriculture" में मिलता है। इसी पुस्तक में लिखा गया है कि :—

"यह ठीक ही कहा गया है कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है जिसके विषय में हम कोई सामान्य धारणा नहीं बना सकते—विशेषतया भारतीय कृषि के विषय में और भी नहीं। यह बिलकुल भ्रमात्मक कथन है कि भारतीय कृषि वैसी ही प्राचीन एवं पिछड़ी है और उसे सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया गया। मेरी दृढ़ धारणा है कि सब बातों को ध्यान में रखते हुये और मुख्यतः उन अवस्थाओं को जिनमें भारतीय फसलें उगाई जाती हैं, भारतीय कृषक श्रेष्ठ है। भारतीय प्रजा अथवा कृषक कुछ मामलों में उतना ही श्रेष्ठ है जितना कि ब्रिटेन का मध्यम कृषक। और किन्हीं-किन्हीं मामलों में उनसे भी श्रेष्ठ। किन्तु उसकी निकृष्ट अवस्था केवल सुविधाओं की अनुपलब्धि के कारण है जो अन्य किसी देश में नहीं देखी जाती।"

..."इससे स्पष्ट है कि पानी अत्यधिक मात्रा में लिया जाता है और खेतों में अधिक फसलों के उगाने का प्रयत्न किया जाता है अतः नहरों के सूत्रपात से खेतों में "अधिक फसलों" के उगाने की प्रथा चल पड़ी। अकाल कमीशन की सूचना से ज्ञात होता है कि उन भागों में पहले जहाँ नहरें न थीं उनके सूत्रपात के साथ ही भूमि विनष्ट होने लगी। इसका कारण भूमि में अधिक फसलों के उगाने की प्रवृत्ति थी जो अधिक खाद डालने से ही प्राप्त हो सकती थी। अधिक पानी देने से भूमि के वे आवश्यकीय तत्व घुल कर निकल जाते हैं जो फसलों के लिये लाभदायी होते अतः अत्यधिक पानी देने से पानी ही न रुका रहा वरन् ठंडक बढ़ी और उपयोगी तत्व भी बह गये।"

"मैंने अपनी खोजों में यह देखा कि जहाँ वर्षा बहुत कम है, खाद और पानी दोनों का एक साथ नाम लिया जाता है और यह कहा जाता है कि ये दोनों एक दूसरे के लिये आवश्यक हैं। यह एक साधारण कहावत है कि यदि रियाया को पानी और खाद दे दिया जाय तो वह पत्थर पर भी फसलें उगा लेगी!"

"अतः जब हम देहातों तक में यह विशिष्ट प्रचलन पाते हैं कि वे अपने जानवरों के गोबर के अधिकांश को कंडों के रूप में ईंधन की भाँति जला डालते हैं तो हमें विस्मय की दृष्टि से रुक कर यही पूछना पड़ता है कि क्या इन कंडों के जलाने से कृषि को महान क्षति नहीं पहुँच रही?............किन्तु भारत की पशु खाद इतनी निकृष्ट या दरिद्र नहीं जितना लोगों ने इसे बताया है अतः जब इस ईंधन के लिये जलाया जावेगा तो अवश्य ही इसका बहुत सा अंश नष्ट होगा जिसकी पूर्ति वर्षा से नहीं हो सकती।......
...किन्तु जैव-पदार्थ की सम्पूर्ण महत्ता जलाने से नष्ट हो जाती है और यह कुछ कम महत्व की बात नहीं जब कि भारत की मिट्टियाँ सामान्यतः वानस्पतिक पदार्थों से अत्यन्त न्यून हैं।"

"शोरा एक लवण है जो भारत के अनेक भागों में मिट्टियों में फूटता है। इसका वृहत निर्माण नमक के ही साथ बिहार तथा दक्षिणी पश्चिमी प्रदेशों में होता है।

पुराने गाँवों के चारों ओर भी लोना फूटता है।...नील भी क्वावर की भाँति एक फलीदार वृक्ष है जो कुर्ग, नील गिरि तथा मैसूर की लाल मिट्टियों में उगाया जाता है। हड्डियाँ ही भूमि में फासफेट की प्राप्ति का एक मात्र साधन हैं अतः यह एक समस्या है कि हड्डियों के निर्यात् को चलने दिया जाय और उसे अपने देश की खाद-सामग्री के रूप में यहीं ही रोक न लिया जावे ?...किन्तु भारतीय मिट्टियों में फासफेट की मात्रा अंग्रेजी मिट्टियों की तुलना में बहुत अधिक है अभी तक भारत में कोई ऐसा कच्चा माल प्राप्त नहीं जिससे लागत वसूल हो सके और फासफेट (सुगमता से) तैयार हो सके। इसके निर्माण में प्रयुक्त होने वाला गंधकाम्ल बहुत मूल्यवान है। मुझे विश्वास है कि वह दिन अब भी दूर है जब भारत में कृत्रिम खादें लाभ सहित प्रयोग में लाई जा सकेंगी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वप्रथम वोयेल्कर ने भारतीय कृषि के अन्तर्निहित तथ्यों को उभाड़ कर सामने रखा और भारतीय कृषि परम्परा की भूरि-भूरि प्रशंसा की जिसके कारण आज भी भारतीय मिट्टियाँ इतनी उपजाऊ बनी हुई हैं और ८-१० मन प्रति एकड़ अन्न पैदा कर सकती हैं। फिर भी उनका विश्वास था कि दिन प्रति दिन मिट्टियों की उर्वराशक्ति कम होती जावेगी क्योंकि इंगलैण्ड में होने वाले रोथाम्स्टेड—प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि एक ही भूमि पर लगातार खेती करते रहने पर, बिना खाद डाले, गेहूँ की उपज गिरती ही जावेगी और एक निम्नस्तर पर जाकर स्थिर हो जावेगी अतः भारतीय मिट्टियों की उर्वराशक्ति में भी उसी प्रकार का ह्रास अवश्यम्भावी है। रोथाम्स्टेड के परिणाम् निम्न हैं:—

सन् १८४४—५१ ई०	१७	बुशल	प्रति	एकड़	गेहूँ
१८५२—७१ ई०	१३.६	"	"	"	"
१८७२—६१ ई०	११.१	"	"	"	"

इसके विपरीत सन् १६३१ में होवर्ड नाम वैज्ञानिक ने लिखा कि दस शताब्दियों से भी अधिक काल से खेती करने के पश्चात् भी द्वाबे की उर्वरता उसी प्रकार स्थिर है जिससे स्पष्ट है कि फसलों के उगाने तथा प्राकृतिक नियमों में संतुलन है। उसने ऊसरों का भी अध्ययन किया और उनके सुधार के उपाय बताये।

सन् १८६१ ई० में दूसरे वैज्ञानिक जे० डब्ल्यू० लेदर भारत आये जिन्होंने भारत की मिट्टियों का वैज्ञानिक अध्ययन ही नहीं किया वरन् उनके वर्गीकरण का भी प्रयास किया। कुछ दिन तक वे कानपुर में रहे और अपने कार्यों का विशद वर्णन अपनी पुस्तकों में किया। उन्होंने ऊसरों की उत्पत्ति के बारे में बहुत सी शोधें कीं और यह बताने का प्रयत्न किया कि वे बहुत से भाग जिन्हें किसान ऊसर कहते हैं वास्तव में ऊसर नहीं किन्तु बंजर जमीने हैं जिनके जोतने में कठिनाई होती है। साथ ही ऊसरों के सुधार के उपचार भी बताये जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है:—

(१) वे प्रयोग जिनसे यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि ऊसर सुधर गये हैं ऐसे हैं जिनमें 'जिप्सम' के प्रयोग हुये। किन्तु जिप्सम डालने का खर्च ७००-८०० रुपये प्रति एकड़ है जो भारतीय कृषकों के लिये असम्भव है।

(२) गहरी जोत तथा अधिक खाद डालने से भी कोई सन्तोष जनक लाभ नहीं हुआ, केवल सतह की एक फीट भूमि तो सुधरी प्रतीत होती है जबकि नीचे की भूमि वैसी की वैसी ही रहती है।

(३) लवणों को खुरच कर अलग करना तथा पानी से बहाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

सन् १६०० ई० में उत्तर प्रदेश में ही २० लाख एकड़ भूमि सींची गई। सन् १६२८ में शारदा नहर खुल जाने से सन् १६४६ ई० तक ६० लाख एकड़ से भी अधिक भूमि सींची जाने लगी। जंगलों की ओर कोई ध्यान न दिया गया। अंधाधुंध आग लगा दी जाती थी किन्तु सन् १८६४ ई० में भारतीय जंगलों की सुरक्षा के लिये सरकारी नियम बने। दिन प्रति दिन ईंधन की कमी होने के कारण कंडों का प्रयोग ईंधन के रूप में होने लगा। जंगलों के कटने से भूमि क्षरण होता रहा। आज कल भारत में प्रति-मनुष्य पीछे ०.३ घनफुट इमारती लकड़ी या १.५ घनफुट ईंधन की

लकड़ी आती है जब कि योरप तथा उत्तरी अमेरिका में क्रमशः ८ तथा २४ घनफुट का हिसाब है।

जिस प्रकार १७ वीं १८ वीं सदी में योरप में औद्योगिक क्रान्ति हुई उसी प्रकार से भारत मे १ ० वर्ष पीछे क्रान्ति आई जिसके परिणाम स्वरूप १९०२ ई० में सर्वप्रथम मसूरी में बिजली लगी। फिर तो तमाम शहर जाज्वल्यमान हो उठे। बिजली के कारण मशीनों का प्रचार बढ़ा किन्तु दुर्भाग्य कि अन्य उद्योग धंधों ने जहाँ उन्नति में चरम सीमा प्राप्त की वहीं कृषि उपेक्षित हो गई। बाहरी वैज्ञानिकों ने भारत में आकर कृषि के वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया अतः अप्रैल सन् १९०५ ई० में बिहार स्थित पूसा में एक कृषि अनुसंधानशाला की नींव पड़ी जिसका विस्तृत वर्णन पहले दिया जा चुका है। यहीं से कृषि की वास्तविक उन्नति प्रारम्भ होती है। सन् १९०० ई० में ही भारत के विख्यात वनस्पति विज्ञानवेत्ता सर जगदीश चन्द्र बसु ने वनस्पति विज्ञान की खोजों से तहलका मचा दिया था। फिर भी १९०५ ई० में जब कृषि कार्य प्रारम्भ किया गया तो उस समय से पूर्व का कोई भी लिखित ब्योरा, जिससे तत्कालीन फार्म या कृषि प्रणाली संचालित होती, नहीं मिलता, होवर्ड ने सन् १ .५ से १९२४ ई० तक पूसा में काम किया उसके बाद १० दिसम्बर सन् १९२४ ई० को इन्दौर में एक बहु बड़ा गवेषणागार खोला जिसमें ३०० एकड़ भूमि थी। उस समय की परिस्थितियों तथा विद्यालय के उद्देश्यों का वर्णन करते हुये ए० होवर्ड अपनी पुस्तिका, "फसलों की उत्पत्ति में विज्ञान का उपयोग" में लिखते हैं:—

"शायद ही किसी ने इन कृषि केन्द्रों का ब्यौरा उनकी उपादेयता, उनकी सुसज्जित अवस्था और उनकी लागतों का विस्तृत विवरण प्रकाशित किया हो। इन परीक्षण केन्द्रों के बारे में किसी भी प्रकार की ठीक-ठीक सूचना जानने के लिये यह आवश्यक होता कि उनको जाकर देखा जाय। इस साम्राज्य के परीक्षण केन्द्रों का कोई भी साहित्य प्राप्त नहीं। सन् १९०५ ई० से हमने जब भारत में कार्य प्रारम्भ किया तब से इंदौर का यह तीसरा परीक्षण केन्द्र है जिसकी स्थापना फसलों के अध्ययन के लिए करनी पड़ी। इस केन्द्र की स्थापना में हमने पूसा तथा क्वेटा में प्राप्त अनुभवों का सदुपयोग किया है। इस केन्द्र की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था एक ऐसे आधुनिक केन्द्र की स्थापना जिसमें कपास तथा अन्य संबंधित फसलों का अध्ययन हो सके, यह निश्चित किया गया कि किसी भी ऐसी शक्ति का प्रयोग इस केन्द्र में न हो जिसका प्रबन्ध एक साधारण खाता पीता किसान न कर सके। अतः ट्रैक्टर, भाप की माड़ने तथा कूटने की मशीने और बिजली के पम्पों का इस्तेमाल न किया गया। गौशालों के पास फार्म का सबसे आवश्यक अंग कम्पोस्ट बनाने तथा चारा रखने का खाँचा है। वानस्पतिक अवशेषों के उचित उपयोग इस विद्यालय के आवश्यक कार्यों में से एक है।"

आगे चलकर हावर्ड ने कम्पोस्ट बनाने की "इन्दौर प्रणाली" चालू की। जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें ३० फीट × १४ फीट × २½ फीट के आकार वाले गड्ढों में कोई भी वानस्पतिक अवशेष भरा जाता है और उसमें मूत्र, गोबर या मिट्टी डालकर उसे सड़ने दिया जाता है, ७ दिन बाद पानी डालकर इन गड्ढों के कूड़े को उलटा पुलटा जाता है। तिनके तथा मिट्टी और राख में १०:१ का अनुपात रखा जाता है। इस प्रकार से इंदौर में ३३ गड्ढे खोदे गये थे जिनमें से हर एक में २०-२५ गाड़ी कम्पोस्ट बनकर तैयार होती थी। आगे चलकर सन् १९२६ में ज्वार के डंठलों से साइलेज (हरा चारा जिसे गड्ढों में भरकर सुरक्षित किया जाता है और बाद में जानवरों को दिया जाता है) बनाने के प्रयोग प्रारम्भ हुये और १९२७ २८ ई० में इन सभी विधियों का सविस्तार वर्णन प्रकाशित हुआ। यही नहीं कृषि की उन्नति के लिये उस समय प्रयाग, नागपुर, पूना तथा अहमदाबाद में कृषि प्रदर्शिनी चालू की गई जिनके द्वारा अशिक्षित जनता को कृषि के सुधरे ढंगों का परिचय दिया गया। पूना में लगे हुए ऐसे मेले का वर्णन पहले हो चुका है। "किसान" नामक पत्र भी इन्दौर से निकाला गया।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पूसा केन्द्र की स्थापना १६०५ ई० में हुई थी। यहां पर मृत्तिका—रसायन सम्बन्धी बहुत कार्य हुआ। जिसमें बिहार प्रान्त की मिट्टियों की परीक्षा मुख्य है। सन् १६०६ ई० में यह देखा गया कि मुजफ्फरपुर की ४० प्रतिशत सारन की ६० प्रतिशत, दरभंगा की ७५ प्रतिशत और चम्पारन की ८० प्रतिशत मिट्टियों में प्राप्य फासफोरस की मात्रा अत्यन्त न्यून थी जिसके कारण इन जिलों में चावल की विशिष्टता निम्न श्रेणी की हो गई और उसके खाने से लोगों को बेरी-बेरी की बीमारी होने लगी थी, चरागाहों में चरने वाले जानवरों का दूध पीने से हड्डियों का रोग हो जाता है क्योंकि फासफोरस न्यून मिट्टियों में चरने वाले पशुओं के दूधों में इस तत्व की कमी होती है। इस प्रकार से इन फासफोरस न्यून क्षेत्रों तथा अन्य क्षेत्रों में कृत्रिम खादों की आवश्यकताओं पर पूसा में अनेक अध्ययन हुये जिसके परिणाम स्वरूप भारत में सुपर फासफेट तथा अमोनियम सल्फेट जैसे उर्वरकों का प्रयोग ही नहीं हुआ वरन् उनके निर्माण के लिये कारखाने भी खोले गये। ये काम चल रहे थे कि दुर्भाग्यवश सन् १६३४ के भूकम्प में पूसा का परीक्षण केन्द्र ध्वस्त हो गया। अतः १६३६ ई० में इस केन्द्र को दिल्ली हटा दिया गया जहां अब सुचारु रूप से कार्य चालू है और समस्त भारत में पूसा महा विद्यालय—दिल्ली सबसे बड़ा कृषि विज्ञान सम्बन्धी केन्द्र है। इसका पूरा-पूरा नाम "भारतीय कृषि अनुसंधान विद्यालय" है। इसके साथ १,००० एकड़ भूमि का परीक्षण क्षेत्र है जिसमें कृत्रिम खादों की उपयोगिता, बीजों के सुधार, पौदों में वर्णसंकरता, रोगों की मोचन विधि पर उच्च स्तर पर कार्य चल रहा है यहीं से प्रति वर्ष ४०-५० विद्यार्थी कृषि की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहां के पुस्तकालय में १ लाख से ऊपर ग्रन्थ हैं जिनमें आधुनिकतम शोध ग्रन्थ अपना विशेष महत्व रखते हैं। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष २० लाख टन गोबर जलाया जाता है किन्तु इस विद्यालय में गोबर का प्रयोग दहनशील गैसों के निर्माण में हुआ है। साथ ही यहां पर खेती में लगने वाले कीटों का अपूर्व संग्रह है। इस विद्यालय में कई विभाग है जिनमें भूमिरसायन, भूमि-जीवशास्त्र, पशु-पालन एवं दुग्ध विज्ञान, भूमिसंरक्षण तथा अन्य विषयों पर कार्य होता है। यहां के संचालक डा० बी० पी० पाल ने २ अप्रैल १६५५ ई० को ५० वें वर्ष पर मनाई जाने वाली स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर अपने भाषण में कहा था, "इस विद्यालय ने सम्पूर्ण भारत तथा कुछ पड़ोसी देशों को भी (जैसे ईराक, नैपाल) आकर्षित किया है। इस विद्यालय ने दिल्ली राज्य के १६ गांवों को चुना है जहाँ इस विद्यालय द्वारा सम्पादित गवेषणाओं पर व्यवहारिक रूप से कार्य होगा। किसान स्वयं अपने खेतों में इन तथ्यों की सार्थकता की जांच करेंगे।"

भारतीय अनुसंधानशाला बंगलौर की स्थापना १६२३ ई० में हुई। जिसका उद्देश्य था विद्यार्थियों को शिक्षा एवं दुग्ध व्यवसायियों को परामर्श देना। सन् १६३३-३४ तक तो पशुओं की नस्लों के सुधार तथा उनकी वृद्धि पर ध्यान दिया गया किन्तु अब ४ अनुसंधान विभाग खुल गये हैं—पशुपालन, दुग्ध रसायन, दुग्ध शिल्प तथा कीटाणुविज्ञान।

सन् १६३० ई० में जी०क्लार्क ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस के कृषि विभाग में अध्यक्षपदीय भाषण में कहा था—"जब हम तथ्यों का परीक्षण करते हैं। तो हमें उत्तर भारत के किसान उर्वराशक्ति के व्यवस्थित उपयोगों में संसार के सभी किसानों से अच्छे प्रतीत होते हैं। वे कनाडा के किसानों से अधिक दक्ष हैं क्योंकि बरसाती पानी से उसे कम मात्रा में ही नाइट्रोजन मिलती है किन्तु वे उत्तर प्रदेश में भी सींचकर उतना ही गेहूं पैदा करते हैं जितना कि कनाडा के औसत किसान। थोड़ी सी नाइट्रोजन का सदुपयोग वे सभी किसानों से अच्छा करते हैं ऐसा मेरा विश्वास है। भारत में हमें फसलों की आवश्यक नाइट्रोजन तथा इसकी प्रकृति द्वारा पूर्ति में एक संतुलन दिखाई देता है।

समय-समय पर भारतीय कृषि को समुन्नत बनाने के लिये बाहर के लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक बुलाये जाते

थे। नारिस ने आकर कृषि सम्बन्धी सुझाव दिये। सन् १६३६-३७ में सर जान रसल भारत आये और उन्होंने कृषिक वैज्ञानिक अध्ययन पर विशेष जोर दिया। उन्होंने राष्ट्रीय विज्ञान एकादमी में भाषण देते हुये सन्,, १६३७ में कहा था।

कृषि से संबंधित वैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ तीन प्रकार की हो सकती हैं—

(१) विशुद्ध वैज्ञानिक कार्य जिसमें व्यावहारिक पक्ष पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

(२) व्यावहारिक कार्य जो शोध केन्द्रों तथा परीक्षण क्षेत्रों में ही सम्भव हो सकता है। ये व्यावहारिक कार्य दो प्रकार के हो सकते हैं (१ विशिष्ट फसलें उगाना जिनसे कारखानों या उद्योगों के लिये कच्चा माल पैदा हो—कपास, गन्ना, चाय आदि ऐसी फसलें हैं। (२) खाद्य पदार्थों की फसलें उगाना जो आदमी तथा जानवर दोनों के कार्य में आती है। इसमें ज्वार, गेहूं, चावल, चना, मक्का आदि की खेती मुख्य है।"

उन्होंने भारत में कपास पर किये गये शोध कार्यों की प्रशंसा की और डा० बार्बर द्वारा सम्पादित गन्ने की खेती की भी प्रशंसा की जो मुजफ्फरनगर, कर्नाल, शाहजहाँपुर, कोयम्बटूर तथा अन्य स्थानों में होती थी। भारतीय चाय के उत्पादन में डा० मान तथा कार्पेण्टर के कार्यों की सराहना की, इस प्रकार उन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि कृषि विज्ञान की उन्नति से इन विशेष फसलों के उगाने में भारत को पूर्ण सफलता मिली है और कारखानों या औद्योगिकों की आवश्यकताओं की इनसे पूर्ति हुई है अतः भविष्य में कृषकों तथा उपभोक्ताओं के बीच में सहयोग की आवश्यकता है।

भारतीय कृषकों के भोजन की जाँच करते हुये उन्होंने बताया कि उनके भोजनों में प्रोटीन की कमी है। उन्होंने बताया कि भारतीय जौ से इसकी पूर्ति हो सकती है क्योंकि विश्व के बाजारों में इस जौ की, जिस में प्रोटीन की मात्रा अधिक है, माँग है अतः इसका उपयोग खाने में ही करना चाहिये। इस प्रकार उन्होंने बताया कि कृषि तथा चिकित्सक—अधिकारियों के बीच सहयोग की आवश्यकता है जो भोजन तथा फसलों के बीच एक प्रकार से सम्बन्ध स्थापित कर सकें, भारतीय कृषि की सबसे बड़ी आवश्यकता है खाद्य सामग्रियों के उत्पादन में वृद्धि किन्तु यह वृद्धि भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने से ही सम्भव हो सकती है। बहुत दिनों तक भारतीय तथा अंग्रेज किसान ७-८ मन प्रति एकड़ पैदा करते रहे किंतु इधर १५० वर्षों में योरप में उपज ५-६ गुना बढ़ गई और एक औसत खेत में २५ मन प्रति एकड़ तथा अच्छे खेत में ४० मन प्रति एकड़ पैदावार होती है किंतु विदेशों में यह जानवरों के भोजन में परिवर्तन लाने से ही सम्भव हो सकी। वहाँ आधी भूमि में चारा बोया जाता जब कि भारत में ५% भूमि में भी चारा नहीं उगाया जाता। इसके विपरीत इंगलैंड में ८० प्रतिशत भूमि में चारा उगाया जाता है। यदि भारत में पशु पालन और अन्न उत्पादन को मिलाना सम्भव हो जाय तो यहां भी अन्नोत्पादन में वृद्धि हो जाय।"

सन् १६३८-३६ में उत्तर प्रदेश में "ऊसर सुधार समिति" ने अपनी सूचना प्रस्तुत की जिसमें विभिन्न प्रकार के सुधार कार्यों का वर्णन था। सन् १६३६ ई० में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और समस्त राष्ट्रों की शक्तियों युद्धाभिमुख हो गई जिसके कारण अनाज की पैदावरी में ह्रास हुआ किन्तु याद रहे कि योरप में जो भुखमरी चली उसके फलस्वरूप सन् १६४५ ई० में विश्व की खाद्य समस्या सुलझाने के लिये होट स्प्रिंग सम्मेलन के अवसर पर "खाद्य व कृषि संस्था" (एफ० ए० ओ०) की संस्थापना हुई। सन् १६४६ ई० में जनरल सर वायड आर ने कोपेन-हेगेन में होने वाले सम्मेलन में विश्वखाद्य समस्या पर खोज बीन करने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया जिसकी सूचना १६४७ ई० में प्रकाशित हुई। इसमें भोज्य-स्तरों का वर्णन किया गया जिसमें भारत का भोजनस्तर विश्वभर में न्यून था जब कि योरोपीय देशों में स्वेडन आदि देशों का भोज्य-स्तर अत्यन्त उच्च था।

सन् १६४४ ई० में शूहर्ट, १६४७ में स्टेवर्ट, १६४४-४८ में पार तथा १६४४-४७ में बर्न्स आदि ने इस देश

का भ्रमण किया और भारतीय कृषि के लिये वैज्ञानिक सुझाव दिये। उन्होंने रसेल के सिद्धातों का ही प्रतिपादन नहीं किया वरन भारतीय मिट्टियों में फासफेट की आवश्यकताओं तथा दालों की खेती पर अपने अनुभव बताये। सन् १९४५ ई० में "दुर्भिक्ष जांच समिति" ने अपनी सूचना प्रस्तुत करते हुये दो बातों पर बल दिया—(१) जल व्यवस्था के सुधार की आवश्यकता तथा (२) कृत्रिम खादों के प्रयोगों में वृद्धि और उनका भारत में ही उत्पादन।

सन् १९४७ ई० में भारत स्वतन्त्र हो गया और उसने अपनी खाद्य समस्या को सुधारने के उपाय अपनाये। तब तक भारत में कृषि विशेषज्ञों की बहुलता हो गई थी जो या तो विदेशों से दीक्षित होकर आये थे या यहीं दीक्षित हुये। इस ओर अमर नाथ पुरी, सी० एन० आचार्य, जे० एन० मुकर्जी, एस० पी० राय चौधरी, बी० विश्वनाथ, एस० दास, दिलीप सिंह, निक्सन, गोखले, नीलरत्न धर, जोशी, आर० पी० मित्रा, पी०के० डे, राम नगीना, घानी (गनी), एस० सी० विश्वास, बी० के० मुकर्जी, एस० के० मुकर्जी, टगारे, राधारमण अग्रवाल, टमहाने, देसाई, पटेल तथा उकिल आदि के नाम अग्रगण्य हैं। सन् १९३५-३६ से आज तक भारतीय मिट्टियों के अध्ययन, उन पर रासायनिक क्रियाओं तथा अन्य कृषि सम्बन्धी पशु तथा वनस्पति विज्ञान पर पर्याप्त काम किया जा चुका है। इन कार्यों में से मुख्यतः अमर नाथ पुरी का नाम मिट्टी के भौतिक गुणों की जाँच करने, दलीप सिंह निक्सन तथा नीलरत्न धर का नाम ऊसरों को उर्बर बनाने, जे० एन० मुकर्जी तथा राय चौधरी-मित्रा आदि के नाम मिट्टी की अम्लता अध्ययन तथा भूमि के वर्गीकरण से और डे, रामनगीना, विश्वास आदि के नाम जीव विज्ञान से संबन्धित हैं। कानपुर कृषि विज्ञान, दिल्ली के पूसा विद्यालय, प्रयाग के नैनी कृषि विद्यालय आगरा, वाराणसी तथा शिकोहाबाद के कृषि विद्यालयों में अनेक शोध होते आये हैं। कलकत्ता विश्व विद्यालय तथा ढाका में भी तमाम काम स्थानीय मिट्टियों के अध्ययन के सम्बन्ध में हो चुका है। मैसूर तथा बंगलौर और कोयम्बटूर में भी कार्य हुये हैं। भारत में त्रिचनापल्ली में राक फासफेट मिल जाने के कारण, ट्रावन्कोर, उत्तरी बिहार तथा मध्य प्रान्त और बम्बई के कुछ क्षेत्रों में फासफेट की कमी होने के कारण इन क्षेत्रों में सुपरफासफेट तथा नाइट्रोजन वाली खादें छोड़ी जायें तो उर्वराशक्ति में बड़ी वृद्धि हो सकती है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में कितने की कारखाने सुपर फासफेट तैयार करते हैं। भारत सरकार का कृषि मंत्रालय सारे कारखानों के सुपरफासफेट अपने अधिकार में लेकर एक निश्चित मूल्य स्थिर करता है। सन् १९४६ के सितम्बर की "खेती" पत्रिका में कृषि सचिवालय द्वारा नई दिल्ली में हड्डी चूर्ण उद्योग के विकास के लिये सुझाव देने के लिये आमन्त्रित कान्फ्रेंस में माननीय श्री जयराम दास दौलत राम के उद्घाटन भाषण का निम्न अंश विचारणीय है:—

"अब आप लोगों के द्वारा विचार किये जाने के लिये एक विषय यह है कि इस खाद्य उद्योग के लिये आवश्यक कच्चे माल को कैसे बढ़ाया जाय अर्थात् अधिक से अधिक हड्डियाँ प्राप्त करने के लिये क्या प्रयत्न किये जाँय? इसके पश्चात् आपके विचारार्थ दूसरी बात यह है कि हम हड्डियों को अधिक से अधिक परिमाण में प्राप्त करने के पश्चात् उनका उचित उपयोग किस प्रकार करें। इस समय हमारे देश में कुछ कारणों से लाचार होकर हड्डियों का चूरा बाहर भेजना पड़ता है और बचा खुचा खेती बाड़ी के लिये किसानों द्वारा काम में लाया जाता है। लेकिन, जैसा कि आप सहमत होंगे यह तो इस उद्योग का अस्थायी रूप है। संसार के अधिकाँश देशों में हड्डी-चूर्ण-उद्योग एक ऐसी श्रेणी तक पहुँच गया है कि हड्डियों से नाना प्रकार की वस्तुयें तैयार की जाती हैं और सारे कच्चे माल को देश में ही काम में लाया जाता है। सम्भवतः आप में से अधिकाँश लोग यह अनुभव करते हैं कि हड्डी के चूरे के मूल्य को निश्चित करना स्यात् अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा आवश्यक विषय है, यदि आपके हृदय में इस उद्योग के हित का अधिक ध्यान है तो मैं चाहता हूँ कि आप इस तथ्य पर अवश्य

विचार करें कि उस चूर को काम में लाने वाले किसान हैं और यदि उस हड्डी के चूरे का भाव उनकी दृष्टि में सस्ता नहीं होगा तथा उसके प्रयोग द्वारा बढ़ने वाली पैदावार की तुलना में उस पर अधिक व्यय होगा तो किसान कभी भी उसे प्रयोग में नहीं लायेंगे ...इससे हड्डियों के चूरे का मूल्य निर्धारित करते समय यदि थोड़ी सी भी उपेक्षा दिखाई जायगी तो उससे इस उद्योग को बड़ा धक्का पहुँचेगा अथवा औद्योगिकों को बाद में कम मूल्य निर्धारित करना पड़ेगा। पिछली बार (मई १९-४९ ई० में) हमने हड्डी के चूरे का भाव १७०) टन निर्धारित किया था।......आप लोगों की यह इच्छा है कि हड्डी के चूरे का भाव लगभग २०) से २२) टन तक किया जाय।"

"हम नहीं जानते कि भारतवर्ष में विभिन्न श्रेणी की कच्ची हड्डियाँ कुल कितनी मात्रा में पाई जाती हैं। न हमें यह मालूम है कि इसमें से कितना माल नष्ट हो जाता है या मिट्टी में मिल जाता है। हम यह भी नहीं जानते कि इस उद्योग के लिये ठीक-ठीक कितनी हड्डियों की आवश्यकता है। आजकल हम अपने यहाँ हड्डी के चूरे का बाहर देश को निर्यात करते हैं और विदेशों से चट्टानी फासफेट मँगाया जाता है।...... परन्तु अन्त में बुद्धिमता का कार्य यही है कि हमारा खाद्य उद्योग देश में प्राप्त होने वाले कच्चे माल के ही ऊपर आधारित हो। यद्यपि हड्डी चूर्ण उद्योग का विकास चट्टानी फासफेट के आधार पर हो रहा है तो भी मैं समझता हूं कि इस उद्योग के विकास के लिये देश के अपने साधनों के आधार पर ही योजना बनाना अधिक उचित है।"

उपरोक्त से स्पष्ट है कि भारत में फासफेट उद्योग की अवस्था शोचनीय है। भारत में कुल अन्नोत्पादन के लिये १५ लाख टन फासफोरस की आवश्यकता है। किन्तु सभी साधनों से उपलब्ध होने पर ५ लाख टन फासफोरस ही जुट पाता है जिसमें २ लाख टन हड्डियों से प्राप्त हो सकता है। यदि निकट भविष्य में सावधानी बरती गई तो हड्डियों से ४ लाख टन की प्राप्ति हो सकेगी। फासफेटीय चट्टानें जो त्रिचनापल्ली तथा बिहार में उपलब्ध हैं उनमें से पहले स्थान में २७ लाख टन तथा दूसरे स्थान से ७ लाख टन की ही प्राप्ति हो पाती है। अब तक इस्पात तथा लोहे के कारखानों से बचे हुये "बेसिक—स्लैग" का कोई भी उचित उपयोग नहीं हुआ और न इस ओर हमारी सरकार का ध्यान ही गया है। टाटा लोहे के कारखानों में ही कई लाख टन बेसिक स्लैग बेकार पड़ा है।

क्या आप जानते हैं?

* पूना के पास पिम्परी में पेनिसिलीन का जो कारखाना है यहां १९५७ में २ करोड़ ३६ लाख मेगा-यूनिट पेनिसिलीन बनायी गयी, जब कि १९५६ में यहां १ करोड़ ४१ लाख मेगायूनिट पेसिनिलीन बनायी गयी थी। देस भर में पेसिनि लीन का यही एक मात्र कार-खाना है। यह कारखाना राज्य सरकार के अधीन है।

* १९५७ में चिकित्सा के लिए १ करोड़ ७९ लाख मेगायूनिट पेनिसिलीन बनायी गयी जब कि १९५६ में ५२ लाख मेगायूनिट बनायी गयी थी।

* केवल दिसम्बर १९५७ में ही असैनिक तथा सैनिक अस्पतालों को तथा जनता में बिक्री के लिए और व्या-पारियों को २२ लाख ७१ हजार रु० की पेनिसिलीन दी गयी, जब कि पिछले महीने १ लाख ७७ हजार रु० की पेनिसिलीन दी गयी थी।

* इस कारखाने में ७०० मजदूर काम कर रहे हैं। इनमें वे मजदूर भी शामिल हैं, जो बम्बई में पेनिसिलीन को शीशियों में बंद करने वाले कारखाने में काम करते हैं।

* देश में पेनिसिलीन की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए इसका उत्पादन ६० प्रतिशत बढ़ाया जायगा इसके लिए इस कारखाने में अतिरिक्त मशीनें आदि लगायी जाएंगी।

* सरकार पिम्परी कारखाने में स्ट्रेप्टोमाइसीन तैयार करने की योजना पर विचार कर रही है। योजना के अन्तर्गत १५ हजार से २० हजार किलोग्राम स्ट्रेप्टो-माइसीन तैयार होगी, जिस पर १ करोड़ १२ लाख रु० खर्च होने का अनुमान है।

दांतों के परीक्षण द्वारा आयु का अनुमान

अणुवीक्षण यन्त्रों पर काम करने वाले दन्त चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धान कर्ताओं ने यह खोज की है कि दांतों की परीक्षा से मनुष्य की आयु के सम्बन्ध में पता चल जाता है।

वाशिंगटन के निकटवर्ती उप नगर बेथैज्डा में दांतों की अनुसन्धान कार्य सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्था ने दाँतों की बनावट एवं विकास के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से अध्ययन करते समय इस नये रहस्य को खोज की है कि दाँतों की परीक्षा द्वारा मनुष्य की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

यहाँ तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अमेरिका की राष्ट्रीय संस्था में वैज्ञानिक स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं को बड़े पैमाने पर हल करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, अमेरिकी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा द्वारा संचालित ७ संस्थाओं में दंत-अनुसन्धान सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्था सब से नई है। इस संस्था की अपनी कोई इमारत नहीं है, तथापि इस संस्था के पास लगन से काम करने वाले कई अनुसन्धानकर्ता हैं। इसका वार्षिक बजट ६० लाख डालर से अधिक है जब कि कैन्सर-अनुसन्धान के लिए ५६० लाख और मानसिक रोगों के लिए ३७० लाख डालर वार्षिक खर्च किया जा रहा है।

दांतों की जांच द्वारा आयु का पता लगाने का चिकित्सा की दृष्टि से कोई प्रत्यक्ष महत्व नहीं है, तथापि अपराधों की छनबीन तथा शरीर रचना शास्त्र के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करने की दृष्टि से निश्चय ही यह बात उपयोगी सिद्ध हुई है।

दंत-क्षय को रोकने के के लिए गुणकारी एवं प्रभावकारी दवाओं की खोज करते समय उक्त महत्वपूर्ण रहस्य के बारे में पता चला है।

उक्त दंत संस्था के अनुसन्धान कर्ताओं ने जीवित व्यक्तिओं के दाँतों की बनावटों का अध्ययन करने के लिए एक नये और अद्भुत तरीके का पता लगाया है। एक नई विधि से दांतों की बनावट के सम्बन्ध में यह मौलिक जानकारी मिली है कि क्रमिक विकास एवं आयु का दाँत की परतों की बनावट पर क्या असर पड़ता है। साथ ही यह बात भी पता चली है कि 'फ्लोराइड्स' जैसे रासायनिक तत्वों का इस तरह के परिवर्तनों पर क्या असर पड़ता है।

दंत चिकित्सक यह स्वीकार करते हैं कि 'फ्लोराइड्स' को प्रत्यक्ष रूप से दांतों पर इस्तेमाल करने से या पानी में मिलाकर इस्तेमाल करने से दाँतों का क्षरण देरी से होता है और इस तरह दांतों का स्थायी बचाव हो जाता है।

फ्लोराइड्स मनुष्य के दांतों की कैसे रक्षा करते हैं इसे कोई नहीं जानता। यदि इस रहस्यमय विधि के बारे में किसी को पता चल जाए, तो दाँतों के बारे में किए जाने वाले अनुसन्धानों के फलस्वरूप इनसे भी अधिक उत्तम रासायनिक द्रव्य खोजे जा सकेंगे, जिन से मनुष्य के दांतों की आजीवन रक्षा हो सकेगी। दंत-अनुसन्धान सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्था के अनुसन्धान-कर्ताओं को अभी तक दांतों के पूर्ण विकास के बारे में कोई वैज्ञानिक उत्तर नहीं मिला है। अनुसन्धान करते समय इन अनुसन्धान-कर्ताओं को पता चला है कि दांत की परत की घिसाई इतने नियमित रूप से होती है कि भिन्न राष्ट्रीयता होने तथा आहार सम्बन्धी भिन्न आदतें होने पर भी यह घिसाई सर्वत्र समान ही पाई जाती है। इस घिसाई का निरीक्षण करने से आयु के बारे में अनुमान लग जाता है।

बेथैज्डा स्थित दंत-अनुसंधान संस्था के डा० डेविड वी० स्काट का, यह कथन है कि नई अध्ययन विधि के परिणाम स्वरूप आयु के बारे में बिलकुल सही

[शेष पृष्ठ १८६ पर]

विज्ञान सितम्बर १९५८
पृष्ठ १७७-१८०

परमाणु-शक्ति तथा प्रथम भारतीय चिति

[दुलह सिंह कोठरी]

परमाणु चिति नियमित रूप से ऊर्जा प्राप्त करने का एक महान संभावी साधन है, जिसके द्वारा आज संसार के वैज्ञानिक परमाणु शक्ति सम्बन्धी शान्ति-कालीन प्रयोगों का अध्ययन करने में संलग्न है। भारत में प्रथम चिति का निर्माण किया जा चुका है। यह स्थान बम्बई के निकट ट्राम्बे में स्थित है। इस चिति का श्री गणेश ४ अगस्त सन् १९५६ को किया गया था। यह तिथि हमारे राष्ट्रीय इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों में अंकित की जावेगी। यह वह दिन था, जिस दिन इस पवित्र-पावन भूमि के आँगन में पहली बार परमाणु-विखंडन प्रक्रिया द्वारा शक्ति उपलब्ध की जा सकी। यद्यपि इस चिति के निर्माण में विदेशी वैज्ञानिकों का सहयोग प्राप्त होता रहा है, फिर भी यह चिति भारतीय वैज्ञानिकों की अतुल्य प्रतिभा, असाधारण साधना तथा संयम का प्रतीक है। इस योजना के प्रमुख नायक श्री होमी भाभा एवं उनके साथी, जिनके कठोर परिश्रम तथा प्रयास के परिणाम स्वरूप ही यह महान कार्य केवल एक वर्ष की अल्प अवधि में ही सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सका, बधाई के पात्र हैं। परमाणु शक्ति का नवीन स्रोत है। हजारों वर्षों से मनुष्य ऊर्जा उत्पादन के परम्परा-गत साधनों जैसेः—कोयला, लकड़ी, तेल इत्यादि, से अपना निर्वाह करता आया है। परन्तु जब इन रासायनिक स्रोतों के भंडार शीघ्र ही समाप्त होने जा रहे हैं तो अवश्य ही इस नवीन स्रोत की खोज समस्त मानव समाज के विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण तथा क्रांतिकारी है। यद्यपि परमाणु-शक्ति की सर्व प्रथम ललकार (परमाणु विस्फोट के रूप में) प्राणी-मात्र के लिये महान घातक सिद्ध हुई, फिर भी इसमें तो तनिक भी शंका का कोई स्थान नहीं कि यदि मनुष्य ने सद्बुद्धि सद्भावना एवं सदाचार से काम लिया तो परमाणु के प्रयोग से पृथ्वी पर असीम सुख का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा।

परमाणु, ऊर्जा का महान स्रोत होते हुए भी अत्यन्त सूक्ष्म है। वास्तव में किसी भी तत्व के सूक्ष्म से सूक्ष्म कण को ही तो (वैज्ञानिक भाषा में) परमाणु कहते हैं। सृष्टि के समस्त पदार्थों की रचना विविध परमाणुओं के योग से ही हुई है। जिस प्रकार अंग्रेजी-भाषा के सम्पूर्ण शब्दों की रचना केवल मात्र २६ अक्षरों के विविध विन्यास से हुई है। ठीक उसी प्रकार विश्व के समस्त पदार्थों की उत्पत्ति केवल ९२ प्रकार की पारमाणविक ईंटों से की गई हैं। अति सूक्ष्म होने के कारण तीव्र अनुवीक्षण यंत्र से भी परमाणु नहीं देखे जा सकते। इसकी सूक्ष्मता का क्या कहना एक सुई की नोंक पर लाखों करोड़ों परमाणु नृत्य कर सकते हैं। फिर भी प्रत्येक परमाणु अपने आप में एक जगत है। जिसका आकार हमारे सौर्य मण्डल के सदृश है। परमाणु के सूर्य रूपी केन्द्र की नाभि तथा उसके चहुँ ओर परिक्रमा लगाने वाले ग्रह रूपी कणों को ऋणाणु कहते हैं। परमाणविक नाभि में भी दो प्रकार के कण पाये जाते हैं; एक तो प्रोटोन दूसरा न्यूट्रोन। परमाणु नाभिक ही परमाणु-शक्ति का विशाल उद्गम है। परमाणु-शक्ति दहन तथा अन्य किसी भी रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा मुक्त नहीं की जा सकती क्योंकि इन प्रतिक्रियाओं में भाग लेने वाले परमाणु के नाभिक

नहीं, किंतु उनके चहुँ ओर परिक्रमा लगाने वाले अ्रणाणु हैं। जो भी शक्ति हमें रासायनिक प्रति क्रियाओं से प्राप्त होती है वह तो केवल मात्र बाह्य अ्रणाणुओं के हलचल से उपलब्ध होती हैं। इसको रासायनिक शक्ति कहते हैं। एक अ्रणाणु से जो भी रासायनिक शक्ति मिलती है वह तो परमाणु के नाभिक से प्राप्त शक्ति के लाखवें भाग से भी तुच्छ है, फिर भी आश्चर्य है कि आज तक जितना भी विकास हमारी सभ्यता का हुआ है उसका मूल आधार अ्रणाणु की हलचल से प्राप्त रासायनिक शक्ति ही है जो परमाणु में सञ्चित पारमाणविक शक्ति से बहुत ही उपेक्षणीय है।

परमाणु-शक्ति उत्पादन के दो मुख्य साधन हैं।

(१) प्रथम जब किसी भारी तत्व के परमाणु के नाभिक का विघटन होता है, तो शक्ति मुक्त होती है। रेडियम, यूरेनियम, थोरियम, इत्यादि कुछ तत्वों का विघटन स्वतः होता रहता है। इन तत्वों को पारिभाषिक भाषा में रेडियम धर्मी तथा विघटन-शील तत्व कहते हैं। परन्तु प्राकृतिक तरीके से होने वाले स्वतः पारमाणविक विघन से एक तो शक्ति अत्यन्त ही मन्द गति से मुक्त होती है और दूसरे शक्ति की मात्रा भी बहुत ही तुच्छ रहती है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से इस शक्ति का कोई मूल्य नहीं। परमाणु-शक्ति को अधिक वेग से तथा अधिक परिमाण में उत्पन्न करने के लिये परमाणु नाभिकों का कृत्रिम विधि से विखंडन आवश्यक है। सन् १९३९ में ओटोहान तथा एल० स्ट्रासमैन ने जर्मनी में प्रायोगिक रूप से सिद्ध कर दिया कि यूरिनियम तत्व के हल्के परमाणु (भार-२३५) का खंडन दो भागों में न्यूट्रान की मार से संभव है। यूरेनियम परमाणु के इस दो सम भागीय खंडन को फिशन कहते हैं। यह ही परमाणु-शक्ति उत्पन्न करने की एक महान कुञ्जी है।

फिशन की दो मुख्य विषेशताएं हैं।

(अ) जब यूरेनियम के परमाणु (भार २३५) का फिशन होता है, तो प्रति फिशन जो शक्ति मुक्त होती है। वह अपेक्षा कृत दहन तथा अन्य किसी भी रासायनिक प्रतक्रिया द्वारा प्राप्त शक्ति से लाखों गुना अधिक मात्रा में होती है।

(ब) एक युरेनियम के फिशन से दो नवीन परमाणु का फिशन होता है, और इस तरह २ से ४, ४ से ८ होते होते यह क्रिया बढ़ती हुई एक श्रंखला का रूप धारण कर लेती है। यूरेनियम के सम्पूर्ण पिण्ड का कुछ ही क्षणों में विघटन हो जाता है। उससे अनंत शक्ति मुक्त होती है। यही परमाणु बम का विस्फोट है। फिशन एक श्रंखलाबद्ध प्रति-क्रिया है। यही इसकी दूसरी विशेषता है।

एक बात का स्पष्टीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है। सामान्य यूरेनियम दो प्रकार के समधर्मी परमाणुओं का मिश्रण है—एक तो भारी परमाणु (भार २३८) का दूसरे हल्के परमाणु (भार २३५) का। सामान्य तत्व में हल्के परमाणु की मात्रा तो केवल ७ प्रतिशत है और भारी परमाणु की ९.३ प्रतिशत। न्यूट्रान की मार से यूरेनियम २३५ के परमाणु फिशन की दृष्टि से विशेष उपयुक्त हैं। अतः पारमाणविक विघटन के लिये सामान्य तत्व से यूरेनियम २३५ का पृथक्करण नितांत आवश्यक है। यह कार्य बहुत ही जटिल है। परमाणु विस्फोट में यूरेनियम २३५ का ही उपयोग किया जाता है, परन्तु पारमाणविक चितियो में (जैसा की हम आगे देखेंगे) सामान्य यूरेनियम ही बहुधा काम में लाया जाता है।

(२) हल्के तत्वों के परमाणु की नाभिकों के संगलन से भी परमाणु शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रतिक्रिया को द्रावण (फ्युजन) कहते है। उदाहरणार्थ जब चार उद्जन गैस के परमाणुओं का संगलन होता है तो एक हीलियम गैस के परमाणु की उत्पत्ति होती है तथा अनंत मात्रा में शक्ति का उत्पादन होता है। संगलन के लिये लाखों डिग्री तापमान तथा वायु दबाव चाहिये। सूर्य में शक्ति का परम उद्गम यही प्रक्रिया है। हाईड्रोजन बम से भी द्रावण प्रति क्रिया के कारण ही भयंकर मात्र में शक्ति प्रकट होती है। विखंडन तथा द्रावण दोनों ही प्रतिक्रियाओं से जो अनंत-शक्ति मुक्त होती है। उसका

मूल कारण द्रव्य का क्षय है। इस युग के महान वैज्ञानिक आईन्सटाईन ने सिद्ध कर दिया कि जब द्रव्य का क्षय होता है तो ऊर्जा उत्पन्न होती है, और जब ऊर्जा का क्षय होता है तो द्रव्य उत्पन्न होता है। द्रव्य तथा ऊर्जा एक ही तत्व के दो रूप हैं। अभी तक नियन्त्रित रूप में परमाणु-शक्ति को मुक्त करने के लिये विखंडन का ही प्रयोग हो सका है। वैज्ञानिकों का निश्चित मत है कि निकट भविष्य में द्रावण शक्ति पर भी मनुष्य अपना प्रभुत्व स्थापित कर उसको भी मानव कल्याण के लिये उपयोगी सिद्ध कर सकेगा।

नियंत्रित रूप से परमाणु-शक्ति प्राप्त करने के लिये जो चितियाँ बनाई जाती हैं उनमें सामान्य युरेनियम तथा ऐसा युरेनियम जिसमें युरेनियम (२३५) का अनुपात कुछ अधिक हो काम में लाया जाता है। वैसे तो बनावट तथा रचना में एक चिति दूसरी चिति से विभिन्न हो सकती है। परन्तु मुख्यतः किसी भी चिति के तीन भाग होते हैं।

(१) पारमाणविक ईंधन :—चितियों में सामान्य यूरेनियम अथवा वह यूरेनियम में जिसमें यूरेनियम २३५ की मात्रा अधिक हो, बहुधा काम में लाया जाता है, साधारणतया ठोस युरेनियम (छड़ो के रूप में) का ही प्रयोग किया जाता है। परन्तु द्रव अवस्था में भी ईंधन को काम में लाने की दिशा में प्रयत्न जारी है, अमेरिका में एक ऐसी लघु-चिति का निर्माण किया गया है जिसमें यूरेनियम सल्फेट के घोल का प्रयोग किया गया है।

(२) संयतक (मोडरेटर):—यूरेनियम परमाणु (भार २३५) के फिशन के कारण जो क्लीवाणु मुक्त होते हैं उनकी गति बहुत ही तेज होती है और इनका परिचुषण यूरेनियम के भारी परमाणु (२३८) द्वारा बड़ी ही सुगमता से हो जाता है। अतः फिशन प्रतिक्रिया की श्रृंखला को चालू रखने के लिये यह आवश्यक है कि फिशन द्वारा मुक्त क्लीवाणु की गति शीघ्र ही धीमी करदी जाय। जिन पदार्थों का उपयोग क्लीवाणु की गति को धीमी करने के लिये किया जाता है उन्हें संयतक (मोडरेटर) करते हैं। बहुधा कार्बन (ग्रेफाइट) पानी, बेरिलीयम आक्साईड इत्यादि पदार्थों का उपयोग संयतक के रूप में किया जाता है। वास्तव में एक चिति पारमाणविक ईंधन तथा संयतक के योग से बनी विशिष्ट प्रकार की व्यवस्था है।

(३) शीतलक (कूलॅन्ट):—चिति के ताप को नियत रखने के लिये यह आवश्यक है कि फिशन के कारण जो ऊष्मा उसके भीतरी भागों में प्रकट होती है, उसको बाहर ले जाने हेतु जिन वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है, उनको शीतलक कहते हैं। शीतलक चिति के विचित्र भागों में निश्चित गति से प्रवाहित होता रहता है। बहुधा पानी, वायु तथा सोडियम एवं पोटेशियम तत्वों के मिश्रधातु के द्रवों का उपयोग इस कार्य के लिये किया जाता है। चिति की रचना संबंधी अनेक समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चित करना होता है कि कौन सा पदार्थ शीतलक की दृष्टि से परम श्रेयस्कर होगा।

ऊष्मा विनियम :—नियंत्रण—युक्ति, बाह्य रक्षोप आवरण, पम्प, मोटर इत्यादि भी चिति के महत्वपूर्ण अंग हैं। फिशन प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले क्लीवाणु की गति वेग के अनुसार चितियों को साधारणतया तीन श्रेणियों में विभाजित करते है। १) तेज (२ मध्यम एवम ३) तारीय, प्रथम प्रकार की चिति में तेज क्लीवाणु ही फिशन में भाग लेते हैं। अतः इस तरह की चितियों में संयतक की कोई आवश्यकता नहीं रहती एवं पारमाणविक ईंधन के लिये जो यूरेनियम काम में लाया जाता है उसमें यूरेनियम २३५ की मात्रा अधिक रहती है। इस तरह की चितियों को "प्रसवनी" चितियाँ भी कहते हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि जितनी मात्रा में यूरेनियम २३५ का क्षय होता होता है उतने ही अधिक परिमाण में यह चितियाँ एक नवीन तत्व प्लुटोनियम (२३९) में परिणत करती हैं। प्लुटोनियम के परमाणु यूरेनियम २३५ की भाँति, फिशन के लिए बड़े उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। बड़ी-बड़ी औद्योगिक योजनाओं के लिये शक्ति

उत्पादन की दृष्टि से प्रसवनी "चितियां विशेष महत्व रखती हैं। इस प्रकार की एक चिति का निर्माण केल्डर-हाल (ब्रिटेन) में किया गया है।

द्वितीय प्रकार की चिति में मध्यम गति के क्लीवाणुओं का उपयोग किया जाता है, यह भी एक प्रकार से प्रसवनी चिति है। परन्तु जो सबसे अधिक प्रचलित चिति है वह तो तृतीय श्रेणी की है। इसमें मन्द क्लीवाणु ही फिशन में भाग लेते है। इन चितियों में संयतक के रूप में ग्रेफाईट का प्रयोग अधिकतर किया जाता है।

भारतीय चिति तृतीय प्रकार की चिति है। इसमें सामान्य यूरेनियम (जिसमें यूरेनियम २३५ की मात्रा सबसे अधिक है) का प्रयोग किया जाता है इसका सक्रिय भाग अर्थात "कोर" एक बक्स के आकार का है जिसकी लंबाई, चौड़ाई १५-१५ फीट है, तथा ऊँचाई २ फीट है। इसके भीतर २५ से ३० ईंधन इकाइयां ऊर्ध्वाधिर अवस्था में एक दूसरे के सामानान्तर खांचेदार तथा ६ इन्च मोटे एल्युमिनियम प्लेट पर व्यवस्थित है। प्रत्येक ईंधन इकाई यूरेनियम-एल्युमिनियम (मिश्र-धातु) के १३ प्लेटों से बनी एक व्यवस्था है। हर एक प्लेट के दोनों ओर एल्युमिनियम के पत्तर लगाये गये हैं। प्लेटों की मोटाई ०. ०७६" है। प्रत्येक दो प्लेटों की दूरी ०. १२६" रखी गई है। सम्पूर्ण कोर में ४.५ किलोग्राम (१ किलोग्राम=१ सेर—२ छ०) के लगभग यूरेनियम २३५ विद्यमान है। सक्रिय "कोर" को विशुद्ध पानी से भरे हुए हौज (लम्बाई=२८ फीट चौड़ाई=१०' गहराई २८') में ट्राली द्वारा २३' की गहराई पर लटकाया गया है। इसलिये इसको "स्वीमींग पूल" चिति कहते हैं। कोर को बड़ी सुगमता से हौज के किसी भी भाग में ले जाया जा सकता है। हौज का पानी (जिसमें कोर डूबा रहता है एक तो संयतक का काम देता है। दूसरे जब चिति सक्रिय अवस्था में होती है तो उसे शीतल (उण्डी) रखने में सहायक होता है, तीसरे विषैले तथा हानिकारक विकिरण जो यूरेनियम के फिशन से मुक्त होते हैं उन्हें बाहर निकलने से बचाता है। इस तरह वह एक रक्षाकवच का भी काम करता है। हौज की दीवारें ३' मोटी मिट्टी तथा सीमेंट से बनी हैं। समूचा हौज एक विशाल हॉल (लम्बाई १००' चौड़ाई ५०' न्यूनतम ऊँचाई ६०' के भीतर बनाया गया है, हॉल के एक ओर कमरों में परीक्षण संबंधी साधन एवं सामग्री तथा अन्य छोटे-मोटे यन्त्र जैसे पम्प मोटर ताप विनियम इत्यादि की व्यवस्था की गई है। हॉल के दूसरी ओर बिल्कुल पृथक ग्रेफाईट की वर्कशाप है। परीक्षण कमरों के ऊपर एक कमरा है, जहां से सम्पूर्ण चिति का नियन्त्रण किया जाता है। 'कोर" के भीतर फिशन प्रक्रिया की गति का नियन्त्रण कैडमियम को दो छड़ों के अन्दर बाहर प्रचालन से किया जाता है। कैडमियम क्लीवाणु का उत्तम चुषक है। अतः जब इन छड़ों को 'कोर' के भीतर की ओर प्रविष्ट कराते हैं तो क्लीवाणु का चुषण होने के कारण फिशन की गति धीमी हो जाती है। इसी तरह जब फिशन क्रिया की गति में वृद्धि करना होती है तो इन छड़ों को बाहर की ओर खींचना होता है। इनके अतिरिक्त दो ओर कैडमियम की छड़े हैं, जिनके द्वारा किसी दुर्घटना के समय तुरन्त ही चिति को स्थगित किया जा सकता है, नियन्त्रित कमरे में और भी यंत्र हैं जिनके द्वारा पानी के ताप, 'कोर' की ताप-शक्ति के उत्पादन के वेग इत्यादि अनेक आवश्यक सूचनाओं का रेकार्ड होता रहता है। इस चिति की शक्ति-क्षमता १०० वाट है। भारतीय चिति एक अपने ढंग की अनुपम चिति है। इस चिति के निर्माण में लगभग एक करोड़ रुपया व्यय हुआ है। यह हमारी प्रथम चिति है। इस चिति द्वारा भारतीय वैज्ञानिक परमाणु-शक्ति के शांति कालीन तथा मानव कल्याण संबन्धी विविध प्रयोगों का अध्ययन करेंगे, साथ ही साथ भावी वैज्ञानिकों को परमाणु-शक्ति जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र में प्रशिक्षण देने के हेतु भी इसका उपयोग किया जा सकेगा।

—:०:—

विज्ञान सितम्बर १६५८
पृष्ठ १८१-१८५

भारत का लौह तथा इस्पात उद्योग

[ले० श्री ओमशंकर द्विवेदी एम० ए०, प्रयाग विश्वविद्यालय]

इतिहास तथा महत्त्व—भारत का इस्पात और लौह उद्योग दुनिया में सम्भवतः सबसे पुराना है किन्तु उस समय यह कुटीर उद्योग की तरह देश भर में फैला था। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व की प्रसिद्ध 'दमिश्क की तलवारें' भारतीय लोहे से ही निर्मित होती थीं। पृथ्वीराज के समय का वह लौह स्तम्भ जिस पर अब तक जंग आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है भारत की उसी प्राचीन इस्पात उद्योग की याद दिलाता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उस समय भारत का इस्पात उद्योग दुनियाँ में सबसे अधिक उन्नतिशील रहा होगा।

भारत में (पिग आइरन) का निर्माण १६ वीं० सदी में प्रारम्भ हुआ। किन्तु इस्पात का उत्पादन २० वीं० सदी में ही सम्भव हो सका। सन् १८३० ई० में जोशिया मार्शल टीथ ने इस उद्योग के हेतु कुछ कार्य किया किंतु वह पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो सकें और कुछ वर्षों में ही उनका कार्य समाप्त हो गया। १८३३ ई० में मालाबार तट पर बेपुर स्थान के पास भी प्रयत्न किए गए किन्तु वे भी सफल न हो सके। सन् १८५३ ई० में ईस्ट इन्डिया आइरन कम्पनी प्रारम्भ की गई और सन् १८७४ ई० में सरकार ने इसे अपने अन्तर्गत ले लिया।

बिहार उड़ीसा क्षेत्र में पहले प्रयत्न सन् १८७१ ई० में आरम्भ हुए जो कि बाराकार आइरन वर्कस के नाम से विख्यात हैं। इनका प्रमुख केन्द्र कुल्टी था, सन् १९१६ में यही बंगाल आइरन एन्ड स्टील कम्पनी के अधीन आ गया तथा सन् १६३७ में यह इन्डियन आइरन एण्ड-स्टील कंपनी के अंतर्गत हो गया। इसी क्षेत्र में सन् १६०४ ई० में जमशेद जी टाटा ने अपना कार्य साक्ची गाँव के पास आरम्भ किया जो कि अब जमशेदपुर के नाम से विख्यात है।

अभी भारत में लौह निर्माण करने वाली तीन ही बड़ी कम्पनियाँ हैं—
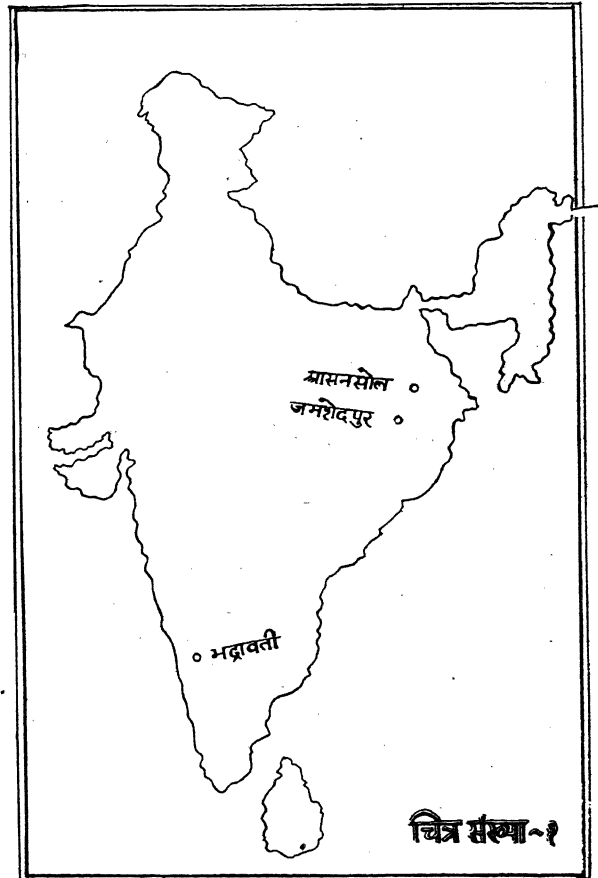
चित्र संख्या-१

(१) टाटा आइरन तथा स्टील कम्पनी, जमशेदपुर में

(२) इन्डियन आइरन और इस्टील कं०—इसका प्रबन्ध कलकत्ते से होता है—यह दो इकाइयों से मिलकर बनी है। एक कुल्टी और दूसरी बर्नपुर या हीरापुर में
(३) मैसूर आइरन और स्टील वर्क्स—

औद्योगिक इकाइयों की स्थिति—लोहा या इस्पात बनाने में बहुत अधिक कच्चे माल की आवश्यकता होती है और अंतिम उत्पादन (फिनिश प्रोडक्ट) का भार तुलनात्मक दृष्टि से बहुत ही कम होता है, अतः यह उद्योग वहीं फल फूल सकता है जहाँ कि कच्चे माल का बाहुल्य हो यही कारण है कि यह इकाइयाँ कच्चे लोहे या कोयले के क्षेत्रों में स्थित है। पिग आइरन बनाने में अधिक कोयले की आवश्यकता पड़ती है अतः ऐसी कम्पनियाँ जो पिग आइरन का निर्माण करती हैं अधिकतर कोयला-क्षेत्रों में स्थित हैं और इसके विपरीत इस्पात कम्पनियाँ कच्चे लोहे के क्षेत्रों में उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ प्रमुख कारण जो कि स्थिति का निर्धारण करते है निम्न हैं—अन्य कच्चे पदार्थ जैसे चूना, मैंगनीज आदि, यातायात के साधन, शक्ति के स्रोत पूँजी तथा श्रम।

लौह और इस्पात के प्रकार—

(अ) **पिग आइरन**—यह ब्लास्ट भट्टी में कच्ची धातु के पिघलाने से प्राप्त होता है। इसमें कार्बन की मात्रा अधिक होती है। यह बेसीमर विधि से इस्पात में परिवर्तित किया जा सकता है। उपरोक्त विधि तभी काम में लाई जाती है जब कच्ची धातु में गंधक या फासफोरस न हो। इनकी उपस्थिति में गिल क्राइस्ट विधि प्रयोग में लाई जाती है। भारत में पिग आइरन से इस्पात बनाने में बेसीमर विधि ही प्रयोग में लाई जाती है।

(आ) **राट आइरन**—यह पिग आइरन का ही एक प्रकार है जिसमें कि कार्बन की मात्रा घटा दी जाती है इसकी रचना रेशेदार सी होती है। इसे लोहे की सरियाँ आदि बनाने के कार्य में लाया जाता है।

(इ) **फिनिश स्टील**—इसमें कार्बन की मात्रा रॉट आइरन से भी कम कर दी जाती है। फिनिश स्टील को अन्य कई श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है जैसे

(१) **स्टील की कास्टिंग**—स्टील को पिघला कर साँचों में ढाला जाता है जो कि यंत्रों के निर्माण के काम आता है यह बहुत कठोर होता है।

(२) **स्टील की फोर्डिंग**—इसमें स्टील को गर्म करके और पीट करके पदार्थ बनाए जाते हैं।

(३) **स्टील इनगोट**—यदि लोहा रॉट प्रकार का न हो और उसे ढाला जाए तो बनता है।

(४) **एलाइ स्टील**—इसमें इस्पात के साथ अन्य धातुएं मिश्रित कर दी जाती हैं जैसे निकिल क्रोमियम आदि।

इस्पात के और प्रकार स्टेनलेस स्टील, हाई स्पीड स्टील, इलेक्ट्रिट स्टील और टेनजाइल स्टील हैं।

औद्योगिक इकाइयाँ—

(१) **टाटा आइरन एण्ड स्टील कं०**—जमशेदपुर में स्थित टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी भारत की ही नहीं अपितु एशिया की सबसे बड़ी कम्पनी है। यह कम्पनी साक्ची गाँव में १९०८ में स्थापित की गई थी। इसने सन् १९११ ई० में ही पिग आइरन तथा १९१२ में इस्पात बनाना आरम्भ कर दिया था। आरम्भ में यह कम्पनी सरकार के संरक्षण में थी। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों ने इसकी उन्नति में बहुत ही योग दिया।

आजकल इस कम्पनी में ४०,००० मजदूर कार्य करते हैं और यही कम्पनी भारत का २/३ लोहा और इस्पात तैयार करती है। इस कम्पनी की जल की आवश्यकताएँ स्वर्णरेखा और खोरकाई नदियों से पूरी की जाती हैं। इसके लिए लोहे की कच्ची धातु सिह-

भूमि (नोआमण्डी) मयूरभंज (बादाम पहाड़ तथा गुरुमहिसानी), कोयला रानीगंज और झरिया से, चूना उड़ीसा के गयापुर से; क्वार्टजाइट कालामती से आता है जो कि यहाँ से केवल ६ मील ही दूर है, मैंगनीज मध्य प्रदेश से तथा मजदूर सघन जन संख्या वाली गया घाटी से मिल जाते हैं। जमशेदपुर दक्षिण पूर्व रेलवे की मुख्य शाखा पर स्थित है।

आजकल इस कम्पनी का वार्षिक उत्पादन १२ लाख टन से अधिक इस्पात और ८ लाख टन से अधिक पिग आइरन का है।

इस कम्पनी की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के हेतु भारत सरकार ने इस कम्पनी को १० करोड़ रुपये ऋण दिया है। विश्व बैंक से भी इसे एक ऋण इसी आशय से मिला है।

इस उद्योग के अन्तर्गत ५ ब्लास्ट भट्टियां हैं जो कि ६ हजार टन कच्चा लोहा ३५०० टन कोक और २०० टन चूना प्रति दिन उपयोग में लाती हैं।

इस कम्पनी के उत्पादन की प्रमुख वस्तुए गर्डर, शीटें, रेलवे वैगन, रेलें, और काँटे के तार आदि हैं। हाल ही में यहां भारी मशीनों का उत्पादन भी प्रारम्भ किया गया है और इसके लिए बहुत सी दूसरी कम्पनियां भी खोली गई हैं जैसे टाटा इन्जीनियरिंग और लोकोमोटिव कं०, इण्डियन टिन प्लेट कं०, टाटा केमीकल कं०, इण्डियन केबिल कं० और एग्रीकलचुरल इम्प्लीमेंट कं० आदि।

चित्र संख्या – २
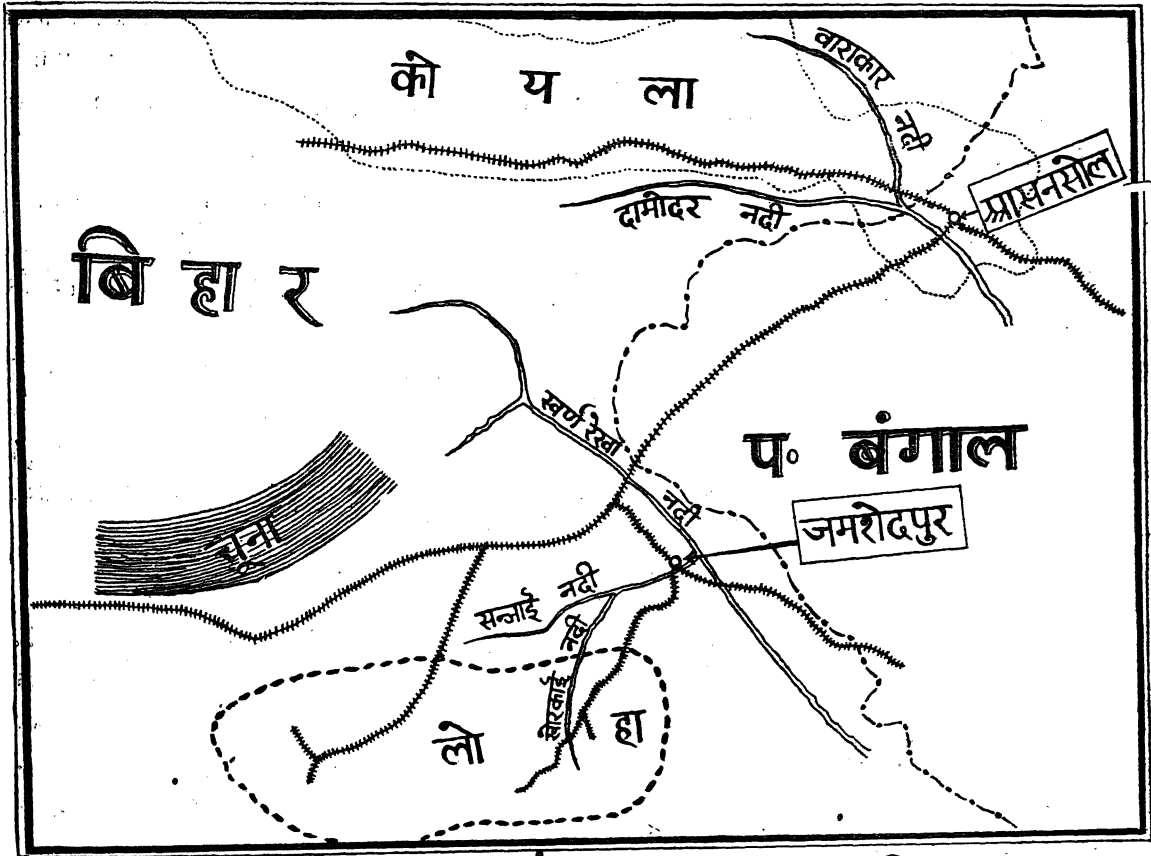
इण्डियन आइरन और स्टील कम्पनी—यह दो अलग-अलग कम्पनियों के मिलने से बनी है स्टील कारपोरेशन ओफ बंगाल तथा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी। ये दोनों सन् १९५२ में सम्बद्ध हो गईं। यह दोनों इकाइयां आसनसोल के निकट कुल्टी और बर्नपुर में स्थित हैं।

वार्षिक उत्पादन लगभग १॥ लाख टन इस्पात और ४ लाख टन पिग आइरन का है। कुल्टी बाराकार नदी पर कलकत्ता से १४० मील दूर स्थित है बर्नपुर कुल्टी से ७ मील और आसनसोल से ४ मील की ही दूरी पर स्थित है। कुल्टी में पिग आइरन तथा बर्नपुर में इस्पात बनाया जाता है लोहे को कच्चा धातु इन क्षेत्रों के लिए सिंह भूमि और मयूरभञ्ज से, कोयला झरिया से, चूना गया से तथा मैगनीज बिहार तथा पास के उड़ीसा क्षेत्र से आता है।

मैसूर आइरन एण्ड स्टील वर्क्स—यह इकाई सन् १९१२ में स्थापित की गई थी। इस केन्द्र की स्थित बहुत ही उत्तम है। यह भद्रावती नदी के तट पर भद्रावती नामक स्थान पर स्थित है। यह केन्द्र प्रति वर्ष ४० हजार टन इस्पात का उत्पादन करता है तथा इस उत्पादन को १ लाख टन प्रतिवर्ष करने की योजना है।

यहाँ के लिए कच्ची धातु कनगुदी और शिमोगा जिले के अन्य स्थानों से प्राप्त की जाती है। यहां कच्ची धातु को पिघलाने के लिए लकड़ी के कोयले का प्रयोग होता है जो कि पास में ही स्थित सघन जंगलों से प्राप्त किया जाता है। इसके लिए चूना भौंडी गुड्डा से लिया जाता है जो कि यहां से १३ मील की दूरी पर स्थित है।

अन्य छोटी-छोटी इकाइयाँ वर्कशापों के रूप में हैं जो कि जभालपुर, लिलुआ, साभलपुर और कानपुर में स्थित हैं।

नए इस्पात केन्द्र

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार ने तीन प्रमुख इस्पात प्रयोजनाओं के निर्माण की योजना बनाई है और ये तीनों केन्द्र हैं राउरकेला, भिलाई और दुर्गापुर।

राउर केला स्पात प्रायोजना—यह केन्द्र उड़ीसा में भद्रावती नदी पर हीरापुर बाँध के निकट स्थित है। इस प्रायोजना के लिए कच्ची धातु क्योनझार और तालदीव स्थान से, कोयला रानीगंज और झरिया की खदानों से तथा चूना और मैंगनीज उड़ीसा से प्राप्त किया जावेगा। पूर्ण होने पर यह केन्द्र ५ लाख टन इस्पात और १० लाख टन पिग-आइरन का उत्पादन करेगा। इस केन्द्र का मुख्य उत्पादन इस्पात की चादरें होंगी जो कि जलपोतों तथा रेल डिब्बों के निर्माण में कार्य आवेंगी।

इस प्रायोजना के पूर्ण होने में १०० करोड़ रुपए के व्यय का अनुमान है किन्तु सन् १९५७-५८ में केवल २० करोड़ रुपए ही व्यय हुए। यह आशा की जाती है कि यह केन्द्र सन् १९५९ तक उत्पादन प्रारम्भ कर देगा।

शंख नदी पर बनाया जाने वाला बाँध इसके लिए जल पूर्ति करेगा। मुख्य इस्पात संयंत्र के लिए पानी की सप्लाई के लिए आवश्यक पम्प, सेटलिंग पौंड और कूलिंग टावर का प्रबन्ध हो चुका है।

यह प्रायोजना एक जर्मन कम्पनी की सहायता से कार्य कर रही है और इसका नाम हिन्दुस्तान आइरन एण्ड स्टील कम्पनी है। इस प्रायोजना को उपयुक्त कोयला प्रदान करने के लिए एक कोल वाशिंग फेक्ट्री बुकारो में स्थापित की गई है।

भिलाई इस्पात प्रायोजना—यह केन्द्र मध्य-प्रदेश के द्रुग जिले में स्थित है। यह प्रायोजना सोवियत संघ के सहयोग से बन रही है। इस प्रायोजना के निकट एक बड़ा तालाब बनाया गया है जिसे कि तन्दूला रिजर-वोयर कहते हैं और इसी तालाब से तन्दूला नहर निकाली गई है जो कि इस केन्द्र को जल प्रदान करेगी।

कलकत्ता और बम्बई को मिलाने वाली रेलवे लाइन पर यह स्थान रायपुर से १६ मील की दूरी पर स्थित है।

इस केन्द्र के लिए कच्ची धातु दल्ली और राजहरा से जो कि यहां से केवल १५ मील की दूरी पर स्थित हैं, कोयला कोरबा की कोयला खानों से जो कि यहाँ से १४० मील दूर है, मैंगनीज बाराकार और भण्डारा से चूना स्थानीय स्थानों से प्राप्त किया जावेगा।

पूर्ण होने पर यह केन्द्र १० लाख टन इनगोट इस्पात का उत्पादन करेगा। जिसको कि बाद में २५ लाख टन तक बढ़ाया जावेगा।

उत्पादन की प्रमुख वस्तुएँ रेलवे स्लीपर, लोहे की छड़ें, भारी सामान और ढली हुई वस्तुएँ होंगी।

दुर्गापुर इस्पात प्रायोजना :—यह प्रायोजना पश्चिमी बंगाल में स्थित है तथा इंगलैंड की एक कम्पनी की सहायता से बन रही है। इसके लिए पानी दुर्गापुर डैम नहर से, बिजली दामोदर घाटी कार्पोरेशन से, कोयला रानीगंज से और कच्चा लोहा गुआ और सिंहभूमि से आवेगा। हाल ही में यहां एक ककोल वाशिंग फेक्ट्री स्थापित की गई है जो कि इस प्रायोजना को उपयुक्त कोयला प्रदान करेगी।

उत्पादन और लक्ष्य—गत कुछ वर्षों में भारत में इस्पात का उत्पादन निम्न प्रकार से रहा है।

वर्ष	उत्पादन
१९५१	१०.७६ लाख टन
१९५२	११.०३ ,,
१९५३	१०.१८ ,,
१९५४	१२.४३ ,,
१९५५	१२.६० ,,
१९५६	१२.३० ,,

पंच वर्षीय योजनाओं का लक्ष्य निम्न प्रकार है।

	प्रथम पंचवर्षीय योजना :—	द्वितीय योजना
पिग आइरन	३.८ लाख टन	७.५ लाख टन
फिनिश इस्पात	१३.० ,,	४३.० ,,
कच्चा लोहा	४३.० ,,	१२५.० ,,

उपरोक्त आँकड़ों से यह बिलकुल स्पष्ट है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पिग आइरन का उत्पादन दो गुना और इस्पात का लगभग सवा तीन गुना होने का अनुमान है।

इतना सब होने पर भी भारत के पिग आइरन और इस्पात का उत्पादन अन्य उन्नतिशील देशों की अपेक्षा बहुत कम है। सन् १९५६ में संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस और इंगलैंड का वार्षिक उत्पादन १२५८.३ लाख टन, ४८६.० लाख टन तथा २०६.७ लाख टन था। इन देशों की तुलनात्मक दृष्टि से भारत का उत्पादन नगण्य ही है। इन सब बातों को देख कर भारत सरकार ने सभी नई और पुरानी प्रायोजनाओं का द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अन्त तक के लिए इस्पात का एक लक्ष्य निर्धारित कर दिया है जो कि इस प्रकार—

टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी	१५.०	लाख टन
आइरन एण्ड स्टील कं०	८.०	,, ,,
मैसूर आइरन एण्ड स्टील कं०	१.०	,, ,,
राउर केला	७.५	,, ,,
भिलाई	७.५	,, ,,
दुर्गापुर	७.५	,, ,,

उपयुक्त ईंधन की कमी के कारण से भी उत्पादन बढ़ाने में कठिनाई पड़ती है। कुशल श्रमिकों का देश में अभाव होने के कारण उन्हें लम्बा वेतन देकर दूसरे देशों से बुला कर रखना पड़ता है। फिर भी अभी देश में उतनी उच्च कोटि के इस्पात का उत्पादन नहीं हो पाता जितना अन्य प्रगति शील देशों में किया जाता है। इन सब समस्याओं पर दृष्टि पात करने पर एक बार सोचना पड़ता है कि क्या हम संसार के अन्य देशों के समक्ष प्रतियोगिता कर सकेंगे? कुछ भी हो यह कहना पड़ेगा कि देश का इस्पात की आवश्यकताओं के लिये आत्मनिर्भर होने का यह पग सराहनीय है। हमें आशा है कि वैज्ञानिक गवेषणाओं और प्राविधिक प्रशिक्षण की सुविधाओं के उपलब्ध होने पर हम शीघ्र ही अपनी दुर्बलताओं पर विजय पा लेंगे और अपने लक्ष्य की पूर्ति के हेतु आगे बढ़ सकेंगे।

दांतों के परीक्षण द्वारा आयु का अनुमान

[पृष्ठ १७६ का शेष]

अनुमान लगाया जा सकता है तथा ५ वर्ष से अधिक की गलती नहीं होती।

डा० स्काट और उनके साथी अपनी मौलिक अनुसन्धान-योजनाओं के अन्तर्गत दाँतों में पंक्तिबद्ध स्फटिकों के सम्बन्ध में अध्ययन कर रहे हैं। वे विद्युदणु अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा दाँत के पालिश हुए ऊपरी भाग के स्फटिकों का अति सूक्ष्म निरीक्षण करने के कार्य में संलग्न हैं। करोड़ों स्फटिक मिलकर एक दाँत के ऊपरी हिस्से का निर्माण करते हैं।

दंत-क्षरण के समय किस भाग का पहले क्षरण होता है; यह पता लगाना उनकी समस्याओं में से एक है। डा० स्काट ने बताया कि यह स्पष्ट है कि जिस भाग में खनिजों का सब से पहले ह्रास होता है, ही सबसे पहले घिसता और टूटता है उसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी संकेत किया कि दाँतों को अधिक हानि आहार के बचे हुए टुकड़ोंसे पहुँचती है, कीटणु इतनी हानि नहीं पहुँचाते। इन्हीं गले सड़े टुकड़ों के कारण ही अन्त में दांतों का क्षरण होता है।

दांतों सम्बन्धी अनुसन्धानकर्ता इस बात को स्वीकार करते हैं कि दांतों का क्षरण सबसे पहले दांत० के ऊपरी भाग से प्रारम्भ होता है। और भीतर की ओर फैलता जाता है। इस तथ्य से यह पता चला है कि दन्त क्षरण की रोकने के लिए सब से पहले ऊपरी भाग का सूक्ष्म निरीक्षण करना अनिवार्य है। इस तरह के अध्ययनों के लिए जीवित दांतों का निरीक्षण करने की ओर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक होता है।

—:०:—

क्या आप जानते हैं ?

* नारियल रेशा उद्योग की उन्नति के लिए दूसरी आयोजना में, प्रारम्भ में १ करोड़ रु० की व्यवस्था की गयी। इसमें ३० लाख रु० नारियल रेशा मण्डल की केन्द्रीय योजनाएँ पूरी करने के लिए और ७० लाख रु० नारियल पैदा करने वाले राज्यों की योजनाओं के लिए था।

* बाद में यह जान कर कि इस उद्योग से विदेशी मुद्रा की आय हो सकती है, भारत सरकार ने इस योजना के लिए ७० लाख रु० की और स्वीकृति दी है। इस प्रकार राज्यों को इस काम के लिए दूसरी आयोजना में कुल १ करोड़ ४० लाख रु० मिल जायगा।

* पिछले साल भारत के बन्दरगाहों से नारियल रेशे का ३५ हजार ३७० टन सामान, जिसका मूल्य ४ करोड़ २० लाख रु० है, विदेशों को भेजा गया। १९५६ में ४ करोड़ २१ लाख रु० का ३६, ८६७ टन सामान भेजा गया था।

* भारत सरकार ने अलेप्पी के पास नारियल रेशा अनुसंधान केन्द्र खोलने और कलकत्ते में छोटा केन्द्र खोलने की नारियल रेशा-मन्डल की योजना मन्जूर कर ली है। इस पर २० लाख २८ हजार रु० व्यय आयेगा। नारियल रेशा-मण्डल अब तक भारत में चार प्रदर्शनियों में और विदेशों में पाँच प्रदर्शनियों में भाग ले चुका है और कई इनाम भी जीत चुका है। इसी कारण देश-विदेश के व्यापारी नारियल रेशे से बने सामान में रुचि ले रहे हैं और मण्डल से इस सम्बन्ध में पूछताछ कर रहे हैं।

* नारियल रेशे से बनी चीजों की बिक्री के लिए १९५५ के अन्त में मण्डल ने नयी दिल्ली में एक प्रदर्शन और बिक्री-केन्द्र खोला था। नवम्बर, १९५७ के अन्त तक इस केन्द्र में ५४,५७९ रु० की बिक्री हो चुकी थी। दिल्ली क्षेत्र में नारियल रेशे से बनी वस्तुओं के प्रचार लिए इस केन्द्र को एक मोटर गाड़ी दी गयी है।

* मण्डल की योजना चालू वर्ष में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में भी इसी तरह के केन्द्र खोलने की है। १९५८-५९ में बंगलौर और जालंधर में भी एक-एक केन्द्र खोलने की व्यवस्था की जा चुकी है।

कोयले का उत्पादन बढ़ाने का कार्यक्रम

दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया है। इसके लिये कोयले का उत्पादन बढ़ाना भी आवश्यक है, क्योंकि यह लोहा और स्पात कारखानो और अन्य अनेक उद्योगों में काम आता है।

दूसरी आयोजना के प्रारम्भ में, १६५५ में, देश में खानों से ३ करोड़ ८० लाख टन कोयला निकाला गया था। इसमें से केवल २८ लाख टन कोयला सरकारी खानों से निकाला गया और बाकी निजी खानों से। दूसरी आयोजना के अंत तक देश के कारखानों और रेलों आदि के लिए ६ करोड़ टन कोयले की जरूरत पड़ने लगेगी। इस लिए उस समय तक २ करोड़ २० लाख टन और कोयला निकालने का लक्ष्य रखा गया है—१ करोड़ २० लाख टन सरकारी कोयला खानों से और १ करोड़ टन निजी क्षेत्र की कोयला खानों से। इसके लिए वर्तमान कोयला खानों को बढ़ाया जायगा और नयी खानों को खोदा जायगा।

सरकारी क्षेत्र में १ करोड़ ६ लाख टन अतिरिक्त कोयला निम्नलिखित नयी खानें खोदकर और वर्तमान खानों को बढ़ा कर निकाला जाएगा (इसमें सिंगरेनी कोयला खानें सम्मिलित नहीं हैं) :

	लाख टन	लाख टन
१. कोरबा		१६
२. कथारा		१५
३. मध्यभारत की खानें—		
(क) कोरिया ……	५	
(ख) कुरसिया (वर्तमान खानों को बढ़ाकर)	५	१०
४. करणपुर		
(क) गिद्दी ……	१५	
(ख) सौंदा ……	१२	
(ग) बछरा ……	६	
(घ) भुरकुण्डा II ……	७	
(च) चोरधारा ……	५	
(छ) सयाल और गिद्दी ए ……	५	५०
५. वर्तमान कोयला खानों को बढ़ाकर (३ (ख) को छोड़कर) ……		५
६. (यहाँ अभी फिर जाँच करनी जरूरी है)		
(क) बलन्दा (उड़ीसा) ……	५	
(ख) कोतमा (मध्यभारत कोयला खानें) ……	५	१०
		१०६

सन् १६५६ में सरकार ने ५० करोड़ के मूलधन से नेशनल कोल डेवलपमेंट कार्पोरेशन नामक कारबार खोला। इसका काम कोयले का उत्पादन बढ़ाने का कार्यक्रम बनाना और उसे पूरा कराना है।

काम में प्रगति

पिछले तीन वर्षों से सरकारी खानों में कोयले की खुदाई बढ़ती जा रही है। १६५५ में २८ लाख टन, १६५६ में २६ लाख ६० हजार टन और १६५७ में ३३ लाख ८० हजार टन कोयला निकाला गया।

कोयले की नयी खानों को चालू करने में काफी समय लगता है। मशीनें मंगाना, जमीन लेना, रेल लाइन बिछाना, कर्मचारियों को काम सिखाना, यह सब काफी समय लेते हैं। फिर भी कुछ खानों में काम अच्छा चलने लगा है। उनमें से मुख्य ये हैं :

कथारा में १० लाख टन कोयला निकाला जा चुका है और दिसम्बर १६५८ तक रेल लाइन बिछने के बाद वहां से ढुलाई शुरू कर दी जायगी।

सौंदा में भी ६,००० टन कोयला निकाला जा चुका है। रेल लाइन बिछने के बाद और कोयला निकाला जाने लगेगा और ढुलाई शुरू कर दी जाएगी।

गिद्दी में ६ रूस्थानों परशु खुदाई हो गयी है, परंतु दामोदर नदी पर पुलबनाने के बाद ही वहां से नियमित लदान शुरू हो सकेगा। बछरा में तीन स्थानों पर खुदाई हो रही है और इस साल अक्टूबर-दिसम्बर तक वहां से कोयला निकाला जाने लगेगा। भुरकुण्डा से सितम्बर १६५८ से कोयला बाहर भेजा जाने लगेगा।

कोरबा में लगभग एक हजार टन कोयला प्रतिदिन निकाला जा सकता है। इससे मध्यप्रदेश बिजली बोर्ड के बिजली घर को कोयला दिया जाएगा। कुरसिया की खानों को जून १६५८ से बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। सितम्बर १६५८ तक वहां से और अधिक कोयलाजाने निकाला लगेगा।

सिंगरेनी कोयला खानें

सिंगरेनी कोयला खानों से १६५५ में १५ लाख टन, १६५६ में १६ लाख ८० हजार टन और १६५७ में १६ लाख २० हजार टन कोयला निकाला गया। चालू वित्त वर्ष के अन्त तक २१ लाख ५० हजार टन कोयला निकालने का अनुमान है। १६५८ में, जनवरी में १ लाख ५० हजार टन फरवरी में १ लाख ६० हजार टन, मार्च में १ लाख ६० हजार टन और अप्रैल में १ लाख ७६ हजार टन कोयला निकाला गया।

कोयला धोने के कारखाने

निजी क्षेत्र में—जमदोबा, पश्चिम बोकारो और लोदाना कोयला खानों में —कोयला धोने के तीन कारखाने हैं। वहां से टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी तथा भारतीय लोहा और इस्पात कम्पनी को धुला कोयला भेजा जाता है।

नेशनल कोल डेंवलपमेंट कार्पोरेशन ने करगली में कोयला धोने का कारखाना बनवाया है, जो लगभग तैयार हो गया है। इसे जापान के शिल्पी बना रहे हैं। यहां करगली और बोकारो खानों का कोयला धोया जाएगा। दुगडा, पाथरडीह और मोजूडीह में भी एक-एक कारखाना काखड़ा करने निर्णय किया जा चुका है।

कोयला खानों के लिए काफी संख्या में खान इंजीनियरों की जरूरत पड़ रही है। इसके लिए धनबाद के खान स्कूल में और छात्रों को भर्ती करने का इंतजाम किया जा रहा है और अनेक इंजीनियरी कालेजों को खान इंजीनियरी की कक्षाएं खोलने के लिए सहायता दी जा रही है।

नेशतल कोस डेवलपमेंट कार्पोरेशन ने चार कोयला-क्षेत्रों में कारीगरी शिक्षा के लिए ४ केन्द्र खोले हैं, जहां हर साल ५६० शिक्षार्थी काम सीखेंगे। केन्द्रों को खुले एक साल हो है अन्यचुक स्थानों पर भी ऐसे केन्द्र खोलने का विचार है।

विज्ञान-वार्ता

मूक ध्वनि-तरँगों के उपयोगों में वृद्धि

अमेरिकी उद्योगों एवं चिकित्सा के क्षेत्रों में ऐसी ध्वनि-तरंगों के उपयोगों में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो इतनी अधिक तीव्र गति से कम्पन करती हैं जिन्हें मनुष्य कानों से सुन ही नहीं सकता। ये ध्वनि-तरंगे अल्ट्रा-सोनिक साउन्ड वेव के नाम से भी पुकारी जाती हैं।

एक पेन्सिल-निर्माता सीसे की छड़ों में मोम भरने के लिए ऐसी ध्वनि तरंगों का प्रयोग करता है। इस विधि के प्रयोग से केवल ३० मिनट में शलाखों में मोम भर जाता है। पहले ऐसा करने में ३ घन्टे लग जाते थे।

एक कैमरा-निर्माता नाजुक काँच (लैन्स) को साफ करने के लिए मूक ध्वनि-तरंगों का प्रयोग करता है। वह इस विधि से एक घन्टे में १,००० लैन्स साफ कर लेता है। पहले इस कार्य के लिए २४ युवतियों को कई घन्टे तक कार्य करना पड़ता था।

ध्वनि-तरंगों से अब एक नई मशीन का संचालन किया जाता है जिसके द्वारा अलुमुनियम और जंग न लगने वाले लोहे के समान कड़ी धातुओं को जोड़ा जा सकता है। पहले अलुमुनियम को टाँका लगाना बड़ा मुश्किल समझा जाता था क्योंकि धातु की सतह से ओक्साइड की परत को हटाना बहुत कठिन होता है।

ध्वनि-तरंगों से लोहा एक सेकिन्ड में २० हजार से २५ हजार बार कम्पन करता है। अत्यधिक तीव्र गति से कम्पन करने वाली ध्वनि-तरंगों से ओक्साइड की परत फट जाती है और इस प्रकार जोड़ लग जाता है।

ध्वनि तरंगों द्वारा धातुओं में टांका लगाने या 'वेल्डिंग' करने की एक नई विधि का आविष्कार किया गया है। अब बाजार में ऐसे यन्त्र प्राप्त हैं जिनसे भारी धातुओं पर धातुओं के महीन वर्क के साथ अथवा असमान मोटाई की परतों में वैल्डिंग की जाती है। पहले यह कार्य अत्यन्त कठिन समझा जाता था।

'हाई फ्रीक्वेन्सी' वाली ध्वनि-तरंगों से अब ऐसे औजारों का संचालन होता है जिन से मिट्टी के बर्तनों, शीशे और टंगस्टन कार्बाइड जैसी कठोर चीजों पर जटिल चित्रकारी की जाती है अथवा सामान्य सूराख बनाये जाते हैं। अब यह कार्य बड़ा आसान हो गया है परन्तु पहले यह कार्य बड़ा कठिन था।

अन्य औद्योगिक कार्यों में ध्वनि-तरंगों से इंजेक्शन की सुइयों के भीतरी भागों को साफ किया जाता है, यन्त्रों से ग्रीज या चिकनाई को हटाया जाता है, धातुओं की बनी हुई वस्तुओं के गुप्त दोषों का पता लगाया जाता है और तरल पदार्थों से गैसों को हटाया जाता है।

सफाई के क्षेत्र में ध्वनि तरंगों का प्रचलन संभवत सबसे तेजी के साथ बढ़ रहा है, साधारण तौर पर ३ लाख से १० लाख प्रति सेकेन्ड चक्करों की गति से ध्वनि तरंगों को उन तरल पदार्थों में से प्रवेश किया जाता है जिन में साफ करने वाली चीजें डाली जाती हैं। मूक ध्वनि-तरंगों से समस्त गँदला पदार्थ, तेल और ग्रीज के

कण इतनी अच्छी तरह से छंट जाते हैं जैसे अन्य किसी प्रकार नहीं छंट सकते।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी ध्वनि-तरंगों का उपयोग निरन्तर बढ़ रहा है। इनके द्वारा सूक्ष्म कोशों को ताप पहुँचाया जाता है। 'रेथून मैन्चूफैक्चरिंग कम्पनी ने एक ऐसा यन्त्र तैयार किया है जिसे सूजन और गठिया आदि रोगों के उपचार के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

शिकागो विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक हाई फ्रीक्वेन्सी ध्वनि तरंगों को रोग फैलाने वाले कीटाणुओं को पृथक् करने के लिए प्रयोग में ला रहे हैं। ध्वनि-तरंगें उस पतली, दृढ़ परत को फाड़ देती हैं जिन में सूक्ष्म कीटाणु बन्द रहते हैं। इस क्रिया से कीटाणु तो मर जाते हैं, पर रासायनिक ढंग पर उन में कोई परिवर्तन नहीं होता और इस लिए उन से टीके (वैक्सीन) तैयार किये जा सकते हैं।

रोचेस्टर (मिनेसोटा) की मेयो क्लिनिक में डाक्टर लोग परीक्षण के तौर पर हड्डी के कैन्सरों के उपचार के लिए ध्वनि-तरंगों का उपयोग कर रहे हैं। एक परीक्षण शाला में यह देखने में आया कि इस प्रक्रिया से प्रयोगशाला के प्राणीं में ६० प्रतिशत कीटाणु नष्ट हो गये। ऐसा मालूम होता है कि ध्वनि-तरंगों द्वारा हड्डी में पहुँचाये जाने वाले ताप से कैन्सर उत्पन्न करने वाले कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी का हिन्दी का विश्वकोष

वाराणसी की काशी नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी का एक विश्वकोष तैयार कर रही है। २६ फरवरी, १९५८ तक इसने इस कोष के लिए विभिन्न संदर्भ ग्रंथों में से ७०,००० शब्द संग्रह किये थे। उसमें से ४०,००० शब्द हिन्दी पर्यायवाची शब्द तैयार करने के लिए चुने गये हैं और अब ये शब्द विश्वकोष तैयार करने वाले व्यक्तियों के पास भेजे जाएँगे।

विश्वकोष के लिए विषयों का वर्गीकरण किया जा चुका है और करीब एक चौथाई शब्दों के हिन्दी पर्यायवाची शब्द भी तैयार किये जा चुके हैं।

सलाहकार मण्डल ने ५० सम्पादकों और १ हजार अन्य लेखकों के नामों की सूची को स्वीकार कर लिया है, जो इस कार्य में सहायक होंगे। इन लोगों को स्वीकृत सूची के कई हजार विषय बांट दिये गये हैं।

छपाई और डिजाइन के लिए राजकीय पुरस्कार

देश में पुस्तकों आदि की छपाई और सजावटी सामग्री के डिजाइनों का स्तर सुधारने के लिए केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय ने १९५५ से प्रतिवर्ष सुन्दर छपाई और डिजाइन की प्रतियोगिता करने का निश्चय किया था। इस प्रकार की चौथी प्रतियोगिता इस वर्ष नवम्बर मास में होगी।

इस साल इस प्रदर्शनी में भेजी जाने योग्य सामग्री में दो वस्तुयें और बढ़ा दी गयी हैं—लपेटने के कागज आदि और दुकानों के अन्दर लटकाने या रखने वाले विज्ञापन।

उक्त दो प्रकार की वस्तुओं के अतिरिक्त इन १९ प्रकार की छपी हुई और प्रकाशित सामग्री पर भी पुरस्कार दिये जाएंगे :

दस वर्ष से कम के बच्चों की पुस्तकें; दस वर्ष से ऊपर के बच्चों की पुस्तकें; सचित्र पुस्तकें; कला संबंधी पुस्तकें; अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की पुस्तकें; देशी कागज पर छपी पुस्तकें; अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के दैनिक पत्र; सजावटी विज्ञापन; कला-पत्रिकाएं; इश्तिहार; आफसेट या फोटोग्रेव्योर और लैटर प्रेस के फोल्डर; आफसेट या फोटोग्रेव्योर और लैटर प्रेस के कैलेंडर; डायरियाँ; देवनागरी टाइप की छपाई; प्रचार संबंधी पुस्तिकाएं; लेबुल और सबसे बढ़िया जिल्द की पुस्तक।

केवल ऐसी ही चीजें प्रतियोगिता में भेजी जा सकेंगी, जो १५ अगस्त, १९५७ से १४ अगस्त, १९५८ के बीच भारत में ही छपी हैं। हर श्रेणी की चीजों के लिए दो-दो पुरस्कार दिये जाएंगे। एक पहला और दूसरा स्थान पाने वाली चीज के प्रकाशक या डिजाइन करने वाले को और दूसरा पहला और दूसरा स्थान पाने वाले मुद्रक को। सजावटी विज्ञापनों के लिए विज्ञापनकर्ता और विज्ञापन तैयार करने वाले को, हिन्दी टाइप के

लिए उसके डिजाइन करने वाले को और सबसे बढ़िया जिल्द की पुस्तक के लिए जिल्दसाज का पुरस्कार मिलेगा।

प्रकाशकों, मुद्रकों, व्यापारियों, विज्ञापनकर्त्ताओं, विज्ञापन एजेंसियों और विज्ञापन आदि का काम करने वाली कलाशालाओं से प्रतियोगिता के लिए प्रविष्टियाँ माँगी गयी हैं। ये प्रविष्टियां 'एक्जीविशन डिवीजन, डायरेक्टरेट आफ विजुअल पब्लिसिटी, मिनिस्ट्री आफ इन्फार्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग, नयी दिल्ली के पते पर १ अक्टूबर, १९५८ तक पहुँच जानी चाहिए।

मछली के तेल से चमड़ा साफ करने का पदार्थ

मद्रास की केन्द्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्था ने पोंगम और सार्डिन मछली के तेल से चमड़ा साफ करने का पदार्थ (फैट लिकर) तैयार करने की नयी विधि निकाली है। चमड़े को नरम और लचीला बनाने तथा उसे चमकाने के लिए यह पदार्थ काम आता है। नये ढंग से तैयार किए गए इस पदार्थ की जाँच की जा चुकी है और यह उपयोगी साबित हुआ है। भारत को हर साल २०० से ३०० टन तक अर्थात् ५० लाख रु० के मूल्य के फैट लिकर की जरूरत पड़ती है। दूसरी आयोजना में चमड़ा-उद्योग के विस्तार के कारण जरूरत और बढ़ेगी। नयी विधि से तैयार करने से जरूरत भर को फैट लिकर यहीं तैयार हो सकता है।

भीलवाड़ा में गर्मी रोकने वाली ईंटें बनाने का कारखाना

पिछले दिनों भीलवाड़ा (राजस्थान) के एक कारखाने में अभ्रक की ऐसी गयीईंटें बननी शुरू हो हैं, जो गर्मी को रोकती हैं। इन ईंटों को बनाने की विधि 'सेंट्रल ग्लास एन्ड सिरेमिक रिसर्च इंस्टिट्यूट' ने निकाली है। इसी ने भीलवाड़ा के कारखाने में मशीन लगाने में सहायता की है। उद्योगों में काम आने वाली भट्टी तैयार करने में ये ईंटें काम में लायी जाती हैं। अभ्रक के छोटे-छोटे बेकार टुकड़ों से ये ईंटें बनायी जाती हैं। इस समय कारखाने में हर रोज ३,००० ईंटें बनायी जा रही हैं। इस साल के अन्त तक ६,००० ईंटें रोज बनायी जाने लगेंगी।

भारत में प्रतिवर्ष २० लाख रु० की ऐसी ईंटों की जरूरत पड़ती है। अब तक ये ईंटें विदेशों से मंगानी पड़ती थीं। देश में ही यह उद्योग चालू हो जाने से विदेशी मुद्रा की बचत होगी।

एटलस अन्त-र्महाद्वीपीय लक्ष्यवेधी अस्त्र

'एटलस' नामी अन्तर-महाद्वीपीय लक्ष्यवेधी अस्त्र ने अपने शक्तिशाली तीन इंजनों के बल पर पहली बार सफल उड़ान की। एटलस की लम्बाई ८५ फुट और भार १०० टन है। गत सप्ताह अतलान्तक महासागर पर एटलस ने अपनी परीक्षणात्मक उड़ान की। बाद में हवाई सेना ने यह घोषणा की कि यन्त्रों द्वारा की गई पड़ताल से यह पता चला है कि उक्त उड़ान ठीक रही। 'एटलस' नामी लक्ष्यवेधी अस्त्र में संचालन-क्रिया ३,५०,००० पौंड से भी अधिक शक्ति से सम्पन्न की जाती है। इस शक्ति के सहारे यह लक्ष्यवेधी अस्त्र सामान्य रूप में ६,३२५ मील की उड़ान कर सकता है। परीक्षणात्मक उड़ान केवल २,५०० मील की थी। इतनी दूरी इंजन के सब हिस्सों की जाँच के लिए ठीक समझी गई।

—:o:—

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिग्राम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमाँसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रामेशवेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण ले० एल० ए० डाउस्ट अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर—	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस०-सी०	१ रुपया
१३ वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
२०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और डा० हुनर—डा० गोरखप्रसाद, सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रुपये ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनियां—श्री रामेशवेदी	४ रुपये
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

सितम्बर १९५८

रजिस्टर्ड सं० ३७२

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशन—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रेस, ६३ चक, इलाहाबाद—३।